मर्यादा।

साचित्र मासिक पत्रिका ।

[१] नवम्बर सन् १९१० [संख्या १

मर्यादा ।

[लेखक—श्रीयुत पुरुषोत्तम दास टण्डन]

मनुष्य की अद्भुत गति है । न जाने किन २ शक्तियों का वह समूह है । प्रायः वह स्वयं यह नहीं ा कि किन २ शक्तियों के वश हो वह काम कर है । किसी विशेष समय में जब कोई विशेष उसके चित्त में उठ रही है और उसी के वह वेग से बहता चला जा रहा है, वह ता है कि इस समय हम अपनी अमुक शक्ति काम कर रहे हैं, परन्तु वास्तव में साथ ही अनेक शक्तियां त्रिवेणी की छिपी हुई तीसरी के समान उस शक्ति से जिसे वह देख रहा है कर एक अद्भुत संगम बना रही हैं । वह ी सत्ता से चाहे अनभिज्ञ हो किन्तु वे अपना कर ही रही हैं । प्रायः लोग, जिस समय वे ी बातों के संबन्ध में काई के समान जो यां जम जाती हैं उनका नाश करने लगते हैं, नए आविष्कार, और नई रीतियां सीखने पर बद्ध हो आगे बढ़ते हैं, उस समय उनका ष ध्यान और भरोसा सुधारक और उन्नतिशाली शक्ति पर होता है; पुरानी बातों के काट छांट में उनको प्रायः उस शक्ति की सुध नहीं रहती जो एक अदृष्ट डोर से हमको हमारे पूर्वजों से बांधे हुए है । यह बहुत लम्बी डोर है और मात्राओं से बराबर बढ़ती चली जाती है। हम उसको प्रति दिन बढ़ा रहे हैं । किन्तु उसको तोड़ डालना असम्भव है। उसको तोड़ने के यत्न में हम उसे मात्रा से अधिक खींच भले ही लें किन्तु प्रबल कमानी के समान वह फिर अपने स्थान पर लौट जाती है और हमें भी अपने साथ खींच ले जाती है । इसी मात्रा से अधिक खिंचाव और फिर लौटाव के कारण वे सब घटनाएं संसार में होती हैं जिनका अंगरेज़ी भाषा में लोग reaction (विपरीत गति) शब्द से संकेत करते हैं । इसी डोर का—जिसका सिरा सृष्टि के आदि में नाग पर शयन करते हुए विष्णु की नाभि में है, जिसका दूसरा कोना इस समय हमसे बंधा है और आगे को औरों को बांधेगा, जिसकी लम्बाई का कोई हिसाब नहीं, जो तोड़ी नहीं जा सकती परन्तु मात्राओं से बढ़ाई जा सकती है—इसी का नाम मर्यादा है।

इसी मर्यादा के सिद्धान्त का अज्ञान और उससे विमुखता संसार के सारे दुःखों का मूल है और उसका पूर्ण ज्ञान सब सुखों का साधन है। इसी सिद्धान्त को दिखलाने के लिए भगवान रामचन्द्र का जन्म हुआ था, इसी सिद्धान्त को बारबार समझाने के लिए ईश्वर का अवतार हुआ करता है, और महान पुरुषों की जीवन घटनाएं इसी सिद्धान्त के अनुसरण करने के उदाहरण हैं। मर्यादाबद्ध हो कर ही रामचन्द्र ने चौदह वर्ष तक बनवास किया था, मर्यादा ही के रखने के लिए हरिश्चन्द्र ने श्मशान का चक्कर लगाया था, मर्यादा ही के निबाहने के लिए भीष्मपितामह को शर शय्या पर शयन करना पड़ा था, मर्यादा ही के लिये भारतवर्ष के बुरे दिनों में भी वीर समरसिंह ने पुत्रों सहित रणक्षेत्र में अपना प्राण दिया था, मर्यादा ही बचाये रखने के लिये प्रताप ने जंगलों और पहाड़ियों के कष्टों का सहन करते हुए भी स्वाधीनता नहीं छोड़ी थी, अपनी वीर मर्यादा ही को निबाहने के लिऐ गुरू गोविन्द के वीर पुत्रों ने दीवारों में जीवित गड़ जाना स्वीकार किया था, अपनी मर्यादा को अकलंकित और उज्ज्वल रखने ही के हेतु कितनी वीर और सती महिलाओं ने रणक्षेत्र में अथवा अग्नि में प्राण दिए थे, और आज भी कठिन परिश्रम उठा अपने देश की और संसार की मर्यादा स्थापित रखने ही में कितने महानुभाव वीर पुरुष तत्पर हो रहे हैं। क्या राजनैतिक और क्या साधारण दैनिक व्यवहारों में मर्यादा के अनुसार कार्य करना ही हमारा मुख्य धर्म है। परन्तु इसका यह अर्थ कोई न समझे कि उन्नति और उत्थान और मर्यादा के सिद्धान्तों में वैर है। वास्तव में उन्नति तभी संभव है जब वह अपनी मर्यादा के नियमों की ओर ध्यान रखते हुए, होती है। उन्नति और गुण पौधे के समान होते हैं। उनके लिये कुछ दिनों तक पृथ्वी बनाना पड़ता है, फिर बहुत सावधानी से बीज बोया जाता है, और जब बीज से अंकुर फूटता है तब कठिन परिश्रम से धीरे २ सींचने और कठोर वायु के झकोरों से बचा कर रखने पर वह बढ़ने लगता है, और इस प्रकार दृढ़ता पूर्वक लगे रहने पर बहुत समय के पीछे उसकी जड़ बल पकड़ती हैं और वह बड़ा होकर अपने फल और छाया से लाभ पहुंचाने के योग्य होता है। यदि कोई यह चाहे कि सोते समय हम पृथ्वी में बीज बो दें और सबेरे उठते ही एक अच्छा वृक्ष लगा देखें तो यह बात असंभव है। सब उन्नति मात्राओं से और मर्यादाबद्ध होती है।

प्रत्येक मनुष्य की डोर उसकी बाल्यावस्था से बंधी है। उसे वह तोड़ नहीं सकता। जितना वह बढ़ता है उतनी ही डोर बढ़ती चली जाती है। इसी प्रकार प्रत्येक काल और समय का संबन्ध दूसरे काल और समय से है। जो हो चुका हम उसके फल हैं, जो आवेगा वह हमसे ही उपजेगा। हम भूत और भविष्य दोनों के संगम हैं। हम गणित शास्त्र के उस विन्दु के समान हैं जो स्वयं खसकता हुआ एक वृत्त बना देता है। सारांश यह है कि सारी सृष्टि के उत्थान का नियम मर्यादा से बंधा है। उसी सिद्धान्त को देश और संसार के नित्य व्यवहारों में उदाहरण रूप से दिखलाना, उसके अनुसार कार्य पर तत्पर रहना, उसके विरुद्ध खींच तान को रोकना प्रत्येक देश भक्त का कर्तव्य है; और उसी कर्तव्य का पालन करना उन लोगों का धर्म है जो मनुष्यों के भावों की तरंगों पर अपने और विचार लेखनी के प्रभाव से शासन किया चाहते हैं।

पूर्व-दर्शन ।

[लेखक—श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त]

(१)

यद्यपि हता हत गात में कुछ सांस अब भी आ रही।
पर सोच पूर्वा पर दशा मुँह से निकल जाता यही ॥
जिसकी अलौकिक कीर्ति से उज्वल हुई सारी मही,
संसार का जो था मुकुट क्या हाय ! यह भारत वही ?

(२)

दुर्दैव-पीड़ित जो पुराने चिन्ह कुछ कुछ रह गये ।
देखो, न जाने भाव कितने व्यक्त करते हैं नये ॥
हा ! क्या कहें आरम्भ ही में रुंध रहा है जब गला !
भगवान क्या से क्या हुए हम कुछ ठिकाना है भला ?

(३)

हत भाग्य हिन्दू जाति ! तेरा पूर्व दर्शन है कहां ।
वह शील, शुद्धाचार, वैभव देख अब क्या है यहां ॥
बीतीं अनेक शताब्दियां पर हाय ! तू जागी नहीं ।
यह कुम्भकर्णी नींद तूने तनिक भी त्यागी नहीं ॥

(४)

अब भी समय है जागने का देख आंखें खोल के ।
सब जग जगाता है तुझे जग कर स्वयं जय बोलके ॥
निःशक्त यद्यपि हो चुकी है किन्तु तू न मरी अभी ।
अब भी पुनर्जीवन-प्रदायक साज हैं सम्मुख सभी ॥

(५)

कुछ काल में ये जीर्ण पहिले चिन्ह भी मिट जायंगे।
फिर खोजने से भी न हम सब मार्ग अपना पायंगे ॥
जातीय जीवन-दीप अब भी स्नेह पावेगा नहीं,
तो फिर अँधेरे में हमें कुछ हाथ आवेगा नहीं ॥

(६)

हम कौन थे क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी,
आओ, विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी ।
यद्यपि हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं,
'हम कौन थे' इस बोध को [illegible] है नहीं ॥

(७)

शुभ शान्तिमय शोभा जहां भव-बन्धनों को काटती,
मृग शावकों को पय पिलाकर सिंहिनी थी चाटती !
स्वर्गीय-भावों से भरे ऋषि होम करते जहां,
उन ऋषि गणों से ही हमारा था हुआ उद्भव वहां ॥

(८)

थे ज्यों समुन्नति के सुखद उत्तुंग शृंगों पर चढ़े,
त्योंही विशुद्ध विनीतता में हम सभी से थे बढ़े ।
भव-सिन्धु तरने के लिए आत्मावलम्बी धीर ज्यों,
परमार्थ साधन हेतु थे आतुर-परन्तु गंभीर त्यों ।

(९)

था गर्व नित्य निजत्व का परदम्भ से हम दूर थे,
थे धर्म भीरु परन्तु हम सब काल सच्चे शूर थे ।
सब लोक सुख हम भोगते थे बान्धवों के साथ में,
पर पारलौकिक-सिद्धि को रखते सदा थे हाथ में ॥

(१०)

यद्यपि सदा परमार्थ में ही स्वार्थ थे हम मानते,
पर कर्म से फल कामना करना न हम थे जानते ।
विख्यात जीवन-व्रत हमारा 'लोकहित' एकान्त था,
'आत्मा अमर है देह नश्वर' यह अटल सिद्धान्त था ॥

(११)

शैशव दशा से देश सारे जिस समय में व्याप्त थे,
निःशेष विषयों में तभी हम प्रौढता को प्राप्त थे ।
संसार को पहले हमीं ने ज्ञान-शिक्षा दान की,—
आचार की, व्यवहार की, व्यापार की, विज्ञान की ॥

(१२)

अनमोल आविष्कार यद्यपि हैं अनेकों कर चुके,
शिक्षा तथा निज सभ्यता की वृद्धि का दम भर चुके ।
पर छटपटाते अन्य देशी आज भी जिस शान्ति को,
थे हम कभी के पी चुके उसकी अलौकिक कान्ति को ॥

(१३)

हैं वायु-मण्डल में हमारे गीत अब भी गूंजते,
निर्झर, नदी, सागर, नगर, गिरि, वन सभी हैं कूजते ।
देखो, हमारा विश्व में कोई नहीं उपमान था,
[illegible] थे हम और भारत [illegible] लोक [illegible] था ॥

(१४)

क्या जान पड़ती यह कथा अब स्वप्न कीसी है नहीं,
हम हैं वहीं पर पूर्व दर्शन दृष्टि आते हैं कहीं ?
देखें कहीं पूर्वज हमारे स्वर्ग से आकर हमें,
रोवें कलेजा थाम कर इस वेश में पाकर हमें !

(१५)

हम कौन थे, क्या हो गये हैं जान लो इसका पता,
जो थे कभी गुरु है न उनमें शिष्य की भी योग्यता !
थे जो सभी से अग्रगामी आज पीछे भी नहीं,
है दीखती संसार में विपरीतता ऐसी कहीं ?

(१६)

अब भी सुधारेंगे न हम दुर्दैव-वश अपनी दशा,
तो नाम शेष हमें करेगा काल ले कर्कश कशा !
बस टिमटिमाता दीख पड़ता आज जीवन-दीप है।
हा दैव क्या रक्षा न होगी सर्व नाश समीप है॥

(१७)

कुछ पार है क्या क्या समय के उलट फेर न हो चुके,
हे भाइयो ! कुछ है सुना हम आज कितना रो चुके।
अब सो चुके सब खो चुके जागो, उठो उत्साह से,
निज मान मर्यादा विचारो दूर हो दुख दाह से॥

(१८)

निज पूर्वजों का वह अलौकिक सत्य शील निहार लो,
फिर ध्यान से अपनी दशा भी एक वार विचार लो।
जो आज अपने आप को यों भूल हम जाते नहीं,
तो यों कभी सन्ताप मूलक शूल हम पाते नहीं॥

(१९)

निज पूर्वजों के सदगुणों को यत्न से मन में धरो,
सब आत्म-परिभव-भाव तज निज रूप का चिन्तन करो
निज पूर्वजों के सदगुणों का गर्व जो रखती नहीं,
वह जाति जीवित जातियों में रह नहीं सकती कहीं॥

(२०)

हम हिन्दुओं के सामने आदर्श जैसे प्राप्त हैं,
संसार में किस-जाति को किस ठौर वैसे प्राप्त हैं ?
भवसिन्धु में निज पूर्वजों की रीति से ही हम तरें,
यदि हो सकें वैसे न हम तो अनुकरण तो भी करें॥

शृंगेरी मठ के वर्त्तमान शङ्कराचार्य्य।

मर्यादा की इस संख्या के साथ हम पाठकों को शृंगेरी मठ के वर्तमान जगद्गुरू श्रीशङ्कराचार्य श्री १०८ सच्चिदानन्द शिवाभिनव नरसिंह स्वामी का चित्र भेंट करते हैं। ये शृंगेरी मठ के संस्थापक आर्य्य जगद्गुरू श्री १०८ श्री शङ्कराचार्य के ३२ वें उत्तराधिकारी हैं। श्री शङ्कर स्वामी जिन्हों ने भारतवर्ष से बौद्ध और जैन धर्म को ध्वस्त कर सारे भारतवर्ष में वैदिक धर्म की विजय पताका उड़ाई ईसा की आठवीं शताब्दी में ट्रावनकोर (माइसोर राज्य) के कलाड़ी स्थान में उत्पन्न हुए थे। उसी कलाड़ी स्थान में श्री शङ्कर स्वामी की जन्म भूमि में अभी थोड़े दिन हुए शृंगेरी मठ के वर्तमान अधिपति श्री १०८ नरसिंह स्वामी जी ने अपने आदि गुरू श्री शङ्कराचार्य की एक सुन्दर प्रतिमा बड़ी धूम धाम से स्थापित की है।

इस मठ के अधिपतियों में बड़े बड़े योग्य विद्वान्, महात्मा और सन्यासी हो गए हैं। इस मठ के वर्त्तमान अधिपति श्री १०८ श्री नरसिंह स्वामी भी एक बड़े ही योग्य विद्वान्, सुशिक्षित, परम शैव और समय के अनुकूल धर्मकार्य करने वाले हैं। इस समय आपकी अवस्था कोई ५३ वर्ष की है। आप योग शास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं और स्वयं एक अच्छे योगी हैं जिसका परिचय तत्काल उन के दर्शन करने ही से लग जाता है। आप संस्कृत के कवि भी हैं। आप के प्रबन्ध से एक अच्छा संस्कृत विद्यालय स्थापित है जिसमें योग्य अध्यापकों द्वारा सब शास्त्रों की शिक्षा दी जाती है और दरिद्र विद्यार्थियों को अन्न वस्त्र भी मठ ही से दिया जाता है।
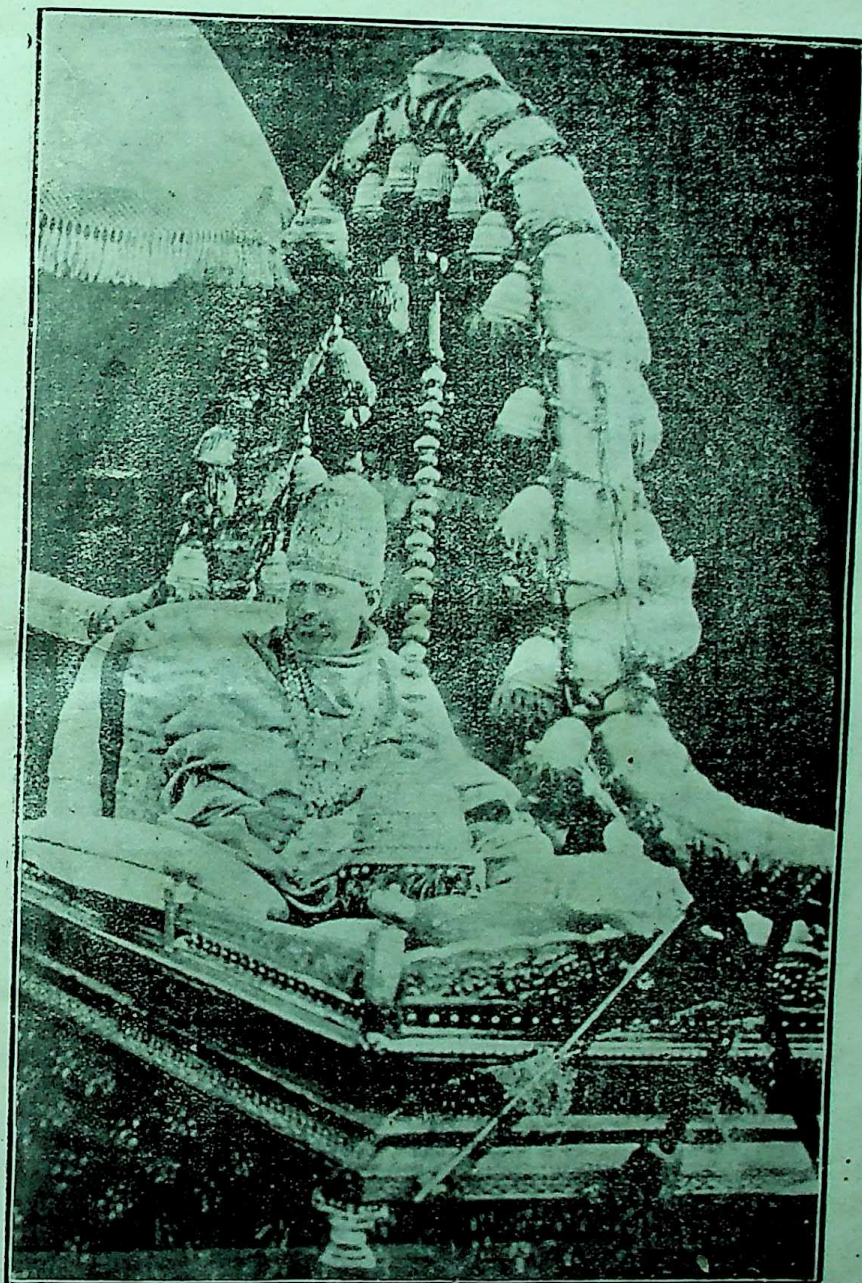
श्री १०८ परमहंस परिव्राजकाचार्य जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य्य स्वामी शृंगेरिमठ।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

माननी राधा ।

"डा॰ कुमार स्वामी की अनुग्रह से प्राप्त ।"

डा: कुमार स्वामीके अनुग्रहसे प्राप्त
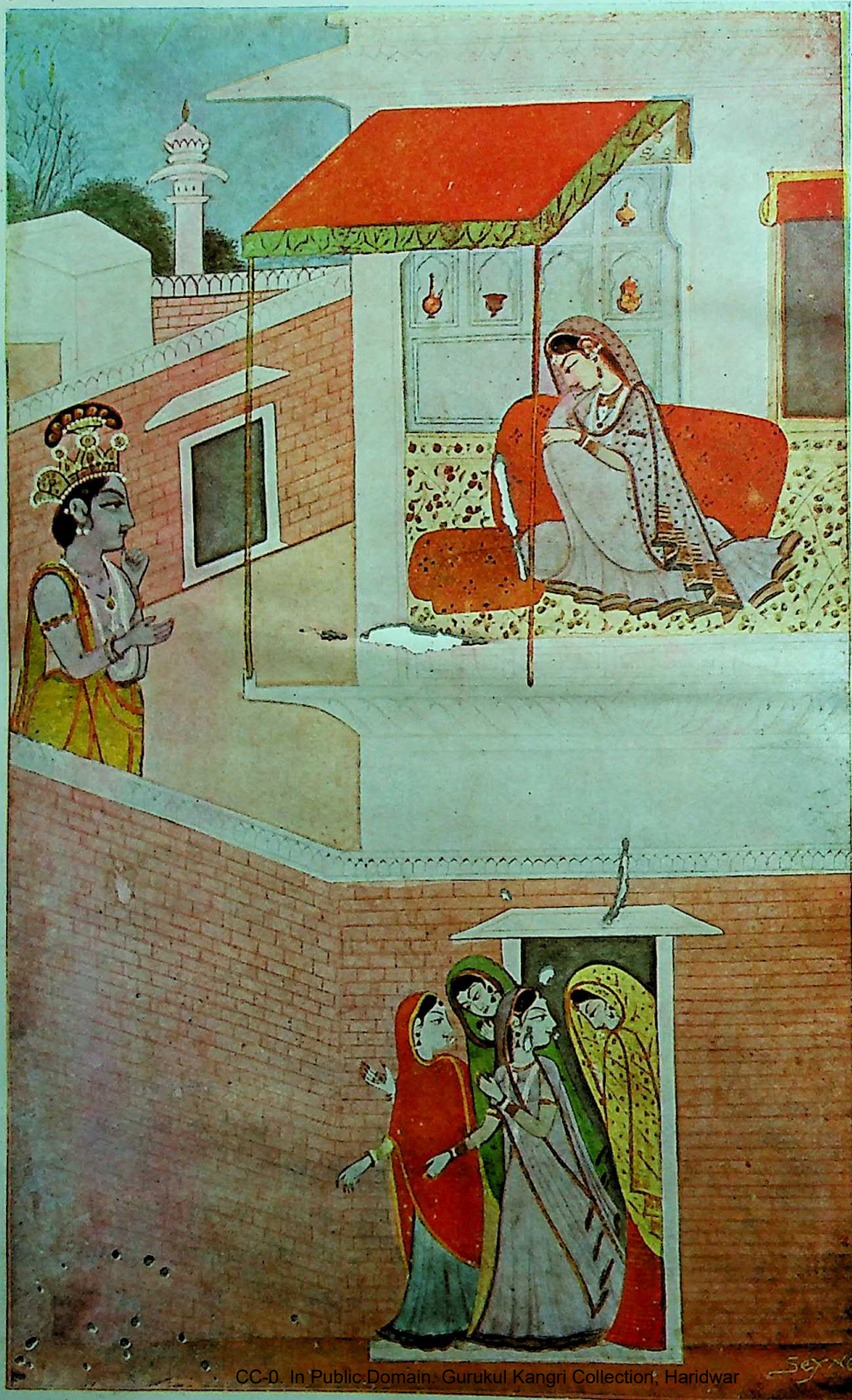
वंशीवट यमुना-निकट चटक-वेश गोपाल ।
मधुर वेणु वादन करत मोहै विश्व विशाल ।
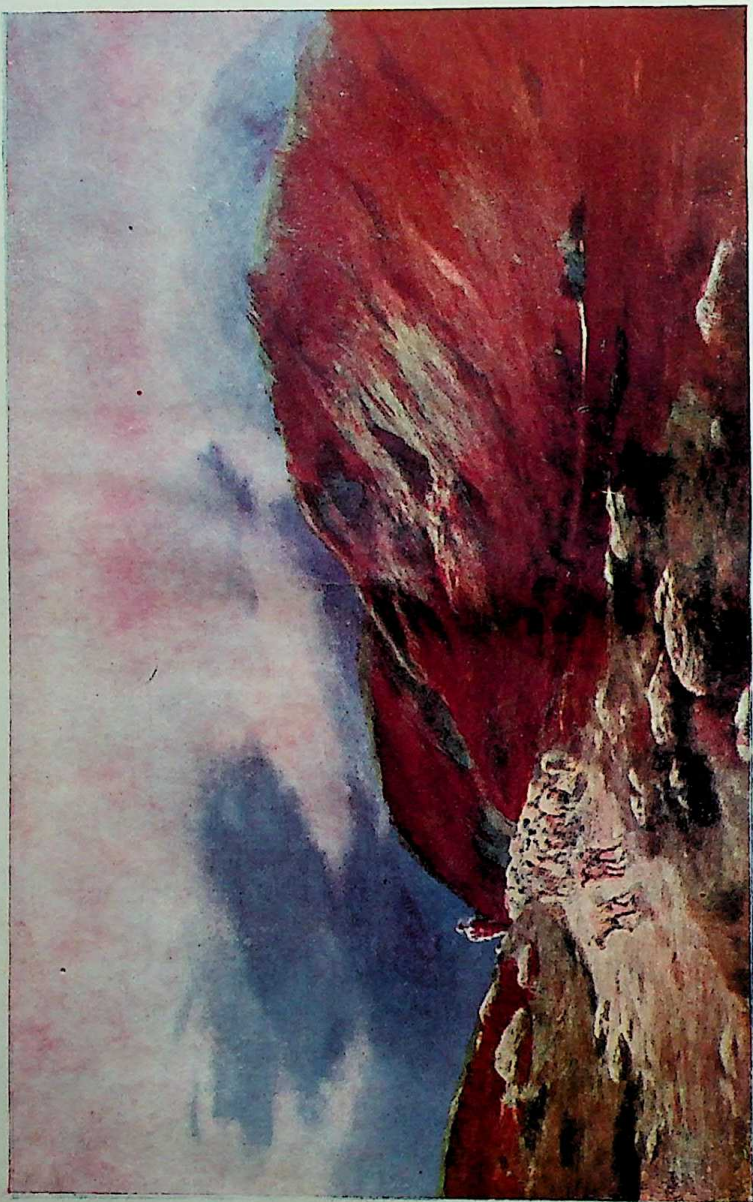
From मानसी
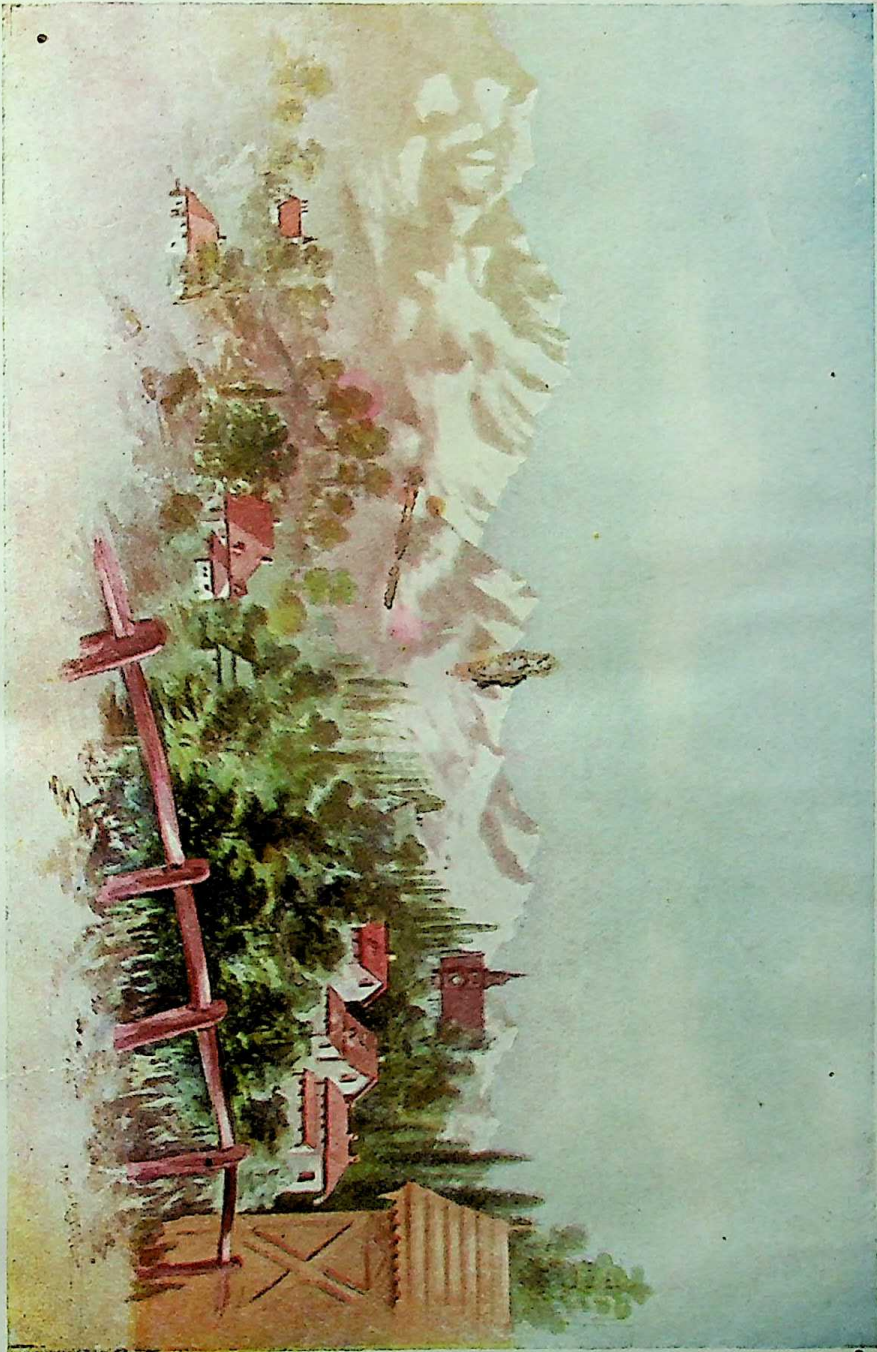
काञ्चन जङ्घा ।

Reproduced from Mr.P. C. Dobey's "Darjeeling."

हंसवाहिनी

पाकशाला में राधिका ।

डाक्टर कुमार स्वामी के अनुग्रह से प्राप्त ।

अभ्युदय प्रेस प्रयाग ।

(श्रीयुत नारायणप्रसाद के अङ्कित चित्र से)

ये भक्तमणि श्री सूर हैं, ये भक्तवत्सल श्याम हैं।
ये वृद्ध नेत्र-विहीन हैं, ये युवक दृग अभिराम हैं।
ये सूर-सागर के सुधांशु, कवि-कुल के शृंगार ये।
ये दीन आश्रयहीन हैं, हैं दीन के आश्रय ये।

डाः कुमार स्वामीके अनुग्रहसे प्राप्त

भीष्मपितामह ।

रिय रणास्तम म दा

नुक्रमिक

सचि सिक

वैशा

तक

भट्ट

प्रथ प्रथम खण्ड ।

न—वैशाख ।

सूचीपत्र।

सूचीपत्र।

लेखकों की वर्णानुक्रमिक सूची और उनके लेख।

सूचीपत्र ।

हवाई जहाज।

अभ्युदय प्रेस—प्रयाग।

प्रभात सूर्योदय ।

अंधकार कारागृह सीमा भई ध्वंस-तम ।
निद्रा बेड़ी टूट गिरगई बिना परिश्रम ॥
आलस्यादि निरीक्षकगण का पता नहीं है ।
नहिं तारागण अधिकारिन की कथा कही है ॥
अवधि निशाकरराज्य कि देखो आज वितिगई ।
गर्व भरी वह बात जानि न जाई किते गई ॥ १ ॥
बहन लगी मृदु पवन सुशीतल मन्द मनोहर ।
कबहुं प्रसूनन मधुर गंध लै झोकत तनपर ॥
चारो दिशा प्रसन्न भूमि कंचन सी सोहत ।
निर्मल सर बिच कमल खिलन हित रवि पथ जोहत ॥
कलरव पक्षिन के मधुर पूर्व लालिमा रजत है ।
दिनपति के आगमन की मनहु दुंदुभी बजत है ॥२॥
साधुसंत यह समय त्याग आलस्य शुद्ध मन ।
बैठ जान्हवी तट सुमिरत विभु ब्रह्म सनातन ॥
वैष्णव प्रभु की सगुण मूर्ति को मन्दिर भीतर ।
पुष्प धूप दीपादि सहित पूंजत यह अवसर ॥
छात्र वृन्द गुरु सहित कहुं सस्वर वेद उचारहीं ।
कहुं गायक जन यंत्र लै भैरव राग अलापहीं ॥ ३॥
कान्ति हीन यहि समय चन्द्र छवि लागत फीकी ।
रहत सदा ज्यों नृपति पराजित शरण वली की ॥
लज्जावश मुख ढकन देख आवत दिननायक ।
वैभव सकल बिहीन और ह्वै हीन सहायक ॥
अत्याचारि उलूक कुल चोर और गीदड़ प्रभृति ।
ज्यों उछिन्न जग भई त्यों नहिं देखात तिनकी समिति ४
बन उपवन चहुं ओर रम्य छाई हरियाली ।
विविध रंग के पुष्प सबन की छटा निराली ।
हरित घास पर ओस विन्दु की अति अद्भुत छवि ।
लगत मनोहर दृश्य परत तिन पर प्रकाश रवि ॥
जनु बिधु तारन रारि वश गिरी नखत लर टूटि कै ।
सुधा विंदु अथवा भरे सुरसरि ते पट छीन ह्वै ॥५॥
भेद लालिमा प्रकटत रवि अब तप्त स्वर्ण सम ।
सागर के ढिग लखहु जाय शोभा वह अनुपम ॥
पूर्व दिशा आकाश और लहरन महं अतिशय ।
देख परत चहुं ओर जहां देखहु प्रकाशमय ॥
मानहुं पुंज प्रकाश को फैल गयो है पिघल कर ।
ज्वलित कीर्ति वा पूर्व की दर्सावत निज रूपवर ॥६॥
क्रम क्रम से दिननाथ चढ़त ऊपर को आवत ।
सकल विश्व पर प्रखर किरण अपनी फैलावत ॥
यह विधि प्रकृति प्रमोद देख प्रकटित हृदयद्गत ।
ह्वै प्रसन्न सब जीवि अचंचल भए कार्य रत ॥
धन्य धन्य विश्वेश विभु माया रूप अनन्द घन ।
जो ऐसे कौतुक विविध नित्य देखावत सकल जन ॥

माधव शुक्ल ।

कवि गंग ।

(लेखक पं० गणेशबिहारी मिश्र, पं० श्यामबिहारी मिश्र एम० ए०, पं० शुकदेवबिहारी मिश्र बी० ए०)

इनका नाम भाषा साहित्य प्रेमियों में बहुत प्रसिद्ध है और इनकी कविता भी लोग बहुत पसन्द करते आये हैं परन्तु खेद का विषय है कि इनके चरित्र एवं कविता दोनों ऐसे लुप्तप्राय हो गये हैं कि कहीं पता तक नहीं लगता । इनकी जाति के विषय में भी सन्देह है । बहुत लोग इन्हें ब्राह्मण कहते हैं परन्तु कुछ लोगों का यह भी मत है कि ये भाट थे । जनश्रुतियों द्वारा प्रसिद्ध है कि ये महाशय बादशाही दरबारों में भी बड़ी निर्भयता से बात चीत करते थे । इससे हमें इनके ब्राह्मण होने की बात यथार्थ जान पड़ती है । इनकी मृत्यु के विषय में भी मतभेद है । बहुतों का मत है कि ये महाशय किसी बड़े आदमी की आज्ञा से हाथी द्वारा चिरवा डाले गये थे । वे लोग अपने कथन के प्रमाण में एक गंग का दोहा और दो अन्य छन्द पेश करते हैं । उनके मुख्यांश नीचे दिये जाते हैं ।

कबहुँ न भँडुहा रण चढ़े कबहुँ न बाजी बंब ।
सकळ सभाहि प्रणाम करि बिदा होत कवि गंग॥

* * *

गंग ऐसे गुनी को गयन्द सों चिराइये ॥

* * *

सब देवन को दरबार जुर्यो
तहँ पिंगळ छन्द बनाय कै गायो।

जब काहू ते अर्थ कह्यो न गयो
	तब नारद एक प्रसंग चलायो ।
मृतलोक में है नर एक गुनी
	कहि गंग को नाम सभा में बताओ ।
सुनि चाह भई परमेसुर को
	तब गंग को लेन गनेश पठायो ॥

वर्त्तमान समय के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुंशी देवीप्रसाद जी ने लिखा है कि गंग का अकबर या किसी अन्य मनुष्य की आज्ञा द्वारा चीरा जाना अशुद्ध है क्योंकि गंग के छन्द जहांगीर की प्रशंसा में भी मिलते हैं। इतिहास से उनके चीरे जाने का हाल "साबित नहीं होता" और गंग जी औरंगज़ेब के समय तक जीवित रहे हैं। इस बात के प्रमाण में वें निम्न लिखित छन्द लिखते हैं :–

तिमर लंग लई मोल चली बब्बर के हलके ।
साह हमाऊं साथ गई फिरि सहर बलक्के ॥
अकबर करी अजाच भात जहँगीर खवाये ।
साहजहां सुलतान पीठि को भारु छुड़ाये ॥
अवरंगजेब बखसीस किय अब आई कवि गंग घर।
उन छोड़ि दई उद्यान वन भ्रमी फिरत है स्यार डर॥

यह छन्द मुंशी जी ने दिसम्बर सन् १९०७ की सरस्वती में निकाला था। इसमें कई अशुद्धियां जान पड़ती हैं। 'हलके' का तुकान्त 'बलक्के' बुरा है। दूसरे हथिनी का 'अजाच' करना भी अयुक्त है। तीसरे जब हथिनी इतनी वृद्धा हो गई थी कि उससे रोट तक दांतों से काटा नहीं कटता था और इस कारण जहांगीर को उसे रोट के स्थान पर भात खिलाना पड़ा क्या तब भी वह बोझ लादने के योग्य बनी ही रही कि दूसरी पुस्त में शाहजहां उसकी पीठि का भार छोड़ाते ? चौथे गंग को जिस समय वह हथिनी मिली तब तो उन्होंने कुछ भी न कहा, परन्तु जब बुड्ढी होने के कारण जंगल में छोड़ना पड़ा तब यह भँडौवा बनाया। कवि जन ऐसे अनुचित दान पाकर तत्काल भँडौवा बनाते हैं, न कि घर जाकर वह सोच विचारानन्तर ऐसा करें। फिर गंग का सा दबंग कवि तो ऐसा अवश्य करता। पांचवे गंग अकबर के समय से मुग़लों के यहां सन्मानित रहे, तब ऐसे वृद्ध और मानी कवि को औरंगज़ेब इतना बड़ा बादशाह होकर ऐसी बृद्धा हस्तिनी कैसे देता ? यदि कहिये कि उसने मज़ाक़ में ऐसा किया होगा तो गंग इतने मज़ाक़िये होकर ऐसी मूर्खता क्यों करते कि उसके मज़ाक़ को सच समझ कर उसका भँडौवा बनाने लगते, यदि कहिए कि मज़ाक़ में भँडौवा भी बना होगा, तो हम कहेंगे कि इतने बड़े और संजीदः बादशाह से ऐसे बिकराल भँडौवा द्वारा कोई मज़ाक़ नहीं कर सकता और छठे बादशाह की चार पीढ़ियों का लोन खाकर एक वृद्ध मनुष्य हो गंग इतनी कृतघ्नता कभी न करते कि एक अनुचित व्यवहार पर भी बादशाह का भँडौवा बना देते। इन विचारों से हम को निश्चय है कि यह छन्द गंग का बनाया हुआ नहीं है। हमको यह छन्द आठ दस साल से कंठस्थ है और हमने मुंशी जी के इस लेख के छपने के प्रायः दो मास पूर्व सन् १९०७ के देवनागर के चतुर्थ अंक में यह छन्द प्रकाशित भी करा दिया था। उसका पाठ मुंशी जी के पाठ से बहुत भिन्न है और उस पाठ में उपरोक्त दूषण नहीं है। वह यों है :—

तिमिर लंग लइ मोल चली बाबर के हलके ।
रही हुमायूं संग गई अकबर के दल के ॥
जहांगीर जस लियो पीठि को भार हटायो ।
शाहिजहां करि न्याव ताहि पुनि माड़ चटायो ॥
बल रहित भई पौरुष थक्यो भगी फिरत बन स्यार डर।
औरंगजेब करिनी सोई लै दीन्ही कविराज कर ॥

इसमें गंग का नाम नहीं है। यह किसी अन्य कवि का बनाया है। फिर हमारे मत में गंग का औरंगज़ेब के समय तक जीवित रहना भी असंगत है। गंग ने अकबर के पालक बैरमखां के (जिसको

अकबर बैरम बाबा कहते थे) पुत्र अब्दुलरहीम ख़ानख़ाना की प्रशंसा में बहुत से छन्द बनाये हैं। इससे एवं जनश्रुतियों द्वारा समझ पड़ता है कि गंग अकबर की सभा में रहते थे। अब कोई नव-युवक कवि ख़ानख़ाना ऐसे गुणी और सत्कवि को कविता द्वारा ऐसा प्रसन्न तो कर ही नहीं सक्ता था कि उनसे अच्छा सन्मान पाता, सो इस ऊंचे दरजे पर पहुँचने के लिये गंग ऐसे साधारण श्रेणी के मनुष्य को बहुत काल लगा होगा। इससे निश्चय होता है कि गंग अवस्था में रहीम से बड़े नहीं तो उनके बराबर अवश्य रहे होंगे। रहीम का जन्म सम्वत् १६१० में हुआ था और अपनी मृत्यु के प्रथम वह योगी होकर निकल गये थे और उनकी मृत्यु सम्वत् १६८२ में हुई थी (रहीम विषयक लेख देखिये)। तब उसी समय सम्भवतः ७५ वर्ष के होकर गंग का सम्वत् १७१४ तक जीवित रहना जब कि औरंगजेब गद्दी पर बैठा बिल्कुल असम्भव जान पड़ता है। उपरोक्त तीन छन्दों की स्थिति और इस कथा के इतने प्रचार से हमैं जान पड़ता है कि गंग कवि किसी की कठोर आज्ञा से हाथी द्वारा अवश्य चीरे गये थे और वे हाथी के केवल झपेट में आकर नहीं मरे थे जैसा कि मुंशी जी अनुमान करते हैं। क्योंकि तीन में से दो छन्द इस अनुमान के प्रतिकूल हैं। हमें समझ पड़ता है कि गंग का समय सम्वत् १५६० से १६७० तक का होगा। फिर कोई उत्तम कवि किसी गप्पाष्टक का समर्थन करने को छन्द क्यों बनाता ?*

गंग की कविता ऐसी लुप्त प्राय हो गई है कि उनका एक भी ग्रन्थ नहीं मिलता और बहुत ढूंढने पर भी हमें उनके तीस पैंतीस छन्द से अधिक न मिल सके, यद्यपि वे बहुत उत्तम कवि थे और उन्होंने हजारों छन्द बनाये होंगे। दाससदृश महा कवि ने गंग को कवियों का सरदार माना है, यथा

"तुलसी गंग दुवौ भये सुकविन के सरदार"।

इस दोहे के लिखते समय दास ने हिन्दी के सभी प्रसिद्ध कवियों का नाम लिखा है यहां तक कि सूर, केशव, देव, और विहारी ऐसे धुरन्धर कवियों तक का नाम लिख कर भी केवल गंग और तुलसी की उपरोक्त स्तुति की। श्रीपति ऐसे महाकवि ने भी गंग का 'रही ना निसानी कहूं महि मैं गरद की' वाला पद उठाकर अपने शरद वर्णन के एक छन्द में यथातथ्य रख दिया है। इनका लोक में आदर इतना था कि सुना जाता है कि ये सदैव बादशाही में रहे और ख़ानख़ाना ने इन्हें एकही छन्द पर छत्तिस लाख रुपये दिये थे।

गंग की जो कुछ कविता मिलती है उससे विदित होता है कि यह बड़े ही धुरन्धर कवि थे। इन्होंने व्रज भाषा को प्रधान रक्खा है परन्तु इनके काव्य में "मिली भाषा विविध प्रकार।" इन्होंने एक छन्द फ़ारसी मिश्रित भाषा में कहा है जैसा कि इनके आश्रयदाता ख़ानख़ाना करते थे। इस कवि में उद्दण्डता की मात्रा विशेष है और एक स्थान पर इन्होंने अतिशयों की भी टांग तोड़ दी है। ये हास्य रस के आचार्य्य थे और इन्होंने युद्ध काव्य भी बहुत उत्तम किया है। इनकी समस्त कविता में ऐसा कुछ अनूठापन देख पड़ता है कि ठाकुर आदि दो चार कवियों को छोड़ कर किसी में भी उसका पता नहीं लगता। उपरोक्त कथनों के उदाहरणार्थ गंग के कुछ छन्द हम नीचे लिखते हैं। गंग को हम सेनापति की श्रेणी का कवि समझते हैं।

बैठी है सखिन संग पिय को गमन सुन्यो
सुख के समूह में वियोग आगि भरकी।

* द्वितीय छन्दांश से किसी सत्कवि का सच्चा क्रोध और आश्चर्य प्रकट होता है।

गंग कहै त्रिविधि सुगंध लै समीर बह्यो,
लागत ही ताके तन भई बिथा जर की।
प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पाहिं,
लागतही और गति भई मानसर की।
जलचर जरे औ सेंवार जरि छार भई
जल जरि गयो पंक सूख्यो भूमि दरकी॥

*   *   *

लच्छन तीच्छन भानु उयो,
चलौ रूख तकौ जहँ दुःख नसैरे।
देखो मयंक मयंक नहीं
यह वंस हमारे कलंक बसैरे।
है नलिनी मलिनी मुख मुद्रित,
कन्त के देख ते लाज गसैरे॥
शत्रु को भंग बिलोकि कै गंग,
जितै तितै कैरव वृन्द हसैरे॥

*   *   *

नवल नवाव खानखाना जू तिहारे त्रास,
भागे देसपति धुनि सुनत निसान की।
गंग कहै तिनहू की रानी रजधानी छोडि,
बन बिललानी सुधि भूलि खान पान की।
तेई मिलीं करिन हरिन मृग बानरन
तिनहू की भली भई रच्छा तहां प्रानकी।
सची जानी गजन भवानी जानी केहरिन
मृगन कलानिधि कपिन जानी जानकी॥

*   *   *

प्रबल प्रचंड बली बैरम के खानखाना
तेरी धाक दीपन दिसान दह दहकी।
कहैं कवि गंग तहां भारी सूरबीरन के
उमडि अखंड दल प्रलय पौन लहकी॥
मच्यो घमसान तहां तोप तीर बान चलैं,
मंडि बलवान किरवान कोपि गहकी॥
तुंड काटि, मुंड काटि जोसन जिलह काटि,
नीमा जामा जीन काटि, जिमीं आय ठहकी॥
झुकत कृपानें मयदान ज्यों उदोत भान
एकन ते एक मानों सुखमा जरद की।
कहैं कवि गंग तेरे बल की बयारि लागे,
फूटी गज घटा घन घटा ज्यों सरद की।
एते मान सोनित की नदियां उमडि चली,
रही ना निसानी कहूं महि मैं गरद की।
गौरी गह्यो गिरिपति, गनपति गह्यो गौरी,
गौरीपति गह्यो पूछ लपकि बरद की॥

परमात्म-पंचक।

[लेखक-पंडित नाथूराम शर्म्मा [शङ्कर]

दोहा।

शंकर स्वामी एक है, सेवक जीव अनेक।
वे अनेक हैं एक में, वह अनेक में एक॥ १॥
विश्व विलासी ब्रह्म का, विश्व रूप सब ठौर।
जो कुछ है सो है वही, और नहीं कुछ और॥२॥
हुआ नहीं होगा नहीं, जिसमें सैक निरेक।
जाना उस अद्वैत को, किसने बिना विवेक॥ ३॥
जाना जिस कूटस्थ का, ना दिन मध्य न अन्त।
ज्ञानी हैं उस ब्रह्म के, बिरले सन्त महन्त॥ ४॥
सर्व शक्ति सम्पन्न है, स्वगत सच्चिदानन्द।
भूले भेद अभेद में, मान रहे मति मन्द॥ ५॥

प्रपंच-पञ्चक।

दोहा।

माया मायिक ब्रह्म की, उमगी गुण विस्तार।
ठूंस ठोस को पोल में, पड़ी प्रपंच पसार॥ १॥
देश काल की कल्पना, ज्ञान किया बल पाय।
जागी जगदम्बा अजा, नाम रूप अपनाय॥ २॥
इन्द्र इन्द्रियों से हुआ, तन का मन का मेल।
भूत बने दो भांति के, हिल मिल खेलैं खेल॥ ३॥
साधन पाया जीवने, मन मतवाला दूत।
सारहीन संसार है, उसका ही अनुभूत॥ ४॥
भरजाते हैं स्वप्न में, जागत के सब ढंग।
पाय गाढ़ निद्रा रहे, चेतन एक असंग॥ ५॥

प्रेम-पञ्चक ।

दोहा ।

यद्यपि दोनों में रहे, जड़ता मूलक मोह ।
तो भी मेल मिलाप को, तजे न चुम्बक लोह ॥१॥

लो निर्जीव सजीव का, समझो प्रेम प्रसंग ।
प्यारे दीपक से मिले, प्राण विसार पतंग ॥२॥

तरु वल्ली फूलें फलें, आपस में लपटाय ।
माने महिमा प्रेम की, बढें प्रेम रस पाय ॥ ३ ॥

टेक टिकालो मेल की, पडे न छल की बान ।
वीरो वैर विसार दो, करो प्रेम रस पान ॥ ४ ॥

देखो दीपक मेल का, बुझे न बिना सनेह ।
अन्धकार अन्धेर को, धार न ले उरगेह ॥ ५ ॥

जुदी जुदी भाषाओं की कविता के जुदे २ ढंग ।

[लेखक—पण्डित बालकृष्णभट्ट सम्पादक हिन्दीप्रदीप]

यह सिद्ध है कि भाषा का ग्रन्थन प्राय: जल वायु के अनुकूल होता है—अर्थात् जल वायु का असर भाषा पर अधिक पड़ता है—वंग भाषा, द्रविड़, महाराष्ट्र और पंजाब की भाषाओं से अधिक कोमल और ललित क्यों है ? बंगाल जलप्राय अनूप देश है इसी लिये पर्वत स्थलियों के अभाव से उस प्रान्त की भाषा में कड़ापन कम पाया जाता है—हिंस्र जीव संकुल पर्वतस्थलियों के रहनेवाले निरन्तर आखेट में तत्पर रहते हैं जिस्से उनमें विशेष वीरत्व आजाता है—मूर्द्धन्यवर्ण टवर्ग और षकार का प्रयोग बंगभाषा में जो बहुत कम है उस्का कारण यही है कि उनकी बोली इन मूर्द्धन्य वर्णों के उच्चारण में अनुपयुक्त है—करुणा वात्सल्य और शृंगार रस का निर्वाह जैसा अच्छा बंगभाषा में बनता है वैसा वीर रस का नहीं—मराठी द्राविड़ी और पंजाबी में जैसा वीर रस का उद्गार आवैगा वैसा शृंगार करुणा तथा वात्सल्य का नहीं—सर्वथा जल शून्य रूखी अरब की मरु भूमि में पर्वतों के न होने से मूर्द्धन्य वर्ण अरबी भाषा में बहुत कम हैं किन्तु एक अद्भुत ऊंटों की सी बलबलाहट उस्में पाई जाती है—वही फारस की सम भूमि ने मृदुल और रसाल वायु और जल से सुशोभित हो फारसी में एक अनोखी मिठास पैदा कर दिया है—यूरोप की ऊंची नीची पृथ्वी एक छोर से दूसरे तक ऐल्प्स Alps इत्यादि पर्वतों से आक्रान्त है, अधिक ठंढे और बर्फ के कारण जिह्वा मानों तज्जनपद निवासियों की स्तब्ध सी हो गई है तालव्यवर्णों का उच्चारण सुष्ठुतया नहीं बनता—इसी से इंगलिश जर्मन फ्रेंच और इटैलियन भाषायें टवर्ग बाहुल्य से कर्णकटु और नीरस सी मालूम होती हैं और शृंगार रस का उद्गार इन भाषाओं में वैसा अच्छा नहीं होता जैसा फारसी उर्दू बंगला हिन्दी और संस्कृत में। इसी कारण प्रत्येक भाषाओं की कविता में एक २ निराला ढंग आता गया ।

अब दूसरी बात यह है कि प्रत्येक भाषा का काव्य भी इसी के अनुसार एक निराला ढंग लेता गया—उन २ देश की भाषाओं की कविता वहां के रहने वालों के हृद्गत भाव उनके मन की झुकावट या रुचि का बहुत अच्छा निदर्शन है—जैसा फारसी और उर्दू के काव्यों में आशिक माशूकों के नाज़ नखरे और हूर और ग़िलमानों के झगड़े भरे हैं दूसरे उनके शृंगारिक वर्णन का आधार स्त्री न हो पुरुष माना गया है—बात २ में आशिक माशूक पर अपनी जान नेउछावर करने को तैयार रहता है—जिस्से सिद्ध है कि फारस के इन मुसल्मानों का मन कहां तक विकृत है और ये कितने भोगलिप्सू और मोद प्रमोद प्रिय होते हैं—भारत भूमि में बहुत सी सामाजिक कुरीतियें बुराइयां इन्हीं लोगों के पदार्पण

का परिणाम है—परलोकभीरु और धर्म के लिये अपना सर्वस्व खोये हुये भोंदूदास हिन्दुओं को शान्तिरस जैसा भाता है वैसा दूसरा नहीं—इसीसे संस्कृत और हिन्दी की कविता शान्तिरस, भक्ति की भावना, सेव्य प्रभु में अनुराग और दास्य भाव आदि की कल्पना से भरी है—शृंगार वीर करुणा आदि उसी शान्तरस के अंगी बन कर दिखाये गये हैं—अगरेज़ी कविता का आधार, मनुष्य जाति की स्थिति का विचार Philosophy of human life वन तथा नदी पर्वत आदि का प्राकृतिक वर्णन और स्वच्छन्द जीवन है—भांति २ के नूतन विज्ञापनों का आविष्कार वाहरी भौतिक व्यापारों Phenomen के आलोचन से अध्यात्मिक तत्वों का निरूपण काव्य कर्ताओं के प्रतिभा का विषय है—

काव्य को सर्वप्रिय और सबों की रुचि के अनुकूल करने में प्राचीन काल और आज के समय में बड़ा अन्तर हो गया है—पहिले निरी अत्युक्ति और मुबालगों में, कोई लोकोत्तर मनुष्य शक्ति वाह्य Superhuman किसी बात के वर्णन को काव्य कहते थे; जिसमें यह सब न हो वह काव्य नहीं—इसीसे धर्मशास्त्रों में कहीं पर लिख दिया गया है "काव्यालापांश्च वर्जयेत्" वाल्मीकि व्यास तथा पैशाची भाषा में लक्षश्लोक, बृहत्कथा सरित्सागर के रचयिता गुणाढ्य कवि तक यही चाल रही। कालिदास के समय से यह थोड़ा बदलने लगी—उस समय से अलंकार गौड़ी पांचाली वैदर्भी रीतियां, रस निरूपण और नायक नायिका भेद आदि की सृष्टि काव्यों में की जाने लगी। ऋग्वेद में उषा का वर्णन भी अत्यन्त अलंकारिक है—ऐसे ही और २ भाषाओं में भी काव्य की यही गति थी—यूनानी भाषा में इलियड लाटिनी में वरजिवस फारसी में सिकन्दरनामा और शाहनामा भी इसी ढंग का है—

इन सब के होते भी काव्यों में कवि का Sentiment मनोवेग कुछ न कुछ हुई है फारसी ऐसी अपवित्र पर मधुर भाषा में भी मौलाना रूम ऐसी दो एक पुस्तक हैं पर उर्दू निगोड़ी में तो सो भी नहीं है।

"झांकते हैं वो डुपट्टा तान कर
शरबते दीदार देंगे छान कर"
"झांकते थे वो हमे जिस रोज़ने दीवार से—
वाय किसमत हो उसी रोज़न मे घर ज़ंबूर का—

इत्यादि इसमें क्या कविता के गुण या कवि का मनोवेग निकला"—इत्यादि। कवियों के जुदे २ ढंग यहां पर हमने कुछ दिखलाये हैं अधिक फिर कभी—

—※—

भारत-स्तुति।

लेखक—पाण्डेय लोचनप्रसाद।

(१)

तू जन्म भूमि है, भारत भूमि हमारी।
हैं तेरी ही सन्तान सकल हम प्यारी॥
तू पुण्य भूमि है, सुरनर मुनि वन्दित है
तू कर्म भूमि है, मुक्ति-सुधा सिंचित है॥
तू धर्म-भूमि है, दया-दान-दीक्षित है।
तू आर्य भूमि है, सभ्य, शिष्ट शिक्षित है॥
गुरुता तेरी है सब देशों से भारी।
जय जय जय भारत भूमि हमारी प्यारी॥

(२)

मुनिगण मन रंजन पुण्य तपोवन तू है!
विष-विषय-विभंजन पावन अंजन तू है!
नय-नीति-निपुणता-निधि नव नागर तू है!
स्वातन्त्र्य, शान्ति, सुख-शासन-सागर तू है!
साहित्य-शिल्प-समुदय शिक्षा सर तू है!
शुचिश्विष्टि-सार सौरभ-शोभाकर तू है!
गुरुता तेरी है सब देशों से भारी।
जय जय जय भारत भूमि हमारी प्यारी॥

(३)

सजला सफला शुचि शष्य-श्यामला तू है।
अबला सबला सद्धर्म-निश्चला तू है॥
तू अन्नपूर्णा अन्न शाक का घर है।
तू स्वर्ण रत्न मुक्ता मणि का आकर है॥

तू आलय है हे अम्ब ! भेषजामृतका ।
तू निर्भर है सुमधुर शुचि गोरस घृतका ॥
गुरुता तेरी है सब देशों से भारी ।
जय जय जय भारत भूमि हमारी प्यारी ॥

(४)

तू देव दुर्लभा वीर जननि विख्याता ।
तू असुर दमन को शमन तुल्य है माता ॥
हैं मन्त्र-सिद्ध मुनि साधु तपस्वी तुझ में ।
हैं सबल सुकवि विद्वान यशस्वी तुझ में ।
हैं भीम तुल्य बल वीर धीर नर तुझ में ।
हैं अर्जुन सम विख्यात धनुर्धर तुझ में ॥
गुरुता तेरी है सब देशों से भारी ।
जय जय जय भारत भूमि हमारी प्यारी ॥

(५)

तेरे गुण गण भू कण सम अगणित जननी !
है शिष्य रूप तेरे यह सारी अवनी ॥
हम सुखी होयँगे माता ! तेरे सुख में ।
हम रुदन करेंगे दुख से तेरे दुख में ॥
तेरे पद-पूजन हित हम तन मन देंगे ।
हम साभिमान तेरे गुण गान करेंगे ॥
गुरुता तेरी है सब देशों से भारी ।
जय जय जय भारत भूमि हमारी प्यारी ॥

—*—

प्रत्यागमन ।

(एक जापानी कहानी)

(१)

नितान्त बाल्यावस्था से ही उटी और नेगाओ में बहुत प्रेम था । दोनों एक डाल के दो फूल प्रतीत होते थे, वे दोनों एक साथ रहते, एक साथ खेलते और एक साथ घूमा करते थे ।

उटी और नेगाओ के पिताओं में भी बड़ी मित्रता थी । उन लोगों ने यह निश्चय कर लिया था इन दोनों के बड़े होने पर इनका विवाह कर दिया जाय जिसमें इनमें कभी विछोह न हो ।

किन्तु कहावत है "मेरे मन कुछ और है कर्ता के कुछ और" उन लोगों की भी मन की बात मन ही में रह गई । जिस समय उटी की अवस्था १५ वर्ष की थी उस समय दैवयोग से उटी ज्वरग्रस्त हो गई, उसके जीवन से भी लोग निराश हो गए । उस समय विवाह की चर्चा एक दम बन्द होगई ।

जिस समय उटी ने समझा कि उसके इस संसार के खेल शेष होने में अब विलम्ब नहीं है उस समय उसने नेगाओ को इस हेतु बुलवा भेजा कि उससे जन्म भर के लिए विदा ले ले ।

नेगाओ भी उटी के बिछौने के पास आकर बैठ गया। उटी उस समय बोली "नेगाओ हम लोग बहुत दिनों तक साथ खेले हैं—अब विछोह होगा—इस लिये विदा मांगती हूँ" ।

इस बात को सुन कर नेगाओ को बड़ा कष्ट हुआ । सत्य ही अब उटी को विदा देना होगा इस बात को उसका चित्त किसी प्रकार नहीं मानता था—उसने उसकी बात को बीच ही में काट कर कहा "नहीं, उटी, नहीं—ऐसी बात मुख से न निकालो—तुम अवश्य अच्छी होगी—शीघ्र ही उठ कर चलो फिरोगी" ।

उटी ने कहा "अब हमारे जीने से लाभ नहीं है—हमारा मरना ही अच्छा है । जिस रोग में मैं भुगत रही हूँ उससे जै दिन मैं बची रहूंगी उतनी ही मुझे भी पीड़ा होगी और सब लोगों को कष्ट होगा । यदि काया क्लेश से किसी प्रकार जीना भी हुआ तो उससे क्या लाभ होगा । तुम्हारी गृहणी हो कर भी अब यह शरीर तो तुम्हारी सेवा न कर सकैगा वरंच तुम्ही को हमारी सेवा करनी पड़ैगी । इन सब बातों से हमारा मरना ही अच्छा है । मेरे जीवन का अन्त होता है इससे मुझे कोई क्लेश नहीं है—तुम्हारे हृदय पर शिर रख कर मरने में जो सुख है वह जीने में कहीं नहीं मिलैगा ।

नेगाश्रो भी अपने अश्रु धारा प्रवाह को रोक न सका। वह बालकों की नाई रोने लगा। उटी ने कहा "रोश्रो मत, नेगाओ, हमारे लिये दुःख न करो। तुम्हे छोड़ कर जाती हूँ, इससे भी हमे दुःख क्यों नहीं होता यह जानते हो? एक आशा हमारी हमे ढ़ाढस दे रही है। उसी बात को कहने के लिये तुम्हें बुलाया है। हमारे मन के भीतर से न जानें कौन कहता है कि हम लोगों का फिर से मिलन होगा"।

मुख से मानो वाक्य को खीच कर नेगाओ ने भी कहा "निश्चय-निश्चय, वह अनन्त मिलन जिसमें विछोह होती ही नहीं-वह शान्तिमय पुगयधाम"।

उटी ने कहा "स्थिर होकर बात सुनो। मैं स्वर्ग में मिलने की बात नहीं कहती-इसी मर्त्य-लोक में हम लोगों का मिलन होगा"।

नेगाश्रो अवाक रह गया।

उटी बोली "तुम्हे विश्वास नहीं होता? किन्तु मैं कहे जाती हूं यह होगा। जान रक्खो मरणकाल की कामना निष्फल नहीं जाती"।

नेगाओ उटी के मुख की ओर देखने लगा। "यह क्या प्रलाप कर रही है"? किन्तु यह प्रलापसा तो नहीं दीखता। उसका विश्वास मानो उसके मुख पर दीप्त हो रहा था। उसको देखकर नेगाश्रो का भी सन्देह जाता रहा।

उटी ने कहा-प्रियतम-अपेक्षा कर सकोगे? उसी मिलने के दिन तक!

नेगाओ ने कहा-"उटी युग युगान्तरों तक तुम्हारी प्रतिक्षा करता रहूंगा।

उटी का मळिन मुख आनन्द श्री से दीप्त हो उठा। नेगाश्रो ने भी उसे देख कर कहा उटी क्या तुम नहीं जानतीं हम ळोगों का संबन्ध एकही जन्म का नहीं है। हम ळोगों का विछोह और मिळन जन्म जन्म में होता आया है-कभी तुम हमारी प्रतिक्षा करती रही हो कभी हम तुम्हारी अपेक्षा करते रहे और फिर दोनों जन मिले।

उटी ने कहा "नहीं, तुम्हारे इसी जीवन में मैं तुम से मिलूंगी-मैं फिर जन्म लेकर तुम्हारी हूंगी इसे तुम निश्चय जानो।"

नेगाओ ने कहा "प्रियतमे! तुम फिर जन्म ळोगी किन्तु तुम इस देह से तो न आ सकोगी, तुम्हारी यह स्मृति भी न रहैगी तब किस प्रकार हम ळोग एक दूसरे को पहिचानेंगे।

उटी ने तिरस्कार सूचित शब्दों से कहा "नेगाश्रों! क्या हम ळोगों का संबन्ध देह ही से है, क्या एक स्मृत ही हम ळोगों का बन्धन है?

(२)

उटी अब इस संसार में नहीं है। नेगाश्रो को भी अब जान पड़ा कि वह उटी से कितना प्रेम रखता था। अब वह दिन में सैकड़ों बार उटी के अभाव को भीतर ही भीतर अनुभव करता है। उसके हृदय में एक ज्वाळा दधकती रहती है। उटी की आशा वाणी ही उसका एक मात्र अवळंब है।

उटी की एक तसवीर खिचवाकर वह उसकी पूजा करता है और दिन रैन उसी के चिन्तन में मग्न रहता है।

नेगाश्रो अपेक्षा तो अवश्य कर रहा था किन्तु रह २ कर सन्देह उसकी आशा पर कभी २ आघात पहुंचाता किन्तु ऐसे समय पर उटी की मूर्ति उसके सामने उपस्थित हो जाती और उसकी वही आशा जनकवाणी वायु के झकोरों के साथ उसे सुनाई देती। नेगाश्रो अपने पिता भ्राता का एकही पुत्र होने के कारण बहुत दिन अविवाहित न रहने पाया। अनिच्छा होते भी उसे विवाह करना ही पड़ा।

नेगाश्रो ने भी यह कहकर मनको बोधन दिया कि यह विवाह नितान्त बाहर की वस्तु है-इस से आन्तरिक भाव से कुछ सम्पर्क नहीं-वह तो उटी के लिये पवित्र ही है। उस समय से वह पहिले से भी अधिक उटी की अन्तिम वाणी को स्मरण करने लगा। किन्तु थोड़े ही समय में स्त्री की जीवित पुतळी ने उटी के अन्तिमकाल की

डा: कुमार स्वामीके अनुग्रहसे प्राप्त

फाग लीला

बाबा कबीरदास ।

भारत हितैषी अंगरेज़ ।

मिस्टर फ्रेड मेकार्नेस ।
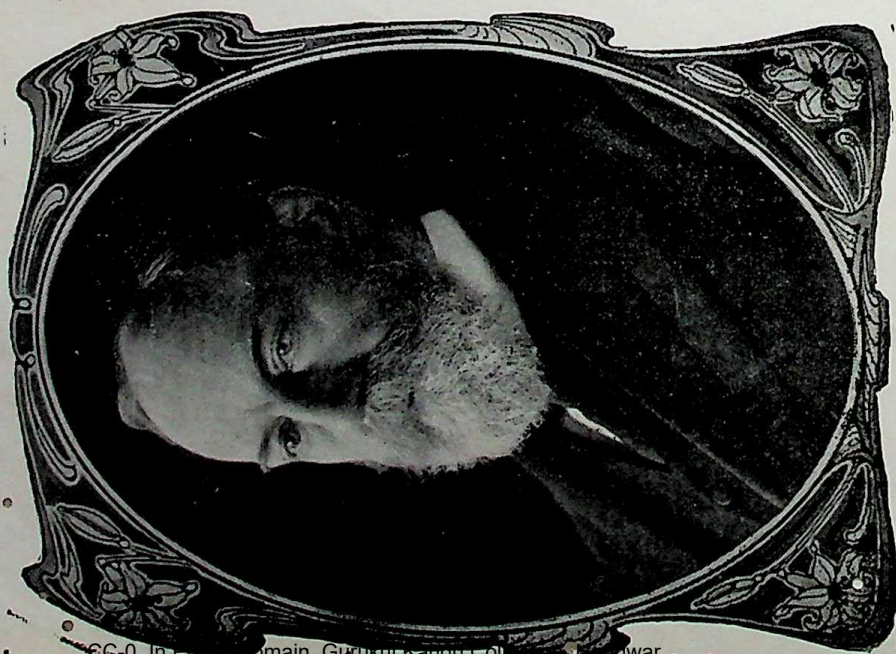
सर चार्ल्स डिल्क ।

अभ्युदय प्रेस-प्रयाग

भारत के तीन पूजनीय हितैषी।

मि० ह्यूम, श्रीमान दादाभई नारोजी, सर विलियम वेडरबर्न।

भारत हितैषी अंगरेज़ ।

सर विलियम वेडरवर्न ।
कांग्रेस के सभापति ।

रेमज़े मेकडानल्ड ।
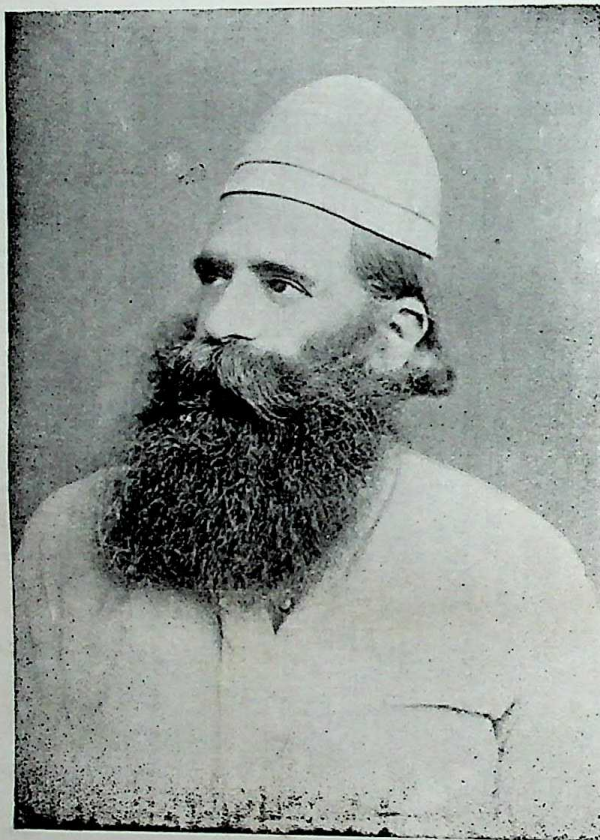
अभ्युदय प्रेस-प्रयाग ॥

श्रीयुत् पण्डित अयोध्यानाथ ।

अभ्युदय प्रेस—प्रयाग ।

प्रदर्शिनी का एक कोने से चित्र।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

बातों को भुला दिया और साक्षात मूर्ति ने उटी की मूर्ति का भी विस्मरण करा दिया।

(३)

कई वर्ष पीछे देश में महामारी का प्रादुर्भाव हुआ। उसी श्रोत में देश के असंख्य लोगों के साथ ही साथ नेगाओ के माता, पिता, स्त्री सब का स्वर्गवास हुआ। जिस घर में प्रत्येक वस्तु के साथ आत्मीय स्वजनों की स्मृत जाग उठती थी वहां रहना नेगाओ को असह्य हो गया। वह देश भ्रमण के लिए घर से बाहर निकला और एक नगर में जाकर वहां की सराय में ठहरा। एक दिन सबेरे उसी सराय की दासी एक प्याला चाह ले कर उसके पास आई। नेगाओ उस समय कुछ सोच रहा था। नित्य प्रति वही बालिका चाह दे जाती थी। किन्तु नेगाओ कभी उसकी ओर न देखता था। आज भी वैसे ही अन्य मन से प्याला लेते समय हठात् उसकी दृष्टि बालिका के मुख पर गई। नेगाओ सहसा ठठक गया—हाथ का प्याला भन २ शब्द करके पृथ्वी पर गिर पड़ा।

आज नेगाओ को बहुत दिन की भूली बात याद आगई। उटी की मूर्ति उस समय छाया की भाँति उसके चित्त में दिखाई दी। "ओह! इसके मुख में कैसा सादृश्य है,-कैसा भाव है, जिसे सैकड़ों बार देखा है वही आज इस बालिका के मुख में स्पष्ट रूप से विराजमान है।" नेगाओ ने पागल की भाँति दौड़कर बालिका का हाथ पकड़ लिया और पूछा "तुम कौन हो"?

बालिका घबड़ा गई। उसने नेगाओ की ओर देखा। नेगाओ की तीक्ष्ण दृष्टि उस समय उसके अन्तर को भेद रही थी। बालिका उसी घबड़ाई हुई अवस्था में बोल उठी "मैं उटी हूँ"। और फिर मूर्च्छित हो गिर पड़ी।

* * * * *

नेगाओ ने उसी बालिका से विवाह कर लिया है। अब नाम पूछने पर वह अपना नाम उटी कभी नहीं बताती। उटी के नाम से उसने अपना परिचय क्यों दिया था यह भी वह नहीं कह सकती और न वह घटना ही उसे याद है।

किन्तु नेगाओ जानता है कि यही बालिका उसकी उटी है। (प्रवासी)

—※—

काव्य विनोद।

लेखक—[रायदेवी प्रसाद जी (पूर्ण)]

"गाई है"।

१—अद्भुत गान।

जगत के नाते लै तिनूका सम टोरि डारे,
कौन पति कौन पूत काको कौन भाई है।
राग बाग संपत विहार व्यवहार छूटे,
कहा गृह कारज की चरचा चलाई है॥
सोई लसि रह्यो एक बांकी छबि वारो हिये,
पूरन ह्वै गई और झांकी अनभाई है।
जब ते गोपाल जू ने गीता की सुबांसुरी मैं,
ब्रह्म अनुराग की रसीली तान गाई है॥

२—मिथ्याध्यवसित।

गगन बगीचे बीच बेंत के चरत फूल,
मृग जल पीके लेत प्यास को बुझाई है।
कल्पनापुरी को ग्वाल गूंगो अरु पंगु एक,
डोलैं संग बोलै बोल करत हँकाई है।
हवा के घड़े में दूध दुहि कै अखंड जाको,
भीत वारे चित्रन को देत सब प्याई है।
भावीपुर मांझ देखौ प्रात सों लगाय सांझ,
भांति भांति बछड़े वियाति बांझ गाई है॥

३—अन्वय व्यतिरेक।

सोई है निकुंज सोई पुंज चारु फूलन के,
सोई सर कुंड सोई नीर विमलाई है।
सोई गोप गोपी सोइ पूरन बिलास हास,
सोई ब्रज भूमि सोई समय सुघराई है॥
सब को है सार सोई और है नहीं सो कछु,
भूमि है न बास है न लोग न लुगाई है।
नीर है न कुंड है न कुंज है न पुष्प पुंज,
ग्वाल है न बाल है न बैल है न गाई है॥

४—ब्रज की महिमा।

देखि कै कन्हाई जू को जात सकुचाई काम,
राधा को निहारि रति जात सरमाई है।
नन्द जू के वैभव ते जात है सिहाई इन्द्र,
पग जसुदा के जात संपदा लुभाई है॥
गोरस में भावना पियूष की समाई जात,
ब्रज में कवाई जात विश्व सुघराई है।
हारी देव जाई जात गोपी की निकाई पेखि,
गौवन पै वारी जात कामधेनु गाई है।

५—गो गोपाल की गृहयात्रा।

बांसुरी बजावत लुभावत चराचर को,
सांझ समै कानन ते आवत कन्हाई है।
भावत सखन भीर भारी संग मोद भरी,
बिबिध विनोद को सुखद धूम छाई है॥
बच्छन समेत धेनु सोहै रंग रंगन की,
अंगन की जिनके अनूप सुघराई है।
कोऊ गाय कारी कोऊ धूमरी अबीरी कोऊ,
ऊजरी है कोऊ कोऊ लाल रंग गाई है॥

६—छेकापन्हुति (कह मुकरी)।

झूमै भरी पूरी घूमै रूरी डौल डौल वारो,
प्यारी दूध वारो चाल सूधी सुखदाई है।
भोरी भोरी सरल चितौन कजरारे नैन,
पूरन गोपाल की परम प्रीति भाई है॥
सगरे दिवस बसे बन में बिहार करे,
बंसी की रसीली तान रहत उनाई है।
गोरस चखावै सदा भावै नर नारिन के,
कोऊ गोप बाल ? "नहीं, गोकुल की गाई है!"

—:०:—

महाराजा मुञ्ज।*

[लेखक—पण्डित बदरीनाथ शर्म्मा वैद्य-मिर्ज़ापुर]

सन् ११०० ई० के प्रथम भाग में मालवा प्रदेश की राजधानी धारा नगरी में परमार वंशीय महाराजा श्रीहर्षदेव राज्य करते थे। इनके एक भी सन्तान नहीं था, इससे ये बड़े ही कष्ट से अपना जीवन बिता रहे थे। क्योंकि सब विभव रहने पर भी एक पुत्र के विना संसार असार और विभव फीका मालुम होता है। एक दिन उन्होंने शिकार खेलते २ 'शर बन' में उसी समय उत्पन्न हुए एक अत्यन्त सुन्दर बालक को देखा। देखते ही इनका हृदय प्रेम से गद्गद हो गया, और बिना विचारे ही ये उस सुन्दर बालक को गोद में लेकर अपनी राजधानी को लौट आए; और उस बालक को चुपचाप अपनी रानी की गोद में दे दिया। वह बालक 'शर बन' में मिला था, इससे महाराज ने उसका नाम मुञ्ज रक्खा। यही हमारे चरित के नायक हैं। इसके कुछ दिन बाद महाराज को सिन्धुल (सिन्धुराज) नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

एक समय श्रीहर्षदेव ने अपना मृत्युकाल पास समझ कर सर्वगुण सम्पन्न मुञ्जराज को राज्य देने की इच्छा की। आधीरात के समय मुञ्जराज के राजभवन में जाकर उनसे उनका सच्चा जन्मवृत्तान्त कहा। फिर आँखों में आँसू भर कर मुञ्जराज से कहा—"पुत्र ! तुझे मैंने अपने पुत्र के समान लालन पालन किया है, तेरे नम्र व्यवहार उत्तम आचार विचार तथा उत्तम गुणों से प्रसन्न हो कर मैं तुझे अपना राज्य देना चाहता हूँ, किन्तु मेरे औरस पुत्र और अपने अनुज भाई सिन्धुल के साथ सदा प्रीति पूर्ण व्यवहार करना, उसे किसी तरह का दुःख मत देना, मैं तेरे ही हाथ में उस पुत्ररत्न रूपी धरोहर को सौंपकर निश्चिन्त हो, इस असार संसार को छोड़ता हूँ, देखना मेरी बात अपने रक्षक-पिता की बात को सदा स्मरण रखना, भूलना मत" यह उपदेश देकर कुछ दिन के बाद मुञ्जराज को राज्य सिंहासन पर बैठाकर महाराजा श्रीहर्षदेव स्वर्गवासी हुए। मुञ्जराज की स्त्री ने अपने पति की जन्मकथा को चुपचाप सुन लिया था, इसी से मुञ्जराज ने

*'प्रबन्धचिन्तामणि' और 'भोजप्रबन्ध' के आधार पर।

अपने जन्म वृत्तान्त के प्रगट होने के भय से अपनी स्त्री को मार डाला।

अनन्तर महाराजा मुञ्जराज समस्त विद्वज्जन-चक्रवर्ती रुद्रादित्य महामन्त्री की सलाह से राज्य करने लगे। ये बड़े ही लम्पट तथा क्रोधी थे। एक दिन किसी साधारण आज्ञा के न मानने के कारण सिन्धुल को अपने राज्य से निकलवा दिया! राज्य-मद से मत्त होकर अपने रक्षक पिता की आज्ञा का उसने अनादर किया! अपने देश से निर्वासित होकर राजकुमार सिन्धुल ने गुजरात प्रान्त में जा कर कई वर्ष व्यतीत किए, किन्तु परदेश में अधिक दिन उनका मन न लगा। इसीसे वे अपने देश में चुपचाप चले आए और एक छोटे से गाँव में रहने लगे। मुञ्जराज ने इस सम्वाद को सुन लिया, फिर क्या था, क्रोध से उन्मत्त हो कर उनने राजकुमार सिन्धुल के दोनों नेत्रों को निकलवा कर उन्हें एक काठ के पिंजड़े में बन्द करवा दिया। सिन्धुल की स्त्री के बार बार बिनती करने पर कुछ दिन बाद मुञ्ज-राज ने पिंजड़े से अपने भाई को निकलवा कर एक घर में रख कर पहरा बैठा दिया। इसी समय अन्धे सिन्धुल के भोज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

अनेक सुन्दर लक्षणों से युक्त भोज कुमार शुक्ल पक्ष द्वितीया के चन्द्रमा की भाँति दिन दिन बढ़ने लगा। इसने थोड़ी ही अवस्था में अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया, और राजनीति में भी अच्छी योग्यता लाभ की। एक दिन राजसभा में एक विद्वान् ज्योतिषी आए। मुञ्जराज ने अपने जन्म दिन से लेकर उस दिन तक का हाल पूछा। उस त्रिकालज्ञ ज्योतिषी ने उनके जीवन की अनेक घटनाओं का वर्णन किया। जिसे सुन कर राजा बड़े ही प्रसन्न हुए। और अपने रत्न जटित सिंहा-सन पर बैठा कर उनकी उनने पूजा की। इसी समय एक मन्त्री ने कुमार भोज की जन्मपत्री दिख-लाने के लिए महाराज से प्रार्थना की। महाराज ने भोज को पाठशाला से बुलवा भेजा। भोज ने आते ही पिता की तरह पूज्य महाराजा को प्रणाम किया। भोज के अनेक सुन्दर लक्षणों को देखकर ज्योतिषी ने कहा, राजन्! भोज के भाग्योदय के वर्णन करने में ब्रह्मा भी असमर्थ है, तौभी मैं अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार कुछ कहता हूँ—

पंचाशत्पंचवर्षाणि सप्तमासान् दिनत्रयम्।
भोजराजेन भोक्तव्यः सगौडो दक्षिणापथः॥

भोज कुछ दिनों में राजाओं के भी राजा होंगे। मुञ्जराज ने ऊपरी प्रसन्नता दिखा कर ज्योतिषी जी की अच्छी बिदाई की। किन्तु द्वेषपूर्ण हृदय से उनने भोज की हत्या करने के लिए चुपचाप घातकों को आज्ञा दी। घातकों ने भोज को पकड़ कर फुस-लाते हुए जंगल की राह ली। किन्तु मारने के समय उसकी मनमोहिनी मूर्ति को देख कर उनका हृदय काँप उठा, और हाथ से शस्त्र गिर गए। फिर वे भोज को एक घोर वन में छोड़ चले आए। घातकों के आने के समय भोज ने नीचे लिखा श्लोक महाराज को देने के लिए एक वृक्ष के पत्ते पर लिख कर उन्हें दे दिया।

मान्धाता स महीपतिः कृतयुगालंकार भूतो गतः।
सेतु र्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः॥
अन्ये चापि युधिष्ठिर प्रभृतयो याता दिवम्भूपते!
नैकेनापि समंगता वसुमती मन्ये त्वया यास्यति॥

सतयुग के अलंकार स्वरूप महाराज मान्धाता चल बसे। जिनने समुद्र में पुल बाँध कर रावण का बध किया, वे दशरथनन्दन राम आज कहाँ हैं? और युधिष्ठिर आदि बड़े २ चक्रवर्ती राजा भी स्वर्ग चले गए, किन्तु हे राजन्! किसी के भी साथ यह पृथ्वी नहीं गई, पर मुझे मालूम होता है कि वही पृथ्वी तेरे साथ जायगी।

घातकों के दिए हुए इस श्लोक को पढ़ कर

राजा अथाह शोक समुद्र में डूब गए। अपने को पुत्र बध करने वाला घोर पातकी और बज्र हृदय समझ कर उनके नेत्रों से आंसुओं की धारा बह निकली। हा! प्रियदर्शन! हा सर्वगुण सम्पन्न! हा प्रियपुत्र! कह २ कर वे रोने लगे। महाराज को इस तरह पुत्रशोक से अत्यन्त विकल और दु:खित देख कर घातकों ने उनके चरण कमलों पर गिर कर भोज सम्बन्धी सब हाल कहा, और क्षमा मांगी। भोज जीवित है, इस मधुर वचन के सुनते ही राजा का हृदय-कमल आनन्द से खिल उठा, और उन्होंने उसी समय प्राणों से भी प्यारे कुमार भोज को बुला कर युवराज पद देकर अपनी दु:खित आत्मा को शान्त किया।

मुञ्जराज का तैलंगराज्य के स्वामी महाराजा तैलिपदेव से सोलह बार घोर संग्राम हुआ था और रणक्षेत्र में सोलहो बार तैलिपदेव पराजित हुए थे, किन्तु उनने एक बार फिर विशाल सेना को इकट्ठी कर 'मालवा' पर आक्रमण किया। इस समय महामन्त्री रुद्रादित्य रोग से पीड़ित थे, इससे स्वयं मुञ्जराज तैलिपदेव से युद्ध करने के लिए रणभूमि में गए। घनघोर युद्ध हुआ, कई दिनों तक रक्त की नदियां बहती रहीं अन्त में तैलिप देव की सेना के पैर उखड़ गए, सेना की यह दशा देख तैलिप देव भी हताश हो गए और क्षात्रियत्व में कुठार मार कर रण में पीठ दिखाकर भागे। बलगर्वित मुञ्जराज तैलिपदेव का पीछा करते हुए रुद्रादित्य के मना करने पर भी गोदावरी के उस पार पहुंच गए। ऐसा सुन्दर सुयोग्य देखकर तैलंगाधिपति तैलिपदेव ने भागती हुई सेना को और कुछ नवीन सेना को इकट्ठी किया, और मालवाधीश मुञ्जराज पर फिर आक्रमण करके उन्हें पराजित किया और उन्हें अपने आधीन कर बन्द कर लिया। इधर इस शोचनीय दुर्घटना के सुनने के पहले ही महामन्त्री रुद्रादित्य इस असार संसार को छोड़ कर स्वर्गवासी हो गए थे।

मुञ्जराज तैलंग स्वामी के यहां कुछ दिन कैद थे, एक दिन उनके भागने की चेष्टा करने पर तैलंग स्वामी की आज्ञा से वे सूली पर चढ़ा दिए गए। यों उनकी पापमय लीला समाप्त हुई।

—※—

मङ्गलाचरण ।

ताराकुमार (कविरत्न)

(पीलू)

जय जगदीश्वर, देव परातपर,
सर्व गुणाकर, विश्वविधे!
प्रेम सुधाकर, शिव मय सुन्दर,
कलुष गरल हर, शान्ति निधे! ॥ १ ॥

जय भय भंजन, धार्म्मिक-रंजन,
नित्य निरंजन, विश्वपते!
पातकि-तारण; पाप निवारण,
निवृत्ति-कारण, जीवगते! ॥ २ ॥

सत्य सनातन, पुरुष पुरातन,
मुक्ति निकेतन, देव हरे!
भारत जन गण–दुःख विमोचन,
दुष्ट दलन, भव सिन्धु तरे! ॥ ३ ॥

जय महिमोज्ज्वल, निष्फल निर्म्मल,
सकल-सुमंगल कल्पतरो!
भव पथ सम्बल, सर्वतपः फल,
दुर्बल बल, जगदेक गुरो! ॥ ४ ॥

त्रिभुवन-धारक, धर्म्म विचारक,
सृष्टि-स्थिति–लय-कारक हे!
यम भय हारक, शोक निवारक,
दुर्गत भारत तारक हे! ॥ ५ ॥

—:०:—

खड़ी बोली की कविता ।*

[पण्डित श्रीधर पाठक लिखित]

निरूपण—हिन्दी भाषा का वह रूप जिसमें आजकल शिष्ट गद्य लिखा जाता है, जब पद्य में व्यवहृत होता है "खड़ी बोली" के नाम से पुकारा जाता है; गद्य के सम्बन्ध में इस पद का प्रयोग साधारणतः नहीं होता। यह नाम चाहे नया हो, परन्तु हिन्दी का यह रूप नया नहीं है, किन्तु उतना ही पुराना है जितने कि उसके दूसरे रूप, ब्रज भाषा, बैसवाड़ी, बुन्देलखण्डी आदि हैं। ब्रज मंडल से उत्तर, पञ्जाब की दक्षिण-पूर्व सीमा से मिला हुआ प्रदेश इस बोली की आदि भूमि और सदैव का अधिकार स्थल है जहां कि वह अपने प्रकृत रूप में विहार करती है।

यह पञ्जाबी और ब्रज भाषा को मिलाने वाली मानों लड़ी या श्रृंखला है। अथवा यों कहिए कि आर्य भाषा का वह रूप है जो पञ्जाबी ने ब्रज भाषा में अथवा ब्रज भाषा ने पञ्जाबी में परिवर्तित होने की क्रिया में पाया है।

इस बोली में आदरणीय साहित्य प्रचुर नहीं है। हरिद्वार, कनखल, ज्वालापुर, मेरठ, मुरादाबाद, बुलन्दशहर, हाथरस, आगरा आदि स्थानों में "भगत" और "स्वाँग" नामक परम-रोचक और अवलोकनीय अभिनय इस बोली के गद्य पद्य में स्मरणातीत समय से होते चले आए हैं। इस लेख को आरम्भ करने के पहले मैं समझे हुए था कि ये काव्य हाथ की लिखी पोथियों में अथवा पात्रों के कण्ठों ही में विद्यमान हैं, ग्रन्थाकार मुद्रित नहीं हुए, किन्तु विशेष अनुसन्धान से ज्ञात हुआ कि कई एक प्रकाशित होगये हैं। परन्तु जो मेरे देखने में आये हैं उसमें बहुत संशोधन अपेक्षित है; कुछ एक के नाम नीचे लिखे जाते हैं:—

ग्रन्थ	रचयिता
१ श्रवण चरित्र—चिरञ्जीलाल नाथूराम हाथरस	
२ सांगीत चित्रकूट चरित	" "
३ सांगीत भैन भैया	ला० गोविन्दराम
४ सांगीत पूरनमल	मातादीन चौबे (औरैया)
५ सुदामा चरित्र दुखार	
६ सांगीत हरिश्चन्द	

इन सब में ब्रज भाषा और खड़ी बोली दोनों का मिश्रण हैं, जहां तहां विशुद्ध खड़ी बोली के भी पद्य पाये जाते हैं। पहले तीन में दूसरे तीन की अपेक्षा ब्रज भाषा का सम्पर्क अधिक है। पहले तीन एक हाथरस निवासी के रचे हुए हैं, अतः उनका अभिनय अवश्य हाथरस वा उसके निकट के नगरों में अधिक होता होगा। यह नहीं कहा जा सक्ता कि हरिद्वार, मेरठ, मुरादाबाद आदि उत्तरीय स्थानों में जो अभिनय होते हैं उनके पद्य में ब्रज भाषा का योग होता है, किन्तु यदि होता है तो किस परिमाण में होता होगा मेरा अनुमान है कि इन स्थानों के ब्रज भूमि से बहुदूर होने के कारण वहां के पद्यों में ब्रज भाषा का मेल बहुत थोड़ा होता होगा।

इस प्रकार के साधारण लोकप्रिय काव्यों की रचना प्रायः अर्द्धशिक्षित व्यक्तियों द्वारा होती है जो प्रायः पद पद योजना में भाषा की विशुद्धता के विशेष पक्षपाती नहीं होते। यह खड़ी बोली की पद्य रचना संबन्धिनी प्राचीन लोक प्रथा है; अतः यदि इस बोली की कविता प्राचीन और नवीन नामक दो शैलियों में विभक्त की जाय तो इस ढंग की रचनाओं को प्राचीन शैली में रखना पड़ेगा, चाहे वह वर्तमान में ही क्यों न की गयी हों।

उक्त पुस्तकों में से मिश्रित और शुद्ध दोनों प्रकार की बोली के पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं,

* यह लेख सम्मेलन में भेजा गया था।

(मिश्रित भाषा)

लावनी ।

उद्यान ऋषी .खुश हो धन माललुटाये ।
गौदान दिये कोटिन द्विजराज जिमाये ॥
महराज दान नित ऐसो भारी होत ।
निरमुख कोई न जात भिखारी लेते दो २ पोत॥
एक साल भयौ अति उत्सव .खुशी समायन ।
घुटुअन चल सरवन डोलन लागे पायन ॥
महराज मात पितु करते प्यार महान ।
लाड़ लड़ावैं गोद खिलावैं करैं निछावर प्रान ॥

(श्रवणचरित्र)

दोहा

सुन इतनी जल लायकर, तनक न करी अबार ।
बिहंसि २ रघुवीर पद, केवट लिये पखार ।

दुबोला ।

पग धोय पान कीनौ केवट,
त्रिय सहित सकल परिवारा है ।
आगे के पुरखा स्वर्ग गये,
शिव उमा से वचन उचारा है ॥

(सांगीत चित्रकूट)

दोहा

उदय भानु भयौ भामिनी, अब मैं जाऊं ज़रूर ।
सिर पर मञ्जिल चढ़ रही, मुझे पहुंचना दूर ॥

कड़ा ।

मैं असगुन सगुन विचार रही,
लड़ मुक्त माँग खिड़ जाती है ।
दक्षिण दृग फड़क गिरत नूपुर,
और धड़क रही मम छाती है ॥

(सांगीत भैन भैया)

(शुद्ध बोली पद्य)

तबील ।

हरिश्चन्द्र के सत्य से ज्ञानी सुनो,
मंजु आसन सुरेन्द्र का हिलने लगा ।
जीना मन में कि राज्य हमारा गया,
सोच बस होके हाथों को मलने लगा ॥
हुआ सत्य के भानु का तेज जभी,
पाप रूपी अंधेरा खिसलने लगा ।
सभी प्रजा आनन्द से रहने लगी,
नया सृष्टि का रंग ढंग बदलने लगा ॥

(हरिश्चन्द्र सत्य मंजरी)

चौबोला ।

तन चाहे बिक जाय पिता जी
सत्य न त्यागन कीजै ।
हम तुम माता बिकैं हाट में
कंचन द्विज को दीजै ॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी
दुख में अजमा लीजै ।
पूरन काम हो गया हित से
राम नाम रस पीजै ॥

(सैव)

चौबोला ।

करो नाथ निर्मूल अशुभ गण
कहता सीस नवाके ।
रचूं चरित पूरनमल जन का
तुम को आदि मनाके ॥
वक्रतुण्ड एक रदन बदन लख
मदन जाय शरमाके ।
करुणा अयन शयन कीजै मम
हृदय कमल में आके ॥

(सांगीत पूरनमल)

दोहा ।

सुनो दास दासी सकल, चित दे मेरी बात ।
कहां हमारे तात हैं, कहां हमारी मात ? ॥

चौबोला ।

कहां हमारी मात
माथ चरणों पर जाय नवाऊं ।
दीजै शीघ्र बताय
दरस करके कृतार्थ हो जाऊं ॥
है अधीर बस तन मन
व्याकुल बार २ बलिजाऊं ।

रूप सुधारस निरख सुभग
नैनों की प्यास बुझाऊं ॥

(सेव)

यहां पर यह कह देना आवश्यक है कि शुद्ध खड़ी बोली के पद्य जो ऊपर दिये गये हैं वह रचयिता की शुद्ध बोली व्यवहार करने की ओर विशेष चेष्टा का फल नहीं हैं, किन्तु अनायास ही इस रूप में उस्से बन गये होंगे, ऐसा समझना असंगत प्रतीत नहीं होता।

प्राचीन शैली के पुराने पद्यों के उदाहरण-

१-माला फेरत जुग गया गया न मनका फेर।
करका मनका छांड़ के मनका मनका फेर ॥
बुरा जो देखन मैं चला बुरा न दीखै कोय।
जो दिल खोजौं आपना मुझसा बुरा न कोय ॥

(कबीर)

२-बड़े बड़ाई कभी न करते
छोटे मुख से कहें बचन।
अपने मन में सभी बड़े
यों मोती बिनौले लगे लड़न।

(मोती बिनौले का झगड़ा)

३-बाग के फाटक खोल दे सुन माली की बेटी
सैर करन दे (रे) बाग के माहीं ॥

(हीरा राझा लोक गीत)

४-कलित ललित माला, वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला, चाँदनी में खड़ा था ॥

(रहीम)

५—एक अचम्भा देखो चल
सूखी लकड़ी लागा फल।
जो कोई उस फल को खाय
पेड़ छोड़ वह अनत न जाय ॥

(पहेली)

(शुद्ध बोली)

१-इश्क़ चमन महबूब का, वहां न जावै कोय।
जावै सो जीवै नहीं, जियै सो बौरा होय ॥

(नागरी दास)

२-सोने की तेरी क़लम है, हीरे जड़ी दवात।
गोरे गोरे तेरे हाथ हैं, काले अक्षर डाल ॥

३-अब उदय भान और रानी केतकी दोनों मिले।
आस के जो फूल कुम्हलाये हुए थे फिर खिले ॥
घर बसा जिस रात उनका तब मदनवान् उस घड़ी
कह गई दूलह दुलहन् से ऐसी सौ बातें कड़ी ॥

इनमें से ३ संख्यक पद्य में शुद्ध बोली व्यवहार करने की ओर रचयिता का प्रयत्न स्पष्ट प्रतीत होता है।

उन स्थानों में जहां कि यह बोली विशुद्ध रूप में रमण करती है लोक गीत (जैसे हीरा राँझा) स्थानिक गीत, और स्त्रियों के गीत प्राचीन शैली के पद्य में पाये जाते हैं। मैं आज कल ऐसे स्थान में हूं कि उदाहरण नहीं दे सक्ता। इन गीतों में कभी २ मारवाड़ी, शूरसेनी, पञ्जाबी, पूर्वी, बुन्देलखण्डी शब्दों का मेल देखने में आता है। यह पड़ोस का प्रभाव है। आगरे (नगर) के गीतों में व्रज भाषा और मारवाड़ी और दिहली या मेरठ के पद्य में पञ्जाबी शब्दों का आजाना सहज है। उदाहरण

(आगरे का गीत)

ठाड़े रहियो परदेसी सामने (रे)
चोट सम्हारौ म्हारे नैनों की
तुझे मोरचा लगा ढाल का
मुझे ओट पट घूँघट की।

(मेरठ का गीत)

सुन सुन रे पीतम ख़ुश हाल,
मैं भी चलूंगी तेरे नाल।
तेरा हाल सो मेरा हवाल,
मुझे दुनिया में बदनाम किया ॥

नवीन शैली-बाबू हरिश्चन्द्र के समय में और उनके बाद शिक्षित कवियों द्वारा जो पद्य रचे गये हैं उन्हें नवीन शैली के अन्तर्गत समझना चाहिये। इस शैली की रचना भी भाषा व्यवहार भेद से विशुद्ध और मिश्रित दो प्रकार की देखने में आती है।

विशुद्ध दो विभेदों में विभाज्य है । एक वह जिसमें हिन्दी भाषा का स्वाभाविक शील वा प्रकृत रूप पूर्ण रक्षित पाया जाता है। दूसरा वह जिसमें भाषा का यह गुण उपेक्षित सा देखने में आता है । उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं । सहृदय पाठक जिन्हें कि आधुनिक पद्य पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ है स्वयम् समझ जायंगे । इनमें प्रथम प्रकार की रचना दूसरे की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय होती है ।

विशुद्ध भाषा की कविता ही उच्चश्रेणी की कविता कहलाने की संभावना और शिष्ट समाज में आदर पाने की योग्यता रख सक्ती है ।

मिश्रित वा खिचड़ी भाषा, के पद्य में यह योग्यता नहीं आ सकती। अतः ऐसी भाषा का प्रयोग उत्कृष्ट काव्य में कदापि न करना चाहिये किन्तु इसकी प्रथा को एक साथ त्याग ही देना अच्छा है। खड़ी बोली ने अब ऐसा प्रशस्त रूप प्राप्त कर लिया है कि उसके पद्य में व्रज भाषा आदि हिन्दी के इतर रूपों की वाक्य वल्लरी वा वाक् पद्धति का किञ्चित् अनुपयुक्त व्यवहार भी उसके प्रकृत गौरव की हानि का हेतु हो सक्ता है ।

इस विषय को अधिक पल्लवित न करके, मैं इस सम्मेलन का ध्यान खड़ी बोली के उन साधारण काव्यों और लोकगीतों (Popular-ballads) की ओर विशेष रूप से आकर्षित करता हूं जिनकी चर्चा मैं इस लेख के आरंभ में कर चुका हूं । नागरी प्रचारिणी सभाओं से भी मेरा सविनय अनुरोध है कि वह इस बिखरे हुए और उपेक्षित साहित्य में से उत्तम उत्तम रचना चुन कर उनके आवश्यकीय संशोधन पूर्वक प्रकाश करने में प्रवृत्त हों । मुझे खेद है कि मैं इस लेख के लिये उक्त प्रकार के साहित्य के सब या बहुत ग्रन्थों के नाम, धाम, आदि एकत्र नहीं कर सका हूं; परन्तु उनका आस्तित्व असंदिग्ध है और समुचित अनुसंधान से वह अवश्य प्राप्त हो सकेंगे ।

ये लोक काव्य सर्वसाधारण को रुचनेवाली भाषा में हैं । अथच हमारी जातीय सामाजिक और धार्मिक स्थिति के दर्पण स्वरूप हैं अतः इनसे हमारी सामाजिक और धार्मिक उन्नति के संबन्ध में अनल्प सहायता मिलने के अतिरिक्त खड़ी बोली के आधुनिक कवियों को भाषा शैली संबन्ध में लाभदायक शिक्षा प्राप्त होने की भी बहुत कुछ संभावना है । यह विषय उपेक्षणीय कदापि नहीं है । गत अगस्त की १५वीं के पायोनियर पत्र में (Some Songs of the People) शीर्षक लेख में देखिये एक विदेशी यहां के लोक गीतों के सम्बन्ध में क्या लिखता है । उसके कथन का कुछ अंश नीचे उद्धृत है:-

And indeed there is a degree of simplicity, directness, zest and reality in these poems of the "uneducated" which gives them true literary value and widely separates them from the laboured rechanffe's of more learned persons The divorce from the mass of t e people which is the penalty that in India the higher c stes have had to suffer for successfully maintaining the superior position they lost at an early period in Greece and Rome re-acts on their art and literature.

विषय—ऊपर चर्चा किये हुए लोक काव्य स्मरणीय अथवा अनुकरणीय पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा स्थानीय घटनाओं से सम्बन्ध रखते हैं; उनके अभिनय वा गान से लोगों के हृदय पर बहुत सुन्दर प्रभाव पड़ता है। वर्तमान समय में सामाजिक और धार्मिक संशोधन की बड़ी आवश्यकता है, अतः इसी को उद्देश्य मानकर कविता विशेषतः लिखी जानी चाहिये । ये दोनों इतने असीम हैं कि इनमें पद्य रचना की अमित समाई है* ।

* बालोपयोगी कविता को भी जिसकी इतनी आवश्यकता है इन्हीं के अन्तर्गत समझना चाहिये ।

देश काल के अवच्छेद से धर्म के गौण सिद्धान्त प्रायः विक्रिया प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार सामाजिक प्रथा भी बहुधा काल के जटिल जाल से विमुक्त नहीं रहतीं-धर्म की स्थिति और समाज की दशा से प्रत्येक युग में कविता अपना योग कर लेती है और उस युग की अवधि तक संग रखती है; यों दोनों पारस्परिक सम्बन्ध अखंड और सनातन है—परन्तु हमको यह न भूलना चाहिये कि यद्यपि कविता एक अतुल शक्तिशालिनी वस्तु है, परन्तु साधारण जन समुदाय की सांसारिक और व्यावहारिक अवस्था की उन्नति उसकी अपेक्षा गद्य साहित्य से विशेषतर साध्य है और यह भी स्पष्ट है कि केवल गद्य अथवा केवल पद्य से किसी देश के साहित्य की पूर्ति नहीं हो सकती-अतः हमारा उद्योग दोनों की पूर्ति की ओर यथोचित परिमाण में होना चाहिये-सभ्य संसार के सारे विषय हमारे साहित्य में आजाने की ओर हमारी सतत चेष्टा रहनी चाहिये-साथ ही शिक्षा के विस्तार द्वारा साहित्य सेवियों की संख्या की दिन दिन वृद्धि होनी चाहिये।

यदि एक सूची उपयुक्त विषयों की सर्व संमति से छाप दी जाय तो उस्से लेखकों को बहुत कुछ सहायता मिलेगी।

लेख शैली—यह भी ध्यान योग्य वस्तु है, और गद्य पद्य दोनों में समान गौरव रखती है-इसका स्वरूप मुख्यतः लेखक की रुचि और शक्ति के अनुरूप होता है।

प्रत्येक भाषा चिरव्यवहृत होती हुई एक अज्ञात दशा प्राप्त कर लेती है जिसे उसका शील या प्रकृत रूप कह सक्ते हैं। उस प्रकृत दशा में रोचक शक्ति निवास करती है। जिस प्रकार के शब्दों वा वाक्यों का व्यवहार उसकी इस दशा में होता है उसे साधारण बोली में "महाविरा" कहते हैं।

मुहावरे और चिर प्रचलित शब्द प्रत्येक भाषा की आत्मा स्वरूप होते हैं। जो गद्य वा पद्य इनके उपयुक्त प्रयोग से सुशोभित होता है वह ऐसा है जैसा कि चतुर चितेरे द्वारा चित्रित कोई शुद्ध प्रकृति दृश्य, वा निपुण सुनार और जड़िये का वनाया हुआ वढ़िया आभूषण अथवा अनुभव शाली माली का सजाया हुआ कुसुम स्तवक। जिस प्रवन्ध में प्रचलित वाक् पद्धति विरुद्ध शब्द का व्यवहार होता है और मुहाविरे की दरिद्रता रहती है उसमें सरसता अवश्य न्यून होती है, और विषय और भाव उत्कृष्ट होने पर भी उसमें रोचकता नहीं आती।

ऊपर जो कहा गया है वह भाषा के चिर व्यवहार से प्राप्त किये हुए स्वरूप का निरूपण है। भाषा के विकास वा उन्नति में उस रूप को रक्षित रखना परम आवश्यक है; उस्को विगाड़ना अत्यन्त गर्हित आचरण है। यह सत्य है कि भाषा का विकास और उन्नति नवीन भावों और विषयों के संनिवेश से ही होती है जिनके कारण नवीन शब्दों का व्यवहार आवश्यक होता है; परन्तु यह नूतन वाक् प्रस्तार यदि सावधानता से और चातुर्य के साथ किया जाय तो भाषा के प्रकृत रूप में विकार विना पहुंचाये ही सुन्दर रीति से हो सकता है। राजा शिवप्रसाद, बाबू हरिश्चन्द्र, पं० प्रतापनारायण मिश्र और राजा लक्ष्मणसिंह का गद्य और पद्य इसी नियम के पालन के कारण सरस है और बहुत सा आधुनिक गद्य और पद्य इसी गुण के अभाव से नीरस है। यह बात असंदिग्ध है कि संस्कृत शब्दों की सहायता बिना हमारी भाषा के गद्य वा पद्य की उन्नति साध्य नहीं; बंगाली की इतनी उन्नति संस्कृत के ही सहारे से हुई है। परन्तु उसके अप्रचलित शब्द और लम्बे समासों का प्रयोग जहां तक संभव हो त्यागना चाहिये। उनका व्यवहार केवल उस अवस्था में करना उचित है जब कि उनके बिना किसी प्रकार

मान न चल सकता हो अथवा उनके उपयोग से लेख की शोभा वा गौरव की बृद्धि होती हो।

छन्द; पद योजना;

छन्द—खड़ो बोली में प्रायः सभी छन्द जो ब्रज भाषा वा संस्कृत में व्यवहृत होते हैं रचे जा सक्ते हैं, परन्तु विशेष सफलता से उसमें कतिपय छन्द विशेष ही लिखे जा सक्ते हैं। ऐसे हो छन्दों का प्रयोग उसमें होना चाहिये। तथाच यथा संभव नवीन उपयोगी छन्द भी लाने चाहियें। बंगला, मरहठी, द्रविड़, फ़ारसी, अंग्रेज़ी, जापानी आदि विदेशी भाषाओं के कोई छन्द यदि हिन्दी में सरसता के साथ आ सकें तो उनका ग्रहण भी अनुचित न समझना चाहिये।

पद योजना क्रम—कवि को अपना भाव सर्वतोभावेन रोचक रीति से प्रकाश करने के अर्थ उपयुक्त पद ढूंढने पड़ते हैं। जिस कवि में कवित्वेशशक्ति प्रबल और विद्या वैभव विपुल होता है, उसे वांछित पद प्रायः बिना प्रयास के भी मिल जाते हैं, पर ऐसा कम होता है।

मुहाविरे के बाद पद-योजना का पद है। उपयुक्त पदों का व्यवहार लेखक की चतुराई की कसौटी है। इसके लिये कोई नियम नहीं बनाये जा सक्ते। कवि का भाव पाठक के हृदय पर यथार्थ अंकित करने वाले और श्रवणों को सुख देने वाले पदों का प्रयोग कविता की आत्मा है। सब अच्छे लेखकों में ऐसे पद व्यवहार करने की शक्ति सहज ही होती है और यही शक्ति कल्पना शक्ति की सहवर्तिनी होकर कवित्व शक्ति का पद प्राप्त करती है। वर्तमान समय में बाबू मैथिलीशरण गुप्त की रचना सुन्दर पद योजना का सर्वोत्कृष्ट आदर्श है।

इस स्थान पर मुझको एक विशेष बात की चर्चा करनी है। वह यह है:—

हिन्दी में निम्न प्रकार के शब्द और शब्द खण्ड प्रायः हलन्तवत् बोले जाते हैं:—

१—उन अकारान्त शब्दों को छोड़ कर कि जिनका अन्तिम व्यञ्जन किसी दूसरे व्यञ्जन से युक्त हो (जैसे कृत्य, भव्य, धर्म, यत्न आदि) सब अकारान्त शब्द (जिनमें तत्सम, तद्भव भी संमिलित समझने चाहिये) जैसे वदन, मदन, जतन, करवट, झटपट घर आदिः—

२—शब्दों के बह अकारान्त खण्ड कि जिन पर बोलने में आघात (Accent) पड़ता है, जैसे मन/भावन; गल/बाही; जल/चर; पट/वारी

३—सब अकारान्त धातु, जैसे कर(ना), चल (ना) धात्वंग वा इस विधि में गृहीत नहीं है।

यह बात ब्रज भाषा में नहीं है।

अब विचारणीय है कि खड़ी बोली की इस विशेषता से उसकी पद्य रचना में कुछ सुविधा हो सक्ती है या नहीं। भाषा के शोल संरक्षण की दृष्टि से, पद्य लिखने में, आवश्यकतानुसार बोलने की रीति अवलंबन करने से कोई आपत्ति तो नहीं उपस्थित होती।

उर्दू पद्य में और उसीं ढंग के शुद्ध हिन्दी पद्य में भी यह प्रथा प्रचुरता से देखने में आती है।

शुद्ध खड़ी बोली के पद्य के जो उदाहरण इस पत्र के प्रारंभ भाग में दिये गये हैं उनमें से भी कई एक में यह परिपाटी प्रदर्शित है कुछ उदाहरण उर्दू ढंग के आधुनिक पद्यों के दिये जाते हैं।

अरी हां यह बहुत अच्छा जतन है।
पर इससे पूछले क्या इसका मन है॥
कमल के पात पर नहुं से लिखूंगो।
तू सोचे जा न कर चिन्ता कुछ इसकी।
(पं० प्रतापनारायण मिश्र का संगीत शाकुन्तल)

परन्तु संस्कृत के वृत्तों में जो हिन्दी पद्य रचना आज कल होती है उसमें इस रीति का व्यवहार बहुधा नहीं देखने में आता।

यह मुझे नहीं विदित है कि बंगाली, मराठी, गुजराती आदि इतर भाषाओं में ऐसा

होता है या नहीं, परन्तु नैपाली में यह प्रचुरता से है।

उदाहरण

यो सब् शास्त्र विशेष् बड़ोछ
रघुनाथ को रूप् जनाई दिन्या ।
जोछन् सब्ह पुराण् हरूह
सब मा पैं मुख्य जानी लिन्या ॥
गर्छन् कीर्तन सुन्दछन्
पनि भन्या यो पंडछन् फल् भनी ।
तिनको पुण्य बखान गर्नत
सबै सक्तीन मै ले पनी ॥
(कवि भानुभक्तकृत नैपाली रामायण
बालकाण्ड)

इस प्रकार शब्द व्यवहार वाली कुछ हिन्दी पद्य की पंक्तियां भी उदाहरण स्वरूप नीचे दी जाती हैं।

(१) उखड् गये जिनसे मृणाल जाल हैं।
तड़प् रहीं मीन उड़े मराल हैं ॥
(२) सरसिज जल छाये गंध पाटल् की प्यारी।
सुखद सलिल सेवन् हार सुन्दर् उज्यारी॥
(३) पर् इतने पर् भी तो नहिं मन हुआ शान्त
उनका । बस् अब् क्या करना था जब जतन
कोई नहिं चला ॥

इस सब जगड्वाल के प्रदर्शन से मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि हमारी भाषा के पद्य में इस प्रकार से शब्द व्यवहार करना चाहिये किन्तु बुध जनों के विचार के लिये यह मेरा केवल एक प्रस्ताव मात्र है।

सारांश–ऊपर जो कुछ कहा गया है वह खड़ी बोली के प्राचीन साहित्य के संग्रह और प्रकाशित करने की उपयोगिता; लेख शैली में भाषा के प्रकृत शील के निर्वाह की आवश्यकता; भविष्य पद्य में देशी विदेशी यावन्मात्र उपयुक्त छन्दों की प्रयोज्यता, शुष्ट पद योजना की प्रशस्यता ; सामाजिक और धार्मिक उन्नति को उद्देश्य मान पद्य रचना की विधेयता आदि दो एक बातों के स्पष्टीकरण की चेष्टा मात्र है! हम को चाहिये कि पृथिवी के प्रत्येक सभ्य देश के साहित्य रत्नों से अपनी भाषा को विभूषित करने का प्रयत्न करें वरञ्च बौद्ध, ईसाई, इसलामिया धर्म ग्रन्थों में भी जो उपदेश रत्न मिलें उन्हें भी न छोड़ें । जो बातें अच्छी हैं किसी भाषा में हों और किसी धर्म से संबन्ध रखती हों, मनुष्य मात्र को हित कर हैं और प्रत्येक भाषा में स्थान पाने की योग्यता रखती हैं।

खड़ी बोली की कविता का महत्व ।

बरस पहले खड़ी बोली की कविता के नाम से उस समय के कवि भी चिढ़ते थे । कई एक तो उसके परमशत्रु हो गये थे। उनमें से दो एक अभी जीवित हैं । परन्तु सन् १८८७ ई० में जो इस विषय पर विवाद चला था उसमें इस भाषा की कविता के एक पक्षपाती ने भविष्यद्वाणी की थी कि यह किसी दिन अति उच्च आसन प्राप्त करेगी । उस वाणी के फलीभूत होने के प्रत्यक्ष लक्षण अब लक्षित हो रहे हैं खड़ी बोली में कविता का प्रवाह सा बह चला है। उसकी सार्वभौम उपयोगिता अब सब मानते हैं । अथच नागरी लिपि और हिन्दी भाषा के यावत् भारतवर्ष में प्रचार पाने के साथ साथ हमारी खड़ी बोली का पद्य भारतवासी मात्र के स्वत्व और अभिमान का अधिकारी बनने की आशा रखता है । यह अल्प आनन्द का विषय नहीं है।

—*—

मुसलमानी राजत्व में हिन्दी।

हिन्दी मुसलमान बादशाहों के राज में हिसाबकिताब राजकाजसाहित्य और संगीत संबन्धी कामोंके लिये बहुत प्रचलित रही जिसका एक संक्षिप्त वृत्तान्त मुसलमानी तवारीखों के आधार पर अपनी विद्या और बुद्धि के अनुसार लिखता हूं।

हिसाब किताब में हिन्दी।

मुसलमान जब से हिन्दुस्तान में आए तब से ही उनके राज्य का काम बहुधा हिन्दी में ही होता था। हिसाब और जमाखर्च का दफ्तर तो मोहम्मद कासिम के समय से अकबर बादशाह के समय तक हिन्दी में ही रहता चला आया था इसका कारण कुछ यह नहीं था कि मुसलमान लोग हिसाब नहीं जानते थे किन्तु वे ऐश्वर्यवान और सिपाही पेशा होने से हिसाब करने और जोड़ तोड़ लगाने का परिश्रम कम उठाया चाहते थे और इसको अपनी सिपाहगीरी और विजय प्राप्त के आगे कुछ बड़ा काम नहीं समझते थे इस लिये जो देश फ़तह करते थे वहीं के दीवानों दफ्तरों और लेखकों को ज्यों का त्यों बना रखते थे और उन पर शासन करने के लिए अपनी एक बड़ी कचहरी बना देते थे जिसका काम या तो स्वयं वे या उनके मुसलमान मंत्री किया करते थे। मुहम्मदकासिम ने सं० ७६८ में सिंध का देश राजा दाहर से जीता और वहां के अगले दीवान को राज का काम सौंपकर उसने ब्राह्मणों को दफ्तर में नौकर रख लिया जिनके द्वारा राज का कर भी प्रजा से उगाहा जाता था इससे माल का दफ्तर हिंदी में ज्यों का त्यों बना रहा।

फिर महमूद गज़नवी ने सं० १०७० में पंजाब का राज हिंदुओं से लिया। उसने भी वहां के हिसाब का दफ्तर हिन्दी और हिंदुओं के हाथ में रहने दिया और पैसाही शहाबुउद्दीनगोरी ने किया जब कि उसने सं० १२५० में दिल्ली का राज लिया।

इस प्रकार विजयी मुसलमानों के शासनकाल में विजित हिन्दुओं की हिन्दी भाषा अकबर बादशाह के समय तक उनके दफ्तरों से अलग नहीं हुई। सुलतान सिकंदर लोदी ने हिन्दुओं को फारसी लिखने पढ़ने पर तो लगा दिया था क्योंकि उसको अपने धर्म का बहुत पक्ष था तो भी वह हिंदी दफ्तर को फारसी में नहीं कर सकता था जो बड़े परिश्रम अनुभव और पित्त मारने का काम था नकि तलवार चलाने का, परंतु राजा टोडरमलने सं० १६३६ में सम्राट अकबर के प्रधान मंत्री का महान् पद पाकर बादशाही कामों में नया सुधार किया तो उन्होंने पुराने दफ्तरों को भी हिन्दी से फारसी में बड़ी सावधानी और बुद्धिमानी से बदला दिया। जहां पहले हिन्दी लिपि और हिन्दी बोली हिन्दू लोग लिखते थे वहां अरबी और फ़ारसी बोली, लिपि और अंक मुसलमान लोग लिखने लगे और इसके साथ ही हिन्दुओं को भी फारसी पढ़ने और अरबी हिसाब सीखने का हुक्म दे दिया गया जिसके वास्ते विलायत के दफ्तरों की प्रथा का ज्ञान इरानी विद्वानों से प्राप्त करने के लिए एक सरल परिपाटी बनाई गई। इस नवीन शिक्षा का यह परिणाम हुआ कि बहुधा हिन्दू लोग हिन्दी को तो भूल गये और फारसी लिखना पढ़ना सीख कर पहिले के समान कम तनख्वाह के निरे हिन्दी नवीस ही नहीं रहे किन्तु मुंशी वख़शी और दीवान वन कर बादशाहों और बादशाही अमीरों की कामदारी और मुसाहिबी के ओहदों तक पहुंचने लगे। स्वयं राजा टोडरमल भी फारसी शिक्षा से ही जो उनसे एक पीढ़ी पाहिले सिकंदर लोदी के हुक्म से हिंदुओं में प्रचलित हुई थी उस उच्च पद को पहुंचे थे।

राजा टोडरमल ने फारसी में जमाखर्च लिखने की जो रीति चलाई थी वह आज तक मुसलमानी रियासतों में चल रही है। रजवाड़ों के हिन्दी दफ्तरों और बनियों के बहीखातों में भी उसी की छाया पर हिसाब लिखा जाता है जिसमें बहुधा वे ही अरबी फारसी नाम और शब्द लाए जाते हैं

जो राजा साहिब ने इस नये सुधारे में नियत किये थे। महात्मा सूरदास जी ने भी इनके कई नाम और शब्द अपने इस पद में दिये हैं।

तुम्हरी किरपी हमरे अवगुण जमा खरच कर देखे।
फ़ाजिल पड़े अपराध हमारे इस्तीफा के लेखे॥
अव्वल हरफ हरफ सानी को जमा बराबर कीजै।
सनद बुरद के हाथ हमारे तलब बराबर दीजै॥
इन्तख़ावहु बरक़ी करके ऐसो अमल जनायो॥
दसखत माफ करो तिहि ऊपर सूर श्याम गुनगायो॥

इस प्रकार दिल्ली के बादशाही दफ्तरों में से तो सैकड़ों वर्षों की जमी हुई हिन्दी राजा टोडरमल के निकाळे निकल गई परन्तु दक्षिण के बादशाहों के दफ्तरों में ज्यों की त्यों बनी रही। ये सब बादशाह पुराने दिल्ली के बादशाही में सेवक थे किन्तु अब सैकड़ों वर्ष से स्वतंत्र राज करते थे।

तवारीख़ फरिश्तः में लिखा है कि हसन गंगू ब्राह्मणी ने सुलतान मुहम्मद से प्रतिकूल हो कर दक्षिण का पहिला बादशाह सं० १४०४ में हुआ था। * गंगू ने ब्राह्मणों को अपने हिसाब का दफ्तर सौंपा था उस दिन से आज तक की हिज्री सं० १०१६ सं १६६४ है हिन्दुस्तान के सब देशों के रीति के विपरीत दक्षिण के बादशाहों के दफ्तर और उनकी विलायतों के लिखने पढ़ने के काम विशेष करके ब्राह्मणों के हाथों में है।

प्रायः १७५ वर्ष पीछे हसन गंगू के घराने से राज्य चले जाने पर एक बादशाही की जगह ५ बादशाहियां उनके नौकरों की बीजापुर, अहमद नगर, गोलकुण्डा, बीदर-और बरार में स्थापित हो गईं जो अकबर के समय से लेकर औरंगजेब के दक्षिण की दिग्विजय करने तक धीरे २ दिल्ली के सामराज्य में मिल गईं जिससे हिन्दी भी सं १६०० से १७४२ तक सब मुसलमान बादशाहों के दफ्तरों से निकाली गई और उसकी जगह राजा टोडरमल की चलाई हुई वही फारसी लिपि और बोली भरती हुई। यही हाल मालवे, गुजरात, कश्मीर और बंगाल और सिंध वगैरः के स्वतंत्र बादशाहों के हिन्दी दफ्तरों का हुआ जो सब एक २ करके मुगल बादशाहों ने लेलिये थे। यों हिन्दी प्रायः एक सहस्र वर्ष तक मुसलमान बादशाहों के दफ्तरों में प्रचलित रह कर एक हिन्दू प्रधान मन्त्री के प्रयत्न से खारिज होगई जिसकी पालिसी फारसी के प्रचार से हिन्दू जाति के वास्ते वैसी ही उपयोगी थी जैसी की आज कल भारत के वर्तमान नेताओं की अंगरेजी के पठन पाठन की वृद्धि करने में है क्योंकि जैसे आज दिन केवल हिन्दी वा उर्दू पढ़ा हुआ हिन्दोस्तानी आदमी अंगरेजों में कुछ आदर नहीं पा सकता है वैसे ही उस समय भी मुसलमान बादशाहों और उनके वजीरों में कोरी हिन्दी जानने वाले हिन्दू की भी कुछ क़दर नहीं थी-परन्तु जब वे भी फारसी लिख पढ़ कर राज का काम करने के योग्य हो गए तो वे भी मुसलमानों के बराबर अमीरों व वज़ीरों के ओहदे और दर्जे पाने लगे।

इस लेख को देखकर बहुधा लोग ऐसा कहेंगे कि हिन्दी के वास्ते अकबर का समय अच्छा नहीं था जिसमें राजा टोडरमल के द्वारा हिन्दी की अवनति हो फारसी की वृद्धि हुई। प्रत्यक्ष में तो यह बात ठीक ही है जो राजनीति के हित से की गई थी परन्तु अकबर मूल में हिन्दी का द्वेषी नहीं था उसने अपने पोते खुशरो को ६ वर्ष की अवस्था में पहले हिन्दी पढ़ने को ही बैठाया था अकबरनामें में लिखा है कि ७ आज़र सन् १८३८ जलूसी (अगहन सुदी ६ सं० १६४०) को सुलतान खुशरो हिन्दी विद्या सीखने को बैठा। भूदत्त ब्राह्मण जो भट्टाचार्य्य के नाम से सर्व साधारण में प्रसिद्ध हैं और जो अनेक विद्याओं में बहुत निपुण थे उसके पढ़ने को नियत हुये थे।

नोट * हसन गंगू ब्राह्मण का नौकर था और उसी के प्रसंग और आशिर्वाद से इस पद को पहुंचा था। उसने बादशाह होने के पीछे गंगू का उपकार याद रखने के लिये अपना नाम हसन गंगू ब्राह्मणी रख लिया उसके वंशज भी सब अपने नाम के पीछे बहमनी (ब्राह्मणी) शब्द जोड़ते रहे थे।

अब यहां सिकन्दर और अकबर के कर्मकांड की तूलना कर के देखना चाहिए। सिकन्दर ने तो हिन्दुओं को भी हिन्दी पढ़ने से रोक दिया था और अकबर ने अपने पोते को पढ़ाकर निज घर ही में हिन्दी का प्रचार किया।

अकबर ने राज्य प्रबन्ध के जीर्णोद्धार और शासन स्वीकार में भी हिन्दी का हीं बहुत कुछ प्रचार किया था जिसका पता आइने अकबरी से लगता है। सिक्कों, तोपों, बन्दूकों, हाथी, घोड़ों और दूसरी चीजों के नाम जो उसने नई निकालीं थी बहुधा हिन्दी के ही रक्खे जाते थे जिनका कुछ नमूना यहां भी लिखा जाता है।

सोने के सिक्कों के नाम

१–सहंसा–१०१ तोले ६ मासे सोने का होता था और ६१ तोले ८ मासे का भी
२–रहंस्य–सहंसे का आधा
३–आत्म–सहंसे का चौथाई
४–विंशाति–सहंसे का १० वां और २०वां भाग
५–चुगल–सहंसे का ५०वां भाग–२ मोहर का
६–अदल गुटका–११ मासे सोने का–मोल ६ रु०
७–धन–१ मोहर मोल ६ रुपया
८–रवि–आधी मोहर
९–पांडव–मोहर का पांचवां भाग
१०–अष्टसिद्धि–मोहर का ८वां भाग
११–कला–मोहर का सोलहवां भाग

चांदी के सिक्कों के नाम–

१–रुपया
२–द्रव्य–अठन्नी
३–चरण–चोअन्नी
४–पांडव–१ रुपये का पांचवां भाग
५–दशाह–दसवां भाग
६–कला–अन्नी का सोलहवां भाग
७–सोकी–२०वां भाग

तांबे के सिक्के के नाम–

१ दाम–१ पैसा–१ तोले आठ माशे ७ रत्ती भर
२ अधेला–आधा दाम
३ पावला–पाव दाम
४ दमड़ी–दाम का आठवां भाग

तोपों के नाम।

१ गजानल
२ हयानल
३ नरनाल

बंदूकों के नाम।

१ संग्राम
२ रंगीन

तलवारों के नाम।

१ जमधर–जमगढ़
२ खपवा
३ जमखाग
४ नरसिंहमूठ
५ कटारा

पहिनने के कपड़ों के नाम।

१ सर्वगाती–जामा
२ चित्रगुप्त–बुरका, गूंघट
३ शीश शोभा–टोपी–मुकुट
४ केशघन–मूवाफ–बालों में गूधने वा बांधने का
५ कठिजेव–कमरबंदा पटका
६ तनजेब–आधे बदन में पहिनने का–नीभा
७ पटगत–नाड़ा–कमरबंद
८ यार पेरान–इजार–पायजामा
९–परमनरम–शाल
१० परमगरम–दुशाला
११ चरन धरन
१२ कंठशोभा
१३ टकोचिया
१४ केसधन

कपड़ों के थानों के नाम।

१ गंगाजल
२ मेघदार

३ भेरों
४ मिहरकुल
५ अयन
६ असावली
७ धूरकपूर
८ कपूरनूट

हाथी के सामानों के नाम।

१ गजझंप—झूल
२ मेघडंबर—छत्रीदार हौदा
३ रणंपील—सिरी
४ गजवाग—आंकुश

सिपाहियों के नाम।

१ लकड़ेत—लकड़ी से लड़ने वाले
२ पटेत—पटेबाज
३ ढालेत—ढाल तलवार से लड़ने वाले
४ बरछेत—बरछे से लड़ने वाले
५ कमनेत—तीर कमान से लड़ने वाले
६ वाणेत—दोनों हाथों से तलवार मारने वाले
७ एकहाथ—एक हाथ से तलवार मारने वाला
८ चड़वा—छोटी ढाल रखने वाले पुरबिये
१० तलवा—बड़ी ढाल रखने वाले दक्षणी
११ वनकोली—बांकी या ठेढ़ी तलवार वाले
१२ पहरायत—पहरा देने वाले
१३ खिदमतिये—सेवक
१४ मेवड़े—डांक ले जाने वाले
१५ चेले—जो पहिले गुलाम कहलाते थे
१६ अहदी—अकेले लड़ने वाले

डेरे वगैरहं के नाम।

१ गुलालवाड़—बड़ी कनात लालरंग की जो सब डेरों के आस पास कोट के समान खड़ी होती थी
२ रावटी—दस दस गज लंबे चौड़े डेरे
३ मंडल—४ गज क ४ चोबों पर खड़े होने वाले डेरे
४ आकाश दिया—जो ४० गज ऊंचा होता था
५ सूर्यकांति—जिसको दोपहर के समय सूरज के सामने रख कर रूई में अग्नि उत्पन्न करते थे जिससे बादशाही बवरचीखानों और दीपकों के जलाने वगैरह का काम लिया जाता था
७ शंख—गाय के सींग जैसा तांबे का बनाया जाता था और ये शंख समय २ पर दरबार में बजते थे—

बादशाहों के सिक्कों में हिन्दी—

पुराने सिक्कों के देखने से पाया जाता है कि शहाबुद्दीन गोरी से लेकर अकबर बादशाह के समय तक ४०० वर्ष के लगभग बादशाही सिक्कों में हिन्दी अक्षर रहते आये थे जिनमें बादशाहों के नाम तथा और भी कई विशेषण मुद्रित होते थे।

शहाबुद्दीन ने अपनी दिग्विजय में हिन्दुओं और हिन्दू धर्म का सर्वनाश तो किया परन्तु सिक्कों में जो हिन्दी अक्षर और राज्य चिन्ह हिन्दू राजाओं के समय से चले आते थे वे सब ज्यों के त्यों रहने दिये। हम यहां उनका भी कुछ नमूना हिन्दी प्रेमियों के भेंट करते हैं।

नं०	नाम बादशाह	हिन्दी अक्षर
१	मोइज्जुद्दीन मोहम्मद साम वा शहाबुद्दीन गोरी	१ स्री महमद विनसाम २ स्री मद हमीर श्री महम्मद साम
२	महमूदविनसाम	स्री हमीर
३	ताजुद्दीन पलदोज़	स्री हमीर
४	शमशुद्दीन पलतमाश	स्री हमीर स्री समसदिण
५	रूक्नुद्दीन फिरोज़शाह	स्री हमीर, सुरितां श्री रुकणदीण
६	रज़िया बेगम	स्री हमीर, स्री सामंतदेव
७	मुइज्जुद्दीन बहरामशाह	स्री मुइजु

नं०	नाम बादशाह	हिन्दी अक्षर
८	अलाउद्दीन मसऊद-शाह	स्री हमीर, स्री अलावदीन
९	नासिरुद्दीन महमूद-शाह	स्री हमीर
१०	गयासुद्दीन वलवन	स्री सुलतान गयासुद्दी
११	मुइज्जुद्दीन कैकुवाद	स्री सुलतान मुइजुद्दी
१२	जलालुद्दीन फिरोज खिलजी	स्री सुलतान जलालुद्दी
१३	गयासुद्दीनतुगलशाह	स्री सुलतान गयासुद्दी
१४	शेरशाहसूर	स्री शेरशाह
१५	शेरशाहसूर (सलीम शाह)	स्री इसलामशाह
१६	अकबरशाह	स्री राम

अकबर बादशाह ने सब बादशाहों से बढ़ कर यह काम किया कि अपने अनेक सिक्कों के साथ एक सिक्का ऐसा भी चलाया था कि जिसमें न तो अपना नाम था और न कोई राज चिन्ह था केवल एक तर्फ तो श्री राम और सीता जी की मूर्ति थी जिस पर नागरी में राम नाम लिखा था और दूसरी ओर इलाही महीना और इलाही सन था। ऐसे सिक्कों की छाप लखनऊ की छपी हुई आईन अकबरी में है जिसमें सीधी तरफ तो रामचन्द्र जी की मूर्ति इस आकृति से बनी है कि आप मुकुट धारण किये और धनुष वाण चढ़ाये जा रहे हैं पीछे सीता जी हैं उनके हाथ में भी एक छोटी सी ढाल है उलटी ओर फारसी में इलाही ५० मुद्रित है। उस मोहर के टकसाल में पड़ने की तारीख है। बहसन महीना इलाही सन ५० का हमारी एतिहासिक जंत्री में चैत्र सुदी १ रविवार संवत १६६२ ता० १० मार्च सं० १६०५ को लगा था।

सरकारी कागजों में हिन्दी।

काज़ी लोग जो मुकदमों के फैसले लिखते थे और काननगो जो सरकारी कागज और परवाने निकालते थे उनमें भी कभी २ हिन्दी लिखी जाती थी। ज़मीन संबंधी फैसलों में ऐसे हिन्दू वादी प्रतिवादी के समझाने के लिये जो फारसी पढ़े नहीं होते थे फारसी के नीचे कुछ सारांश हिन्दी में लिख दिया जाता था। गांव वालों के नाम के परवाने, दस्तक, और इत्तलाना में वगैरह बहुधा हिन्दी में होते थे। इस हिन्दी की रोक किसी ने नहीं की औरंगजेब के समय में भी यह चलती रही मैंने ऐसे कई कागज देखे हैं।

साहित्य।

हिन्दी साहित्य का आदर मुसलमान बादशाहों में उनका राज होते ही हो गया था। सुलतान महमूद गजनवी की तवारीख में लिखा है कि जब उसने सन ४१३ हिजरी (संवत १०८०) में कालंजर पर चढ़ाई की थी तो वहां के राजा नंदा ने उसकी प्रशंसा में १ हिन्दी शेर (दोहा) लिख कर भेजा था। सुलतान ने उसको अरब और अजम (ईरान) के विद्वानों को जो उसकी सेना में थे दिखलाया सब ने सराहना की और बहुत दाद दी। तब सुलतान ने भी अपना बहुत गौरव मान कर (क्योंकि एक बड़े स्वतंत्र राजा ने उसकी प्रशंशा की थी) १५ किलो की हकूमत, का फरमान जिनमें १ कालंजर भी था बहुमूल्य पदार्थों सहित उसके पारितोषिक में राजा के पास भेजा और उसका राज्य ज्यों का त्यों उसी के पास छोड़ कर गजनी की तरफ कूच कर दिया।

तवारीख में यह नहीं लिखा है कि उस दोहे में क्या भाव था परन्तु इसमें संदेह नहीं है कि उसमें ऐसा चमत्कार रहा होगा कि जो हिंद, अरब, और अजम (इरान) के विद्वानों को पसंद आ गया और सुलतान ने रीझ कर उसकी ऐसी कदर की कि राजा का राज्य भी नहीं लिया जिसके, वास्ते वह गजनी से इतनी दूर चल कर आया था, और इसके सिवाय १४ किले और उसको दे गया। इस वृतांत से सुलतान महमूद की हिन्दी के प्रति प्रीति स्पष्ट रीति से सिद्धि होती है और उससे ये बातें निकलती हैं:-

मर्यादा
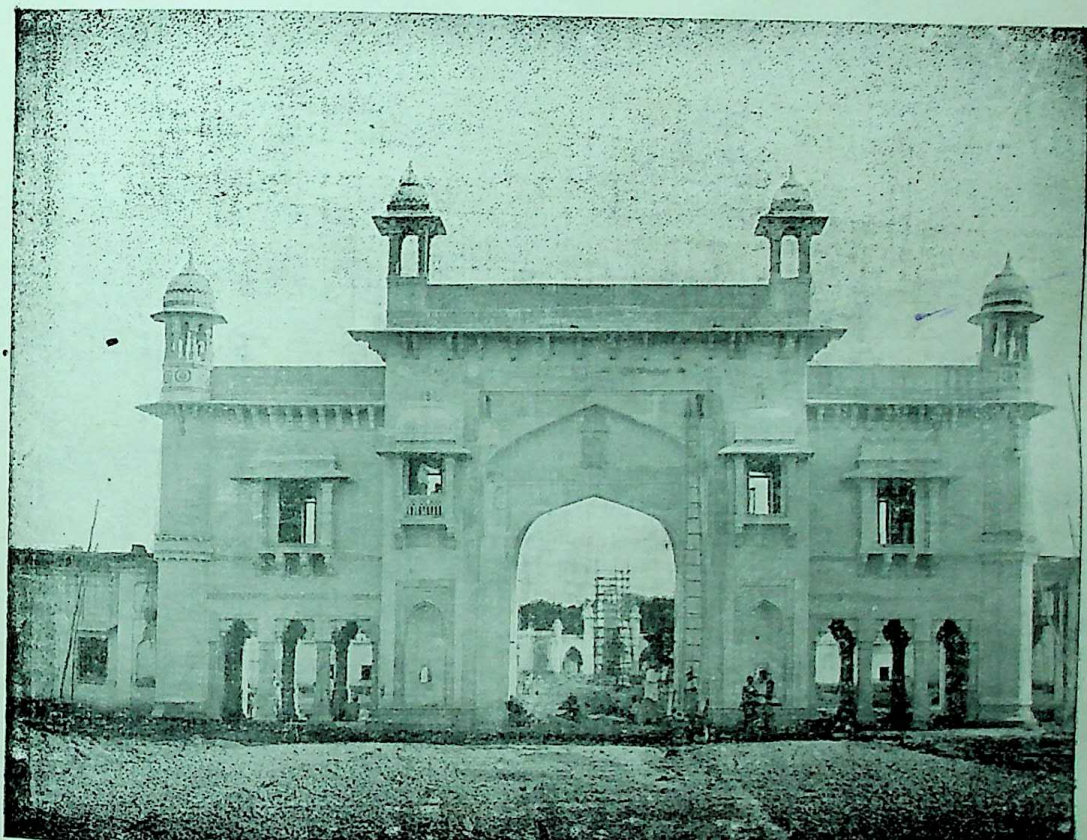
प्रदर्शिनी का बड़ा फाटक।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

मर्यादा
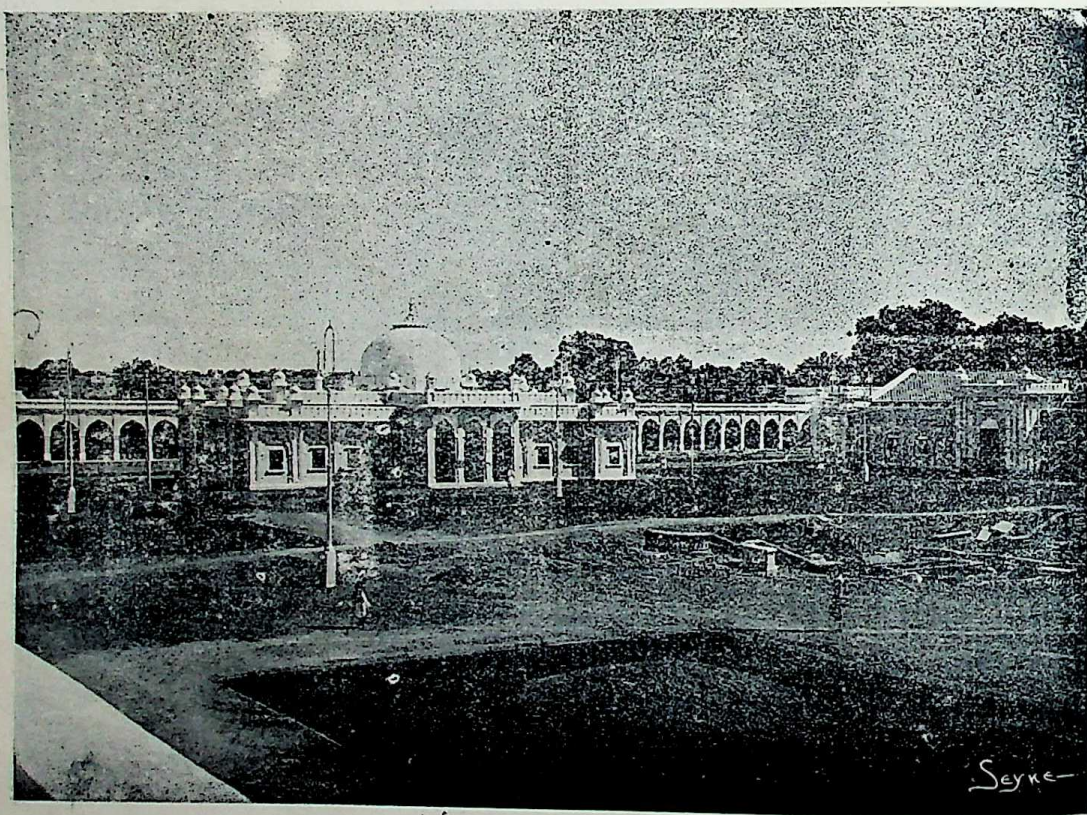
पोष्टाफिस, तारघर इत्यादि ।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग ।

मर्यादा
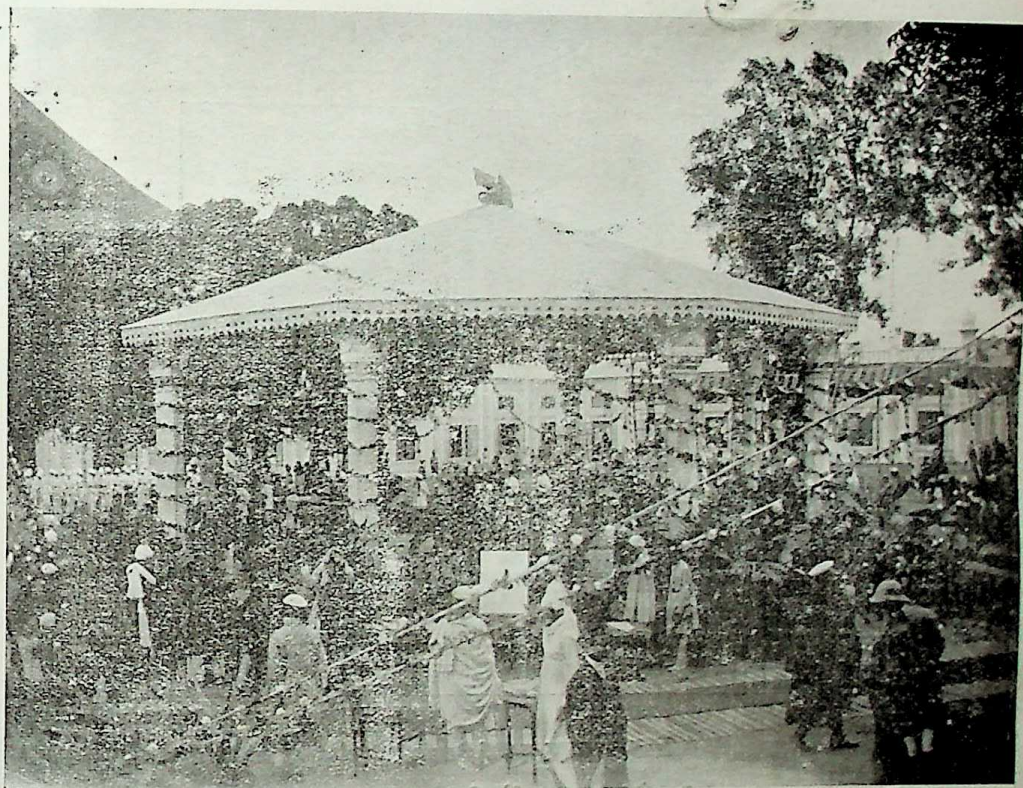
गत संख्या में पाठक महारानी विक्टोरिया के घोषणा स्तम्भ की नेह का हाल पढ़ चुके हैं यह चित्र उसी समय का है।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

मर्यादा
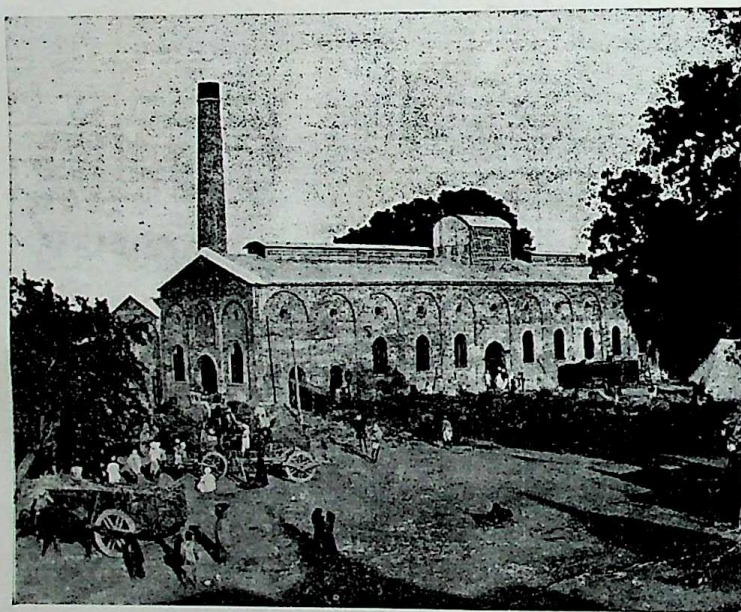
पावर हाउस।
(इसी में इञ्जन आदि हैं जिनके द्वारा प्रदर्शिनी बिजली से प्रज्वलित दीखती है)

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।
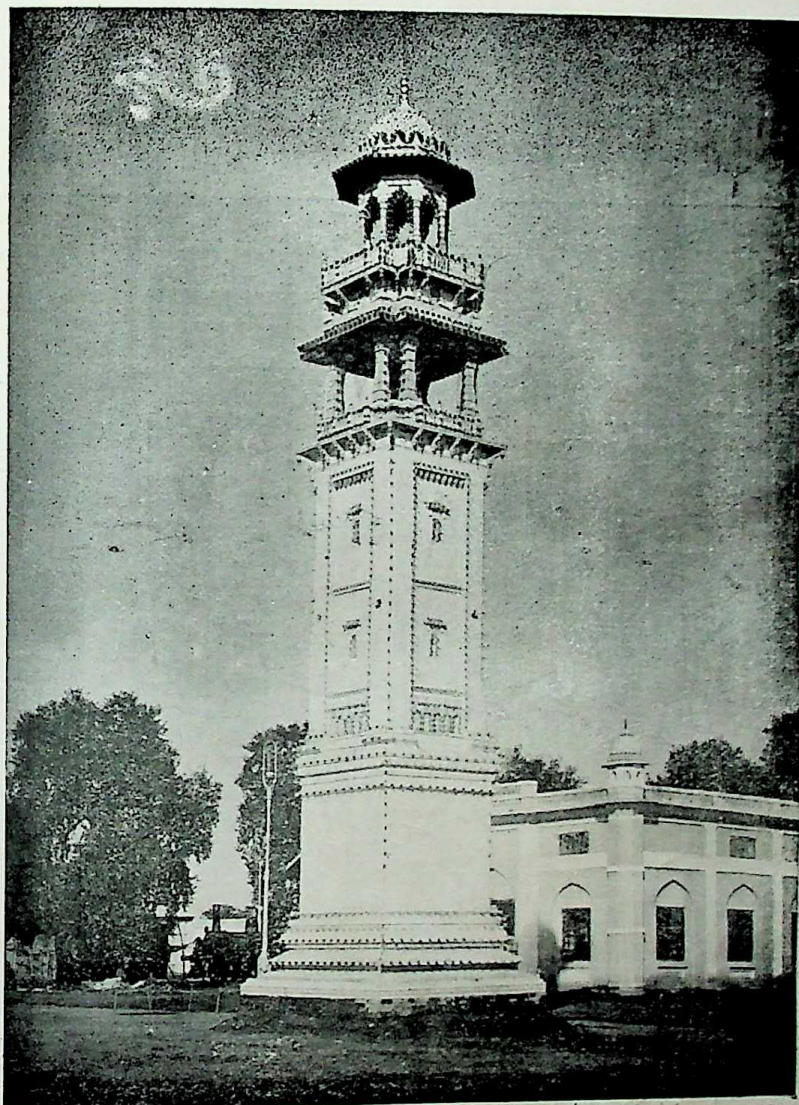
क्लाक टावर।

(जब चित्र लिया गया था उस समय इस में घड़ी नहीं लगी थी। इस में नीचे ऊपर तक बिजली की रोशनी है)।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।
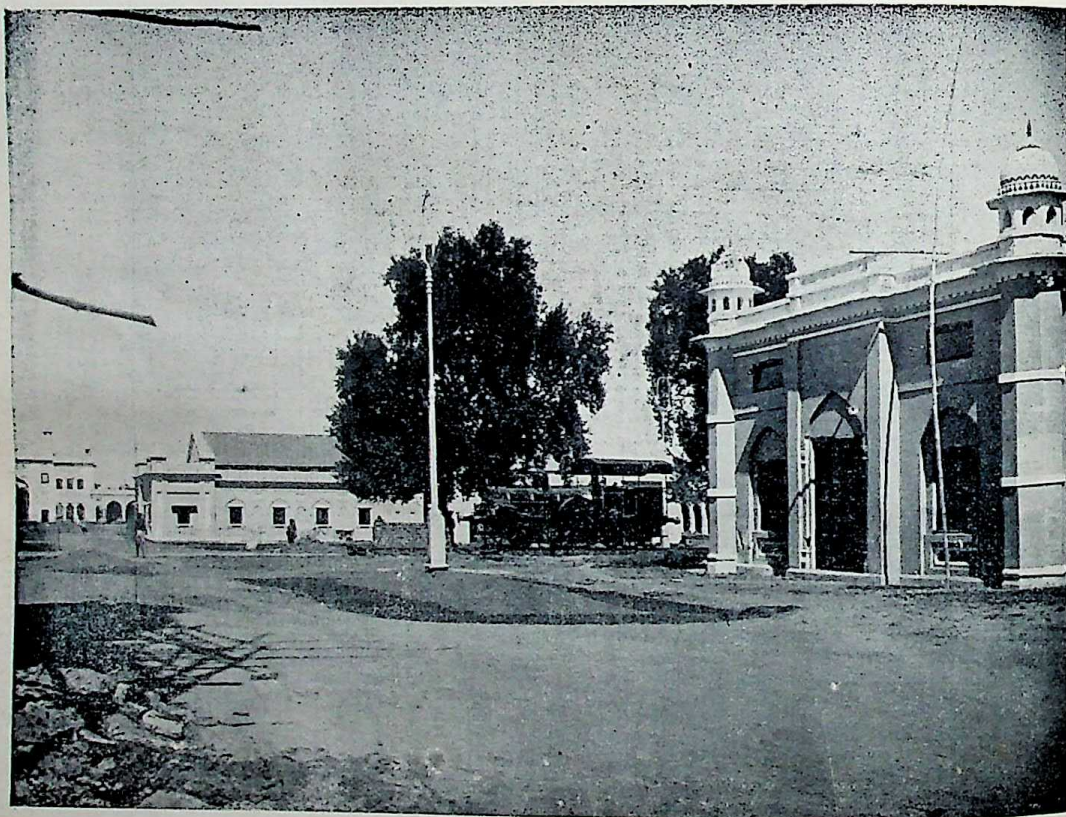
ज्युएलरी कोर्ट (बहुमूल्य आभूषणादि का विभाग) ई० आई० आर० का इंजन। नेटिव स्टेट्स विभाग
(यहां पर देशी राजाओं के यहां से आई हुई वस्तुएं रक्खी हैं)

अभ्युदय प्रेस–प्रयाग।

प्रदर्शिनी के भीतर से फाटक इत्यादि का चित्र।
(इसमें चारो तरफ़ बिजली की रोशनी है और रात में इसका दृश्य बहुत मनोहारी होता है)

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।
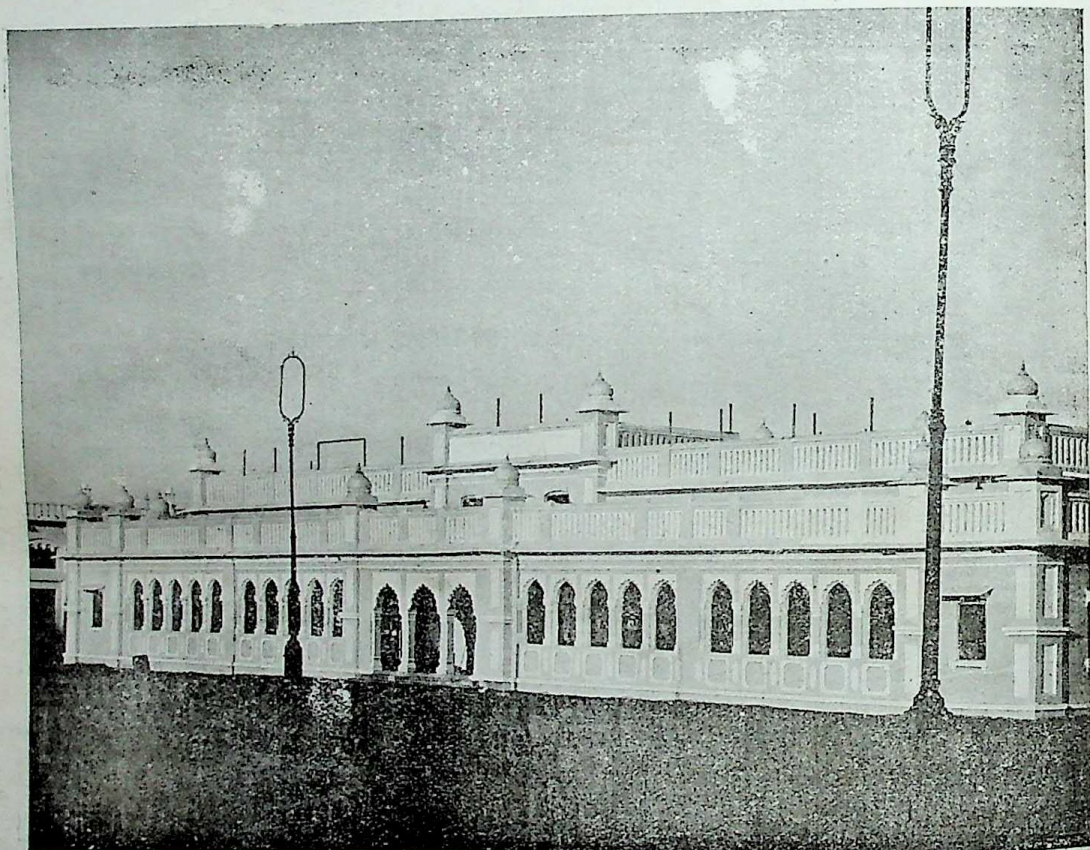
लेडीज़ कोर्ट।
इसके भीतर स्त्रियों की कारीगरी के बहुत अच्छे नमूने रक्खे गये हैं।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।
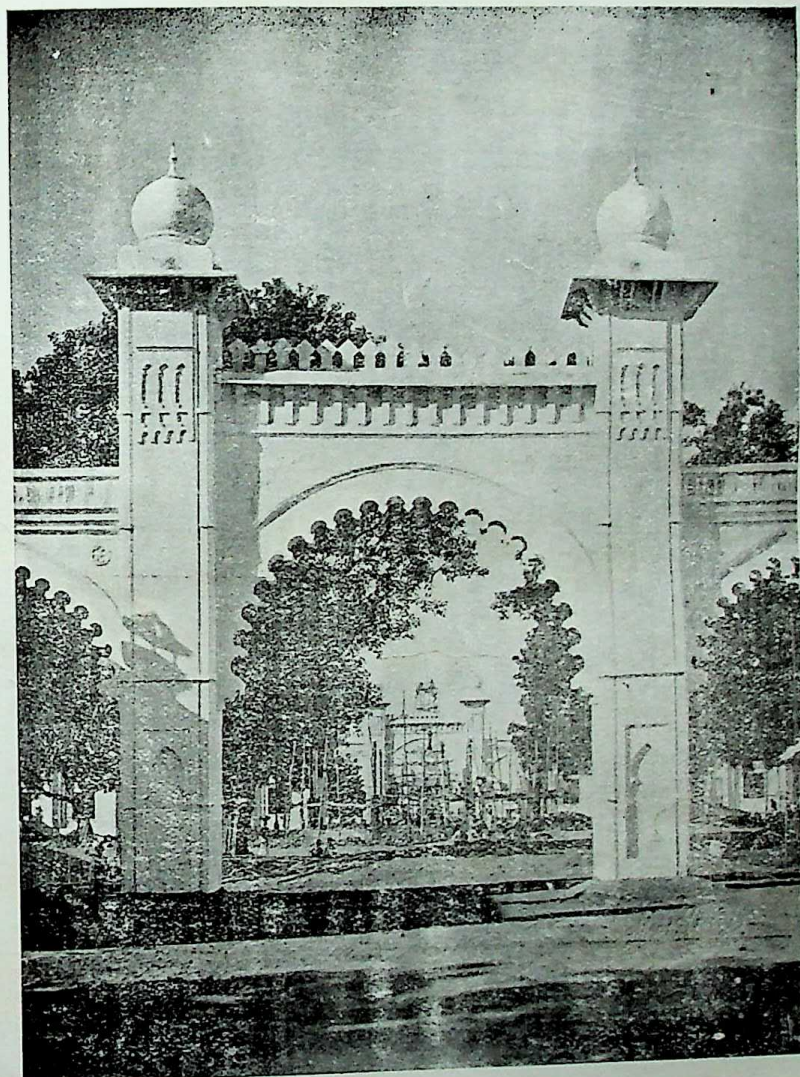
प्रदर्शिनी का फाटक।

(भीतर की तरफ क्लाकटावर बन रही है)

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।
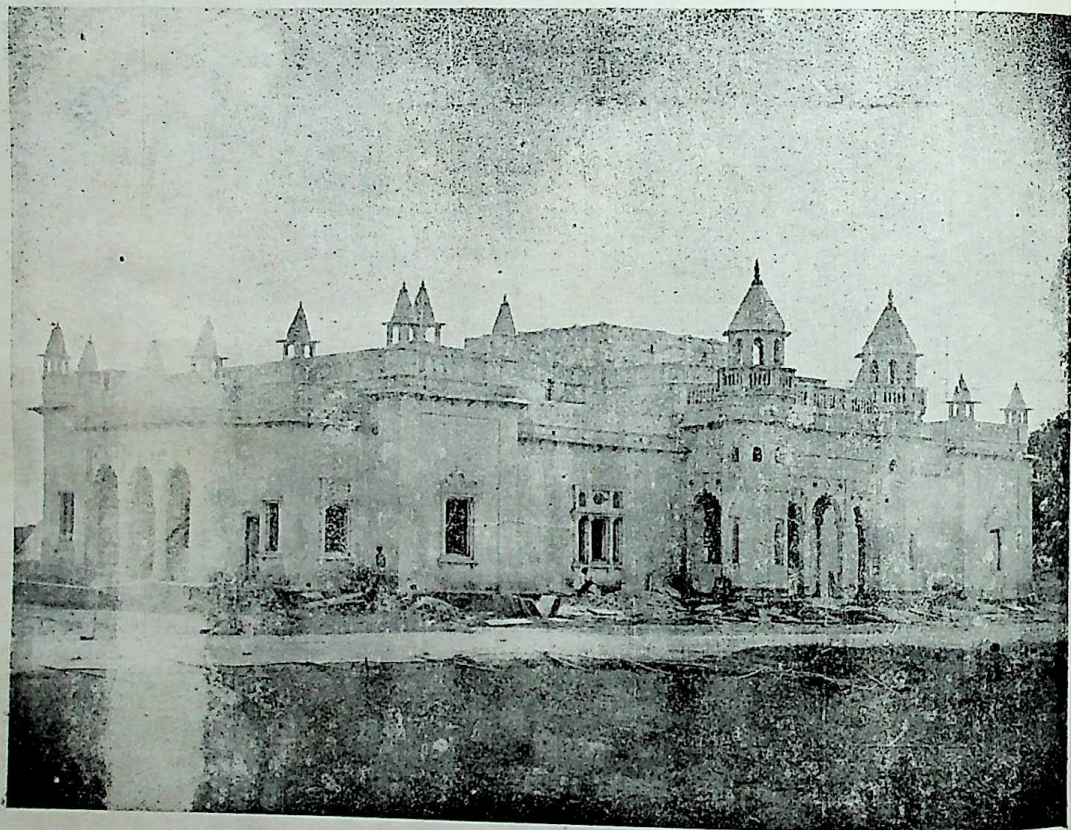
जंगलात का विभाग।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

मर्यादा

कृषि विभाग मंडप।
(आबपाशी आदि की कलें इसके भीतर दिखाई गईं हैं—इसके बाहर की तरफ
कृत्रिम झील दिखलाया गया है)

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।
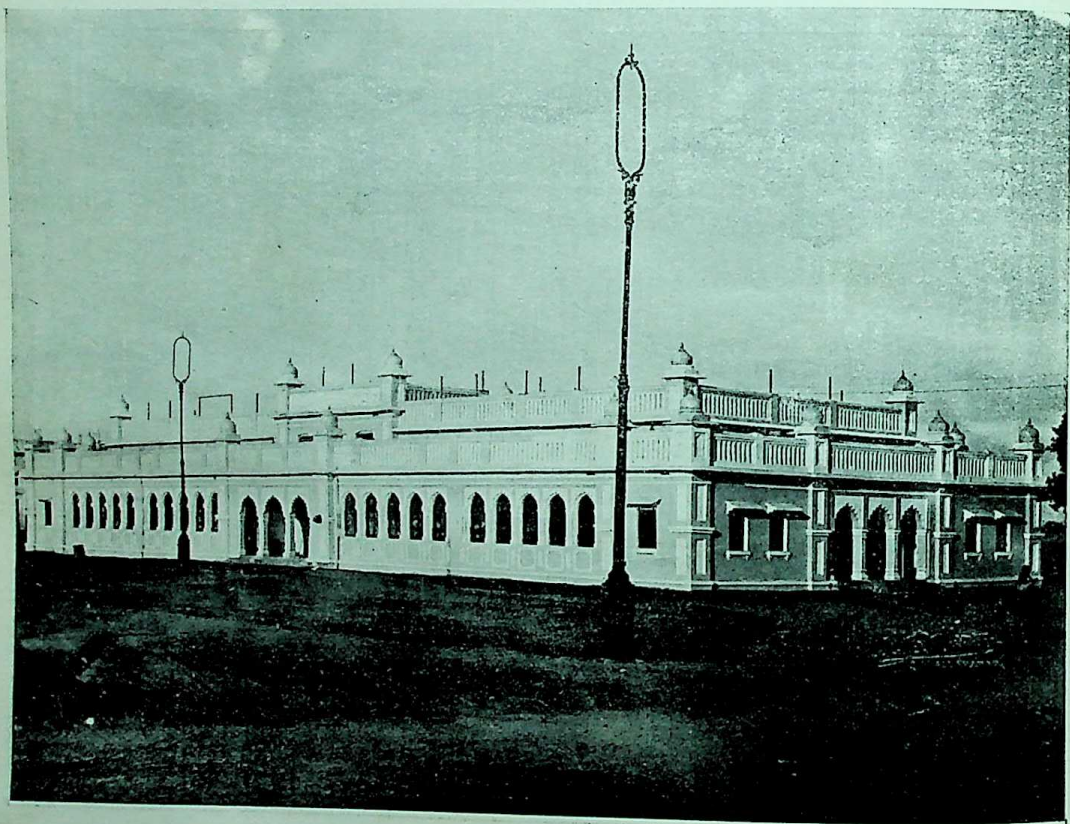
शिक्षाविभाग मंडप।
(यहां शिक्षा सम्बन्धी सभी चीज़ों का समावेश है)

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

१—हिन्दी की कद्रदानी।

२—हिन्दी के विद्वानों को अपने पास रखना

३—एक शत्रु राजा की हिन्दी कविता को अपने गौरव का हेतु समझना।

४—उसकी रीझ में राजा को इतना बड़ा पारितोषिक देना जो दोनों के मान सन्मान का सूचक था।

यदि सच पूछो तो इन सब बातों का मूल कारण हिन्दी भाषा और उसकी कविता का प्रभाव था जिसने महमूद जैसे कट्टर तुर्क बादशाह के दरबार में अपना महत्व दिखा कर अरब और अजम के विद्वानों को मोहित कर लिया और उपहार भी ऐसा पाया कि वैसा फिर कभी किसी समय में किसी को नहीं मिला क्योंकि प्रथम तो काळंजर का राज्य नष्ट होने से बच गया दूसरे राजनंदा को अद्वितीय मान और लाभ प्राप्त हुआ जिससे उसका राज्य और दृढ़ होगया तीसरे मुसळमान भी हिन्दी भाषा के रसिया बन कर स्वयं उसमें कविता करने लगे जिसका पता भी उसी बादशाह के वंशजों की तवारीखों से लगता है जिनमें लिखा है कि उनके समय में सुलेमान का पोता "साद" का बेटा मसऊद हिंदी भाषा का बड़ा विद्वान् और कवि था उसने जो दो दीवान फारसी के बनाये थे तो एक हिन्दी का भी बनाया था (फारसी भाषा में किसी कवि की सब कविता के संग्रह को दीवान कहते हैं)।

पंजाब में महमूद गजनवी का राज्य सं० १०७० में हो गया था और उसी समय से मुसलमान लोग हिन्दी बोळने ळगे थे और यही कारण मसऊद के कवि हो जाने का था।

जामेइळाही पाता, (Sic) से जो सुळतान शमशुद्दीन के राज में सं० १२६८ के आस पास बनी है जाना जाता है कि अन्हळपुर पट्टन के राजाधिराज सोळंखीसिद्ध राज जयसिंह देव के समय में जिसने सं० ११५० से संवत १२०० तक राज किया था कुछ हिन्दुओं और फरासियों ने मरहट्ठों से खंभात के कई मुसलमानों को मार डाला था और उनकी एक मसजिद भी गिरा दी थी। मसजिद का "खतीब" (उपदेशक) कुतुबअली कवि था वह यह सब हाल हिन्दी कविता में लिख कर राजा के पास ले गया। राजा ने निर्णय करके मसजिद को फिर से बनाने के लिये रुपया दिला कर अपराधियों को दंड दिया। इधर दिल्ली में तुर्कों का राज हो जाने से जो संवत १२५० में हुआ था मुसलमानों में हिन्दी का प्रचार और बढ़ा जिनमें अमीर खुसरो जैसे हिन्दी भाषा के कवि कोविद उत्पन्न हो गये जिनकी मधुर और रसाल कविता ने मुसलमानों को हिन्दी साहित्य का रसिया बना दिया। खुसरो के समकालिन सुलतान फिरोज तुगलक के राज्य में मुल्ला दाऊद ने "नूरक और चंदा" के प्रेम का हिन्दी काव्य बनाया था जिसको उस समय के लोग बड़े प्रेम से पढ़ते थे और शेख "तकीउद्दीन" उपदेशक भी दिल्ली की जुम्मा मसजिद में व्याख्यान देते हुए उसके दोहे और कवित्त पढ़ कर लोगों को मुग्ध कर देता था। एक दिन किसी मोलवी ने कहा कि मसजिद में यह हिन्दी कविता क्यों पढ़ी जाती है तो शेख ने कहा कि इसके भाव सब सूफियों और कुरान की शिक्षाओं से मिलते हुए हैं। इस बात से जो मुल्ला अब्दुलकादिर बदाऊनी ने अपने इतिहास में लिखी है यह सिद्ध होता है कि उस समय हिन्दी की कविता मुसलमानों में खूब समझी जाने लगी थी और फिर कोई समय ऐसा नहीं था जो मुसलमान कवियों से खाली रहा हो। हमको हिन्दी पुस्तकों की खोज में कई मुसलमान कवियों का पता लगा है और कई ग्रंथ भी उनके रचे हुये मिले हैं परन्तु विस्तार भय से हम यहां केवल उनके नाम, कंचित परिचय सहित प्रमाण सरूप लिख देते हैं—

१ अकबर (बादशाह) २ अबर खां ३ अनीस ४ अबदुल रहमान ५ अलहदाद ६ अलीमन ७ अहमद ८ आजम ९ आदिल १० आरिफ़ ११ आलम १२ आसिफ़ १३ इन्शा १४ कमीज १५ करीम १६ काज़ी अकरम १७ खांन १८ खाने

आलम (नवाब) १६ खांन सुलतान २० खुसरो २१ गुलम्मी २२ जमाल २३ जलील २४ जानजाना २५ जुलकरनैन २६ जैनुद्दीन २७ तान २८ तानसे २६ दाऊद ३० दानयात (शाहजादा) ३१ दानिशमन्द खां ३२ दिलदार ३३ दिलाराम ३४ नज़ीर ३५ नबी ३६ नयाज़ ३७ निवाज ३८ निशात ३६ पन्थी (मिर्जारोशन नमीर) ४० प्रेमी (शाह वरकत) ४१ फरीद ४२ फजायल खां ४३ फहीम ४४ वाजीद ४५ वारक ४६ मदनायक (निजामुद्दीन विलग्रामी) ४७ मलिक मुहम्मद जायसी ४८ मलिक नूर मुहम्मद ४६ महबूब ५० मीर माधो ५१ मीररुस्तम ५२ मुवारक ५३ मुहम्मद ५४ रज्जवजी ५५ रहमतुल्लाह ५६ रहमान ५७ रहीम (नव्वाब ख़ानख़ाना) ५८ रसनाहक (तालिब अली) ५६ रसिया (नजीव ख़ां) ६० लतीफ ६१ वजहने ६१ वहाव ६२ वारिद ६४ साहिब ६५ सुलतान ६१ सुलतान पठान ६७ शाह मुहम्मद ६८ शाह शफी ६६ शाह हादी ७० शेख़ ७१ शेख़ गदाई ७२ शेख़ सलीम ७३ हाशम बीजपुरी ७४ हम्मत ख़ां ७५ हिम्मत बहादुर (नव्वाब) ७६ हुसेन ७७ हुसेन मारहरी ७८ हुसेनी।

इनमें कई २ तो रहीम और ख़ान आलम जैसे आप भी कवि थे और कवियों की कदर भी खूब करते थे। सम्भव है कि इसके सिवाय और भी मुसलमान कवि हुए हों। अमीर अली मीर जैसे अच्छे कवि मुसलमानों में और भी विद्यमान् हैं।

प्रायः सब ही मुसलमान बादशाह हिन्दी भाषा और हिन्दी कविता को समझते थे और कई एक तो पढ़ते भी थे और स्वयम् कविता भी करते थे। अकबर बादशाह की फुटकर कविता बहुधा कवियों को याद है। जहांगीर की कविता तो कोई नहीं सुनी गई परन्तु इसमें संदेह नहीं है कि हिन्दी के अच्छे २ दोहे और कवित्त उसको याद थे। उसने अपनी दिनचर्य्या में जिसका नाम तुजुक जहांगीरी है कई जगह ऐसी बातें लिखी हैं कि जिनसे उसको हिन्दी कविता का याद होना प्रतीत होता है। वह सम्वत् १६७४ के वृतान्तों में कुमुदनी और कमल की व्याख्या करते हुए कहता है कि "यह बंधी हुई बात है कि कमल दिन को फूलता है और रात को सुकड़ जाता है कुमुदिनी दिन को मुंद जाती है और रात को खिलती है भौंरा सदा इन फूलों पर बैठता है और इनके भीतर जो मिठास होती है उसके चूसने के लिये इन के प्यालियों में घुस जाता है। बहुधा ऐसा होता है उसी में कि कमल मुंद जाता है और भौंरा सारी रात बैठा रहता है इसी तरह कुमुदिनी में भी; फिर उन के खिलने पर भौंरा निकल कर उड़ जाता है इसी लिये हिन्दुस्तान के कवीश्वरों ने उसको बुलबुल के समान फूलों का रसिया मान कर अपनी कविताओं में उत्तम युक्तियों से उस्का वर्णन किया है।

"तानसेन कलावंत मेरे बाप की सेवा में रहता था वह अपने समय में अद्वितीय ही नहीं था वरन किसी समय में भी उसके तुल्य गवैया नहीं हुआ है। उसने अपने ध्रुपद में नायका के मुख को सूर्य्य की, उसके आंख खोलने को कमल के खिलने और उसमें से भौंरे के उड़ने की उपमा दी है। दूसरी जगह कनखियों से देखने को भौंरे के बैठने से कमल का हिलना कहा है"।

अब दो एक दृष्टान्त इस बादशाह के कवियों को निहाल करने के भी लिखे जाते हैं।

(१) संवत १६६५ के वैशाख बदी ११ के वृत्तांतों में लिखा है कि राजा सूरज सिंह* हिंदी भाषा के एक कवि को भी लाया था जिसने मेरी प्रशंसा में इस भाव की कविता भेंट की कि जो सूरज के कोई बेटा होता तो सदा ही दिन बना रहता रात कभी नहीं पड़ती क्योंकि सूरज के अस्त होने पर यह उसकी जगह बैठ कर जगत को प्रकाशमान रखता। परमेश्वर धन्य है जिसने आपके पिता को ऐसा पुत्र दिया जिससे उनके अस्त होने पर लोगों में शोक रूपी रात्रि नहीं

* मारवाड़ का राजा।

व्यापी, सूरज बहुत पश्चात्ताप करता है कि हाय मेरा भी कोई ऐसा ही बेटा होता जो मेरी जगह बैठ कर पृथ्वी में रात नहीं होने देता जैसा कि आपके भाग्य के चमत्कार और न्याय के तेज से ऐसी भारी दुर्घटना हो जाने पर भी संसार इस प्रकार से प्रकाशमान हो रहा है कि मानो रात का नाम व निशान ही नहीं है"।

ऐसी नई युक्ति हिन्दी भाषा के कवियों की कम सुनी गई थी मैंने इसके इनाम में इस कवि को हाथी दिया। राजपूत लोग कवि को चारण कहते हैं।

(२) वैशाख वदी ३० मंगलबार सं० १६७५ को जहांगीर ने अहमदाबाद गुजरात में वृखराय भाट को १०००) दिये और उसके विषय में लिखा कि "यह गुजराती है इस देश की बातें खूब जानता है इसका नाम बूढा था। मेरे जी में आया कि बूढे आदमी को बूढा कहना अनमिल वात है और विशेष करके उस दशा में जब कि मेरी कृपा हरा भरा होकर फूल फल से लद गया हो। इस लिये मैंने हुक्म दिया कि इसको सब लोग वृखराय कहा करें वृख (वृक्ष) हिन्दी में दरख्त को कहते हैं"।

जहांगीर का बेटा शाहजहां हिन्दी बोलने और हिन्दी कविता के समझने में अपने बाप और दादा से वढ गया था। इन मुगल बादशाहों की मातृभाषा तो तुर्की थी और घर में तुर्की ही बोला करते थे परन्तु हिन्दुस्तान में राज्य करने से हिन्दी भी बोलने लगे थे और शाहजहां की मातृभाषा तो मानो हिन्दी ही थी। जब वह जन्मा था तो अकबर बादशाह ने उसे अपनी बड़ी बेगम सुलतान रुकैया को सौंप दिया था कि तुम्हारे सन्तान नहीं है इसी को अपना बेटा समझ कर पालो। बेगम की बोली तुर्की थी इस लिये वह बादशाह से तुरकी ही बोलती थी और बहुत चाहती थी कि यह भी तुरकी ही बोला करे परन्तु शाहजहां को तुरकी पसन्द नहीं थी और न उसका जी तुरकी बोलने में लगता था। मुल्ला अबदुल हमीद ने बादशाहनामे में लिखा है कि "हजरत बादशाहजादे तो फारसी बोलते हैं और जो लोग फारसी नहीं जानते उनसे हिन्दुस्तानी बोली में बातें करते हैं कुछ तुरकी भी समझते हैं परन्तु बोलते कम है बोलने का अभ्यास अधिक नहीं है। बचपन में इस भाषा की तरफ कुछ रुचि नहीं थी। मिरजा हिन्दाल की बेटी और बाबर बादशाह की पोती रुकैया सुलताना जो बादशाह के लालन पालन को नियत हुई थी उस की बोली तुरकी थी और वह बह महल में तुरकी ही बोला करती थी।

वह बादशाह को बलात्कार तुरकी बोलना सिखलाती थी परन्तु बादशाह को यह बोली नहीं सुहाती थी इसलिये बहुधा तुर्की शब्द तो समझ लेते थे किन्तु बोली अच्छी तरह समझ में नहीं आती थी। एक दिन जहांगीर बादशाह ने प्यार से कहा कि 'जो कोई मुझ से पूछे कि वह क्या उत्तम गुण बाबा खुर्रम (शाहजहां) में नहीं है तो मैं यह कहूंगा कि वह तुरकी नहीं बोलता है। "बादशाह ने बड़े अदब से अपने बाप को उत्तर दिया 'हज़रत के प्रताप से यह गुण भी प्राप्त हो जावेगा, परन्तु मैं अपने को बिलकुल निर्दोष नहीं बनाया चाहता था कि कहीं मुझपर लोगों की नजर न लग जाए और इसी लिये इस कमी को पूरा नहीं किया"।

निदान मुल्ला ने भी वाक्य चपलता से अलंकार के रूप में वही बात कही जो हम ऊपर कह आये हैं कि शाहजहां तुरकी नहीं बोलता था हिन्दी बोलता था।

शाहजहां को हिन्दी कविता से भी अधिक प्रेम था। वह अपने दरबार के कवीश्वरों में से जगन्नाथराय राय, त्रिशूली, हरनाथ, महापात्र, और सुन्दर कविराय की कविता बहुत पसन्द करता था और इनको बड़े २ इनाम और एकराम देता था।

कहते हैं कि जोधपुर के महाराजा जसवन्त सिंह को शाहजहां बादशाह के सत्संग से ही कविता करना आया था। एक समय शाहजहां ने महाराजा से १ कविता का अर्थ पूछा था जब महाराजा से वह पूरा २ न हो सका तो तुरन्त ही मिश्र को हुक्म दिया कि राजा को कविता करना तथा समझना सिखाओ।

शाहजहां का बेटा दाराशिकोह तो हिन्दी और संस्कृत के समझने में अपने बाप दादाओं से भी बढ़ कर निकला था। उसने स्वयं उपनिषदों का उल्था फारसी में लिखा था। औरंगजेब हिन्दुओं का द्वेषी होकर भी हिन्दी भाषा और हिन्दी कविता से विमुख नहीं रहा था। आगरे की छपी हुई मुआसिर आलम गिरी में लिखा है कि १० जमादिउल अव्वल ११०१ (फाल्गुण सुदी ११ संवत ११४६) को बादशाह के डेरे दक्षिण में कृष्णा नदी गाव बदरी के पास एक दिन सलामत खां मीर तुज़क ने बादशाही अदालत की कचहरी में पहिले एक आदमी बादशाह की नजर से गुजराया कि यह अर्ज करता है कि मैं बंगाल के दूर देश से चेला होने के लिये आया हूं सो मेरा मनोरथ पूरा होना चाहिये। बादशाह ने मुसकरा कर खीसे में हाथ डाला और १००) सोने और चांदी के चरन सलावत खां को देकर फरमाया कि इसको दे दो और कहो कि हम से जो रोकड लाभ लिया चाहता है वह यह है। जब खां ने यह रकम उस को दी तो वह बखेर कर नदी में कूद पड़ा खां चिल्लाया कि यह तो डूबता है बादशाह के हुक्म से तैराक लोग उसको नदी में से पकड़ लाये। तब हज़रत ने दरवाज़े के भीतर मुंह करके सरदार खां से कहा कि एक आदमी पंजाब से आया है उसके सिर में यह झूठा ख्याल समाया है कि मेरा मुरीद (चेला) हो जाय।

दोहरा—चूहा खंडा न भावे तरकल बन्धी जञ्ज।
तोले नन्दी मादर वेंदी खरी न लज्ज ॥१॥

इसको मियां फ़र्रुख सरहन्दी के पास ले जाओ और कहो कि इसे मुरीद कर लो और टोप पहना दो।

बड़े खेद की बात है कि यह दोहरा जिसके लिये इतनी कथा लिखी गई है ठीक २ पढ़ने में नहीं आता और इसका कारण यही है कि फारसी लिपि में हिन्दी भाषा सही २ नहीं लिखी जाती।

कलकत्ते की छपी हुई प्रति में यह दोहा यों लिखा है।

"टोपी लेदें बावरी देदें खरे निलज्ज।
चूहा खडु न मावळी तो कल बन्धें छज्ज।

तज़किरे चग़त्ता में भी यह दोहा संदिग्ध लिखा हुआ है। रुक़ातआलमगीरी में लिखा है कि एक समय शाहज़ादा मुहम्मद आज़म ने कुछ आम बाप के पास भेजे थे और उनके नाम रखने की प्रार्थना की थी। औरंगजेब ने बेटे को लिखा कि तुम स्वयम् विद्वान हो कर बूढ़े बाप को ऐसी क्यों तकलीफ़ देते हो खैर तुम्हारी खातिर से सुधारस और रसनाविलास नाम रक्खा गया।

बहुत से हिन्दी के हिन्दू कवियों ने भी मुसलमान बादशाहों से हिन्दी कबिता पर बड़े २ मान सन्मान और इनाम पाये हैं अकबरादि मुग़ल बादशाहों में कविराय का एक पद नियत हो गया था जो हिन्दू कवियों को मिला करता था। राजा वीरबर को सब से पहिले ही कविराय का ख़िताब मिला था वीरबर के कविराय होने से पहिले एक कविराय और भी था जिसको बादशाह ने उड़ीसे के राजा मुकुन्ददेव के पास भेजा था। शाहजहां के समय में सुन्दर कविराय और जगन्नाथ महा कविराय थे। दूसरा खिताब महापात्र का भी था जो नाहर और हरनाथ वग़ैरह कवियों को मिला था। ऐसे ही और भी बादशाहों के राज्य में हिन्दू और मुसलमान कवि प्रतिष्ठा पाते रहे हैं जिनका वर्णन करने से लेख बहुत बढ़ जायगा। सारांश यही है कि मुसलमान बादशाहों और बिशेष कर के मुग़लों के समय में हिन्दी कविता ने उनकी

और उनके उदारता से बहुत उन्नति पाई है और अच्छे अच्छे हिन्दू मुसलमान कवि जिन में से १६५ नाम सुजान चरित्र में लिखे हैं इन्हीं के समय में हुए थे।

हिन्दी तथा बृज भाषा के साथ २ ही डिंगल कविता की उन्नति भी मुग़ल बादशाहों के समय में भी हुई है जो राजपूतों और राजपूताने में विशेष कर के प्रचलित है। जैसे हिन्दी में कई भाषाओं के मिलने से उर्दू बोली निकल पड़ी है वैसी ही मारवाड़ी बोली में भी कई बोलियां मिल डिंगल भाषा बनी है जिसमें राजपूताने के चारण भाट और सेवक जाति के कवि कविता करते हैं।

डिंगल कविता पहिले तो बहुत विस्तृत नहीं थी परन्तु जब मुगल बादशाहों के समय में राजपूतों का ऐश्वर्य्य बढ़ा तो उसके साथ ही साथ डिंगळ भाषा के कवियों के भी भाग्य खुल गये जो राजाओं और मुगळों के प्रसंग से बादशाहों तक पहुंच कर उनसे और उनके उदार अमीरों से भी अनगढ़ *कविता के पारतोषिक पाने लगे और डिंगल भाषा राजपूताने के जंगलों से निकल सभ्य बादशाहों के भी मूंह लगने लगी।

चारणों के कहने से अकबर बादशाह भी डिंगल भाषा के कवि थे क्योंकि वे उनकी कवित भी पढ़ा करते थे।

जहांगीर ने एक चारण की कविता का भावार्थ अपना दिनचर्या में लिखा है वह डिंगल भाषा में ही था। शाहजहां और औरंगजेब भी डिंगल भाषा जानते थे ऐसा चारण के ग्रन्थों से पाया जाता है। नवाब खानखाना तो डिंगल भाषा का रसिक ही नहीं था बरन उसकी कविता भी करता था। डिंगल कवियों में उसका भी नाम लिया जाता है। शारांश यह है कि डिंगल कविता भी मुगल के समय में उन्नत से विमुख नहीं रही थी इस भाषा के नीचे लिखे प्रधान २ कवि मुग़ल बादशाहों के समय में ही हुए हैं।

१ पथिल (पृथ्वीराज राठौर) (२) लक्खा, बारहट (३) उरसा, आड़ा (४) सूराचन्द्र, टापरिया (५) झूला साहयं (६) हापा (७) माला सांदू (८) शंकर, बारहट (९) रंग रेला बीठू (१०) ईश्वरदास बारहट (११) जाड़ा मेडू (१२) ओदा (१३) आसा बारहट (१४) राजसिंह (१५) अल्लू (१६) पाड़खान आडा (१७) किसना आसिया (१८) हेम सामोर (१९) केशवदास गाडण (२०) जगा खिड़िया (२१) हुक्मी चन्द्र खिड़िया (२२) नरहटदास बारहट (२३) करनी हरन कविया (२४) वीर भांण रतनू

संगीत।

हिन्दी से संगीत भी मुसलमान बादशाहों में बहुत फैला क्योंकि बहुधा बादशाह राग रंग के रसिया थे नाच गाने के बिना वे और उनके अमीर अपने जीवन को फीका समझते थे और इनकी सामग्री भी प्राचीन समय से दूसरे देशों की अपेक्षा भारत में बहुत रहती आई है गोपाल लायक, बखशूलायक, चिरजूलायक, तानसेन, रामदास, और सूरदास आदि बड़े २ गवैये इन बादशाहों के समय में ही हुए हैं जो विशेष करके हिन्दी भाषा के

---

* दरबार जोधपुर के कविराजा महा महोपाध्याय मुरारदान जी ने "बार्डिक क्रानिकल" के प्रसंग में जो अपनी अनुमति कलकत्ते के महामहोपाध्याय पं० हरिप्रसाद शास्त्री को लिखाई थी उसी में उन्होंने डिंगल भाषा का अर्थ अनगढ़ पत्थर वा मट्टी का डगल (ढेला) बताया है। आज कल भारत गवर्मेंट का ध्यान "बार्डिक क्रानिकल" की ओर बहुत हुवा है जो विशेष करके डिंगल भाषा में है जिसके लिये श्री दरबार मारवाड़ ने बहुत सा रुपया व्यय कर के जोधपुर में एक "बार्डिक कमेटी" बनाई है जिसकी प्रधानता इसी एक उदाहरण से सिद्ध होती है कि मारवाड़ के प्रधान मंत्री इस के प्रेज़ीडेन्ट हैं।

गीत गाते थे उनकी संगत से मुसलमान गवैये भी उतपन्न हो गये थे जिन की संतान आज तक इस विद्या की धनी बनी हुई है भांति भांति के हिन्दी गीत बनाने वाले तथा राग रागिनियों के जोड़ने वाले भी अनेक कवि अमीरखुसरो से ले कर लखनऊ के अन्तिम बादशाह वाजिद अली-शाह तक हो गये हैं जिन का नाम संगीत में सदा अमर रहेगा हिन्दू गवैयों का मुसलमान बादशाहों ने सन्मान भी राजाओं से बढ़ कर किया है गोपाल नायक का अलीउद्दा जैसे कट्टर और अभिमानी बादशाह ने तख्त पर अपने बराबर बैठा कर गाना सुना था अकबर ने तानसेन को बड़े आदर सतकार से बुला कर पहले ही मुजरे में १ करोड़ का दान दिया था बाबा रामदास को बैरम खां खानखाना ने १ दिन में १ लाख चांदी के टके दे डाले थे महापात्र जगन्नाथ त्रिशूली के बराबर शाहजहां ने रुपये तौल दिये थे और महा कविराय की पदवी देने के सिवाय गान विद्या में भी उसका पद गवैया में सब से ऊंचे रक्खा था। शाहजहां नामे में जहां बड़े कलावन्त लालखां को गुण समुद्र की उपाधि मिलने का उल्लेख है वहां कई कलावन्तों के गुण वर्णन के बाद अन्त में यही लिखा है कि इस आनन्द मंगल के समय में तो सब राग रागनियां बनाने और गाने वालों का अग्र गण्य जगन्नाथ राय भट्ट कविराय ही है।

सभी हिन्दी गवैये हिन्दी भाषा की चीजें गा कर मुसलमान बादशाहों को रिझाया करते थे, और उनसे लाखों रुपये के इनाम और जागीरें पाते रहते थे। बादशाहों के हिन्दी भाषा समझने से ही हिन्दी गवैयों का कल्याण और लाभ होता था।*

देवीप्रसाद।

* इस लेख को मुनशी जी ने सम्मिलन में भेजा था।

नारी कीर्ति।

जगत की समग्र स्त्री जाति में सतीत्व एक अनमोल रत्न है, विशेष कर हिन्दू ललनाओं का तो पातिव्रता एक मात्र जीवन अधार है और इस की रक्षा के हेतु युगो से हिन्दू ललनाएं असीम साहस और आत्मत्याग का परिचय देती आई हैं।

जिन दो ललनाओं के चित्र इस लेख के साथ हैं, उन दोनों ने उसी सर्वस्व रक्षा के लिए जो अद्भुत साहस दिखलाया है वह इस बात का एक उदाहरण है कि भारतवर्ष की वीर ललनाएं हमारे देश की इसी गिरी दशा में भी क्या कर सकती हैं। इनमें से एक का नाम सरला और दूसरी का नाम चपला है।

श्रीयुत कुंजूमोहन भट्टाचार्य और प्यारीमोहन भट्टाचार्य दो भाई हैं। सरला कुंजूमोहन बाबू की और चपला प्यारी मोहन बाबू की पत्नी हैं सरला की अवस्था १६ और चपला की १८ वर्ष की है। कुंजूमोहन और प्यारी मोहन के एक नाते के भाई का नाम बसन्तकुमार है, ये वृद्ध है और इनके कोई सन्तान नहीं है। प्रकृत बश इन्होंने एक दत्तक पुत्र लिया जिसका नाम विनोदबिहारी रक्खा गया। विनोद की अवस्था २० वर्ष की है। इसने कुछ पढ़ा लिखा नहीं और स्वभाव दोष से शराब और गाजा का इसे बहुत चसका था। सुना जाता है उस ग्राम में इसी के सदृश और भी बहुत से लुच्चे बर्तमान हैं और इनकी चंडाल चौकड़ी बहुत बलवान है। यह भी कहा जाता है कि इन बदमाशों ने पिछले वर्षों में बहुतो घरों का सत्यानाश किया था।

प्रायः दो वर्ष से इस गोष्ठी के कई एक महात्मा सरला और चपला के पीछे लगे थे। उनका सतीत्व नाश करने के लिए उन लोगों ने नाना प्रकार का प्रलोभन आदि भी दिखाया था। इनके उत्पात से दुःखी हो दोने बालिकाओं ने अपने पतियों, स्वजनों से तथा विनोद के माता

श्रीमती चपलासुन्दरी देवी और सरलासुन्दरी देवी।

(श्रीमती सरयूबाला दत्त की अनुग्रह से प्राप्त)

पिता से भी सब हाल कहा था। गत चैत्र मास शुक्रवार को सरला के पति कार्यवशात ढाका गए और सरला और चपला एक ही घर में सोई। रात्रि १२ बाजे के समय दोनों एक बार बाहर गईं और आते समय इस दल के दो महात्माओं को निकट खड़े देख उन लोगों ने जल्दी से घर में घुस कर किवाड़ देली। किन्तु बिछौने के पास जाकर उन लोगों ने देखा कि बिनोद वहां पहिले ही से घुस आया था। भीतर बाहर बदमाशों को देख कर वे थोड़ी देर के लिये किम् कर्तव्य विमूढ़ सी हो गईं। किन्तु प्रत्युत्पन्न मति के प्रभाव से उन लोगों ने शीघ्र ही अपना कर्तव्य निर्धारण कर लिया। सरला ने अग्रवर्ती हो कितनी ही विनती की। विनोद उस समय सफलता निकट देख कर शैय्या से उठ कर अर्धशायित भाव से सरला से असद अभिप्राय कहते २ उसका हाथ पकड़ कर आकर्षण करने लगा। इसी समय में चपला ने चंचला गति से जाकर विनोद के बिना देखे ही एक तेज छूरी लाकर विनोद के गले में जोर से मार दी। बिनोद ने उस समय सरला का हाथ छोड़कर चपला का हाथ पकड़ा और छूरी निकालने लगा इधर सरला ने एक हसुआ लाकर बिनोद पर ऊपर से वार करना शुरु किया। डाक्टर ने अपने इजहार में कहा है कि चपला की छूरी के चोट ही से बिनोद मर जाता—सुतरां वह जादे न लड़ सका—अवसन्न हो गिर पड़ा। चपला ने उस समय भीषण छूरी के द्वितीय आघात से उसकी अनिवार्य पाप तृष्णा की चिरनिबृत्ति कर दी।

बड़े खेद की बात है कि विनोद एक परम सुन्दरी १४ या १५ वर्ष की बालिका को विधवा कर गया है। इसके बाद सरला और चपला ने देखा कि बाहर वाले दोनों बदमाश उस समय भी किवाड़ पर मुष्टिघात कर रहे थे। सुतराँ उन लोगों ने सारी रात निर्वाक निस्पन्द भाव से, रक्त से भरे हुए वस्त्र पहिने शत्रु की लाश के साथ घर के भीतर ही जाग कर काटी। सवेरा होने पर उन लोगों ने गांव के बड़े वृद्धों को बुला कर सब बात कह सुनाया। कुछ समय बाद पञ्चायत के सभापति के आने पर उन लोगों ने अपना इजहार लिखाया। यथा समय दारोगा नाजिरुद्दीन अहमद घटना स्थल पर आये और उन्होंने अनुसन्धान किया। दोनों बालिकाओं की उक्ति से सन्तुष्ट हो उन्होंने चालान किया। डिस्ट्रिक मैजिस्ट्रेट ने जमानत नामंजूर करके मुलज़िमान को हाजत में रखने को कहा। भाग्यवश से उसी दिन ढाका के जज साहब ने ज़मानत मंजूर कर ली। मुकदमा नरायनगंज के ड़िविज़नल मेजिस्ट्रेट के यहां पेश हुआ उन्होंने मुलजिमों को दौरा सुपुर्द किया किन्तु ज़मानत बहाल रखने पर राजी हुए। इस पर वादी पक्ष की तरफ से विरोध होने पर उन्होंने कहा कि मुलजिमो को जमानत देना कठिन है इस कारण से जमानत मनसूख की जाय। ईश्वर की दया से पूर्वोक्त जज साहब ने फिर ज़मातन मन्जूर कर ली।

गत १६ जून को शेसन्स जज के सामने मुकदमा पेश हुआ। सरकारी वकील ने कहा कि मुलजिमों के खिलाफ कोई प्रमाण नहीं है इस कारण वे डिसट्रिक मैजिस्ट्रेट के आदेशानुसार मुकदमा उठना चाहते हैं तथा मुलजिमों को मुक्ति प्रदान की प्रार्थना करते हैं। इस व्यवहार के कारण ढाका में मैजिस्ट्रेट साहब तथा जज साहब की सब लोग प्रशंसा कर रहे हैं।

—※—

गावों में कातने और बुनने का काम।

सभ्य जाति वाले मनुष्यों के लिए अन्न के अनन्तर वस्त्र ही सब से आवश्यकपदार्थ है। इस बात पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज की समृद्धि के लिए कपड़ा बनाने का व्यवसाय कितने महत्व का है। यह सच है कि समाज बिना किसी अंग के इस व्यवसाय में लगे

हुए भी समृद्ध हो सकता है। किन्तु ऐसी अवस्था में समृद्धि केवल छोटे समाजों को प्राप्त हो सकती है। इन समाजों की समृद्धि के लिए यह भी आवश्यक है कि वे ऐसी वस्तु या वस्तुओं को बनाते हों जिनके लिए बराबर मांग हो और जिनकी बिक्री से अच्छा लाभ होता हो। उदाहरण के लिए खेतिहरों के एक ऐसे समाज के ऊपर विचार कीजिये जिसके पास इतनी भूमि हो कि उसमें उपजा हुआ अन्न उनकी आवश्यकता से अधिक हो। इतना अधिक हो कि उसे दूसरे समाज या समाजों के हाथ बेच कर उन्हें इतना रुपया मिल जाय कि वे उससे कपड़े मोल ले सकें, मकान बनवा सकें, उन्हें जो 'कर' टैक्स देने पड़ते हों उन्हें दे सकें, तथा अपनी अन्य आवश्यकताओं को पूरी कर सकें और इसके अतिरिक्त कुछ धन इकट्ठा कर सकें जो कि बुढ़ापे और आपत्ति के अवसरों पर काम में आवे। एक दूसरा उदाहरण हम ऐसे समाज का ले सकते हैं जिसमें कि लोग गाय, भैंस पालते हों। उनके पास उनको चराने के लिए प्रशस्त भूमि हो और दूध तथा गाय भैंस बेच कर वे इतना रुपया कमा लेते हों कि उससे वे अपनी आवश्यकता के सब पदार्थों को मोल ले सकें। तीसरा उदाहरण हम ऐसे समाज का ले सकते हैं जिसकी भूमि में कोयले या धातुओं की खानें हों। यदि इस समाज के लोग केवल धातुओं को निकालने और बेचने का काम करें तब भी वे उन्हें देश विदेशों में बेच कर इतना धन कमा सकते हैं कि जिससे उनके सब काम चल जांय।

इन समाजों की सामान्य समृद्धि के लिए भी यह आवश्यक है कि समाज के जितने लोगों का शरीर काम करने के योग्य है उनमें से अधिकांश को या सब को काम मिल जाय जिससे वे अपनी शक्ति और समय से लाभ उठा सकें। यह बात सर्वथा साध्य और इष्ट है कि देश के जिस भाग में जिस व्यवसाय का विशेष सुभीता हो उस भाग के लोग अच्छी तरह दलबद्ध होकर मुख्यतः उसी व्यवसाय में लगें। उदाहरणार्थ, बंगाल और मध्यप्रदेश के उन ज़िलों को लीजिये जिन में लोहा, अभ्रक, तांबा तथा अन्य धातुओं की बहुत सी खानें हैं। यदि यहां लोग एकत्र होकर खानों से धातुओं को निकालने, शोधने आदि का काम करें तो देश को बहुत लाभ हो। ऐसी अवस्था में हमें धातुओं के लिए विदेशों पर निर्भर न रहना पड़े, आज कल करोड़ों रुपये के जो धातु विदेशों से आते हैं वे न मंगाने पड़ें। इसी प्रकार यदि लोग हिमालय के नीचे, आसाम से कश्मीर तक जो जंगल हैं उनमें बस कर गाय भैंसों को पालें तो आजकल घी, दूध, और हल जोतने वाले और दूध देने वाले पशुओं की दुर्लभता के कारण देशवासियों को जो क्लेश पहुंच रहा है वह दूर हो जाय। किन्तु भारतवर्ष इतना बड़ा देश है कि उसके अधिकांश निवासी केवल एक ही व्यवसाय में लग कर लाभ नहीं उठा सकते, चाहे वह व्यवसाय खेती के व्यवसाय के समान भी अत्यन्त महत्व का क्यों न हो। वस्तुतः कुछ काल पहिले तक अनादि काल से, यहां के गावों में सब प्रकार का व्यवसाय होता था। वहां खेती होती थी, कपड़े बनते थे, मकानों को बनाने वाले भी रहते थे। सारांश यह है कि गांव के निवासियों को जिन २ वस्तुओं की आवश्यकता होती थी वे सब उसी गांव में बना करती थीं। मनुष्यों के लिए अन्न ही सब से अधिक आवश्यक पदार्थ है। इस लिए गांव के अधिकांश निवासी खेती ही का काम किया करते थे। उनके और उनके कुटुम्ब के भोजन और कर (टैक्स) के लिए जितना आवश्यक होता था उससे वे अधिक अन्न उत्पन्न कर लेते थे। बचा हुआ अन्न वे उन जातियों के लोगों को देते थे जो उनके लिए कपड़े, घर, वर्तन, हल आदि आवश्यक पदार्थों को बनाते थे। कपड़े बुनने, और बर्तन, घर आदि बनाने

के कामों को, जिन में कि विशेष कौशल की आवश्यकता होती है, विशेष २ जातियों के लोग किया करते थे। उनके कार्य और कौशल परम्परागत होते थे। इस लिए वे अपने २ कार्यों में बड़े कुशल होते थे। किन्तु खेती का काम कपड़ा बुनने वाले, लोहार, बढ़ई इत्यादि भी करते थे। यदि इन्हें अपना परंपरागत काम नहीं मिलता था तो खेती करने लगते थे।

भारतवासियों में स्वभाव से ही अपनी पुरानी चाल ढाल को बनाये रखने की प्रवृत्ति है। इस लिए शहरों के निवासियों को छोड़ कर लोगों के रहन सहन का ढंग अब भी उसी प्रकार का है जिस प्रकार का प्राचीन काल में था। रामायण और महाभारत में प्राचीन काल में यहां लोगों के रहन सहन के ढंग का जो वर्णन है उसके साथ जब हम वर्तमान समय के ढंग की तुलना करते हैं तो उनमें आश्चर्य जनक समानता पाई जाती है। किन्तु यद्यपि खेतिहर तथा लोहार, बढ़ई आदि अन्य कारीगर और व्यापारी लोग अपने परम्परा गत कार्य को बहुत अंश में उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार दो तीन सहस्र वर्ष पहिले उनके पूर्वज किया करते थे, तथापि कपड़े के व्यवसाय में बहुत परिवर्तन हो गया है। यह परिवर्तन लग भग पिछले सौ वर्षों के भीतर हुआ है। पहिले प्रायः प्रत्येक घर में कताई का काम होता था। किन्तु कलों के बने हुए सस्ते सूत और कपड़ों के आने के कारण देश के अधिकांश भागों के लोग कताई का काम भूल गये हैं और कपड़े बुनने वाले लोग, वस्तुतः अपने परम्परागत व्यवसाय (पेशे) को छोड रहे हैं। कुछ काल पहिले गवर्मेंट ने मि० ए० सी० च्यैटर्जी, आई० सी० एस० को संयुक्त प्रान्त के व्यवसयों की देखाभाली के लिए विशेष रूप से नियुक्त किया था। उन्होंने पिछली मनुष्य गणना की रिपोर्ट के अंकों को उद्धृत किया है। उनसे जान पड़ता है कि इन प्रान्तो में सन् १९०१ में कातने वालों की संख्या केवल ८६ सहस्र थी। जिन दिनों प्रायः प्रत्येक घर में प्रतिदिन एक या अधिक चर्खे चलते थे उन दिनों कातने वालों की जितनी संख्या रही होगी उसकी यह संख्या आठवाँ भाग भी न होगी। मनुष्य गणना के दिनों में जितनी संख्या थी वह अब और भी घट गई होगी क्योंकि जिन ज़िलों में चर्खों के काम का लोप नहीं हो गया है उन ज़िलों में भी चर्खों का शीघ्रता के साथ लोप हो रहा है। मि० च्यैटर्जी ने अनुमान किया है कि ये ८६ सहस्र कातने वाले वर्ष भर में ५३,७५,००० सेर सूत कातते होंगे। मि० च्यैटर्जी को विदित हुआ है कि इन प्रान्तो में आध सेर की कताई की औसत मज़दूरी डेढ़ आना होती है इस हिसाब से ५३,७५,००० सेर सूत को कातने की मज़दूरी दस लाख रूपया होती है। यदि यह मान लिया जाय कि सूत की कलों के प्रचार के पहिले इससे केवल आठ गुना सूत काता जाता था तब भी इस बात का अनुमान सहज में हो सकता है कि उन दिनों जो लोग कातने का काम किया करते थे वे कितना धन कमाते होंगे। सूत के व्यवसाय में इतना ह्रास हो जाने के कारण अब कितने लोग उद्यम रहित हो गये होंगे इसका भी अनुमान किया जा सकता है। यह सच है कि अब कई ऐसे काम खुल गये हैं जो कि पहिले नहीं थे। बहुत से लोगों को रेलों, सड़कों तथा अन्य कार्यों में काम मिल जाता है किन्तु कातने का काम मुख्यतः पर्दानशीन और गांवों की स्त्रियां किया करती थीं। अब जो रेल, सड़क आदि के काम खुले हैं उनसे उन्हें कोई लाभ नहीं होता क्योंकि ये इन कामों को नहीं करतीं।

मनुष्य गणना के अङ्कों से विदित होता है कि ३,२९,५८९ पुरुष और १,५४,९८६ स्त्रियां हाथ से कपड़े बुनने के काम में लगी हुई हैं।

यदि हम प्रत्येक पुरुष की दैनिक मज़दूरी चार आना और प्रत्येक स्त्री की दो आना लगावें तो इनकी वर्ष भर की कमाई दो करोड़ पचास लाख से अधिक होती है। चैटर्जी महाशय ने अनुमान किया है कि इन प्रान्तों में कलों का बना हुआ कपड़ा ३,७०,००,००० सेर और हाथ का बना हुआ १८५,००,००० सेर काम में आता है। इससे यह स्पष्ट है कि जितना कपड़ा आज कल काम में आता है वह हाथ ही का बना हुआ हो तो बुनने वालों की संख्या वर्तमान संख्या से तिगुनी हो जाय और उन लोगों का आय सात करोड़ रुपये से अधिक हो जाय। यह सच है कि बहुत से कपड़ा बुनने वालों को जिनके यहां कपड़ा बुनने का काम परम्परा से चला आता था, सूतों के कारख़ानों में काम मिल गया है किन्तु जिन लोगों को कपड़ाबुनने का काम छोड़ना पड़ा है उनकी संख्या के सामने इनकी संख्या कुछ भी नहीं है क्योंकि मि० चैटर्जी को इस बात का पता लगा है कि सन् १६०७-०८ में जो लोग सूत के कारख़ानों में नौकर थे उनकी संख्या केवल १२,७६४ थी। जिन लोगों को काम न मिलने के कारण अपना परम्परागत व्यवसाय छोड़ना पड़ता है उनमें से अधिकांश खेती के काम में लग जाते हैं। इस कारण खेतिहरों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जाती है और खेती से जो लाभ हुआ करता है वह बराबर घटता जा रहा है क्योंकि इन प्रान्तों में खेती को बढ़ाने के लिए बहुत गुंजाइश नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सौ वर्ष पहिले खेती के काम में जितने खेतिहर और मजदूर थे उससे अब बहुत अधिक हैं। इसका यह फल होता है कि जो लोग जीविका के लिए खेती के ऊपर निर्भर रहते हैं उनका बहुत सा समय बेकार जाता है। जो कुछ लिखा गया है उससे यह स्पष्ट है कि यदि उनका यह बेकार समय बुनने और कातने के काम में लगाया जाय तो वे इतने समय काम करके वर्ष में पांच या ६ करोड़ रुपया कमालें। इन प्रान्तों की गवर्मेंट को मालगुज़ारी के द्वारा जो रुपया मिलता है वह इसी के लगभग है।

यह सच है कि हाथ की कताई का व्यवसाय अब नाश को प्राप्त होता हुआ दिखलाई दे रहा है, किन्तु जैसा मि० चैटर्जी ने कहा है, कुछ जातियों में विधवा विवाह की रीति न होने के कारण देश में स्त्रियों की एक बहुत बड़ी संख्या को कातने ही के व्यवसाय से अपना निर्वाह करना पड़ता है चाहे उनको मज़दूरी कितनी ही कम क्यों न मिले। पंजाब में जहां २ दुशाले, पट्टू तथा अन्य ऊनी कपड़े और संयुक्त प्रान्त के उन भागों में जहां ऊनी ग़लीचे और कमबल अब भी अधिकतर हाथ के कते हुए सूत से बनते हैं वहां स्त्रियों को अब भी ऊन कातने का काम मिलता है और उससे उनको लाभ भी होता है। इन प्रान्तों के पश्चिमी भाग के कुछ ज़िलों में तम्बुओं, फ़र्श तथा पहनने के कपड़ों के बनाने के लिए भी मोटा सूत बहुत काता जाता है।

सभ्यता की उन्नत अवस्था में आजीविका के साधनों (पेशा) का विभाग हो जाता है। भिन्न २ जाति और श्रेणी के लोगों की आजीविका के साधन अलग २ हो जाते हैं। भारतवर्ष में अपनी परम्परागत आजीविका को ग्रहण करने की रीति उचित से अधिक प्रबल हो गई थी। इसी कारण से देश के शिक्षित और बुद्धिमान लोग शिल्प और व्यवसाय से अलग रहे। किन्तु यदि अब भी शिक्षित नवयुवकों को कातने, बुनने आदि लाभदायक कामों में लगाने का उद्योग किया जाय तो इस बात की पूरी आशा है कि कुछ काल में वे ऐसी विधियों को निकाल लेंगे, जिनसे कि वे काम शीघ्रता और सरलता के साथ होने लगेंगे और उनकी उन्नति होगी। इस देश में कई हिन्दुस्तानी तथा अंग-

रेज़ लोग हाथ से कातने और बुनने की विधियों और साधनों में सुधार करने के उद्योग में लगे हुए हैं। इस बात का पता सर्कारी गज़ट के उस भाग को देखने से लगता है जिसमें 'पेटेन्ट' सम्बन्धी बातें छपती हैं। इस बात की आशा है कि उनमें से कुछ लोगों के उद्योग सफल हो जांयगे, किन्तु वर्तमान विधियों और साधनों से भी गावों में कई व्यवसायों का फिर से उद्धार और प्रचार हो सकता है यदि अशिक्षित गांव वालों के भरोसे छोड़ने के बदले वे बुद्धिमान और काम सीखे हुए लोगों के हाथ में दिये जांय।

गवर्मैंट कपड़ा बुनने के व्यवसाय की उन्नति के निमित्त इन प्रान्तों में भिन्न २ भागों में बुनने का काम सिखलाने के लिए स्कूल खोल रही है। जो शिक्षित और प्रभावशाली सज्जन देश की समृद्धि को बढ़ाने के लिए गवर्मैंट से मिल कर काम करने की आकांक्षा रखते हैं यदि वे कातने और बुनने के व्यवसाय के उद्धार के लिए कटिबद्ध हो जांय, तो देश में समृद्धि का एक नया युग आरंभ हो जाय। इसके लिए यह आवश्यक है कि वे ज़मींदारों को ऐसे व्यवसायों का प्रचार करने का महत्व समझावें जिन के द्वारा उनके आसामी लोग अपने बहुत से समय को व्यर्थ नष्ट करने के बदले उसे लाभ दायक काम में लगा सकें। यह लेख जिस स्थान पर लिखा गया है वहां मि० चैटर्जी की पुस्तक के अतिरिक्त अंकों (Statistics) की तथा ऐसी कोई और पुस्तकें नहीं हैं जिनमें से अपने कथनों को पुष्ट करने के लिए प्रमाण दिये जा सकें, किन्तु इस बात को दिखलाने के लिये अंकों या सूक्ष्म २ युक्तियों की आवश्यकता नहीं है कि इन प्रान्तों में जो असंख्य लोग अपने बहुत से समय को नष्ट करते हैं उनके लिये यदि साधारण लाभ वाले भी काम खोले जांय तो वे उनके द्वारा प्रति वर्ष करोड़ों रुपये कमालें, न यह सिद्ध करने की आवश्यकता है कि खेती का काम कर चुकने पर जिनका बहुत कुछ समय बच जाता है उनके लिए सब से सुभीते का काम कातना और बुनना है। लोगों को जितना यह काम मिल सकता है उतना और कोई नहीं मिल सकता। कातने का काम ऐसा है कि उसको करने में किसी जाति के लोगों को कोई आपत्ति (एतराज़) नहीं हो सकती। बुनने का काम कोरी या जुलाहे करते आये हैं। इस कारण बहुत से लोग इस काम को करने में संकोच करेंगे। किन्तु ब्राह्मणों, ठाकुरों, खत्रियों, वैश्यों और कायस्थों में बहुत से लोग ऐसे हैं जो कहने सुनने से शीघ्र ही नई चाल के करघों में काम करने लग जांयगे। ये करघे नई कलों के समान दिखलाई देते हैं, जुलाहों और कोरियों के करघों से कम मिलते हैं। ऐसे लोगों को करघे चलाते विशेष कर उन्हें इस काम के द्वारा अपने आय में बहुत कुछ वृद्धि करते हुए देखकर लोग संकोच छोड़ इस काम की ओर झुक जांयगे।

कातने और बुनने के जो बड़े २ कारख़ाने वर्तमान हैं और जो नये २ कारख़ाने आगामी कई वर्षों तक स्थापित होते रहेंगे उनके पास काम की कमी न रहेगी। उनके बने हुए कपड़े शहरों में रहने वाले तथा गावों में रहने वाले धनवान लोगों के पहिनने के काम में आवेंगे किन्तु गांव वालों के हित के लिए, जो कि देश के आधार हैं, यह आवश्यक जान पड़ता है कि प्रत्येक गांव वाले अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को अपने आप बनावें। जिन गांवों में कातने और बुनने के काम का लोप हो गया है उनमें तथा जिनमें वह क्षीण हो रहा है उन सब में उसका फिर से प्रचार और उद्धार किया जाय तो ज़मींदारों को रकम वसूल करने में बहुत कम कठिनता पड़े और गवर्मैंट को भी रकम की मुलतवी या माफ़ करने की कम आ-

वश्यकता पड़े। देश भरमें इतने लोगों के आय की वृद्धि होने से अकालों का भय न रह जायगा, बेकार लोगों के लिए काम ढूंढ़ने की चिन्ता दूर हो जायगी और लोगों की समृद्धि और सन्तोष की बहुत वृद्धि होगी।

श्रीकृष्ण जोशी।

—*—

जन्मभूमि ।

(लेखक—पं० सत्यानन्द जोशी)

राग रागिनी का स्वरूप स्वर और मात्रा से बनता है। स्वर और मात्रा के भेद से भिन्न २ राग रागिनियां बनती हैं। एक ही स्वरों में भी मात्रा के भेद से भिन्न २ रागिनियां बन जाती हैं। भूपाली और विभास के स्वर एक हैं, किन्तु गन्धार में अधिक मात्रा तक ठहरने से भूपाली और धैवत में अधिक ठहरने से विभास हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि यदि हम किसी राग के स्वरों और मात्राओं को लिख सकें तो उसके द्वारा और लोग उस राग को गा और बजा सकेंगे।

यह काम कठिन नहीं है। स्वर तो हारमोनियम या सितार में दिये ही होते हैं। 'एक' कहने में जितना समय लगता है उसे एक मात्रा समझ लीजिये। जिस स्वर में दो मात्रा हो उस स्वर को एक दो कहने तक दबाये रहिये। जिस स्वर में एक मात्रा हो उसके ऊपर एक खड़ी लकीर रहती है। जैसे सा, यदि दो मात्रा हों तो सा लिखा जायगा। यदि दो स्वर एक ही मात्रा हों तो इस प्रकार लिखे जायंगे सारे। हारमोनियम प्रायः तीन सप्तक के होते हैं मन्द्र, मध्य और तार, बीच के सप्तक को मध्य सप्तक कहते हैं। इस लिए यदि किसी गीत के किसी शब्द के ऊपर प लिखा हो तो यह नहीं जान पड़ता कि यह 'प' किस सप्तक का है। इसलिए यह नियम बना दिया गया है कि मन्द्र सप्तक के सुरों के नीचे, और तार सप्तक के सुरों के ऊपर एक विन्दु दिया जाय। मध्य सप्तक के स्वरों के ऊपर या नीचे कोई विन्दु नहीं रहता। तीनों सप्तकों के स्वर इस प्रकार लिखे जांयगे।

सा रे ग म प ध नि। सा रे ग म प ध नि।

सा रे ग म प ध नि।

एक बात और है। स्वर दो प्रकार के होते हैं। कोमल और तीव्र। यदि हम गीत के किसी शब्द के नीचे 'रे' लिखें तो यह नहीं जान पड़ता कि कोमल रिखब बजानी चाहिए या तीव्र। इसके लिए यह नियम बना दिया गया है कि कोमल स्वरों के ऊपर ૭ का चिन्ह रहेगा। यदि रे लिखा हो तो कोमल रिखब समझना चाहिए।

इन नियमों से हम सब राग रागिनियों को लिपि बद्ध कर सकते हैं।

आज हम पंडित माधव शुक्ल के बनाये हुए देशभक्ति के एक उत्तम गान को लिपि बद्ध कर के लिखते हैं।

राग अड़ाना कान्हड़ा।

चौताल।

अस्थायी।

सा सा स रेसा रे पम प ग म रे रे
ज य ति ज य ति ज अ न्म भू ऊ

सा
मि

सा नि ध नि नि ध प ध म प ध प म ग
प्रा आ ण ह ऊ ते प्या आ रि इ इ इ इ

अन्तरा

म म प नि प नि नि सां सां सां सां सां
तू ऊ प्र त्य अ त्त दे ए वि रू ऊ प

सां सां सां सां सं रें सं सां नि नि प प
म हि मा आ ज ग नि च अ तू ऊ प

म प नि नि सां रें सां नि नि प प प
स दा आ शा आ न्ति म य स्व रू ऊ प

म प प प प प प ध मप धप ग ग
भा आ र त शु भ का आ रि इ इ इ ई ई

अन्य पद इसी प्रकार बजाये जांयगे।

टिप्पणियां।

एक उपमा पर दो हज़ार अशर्फियां इनाम।

लेखक—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी।

इतिहास के प्रेमी अकबर के लड़कपन के सब से बड़े सरदार बहरामखां खानखाना के नाम से अवश्य ही परिचित होंगे। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि अब्दुल्रहीम खानखाना उन्हीं के पुत्र थे। कुछ लोगों का ख़याल है कि कवि बहुधा बहादुर नहीं होते। परन्तु अब्दुल्रहीम बड़े बहादुर और साथ ही फ़ारसी के बड़े अच्छे कवि भी थे। वे हिन्दी में भी कविता करते थे उनके दोहे हिन्दी-साहित्य में अनमोल रत्न समझे जाते हैं। वे खुद भी कवि और विद्वान् थे और कवियों और विद्वानों के आश्रयदाता भी थे।

वीरता इन में यहां तक थी कि बहुत थोड़ी उम्र में इन्होंने गुजरात के एक नामी विद्रोही को बेतरह परास्त किया। और भी कितने ही युद्धों में इन्हीं की जीत रही। इस तरह बहुत सा देश जीत कर इन्होंने उसे अकबर के राज्य में मिला लिया। इन की वीरता पर मुग्ध होकर एक बार अकबर ने इन्हें बहुत सी सेना देकर कन्धार पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। मार्ग में ठठ्ठे का किला पड़ता था। उसके हाकिम का नाम मिर्ज़ा जानी था। आपत्ति का मारा हुमायूं जिस समय सिन्ध के मरुस्थल में मारा मारा फिरता था उस समय मिर्ज़ा जानी ने उस के साथ अच्छा सलूक न किया था। इस लिए यह ठहरी कि उसे उस के दुष्कर्म का फल चखाकर आगे बढ़ना चाहिए। अतएव ठठ्ठे पर चढ़ाई हुई। बहुत दिनों तक युद्ध हुआ। मिर्ज़ा जानी ने खानखाना का बड़ी वीरता से सामना किया। शाही फौज बहुत दिनों तक उसके किले को घेरे पड़ी रही। अन्त को मिर्ज़ा जानी ने सुलह करके अपनी जान बचाई। अपनी लड़की का विवाह भी उसने सेनापति खानखाना के लड़के मिर्ज़ा ईरज के साथ कर दिया।

खानखाना के दरबार में कितने ही कवि और विद्वान् थे। उनमें से मुल्ला शिकेबी नाम के शायर ने इस युद्ध का वृत्तान्त एक मस्नवी में लिखा। यह मस्नवी जिस समय सभा में पढ़ी गई उस समय मिर्ज़ा जानी भी वहां उपस्थित थे। मस्नवी में से मुल्ला-मंदाशय का एक शेर खानखाना को बहुत ही पसन्द आया वह शेर यह है:-

हुमाए कि बर अर्श करदे ख़िराम।
गिरफ़्ती व आज़ाद करदी जे दाम॥

मतलब यह कि हुमां नाम का जो पक्षी आसमान में भरारे मार रहा था उसे तूने पकड़ लिया और पकड़ कर फंदे से छोड़ भी दिया। इस पर खानखाना ने मुल्ला जी को एक हज़ार अशर्फियां तत्काल इनाम में दीं। यह देख कर मिर्ज़ा जानी से न रहा गया। मुल्ला की इस उक्ति पर प्रसन्न होकर उसने भी एक हज़ार अशर्फियां दीं और कहा :-

"रहमते खुदा कि मरा हुमा गुफ्ती, अगर शिग़ाल मी गुफ्ती ज़बानत के मी गिरफ्त"

अर्थात् परमेश्वर ने कृपा की जो तुमने मुझे हुमा बनाया। यदि गीदड़ बना डालते तो तुम्हारी ज़बान कौन पकड़ सकता था?

इस में कोई सन्देह नहीं कि यह बड़ी ही अच्छी उक्ति है। यद्यपि यह कविता का कोई बहुत बढ़िया नमूना नहीं, तथापि जिस मौक़े पर यह उक्ति कही गई थी उस के लेहाज़ से यह बहुत ही उपयुक्त है। जहां पर जित और पराजित दोनों बैठे हों, और युद्ध की समाप्ति के अनन्तर दोनों में वैवाहिक सम्बन्ध भी हो गया हो वहां कोई चतुर और समझदार कवि उन में से किसी के विषय में कोई अप्रतिष्ठा सूचक बात नहीं कह सकता।

इन बातों का उल्लेख प्रोफेसर आज़ाद ने अपनी दरबार-ए-अकबरी नामक पुस्तक में किया है।

प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन।

गत १०, ११ और १२ अक्तूबर को प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन काशी में माननीय पं० मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व में निर्विघ्न समाप्त हुआ। सम्मेलन में हिन्दी भाषा की वर्त्तमान शोचनीय दशा पर विचार करने के लिए ३०० प्रतिनिधि एकत्र हुए थे। इस बात के लिए हिन्दी का पहिला सम्मेलन चिरस्मरणीय बना रहेगा कि इस में संयुक्त प्रान्त की अदालतों में नागरी के प्रचार करने और अन्य साहित्य-विषयक कार्य्यों की उन्नत्ति करने के लिए एक हिन्दी-साहित्य-पैसा-फंड स्थापित किया गया। हिन्दी भाषा के लिए यह कम सौभाग्य की बात नहीं है कि पहिले ही सम्मेलन में इस फंड में २ लाख से ऊपर पैसे यानी ३॥ हज़ार रुपए एकत्र हो गए। इस से भी बढ़ कर सन्तोष की बात यह हुई कि एक मारवाड़ी सज्जन ने काशी नागरी प्रचारिणी सभा के ६०००) रु० के पुराने ऋण को चुकाकर सदा के लिए उसे ऋणमुक्त कर दिया और अपना नाम तक प्रगट नहीं किया। पर ऐसे सात्विक दानी का नाम सम्मेलन ऐसे बड़े समाज में कब तक छिपा रह सकता है। इस दान के लिए रानीगंज के सेठ जगन्नाथ झुंझनू वाला के हिन्दी प्रेमी मात्र उनके सदा कृतज्ञ बने रहेंगे। बियावर की कृष्णामिल्स के प्रोप्राइटर सेठ दामोदर दास राठी की उदारता और उनका हिन्दी प्रेम भी बहुत प्रशंसनीय है। आपने पैसा-फंड में ६४ हज़ार पैसे प्रदान
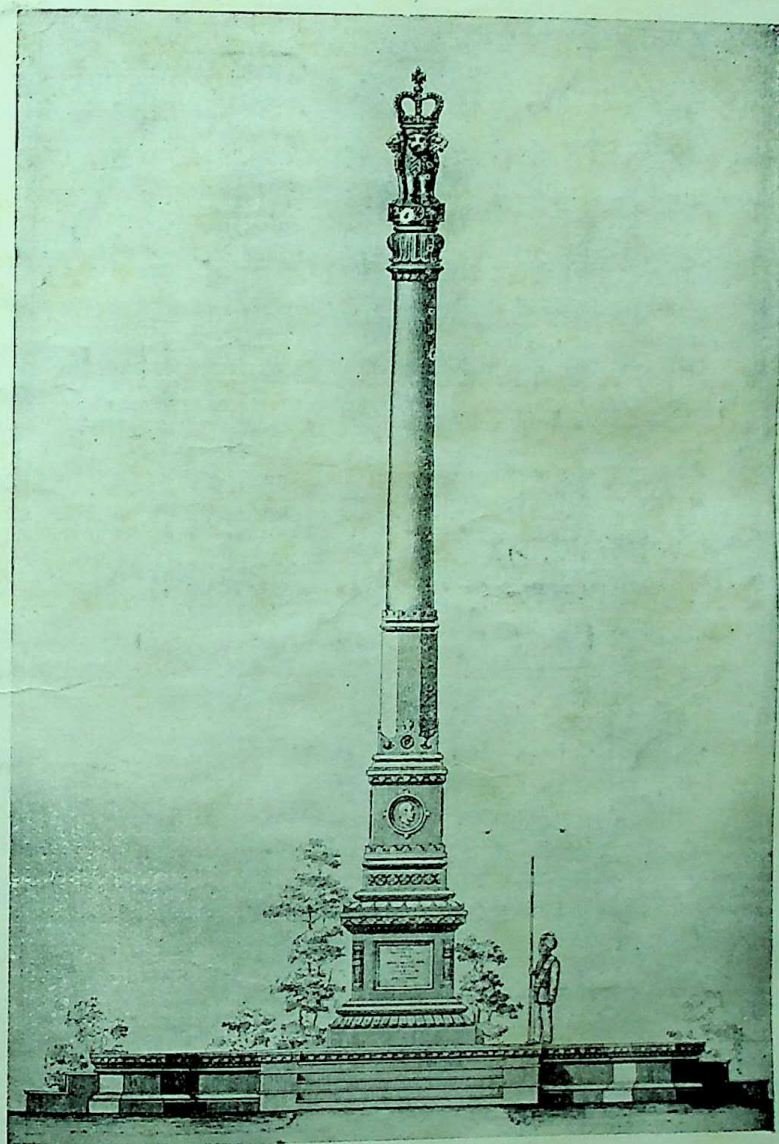
महारानी विक्टोरिया का घोषणा स्तम्भ ।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग ।

करने के अतिरिक्त ५००) रु० हिन्दी में एक व्यापार सम्बन्धी पुस्तक के लिए और मध्य भारत में हिन्दी के प्रचार करने के लिए एक उपदेशक को ३००) रु० देने की प्रतिज्ञा की। कालेजों में हिन्दी-प्रचार-विषयक प्रस्ताव के सम्बन्ध में सम्मेलन के सभापति माननीय पं० मदनमोहन मालवीय ने यह आशा प्रकट की कि, "इलाहाबाद युनिवरसिटी के कालेजों में हिन्दी को स्थान देने के प्रयत्न में वे कोई बात उठा नहीं रक्खेंगे। वास्तव में हिन्दी भाषा के लिए वह बड़ा गौरव का दिन होगा जब कालेजों में हिन्दी को भी स्थान मिलने लगेगा ।

७

हमे बड़े खेद के साथ लिखना पड़ता है कि लार्ड मारले अब भारत सचिव न रहे। उन्हों ने इस पद से इस्तीफा दे दिया और उनकी जगह पर लार्ड क्रू, नियत हुए हैं। आज भारत के एङ्गलो इन्डियनस और विलायत के कन्सरवेटिव दल वालों की प्रसन्नता का वारा पार न होगा ये लोग लार्ड मारले के सदा विरुद्ध रहे क्योंकि ये लोग भारत में जैसे उग्र उपायों का प्रयोग देखना चाहते थे वैसे इनके कारण उन्हें देखने को नहीं मिला ?।

लार्ड मारले ने जो कुछ भारत के लिये किया है चाहे उन सब से हम सहमत नहो किन्तु इस बात का प्रतिवाद नहीं हो सकता कि वे सच्चे हृदय से भारत का हित ही चाहते थे। बङ्ग विभाग का निश्चित बात [Settled fact] मानना ऐसी दो एक भूलें भी उनसे हुई है हम यह भी जानते हैं कि इन्हीं के समय में बेकसूर भारतवासियों बिना किसी अपराध के देश निशकाशन हुआ, इन्ही के समय प्रजा की, तथा प्रेस की स्वतंत्रता पर कुठार चला और इन्हीं महाशय के समय में सभा संम्बन्धी आदि उग्रक़ानून पास हुए किन्तु भूल मनुष्य मात्र से होती है। कुछ सज्जन सुधारों से भी पूर्ण-तया सन्तुष्ट नहीं है किन्तु इस में कोई संशय नहीं हो सकता कि स्वराज्य पाने के लिये इन के कारण एक अच्छी सीढ़ी बनादी गई है। इन सब बातों को ध्यान में रख कर हमे तो यही कहना पड़ता है कि लार्ड मारले का इस्तीफा देना भारत के लिये अच्छा नहीं हुआ।

७

घोषणास्तम्भ ।

The Proclamatfon Pillar.

पठकों को यह विदित है कि लार्ड मिंटो इसी मास में लार्ड हार्डिङ्ग, को चार्ज देकर भारत से विदा होंगे। लार्ड मिंटो ने भारत पर जिस सहिष्णुता और गंभीरता से राजकीय कार्य किये है वे हमारे पाठकों से छिपे नहीं है। इस में कोई सन्देह नहीं कि यदि लार्ड मिंटो के स्थान पर लार्ड कर्जन के समान कोई और कर्मचारी होता तो न शासन में सुधार ही होता और न कोई स्वराज्य मिलते। इस के अतिरिक्त न मालूम राजविद्रोही सभा सम्बन्धी क़ानून, प्रेस

ऐक्ट आदि कितने अधिक भयंकर रूप धारण करते। यद्यपि ये नियम लार्ड मिंटो के शासन के लिए शोभा जनक नहीं है तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जो कोई पुरुष उस पद पर होता वही ऐसी अवस्था में यह सब करता। लार्ड मिंटो का स्मारक रूप प्रयाग में महारानी विक्टोरिया के घोषणा स्तम्भ के साथ एक पार्क बनेगा। उसका नाम मिंटो पार्क रक्खा गया है। इस का चित्र इस अङ्क में पाठकों के अवलोकनार्थ दे दिया गया है। इस की नेह लार्ड मिंटो स्वयम ९ दिसंबर को डालेंगे—

महारानी के घोषणा स्तम्भ में उनकी बतबे के बाद वाली घोषणा अङ्गरेजी, हिन्दी, तथा उर्दू में खुदी रहै गी—

इस में सन्देह नहीं कि यह स्तम्भ भारत वासियों तथा अङ्गरेजों दोनों के लिए शिक्षा प्रद होगा। अङ्गरेजों को तो यह शिक्षा मिलेगी कि उन्हें इस देश के निवासियों के साथ कैसा बर्ताव रखना चाहिये और प्रजा को यह विदित होगा कि उनका महत्व राजकीय कार्यों में अङ्गरेजों से कुछ कम नहीं रक्खा गया है न उन में और अङ्गरेजों में कोई अन्तर ही समझा गया है। योग्यता बराबर होनी चाहिये।

चित्र परिचय।

मानिनी राधा।

राधा मान किये बैठी हैं कृष्ण खड़े हैं पहिले तो राधा किसी प्रकार कृष्ण से मिलने पर सम्मत नहीं होतीं किन्तु सखियों के बहुत समझाने पर अन्त में वे कृष्ण के निकट जाने पर राजी होतीं हैं जाना तो चाहती है किन्तु रह रह कर पीछे देखती हैं और फिर अनिच्छा प्रगट करती हैं। चित्र श्रीयुत मोलाराम जी कृत है यह उन के प्रपौत्र श्रीयुत् श्यामलाल शाह की कृपा से प्राप्त हुआ है। जिसके लिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। असिल चित्र प्रदर्शिनी में है पाठक उसकी सुन्दरता को वहां पर देख सकेंगे।

के लिए न्यायाधीश के सामने छड़दार एक स्थान है। उसके पीछे मुकद्दमा सुनने वालों के बैठने के लिए बहुत सी बेंचें रक्खी हैं। अदालत के पिछले हिस्से में वकीलों के कई एक स्थान स्वतन्त्र २ बने हैं। ये ही उनके आफिस हैं, यहां पर सर्व साधारण आ जा नहीं सकते। विचार कार्य बड़ी गम्भीरता से और बड़ी ही नियमित रीति से होता है। ठीक अच्छे २ राज्यों की अदालत की भांति ही साक्षी लोग नम्बरवार एक २ करके बुलाए जाते हैं। वकील लोग बड़े उत्साह और प्रेम के साथ बहस करते हैं। विचारपति अभियुक्त के दोष गुण को अच्छी तरह समझ कर विवेक से अपना मत प्रकट करते हैं। इसी ढंग से वहां के न्याय का कार्य समाप्त होता है।

सभी सरकारी कर्मचारी बड़े सच्चरित्र और न्यायपरायण हैं। केवल एक बार एक कर्मचारी रिश्वत लेने के अपराध में पकड़ा गया था, उसी वक्त वह अधिकार-च्युत किया गया, और फिर अन्य रीति से भी उसे दण्ड मिला था।

यह तो हुई राज्य की क़ानून सम्बन्धी बात। खाने पीने के सम्बन्ध में भी राज्यनिवासी अपने पुरुषार्थ पर ही निर्भर हैं! (यहां के मुफ्त खोरे जरा आंख खोलें) "बिना परिश्रम किए कुछ मिलता नहीं" यही इन लोगों का मूलमन्त्र है। हर एक बालक और बालिका अपनी ही कमाई से अपना पेट भरते हैं। केवल बीमारी की हालत में इन्हें 'पराधीन' होना पड़ता है। राज्य के सभी कार्यों के देखने सुनने के लिए दो चतुर खेतिहर हैं, एक कपड़ा बीनने वाला है, और एक मैनेजर की तरह है।

किन्तु बालकगण स्वयं होटल चलाने का सड़क, नहर, जलकल, घर आदि के तयार करने का ठीका लेते हैं। ये ही सब 'कन्ट्रैक्टर' तनखाह देकर दूसरे बालकों से काम कराते हैं। जो जैसा काम करता है, वह वैसी ही तनखाह पाता है। लड़कियां प्रायः घर का काम काज करती हैं, और नाबालिग लोग इनकी सहायता करते हैं। सप्ताह में एक बार वेतन मिलता है। यदि अदूरदर्शी कोई बालक या बालिका हप्ते की आमदनी को दो चार दिन के भीतर ही खर्च कर देती है, तो वह किसी से भी सहायता नहीं पाती। सप्ताह के बाकी दिन उसे निकृष्ट भोजन खा कर और साधारण बिछौने पर सोकर बिताने पड़ते हैं।

पहले इस राज्य के कुछ बालक सरकार की ओर से परवरिश पाते थे। उनमें यही भिन्नता थी कि वे सब के साथ उठ बैठ नहीं सकते थे। उनके भोजन की सामग्रियां भी जेलखाना ही के ढंग की थीं। आत्मसम्मान-आत्मगौरव के इतने नष्ट होने पर भी बहुतेरे इसी तरह बेकार रहने में ही आनन्द मनाते थे! किसी तरह की आय के न रहने से उन्हें सरकारी ऋण भी नहीं मिलता था, और राज्य का बहुत रुपया खर्च होता था। अन्त में एक दिन एक सभासद ने 'व्यवस्थापक सभा' में यह प्रस्ताव किया कि—'जो शक्ति रहते भी कार्य न करेंगे, उन्हें गवर्न्मेन्ट भी किसी तरह की सहायता नहीं देगी।' सर्व सम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, साथ ही पहली व्यवस्था परिवर्तित हो गई। अब गवर्न्मेन्ट अशक्तों को छोड़ कर किसी भी आलसी का भरण पोषण नहीं करती।

अमेरिका के इस 'चरित्रसुधारक' राज्य से हम लोग बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। हमारे देश के ऐसे कोई भी नेता नहीं हैं, जो उद्दण्ड-दुष्ट बालकों के कार्य से दुःखित न होते हों! उद्दण्डता अनेक समय संग दोष से असन्मार्ग में खींच ले जाती है, यह झूँठी बात नहीं है। किन्तु यह उद्दण्डता बालकों की स्वाभाविक-प्रवृत्ति की अधिकता के कारण होती है, इस बात को न समझ कर अनेक लोग अपने बालकों को घर में बन्द रखना ही उचित समझते हैं। इससे बालकों के उत्साह और उद्यम एकबारगी नष्ट हो जाते हैं, और भीतर ही भीतर उनके हृदय में निकृष्ट भावनाओं की उत्पत्ति होने लगती है। इन दोनों संकटों से बालकों के उद्धार करने का सरल उपाय यही है कि उन्हें दिन रात लिखने पढ़ने ही

में न लगा कर निर्दोष-आमोदप्रमोद, नाटक, तर्क-सभा, आदि में भी लगाना चाहिए। और साथ ही साथ कुछ २ गृहस्थी के कार्य का भी भार देना आवश्यक है। अर्थात् बालकों के मत को सर्वदा किसी न किसी अच्छे विषय की ओर लगाए रहना चाहिए, जिससे उनका चित्त किसी न किसी निन्दनीय-घृणित कार्य की ओर झुकने ही न पावै। अवश्य इस तरह के कार्य की व्यवस्था अवस्थानुसार भिन्न २ रीति की होंगी। बोर्डिंग हौसों में ऐसी कार्यप्रणाली बड़ी ही आनन्ददायिनी है। बालक भी बड़े आनन्द, उत्साह के साथ ऐसे कार्यों में योग देते हैं, इसे मैंने अपने आंखों देखा है। इस ढंग के कार्यों से बालकों का स्वाभाविक-उद्यम उत्साह जैसे सत्कर्म में लगता है, उसी तरह उनमें लड़कपन ही से स्वाधीनता, नियमित रीति से कार्य करने की शक्ति, देशभक्ति, मान, मर्य्यादा आदि सद्गुणों की भी उत्पत्ति होगी। आशा है प्यारे देशवासी इस उचित और न्याय-संगत प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देने की कृपा करेंगे।

राजा चेतसिंह।

[लेखक—चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा]

कामिलात तवारीख (Kamilut Tawarikh) के रचयिता इब्न असीर [Ibn Asir] ने लिखा है कि प्राचीन काल में काशी का राज्य अति विस्तृत था और वह शक्तिशाली राज्यों में गिना जाता था। पश्चिम में समुद्र तट से लेकर लाहौर तक और चीन की सीमा एवम् मालवा प्रान्त के मध्य का प्रान्त भी इसी राज्य के अन्तर्गत था। काशी का राज्य प्रतापशाली वीर तथा स्वदेश-भक्त हिन्दू नरेशों से शासित होता था। काशी राज्य की काशी ही राजधानी थी। उस समय काशी नगर केवल भारतबर्ष ही में नहीं, किन्तु एशिया के सर्व-प्रसिद्ध नगरों में गिना जाता था। काशी की उस समय जन-संख्या पचास लाख से भी अधिक बतलाई जाती है। तत्कालीन लेखकों ने काशी का वर्णन करते हुए लिखा है कि वहां सन्यासी और सांड़ों की इतनी भीड़ थी कि पथिकों को गली कूँचों में स्वच्छन्दता पूर्वक चलना कठिन था। काशी की प्रत्येक गली के प्रायः प्रत्येक द्वार में संस्कृत पठन पाठन होता था। उस समय रेलगाड़ी का जन्म यहां नहीं हुआ था। भारतवर्ष में यात्रा करने वालों और व्यापारियों को नावों और बैलगाड़ियों का आश्रय लेना पड़ता था। जो नगर गंगा यमुना जैसी विपुल जल-राशि वाली नदियों के तट पर बसे थे—वे वाणिज्य के केन्द्रस्थल समझे जाते थे।

जिस समय का हाल हम लिख रहे हैं उस समय गंगा अथवा यमुना से नहरें काट कर उनका शरीर क्षीण नहीं कर दिया गया था। जिस समय विदेशी यात्री मैगास्थिनी भारतवर्ष में भ्रमण करने आया था, उस समय गंगा का पाट कम से कम ग्यारह मील और गहराई १२० फीट या ४० गज थी। ऐसी गम्भीर सरिता गंगा के तट पर बसी हुई श्रीविश्वनाथ पुरी काशी, उस समय वाणिज्य, विद्या, धन, जन, सभी से परिपूर्ण थी। काशी पुरी के उस प्राचीन दृश्य का स्मरण कर आज भी शरीर आनन्द से पुलकित हो जाता है। सन्ध्या होते ही भागीरथी के तट पर, सहस्रों ब्राह्मण शिष्यमंडली सहित सन्ध्योपासन के लिये आकर वेदमाता गायत्री की उपासना करते थे। प्रातःकाल पवित्रसलिला जान्हवी का अपूर्वदृश्य होता था। भक्तहिन्दुओं के चढ़ाये रंगविरंगे पुष्पों से टकराती पूर्वाकाश में निकलते हुए भगवान मार्तण्ड की रश्मियां—गंगा की अपूर्व शोभा बना देती थीं। उधर काशीपुराधीश बाबा विश्वनाथ और काशीपुराधीश्वरी भगवती अन्न-

पूर्णा के दर्शनाभिलाषियों से उक्त मन्दिरों के पास वाली गलियां ख़चाखच भर जाती थीं। "बाबा विश्वनाथ की जय" ! और माता अन्नपूर्णा की जय जय-कार से और मन्दिर से लटकते हुए सहस्र सहस्र घण्टों के नाद से, दिशा विदिशा प्रतिध्वनित हो–एक अपूर्व दृश्य उपस्थित करती थीं। सन्ध्या समय भागीरथी के तट पर सन्यासी एवम् गृहस्थ पण्डित शास्त्र की चर्चा करते हुए कालक्षेप करते थे।

काशी के हाटबाट का दृश्य भी बड़ा ही मनोहर था। दूकानों पर चित्रविचित्र रंग के रेशमी पाटम्बर एवम् पीताम्बर तथा ज़रदोज़ी के काम के बहुमूल्य वस्त्र, नाना प्रकार के सुन्दर सुडौल चांदी, सोने, तांबे, पीतल, फूल आदि धातुओं के बने हुए बर्तनों की शोभा देखते ही बनती थी और देशी कारीगरों की भूर भूर प्रशंसा किये बिना देखने वालों का मन ही नहीं मानता था। बाहर से आये हुए तीर्थयात्रियों की भीड़–पालकी के कहारों की हटो बचो की चीत्कार, कामकाजी लोगों के आने जाने की आहट–काशी के हाटबाट की एक विचित्र मनोहारिणी छवि दिखाते थे। हिन्दू नरेशों की राजधानी–उस समय काशी की काशी ही उपमा थी। उस समय का काशी नगर भारतवर्ष का पश्चिम-द्वार, वाणिज्य का केन्द्र; धर्म का क्षेत्र और विद्या का पीठ समझा जाता था।

"ताजुलम्-असीर (Tajulam-Asir) के रचयिता हुसेन निज़ामी* ने लिखा है कि काशी के तत्कालीन नरपति–राजा जयचन्द सन् ११९४ ई० में अपने साथ असंख्य सैन्य दल ("An army contless as the sand") ले, ग़ज़नी के शाहबुद्दीन गौरी के भारताक्रमण का गतिरोध करने के लिये अग्रसर हुए थे। यमुना के तट पर दोनों ओर की सेनाओं की मुठभेड हुई थी। यह संग्राम घोर संग्राम था। जननी जन्मभूमि की रक्षा में राजा जयचन्द की अधीनस्थ सेना ने निर्भय होकर युद्ध किया था। भारतमाता के चरण कमलों पर भारत की सपूत सन्तान ने, म्लेच्छों से माता को बचाने के लिये, सहस्रों नरमुण्ड चढ़ाये थे। पर विधि का विधान विचित्र है ! राजा जयचन्द जननी जन्मभूमि को बचाने का उद्योग करते हुए रणक्षेत्र में मारे गये। युद्ध करते समय राजा जयचन्द की छाती में एक बाण लगा। इस प्राणघातक बाण के आघात से राजा जयचन्द वीरगति को प्राप्त हुए। उनके मरते ही सेनापति-विहीन उनकी सेना के रणक्षेत्र से पैर उखडे। सेना हताश होकर छिन्न भिन्न हो गई। भागती हुई छिन्नभिन्न हिन्दू सेना का–विदेशी आक्रमणकारी सेना के जनरल कुतुबुद्दीन ने, पीछा किया और पवित्र काशीपुरी में प्रवेश किया।

विपुल विभव शालिनी काशी राजधानी में, मुसलमानी सेना ने अकाण्डताण्डव नृत्य किया और नगर निवासियों का मनमाना धनलूटा। हिन्दुओं के एक सहस्र देवालय* ढहाये गये। उनके स्थान पर मसजिदें बनवाई गई। जहां हिन्दू लोग भगवान् का स्तव करते थे–वहां "अल्लाहो-अकबर" का चीत्कार सुनाई देने लगा। मुसलमान जेताओं के अत्याचारों से काशीपुरी बिकल हो गई। म्लेच्छों के अत्याचारों से परित्राण पाने का अन्य उपाय न देख–वहां के सम्भ्रान्त और धनवानों ने जेताओं के साथ विवश हो सद्भाव स्थापित किया। म्लेच्छों ने काशी प्रान्त की शान्तमयी व्यवस्था करने के लिये एक मुसलमान शासक नियुक्त किया।

* इलियट साहब रचित मुसलमानी हिस्ट्री की

* "Destroying one thousand temples & erecting mosques on their foundations." History of the Province of Benares. Part 1 Page 2

तब से लेकर १७वीं शताब्दी तक काशी खण्ड मुगल सम्राटों के हाथ में रहा। अकबर के शासन काल में काशी प्रयाग की सूबेदारी में सम्मिलित कर दिया गया। औरंगजेब जब देहली के राज-सिंहासन पर बैठा, तब काशी खण्ड, प्रयाग की सूबेदारी से निकाल कर अवध की सूबेदारी में मिला दिया गया, किन्तु काशी राज्य और अवध की सूबेदारी एक नहीं करदी गई और काशी खण्ड, जिसकी राजधानी बनारस नगर था सदैव एक प्रान्त विशेष ही परगणित होता रहा। काशी प्रान्त का इतना गौरव था कि मुसलमानी शासन काल में काशी के प्रायः सभी शासक मुगल सम्राट के वंशधरों ही में से हुआ करते थे। शाहजहां का ज्येष्ठ पुत्र दारा शिकोह कितने ही वर्षों तक, काशी में मुग़ल सम्राद् का प्रतिनिधि बन कर रहा था।

सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में गंगा तट पर बसे हुए नगरों और मध्य भारत के नगरों में मरहट्टों के छापों के मारे बड़ी गड़बड़ मच गई। इस गड़बड़ी से देहली के सम्राट् की शक्ति अति क्षीण पड़ गई। शृङ्खलाबद्ध शासन में शिथिलता देख काशी खण्ड के कितने ही धनवान और शक्तिशाली भूस्वामी स्वतंत्रता की भेरी बजाने लगे। आत्मरक्षा और आत्मक्षमता प्रदर्शनार्थ इन लोगों ने कितने ही गढ़ और गढ़ी बनवायीं और उस समय के शासनाधिकारियों को राजस्व देना बन्द कर दिया।

इससे देहली के सम्राट् की बड़ी अप्रतिष्ठा हुई और इस अंधाधुन्धी को रोकने के लिये सम्राट् मोहम्मद शाह ने सन् १७३० ई० में एक हिन्दू राजा द्वारा बनारस प्रान्त के राज्य का जीर्णोद्धार करने का विचार स्थिर किया। काशी के प्राचीन नरेशों के राजघराने में किसी के न मिलने पर राजराजेश्वर ने मंसाराम को काशी की गद्दी पर अभिषिक्त किया। मंसाराम त्रिकर्मा अथवा भूमिहार ब्राह्मण* थे और अपनी जाति में प्रतिष्ठावान् और क्षमता सम्पन्न समझे जाते थे। सम्राट् मोहम्मदशाह ने मंसाराम को राजा की सनद दी और बनारस, जौनपुर एवम् ग़ाज़ीपुर की जागीरें उन्हें दी। पर साथ ही प्रतिवर्ष देहली के राजकोष में १३ लक्ष रुपये जमा करा देने की आज्ञा दी।

भारत के मुग़ल सम्राट् की कृपा से मंसाराम काशी के पूर्णाधिकार प्राप्त-राजा नियत हुए। मंसाराम के राज्याभिषेक के समय काशी में खूब धूमधाम हुई। राजा मंसाराम ने थोड़े ही दिनों में अपने बुद्धिबल और पराक्रम से अपने राज्य की अराजक प्रजा को राजभक्त बना लिया। आठ बर्ष लों सफलता पूर्वक राज्य कर, राजा मंसाराम सन् १७३८ ई० में मृत्यु को प्राप्त हुए और उनके पीछे उनके पुत्र बलवंतसिंह उनके उत्तराधिकारी हुए। मोहम्मदशाह ने बलवन्तसिंह को राजा की सनद दी और उन्हें बनारस राज्य का राजा करके माना। राजा बलवन्तसिंह से भी तेरह लाख रुपये वार्षिक लेने की व्यवस्था की गई। राजा होने पर बलवन्तसिंह ने सम्राट् को २१७७३ रु० भेंट किये।

राजा बलवन्तसिंह, अपने पिता राजा मंसाराम की तरह पूर्णाधिकार प्राप्त राजा थे। अपने राज्य के अन्तर्गत उन्हें सब अधिकार प्राप्त थे। उन्हें केवल अपने रुपये ढालने का अधिकार नहीं था। यह अधिकार देहली के सम्राट् ने स्वाधीन रक्खा था। पर सम्राट् का मोहर छाप के रुपये बनारस ही में ढाले जाते थे और बनारस के टक-

---

* पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना यज्ञ कराना, और दान लेना, दान देना, ये छः कर्म ब्राह्मणों के हैं। पर क्षत्री पढ़ते, यज्ञ करते और दान देते हैं। ये तीन कर्म क्षत्रियों के लिये निर्दिष्ट हैं। पर क्षत्रियों के ये तीन कर्म करते हुए भी भूमिहार अपने को "त्रिकर्म्मा ब्राह्मण" बतलाते हैं। —लेखक

सारे घर का सारा प्रबन्ध राजा बलवन्तसिंह के ऊपर था। अपने राज्य के अन्तर्गत बलवन्तसिंह ने बचेबचाये गढ़ और गढ़ियों को जीत कर अपने राज्य की सीमा के अन्तर्गत बसने वालों पर अपना पूरा प्रभुत्व जमा लिया और सन १७४८ ई० के अन्त तक अर्थात् जब तक बादशाह जीवित रहे, प्रतिवर्ष ठीक समय पर देहली के राजकोष में १३ लक्ष रुपये जमा कराते रहे।

ऊपर कहा जा चुका है कि औरंगज़ेब के समय से बनारस अवध की सूबेदारी में कर दिया गया था और अवध के सूबेदार काशी के राजा पर केवल साधारण देखरेख रखते थे। क्योंकि काशी के राज्य को मुग़ल सम्राट् ने स्वयं सनद दी थी। जिस प्रकार दक्खिन की सूबेदारी की देखरेख में, धार, सितारा और कोल्हापुर की देशी रियासतें थीं वैसे ही काशी राज्य भी अवध के सूबेदार की केवल देखरेख में होने पर भी स्वाधिकार युक्त था।

सन् १७७४ ई० में जब सम्राट् मोहम्मदशाह की मृत्यु हुई और अहमदशाह बादशाह हुआ तब उसने अवध के सूबेदार सफ़दरजंग को देहली की सल्तनत् का वज़ीर नियुक्त किया। दक्खिन के प्रथम निज़ाम के पौत्र शाहबुद्दीन उर्फ़ ग़ाज़िउद्दीन के कारण सफ़दरजंग सम्राट् की निगाह से उतर गये। अपनी विज़ारत के लिए सफ़दरजंग ने सम्राट् के साथ युद्ध किया, पर फल कुछ न निकला। इसी समय देहली के सम्राट् के विरुद्ध ही सफ़दरजंग ने सम्राट् के बनाये राजा बलवन्तसिंह पर भी आक्रमण करके उन्हें राजा से एक साधारण भूस्वामी बनाना चाहा। नवाब से सैनिक बल में छोटे होने पर भी योग्यता में अधिक होने से बलवन्तसिंह ने अपनी स्वतंत्रता की रक्षा की, किन्तु उस झगड़े में चुनार का क़िला सफ़दरजंग के हाथ में चला गया! सफ़दरजंग, सन् १७५३ ई० में मरा, पर उसके उत्तराधिकारी शुजाउद्दौला ने भी राजा बलवन्तसिंह पर हाथ चलाना आरम्भ किया। राजा बलवन्तसिंह ने बड़े कौशल से आत्मरक्षा की और रामनगर का दृढ़ क़िला निर्माण किया। किंतु राजा साहब की शक्ति नवाब का सामना करने की नहीं थी और किसी न किसी दिन बनारस का राज्य नवाब के हाथ में जाता और राजा बलवन्तसिंह अवश्य ही एक न एक दिन ज़मीदार मात्र कर दिये जाते। किन्तु भाग्यवश घटनाक्रम से शुजाउद्दौला का ध्यान और घटनाओं की ओर आकर्षित हुआ। सन १७७४ ई० में सम्राट् अहमदशाह अन्धा बना कर अपने पद से, वज़ीर ग़ाज़िउद्दीन के द्वारा, च्युत कर दिया गया और आलमगीर उसके शून्य पद पर बिठलाया गया।

उसके पुत्र मोहम्मदअली गोरी ने अपने पिता और वज़ीर के साथ बग़ावत की, और देहली से भाग कर अवध के नवाब की पनाह ली। नवाब और मोहम्मदअली ने मिल कर मीर जाफर को बंगाल की सूबेदारी से अलहदा करने के लिये सन १७५० ई० में, एक बड़ी सेना ले पटना पर चढ़ाई की।

देहली के सम्राट् ने अपने पुत्र और अधीनस्थ नवाब अवध की इस काररवाई की ख़बर सुन, मीर जाफर और दूसरे अपने मातहत सूबेदारों और राजाओं के नाम हुक्म जारी किया कि मोहम्मदअली गोरी और नवाब का हथियारों से सामना किया जाय। मोहम्मदअली क़ैद कर लिया जाय और नवाब अवध को सज़ा दी जाय। सम्राट् की आज्ञानुसार बंगाल के सूबेदार ने अंगरेज़ों की सहायता से आक्रमणकारियों को पटना से भगाया। नवाब और गोरी को अवध लौटने में देहली सम्राट् के कृपापात्र राजा बलवन्त सिंह ने भी यथाशक्ति सहायता दी। ४ फरवरी सन १७६४

ई० को अंगरेज़ सेनापति मेजर कारनक (Major Carnac) ने गवर्नर जनरल को लिखा कि हमारी सहायता के लिये जो सेना बंगाल से आने वाली थी, उसके अभी तक न आने से हमारी सेना बडी भयानक स्थिति में पड़ गई है। अब अपनी अधीनस्थ सेना ही के बल पराक्रम पर निर्भर हो, करमनासा नदी पार कर, शत्रु के साथ युद्ध करना अत्यावश्यक है। पर खाने पीने की यथेष्ट सामग्री न मिलने से सेना को बड़ी विपत्ति में पड़ना पड़ेगा। शत्रु का विचार भी हमारी रसद का मार्ग अवरुद्ध कर देने का प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति होने पर नवाब के प्रस्ताव ने हमारी बहुत कुछ चिन्ता मिटा दी है। नवाब मीर जाफर बनारस के राजा बलवन्तसिंह के साथ मैत्री करना चाहते हैं। कारनक साहब के उपरोक्त पत्र के उत्तर में २६ मार्च को कलकत्ते से जो पत्र आया उसमें अंगरेज़ सेनापति को राजा बलवन्तसिंह के साथ मैत्री स्थापित करने के लिये आज्ञा दी गई थी। पत्र में लिखा था :—

Having duly considered the letter of Major Carnac, we are unanymously of opinion that as Shuja-ul-Doulah having openly avowed his designs of aiding Kasim Ali Khan, in invading Bengal, it is our duty to form against him, all the enemies we possibly can, that the proposed alliance with Balwant Singh will, therefore, be a very proper measure, and prove as well now as in all time to come a strong barrier and defence to the Bengal Province. Agreed, therefore, that we write to Major Carnac, advicing him that we shall approve entirely of his entering into the intended treaty in concert with the Nawab Mir Jaffar & of his engaging *to protect and maintain Balwant Singh independent both now* and *hereafter.*

अर्थात् कौंसिल के सभ्यों ने मेजर कारनक के पत्र पर यथेष्ट विचार पूर्वक एक मत हो निश्चित किया कि जब शुजा-उ-दौला ने खुल्लमखुल्ला मीर क़ासिम को सहायता देने का वचन दिया है तब हम लोगों का कर्त्तव्य है कि शुजा-उ-दौला के जितने शत्रु हम बना सकें बनावें। अतः कौंसिल के सभ्यों की समझ में बलवन्तसिंह के साथ मैत्री करना उपयुक्त प्रतीत हुआ। क्योंकि राजा बलवन्तसिंह के साथ मैत्री करने से शुजा-उ-दौला के शत्रुओं की संख्या बढ़ेगी और बंगाल प्रान्त की सीमा भी सुदृढ़ होगी। अतः सर्वसम्मति से कौंसिल ने मेजर कारनक को पत्र द्वारा सूचना दी कि नवाब मीर जाफ़र के परामर्श से बलवन्तसिंह के साथ तुम मैत्री करो और राजा बलवन्तसिंह को कौंसिल की ओर से विश्वास करा दो कि इस समय और भविष्य में राजा बलवन्तसिंह की स्वतंत्रता की सदैव रक्षा की जायगी।

कलकत्ते से इस आशय का पत्र पाकर, मेजर कारनक ने कौंसिल की ओर से (नवाब मीर जाफर की ओर से नहीं) बलवन्तसिंह के साथ सन्धि स्थापित की।

सम्राट् आलमगीर परलोक सिधारा और शाह आलम उसका उत्तराधिकारी हुआ। यह शाहआलम अवध के सूबेदार के हाथ का गुड्डा था। अवध के सूबेदार ने मीर जाफर और अंगरेज़ों के साथ युद्ध करने के लिये शाह आलम को विवश किया। राजा बलवन्तसिंह के साथ सन्धि स्थापित हो चुकी थी। अतः मेजर कारनक के स्थानापन्न मेजर मनरो ने, मेजर कारनक के पूर्व-विचारानुसार करमनासा पार कर, वज़ीर और शाहआलम की सेनाओं को, बक्सर में, ता० २४ अक्टूबर सन् १७६४ ई० को सदैव के लिये परास्त किया।

इस हार से विरक्त हो शाहआलम अवध के सूबेदार से प्रथक होकर, अंगरेज़ सेनापति से, उस के शिविर (केम्प) में जाकर मिले। अंगरेज़ सेनापति ने सम्राट् का सम्राटोचित आगत स्वागत एवम् आतिथ्य सत्कार किया। सम्राट् शाहआलम ने कई एक प्रस्ताव लिख कर मेजर मनरो को दिये जिन्हें मनरो ने ज्यों के त्यों २२ नवम्बर सन १७६४ ई० को गवर्नर जनरल की सेवा में कलकत्ते भेज दिये।

प्रस्ताव-पत्र भेजते हुए मेजर मनरो ने अपने पत्र में अनुरोध किया कि वह देश जो अवध के सूबेदार की निज़ामत में है, बनारस के राज्य को छोड़ कर, सम्राट् के हवाले कर देना चाहिये और वज़ीर नवाब अवध को निकाल देना चाहिये। इसी इरादे से मेजर मनरो ने आगे बढ़ कर राजा बलवन्त सिंह की सहायता से चुनार का किला लेना चाहा। चुनार का गढ़ राजा मंसाराम को मोहम्मदशाह ने दिया था। किन्तु दो बार चुनार लेने का प्रयत्न करने पर भी, मेजर मनरो और राजा बलवन्त सिंह सफल न हुए, प्रत्युत दोनों बार उनके बहुत से सैनिक मारे गये। शुजा-उ-दौला के निजवाहिनी सहित चुनार उद्धार के लिये आगमन के समाचार सुन मेजर मनरो चुनार लेने का विचार छोड़ बनारस लौट गये। मेजर मनरो की सेना के बहुत से सिपाही मारे जाने से उनकी सेना अति क्षीण हो गई थी—पर राजा बलवन्त सिंह के साथ मित्रता होने से, मेजर मनरो पर शुजा-उ-दौला को आक्रमण करने का साहस न हुआ। राजा बलवन्त सिंह ने, मेजर मनरो की सेना को, यथेष्ट रूप से रसद पहुँचाई। मेजर मनरो दो मास तक बंगाल से सेना की सहायता पाने के लिये काशी में टिके रहे। १७ जनवरी सन १७६५ ई० को जब प्रधान सेनापति सर राबर्ट फ्लेचर (Sir Robert Flecher) आये, तब चुनार लेने के लिये पुनः चेष्टा की गई और अन्त में वजीर के हाथ से चुनारगढ़ ले लिया गया।

मेजर मनरो का पत्र पाकर कलकत्ते की कौंसिल ने सम्राट् के प्रस्तावों और मेजर मनरो के पत्र पर विचार किया। ६ दिसम्बर सन १७६४ ई० को कौंसिल ने मेजर मनरो को लिखा कि सम्राट् शाहआलम आप से मिले—यह सुन कर हम अत्यन्त प्रसन्न हुए और शुजा-उ-दौला की मिलकियत के बारे में जो आपने प्रस्ताव किया वह हमें मान्य है। कौंसिल के इस पत्र के साथ उस सन्धि का मसौदा भी था जो सम्राट् शाहआलम के साथ होने वाली थी। उस सन्धि का कुछ अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं।

"As the English Company have been put to great exhense, and their affairs exposed to danger, by the war which the Nawab Shujah-ul-Doulah unjustly, and contrary to our royal pleasure, waged against them, we have therefore assigned to them the country of Ghazeepore and the rest of zemindarry of Rajah Balwant Singh, belonging to the Nixamut of the Navab Shujah-ul-Doulah, the regulation and Government thereof we have given to their disposal in the same manner as it was in the Nawab Shujah-ul-Doulah. The aforesaid Rajah, having settled terms with the chiefs of the English Company, is therefore to pay the Revenue to the Company, and the amount shall not belong to the Books of Royal Revenue but shall be expunged from them. The army of the English Company, having joined our standard, shall put us in possession of Allahabad, and the rest of the countries belonging to the Nizamut of the Nawab

Shujah-ul-Doula. The revenues, excepting those of Rajah Balwant Singh's territories shall be in our entire management and disposal''

अर्थात् हमारी इच्छा के विरुद्ध अन्याय से जो युद्ध नवाब शुजा-उ-द्दौला ने कम्पनी के साथ किया—इससे कम्पनी का बहुतसा धन व्यय हुआ और कम्पनी की स्थिति भयानक हो उठी; अतः हमने गाजीपुर की भूमि और राजा बलवन्त सिंह की मिलकियत जो अभी तक नवाब शुजा-उ-द्दौला की निज़ामत के अन्तर्गत थी एवम् उन प्रान्तों का शासन और परिचालन उसी प्रकार जैसा शुजा-उ-द्दौला के हाथ में था—कम्पनी को दिया। काशी नरेश ने कम्पनी के साथ सन्धि कर ली है अतः उनके राज्य का राजस्व अब हमारे खातों से निकाल कर कम्पनी के खातों में जमा किया जायगा। अंगरेज़ी सेना अब हमारे झण्डे के नीचे आ गई है अतः प्रयाग और शुजा-उ-द्दौला की निज़ामत की अवशेष जागीर पर वह हमें अधिकार दिला देगी। राजा बलवन्त सिंह की रियासत का राजस्व छोड़ कर बाक़ी सब राजस्व हमारे हाथ में आवेगा और उसका उपयोग हमारी इच्छा पर निर्भर रहेगा।

सम्राट् शाहआलम ने उपरोक्त ठहराव स्वीकार किये और २९ दिसम्बर सन १७६४ ई० को एक शाही फ़रमान लिखा गया, जिसमें ऊपर लिखी सब बातें लिखी गई। इस सन्धि की लिखा पढ़ी हो जाने पर बनारस का राज्य सम्राट् शाहआलम ने जिन्हें अपने अधीनस्थ राज्य को देने का पूर्ण अधिकार था, कम्पनी को दे दिया। जिस नियम और रूप में अंगरेज़ों ने बंगाल बिहार और उड़ीसा की दीवानी पाई, उसी तरह बनारस भी उनके अधिकार में पहुँचा।

कलकत्ते की कौंसिल के प्रेसीडण्ट ने अपने सिर की बला टालने को, उपरोक्त सन्धि का मसौदा भेजते समय जो पत्र मेजर मनरो को भेजा था उसमें लिखा था:—

* * "To have everything done under the sanction of the Ring's authority, that we may appear as holding our acquisitions from him, and acting in the war under his authority, in supporting his Majesty's and not he as holding those rights from us."

अर्थात् अब जो काम करना वह सम्राट् से अधिकार प्राप्त करके करना, जिससे प्रतीत हो कि हमने जो कुछ प्राप्त किया है वह सम्राट् ही से पाया है। यदि किसी से युद्ध करो तो सम्राट् की आज्ञा लेकर करना जिससे सम्राट् के स्वत्वों का समर्थन हो। ऐसा न प्रतीत हो कि हमारी आज्ञा से तुम सब काम कर रहे हो और सम्राट् हमारे हाथ का कठपुतला हो रहा है।

(क्रमशः)

श्री कृष्णचन्द्र का गाय से प्रेम।

[लेखक—श्रीयुत राय देवीप्रसाद जी (पूर्ण)]

(१)

ह्वैके गोपाल जासु लालन औ पालन कै,
पदवी गोपाळ जू की पारब्रह्म पाई है।
जाकी पीर हरिबे को हरि ने अनेक बार,
लीन्हों धरनी पै अवतार सुखदाई है॥
सुरभी सी नंदिनी सी जाकी जाति वारिन की,
सेवा में लगोही रहै देव समुदाई है।
दीनानाथ सोई कलिकाळ के प्रभावन सो,
हाय जग पावन अनाथ भई गाई है॥

(२)

उठि कै सबेरे जाय नेरे जासु आदर सों,
पहिले दरस लह्यो मोद अधिकाई है
जैसे कृष्ण आको दूध बछरै पिवायो कृष्ण,
तीर यमुना के सब दिवस चराई है॥

भाग १] दिसम्बर सन् १९१० [संख्या २

मर्यादा ।

[लेखक—पं० बदरी नारायण चौधरी (प्रेमघन) ।]

जय जय मर्य्यादापुरुषोत्तम धर्म्म धुरन्धर ।
जय जग एकादर्श भूमिपति महावीर वर ॥
नासन म्लेच्छाचार दलन दल प्रबल निशाचर ।
करन यथोचित प्रजा प्रचारन दुरन दुःख उर ॥
आरत लखि भारत आज सो राम दया दरसाइये ।
पूरब मर्य्यादा थापि इत बहुरि बिनोद बढ़ाइये ॥

—*—

विनय ।

[श्रीमती लीलावती देवी लिखित]

(१)

पतितपावन, पुण्यमय, अशरण-शरण, लक्ष्मीपते,
दीन-दुखहारी, दयाकर, देव-देव, महामते !
भयहरण मंगलकरण सङ्कट निवारण आप हो !
विश्व के उत्पत्ति, पालन, प्रलय-कारण आप हो ॥

(२)

वेद भी महिमा तुम्हारी नाथ ! कह सकते नहीं,
निज जनों का तुम दयामय ! दुःख सह सकते नहीं ।
फिर अहो किस दोष से हम पर दया करते नहीं,
दीनबन्धो ! क्यों हमारी यातना हरते नहीं ?

(३)

नाथ ! तुम को छोड़ कर सोचो हमारा कौन है ?
हरि बिना हतभाग्य का जग में सहारा कौन है ?
हम निराश्रय हैं हमारे आप ही आधार हैं,
बन रहे सारे दुखों के आज हम आगार हैं !

(४)

तुम पतितपावन, पतित हम, तुम सदय, हम दीन हैं
सब प्रकार समर्थ तुम हम सर्वशक्ति-विहीन हैं ।
हाय ! रक्षक सर्वदा होकर हमारे आप से,
हो रहे त्रैताप नाशन ! दग्ध हम सब ताप से !

(५)

हे हरे बस आप से विनती हमारी है यही—
दुःखसागर में अहो ! डूबे न यह भारतमही ।
दैत्यवर इसको जलधि में नाथ ! जब था ले गया,
तब उबारा था तुम्हीं ने निज जनों पर कर दया ॥

(६)

विभव पहले विश्व के थे आपने इसको दिये,
फिर कहो किस हेतु से वे सब हरे ! अब हर लिये ?

ज्ञान, गौरव, सभ्यता का केन्द्र हा ! यह देश था,
स्वप्न में भी दुःख का इसमें न कुछ भी लेश था ॥

(७)

दान विद्या और धन का यह सदा करता रहा,
अन्य देशों के सभी दुख सर्वदा हरता रहा।
ज्ञान देकर विश्व को यह यश सदा पाता रहा;
हा! इसी का हाल अब हमसे न कुछ जाता कहा !

(८)

अन्न-धन-परिपूर्ण यह सब भांति सुख से था पला,
धर्म के पथ में सदा उत्साह-पूर्वक था चला।
था कभी प्रभुवर ! न यह परमार्थ साधन से टला,
जो न इसको प्राप्त थी है कौन सी ऐसी कला ?

(९)

था अकाल न और कोई प्लेग आदिक रोग थे,
शान्ति-पूर्वक भोग सारे भोगते सब लोग थे।
श्रेष्ठ था जो हाय ! सबसे अब निकृष्ट हुआ वही
भक्तवत्सल ! क्यों तुम्हारी अब न वह करुणा रही ?

(१०)

स्वप्न में भी दुःख जिसने था कभी देखा नहीं,
हाय ! क्यों कर जांय उससे यातनाएँ ये सहीं ?
था हँसाया भी न जितना हाय ! आप रुला चुके,
सब तरह माधव ! हमें हा ! हन्त ! आप भुला चुके ! !

(११)

कौन से हैं कष्ट ऐसे जो न हमने हों सहे ?
हाय ! आशा पर तुम्हारी ईश ! हम जीते रहे।
क्या अभी कुछ और भी दुर्गति हमारी शेष है ?
क्या दया आती न अब भी आपको विश्वेश ! है !

(१२)

त्याग दें जो आप ही तो फिर ठिकाना है कहां ?
दीनवत्सल ! कौन तुम सा और रक्षक है यहां ?
सुख न दो तो दुख सहन की शक्ति ही बस दो हमें,
दो यथेष्ट विपत्ति ही पर नाथ ! [illegible] हमें ॥

यूनानी राजदूत और वैष्णव धर्म।

[लेखक—पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा।]

प्राचीन शिलालेख और पुस्तक आदि से हिन्दुस्तान में बसने वाले प्राचीन काल के यूनानियों (ग्रीक) लोगों में से कितने एक के बौद्ध धर्म ग्रहण करने के उदाहरण तो मिल जाते हैं, परन्तु भारतवर्ष के प्राचीन शोध के अध्यक्ष* मि० मार्शल साहब के यत्न से गत वर्ष एक शिलालेख मिला जिससे पाया जाता है कि तक्षशिला के यूनानी राजा ऐंटिआल्किडस् (Antialkidas) का दूत हेलिओडॉरस् [Heoliodors] वैष्णव धर्म के भागवत सम्प्रदाय का अनुयायी था। उस लेख के भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के लिये विशेष उपयोगी होने के कारण 'मर्यादा' के पाठकों को हम उसका परिचय कराते हैं।

सेंट्रल इंडिया के ग्वालियर राज्य के भेलसा ज़िले का मुख्य स्थान भेलसा (भिलसा) है, जो बौद्धों के पवित्र प्राचीन स्तूपों के लिये प्रसिद्ध है। वहां के स्तूपों के विषय में जनरल कनिंगहम साहेब ने 'भिलसा टोप्स' नाम का एक बहुमूल्य ग्रन्थ प्रकाशित किया है। इसी भेलसा से थोड़ी दूर पर बेस नगर नाम का एक छोटा सा गांव है, जिसके निकट दूर २ तक प्राचीन काल की इतिहास प्रसिद्ध विदिशा नगरी के खण्डहर हैं, जिनकी छानबीन जनरल कनिंगहम साहब ने सन् १८७७ ईसवी में की, जिसका विस्तृत वर्णन उन्होंने अपनी प्रकट की हुई 'आर्किआलॉजिकल् सर्वे रिपोर्ट' की दसवीं जिल्द में (पृ० ३६–४६) किया है। वहां पर उन्होंने बेतवा और बेस नदियों के संगम के पास एक प्राचीन विशाल स्तम्भ का पता लगाया जिसका

* Director-General of Archæology in India.

सुन्दर चित्र ऊंचाई के नाप के साथ उक्त रिपोर्ट की प्लेट १४वीं (प्रथम चित्र) में उन्होंने दिया है। वह स्तम्भ वहां पर 'ख़वला बाबा' के नाम से प्रसिद्ध है और लोग उसको पवित्र समझते हैं। कई यात्री उसके लिये वहां जाते हैं उसके आगे जानवरों का बलिदान करते हैं और उस पर सिंदूर चढ़ाते हैं। जिस समय कनिंगहम साहब ने इस स्तम्भ की जांच की उस समय सारे स्तम्भ पर सिंदूर का गहरा रंग जमा हुआ था और लोग उस को पवित्र मान कर पूजते थे, इस कारण सिंदूर को उखाड़ कर उसकी पूरी जांच करना सम्भव न हुआ। उसकी ऐसी स्थिति पर से भी उन्होंने यह अनुमान किया कि वह गुप्तों के समय का होना चाहिए और सिंदूर के नीचे उसके बनाने वाले का नाम समय आदि प्रकट करने वाला लेख होना चाहिये, परन्तु जब वहां के पुजारियों ने उनसे यह कहा कि उस पर कोई लेख नहीं है तब वे निराश हो कर वहां से लौटे। दैवयोग से वह सिंदूर का रंग अधिक मोटा हो जाने के कारण कुछ वर्ष हुए स्वयं उखड़ गया और पत्थर निकल आया परन्तु लोग फिर भी उस पर सिंदूर लगाते ही रहे। गत वर्ष के जनवरी मास में मिस्टर मार्शल साहब वहां पर पहुंचे उस समय ग्वालियर राज्य के इंजीनियर मि० लेक साहब ने उक्त स्तंभ के हिस्से पर अक्षरों के निशान देखे और थोड़ा सा सिंदूर हटाते ही अक्षर स्पष्ट दिखलाई दिये। फिर मि० मार्शल साहब ने उस स्तंभ को साफ करवाया तो उस पर दो लेख निकल आये, जिनके लिये वे सारी शिक्षित समाज के धन्यवाद के भागी हैं। ये लेख गुप्तों के समय के नहीं किन्तु उससे बहुत पहिले के अर्थात् ईसाई ईसवी सन से पूर्व की दूसरी शताब्दी की प्राचीन लिपि में खुदे हुए हैं, जो मौर्यवंशी राजा अशोक के शिला लेखों की लिपि से बहुत ही मिलती है। इन दो लेखों में से बड़े अर्थात् ७ पंक्ति वाले के विषय में हमारा यह लेख है। मि० मार्शल साहब ने उस लेख का छाप तय्यार कर एक तो डाक्टर ब्लाक (Dr, Theo Bloch) के पास भेजी और दूसरी छाप तथा उसी का एक फोटो डा० फ्लीट साहब के पास इंग्लैंड भेजा। डा० ब्लाक साहब का तय्यार किया हुआ उक्त लेख का रोमन अक्षरांतर तथा अंग्रेज़ी भाषांतर मि० मार्शल साहब ने "भारतीय प्राचीन शोध संबंधी टिप्पणियां" (Notes on Archæological Exploration in India, 1808—9) नामक अपने लेख में छपवाया (रायल एशियाटिक सोसाइटी के स० १९०९ के जर्नल की अक्टोबर की संख्या में पृ० १०५५–५६) और साथ ही उसका फोटो भी प्रकट किया। डा० फ्लीट साहब ने भी अपना तय्यार किया हुआ उसका रोमन अक्षरांतर अंग्रेज़ी अनुवाद सहित उसी संख्या में (पृ० १०८७–९२) छपवाया। फिर मि० देवदत्त भंडारकर ने उक्त छपे हुए फोटो पर से उसका रोमन अक्षरांतर तथा अंग्रेज़ी भाषान्तर बंबई की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में (अंक २३, पृ० १०३) प्रकाशित किया। परन्तु इन तीनों अक्षरान्तरों में से एक में भी अन्तिम पंक्ति का पाठ संतोषदायक न था, जिसका कारण फोटो तथा छाप में उक्त पंक्ति के कुछ अक्षरों का स्पष्ट न होना ही था। फिर इस वर्ष मि० लेक साहब ने उक्त स्तंभ को बिलकुल साफ़ करवा कर उस लेख की एक उत्तम छाप प्रोफ़ेसर वेनिस साहब के पास भेजी जिसमें अंतिम पंक्ति के अक्षर स्पष्ट पढ़े गये और मुख्य कठिनाई दूर हो गई।

उक्त लेख का नागरी अक्षरांतर तथा भाषांतर नीचे लिखा जाता है :—

अक्षरान्तर :—

(१) देवदेवस वा[सु]देवस गरुडध्वजे अयं

पंक्ति
(२) कारितो इ[अ] हेलिओदोरेण भाग-
(३) वतेन दिअस पुत्रेण तखसिलाकेन
(४) योनदूतेन आगतेन महाराजस
(५) अंतलिकितस उपंता सकासं रञो
(६) कासीपुतस [भा]गभद्रस त्रातारस
(७) वसेन चतुदसेन राजेन बधमानस

भाषान्तर :-

"देवताओं के देवता वासुदेव का यह गरुड़-ध्वज तक्षशिला के रहने वाले, दीअ (Dion) के पुत्र, भागवत, हेलिओदोर (Heliodores) (नामक) यवन दूत ने यहां पर बनवाया, (जो) महाराज अंतलिकित (Antialkidas) के यहां से त्रातार राजा काशीपुत्र भागभद्र के पास (उसके) प्रवर्द्धमान राज्यवर्ष १४वें में आया था"

टिप्पणी ।

भाषा—इस लेख की भाषा प्राकृत है परन्तु संस्कृत से बहुत ही मिलती हुई है । हिन्दुस्तान के यूनानी (ग्रीक) राजाओं के सिक्कों पर के खरोष्टी (गांधार) लिपि के लेखों की भाषा भी इसी प्रकार की है ।

गरुड़ध्वज—यह स्तंभ गरुड़ध्वज ही था। विष्णु के मंदिर के सामने कभी कभी बड़ा स्तंभ बना कर उसके सिरे पर गरुड़ की मूर्ति बिठलाते हैं; ऐसे स्तंभों को गरुड़ध्वज कहते हैं । गुप्त राजाओं के सिक्कों में ऐसे स्तंभों के चिन्ह पाये जाते हैं।

तक्षशिला—पंजाब का एक प्राचीन नगर, जिसका खंडहर सिंधु और झेलम नदियों के बीच शाहढेरी के पास होना जनरल कनिंगहम प्रकट करते हैं। सिकंदर बादशाह इस नगर में रहा था यहां के राजा ने हिन्दू राजाओं में सब से पहिले बिना लड़े सिकंदर की आधीनता स्वीकार की थी। पीछे से इस नगर में पंजाब के यूनानी राजाओं की राजधानी रही थी, और ग्रीक राजा ऐंटिआल्किडस् की राजधानी भी जान पड़ता है यहीं थी।

दीअ—यह यूनानी नाम डीऑन् [Dion] का सूचक है । जब एक भाषा के नाम दूसरी भाषा में लिखे जाते हैं उस समय उनमें कुछ परिवर्तन हो ही जाता है । अशोक के लेखों में ऐंटिओकस के स्थान पर अंतियक, अंतियोक या अंतियोग लिखा मिलता है। ऐसे ही टॉलेमी को तुरमाय; ऐंटिगॉनस् को अंतिकिनि या अंतेकिन; मेगस् को मक या मग, और अलकजैंडर को अलिकसन्दर लिखा है । मुसलमानों के समय के संस्कृत लेखकों ने भी अमीर के स्थान पर हमीर और सुलतान के स्थान पर सुरत्राण लिखा है, और अब भी ऐसा होता है।

भागवत—वैष्णवों की अनेक सम्प्रदायों में सब से प्राचीन भागवत सम्प्रदाय है, जिसके अनुयायी भगवद्भक्ति के कारण भागवत कहलाते हैं । वे वेद विहित यज्ञादि कर्मों को गौण और भगवद्भक्ति को ही मुख्य मानते हैं अर्थात् वे भक्ति मार्ग के ही उपासक होते हैं ।

हेलिओदोर—यह यूनानी (ग्रीक) नाम 'हेलिऑडॉरस' के वास्ते लिखा गया है ।

अंतलिकित—यह यूनानी नाम 'ऐंटिआलकिडस' का प्राकृत रूप है । ऐंटिआल्किडस पञ्जाब का राजा था और वह ईसवी सन से पूर्व की दूसरी शताब्दी में हुआ । उसकी राजधानी तक्षशिला थी। हेलिओडोरस इसी का दूत था जो इसका भेजा हुआ विदिशा के राजा भागभद्र के पास गया था । इस राजा के कई चांदी के सिक्के मिले हैं जिनके एक ओर प्राचीन ग्रीक लिपि में ग्रीक भाषा का लेख है और दूसरी ओर खरोष्टी लिपि में "महरजस जयधरस अंतिअलिकिदस" लेख है ।

यूनान के बादशाह अलकज़ैण्डर (सिकन्दर) ने ईसवी सन से ३२६ वर्ष पहिले हिन्दुस्तान पर चढ़ाई कर पञ्जाब तथा सिन्ध का बहुत कुछ भाग अपने आधीन किया था। उस पर से तो यूनानियों का अधिकार ६ वर्ष के भीतर ही उठ गया, परन्तु हिन्दूकुश से उत्तर में बाक्ट्रिया का यूनानी राज्य (जिसे सिकन्दर ने ही कायम किया था) दृढ हो गया था। वहां के राजा युथिडिमस् के पुत्र डिमिट्रिअस् ने ईसा के लगभग १९० वर्ष पहिले हिन्दुस्तान पर चढ़ाई कर अफगानिस्तान, पञ्जाब आदि पर फिर यूनानियों का राज्य जमा दिया जो कई सौ वर्ष तक बना रहा। इस समय के २५ से अधिक राजाओं के सिक्के मिले हैं जिन पर के लेखों से उनके नाम तथा उपाधि आदि का पता लगता है। इन राजाओं में से एक का भी नाम पहिले किसी शिला लेख में नहीं मिला था। बेस नगर का लेख ही पहिला लेख है जिसमें पञ्जाब के यूनानी राजा का नाम मिलता है।

त्रातार—(संस्कृत त्रातृ से बना है) इसका अर्थ 'रक्षक' होता है परन्तु यहां पर यह उक्त अर्थ का सूचक नहीं है किन्तु उपाधि है। यह उपाधि किसी हिन्दू राजा के नाम के साथ लगी हुई पहिले नहीं मिली, परन्तु यूनानी राजा डायामीडस्, ऐपालोडॉटस, स्टैटो, मिनैंडर, ज़ोइलस्, डायोनिसिअस्, हिपॉस्ट्रेटस, हर्मिअस् आदि के सिक्कों पर के प्राकृत लेखों में मिलती है और यूनानी उपाधि 'सोटर' (Soter) का प्राकृत अनुवाद है। उपर्युक्त लेख एक यूनानी राजदूत का खुदवाया हुआ होने से उसमें राजा की उपाधि यूनानी राजाओं की सी हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं परन्तु वह उपाधि बहुत बड़े राजाओं की थी जिससे अनुमान होता है कि भागभद्र भी जिसके नाम के साथ यह लगी हुई है, प्रबल राजा था।

काशीपुत्र—राजा भागभद्र के नाम के साथ उसकी माता काशी के नाम का उल्लेख किया गया है। प्राचीन लेखों में कई राजाओं के नामों के साथ उनकी माताओं के नाम लिखे मिलते हैं, जिसका कारण कदाचित् यह हो कि उस समय के राजाओं के अनेक रानियां होतीं थीं इससे कौन सी रानी से अमुक राजा उत्पन्न हुआ था यह बतलाने के लिये अथवा रानी के किसी विशेष गुण या योग्यता के कारण उसके पुत्र के नाम के साथ उसके नाम का भी उल्लेख किया जाता रहा हो। आंध्रभृत्य (सातवाहन) वंश के राजा शातकर्णी को गौतमीपुत्र, पुलुमाई को वासिष्ठिपुत्र, शकसेन को माढरीपुत्र लिखा है, ऐसे ही अनेक उदाहरण सिक्कों तथा लेखों में मिलते हैं। राजवंशियों के अतिरिक्त दूसरों के नाम भी कभी कभी इस तरह लिखे हुए मिलते हैं। संस्कृत-शिक्षा में प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि को दाक्षिपुत्र बतलाया है और प्रसिद्ध कवि भवभूति अपने को (जातुकर्णीपुत्र) लिखता है।

भागभद्र--यह राजा किस वंश का था इस विषय में कुछ भी लिखा नहीं है। इसकी राजधानी विदिशानगरी होना संभव है। महाकवि कालिदास के रचे हुए 'मालविकाग्निमित्र नाटक' से पाया जाता है कि सुंगवंश के संस्थापक राजा पुष्पमित्र के समय उसका पुत्र अग्निमित्र विदिशानगरी में राज करता था। भागभद्र का समय पुष्पमित्र के समय से बहुत दूर नहीं हो सकता। अतएव यह संभव है कि यह भी उसी वंश से संबंध रखता हो।

डाक्टर ग्रियर्सन साहब ने रायल एशियाटिक सोसाइटी के सन १९०७ ई० के ज़र्नल में (पृ० ३११-३६) एक लेख * लिख कर यह बतलाने का

* Modern Hinduism and its Debt to the Nestorians.

यत्न किया था कि ईसाई लोगों की एक बस्ती प्राचीन काल में मद्रास हाते में स्थापित हुई थी जहां के ईसाइयों द्वारा हिन्दुओं में भक्ति मार्ग का प्रचार हुआ हो और दक्षिण से सारे हिन्दुस्तान में फैल गया हो, परन्तु उपर्युक्त बेस नगर के लेख से, जो ईसाई धर्म के प्रादुर्भाव से क़रीब दो शताब्दि पूर्व का है, स्पष्ट पाया जाता है कि उस समय भी हिन्दुस्तान में भक्तिमार्ग को मानने वाली भागवत संप्रदाय विद्यमान थी और यूनानी लोग भी उसके अनुयायी बनते थे।

—— —

प्रेमायतन।

(लेखक—पं० श्रीधर पाठक)

(प्रकृत)

गूढ़ घाव तुम मम हिये, किये रूप गुन खानि।
तेरे चपल चरित्र सब, चुभे चित्त में आनि॥
भोरे भाव दिखाय बहु, विधिना दिये अनूप।
मेरे हिय कौ पाहुनौ, बन्यौ तुम्हारौ रूप॥
जानौं नहिं तुम कौन हौ, कहां बसौ, का नाम।
सबी तदपि तुम्हरी बसी, बरबस मो हिय धाम॥
जो चरित्र तुम्हरे चतुर, लिये हगन ने देख।
सो सजीव अर्पित किये, हिये चित्र पट लेख॥
अनियारे आयत बड़े, कजरारे दोउ नैन।
अचक आय जिय में गड़े, काढ़ें ढीठ कढ़ैं न॥
सहज बंक भृकुटी फुरन, बात करन की वेर।
मृदु निसंक बोलनि हंसनि, बसी आय जिय फेर॥
चरन चपल धरनी धरनि, फिरनि चारु हग कोर।
सुगढ़ गठनि बैठनि उठनि, त्यौं चितवनि चितचोर॥
कबहुं प्रेम अंसुअन लसनि, कबहुं हंसनि मुसिक्यानि।
कबहुं नैन सतरानि, पुनि कबहुं नेह बतरानि॥
प्यारौ प्रिय! तेरौ दरस, प्यारौ परस प्रभाव।
प्यारौ रस प्यारौ तरस, प्यारौ सरस सुभाव॥
प्यारी रीझनि रोस रिस, प्यारी खीझनि चाह।
ध्यान, मौन, अनुनय, विनय, प्यारौ नेह-निबाह॥
प्यारी विसद गुनावली, प्यारी पावनि प्रीति।
हरसावनि हिय की सुखद, सरसावनि रस रीति॥

(चमत्कृत)

सो तू मम सर्वस्व धन, सकल-भुवन-सुख-खान।
तू तन तू जीवन जतन, हृदय-रतन, मन, प्रान॥
तो सौं लगन लगाय मन, अनत न लगत सुजान।
तेरे ही प्रिय ध्यान की परी आनि तिहि बान॥
रसना को रस ना मिलै अनत अहो रसखान।
कान सुनैं नहिं आन गुन नैन लखैं नहिं आन॥
जिय की त्यौं किहि बिधि कही कहा कहानी जाय।
अभिमानी बानी भई बुद्धि गई बौराय॥
नैनन पै परदा पर्यौ तेरी छवि कौ छाय।
जहां जाहि देखूं तहां तेरिय छांह दिखाय॥
तेरे रँग में रँगि रहे, अँग अँग रग रग प्रान।
बनत बनत तन्मय बने, बिसरे बानक आन॥
तेरी ही छवि सौं बन्यौ, दरसत सुघर जहान।
सरसत सुख सुखमा सन्यौ सम्पति सुमति निधान॥
तेरौ ही गावत सुजस, बैबिल वेद कुरान।
तू ही आगम निगम मग, भुक्ति मुक्ति निर्वान॥
सब धर्मन कौ धर्म तू, सब कर्मन कौ कर्म।
सब तत्त्वन कौ तत्त्व तू, सब मर्मन कौ मर्म॥
तू अखर्व-व्रत-पर्व-फल, तू अथर्व-कृत गान।
तू प्रेमिन कौ प्रेम-धन, प्रेमायतन प्रधान॥

(क्रमशः)

—:०:—

सुधार गृह*।

[लेखक—साहित्योपाध्याय पं० बदरीनाथ शर्मा वैद्य।]

छोटी अवस्था में जिन बालक बालिकाओं का स्वभाव, चरित्र बिगड़ जाता है उनके चरित्र और स्वभाव को सुधारने के लिए 'न्यूयार्क' नगर में आश्चर्यदायक एक सुधार गृह है। इसके विवरण पाठ से आनन्द के साथ साथ अच्छी शिक्षा भी मिलती है।

* यह लेख एक अमेरिकन मासिक पत्र से बङ्गला के "प्रवासी" ने उद्धृत किया था उसी के आधार पर यह लिखा गया है।

विलियम० आर० जार्ज नामक एक सज्जन इसके प्रतिष्ठापक हैं। न्यूयार्क नगर की गली कूँचों में भटकते फिरते बेकार बालक और बालिकाओं को देख कर इनका हृदय दया से पिघल उठा। किस उपाय से इनका भला हो ? और ये भले बनें, इसी बात की जार्ज साहब दिन रात चिन्ता करने लगे। "कुछ बालकों को नगर के कुसंग से बचाकर किसी दूर निर्जनस्थान में ले जाकर उद्योग करने से देखें क्या फल होता है ?" इसी उद्देश को सामने रख कर उनने एक सुधारगृह बनाया। पहले उनके अभिलषित कार्य में सफलता नहीं हुई, किन्तु जब वह एक छोटे राज्य की परिपाटी पर चलाया गया, तब से उससे आशातीत-लाभ और आश्चर्यजनक फल हुआ है।

न्यूयार्क के 'फ्रिबिल्' नामक ग्राम में यह क्षुद्र राज्यतन्त्र है। पहले इसके अधिकांश अधिवासी चोरी आदि बुरे कर्मों से अपना जीवन बिताते थे और कुछ बालक अपने घर से यहां भाग आए थे। इस राज्य में प्रवेश करने के साथ ही उनमें विचित्र परिवर्तन दिखाई पड़ता है। वे शीघ्र ही स्वाधीनता-प्रेमी मितव्ययी और शान्त शिष्ट हो जाते हैं। एक बालक पहले चोरी के अपराध में दो बार पकड़ा गया था। अन्त में वह घर से भागा। सब ने एक बारगी उसकी आशा छोड़ दी। वह घूमता हुआ इस सुधार-गृह या चरित्र-सुधारक-राज्य में भर्ती हुआ। कुछ दिन बाद उससे पूछा गया "जिम्! कब से तुम्हें सत्कर्म करने की इच्छा हुई?" जिम् ने उसी समय बड़ी नम्रता से उत्तर दिया "इस पवित्र स्थान में आते ही"।

जार्ज साहब का यह राज्य १०० एकड़ (प्रायः तीन सौ बिगहा) में अवस्थित है। राजधानी में साधारण ढंग के बने काठ के दस साफ सुथरे मकान हैं। इनमें रहने के छ घर हैं—एक लड़कों के लिए; एक लड़कियों के लिए; एक में पुस्तकालय, रसोई घर, होटल आदि हैं; एक में शिक्षा भवन, अन्नभण्डार और बैंक हैं; एक भवन में अदालत, जेलखाना, अस्पताल और डाकखाना है। इनके अतिरिक्त लड़कियों के लिए जेलखाना, अस्पताल, धोबीघर, स्नानगृह, शिल्प शिक्षालय आदि के अलग अलग घर हैं। कुछ दिन हुए 'गिर्जा' बनवाने के लिए कुछ रुपये मंजूर हुए हैं। 'फ्रिबिल्' की भूमि बड़ी उर्वरा है—प्रति वर्ष खेतों से घास, अन्न और तरकारी आदि अधिक परिमाण में उत्पन्न होती हैं। राज्य में कुछ घोड़े, गाय, बैल और भैंस भी हैं। इनसे भी विशेष उपकार होता है।

इस नवीन राज्य के राजा और प्रजा सब बालक ही हैं। इसका नाम भी George Junior Republic अर्थात् जार्ज साहब का बालक प्रजातन्त्र है। बारह वर्ष से अठारह वर्ष के बालक राज्य चलाने के अधिकारी हैं। बारह वर्ष से कम उम्र वाले लड़के 'नाबालिग़' समझे जाते हैं। गवर्न्मेन्ट वयस्क-बालक बालिकाओं में से नाबालिग़ों की रक्षा आदि के लिए अभिभावक नियुक्त करती है। वे सब रक्षक बालक बालिकाएं बड़ी चतुरता और प्रेम के साथ अपने आधीन-बालकों का पालन पोषण करतीं हैं। यदि कोई नाबालिग़ अपनी जीविका नहीं चला सकता है तो अभिभावक लोग उसकी सहायता करते हैं। गवर्न्मेन्ट को उसके लिए कुछ भी चिन्तित नहीं होना पड़ता। इस समय इस राज्य के निवासियों की संख्या ८६ है।

इस बालक राज्य का शासन-कार्य प्रायः युक्त राज्य 'अमेरिका' ही की तरह है। सभापति, मन्त्रिसभा, पार्लियामेंट, हाईकोर्ट आदि सभी इस में है। प्रेसीडेण्ट हर सप्ताह सौ पैसा वेतन पाता है। और अन्यान्य कर्मचारी भी इसी तरह वेतन पाते हैं। न्यायालय, पुलिस आदि विभागों में काम करने वालों की परीक्षा होती है। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए बालकों को कानून की पुस्तकों का अच्छी तरह अध्ययन करना पड़ता है। सच्चे दिल से काम करने वालों को किसी तरह का भी भय नहीं रहता। राज्य के

किसी एक पद के पाने के लिए सभी लोगों के मन में अत्यन्त उत्साह दिखाई पड़ता है। साधारणतः राज्यों में जिन समस्त अधिकारों का और विभागों का समावेश रहता है, यहां पर उनमें से किसी का अभाव नहीं है। जज, कमिश्नर, डाक्टर, वकील आदि सभी इस बालक-राज्य में हैं। इन्हें छोड़ कर स्कूल में न जाने वाले लड़कों को स्कूल में हाजिर कराने के लिए भी एक कर्मचारी नियुक्त है। शान्तिरक्षा के लिए पहले १२ पुलिस-कर्मचारी थे, किन्तु इस समय दो ही पुलिस हैं। इसी से जान पड़ता है कि यहां पर आने से बालकों के स्वभाव, चरित्र में कितना सुधार हो जाता है। शान्तिरक्षा के लिए बालकों की एक छोटी सेना भी बनाई गई थी।

इस बालराज्य में दो राजनैतिक दल हैं। एक 'Good Government Party' गुड गवर्न्मेंट पार्टी अर्थात् सु-शासन चाहने वालों का दल, और एक 'Grand old Party' ग्रैन्ड ओल्ड पार्टी अर्थात् परम प्रवीणों का दल। दोनों दलों में खूब लाग है। सभ्यों के चुनावों के समय अमेरिका निवासियों की तरह दोनों ही पक्ष वाले अपनी बड़ाई और विपक्ष की निन्दा करने में बड़े प्रवीण हैं। पार्लियामेन्ट के मेम्बर चुनने में लड़कियों का भी अधिकार है (राजनैतिक-अधिकार चाहने वाली महिलाएं आंसू पोछें!) वोट देने के अधिकार को बालक और बालिकाएं दोनों ही बड़े गौरव की दृष्टि से देखते हैं। इस राज्य के सभी कानून न्यूयार्क के ही ढंग पर बने हैं। किसी अपराध का दंड न्यूयार्क के दंड से अधिक नहीं है। नए कानून के बनते ही वह कानून की पुस्तक में लिख लिया जाता है। कोई २ कानून हानिकर होने से फिर बदल दिए जाते हैं।

पहले सिगरेट पीने की बड़ी कड़ाई थी, किन्तु अनेक पुलिस-कर्मचारी पहरा देने के लिए जब बाहर जाते थे, तब सिगरेट पीते थे। इससे धीरे २ सिगरेट के प्रेमी बढ़ रहे थे। इसी लिए एक कानून बना कि "यदि किसी के मुख से सिगरेट की गन्ध आवे तो उसे दण्ड दिया जाय"। सिगरेट पीने का दण्ड ३) रुपया से ६) रुपया तक जुर्म्माना या एक दिन से तीन दिन तक वर्क हौस् (परिश्रमगृह) में जाकर काम करना है। इस स्थान के खाने पीने की वस्तु में और रहने आदि की जगह में जेल से कुछ भी अन्तर नहीं है।

जूवा खेलना भी निन्दनीय और दण्डनीय समझा जाता है। सब से पहले पार्लियामेन्ट का एक सभ्य ही इस अपराध में पकड़ा गया था। उसी दिन वह पार्लियामेन्ट से निकाल दिया गया, और उसकी 'वोट्' देने की क्षमता भी छीन ली गई। इस पर भी जब उस पर २५ डालर (७५ रुपये) जुर्माना किया गया, तब उसने जुर्माना नहीं दिया। इसी से वह साधारण कैदी की भांति पत्थर तोड़ने पर लगाया गया। 'सुधारगृह' के प्रतिष्ठाता मि० जार्ज ने स्वयं आकर उससे जुर्माना देने के लिए अनुरोध किया, किन्तु इससे भी कुछ फल नहीं हुआ! कई दिन पत्थर तोड़ते २ उसका जी घबड़ा उठा, वह हथौड़ा छोड़ कर चिल्लाया 'मुझे बैंक में ले चलो, मैं अभी जुर्माना चुका देता हूं।'

शपथ करना, जूवा खेलना, तमाखू पीना और अन्य असत् कर्म्मों के विरुद्ध सभी कानून इन्हीं बालकों के बनाए हैं। जिस कड़ाई के साथ ये इन सब अभियोगों में अभियुक्त लोगों का विचार करते हैं उसे देखने ही से इन बालकों की उस कार्य की ओर घृणा का अनुमान होता है। इससे बढ़ कर इस राज्य-प्रतिष्ठा की सफलता और प्रतिष्ठा का और अधिक प्रमाण क्या हो सकता है?

जार्ज साहब के राज्य का जेलखाना साधारण नहीं लोहे की छड़दार छोटी २ कोठरियां हैं। बिछौने बड़े कड़े हैं, खाने पीने की सामग्रियां भी जेलखानों ही के ढंग की हैं। जेल के ऊपरी खंड में कचहरी है। बड़े लम्बे चौड़े हाल में एक ओर विचारपति के लिए एक लम्बा चौड़ा 'डेस्क' है। विचारपति के बगल में जूरी लोगों के बैठने की बेंच हैं, साक्षी (गवाह) लोगों के खड़े होने

आपै अन्हवायो मैल देह को छुड़ायो जासु,
नितही ललक संग कीन्हीं सेवकाई है।
दीनानाथ सोई कलिकाल के प्रभावन सों,
हाय जग पावन अनाथ भई गाई है॥

(३)

पीठ जाके ब्रह्मा गले विष्णु को निवास जाके,
मुख में बसत जाके शंकर सदाई है।
आठहु खुरनि में बसहिं सिद्धि आठ जाके,
रोमन में जाके कोटि देव समुदाई है॥
दूध जाको जीवन औ गोबर लौं पावन है,
मूत्र जाको देह अरु मन की दवाई है।
दीनानाथ सोई कलिकाल के प्रभावन सों,
हाय जग पावन अनाथ भई गाई है॥

(४)

जाकी बली संतति सहाय कै किसानन की,
जोति खेत अन्न की करत अधिकाई है।
जासों मिलै दूध दही माखन मलाई मही,
खोवा और नाना खाद पूरित मिठाई है॥
इतने अनमोल दै पदारथ जो भारत को,
लेत बदले में रूखी सूखी घास खाई है।
दीनानाथ सोई कलिकाल के प्रभावन सों,
हाय जग पावन अनाथ भई गाई है॥

(५)

दूध आठ सेर को निपनियां दुलभ तहां,
मक्खन मिलै की कहा चरचा चलाई है।
घी है ढाइ पाव पै रहत शंक चरबी की,
मठा की दवाई को रहत कठिनाई है॥
जाके घटे जग के पदारथ घटे हैं सबै,
जाकी वृद्धि सब ही अभाव की दवाई है।
दीनानाथ सोई कलिकाल के प्रभावन सों,
हाय जग पावन अनाथ भई गाई है॥

(६)

भारत को जीवन ही गऊ के अधीन जानो,
भारत की भूमि हरि गऊ ही बनाई है।
गऊ की बखानी बहु महिमा है बेदन में,
गऊ की सुकीरति पुरानन में गाई है॥
संपति की सार अन्न धन की अधार गऊ,
धर्म की सकल भार गाय पै सदाई है।
दीनानाथ सोई कलिकाल के प्रभावन सों,
हाय जग पावन अनाथ भई गाई है॥

संसार।

[लेखक—पं॰ श्यामविहारी मिश्र, और शुकदेवविहारी मिश्र]

लखौं यह अति अद्भुत संसार।
वेई ससि सूरज तारागन वहै व्योम-विस्तार।
वेई ध्रुव सप्तर्षि वृहस्पति शुक्र चक्र सिसुमार॥
वेई मेघमाल सौदामिनि इन्द्रधनुष संचार।
वहै कुमंडल सहित दीपगन सागर नदी पहार॥
मनु बलि भारत कान्ह के आछत हे सब जौन प्रकार।
तैसेही अबहू सम्मुख लखि संभ्रम होत अपार॥
उनहू के मन सखि उडगन को लखि प्रति निसि दरबार।
ह्वै है होत बिबिधि विधि भावन को अवस्य संचार॥
फिरत गगन मंडल में ये सब कब सों बिनु आधार।
कब लौं याही भांति फिरहिंगे ह्वै हैं कबहिं उजार॥
कितने सुख इन माहि पर देखे कितने हाहाकार।
सुख में सुखद गुनत नर इन कहँ त्यों दुख माहिं अँगार॥
पै सब दिन सब मास सकल ऋतु सब जग को सतकार।
एक भांति ये करत सदाहीं बदलत नेकु न यार॥
घोर समर अरु सान्ति जगत में इन देखीं बहु बार।
पै रहि एकहि रस मनु खोली थिरता की चटसार॥
सुधि करि सोक बिकल वैदेही करुना लंक मँझार।
हनुमत बच सुनि रामचन्द्र के सुधिकरि बिसद बिचार॥
उदै होत ये भाव अचानक कैसो जग व्यवहार।
कहँ बैदेहि राम लंकेस्वर गये सबै मिलि छार॥
किती बार कितने नर आपुहि यहि भूकर भरतार।
गुनिगुनि नृपता अचल करनहित किय नृपगन संहार॥
करि करि बिनु कंटक भुवमंडल नृपगन बार हजार।
गहि गहि गरब पड़ि धरि आखिर भे रज के आहार॥
इकइस बार निछत्र पुहुमि करि कठिन परसु की धार।
निजगुनि रामकस्यपहि दिय महि सह गिरि सागर भार॥

काम बैर भय सोक गरब दुख तृष्णहि आदि विकार।
भूत भविष्यत हित यद्यपि सब देत इन्हें फटकार॥
वर्तमान में तदपि गुनत नर इन बेड़िन सिंगार।
परम प्रगाढ़ देखि जग में यह मोह जनित अँधियार॥
एक मात्र सिद्धान्त सबै विधि करत चित्त स्वीकार।
बारि बबूला मृगतृष्णा सो जग जीवन बिनु सार॥

कविता क्या है ?

[लेखक-पं० बालकृष्ण भट्ट-सम्पादक "हिन्दी प्रदीप"]

यद्यपि काव्यप्रकाश कर्त्ता मम्मट भट्ट और वामन आदि ग्रन्थकारों ने काव्य के जुदे २ लक्षण दिये हैं तथापि उन सबों के लक्षणों में एक २ दोष दिखाय साहित्य दर्पणकार ने काव्य को "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" कहा है-अर्थात् जिस वाक्य या रचना में रस टपकता हो वह कविता है। रस क्या है? सो हम पीछे कहेंगे-पहले इतना यहां सूचित कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि इस समय के नई तालीम पाये हुये सुशिक्षित जहां हमारी और २ बातों में एक न एक दोष निकाल सर्वथा सर्वांग पूर्ण उन्हें नहीं कहते वैसे ही कविता के सम्बन्ध में भी उनकी दोषदृष्टि अन्तर्निविष्ट हुई है और वे हमारे कवियों के सम्बन्ध में कहते हैं कि उनके काव्य में Nature-Study (प्रकृति की छान बीन) में कमी पाई जाती है। वे नदी, पर्वत, समुद्र आदि के वर्णन में अत्युक्ति भर देते हैं-प्रकृति देवी या प्राकृतिक पदार्थों के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंशों का वर्णन पूर्ण रीति पर नहीं रहता-अंगरेज़ी कविता में पर्वतों के उत्तुंग गगनभेदी शिखरों के रमणीक दृश्य-तूफान से उमड़े हुए समुद्र-ऊंचा २ लहरों के आवर्त में पड़ी हुई जहाज़ का जल में निमग्न होना आदि जैसा दिखाया गया है वैसा संस्कृत के काव्यों में कहां है-अपि च प्रत्येक कवियों की कविता में वही नखसिख वर्णन का घिनौना चर्वित चर्वण; मुग्धा, प्रौढा, प्रोषितपतिका, वासकसैया नायिकाओं की पुनः पुनः उधरनी; मानवती के मान-खण्डन में धृष्ट नायक की धृष्टता का निरूपण; ऋतु के वर्णन में कवि सम्प्रदाय अनुसार वसन्त हुआ तो कोकिलाओं का कलरव आंब का बौरना उन पर भौंरों का गूंजना कामाग्नि का सन्दीपन-ग्रीष्म है तो सूर्यातप का प्रचण्डताप शीतलोपचार आदि-पावस है तो मेघाडम्बर चातक की चीत्कार दुर्दिन से दिवाकर की किरणों का लोप आदि-शरत है तो चन्द्रमा की चान्दनी कुई का विकाश आकाश तथा जल की स्वच्छता, हँस का आगमन तुषारकणवाही वायु का झकोर, अत्यन्त शीत से जाड़े के कारण जगत् की जड़ता आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध बातों के अतिरिक्त कोई वैज्ञानिक विषय के वर्णन का विस्तार कवियों की प्रतिभा में ऋतुओं के सम्बन्ध में कभी आताही नहीं हमारी इस समालोचना में सर्वांश चाहो सत्य न हो फिर भी जिन्हें संस्कृत और हिन्दी काव्य से कुछ भी परिचय है जानते हैं कि कालिदास के काव्य में वसन्त, भारवि के किरातार्जुनीय, में शरत, मृच्छकटिक में पावस और कादम्बरी में वर्षा और वसन्त का वर्णन अत्युत्कृष्ट है-भट्टिकाव्य में Rural life (ग्राम्य जीवन) बहुत अच्छा दिखाया गया है-भाषा के काव्यों में भी पद्माकर का जगद्विनोद वर्णन-शैली में बहुत उत्कृष्ट है-गुसाईं तुलसीदास का वर्षा और शरत् का वर्णन किसी अंश में हीन नहीं है-केशव के काव्य की क्लिष्टता कवियों के कविता के अखर्व गर्व को चूर २ कर देती है-वैसे ही बिहारी सतसई की सरस पदावली सहृदय के हृदयकली को विकसित करने में अग्रसर होती है-

अधुना प्रकृत मनुसरामः-अलौकिक आनन्द का नाम रस है-अलौकिक इस लिये कहा कि वह आनन्द नहीं जो किसी विशेष व्यक्ति से सरोकार रखता हो-जैसा किसी के पुत्र हुआ तो पुत्र जन्म का आनन्द उसी एक व्यक्ति को होगा सब को नहीं और उस आनन्द की गणना रस में न की जायगी वरन जिसका आनन्द सहृदय विदग्ध मात्र को हो वह रस है-यह कौन नहीं जानता कि जो

टिघल कर द्रव या पानी हो जाय वह रस है-रस के कहने ही से चित्त में भास जाता है कि एक ऐसा पदार्थ है जो ठोस या कड़ा न हो-चित्त में एक अनोखी चमत्कृति का आना भी रस है ऐसा न होता तो आठ रस में करुणा भी एक रस क्यों समझा जाता। करुणा और शोक के वेग में आनन्द कहां? सो नहीं वरन करुणा और वीभत्स में भी मन में एक अनोखी वृत्ति उपज आती है और वही वहां पर रस के रूप में परिणत हो जाती है-हमारे नवयुवकों की Nature-Study "प्राकृतिक छानबीन" भी इन्हीं ८ या ९ रसों के अन्तर्गत है-हम यह अवश्य कहेंगे कि इतनी छान बीन किसी देश की भी भाषा में नहीं की गई जैसा संस्कृत हिन्दी में काव्यकलाप चातुरी धुरीण यहां के विदग्ध जन रंजन सहृदय विद्वानों ने किया है-अनुभाव विभाव आदि के झगड़ों में न पड़ अब हम एक एक उदाहरण सब रसों का देते हैं-

पहिला शृंगार-सो दो प्रकार का है, एक संयोग या संभोग, दूसरा विप्रलंभः-

"दर्शन स्पर्शनादीनि निषेवन्ते विलासिनौ।
यत्रानुरक्तावन्योन्यं संभोगोय मुदाहृतः"॥

जहां दो विलासी स्त्री पुरुष एक दूसरे में अनुराग रख आपस में दरस परस पूर्वक काम चेष्टा की सब बातें जी खोल के करें वह संभोग शृंगार है-जैसा अमरू शतक में-

शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किंचिच्छनै-
र्निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।
विस्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थली-
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसिता वाला चिरं चुम्बिता॥
तिय पिय के पिय तीय के, नख सिख साजि शृंगार।
करि बदलो तन मनहु को, दंपति करत विहार॥

दूसरा विप्रलम्भ या वियोग-सुन कर या चित्र देख कर अथवा सपने में समागम और कई दूसरे २ प्रकार से इसका प्रादुर्भाव होता है-जैसे

कथमीक्षे कुरंगाक्षी सा तल्लक्ष्मीमनो भुवः।
इति चिन्ताकुल कान्तो निद्रांनैति निशीथिनीम्।

सुनत कहानी कान्ह की, तीय तजी कुल कान।
मिलन काज लागी करन दूतिन सों पहिचान॥
सुन्दरि सपने में लख्यो, निशि में नन्दकिशोर।
होत भोर दधि लै चली, पूछत सकरी खोर॥
अयि सखि लज्जा जलधौ मज्जामः किंवदामोत्र।
अब्जाराधितचरणः कुब्जा पादौ प्रसादयति॥
ह्वै उदास अति राधिका ऊंची लेत उसास।
सुनि मनमोहन कान्ह को कुटिल कूबरी पास॥

वीर।

युद्धवीर दानवीर दयावीर आदि भेद से वीर के अनेक भेद हैं-

युद्धवीर।

शक्ति शूल शर परिघ कृपाना।
अस्त्र शस्त्र कुलिशायुध नाना॥
डारे परशु प्रचण्ड पखाना।
लागा वृष्टि करै बहु वाना॥
रहे दसहु दिशि सायक छाई।
मानहु मघा मेघ झर लाई॥ इत्यादि—तु०

भोलंकेश्वर दीयतां जनकजां रामः स्वयं याचते,
कोयं ते मतिविभ्रमः स्मर नयं नाद्यापि किंचित् कृतम्।
नैवंचेत्खरदूषणत्रिशिरसां कण्ठासृजो पंकिलः,
पत्रीनैष सहिष्यते मम धनुर्ज्याबन्ध बन्धूकृतः॥

दानवीर।

जो संपति शिव रावणहीं, दीन्ह दिये दस माथ।
सो संपदा विभीषणहि सकुचि दीन्ह रघुनाथ॥ तु०
संपत सुमेर की कुवेर की जु पावै ताहि,
तुरत लुटावत विलंब उर लावै ना। इत्यादि—

वपुषा विनयं वहन्ति केचिद्वचसा केपि चरन्ति साहचर्याम्। अतिथौ समुपागते सपर्या पुलकैः पल्लवयन्ति केपि सन्तः॥

दयावीर-तु०-

सुनि सेवक दुख दीनदयाला।
फरक उठीं द्वै भुजा विशाला॥

विरहज्वर मूर्छया पतन्ती नयनाश्रु जलेन सिच्यमाना। समवेक्ष्य रतिं विनिःश्वसन्तीं करुणा कुड्मलिता वभूव शंभोः—रसतरंगिणी।

क्रमशः

(शङ्कर-कीर्तन)।

[लेखक-पंडित नाथूराम [शङ्कर] शर्मा]

(दोहा)

ब्रह्म अनादि अनन्त है, रहै सदैव स्वतन्त्र।
नेति नेति कहते सुन, विश्रुत वैदिक मन्त्र।

(रुचिरा-छन्द)

(१)

हे शंकर कूटस्थ अकर्त्ता, तू अजरामृत अत्ता है।
तेरी परम शुद्ध सत्ता की, सीमा रहित महत्ता है॥
जड़ से और जीव से न्यारा, जिसने तुझको जाना है।
उस योगीश महाभागी ने, पकड़ा ठीक ठिकाना है॥

(२)

हे अद्वैत अनादि अजन्मा, तू हम सबका स्वामी है।
सर्वाधार विशुद्ध विधाता, चेतन अन्तरयामी है॥
भक्ति भावना की ध्रुवता से, जो तुझको अपनाता है।
वह विद्वान् विवेकी योगी, मनमाना सुख पाता है॥

(३)

हे आदित्य देव अविनाशी, तू करतार हमारा है।
तेजोराशि अखण्ड प्रतापी, सबका पालनहारा है॥
जो धर ध्यान धारणा तेरी, प्रेमभाव में भरता है।
तू उसके मस्तिष्क कोश में, ज्ञान उजाला करता है॥

(४)

हे निर्लेप निरञ्जन प्यारे, तू सब कहीं न पाता है।
सब में पाता है पर सारा, सबमें नहीं समाता है॥
जो संसार रूप रचना में, ब्रह्म भावना रखता है।
वह तेरे निर्भेद भाव का, पूरा स्वाद न चखता है॥

(५)

हे भूतेश महा बलधारी, तू सब सङ्कट हारी है।
तेरी मंगल मूल दया का, जीव यूथ अधिकारी है॥
धर्मधारी जो प्राणी तुझसे, पूरी लगन लगाता है।
विद्या बल देता है उसको, भ्रम का भूत भगाता है॥

(६)

हे आनन्द महासुख दाता, तू त्रिभुवन का त्राता है।
मुक्तक माता पिता हमारा, मित्र सहायक भ्राता है॥
जो सब छोड़ एक तेरा ही, नाम निरन्तर लेता है।
तू उस प्रेमाधार पुत्र को, मन्त्र बोध बल देता है॥

(७)

हे बुध जात वेद विज्ञानी, तू वैदिक बल दाता है।
कर्मोपासन ज्ञान इन्हीं से, जीवन जीव बिताता है॥
जो समीपता पाकर तेरी, जो कुछ जी में भरता है।
अर्थ समझ लेता है जैसा, वह वैसा ही करता है॥

(८)

हे करुणा सागर के स्वामी, तू तारक पद पाता है।
अपने प्रिय भक्तों का बेड़ा, पल में पार लगाता है॥
तेरी पार हीन प्रभुता से, जिसका जी भर जाता है।
वह योगी संसार सिन्धु को, मोह त्याग तर जाता है॥

(९)

हे सर्वज्ञ सुबोध बिहारी, तू अनुपम विज्ञानी है।
तेरी महिमा गुरु लोगों ने, वचनातीत बखानी है॥
जिसने तू जाना जीवन को, संयम रस में साना है।
उस संन्यासी ने अपने को, सिद्ध मनोरथ माना है॥

(१०)

हे सुविश्वकर्मा शिवस्रष्टा, तू कब ठीला रहता है।
निर्विराम तेरी रचना का, स्रोत सदा से बहता है॥
जो आलस्य विसार विवेकी, तेरे घाट उतरता है।
उस उद्योग शील के द्वारा, सारा देश सुधरता है॥

(११)

हे निर्दोष प्रजेश प्रजा को, तू उपजाय बढ़ाता है।
तेरे नैतिक दंड न्याय से, जीव कर्म फल पाता है॥
पक्षपात को छोड़ पिता जो, राजधर्म को धरता है।
वह सम्राट सुधी देशों का, सच्चा शासन करता है॥

(१२)

हे जगदीश लोक लीला के, तू सब दृश्य दिखाता है।
जिनके द्वारा हम लोगों को, शिल्प अनेक सिखाता है॥

जिसको नैसर्गिक शिक्षा का, पूरा अनुभव होता है ।
वह अपने आविष्कारों से, बीज सुयश के बोता है ॥

(१३)

हे प्रभु यज्ञदेव आनन्दी, तू मंगलमय होता है ।
सप्तभानु किरणों से तेरा, होम निरन्तर होता है ॥
जो जन तेरी भांति अग्नि में, हित से आहुति देता है।
वह सारे भौतिक देवों से, दिव्य सुधारस लेता है ॥

(१४)

हे कालानल काल अर्यमा, तू रुद्र यम कहता है ।
धर्महीन दुष्टों के दल में, दुःख प्रवाह बहाता है ॥
जो तेरी वैदिक पद्धति से, टेढ़ा तिरछा चलता है ।
वह पापी उद्दंड प्रमादी, घोर ताप से जलता है ॥

(१५)

हे कविराज वेद मंत्रों के, तू कविकुल का नेता है।
गद्य पद्य रचना की मेधा, दिव्य दया कर देता है॥
सर्वकाल तेरे गुणगाता, जो कवि मंडल जीता है ।
शङ्कर भी हैं अंश उसीका, ब्रह्म काव्य रस पीता है॥

नूतन और पुरातन ।

[लेखक-पं० राधाकान्त मालवीय बी० ए०।]

इस परिवर्तनशील संसार में नूतन और पुरातन प्रथाओं के सम्पर्क से पुरुषों को इस बात के निश्चय करने की आवश्यकता पड़ती है कि नूतन और पुरातन में कौन ज्यादे लाभकारी है और जो ज्यादे लाभकारी प्रतीत होती है उसी का प्रचार किया जाता है। जब एक जाति अपने देश में ऐसे प्रथा का प्रचार किया चाहती है जो बहुत दिनों से निकट के जाति वालों में प्रचलित है तो उसे यह भली भांति जानने का अवकाश रहता है कि उस प्रथा से निकट वाली जाति में क्या क्या लाभ और हानि हुई है परन्तु यदि उस जाति के कुछ सज्जन एक ऐसी प्रथा को प्रचलित किया चाहें जो हजारों कोस के दूरी पर रहने वाली जाति में प्रचलित हो तो उस जाति के बहुत से सज्जनों को यह शङ्का होती है कि इस प्रथा ने उस दूर के रहने वाली जाति में हानि किया है या लाभ और यह भी शङ्का रहती है कि कहीं उस प्रथा के प्रचलित होने से अपने देश में बड़ा अनर्थ न हो जाय।

जापान ऐसे असभ्य छोटे से देश को देश की हानिकारी प्रथाओं को दूर कर अन्य देशों की उपयोगी प्रथाओं को प्रचलित कर ऊँची श्रेणी के सभ्य जातियों की श्रेणी में सम्मिलित होते देख भारतवासियों में भी उन्नति करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई है। भारतवासियों को अब यह विश्वास हो गया है कि इस संसार में उसी का जीवन सफल है जिसका विद्या बुद्धि और परिश्रम से लोक में मान हो। उन्नति की इच्छा से भारतवासियों में परिवर्तन करने की उमंग सी आगई है यही कारण है कि आज जीवन के सभी विभागों में, राज्यशासन प्रणाली में, कला कौशल में, विद्या के प्रचार में और प्रायः दिन के छोटे २ कर्मों में भी परिवर्तन देख पड़ता है। ऐसे ही समयों के महाकवि भारवि के "सहसा विदधीत न क्रियाम्" का स्मरण दिलाया जाता है-

भारतवासियों में सौ में अस्सी प्राणियों की जीविका खेती पर निर्भर है-आज कल बहुत से सज्जनों का यह विश्वास हो रहा है कि जब तक भारत में खेती की उन्नति नहीं होगी तब तक और किसी विभाग में पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त होगी और इन लोगों का कहना है कि भारत में हजारों वर्ष के पुराने भद्दे औज़ारों से आज भी काम लिया जाता है जब तक योरप के नूतन साफ़ औज़ारों का प्रयोग नहीं किया जायगा तब तक खेती में सफलता नहीं होगी। कुछ लोगों ने काशी के प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन में यहां तक कह मारा था कि सरकार को चाहिये कि एक हुक्म कर दे कि पुरातन भद्दे, हजारों वर्ष के आंधे, औज़ारों को छोड़

अब खेतिहरों को नूतन यूरप के बने हुए सभ्य औज़ारों का प्रयोग करना चाहिये। इस समय और भी स्थानों में खेती के सुधार की चर्चा हो रही है इससे यह उचित प्रतीत होता है कि इस बात का विचार किया जाय कि भारत के पुरातन औज़ारों और यूरप के नए औज़ारों में देश के लिये कौन ज्यादे लाभकारी है। यदि कोई इस देश का निवासी निरीक्षक नियत किया जायगा तो सम्भव है कि वह अपने देश के चीज़ों से परिचित होने से उन्हीं को भला कहे और इसी तरह यदि कोई विलायत का निवासी नियत किया जाय तो सम्भव है वह अपने देश के चीजों का पक्ष कर दे परन्तु यदि कोई ऐसा मनुष्य नियत किया जाय जो विलायत के भी औज़ारों से पूर्णतया परिचित हो और इस प्राचीन देश के भी औज़ारों से भली भांति परिचित हो तो उसके निर्णय को लोग विश्वास पूर्वक मान सकते हैं।

शिक्षित समाज और गवर्मेंट आव इंडिया के सन १८८२ से बार बार इस बात पर जोर देने पर कि एक योरप के क्रम से परिचित विद्वान भारत के क्रमों पर विचार करने को भेजा जाना चाहिये सन १८८९ में सेक्रेटरी आव स्टेट फ़ार इंडिया ने जे०ऐ० वोएलकर (J. A. Voelkar) नामी जरमन विद्वान को जो योरप के क्रमों से पूर्णतया परिचित थे भारत के प्रचलित क्रमों की जांच कर विचार करने को भेजवाया। इस जरमन विद्वान ने कई वर्षों तक देश के भिन्न २ भागों में जांच कर अपने विचारों को "भारत की खेती का सुधार" नाम की पुस्तक में अंगरेजी में प्रकाश किया है जो कि कलकत्ते के सर्कारी छापेखाने से खरीदी जा सकती है।

इस जरमन विद्वान ने नूतन और पुरातन दोनों भांति के औज़ारों के प्रयोग से भली भांति परिचित हो जो मत प्रकाश किया है सो नीचे दिया जाता है :-

भारत के खेती की उन्नति करने के इच्छा से किसी भी विभाग में उतना उद्योग नहीं किया गया है जितना नूतन योरोप के औज़ारों के प्रचार कराने में।

आज भी उन्नति चाहने वाले हितैषियों से यह कहते सुन पड़ता है कि "भारत की खेती की उन्नति कैसे हो सकती है जब खेतिहर लोग ज़मीन को खरोंच कर छोड़ देते हैं" आज जो हो रहा है और वे हितैषी लोग जो कराया चाहते हैं इन दोनों की जांच कर हमें यही कहना पड़ता है कि इस विभाग में नूतन क्रम के प्रचार की कोई भी आवश्यकता नहीं है। प्रायः लोग यह कहा करते हैं कि भारतवासी पुरानी लीक को पीटा करते हैं और खेती में भी नए आविष्कारों को पुराने क्रमों के स्थान में नहीं काम में लाते हैं। यह सत्य नहीं है जैसा कि बीहा की चीनी की कल के प्रचार से देखा जा सकता है—इन खेतिहरों को यदि भली भांति प्रयोग कर यह देखला दिया जाता है कि कोई चीज़ उनके लाभ के लिये है तो उसको—अनपढ़ होने से धीरे धीरे वे काम में लाने लगते हैं परन्तु उनकी आर्थिक दशा ऐसी नहीं है कि वे नई चीजों की खरीद जांच में अपना पैसा खो सकें।

खेती के औज़ारों में सब से ज्यादे ध्यान हलों की ओर दिया गया है। प्रायः हर एक प्रान्त की सर्कार ने नूतन क्रम का एक हल तयार कराया है परन्तु इन सब उद्योगों के बाद भी हजारों वर्ष का पुराना काठ का हल आज भी भारत में सभों से श्रेष्ठ है। कानपुर में सर्कार की तरफ से "कैसर" नाम का हल—"डुपले" नाम का हल और "वैट" नाम का हल तयार कराया गया है, मद्रास में "सैदापट" और "मैंसी" नाम का, खान देश में "स्टारमंट" नाम का और कलकत्ते में "सिब-पुर" नाम का हल तयार किया गया है। इन

स्थानों में हर साल थोड़े से ये नए हल ज़मींदारों के हाथ बेचे भी जाते हैं। जमींदारों को छोड़ खेतिहरों में इन नए हलों का प्रचार नहीं हो रहा है और इनके प्रचार की कोई आवश्यकता प्रतीत होती है। पुराने हलों का नए लोहे के हलों से अच्छा होने का कारण बहुत है उनमें से

पहिला कारण

मूल्य का कम होना है। अब तक खेतिहर लोग बाज़ार से एक लोहे का टुकड़ा चार आने का खरीद बबूल की लकड़ी दे गांव के बढ़ई से हल तयार करा लेते हैं। पूर्वीय बंगाल में तो हल आठ आने में तयार हो जाता है परन्तु भारतवर्ष भर में २) तक में तयार होता है। इन नए हलों में से सबसे सस्ता ५) या ६) तक में मिलता है। भिन्न २ लोहे के हलों का दाम यह है—"डुपले"—५) "कैसर" ६)—"वैट्स" ७)—"सैदायत" ८) और "हिन्दुस्तान" नाम का नया लोहे का हल १२॥) में आता है

दूसरा कारण हलका होना है

ये नए लोहे के हल भारी होते हैं खेतिहर लोग सहज में इन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान को नहीं ले जा सकते और उनके दुबले बैलों को खींचने में कठिनता होती है। प्रायः खेतिहरों के खेत भिन्न २ स्थानों में उनके गावों से फासले पर होते हैं शाम को काम खतम कर हलों को कंधे पर लाद बैल हांकते वे अपने मकानों पर आ विश्राम लेते हैं। चोरों के डर से वे गरीब खेतिहर खेतों में उन्हें दूसरे दिन काम करने के लिए नहीं छोड़ सकते परन्तु नूतन लोहे के हलों का प्रयोग होने से यह सुविधा नहीं रहेगी। भारी होने के कारण वे सहज में एक खेत से दूसरे खेत में नहीं आ सकेंगे न वे खेतिहर शाम को उनको अपने मकानों को ले जा सकेंगे।

तीसरा कारण मरम्मत का है

खेतिहर लोग पुराने काठ के हलों के बिगड़ने पर गांव के बढ़ई से ठीक करा लेते हैं जिसके परिश्रम के लिये फसल के समय उसे थोड़ा अन्न देदेते हैं। यह लोहे के नूतन हल बिगड़ने पर गांवों में ठीक नहीं किये जा सकते हैं उनको ठीक कराने को बड़े २ शहरों में भेजना पड़ता है जो प्रायः बहुत से खेतिहरों के लिये असम्भव होगा—

चौथा कारण गहराई का है

यह कहा जाता है कि आज कल खेतिहर लोगों को पुराने हलों से कई बार जोतना पड़ता है यदि वे नए लोहे के हलों को काम में लावें तो एक ही बार में गहरी जोत हो सकती है। यह सत्य है किन्तु यह लाभकारी नहीं होगा—गहरी जोताई से नीचे से ज्यादे मिट्टी ऊपर हो जायगी और सूर्य के गरमी से खेत की नमी जाती रहेगी। यह स्मरण रखना चाहिये कि बार २ जोतने में खेतिहर को कुछ ज्यादा खर्च नहीं होता है बैल उसे रखना ही पड़ता है वह पड़ोसियों से मिल कर अपना काम चलाता है। एक रोज़ एक खेतिहर का खेत जोता जाता है दूसरे रोज़ दूसरे का—

"हमारे कहने का यह मतलब नहीं है कि नूतन हलों में कोई गुण नहीं है या पुराने में कोई दोष नहीं है नूतन में बहुत प्रशंसनीय गुण है और पुरातन में और गुणों की आवश्यकता है परन्तु भारत की वर्तमान दशा में खेतिहरों की आर्थिक दशा पर विचार कर कहना पड़ता है कि नूतन से पुरातन हल ज्यादे लाभकारी है"।

दादूदयाल और उनकी संप्रदाय।

[लेखक राय पं० चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी]

इस विषय के तीन विभाग मैंने सोचे हैं अर्थात्—

१-दादू पंथी संप्रद्राय का कुछ प्रचलित व्योहार,

२-स्वामी दादू दयाल का संक्षिप्त जीवन चरित्र,

३-इस संप्रदाय के ग्रंथों से हिंदी साहित्य की वृद्धि,

२-आप विद्वज्जनों से छिपा नहीं है कि भारतवर्ष में धर्म संबंधी अनेक आचार्य्य व गुरू हो गये हैं जिनकी संप्रदायें अलग २ चली आती हैं, ऐसी संप्रदायों में से एक संप्रदाय दादू पंथी साधुओं की भी है इसमें दो प्रकार के साधु बोले जाते हैं अर्थात्—

एक भेषधारी विरक्त जो भगवे वस्त्र धारण करते हैं और पठन पाठन कथा कीर्तन भजन उपासनादि धर्म संबंधी कामों के सिवाय और व्योहार नहीं करते, द्रव्य का सञ्चय करना इन को बर्जित है।

दूसरे नागे स्थानधारी जो सुफेद सादे वस्त्र पहनते हैं, लेन देन खेती फ़ौज की नौकरी वैद्यकादि धन उपार्जन के उद्योग करते हैं सञ्चित धन अपनी संप्रदाय के उपयोगों में लगाते हैं॥

३-यह दोनों प्रकार के साधु ब्रह्मचारी ही रहते हैं, विवाह नहीं करते। गृहस्थों के बालकों को चेला करके अपना पंथ और स्थान चलाये जाते हैं, स्त्री का संग इनमें अति बर्जित है।

४-इस संप्रदाय के ५२ बावन अखाड़े प्रसिद्ध हैं, प्रत्येक अखाड़े का एक २ महंत है, उनके स्थान अधिकतर जयपुर राज्य में हैं, कुछ अलवर मारवाड़ मेवाड़ बीकानेरादि राज्यों और पंजाब गुजरातादि देशों में भी हैं, नागाओं की फ़ौज जयपुर राज्य में विख्यात है।

५-जयपुर और अजमेर के बीच राजपूताना मालवा रेलवे पर नराणां नाम का एक स्टेशन है, तिस नराणे में दादू पंथियों की मुख्य गद्दी है, अपने अंत समय में स्वामी दादू दयाल ने इसी स्थान में निवास किया था, उनके रहने बैठने के निशान अभी खड़े हैं। इस संप्रदाय के सर्व पूज्य महंत जी वहीं विशेष काल रहते हैं। दादू द्वारा नामक वहां एक दर्शनीय मंदिर है॥

६-फाल्गुण मास के शुक्ल पक्ष की चौथ से द्वादशी तक दादू पंथियों का वार्षिक सम्मेलन नराणे में होता है, वहां की भूमि को दादू पंथी अति पुणीत और पावन मानते हैं। मेले पर साधुजन वहां की परिक्रमा करते हैं। अन्य अखाड़ों के महंत अपने स्वामी नराणे के महंत जी को भेट देते हैं, तैसे ही गृहस्थ भक्तजन अपनी इच्छानुसार भेटें चढ़ाते हैं। मुख्य सेवकों को स्वामी जी के भण्डार से एक नया वस्त्र ओढ़ा दिया जाता है। इस अवसर में तरह २ के महोत्सव भजन जागरण कथा व्याख्यान ज्ञान चर्चा और परस्पर सत्संग के लाभ होते हैं। साधु सञ्चित धन से आये हुये साधुओं को बड़े २ भोज देते हैं। एक पक्की रसोई जयपुर राज्य से भी दी जाती है जिस में हज़ारों साधु पंक्ति बांध कर जीमते हैं।

७-दादू द्वारे से दर्शकों को बताशों का प्रसाद मिलता है। अखाड़ों के महंत और मंडलियों के पंडित जन भी अपने सती सेवकों को चलते समय बताशे देते हैं सो यात्री दूर २ देश देशांतरों को ले जाते हैं।

८-फाल्गुण सुदी ४ को स्वामी दादू दयाल पहली बार नराणे पधारे थे, इसलिये चौथ के दिन वहां सामेला (सम्मिलन) होता है। फाल्गुण सुदी ८मी के दिन दयालजी का जन्मोत्सव मनाया जाता है, इस तिथि को बड़े उत्साह से भजन जागरणादि होते हैं। एकादशी का अंत करके द्वादशी से मेला चल देता है, कोई २ साधु जन दस पांच दिवस पीछे भी ठहरते हैं।

९—नराणे से तीन चार कोस पर भराणे की पहाड़ी हैं, वहां स्वामी दादु दयाल ने कुछ काल निवास किया था और वहीं उनके शरीर की अंत्य क्रिया हुई थी। वहां भी अनेक साधु यात्रा को जाते हैं। किसी २ अखाड़े के मरे साधुओं के फूल भी वहीं सिधराये जाते हैं।

१०—विरक्त साधु एक स्थान पर बहुत कम ठहरते हैं, आठ महीने जाड़े और गर्मी के वे विचरने में व्यतीत करते हैं। चातुर्मासा किसी एक स्थान में काटते हैं, विचरते साधु जहां २ ठहरते हैं वहां के गृहस्थियों में धर्म उपदेश अर्थात् परमेश्वर की भक्ति निर्गुण उपासना ब्रह्म ज्ञान का प्रचार करते हैं।

१०—पंडित जनों के साथ अनेक साधुओं की मंडलियां रहा करती हैं। उनमें नव जवान साधु पंडित जी से पठन पाठन में शिक्षा पाते हैं। जहां २ उनके सती सेवक हैं वहां उनकी प्रेरणा से साधुजन वास करते हैं। वहां के ग्रहस्थ अपनी श्रद्धा से भोजनों के निमंत्रण देते रहते हैं, जब तक ऐसे निमंत्रण आया करते हैं तब तक मंडली वहां वास करती है पीछे दूसरे ठिकाने को चली जाती है।

१२—जहां २ मण्डलियां वास करतीं हैं वहां २ उनके मुख्य पण्डित नित्य प्रातःकाल कथा करते हैं, यह कथा प्राचीन रीति से व्याख्यान के तौर पर होती है। मण्डली के संपूर्ण साधू और उस ठिकाने के गृहस्थ स्त्री पुरुष एकत्र होते हैं, क़रीब एक घण्टे तक पंडित जी व्याख्यान देते हैं, पीछे निर्गुण सुरीले भजन गाये जाते हैं, इस काम में मण्डली के साधू निपुण होते हैं, अन्त में श्रोतागणों के चढ़ाये बताशे मिठाई सर्वजनों में बांट दिये जाते हैं। सायंकाल निर्गुण आरती गाई जाती हैं और धर्मचर्चा होती है।

१३—धनी ठाकुरों तथा अन्य गृहस्थों में साधुओं के रखने की बड़ी चाह रहती है। ऐसे श्रद्धालु जन फाल्गुण मास में नराणे के मेले में मण्डलियों के पण्डितों को चातुर्मास के लिये निमन्त्रण भेज देते हैं, वहुधा ऐसे निमन्त्रण स्थानधारी साधुओं की मारफत आते हैं। जिस मण्डली को जहां का रहना स्वीकार होता है सो वहां का निमन्त्रण ले लेती है, आषाढ़ी पूर्णिमा तक वहां पहुच जाती है और विजयदशमी तक वहां वास करती है।

१४—दादू पंथी आपस में आते जाते समय "सत्यराम" शब्द का उच्चारण करके अभिवादन करते हैं। किसी माननीय साधु के पास जब कोई जाता है तब वह तीन बार साष्टांग दण्डवत करता हुआ "सत्यराम" कहता है, जिसके उत्तर में वह माननीय साधू 'सत्यराम' कह कर आशीर्वाद देता है, इसी प्रकार से मण्डली के संपूर्ण साधु अपनी २ बारी से नित्य प्रातः सायं अपने मुख्य साधु के समीप जाकर प्रणाम करते हैं।

१५—स्वामी दादू दयाल की वाणी ही इस संप्रदाय का मुख्य ग्रन्थ है। संपूर्ण साधु जन उसका नित्य पाठ करते हैं, बहुतों को संपूर्ण वाणी कंठाग्र रहती है। उस पुस्तक को वे बड़े भाव से सुशोभित वस्त्रों में ऊंची गद्दी (पालकांजी) पर रखते हैं।

१६—दादू पंथी निर्गुण उपासक हैं। निरंजन निराकार परमेश्वर की भक्ति और उपासना करते हैं, परम ब्रह्म ही उनका इष्टदेव है। उस को सब में रमने वाला राम कह कर वो भजते हैं, योगीजन ध्यान धारणा और समाधी करके उसी अपार ब्रह्म में लयलीन रहते हैं।

१७—मृत शरीरों को पहले अरथी व विमान पर रख के जंगल में छोड़ देते थे। इस विषय में स्वामी दादू दयाल के वाक्य यह हैं:—

यह महात्माओं के असली वाक्य प्राचीन भाषा में हैं, इनका रूप बदलना ठीक नहीं है।

हरि भजि साफल जीवना, पर उपगार समाइ।
दादू मरणा तहां भला, जहां पशु पंखी खाइ॥

अथवा—

साध सूर सो हैं मैदाना।
उनको नाही गौर मसाना॥

यह रीति वर्त्तमान समय में नहीं है। अब लगभग सारे दादूपंथी अग्नि संस्कार को ही करते हैं।

१८—दादूपन्थियों का और सब संप्रदाय के साधुओं से मेल मिलाप रहता है, सबसे वे प्रेम पूर्वक व्यौहार करते हैं, अहंकार नहीं रखते, स्वभाव से बहुत कर मृदुल दीन और सरल होते हैं, अपनी हालत में सन्तुष्ट रहते हैं, पुस्तकें लिखने में, पक्की स्याही बनाने में, पुस्तकों के गत्ते (जिल्दें) बांधने में, फटी पुस्तकों के पन्नों को जोड़ने में, रसोई और पकवान बनाने में, वस्त्र सीने में, तूबों पर रंग चढ़ाने में, वैद्यक में ये साधु बड़े निपुण होते हैं।

१९—जो हाल दादूपन्थी साधुओं का आज कल देखने में आता है उसका संक्षिप्त वृत्तान्त यहां दिया है। साधारण बातें जो सर्व संप्रदाय के साधुओं में पाई जाती है उनका ज़िकर यहाँ नहीं किया गया है और न महात्माओं के उन भेदों को मैं कह सका हूं जिनको वे स्वयं ही जानते हैं।

२०—अब इस संप्रदाय के स्थापक स्वामी दादू दयाल के चरित्र की कुछ बातें आप को सुनाता हूं, संबत् १६०० विक्रम की फाल्गुण शुक्ला ८मी को दादू गुजरात देश के अहमदाबाद नगर में प्रगट हुये थे, उनकी प्रथम ३० वर्ष की अवस्था का विशेष हाल नहीं मिलता है। संवत १६३० में वो सांभर आये लगभग छेः वर्ष वहां रहे, पीछे आंबेर (प्राचीन जयपुर) को गये, और १४ वर्ष वहां रहे। संबत १६४२ में अकबर शाह से फतेहपुर सीकरी में मिले और ४० दिन वहां रहे। संवत १६५० से संवत १६५९ तक जयपुर; मारवाड़ बीकानेरादि राज्यों के अनेक स्थानों में रहते विचरते काटे। संवत १६५९ में नराणे आ रहे और सम्वत १६६० की ज्येष्ठ बदी ८मी को अन्तर्ध्यान हुये।

२१—दादू के ज्ञान धर्मोपदेश और योग का महत्व उनकी अपनी वाणी की पुस्तक से और उनके अनेक शिष्यों के लेखों से पाया जाता है। उनकी शिक्षा का कोई पता नहीं मिलता है। पर उनकी वाणी से स्पष्ट है कि वो हिन्दुओं के धर्म विषयों से और पौराणिक इतिहासों से अच्छी तरह से वाक़िफ़ थे, तैसे ही मुसलमानों के धर्म का हाल भी उनसे छिपा न था। उस तरह का हाल लोग साधु और फकीरों के सत्सङ्ग और कथाओं के श्रवण में भी हासिल कर सकते हैं पर दादू के ऐसे सत्संग का भी कुछ पता नहीं मिलता है।

२२—जनगोपाल जी ने लिखा है कि दादू की ग्यारहवीं वर्ष में परम पुरुष (परमेश्वर) ने एक वृद्ध बाबा (साधु) का भेष धर के दादु को बालकों में खेलते समय दर्शन दिया और एक पान का बीड़ा खिलाया उनके मस्तक पर हाथ धरा और सर्वस्व दिया पर बालक बुद्धि से दादु ने ग्रहण न किया, सात वर्ष पीछे वही बुड्ढे महातमा फिर आये और दादु की बाह्य दृष्टि को अन्तर्मुख करके ब्रह्म का साक्षात्कार करा दिया, उसी दिन से दादू परमेश्वर के भजन और चिन्तन में लग गये। सुन्दरदास जी ने अपने "गुरु सम्प्रदाय" नामक ग्रन्थ में दादू के गुरू का नाम वृद्धानन्द दिया है सो जयगोपाल के "वृद्धबाबा" से मिलता है, इसी शब्द से किसी २ ने दादू के गुरू का नाम बूढण (वृद्ध) रख लिया है।

२३—प्रोफेसर एच० एच० बिलसन ने अपने हिन्दू रलोजन्स नामक ग्रन्थ में लिखा है कि कबीर के चेले रामानन्द की सम्प्रदाय से दादु, के गुरू बूढण थे। विलसन साहब को जो वृत्तान्त दादू का मिला था सो अनेक बातों में सही नहीं है। दयाल जी ने अपनी वाणी में अनेक सन्तों के साथ कबीर साहब की भी प्रशंसा की है पर रामानन्द का नाम तक नहीं लिया है। सुन्दरदास आदि संपूर्ण दादु पन्थी अपने गुरु

दादू को स्वतंत्र (कबीर पन्थी वा अन्य संप्रदायों के अलावा) मानते आये हैं । कबीर पन्थी वा रामानन्दियों की तरह दादू पन्थी तिलक या कण्ठी नहीं रखते।

२४—पण्डित जगजीवन जी ने लिखा है कि स्वामी दादू दयाल के गुरु परमेश्वर ही थे। दादू ने स्वयं अपनी वाणी में गुरू की महिमा अनेक प्रकार से गाई है पर किसी विशेष व्यक्ति को अपना गुरू नहीं कहा है, उनके वाक्यों से स्पष्ट है कि वे दो प्रकार के गुरू मानते थे, एक वाह्य गुरू दूसरे अन्तर्गुरू । वाह्य गुरू ऐसा बतलाया है कि जो उपदेश द्वारा सन्मार्ग बतलावे और योगवल से शिष्य को तुरन्त पलटि कर अपने तुल्य कर ले । अन्तर्गुरू अपना स्वयं आत्मा व परमात्मा है जिसकी अद्भुत कृपा से ही जिज्ञासू यथार्थ ज्ञान को पाता है। जन गोपाल का वृत्तान्त इस विषय में दादू के अपने वाक्यों से मिलता है। दादू ने अपने गुरू की बाबत यह साखी कही थीः—

दादू गैब मांहि गुरदेव, मिल्या
पाया हम परसाद।
मास्तकि मेरे कर धारया,
दष्या अगम अगाध ॥

गैब एक अर्बी शब्द है जिसके माने हैं गुप्त वा अद्भुत स्थान के, दादू जी कहते हैं कि गुर देव जी हमको गैब में मिले जिनसे हमने ऐसा प्रसाद पाया कि हमारे मस्तक पर उनके हाथ के धरते ही हम को अगम अगाध परमेश्वर की प्राप्ति रूप दीक्षा मिली, अर्थात् उस गैबी गुरू की कृपा से हमको तत्काल ब्रह्म का ज्ञान हो गया।

२५—स्वामी दादू दयाल ने अपनी वाणी में अनेक महापुरुषों की प्रशंसा की है तिनमें दत्तात्रेय, नारद, शुकदेव, सनकादिक, ध्रू, प्रहलाद, गोरखनाथ, भर्तृहरी, गोपीचन्द, नामदेव, पीपा, रयदास और कबीर के नाम दिये हैं। दादूपन्थी पुस्तक संग्रहों में एक सौ से अधिक महात्माओं के ग्रन्थ मिलते हैं, तिनमें सबसे पहिले स्वामी दादूदयाल की वाणी रहती है, पीछे कबीर नामदेव रयदास और हरदास की वाणी, उनके पीछे दादू जी के शिष्यों के ग्रन्थ, अन्त में गोरखनाथादि योगेश्वरों के ग्रन्थ पाये जाते हैं। मुसलमान महात्माओं में से शेख़ फ़रीद क़ाज़ी महमूद, शेख़ बहाउद्दीन के पद मिलते हैं।

२६—स्वामी दादूदयाल वाक्य सिद्धि योगी थे, उनकी वाणी की पुस्तक यह बात स्पष्ट दर्शाती है। जो २ दृश्य उन्होंने अपने ध्यान काल में अनुभव किये थे उनको अनेक प्रकार से सरल भाषा में वर्णन किया है। उनकी वाणी को पूरे तौर से योगीराज ही समझ सकते हैं, प्रत्येक साखी व पद में योग के दृश्य झलक रहे हैं। परमेश्वर की महिमा और उसका सच्चिदानन्द स्वरूप उसकी निर्गुण पूजा और अनन्य, भक्ति उसकी परम उपासना और उसका अजपा जाप, मन को परम रूप में स्थिर करने के साधन, परम रूप का ध्यान, धारण और समाधी, अनहद बाजे का श्रवण और उस में मग्न होना, अमृत बिन्दु का पान, और परमानन्द की प्राप्ति, परमेश्वर से अरसपरस मेल, ब्रह्म का साक्षात्कार, यह सब विषय स्वामी दादूदयाल ने अपनी प्रेम उपजावनी आनन्द बढ़ावनी मिष्ठ कविता में सर्वसाधारण के समझने योग्य रीति भांति से बतलाये हैं।

२७—स्वामी दादूदयाल एक धर्म और समाजिक विषयों के संशोधक थे, उन्होंने देश में हानि कारक बातों को देख कर उनके सुधारने का उद्योग किया है। पूर्व ऋषि मुनि आचार्य साधु और फकीरों की उत्तम २ बातों को लेकर अथवा अपने योगबल से एक शुद्ध निर्गुण उपासना बतलाई है, सो उपासना उच्च कोटि की है। उन्होंने परमेश्वर को ही अपना सर्वस्व जगत का सार और आधार माना है। और सब [illegible] को उस के पीछे रक्खा है,

वैसी ही, उपासना से परम सुख की प्राप्ति संभव है। इस सुख के सामने सांसारिक सुख तुच्छ हैं। सार को पाकर कोई भूसी की चाह नहीं करता है। ऐसे अपूर्व आनन्दमय परमपद के सरल साधन बतला कर स्वामी दादू दयाल ने दिखावटी प्रपंच, सगुण पूजा, कोरी बन्दगी को गौन बतलाया है।

२८—नाना मत वाले हिन्दू और मुसलमानों में परस्पर विरोध देख कर दोनों के लिये एक राह, एक ही ईश, एक ही प्रकार की बन्दगी बतलाई है। सब लोगों को परमेश्वर का परिवार दृश्य कर सब में भाई चारे का सम्बन्ध ठहराया है सब को परस्पर हेल मेल से चलने की आज्ञा दी है और सब जीवों पर दया दृष्टि रक्खी है एक दोहे में अपना सार मत इस भांति से कहा है:—

आपा मेटै हरि भजै,
तन मन तजै विकार।
निर्वैरी सब जीव सों,
दादू यहु मत सार॥

२९—दादू के उपदेशों का निचोड़ यही है जो हमारे प्राचीन योगेश्वरों और आचार्यों ने चलाया है। इस बात को दादूपन्थी कविवर सुन्दरदास जी ने अपने ग्रन्थों से और पण्डित निश्चल दास जी ने अपने विचार सागर और वृत्ति प्रभाकर ग्रन्थों से स्पष्ट सिद्ध कर दिया है। दादु के धरम और परमार्थ के मार्ग अद्वैत वेदान्त के अनुसार ही हैं। उनका सार हिन्दुओं के सिद्धान्तों से विरुद्ध नहीं है। दादु ने जहां २ हिन्दुओं के विरुद्ध कहा है वहां उनका तात्पर्य हिन्दुओं के मूल सिद्धान्तों के खंडन में नहीं है, किन्तु केवल उन अनिष्ट बातों के विरुद्ध है जिनसे हिन्दू जाति को हानि हो रही है। उनके संशोधन से दादू ने हमारा कल्याण किया है। पर उस समय के लोगों ने दादू के खंडन मंडन से चिढ़ कर उनको धुनिया काफ़िरादि कह कर तुच्छ बतलाया है। सुधारकों की आदि में सर्वत्र ऐसी ही निन्दा हुआ करती है पीछे जब उनका कृत्य प्रगट हो जाता है तब उनकी कीर्ति फैलती है।

३०—वास्तव में जो २ सुधार स्वामी दादू दयाल ने कहे थे हम में से अधिक सुधारों की जरूरत अब भी भारतवर्ष में है, अर्थात्:—

(क) हिन्दू और मुसलमानों में मेल जो दादू ने कहा है सो अब भी ज़रूर है।

(ख) सब मनुष्यों में भाई चारे का प्रचार अब भारत के सब हितवादी आवश्यक समझते हैं।

(ग) अहिंसा परमोधर्मः ॥ यह सिद्धान्त नित्य दृढ़ता पाता जाता है। हिन्दू सर्वत्र इसको स्वीकार करते हैं, मुसलमानों में बहाई मत के अनुयाई जो मिसर फारसादि देशों में बढ़ते जाते हैं। इस सिद्धान्त को अपने मुख्य वसूलों में रखते हैं। दादु के वाक्य इस विषय में सर्वमान्य होंगे।

(घ) सगुण से निर्गुण उपासना सभी विद्वान श्रेष्ठ मानते हैं।

(ङ) तीर्थ यात्रा से जो हानि और यात्रियों की जो दुर्दशा आज कल होती है सो दादू के समय में न थी। दादू का उपदेश इस विषय में आज कल हमारे लिये परमोपयोगी है।

(च) खान पान में दादू का मत सर्वमान्य होने के योग्य है।

(छ) उद्यम और परिश्रम करना दादू के अनुसार उत्तम है।

(ज) विवाह का निषेध यति महात्माओं के लिये है। गृहस्थों के लिये एक नारी की आज्ञा महात्मा दास जी (दादु जी पोता चेले) ने अपने "पन्थ प्रष्या ग्रन्थ" में साफ़ दी है। दादु पन्थी नागाओं और सस्थान धारियों को इस आज्ञा पर चलना उचित है, दूसरे गृहस्थों के बालकों को मूड़ कर अपना घर चालना ठीक नहीं है।

३१—संवत १६३० के पीछे सांभर में दादू की महिमा उठी। उनका कथन हिन्दू और मुसलमान दोनों की प्रचलित रीति भांति से निराला था, इस कारण से दादू के अनेक विरोधी भी हो गये थे। ऐसे लोगों ने अनेक प्रकार से दादू को सताया पर दादू ने अपना मार्ग न छोड़ा। उन दिनों में दादू ने कुछ इस प्रकार की साखी कही थीः—

दादू जब थैं हम निर्पष भये,
सबै रिसाने लोग।
सतगुर के परसाद थैं,
मेरे हरष न शोक। १६-५६

एक दफे एक क़ाज़ी जी दादू की तर्क से झुंझला गये और दादु के मुंह पर एक घूंसा मारा।

जिस पर दादू ने अपनी शान्ति न छोड़ी और अपने मुंह को फेर कर कहा "भाई एक और मार लो" तब क़ाज़ी जी शर्मा कर चले गये।

दादू बल तुम्हारे बाप जी,
गिकण न राणा राव।
मीर मलिक परधान पति,
तुम बिन सबही बाव ॥ २४-७३

३२—आंबेर में दादू की महिमा और बढ़ी राजा भगवन्त दास ने अकबर शाह के बार २ कहने से दादु को फतहपुर सीकरी बुलवाया, अकबर शाह की इच्छा थी कि दादू अकबर को परमेश्वर का अवतार स्वीकार करैं, पर वह बात दादू ने न मानी। राजा भगवन्तदास, बीरबल अब्बुल फ़ज़लादि ने दादु को बहुत तरह के लालच दिये पर दादू ने किसी प्रकार का लालच न माना और अपनी राह में दृढ़ रहे। अकबर शाह ने आख़िर दादु को निर्लोभी सच्चा फ़क़ीर मान कर आदर से अपने शहर में रहने के लिये बहुत कुछ कहा पर दादू ने अपनी कुटी आंबेर में ही रहना पसन्द किया।

३३—राजा भगवन्तदास के मरे पीछे मानसिंह आंबेर के राजा हुये। उनसे कुछ लोगों ने दादू की निन्दा की कि दादू हिन्दू और मुसलमान दोनों की चालों के विरुद्ध लोगों को उपदेश देता है। मानसिंह ने अपने मन में दादू के सदुपदेशों को ठीक मान भी लिया पर लोगों के दवाव में आकर दादु से कुछ अनुचित प्रश्न कर बैठे जिस पर दादू आंबेर से उठ खड़े हुये। मानसिंह ने दादू से क्षमा मांगी और ठहराने की बातैं कही पर दादू जी अपना सब सामान लुटा कर चल दिये। कल्यान पुरादि अनेक ग्रामों में वर्ष २ छः २ महीने अपने प्रेमियों के पास रह कर ६ वर्ष विचरते हुये काटे। अन्त में नराणों में विश्राम लिया।

३४—दादु के माता पिता का हाल ठीक २ जानने में नहीं आता है दादू ने अपनी वाणी में कोई नाम या पता नहीं दिया है। दादू के शिष्य उनकी पिछली अवस्था में उनसे मिले थे, उससे पहले का हाल शिष्यों के देखने में न आया था। ऐसे नाजुक हाल के पूछने का किसी को साहस भी न हुआ हो।

दादूपन्थियों का दृढ़ निश्चय है कि अहमदाबाद में लोदीराम नागर ब्राह्मण के घर दादु पले थे। उनके प्रगट होने का हाल इस तरह से कई महात्मा लिख गये हैं कि एक टापू में कुछ योगी जन ध्यान कर रहे थे; उनमें से एक योगी को भगवत की 'आज्ञा हुई कि तुम भारत में जाकर जीवों का कल्यान करो, इस शब्द से बंधे हुये वह योगी राज अहमदाबाद में आये जहां लोदीराम साधु सन्तों से एक पुत्र के लिये याचना किया करते थे। उस योगी से भी लोदीराम ने वही बर मांगा, योगी ने लोदीराम की आशा पूरण करने की प्रतिज्ञा की और लोदीराम से कहा कि प्रभात काल साबरमती नदी के किनारे जाव, वहां तुम को पुत्र मिलेगा, तदनुसार लोदीराम

नदी के किनारे गये और योगी अपने योग-बल से अपना रूप पलट कर बालक रूप धारण करके साबरमती नदी में बहते हुये उस ब्राह्मण को प्राप्त हुये। लोदीराम ने उसे अपने घर ला कर पाला, सोई दादूदयाल हुये। इसके प्रमाण में यह साखी मिलती है:-

सबद बंधाना साह के,
ता थैं दादू आया।
दुनिया जीवी बापुड़ो,
सुख दरसन पाया॥

देश में कहावत चली आती है और कहीं २ लिखा है कि दादु एक रूई पींजने वाले धुनिया थे। दादु पन्थी स्वीकार करते हैं कि कुछ दिन दादु ने सांभर या आंबेर में पिंजारे का काम किया था, सो केवल लोक दिखाने के निमित्त था। दादु के अद्भुत उपदेशों और चमत्कारों की महिमा जब वहां फैल गई तब सैकड़ों आदमियों की भीड़ें दादु के पास आने लगीं और दादु के भजन वा योगाभ्यास में फ़र्क पड़ने लगा तब दादु ने वह पींजने का काम आरम्भ कर दिया, जिससे लोग कम आवें। एक महात्मा लिखते हैं कि जैसे कबीर जी ने जगत बड़ाई को रोकने के लिये गनि का अपने संग रक्खी थी वैसे दादु ने यह रुई कृत किया था। दादु ने अपनी वाणी के जरणा नामक अंग में बहुत ज़ोर देकर कहा है कि साधु अपनी भक्ति को किसी से प्रगट न करे।

दादु के शिष्य सुन्दरदास जी तथा जनगोपाल रजब जी, जगनाथादि ने भी इस रुई कृत का हाल सुना था और इन सबों ने अपने २ ग्रन्थों में इसका ज़िकर लिखा है; सुन्दरदास जी ने दादु के रुई पींजने की महिमा इस प्रकार से गाई है:—

एक पिंजारा ऐसा आया।
रूह रुई पींजण के कारण,
आपण राम पठाया॥ टेक॥
पींजण प्रेम मूठिया सबको,
लय ली तांति लगाई।
धनुही ध्यान बंध्यौ अति ऊंचो,
कबहूं छूटि न जाई॥
जो २ निकट पिंजावण आवै,
रुई सबन की पींजै।
परमारथ को देह धर्यो है,
सम्यक कछु ही लीजै॥
बहुत रुई पींजी बहु विधि कर,
मुदित भये हरि राई।
दादू दास अजब पींजारा,
सुन्दर बलि बलि जाई॥

सुन्दर दास जी ने अपने "गुरदेव के अंग" में स्वामी दादु दयाल की महिमा बहुत उत्तमता से गाई है। वहां पर २७ सवइये हैं जिनमें से दो यहां पर देता हूं।

धीरजवन्त अडिग्ग जितेन्द्रिय,
निर्मल ज्ञान गह्यो दृढ़ आदू।
शील सन्तोष क्षमा जिनके घट,
लागि रह्यौ सु-अनाहदनादू॥
भेष न पक्ष निरन्तर लक्ष जू,
और कछू नहिं वाद बिवादू।
ये सब लक्षण हैं जिन माहिं,
सो सुन्दर कै उर हैं गुर दादू॥
कोऊ गोरष कौं गुरथापत,
कोऊ के दत्त दिगम्बर आदू।
कोऊ के कंथर कोऊ के भरथर,
कोऊ कबीर की राखत नादू॥
कोऊ कहै हरदास हमारे जू,
यूं करि ठानत वादबिवादू।
और तो सन्त सबै सिर ऊपर,
सुन्दर के उर हैं गुर दादू॥

३५—स्वामी दादु दयाल ने किसी को मूंड कर शिष्य न किया था, उनके सत्संगी हज़ारों थे उनकी दृष्टि ऐसी मोहनी थी और वाक्य ऐसे हृदयबेधी थे कि जिसकी तरफ वों देखते वा कुछ कहते थे वहीं वह उनके रंग में लवलीन हो जाता था। सांभर और आंबेर में अनेक जन

स्वामी जी के दर्शनों को आते थे और अपने २ स्थान को लेजा कर बड़े २ महोत्सव कराते थे। मनुष्यों की क्या कहें पशु भी दादुदयाल को देख कर उनके आधीन हो जाते थे। यह सब उनके योगबल की लीला थी। जन गोपाल जी ने तथा और महात्माओं ने स्वामी दादु दयाल के अनेक चमत्कारों का हाल लिखा है। ऐसे वृत्तांतों को आज कल के लोग असंभव समझ कर शायद अप्रमाणित मानें पर जिन लोगों ने इस युग में भी योगियों की शक्ति का परिचय पाया है वे दादु दयाल के अद्भुत चरित्र को असंभव न समझेंगे। महात्मा सुंदर-दास जी ने अपने "सर्वांग योग" नामक ग्रंथ में योगियों की शक्तियों का वर्णन किया है, तैसे ही प्राचीन योग शास्त्रों में भी उनके प्रमाण विद्यमान हैं।

३६—स्वामी दादुदयाल के ५२ शिष्य प्रसिद्ध हैं, जिनके ५२ थांभे और ५२ ही महंत स्थान बने हैं, इनमें तीन ब्राह्मण थे अर्थात्:—

(१) काशी के पंडित जगजीवन जी
(२) माधोदेव सीकरी के
(३) नागर जी टेटडे वाले

चार महात्मा दादु के शिष्य कहलाने से पहले सन्यासी थे, उनके नाम यह हैं:—

(१) बनबारी जी
(२) हरदास जी
(३) हिंगोल गिरिजी
(४) कपिल मुनि,

५२ शिष्यों में से २४ संतों के रचे अनेक ग्रंथ मैंने देखे हैं। तिनमें सुंदरदासजी दूसर शेखा वाटी में फतहपुर के निवासी ने अनेक मनोहर काव्य ग्रंथ बनाये हैं जिनमें से कुछ बम्बई में छप चुके हैं और बाकी अभी तक सर्वसाधारण के देखने में नहीं आये। निम्न लिखित महा-त्माओं के ग्रंथों के संपादन का अभी तक किसी नाम ही नहीं लिया है:—

जन गोपाल जी
जग जीवनदास जी
जगन्नाथ जी
रजब जी
जयमल जोगी
जयमल चौहान
चैन जी
मोहनदास मेवाड़े
हरिसिंह जी
बारा हजारी संतदास जी
माधू जी
बाबा बनबारीदास जी
साधु जी
बषणा जी
टीला जी
प्रागदास जी
जग्गा जी
मसकीनदास जी
दजणदास जी
पूरणदास जी
गरीबदास जी

इनके पीछे अनेक दादु पंथी संत हुये हैं उनके भी ग्रंथ मिलते हैं, जैसे

छीतर जी के सबइये,
दास जी का पंथ प्रथ्या और बाणी,
चंपाराम का दृष्टांत संग्रह।
राघौदास का भक्तमाल।
प्रेमदास जी की बाणी और अन्य ग्रंथ।

इन महात्माओं के वाक्यों के नमूने यहां देने की मेरी इच्छा थी पर यह लेख बढ़ गया है और समय भी थोड़ा है। दादु पंथी संपूर्ण ग्रंथ एक लक्ष श्लोकों की बराबर होंगे।

३७—ऊपर लिखे ग्रंथ दादु पंथी संग्रहों में मिलते हैं। इनका संपादन करना हिंदी साहित्य के लिये अति उपयोगी होगा। यह ग्रंथ पुरानी हिंदी में हैं जो वर्तमान भाषा से किंचित विल-क्षण है। बहुधा संपादक पुरानी लेख प्रणाली

और भाषा को न समझ कर इन ग्रंथों को अशुद्ध मान लेते हैं और उनके शब्दों के असली रूपों को बदल कर प्रचलित भाषा के अनुसार करने का प्रयत्न करते हैं जिससे प्राचीन हिंदी के इतिहास का लुप्त हो जाना संभव है।

३८—दादु पंथी पंडित निश्चलदास के विचार सागर और वृत्ति प्रभाकर ग्रंथ भारत के वेदांती विद्वानों में अति माननीय हैं। सन्यासी, उदासी निर्मले, कबीरपंथी तथा और संप्रदायों के विद्वान इन ग्रंथों की प्रशंसा करते हैं और भाषा के ग्रंथों में इनको प्रमाणिक मानते हैं। स्वामी विवेकानन्द जी भी इनकी प्रशंसा लिख गये हैं। ऐसे अद्वितीय पंडित निश्चलदास का विख्यात पुस्तक संग्रह देहली के पास एक गांव में पड़ा सुनने में आता है। राजपूताने के दादु पंथियों के पास हिंदी के अनेक पुराने ग्रंथ मिलते हैं। इनका संपादन करना हिंदी के प्रेमियों का ही कर्तव्य है।

३९—अब मैं दादुदयाल की विनती सुना कर इस वृत्तांत को समाप्त करता हूंः—

साईं सत संतोष दे, भाव भक्ति विश्वास।
सिदक सबूरी साँच दे, मांगै दादु दास॥
साईं संशय दूरि कर, करि शंका को नाश।
भानि भरम दुविधा दुख दारुण समता सहज प्रकाश
तन मन निर्मल आत्मा सब काहू की होय।
दादु विषय विकार की, बात न बूझै कोय॥

सम्पादकीय टिप्पणियां।

पंजाब की हिन्दू सभा।

एक कहावत है कि निर्बल को दुनिया दुःखदाई होती है इस संसार में वेही लोग अपना और लोक का ज्यादा उपकार कर सकते हैं जिन में अपने पालन करने की और अपने बालबच्चों की रक्षा करने की सामर्थ्य है। अब तक हिन्दू लोग सारे देशवासियों के चाहे वे इसाई हों या मुसलमान, पारसी हों या हिन्दू सब के हित के लिए उद्योग करते चले आए हैं परन्तु थोड़े काल से जब यह देखा गया कि इस परोपकारता के लिए हिन्दुओं को उचित यश नहीं मिलता है किन्तु उसके बदले में उलटा कलंक लगाया जाता है और विशेष कर हिन्दुओं को हानि पहुचाने का यत्न किया जाता है तो इन सब बातों को विचार कर यह सोचा गया है कि सब देशवासियों के लाभ के लिए उद्योग करते हुए भी हिन्दुओं का एक विशेष प्रबन्ध होना चाहिए जिसका कर्तव्य हो कि वह सिर्फ हिन्दुओं के स्वत्वों की रक्षा और उनके हित की चिन्ता करें। पाठकों को यह विदित होगा कि मुसलमानों की मुसलिम लीग जिसकी शा[खा] नगर में स्थापित की जा रही है उसके पक्षपाती सभासदों द्वारा हिन्दुओं और उनके स्वत्वों पर आक्षेप होते देख पंजाब के हिन्दुओं ने पंजाब हिन्दूसभा स्थापित की है। गतसाल किस सफलता पूर्वक हिन्दूसभा का अधिवेशन हुआ था यह पाठकों को विदित है इस साल से भी अधिक सफलता सभा को मुलतान के अधिवेशन से हुई है। इसी अधिवेशन में यह शुभ सम्वाद सुनाया गया है कि यत्न किया जा रहा है कि कुल भारतवर्ष के हिन्दुओं की एक सभा जो कि किसी एक प्रान्त की न हो कर सारे देश की हो, की जानी चाहिए। यह प्रस्ताव प्रशंसनीय है मुसलमानों ने हल्ला मचा कर कौंसिलों में अपना पद पक्का कर लिया है अब उनकी कोशिस है कि म्युनिसिपैलटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में भी उनका पद पक्का कर दिया जाय। उनकी कोशिस है कि यदि एक हिन्दू नियत हो तो एक मुसलमान भी नियत होना चाहिए। यह अन्याय और पक्षपात की बात है उनकी संख्या के अनुसार उनके लिये पद नियत कर दिये जाने में लोगों को विरोध नहीं हो सकता है परन्तु जब इन प्रान्तों में मुसलमानों का नम्बर सैकड़ों में पन्द्रह है तब यह अन्याय होगा

कि पन्द्रह की संख्या वाले को उतना ही अधिकार दिया जाय जितना कि उन जातियों को जिनकी कि संख्या मुसलमानों से कम से कम पांच गुना ज्यादा है। चारों ओर हिन्दुओं के स्वत्वों को पूर्ण रूप से रक्षा करने की आवश्यकता है और जैसे हम ऊपर कह आए हैं जब हिन्दू लोग अपने स्वत्वों की रक्षा कर उन्नति करेंगे तब वे दूसरों का उपकार और सेवा करने में भी ज्यादा योग्य होंगे, और जब हिन्दू लोग अपने स्वत्वों की रक्षा करने लगेंगे और अपने ही हित की चिन्ता करेंगे उसी दिन से मुसलमानों का गर्व नत होगा और तभी वे सम्मिलित हो हिन्दुओं के साथ जातीयता निर्माण करने में दत्त-चित्त होंगे—

महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी।

न मालूम आज दिन हिन्दी पर इतने वज्रपात क्यों हो रहे हैं। इसी वर्ष में हमारे कितने मान्य हिन्दी की सेवा करने वाले इस असार संसार को छोड़ कर चले गये। आज फिर हमें शोक के साथ महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी के स्वर्गवास का हाल लिखना पड़ता है। इसके पहिले जितने बड़े २ महानुभावों ने इस संसार को छोड़ा है उनके स्थान की पूर्ति सब प्रकार से हो गई। वैयाकरणी शास्त्री काशीनाथ के मृत्यु के बाद शास्त्री राजाराम ने उनके अभाव की पूर्ति की, इनके बाद मान्य बाल शास्त्री ने उस स्थान को सुशोभित किया और आज कल महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री उस अभाव की पूर्ति कर रहे हैं। नैयायिक कैलाशचन्द्र के शरीर छोड़ने पर नैयायिक राखालचन्द्र जी ने उस स्थान की शोभा बढ़ाई। ज्योतिष में आज तक यही होता आया अन्त में बापूदेव जी शास्त्री के अभाव की पूर्ति सुधाकर जी बड़े गौरव के साथ कर रहे थे किन्तु अब खेद है कि इनके अभाव को पूर्ण करने वाला कोई नहीं दिखाई देता। आज ज्योतिष शास्त्र का सुधाकर अस्त हो गया, आज यूरोप में भारतीय गणित को आदर दिलाने वाले नहीं रहे, चन्द्र की गति के लोप होने से गणित में एक पद बढ़ना कठिन हो जाता है सुधाकर के ही न रहते अब हमारे गणितज्ञ किसकी सलाह से काम लेंगे।

लीओ टाल्सटाय।

आज एक बड़ा शक्तिमान और प्रभावशाली प्रसिद्ध महापुरुष संसार से उठ गया है। समस्त संसार और विशेष कर पश्चिम के यूरप और अमेरिका में काउन्ट लीओ टालसटाय के मृत्यु के समाचार से असंख्य प्राणी दुःखी होंगे। इस महापुरुष का जीवनचरित्र विचित्र घटनाओं और उपदेशों से भरा है इनका पूर्ण जीवनचरित्र हमारी सामर्थ्य और हमारे अवकाश बाहर है। आज हमको इतना ही अवसर है कि हम उस जीवन के प्रधान २ बातों का पाठकों को स्मरण मात्र करावें। काउन्ट टाल्सटाय यूरप में एक ऋषि के समान पूजे जाते थे—इनकी मृत्यु से न केवल रूस के निवासी उनके पवित्र और ऊंचे उपदेशों से वंचित रहेंगे परन्तु सारा संसार विशेषतः यूरप और अमेरिका एक दीनवत्सल जीवहितैषी के मृत्यु से, एक ज्ञान दीप से, रहित हो गए हैं।

काउन्ट टालसटाय का रूस के एक ऊंचे कुल में ६ सितम्बर सन् १८२८ में जन्म हुआ था। इनके जन्म से तीसरे वर्ष में इनके माता का देहान्त हो गया था और छठे वर्ष में इनके पिता का भी देहान्त हो गया। अपने चार बड़े भाइयों की भांति इनमें भी बाल्यावस्था में कोई विशेष बात नहीं मालूम होती थी। खेल और उधुम की ये बाल्यावस्था में मूर्ति थे। ये नियमों से चिढ़ा करते थे और दिन २ एक भांति काम आरम्भ में बढ विद्रोही थे। पन्द्रह

वर्ष की आयु में इनकी स्कूल की शिक्षा समाप्त हो चुकी थी और यूनिवर्सिटी की शिक्षा समाप्त होते ही इन्हें देश और समाज की धुन चढ़ी। सन् १८४७ में रूस में भयानक अकाल पड़ा। प्रजा के तरफ से ये अकाल पीड़ित लोगों को मदद देने पर तयार हुए। लोगों की असहाय दशा देख इनका नवीन उत्साह भंग हुआ लोगों के बहुत कहने पर १८५१ में ये फौज में भरती हुए। १८५४ में क्रीमियां की बड़ी लड़ाई में ये भेजे गए वहां प्रचंड हत्याकांड के बाद मेल होने पर नृत्य और नाद होते देख इन्हें बड़ा दुःख हुआ और उसी रोज से इनका नया जीवन प्रारम्भ हुआ। १८५५ में दूसरे अलगज़ेनडर के समय में चारों ओर लोकस्थिति की चिन्ता बढ़ रही थी। जरमनी फ्रांस और इंगलैंड की प्रजा शक्ति बढ़ते देख टालसटाय के उद्योग से रूस में भी प्रजा शक्ति बढ़ाने का उद्योग शुरू हुआ। उन्नति किन क्रमों से सहज में हो यह जानने को जरमनी, इटली, फ्रांस और लंडन में घूम कर इन्होंने नए उत्साह से १८६१ में एक स्कूल अपने स्थान में खोला जिसमें बिना फीस के शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थी खूब भरती हुए और इन्हीं के उपदेश से और भी स्कूल खुले जिनकी उन्नति देख सर्कार ने विरोध करना शुरू किया जिसका यह फल हुआ कि लोग इन स्कूलों से अपने बालकों को हटाने लगे और हताश हो इन्हें स्कूल बन्द करना पड़ा।

स्कूल बंद होते ही आपके राजनैतिक विचार बढ़ने लगे। आप के मत में प्रजा के ही हाथों में सब भांति के अधिकार होने चाहियें और उच्च जातियों का अधिकार लेना अत्याचार है आपके मत में किसी भांति शक्ति प्रयोग करना निन्दनीय है। तथा किसी को किसी वस्तु से लाभ उठाने का अधिकार नहीं है जिसके लिये वह खुद परिश्रम नहीं करता है। आप के लेखों काव्यों और उपदेशों से आज एक भांडार भरा जा सकता है और हम आशा करते हैं कि हिन्दी साहित्य समाज उनके उच्च विचारों से बहुत दिनों तक अपरिचित नहीं रहेगी।

हिन्दू और मनुष्य गणना।

निःसन्देह यह हिन्दुओं की बड़ी खराब बात है कि उन लोगों ने अपनी जन्म भूमि में अपनी इतनी अधिक संख्या बढ़ा रक्खी है। मुसलिम लीग और मि० गेट के प्रसन्नतार्थ उन्हें चाहिए कि वे अपने को हिन्दू कहना छोड़ दें।

मुसलिम लीग मुसलमानों की संख्या बढ़ाना चाहती है। इसमें किसी को कुछ भी विरोध नहीं हो सकता किन्तु हिन्दुओं के मामलों में उनका दखल देना सरासर ज्यादती है। इसी प्रकार मि० गेट का भी इस झगड़े में पड़ना अन्याय है। हिन्दुओं के सामाजिक मामलों में न तो मुल्ला न पादरी ही की आवश्यकता है। हिन्दू ही केवल इस व्यवस्था को दे सकते हैं कि "कौन २ हिन्दू है"? मुसलिम लीग की चाल किसी से छिपी नहीं है। यदि वास्तव में मुसलिम लीग को जैसा कि वह प्रगट करती है हीन जातियों की दशा पर दया आती है तो उसने आज तक उनकी दशा सुधारने का क्या यत्न किया है?

यदि मि० गेट को "धर्म-परीक्षक" ही बनना अभीष्ट है तो केवल हिन्दुओं के परचे क्यों तैयार किये गये हैं। निःसन्देह इसाई और मुसलमानों में बहुत से ऐसे मिलेंगे जो नाम मात्र के लिये इसाई या मुसलमान हों, जैसे पंजाब के मेवाती और यू० पी० के नौमुसलिम गहरवार। क्या असली मुसलमानों या इसाईयों का पता लगाना उन्हें अभीष्ट नहीं है या उन लोग के पीर और पैगंबरों ने खोदा से उन्हें इस बात का कोई सार्टीफिकेट दिला दिया है कि वे सर्वदा मुसलमान और इसाई के नाम से पुकारे जाय और हिन्दू पहिले कोई
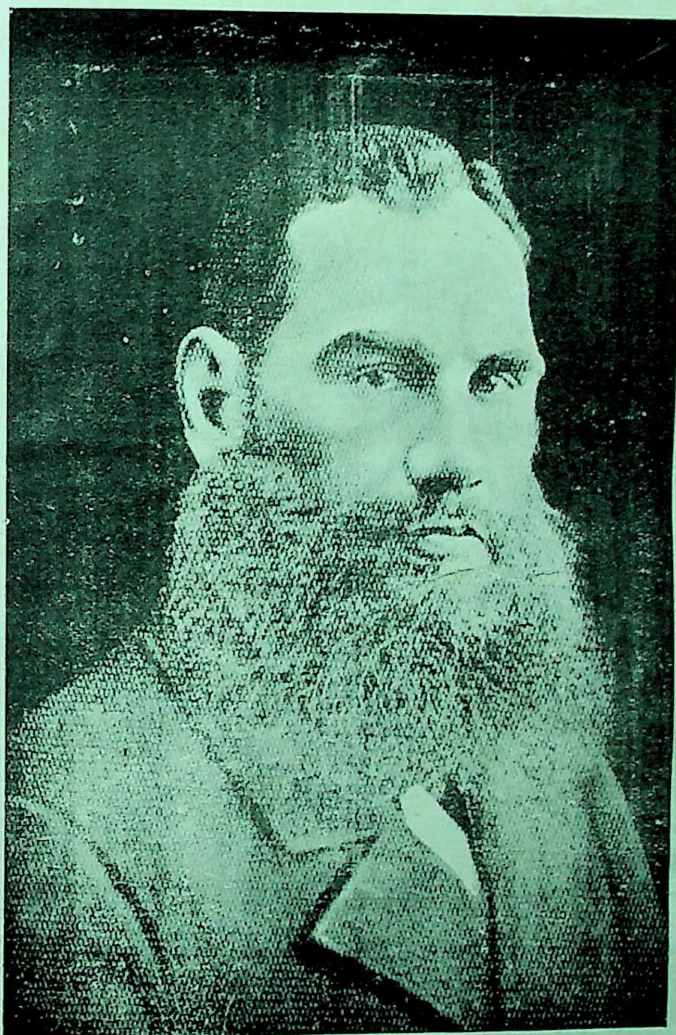
लीओ टाल्सटाय।

अभ्युदय प्रेस-प्रयाग।

मर्यादा
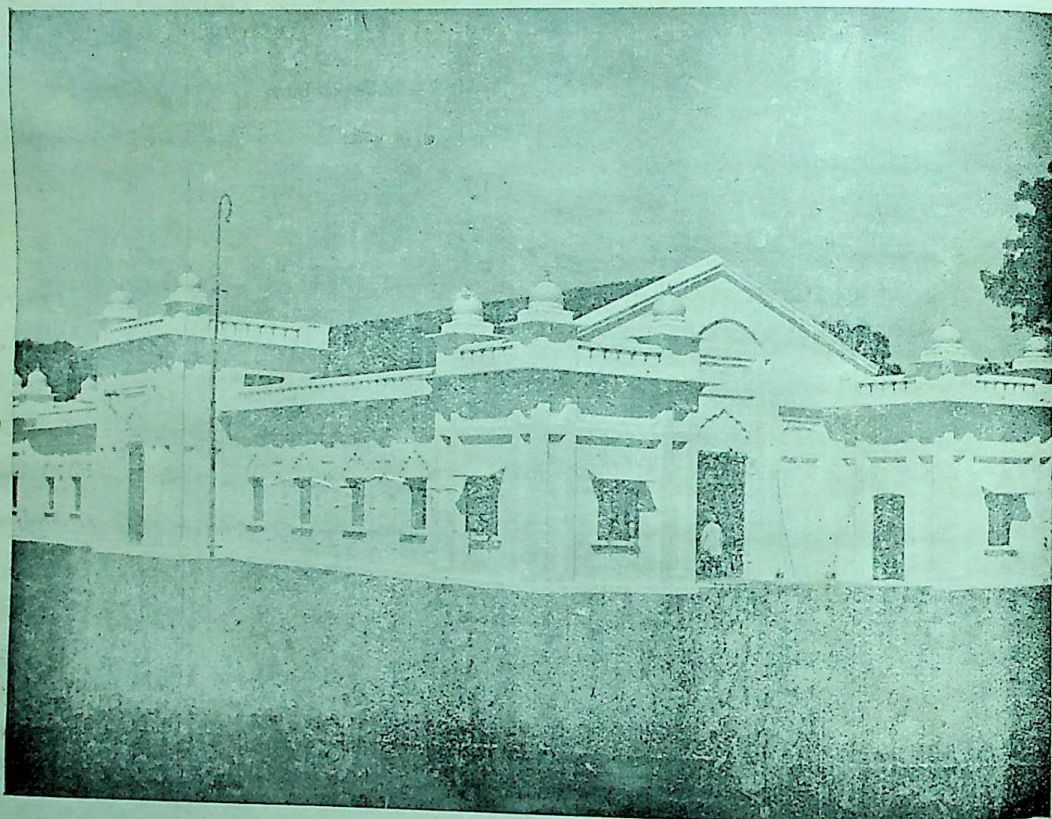
वलकम क्लब।

(यह जमुना के तट पर बना है और राजा महाराजाओं के कमरे की भांति सुशज्जित है—दीवाल पर बेल बूटों की अच्छी चित्रकारी है। यहां से जमुना में होने वाले खेल बहुत अच्छी प्रकार दिखाई देंगे। इसमें १५) देकर कोई भी मेम्बर हो सकता है)

अभ्युदय प्रेस–प्रयाग।

इम्तेहान पास कर लें तब वे अपने को हिन्दू कह सकें।

हर एक मनुष्य को पूर्ण अधिकार है कि वह अपने को जिस सामाजिक नाम से चाहै पुकारे इसमें किसी का साझा नहीं होता। यदि कोई समाज उसका विरोध कर सकता है तो केवल वह समाज जिसके नाम से वह अपने को पुकारता है। यदि कोई चमार अपने को हिन्दू कहता है तो केवल हिन्दू उसके हिन्दू कहे जाने पर विरोध कर सकते हैं न कि मुसलमान या ईसाई। हिन्दुओं ने आज तक यह नहीं कहा कि अन्त्यज जाति वाले हिन्दू नहीं हैं।

मि० गेट ने अपने सरक्यूलर में लिखा है कि कुछ सिक्ख और जैनी लोग, चाहे वे स्वयम् कहें भी तब भी, मनुष्य गणना में हिन्दू न लिखे जांय। क्यों साहब? क्यों! यह किस कानून की किस दफा से न्याययुक्त है। किसी लड़के को उसके माता या पिता के गृह में जाने से रोकना किस हाईकोर्ट की रूलिंग से ठीक है? किसी हिन्दू से यह कहना कि वह प्यारा शब्द हिन्दू अपने नाम से निकाल दे कितना अपमानजनक है। मि० गेट ने यदि इसाइयों से यह कहा होता कि कुछ इसाई अपने को इसाई न कहे या कुछ मुसलमान अपने को मुसलमान न कहे तो आज सारे संसार में एक बड़ा आन्दोलन हो जाता। किन्तु वे जानते हैं कि हिन्दू समाज निर्जीव है, और इसी कारण आज इसाई होते भी उन्होंने ब्राह्मणों का काम अपने सिर पर लिया है।

हिन्दुओ सावधान।

आज तक तुम्हारे ऊपर केवल चोट होती थी अब तुम्हारे कुछ अंगों को भी तुम से अलग करने का यत्न हो रहा है। हम हाथ की हथेली को पैर के तलुओं से ज्यादे पवित्र मानते हैं हथेली से छुआ पानी पीते हैं किन्तु तलुओं से स्पर्श हुए पानी को फेंक देते हैं तो इसका क्या यह अर्थ है कि तलुआ हमारा अंग नहीं है या उसको काट कर निकाल देने से हमे पीड़ा तथा हानि नहीं पहुंचैगी।

मि० गेट ने अपने सरक्यूलर में लिखा है कि हिन्दुओं में बहुत सी जातियां ऐसी हैं जो कि हिन्दुओं के बड़े देवतादि को नहीं पूजतीं किन्तु देवियों को मानती हैं जैसे हैज़े की बीमारी की देवा, ...

मि० गेट को यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि जब तक "नीच तथा अन्त्यज" जातियां अपने को हिन्दू कहती हैं और हिन्दू उन्हें हिन्दू मानते हैं उस समय तक किसी को अधिकार नहीं है कि उनको गणना हिन्दू में न करे, माना को इस जाति वाले न वैष्णव हैं न शैव न शाक्त और वे देवियों को मानते हैं, किन्तु क्या उन्हें यह नहीं मालूम कि ऊंची जातियों में भी जिन्हें हम वैष्णव और शैव कह सकते हैं ७५ फी सदी ऐसे हैं जिन के घरों में भी वैसीही देवियों की पूजा होती है।

बंगाल में (Small Pox) चेचक की बीमारी को मायेरदाया (माता की दया) कहते हैं युक्तप्रान्त में तो "माता" ही कहते हैं तो क्या इन देवियों को मानने से ये लोग हिन्दू नहीं हैं?

मि० गेट के धर्म परीक्षक पत्र से राजनैतिक अर्थ तो निकल सकता है किन्तु धार्मिक दृष्टि से तो इसमें कुछ है ही नहीं।

मि० गेट के धर्म परीक्षक पत्र में ये प्रश्न हैं।

(१) क्या उस जाति वाले हिन्दू के बड़े देवताओं की पूजा करते हैं।

(२) वे हिन्दुओं के मन्दिर में जाने या पूजा चढ़ाने पाते हैं या नहीं?

(३) अच्छे ब्राह्मण उनके प्रोहित बनेंगे या नहीं?

(४) नीच श्रेणी के ब्राह्मण उनके प्रोहित बनेंगे और यदि वे बनेंगे तो उनको जाति वाले उन्हें ब्राह्मण मानेंगे की नहीं या वे केवल नाम मात्र के ब्राह्मण रहेंगे?

(५) ऊंची जाति वाले उनका छुआ पानी पियेंगे की नहीं ?

(६) उनके छूने या उनके पास रहने से छूत मानी जाती है या नहीं।

(१) मि० गेट क्या हमें बतला सकते हैं कि हिन्दुओं के अनेक देवताओं में वे किसे बड़े देवता मानते हैं ? जो जिस देवता की उपासना करता है उसके लिये वही देवता बड़ा है। वैष्णव काली की पूजा नहीं करते शाक्त वैष्णव के देवताओं को नहीं मानते, थोड़ेही दिन पहिले इनमें परस्पर विवाह या भोजन का भी व्यवहार नहीं था वे एक दूसरे से इतनी ही घृणा करते थे जैसे कि रानी मेरी के समय में प्रोटस्टेन्टस और रोमन केथलिक्स एक दूसरे से करते थे। बंबई प्रान्त में प्रायः अब तक शैव और वैष्णवों तथा अन्य २ संप्रदायों में यही झगड़ा है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए मि० गेट किस को हिन्दू मानेंगे।

(२) मन्दिरों में जाने की व्यवस्था सब प्रान्तों में एक प्रकार से अलग २ है। बनारस के विश्वनाथ के मन्दिर में सभी जाति वाले जाते हैं। जगन्नाथ जी के मंदिर में भी सभी जाति वाले जा सकते हैं यहां पर किसी प्रकार की छुआछूत भी नहीं है नीच से नीच जाति वाला का स्पर्श होता है तथा उनके साथ सह भोजन भी दूषित नहीं समझा जाता। मि० गेट इससे क्या अर्थ निकालेंगे क्या यह पूर्ण रूप से उनके सब सवालों का जवाब नहीं है? रही पूजा चढ़ाने की बात सो तो प्रायः सभी मंदिरों में वहीं के पुजारी पूजा चढ़ाते हैं।

(३) कोई अच्छा ब्राह्मण है या नहीं यह निश्चय करना किस का कर्तव्य है। इसको हिन्दुओं के सिवाय कौन निश्चय कर सकता है, तब फिर यह हिन्दुओं ही के हाथ में छोड़ देना भी उचित है किन्तु इससे शायद मि० गेट का राजनैतिक अर्थ नहीं निकलता इसी कारण से वे स्वयम् ही हिन्दुओं का कर्तव्य अपने सिर ओढ़ा चाहते हैं।

(४) यहां पर एक प्रश्न यह उठता है कि मि० गेट विलायत से लौटे हुए हिन्दुओं को किस जाति में गिनते हैं। बहुत से लौटे हुओं के साथ तो उन की जाति वाले नहीं खाते न ब्राह्मण उनके प्रोहित ही बनते हैं। मि० गेट की राय में तो शायद ये हिन्दू न होंगे—ऐसी अवस्था में यही कहना पड़ता है कि जिस हिन्दू को मि० गेट के मतानुसार मर्दुम शुमारी वाले हिन्दू न लिखें उन्हें चाहिये कि वे मि० गेट के ऊपर अपमान की नालिश करें तब इस झगड़े का टंटा मिटैगा।

ब्राह्मणों की अच्छाई बुराई का विज्ञान मिस्टर गेट ने किस प्रकार कर लिया है यह यदि प्रगट कर दें तो ब्राह्मणों का एक बड़ा भारी विवाद मिट जाय। हम नहीं समझते मि० गेट नीच श्रेणी का ब्राह्मण किसे कहते है। यों तो ब्राह्मणों में कई विभाग है पर तो भी दो प्रसिद्ध विभाग हैं एक दान लेने और पुरोहिती कर्म्म करने वाले दूसरे इस कर्म्म से पृथक रहने वाले। इनमें से कोई किसी को ऊंच वा नीच नहीं कह सकता। क्योंकि समस्त ब्राह्मणों अन्त्यज पर्यन्त हिन्दुओं के यहां वृषोत्सर्ग का पुरोहित महा ब्राह्मण होता है और उसको सभी पूजते हैं क्या मि० गेट महा ब्राह्मण को नीच कहने वा ब्राह्मण न कहने की सामर्थ्य रखते है ?

यदि मि० गेट हिन्दुओं की पहिचान ब्राह्मणों की पुरोहिती पर मानते हैं तो उन्हें इसकी शिक्षा किसी महा ब्राह्मण से लेनी चाहिये क्योंकि महा ब्राह्मण के अर्थ हैं श्रेष्ठ ब्राह्मण और महा ब्राह्मण उन सब का पुरोहित है जिनके मुर्दों की दाह क्रिया होती है। बस हमारे राय में हिन्दुओं की दो पहिचान काफी है एक तो उनका दाह कर्म्म दूसरे महा ब्राह्मण की पूजा।

(५) बहुत से ब्राह्मण सिवाय ब्राह्मण के और किसी के हाथ का पानी नहीं पीते तो क्या ये लोग हिन्दू नहीं हैं? बहुत से ब्राह्मण जैसे बंगाली ब्राह्मण, मांस मछली खाते हैं इन का छुआ पानी भी इस प्रान्त के ब्राह्मण नहीं पीते तो क्या बंगाली ब्राह्मण हिन्दू नहीं हैं। इस प्रकार तो अपने को ब्राह्मण कहने वाले हिन्दू भी न रह जांय गे।

(६) छुआ छूत का विचार एक प्रान्त में एक प्रकार का दूसरे में दूसरे प्रकार का है। बंगाल प्रान्त तथा इस प्रान्त में प्रायः सभी लोग मोची को जूता नपाते समय छूते हैं। नापित को कहीं २ पर छू कर लोग नहा डालते हैं किन्तु गावों में ये पवित्र समझे जाते हैं यहां तक कि इनके हाथों से साने हुए आटे की रोटी सभी खाते है और कान्यकुब्ज जो किसी का छुआ नहीं खाते वे भी विवाहादि में नाउओं की छुई पूड़ी खाते हैं ऐसी दशा में क्या समझा जाय कहीं पर नापितों की गिनती हिन्दुओं में होगी और कहां पर वे ही हिन्दू भी न माने जांयगे?

अन्यथा एक प्रश्न और भी गम्भीर उपस्थित होता है। जो हिन्दू मि० गेट के वैषेशिक न्याय से हिन्दू न रह जांयगे तथा मुसलमान भी न होंगे उनके सम्पत्ति आदि के झगड़ों में किस कानून की व्यवस्था से काम लिया जायगा क्योंकि न वह हिन्दू ही रहेंगे न मुसलमान।

इन सब प्रश्नों को दूर कर यदि मि० गेट साफ़ २ यह कह दें कि वे हिन्दुओं की संख्या कितनी चाहते हैं और कितने हिन्दुओं की संख्या कम करने पर मुसलिम लीग का मतलब हल होगा तो बहुत से प्रश्न ऐसे बनाये जा सकते हैं जिनसे उनके मनोरथ की सिद्धि हो जाय।

मारवाड़ी और काबुली।

कलकत्ते में जब एक मारवाड़ी सज्जन को यह मालूम हुआ कि उसकी कोठी के पास एक ऐसे स्थान में गोवध करने का प्रबन्ध हो रहा था जहां उसकी जान में पहिले कभी गोवध नहीं हुआ था। तब उन्होंने क्या किया? उन्हीं लोगों से जो ऐसा करने वाले थे बिनती की कि वे ऐसा न करें। जब उन्होंने न सुना तब उस सज्जन ने क्या किया? मारवाड़ी चेम्बर आफ कामर्स से प्रार्थना की कि वे समय के प्रभुओं से प्रार्थना कर इस दुर्घटना को रोकने का प्रबंध करें। मारवाड़ियों की प्रार्थना निष्फल हुई, मारवाड़ी लड़ाई झगड़े से कोसों दूर रहते हैं। किन्तु जब उनको यह मालूम हुआ कि उनकी समाज के नेताओं की प्रार्थना निष्फल हुई तो यद्यपि यह शोचनीय है किन्तु आश्चर्य की बात नहीं कि इससे उनके चित्त में क्षोभ उत्पन्न हुआ। उपद्रव किस प्रकार से प्रारम्भ हुआ, इसके लिये कितना दोष मारवाड़ी या हिन्दुओं का है और कितना मुसल्मानों का इसका ठीक पता तभी लगेगा जब इस मामिले की पूरी छान बीन की जायगी जिसने न्याय के विरुद्ध आचरण किया होगा वह अवश्य उसके फल का भागी होगा। किन्तु सर्व साधारण मारवाड़ी तथा बड़े बाज़ार और हैरिसन रोड के महाजनों को इस बात की बड़ी शिकायत है कि उपद्रव के आरंभ होने पर उनको सर्कारी कर्मचारियों से वह रक्षा और सहायता नहीं मिली जो मिलनी चाहिये थी। यह कभी नहीं कहा जा सकता कि सब मारवाड़ी या सब बड़ा बाज़ार निवासी हिन्दू उपद्रव में किसी प्रकार से शामिल थे। ऐसी दशा में अंगरेज़ी गवर्मेंट की राजधानी में गवर्मेंट हौस से एक मील के भीतर इतने समय तक इस प्रकार का उपद्रव और लूट का होना गवर्मेंट के लिये वैसे ही कलंक का विषय है जैसा प्रजा के लिये दुःख और लज्जा का। हम आशा करते हैं कि इस बात की गवर्मेंट पूरी जांच करेगी कि उपद्रव के शांत करने में कितना अनुचित विलंब हुआ और क्यों? और इस बात की भी कि उपद्रवी अधिक संख्या के क्यों नहीं पकड़े जा सके। काबुलियों ने और गुंडों ने उपद्रव को कितना बढ़ाया और क्या २ अनर्थ किया इस बात की विशेष जांच होनी चाहिये।

मारवाड़ियों में असन्तोष।

यदि मारवाड़ियों में असन्तोष फैला है तो उस पर कोई आश्चर्य नहीं किया जा सकता। उनके

असंन्तोष के कई कारण हैं। उनको गवर्मेंट की ओर से वह सहानुभूति और सहायता जिसकी वे आशा करते थे, न मिलने से असन्तोष होना स्वाभाविक ही है। उनका यह संकल्प कि जब तक उनको यह निश्चय न करा दिया जायगा कि भविष्य में काबुली और गुंडों से उनकी पूरी रक्षा की जायगी और जहां पर गोवध इस वर्ष होने वाला था वहां कभी गोवध न किया जायगा तब तक वे अंगरेजी माल का मंगाना बन्द रक्खेंगे यह एक टेढ़ा संकल्प है। हमको निश्चय है कि कुछ समय तक यह संकल्प कायम रहेगा। हमको यह भी निश्चय है कि कुछ समय के पीछे यह टूट भी जायगा। किन्तु यदि इस दुर्घटना के परिणाम में हमारे मारवाडी भाई विदेशी माल के ढोने और बेचने वाले होने से संतुष्ट रहना छोड़ कर अपने असीम धन और उद्यम और बुद्धिबल को अपने देश में उन वस्तुओं को बनाने में लगाना सीख लें जिनको वे विदेशों से मंगवाते हैं, तो यह दुर्घटना निष्फल न जायगी।

मारवाड़ियों में बाहुबल।

एक दूसरा उपदेश जो मारवाडियों को इस घटना से मिलना चाहिये वह यह है कि उस पुरुष के धन और मान की कोई रक्षा नहीं कर सकता जो स्वयं उनकी रक्षा करने को समर्थ नहीं है।

हमारे मारवाड़ी भाई और सामान्य रीति से वैश्य मात्र शारीरिक बल की परवाह नहीं करते। वे कैसे सङ्कट के समय अपने धन और मान की, अपनी माता और बेटियों के मान की रक्षा कर सक्ते हैं। मारवाडी हो या देसवाडी—वैश्य हो वा ब्राह्मण किसी जाति का हो और किसी मत का, वह पुरुष शोचनीय है जो समय पड़ने पर दुष्टों के आघात से अपनी अपने प्राणियों को अपने घरों की रक्षा करने में अपना बाहुबल और अपना प्राण बल नहीं दिखा सक्ता। दुष्टों की शक्ति औरों को पीड़ा पहुंचाने के लिये होती हैं। किन्तु अन्याय को रोकने, अत्याचार को दबाने, आत्म-रक्षा तथा दीनों की रक्षा के लिये प्रत्येक साधु गृहस्थ को शारीरिक बल का संचय करना धर्म है। ईश्वर करे यह कलकत्ते की शोचनीय दुर्घटना हमारे मारवाडी भाइयों के हृदय में इस उपदेश की एक अमिट लीक डाल दे।

देश की दरिद्रता।

नीचे दिये हुए नकशे के देखने से मालूम होगा—कि एक भारतवासी और दूसरे स्वतन्त्र देश वासी की आय में क्या अन्तर है।*

वृटिश इण्डिया

१८६१ की मर्दुमशुमारी की संख्या २२१,३७६,६५७
१६०१ ,, ,, २३२,०७२,८३२
याने १० वर्ष में करीब ५ सैंकड़ा की बढ़ती हुई। १६०७-१६०८—२४०,१६५,३८१ याने ३॥ वर्ष में ३॥ फी सैंकड़ा की बढ़ती हुई। कुल आय ७१,००३,२७५, फी मनुष्यों की आय ५ शिलिंग ११ पेंश (४।')

युनाइटेड किंगडम

१६०८ जन संख्या	४४,५४६,८०३
कुल आय	१५६,५३७,६६०
फी मनुष्य की आय	३ पौंड १० शि० ३ पेंस ५२॥=)

* सरकारी रिपोर्टों के आधार पर यह लिखा जाता है।

Slatistical Report of British India No. 43.
Abstract of the united Kingdom No. 56.
Do- Do. of British colonies No. 45.
Do. Do. Foreign countries No. 43

१ पाउन्ड १५) के बराबर होता है।
१ शिलिङ्ग ।।।—) के बराबर होता है।
१ पेंस —) के करीब होता है।

ब्रिटिश साम्राज्य ।

नाम स्थान	जन संख्या १६०७	कुल आय १६०७ जून मास तक	फी मनुष्य की आय		
		पाउण्ड *	पा०	सि०	पेंस
न्यू साउथ वेल्स	१,५७३,२२४	१५,१५२,२०६	६	१२	७
विक्टोरिया	१,२५८,१४०	६,६६०,७६६	७	१४	०
साउथ अस्ट्रेलिया	३६६,०२८	३,७२१,०३४	६	७	११
वेस्टर्न अस्ट्रेलिया	२६३,८४६	३,८३७,६०४	१४	१०	१०
टसमानिया	१८४,००८	२,१८४,७१५	६	८	६
कीन्सलेण्ड	५४६,४६७	५,०७२,४७६	६	१४	४
डोमीनियन आफ न्यू जीलैण्ड	६४१,८२४	६,१४४,२६५	२	१६	७
नेटाल	१,१६४,२८५	३,४७१,६३२	३	१	५
केप आफ गुड होप	२,५०७,५००	७,७०१,१६२	१	१५	२
आरेञ्ज रिवर कलोनी	४४७,०८८	७८७,३२८	३	१२	६
ट्रांसवाल	१,२२२,३८५	४,४५०,८०७	२	१३	३
नार्थ अमेरिका	६,३८७,६५२	१७,०२०,०३४ (१६०५–६ जून ३०)			

यूरोपियन अन्य साम्राज्य ।

नाम	जन संख्या	कुल आय १६०७	फी मनुष्य की आय		
		पाउण्ड	पा०	सि०	पेंस
रसियन इम्पायर	(१६०५)....१४५,६५०,०००	३१५,५८४,०००	२	३	२
नार्वे	(१६०६).... ६,३४४,६५७	६,३४४,६५७	२	१४	८
स्वीडेन	(१६०७).... ५,३७८,०००	१०,७४३,०००	१	१८	१
डेनमार्क	(१६०७).... २,६३०,०००	७,०५६,६५६	२	१३	७
जर्मन इम्पायर	(१६०७).... ६२,०६७,०००	१२७,६५६,०००	२	१	१
बेलजियम	(१६०५).... ७,१६१,०००	२८,२५५,४००	३	१८	१०
फ्रांस	(१६०७).... ३६,२६७,०००	१५४,६४५,०००	३	१८	६
इटली	(१६०७).... ३३,६१०,०००	८६,६५२,००६	२	१२	१०
आस्ट्रिया	(१६०६).... २७,७२५,०००	८३,६८७,०००	३	०	४
हंगरी	(१६०६).... २०,४६६,०००	५६,५४६,०००	२	१५	३

अमेरिका में ताज।

अमेरिका की गति न्यारी है। यहां के धनाढ्य लोगों का हाल विलक्षण है। उन लोगों के चरित्र में दो बड़ी विचित्र बातें हैं। एक तो यह है कि अमेरिका में जितने धनवान पुरुष हैं वे प्रायः सभी बाल्यावस्था में पेट भर खाने को भी नहीं पाते थे अर्थात् वे लोग बड़े दरिद्र घरों में उत्पन्न हुए थे। दूसरी बात इनके विषय में विशेष यह है कि वे लोग मिन्टों के हिसाब से लाखों रुपए कमाते हैं और उसके साथही पानी की तरह अपना धन उपयोगी कार्यों में लगा देते हैं।

लुइस महाशय भी ऐसे धनाढ्य लोगों में से एक हैं। उनकी आय का कुछ ठिकाना नहीं है। इस द्रव्य को देश सेवा में लगाने के लिए उन्होंने कई ढंग निकाले इस समय हमें इन बातों में से केवल एकही दिखाना है कि लुइस साहब ने निश्चय किया है कि वे अपने शहर में भी हमारे आगरे की ताज की ठीक नकल खड़ी करेंगे। यह भवन वे महिलासमिति के कार्यालय के लिए अर्पण करेंगे। इसमें एक विशेषता और यह है कि वे बनायेंगे तो हमारे ताज की नकल पर उसका सामान अमेरिका ही में तय्यार करेंगे और बनाने वाले भी उन्हीं के बान्धव अमेरिका निवासी और उन्हीं की चित्रशाला के छात्र होंगे। इसी को सच्चा "स्वदेशी" और सच्चा स्वदेशानुराग और लक्ष्मी का सदुपयोग कहते हैं।

चित्र परिचय।

हमारा रंगीन चित्र किंचिन जंघा पहाड़ का है। यह किञ्चिन चिंगा के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह हिमालय पर्वत की सब से ऊंची चोटी है, इस पर सदा बर्फ जमी रहती है।

हंसवाहिनी का चित्र भारतीय चित्रकारी का एक अच्छा नमूना है, चित्रकार ने हंसवाहिनी की छाया पानी में बड़ी निपुणता से दिखलाई है। और सब चित्रों का हाल चित्र के नीचे दिया है।

भूल से "वेलकम क्लब" के नीचे "जंगलात का विभाग" छप गया है। जिस चित्र के नीचे वेलकम क्लब छपा है उसे जंगलात का विभाग समझना चाहिये।

क्षमा प्रार्थना।

पिछले अङ्क की बहुत सी त्रुटियों में सब से बड़ी यह त्रुटि थी कि उसमें प्रूफ संशोधन में बहुत सी गलतियां रह गई थीं और ये त्रुटियां विशेषकर पं० श्रीधर पाठक और मुन्शी देवीप्रसाद जी के लेख में थीं। हम उक्त दोनों सज्जनों से इसके लिये क्षमा चाहते हैं।

नौलखा हार।

इस नाम का एक बड़ा ही मनोहर और रोचक उपन्यास तीसरी संख्या से क्रमशः प्रकाशित होगा। पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने कृपा कर इसे मर्यादा में प्रकाशित होने के लिये लिखा है। इस कृपा के लिये हम और हमारे पाठक दोनों ही गोस्वामी जी के कृतज्ञ हैं। उपन्यास अच्छा होगा इसकी गरेन्टी इससे अधिक क्या हो सकती है कि गोस्वामी जी ने इसे रचा है।

प्रदर्शिनी।

इस पर नोट बहुत बड़ा होने के कारण स्थानाभाव से इस अङ्क में नहीं दिया जा सका, आशा है पाठक क्षमा करेंगे।

महामहोपाध्याय
पण्डित सुधाकर द्विवेदी

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग १] पौष-जनवरी सन् १९११ [संख्या ३

नौलखा हार।

सत्य घटना मूलक उपन्यास।

[लेखक-पं० किशोरीलाल गोस्वामी]

हार गायब !

"अतर्क्या कुट्टनी कूररचना हि विधेरपि।"

(कथा सरित्सागरे)

हमारे प्रिय पाठकों में से कदाचित् बहुतेरे सज्जन ऐसे भी होंगे, जो सन् १८६७ ई० की उस घटना से, जो बम्बई में हुई थी और जिसने केवल बम्बई ही नहीं, वरन् सारी दुनियां में हलचल मचा दी थी, भली भांति जानकार होंगे। बस, हमारा यह किस्सा सन् १८६७ ई० की २१वीं जून से प्रारम्भ होता है।

आज सन् १८६७ ई० की २१वीं जून है और दिन के दस बजे का समय है। रात भर मूसलधार पानी बरस कर इस समय खुल गया है और किरनें एक अनोखी छटा दिखला रही हैं। ऐसे समय में बम्बई के प्रसिद्ध धन कुबेर सेठ यमुनादास भाटिया के दरवाजे पर स्त्री पुरुषों से खचाखच भरी हुई गाड़ियां पर गाड़ियां आ रही हैं, जिनसे बाग का बहुत बड़ा हिस्सा भर गया है और राज प्रासाद के सदृश भाटिया जी का विशाल भवन भी स्त्री पुरुषों से ऐसा ठस गया है कि कहीं तिल रखने की भी जगह नहीं है।

हमारे प्रिय पाठक कदाचित् यह बात भली भांति जानते होंगे कि मुसलमानों के मुबारक कदम गुजरात प्रान्त में भरपूर नहीं जमे थे, इसीसे वहां परदे की चाल बिलकुल नहीं है और जैसे युरोपियन समाज में सब स्त्री पुरुष आपस में निःसङ्कोचभाव से मिल सकते हैं, उसी तरह गुजराती समाज में भी। यह बात वे सज्जन भली भांति समझ सकते हैं, जिन्होंने गुजरात या बम्बई, किंवा बम्बई प्रांत की सैर भली भांति की होगी और उनके विवाहादिक उत्सवों में सम्मिलित हुए होंगे।

सेठ यमुनादास जी का विशाल भवन उसी

है, जैसा कि कड़ोरपती धनाढ्य का विवाहादि उत्सवों के समय सजाया जाता है। क्योंकि सेठ जी की इकलौती लड़की गंगाबाई का विवाह है और इसी उत्सव के न्योते में उनके भाई बन्धु और बम्बई के नामी २ रईस अपनी २ स्त्रियों और बहू बेटियों के साथ सेठ जी के यहां आ रहे हैं।

बड़े २ आलीशान कमरों में कहीं पर स्त्री पुरुष बैठ कर आपस में बातें कर रहे हैं, कहीं पर कई पुरुष चहल कदमी करते हुए हँसी मज़ाक कर रहे हैं, कहीं पर केवल स्त्रियों का झुंड अपने मधुर हास्य से सुनने वालों का जी अपनी ओर खैंच रहा है और कहीं पर छोटे २ बच्चों का कुतूहल कुछ और ही रँग जमा रहा है। प्रयोजन यह है कि सभी स्त्री पुरुष निःसङ्कोचभाव से आपस में बात चीत कर रहे हैं और अपने सुखद सामाजिक जीवन से लोगों को यह बतला रहे हैं कि, 'यदि भारतवर्ष के पुराने सामाजिक भाव का कहीं लेशमात्र भी रह गया है तो केवल हमारी ही सोसाइटी में रह गया है और इसी समाज की छाया लेकर युरोपियन समाज की भीत खड़ी हुई है।' अस्तु।

सतमंजिले मकान के सब से नीचे के मरातिब में जो आंगन है, उसी में विवाह मंडप बनाया गया है और उसके पूरब तरफ वाले बहुत बड़े 'हाल' में दहेज की वे सब सामग्रियां इकट्ठी की गई हैं, जो सेठ यमुनादास जी अपनी इकलौती लड़की गंगाबाई को देने वाले हैं।

दहेज की उन सामग्रियों की लागत का कूतना यदि असम्भव नहीं, तो भी बहुत ही कठिन है और हमारी इस बात का अन्दाजा पाठक जन केवल एक इसी बात से कर सकते हैं कि उस दहेज की सामग्रियों में एक हीरे का हार ही ऐसा था जिसका मोल नौ लाख रुपए थे और इसीसे

सेठ यमुनादास जी उसी बड़े 'हाल' में समागत स्त्री पुरुषों को पारी २ से ले ले जाकर दहेज की सब चीजों को एक २ कर के दिखलाते और देखने वालों की 'वाह वाह' से मन ही मन गद्गद हुए जाते थे। यही हाल उनकी स्त्री जाह्नवी बाई का भी था।

यद्यपि इस उत्सव में बम्बई के बड़े २ लखपती और करोड़पती ही निमन्त्रित होकर आए थे, जिनकी बहू बेटियां और स्त्रियां लाखा ही के जड़ाऊ जेवर पहिने हुई थीं; पर सेठ यमुनादास का वह 'नौलखा हार' एक ऐसी अनोखी चीज थी कि जिसने उन सभों के जेवरों की रत्ती उतार दी थी और सभी स्त्री पुरुष उस अद्भुत हार की विलक्षण बनावट पर लट्टू हो टकटकी बांध कर उसे निरख रहे थे।

यह सब तो था ही; पर बहुत सी किशोरी कोमलांगी, सुन्दरी और धनवती स्त्रियों का एक वह गोल भी उसी हाल के बाहर एक तरफ़ बारामदे में जमा हुआ था, जिसे दहेज की चीज़ों या उस नौलखे हार के देखने की न तो कुछ पर्वा ही थी और न उसका कुछ खयाल ही था; क्योंकि वे सब अपने ही रँग में दीवानी हो रही थीं और अपने ही सिंगार-पटार, रूप-रँग, चमक-दमक और गहने-कपड़े की तरहदारी में डूबी हुई थीं। परन्तु इतना होने पर भी स्त्रियों का वह गोल पुरुषों से बिल्कुल सूना न था, वरन् कई नव-युवक भी वहां पर उपस्थित थे, जो उन स्त्रियों से बहुत ही सभ्यता और शिष्टता से बात चीत करते थे और उनमें ज़ाहिरा तौर पर कमीनापन जरा भी न था।

इसी गोल में एक कोमलांगी कुमारी भी थी, षोडशी जो युवती थी और जिसने अपने अनुपम सौन्दर्य से वहां पर उपस्थित समस्त सुन्दरियों को

किक रूप देखने वाले भावुकों के हृदय में यह भाव उपजा रहा था कि,—'क्या इससे भी बढ़ कर सौन्दर्य हो सकता है ? और क्या इन्द्र के अखाड़े की अप्सराएँ इससे भी विशेष रूपवती होंगीं !!!' अस्तु ।

इस किशोरी और कुमारी बाला का नाम ललिता था और यह सेठ यमुनादास के फुफेरे भाई और बाल्य बन्धु, धनिक श्रेष्ठ सेठ रनछोर लाल की इकलौती बेटी थी। उसी के बगल में एक चालीस बरस की एक प्रौढ़ा स्त्री भी खड़ी थी, जो उसकी बूआ अर्थात् रनछोर लाल की बाल-विधवा बहिन थी और नाम उसका रुक्मिणी था ।

सेठ रनछोर लाल की स्त्री न थी, केवल एक मात्र कन्या ललिता ही उनकी अगाध सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी थी; और वही ललिता अपनी बूआ के भी विपुल धन की स्वामिनी होने वाली थी।

यह बात हम अभी ऊपर लिख आए हैं कि सुन्दरी ललिता षोड़शी और कुमारी थी । वह एक ओर कुछ देख कर उस गोल से निकली और कई पग चल कर एक बरामदे में पहुंची, जिसके एक तरफ बहुत बड़ा बाग था और दूसरी ओर बड़ा हाल था, जिसमें विवाह के दहेज की साम-ग्रियां एकत्र की गई थीं ।

तो, ललिता किस चीज को देख कर इस बरामदे में आई थी । सुनिए ! वह एक बाईस बरस का बहुत ही सुन्दर नव-युवक था, जिसे अभी तक डाढ़ी या मूछें नहीं आई थीं । वास्तव में वह नव-युवक इतना सुन्दर था कि यदि उसे ज़नानी पोशाक पहराई जाती तो वह सुन्दरता में ललिता को भी मात करता। नाम उसका घनश्याम था और इसी को उस बरामदे में देख ललिता उस की ओर आई थी ।

घनश्याम ने ललिता को देख और मुस्कुरा कर ... कहा,—" तुम से इस समय, यहां पर, यों, अनायास भेंट हो जायगी, इस बात का मुझे स्वप्न में भी विश्वास न था ।"

ललिता ने सरसरी नज़र से इधर उधर देख कर कहा,—"मैं भी यही बात कहा चाहती थी।"

घनश्याम,—"अस्तु, यह लो; यह तुम्हारे बहुत बड़े आग्रह की वस्तु है ।"

इतना कह कर उसने ललिता के दाहिने हाथ की अनामिका अङ्गुली में एक बहुत ही सुहावनी अँगूठी पहिना दी, जिसमें चने की दाल बराबर एक खुश रँग मानिक जड़ा हुआ था ।

उस अँगूठी के नगीने की ओर कई सेकेण्ड तक खूब ध्यान से देख कर ललिता ने कहा,—"किन्तु इसके भीतर तुम्हारी तसवीर तो दिखलाई ही नहीं देती ?"

घनश्याम ने कहा,—"वह आईग्लास से देखने पर दिखलाई देगी ।"

बात यह है कि ललिता के बहुत आग्रह करने पर घनश्याम ने अपनी तसवीर उस अँगूठी में मानिक के नीचे जड़ कर उसे ललिता की नज़र की थी ।

यह बात हम कह आए हैं कि ललिता सुंदरी और षोड़शी युवती थी, पर वह अभी तक कारी ही थी; क्योंकि बम्बई के भाटियों में बाल्य-विवाह की घृणित प्रथा नहीं है । यद्यपि ललिता के इतनी उमर तक कारी रहने से उसके समाज में तो कोई दोष नहीं आता था, पर इस बात पर लोगों को बहुत ही आश्चर्य होता था कि बड़े २ धन-कुबेरों को, जो कि ललिता के लिए लालायित हो रहे थे, सेठ रनछोरलाल बराबर कोरा जवाब क्यों देते जाते थे ! अस्तु ।

ललिता ने कहा,—"उस नौलखे हार को तुम ने देखा ?"

घनश्याम,–"हां; निस्सन्देह, वह एक अनोखी चीज है।"

ललिता,–"सचमुच, वैसी बनावट का हार मैंने अब तक नहीं देखा था।"

इतने में सामने की ओर देख कर एकाएक घनश्याम का मुँह झांवला पड़ गया और उसने उस तरफ अङ्गुली का इशारा करके ललिता से कहा,–"वह देखो बड़े 'हाल' के काने वाले दरवाजे पर तुम्हारे पिता खड़े हैं।"

ललिता यह सुन और उस ओर देख कर कुछ पीला पड़ गई, पर उसने तुरन्त अपने उस भाव को दूर किया और दृढ़ता के साथ कहा,–"कुछ चिन्ता नहीं, मैं अब नादान नहीं हूँ। यद्यपि उन्होंने तुमसे बोलने या भेंट करने को कल मना ही कर दी है, परन्तु कुछ चिन्ता नहीं; बुआ जी मेरी ओर हैं।"

यों कह कर उसने दूर पर खड़ी हुई अपनी बूआ की ओर अङ्गुली का इशारा करके घनश्याम को दिखला दिया, जिसे देख कर उस (घनश्याम) ने कहा,–"हां, उन्हींने मुझे भी ढाढ़स दिया है। हाय, ललिता! यदि तुम करोड़पती की लड़की न होकर किसी दरिद्र के घर जनमी होतीं तो आज दिन मुझे तुम्हारे पाने के लिए इतनी चिन्ता कभी न करनी पड़ती। हा हन्त, तुम्हारे पिता ने कल दोपहर के समय, जब कि मैं तुमसे मिल कर जाना चाहता था, मुझे अपने कमरे में बुला कर खूब डाटा और यों कहा कि,–'अभागे! तू आज से मेरे घर न आइयो; और ललिता के पाने की आशा से हाथ धो बैठ; क्योंकि जब मैंने उसका ब्याह बड़े २ धन-कुबेरों के यहां नहीं किया है, तो ऐसी अवस्था में तू एक निर्धन और सामान्य चित्रकार होकर किस बिरते पर मेरी कन्या के पाने की आशा करता है?' बस, उनकी फटकार सुन कर मैं चुपचाप वहां से चला आया। यही कारण था कि मुझे यहां पर तुमसे भेंट होने की कुछ भी आशा न थी।"

ललिता ने कहा,–"पिता जी ने जो तुम्हें झिड़की दी थी, यह मुझे मालूम है; क्योंकि उन की वे बातें मैं अपने कानों से सुन चुकी हूँ। उसके बाद ही उन्होंने मुझे भी अपने पास बुलाया था और तुमसे मिलने या बात चीत करने का निषेध किया था; परन्तु मेरी बूआ जी ने मुझे बहुत कुछ भरोसा दिया है और उन्हीं के भरोसे पर निर्भर होकर मैं निर्भय हो तुमसे बातें कर रही हूँ।"

इतने ही में एक स्थूलांगी युवती टहलती हुई ललिता के पीछे आ खड़ी हुई थी, जिसे देख और कांप कर घनश्याम ने धीरे से कहा,–"धीरे, बोलो; देखो, तुम्हारे पीछे एक स्त्री आकर खड़ी हुई है कदाचित् उसने तुम्हारी बातें सुन ली होंगी। अस्तु, अब इन बातों का जिक्र इस समय रहने दो।"

यह सुन कर और घूम कर ललिता ने उस स्थूलांगी युवती की ओर देखा, पर उसे न पहिचान कर फिर वह घनश्याम की ओर घूमी और बोली,–"मेरी बुआ जी ऐसा ही एक हार मुझे भी बनवा देना चाहती हैं।"

इस बात का जवाब घनश्याम कुछ भी न देने पाया, क्योंकि वह स्थूलांगी युवती स्वयम् ललिता की ओर मुख़ातिब होकर कहने लगी,–"वास्तव में वह एक अद्वितीय हार है। मेरी इच्छा है कि मैं भी अपने लिए एक वैसा ही हार बनवाऊं।"

इतने ही में आंगन की ओर से एकाएक बड़ा कोलाहल सुन पड़ा, जिसे सुन कर सब के सब उसी तरफ झुके। ललिता और घनश्याम भी आंगन की ओर चले वह स्थूलांगी युवती थी। पर थोड़ी ही दूर आगे पर यह बात सुनाई दी कि 'विवाह मण्डप में न जाने क्यों कर आग लग गई...

तुरन्त बुझा दी गई ।' यह सुन कर लोग आपस में इस अशकुन पर तर्क वितर्क करने लगे, परन्तु उनके तर्क वितर्क में एकाएक बाधा पड़ गई और उस बड़े हाल में, जिसमें दहेज की सामग्रियां सँजोई गई थी, बड़ा हल्ला मचा, जिससे अशकुनवाला तर्क न जाने किधर उड़ गया।

फिर तो सभी स्त्री पुरुष उसी बड़े हाल की तरफ झुके, इतने ही में लोगों ने क्या देखा कि बड़े हाल के बीच वाले दरवाजे पर खड़े हुए सेठ यमुनादास अपने मित्र और बन्धु रनछोरलाल से यों कह रहे हैं कि,—"हाय २ वह 'नौलखा हीरे का हार' अभी अभी, देखते देखते, न जाने किधर उड़ गया ! मैंने उसके बनवाने में बड़े रुपए खर्च किए थे और उसमें के 'एकसौनौ' हीरे, जो बिलकुल एक ही से थे, बड़ी २ कठिनाइयों से, कई बरसों में इकठ्ठे किए गए थे । हाय, मैंने बडे हौसले से वह हार इन दहेज की सामग्रियों में इस लिए रक्खा था कि मेरे बन्धुजन इसे देख कर प्रसन्न हों; परन्तु हा, वह हार गया किधर ! और इस सभ्य एवम् धनिक मण्डली में ऐसी निकृष्ट प्रकृति का पिशाच कहां से आ मरा, जिसने ऐसा नीच कर्म किया !"

सेठ यमुनादास के मुख से ऐसी अनहोनी बात सुन कर एक बेर तो उस भीड़ में सन्नाटा छा गया, पर फिर तुरन्त ही एक संग सैकडों स्त्री पुरुष एक साथ ही यों बोल उठे कि,—"हाय, हाय, यह तो बड़ा गजब होगया—उस चोर को पकड़ना चाहिए—सब उपस्थित व्यक्तियों की तलाशी लेनी चाहिए—पकड़ना चाहिए उस पापी को—इत्यादि, इत्यादि ।"

घनश्याम ने ललिता से, जो उसके बगल में ही खड़ी थी, घबरा कर कहा,—"हाय हाय, यह कैसा अनर्थ हो गया ? ऐसा खोटा काम किस नीच ने किया ? यहां पर ऐसा पापी है कौन ?"

इतने ही में ललिता की नज़र जो सामने की ओर गई तो उसने थोडी ही दूर पर अपने पिता को अपनी ही ओर क्रोध से घूरते हुए देखा और फिर उसने घनश्याम की ओर इशारा करके कहा,—

"यह देखो, पिता हम लोगों की ओर देख रहे हैं ।

यह सुन घनश्याम ने उधर देखा तो रनछोर लाल को उसी तरह लाल २ आंखों से अपनी तरफ निहारते देखा । यह देख कर उसने धीरे से ललिता से कहा,—

"अब हमारा तुम्हारा यहां पर एक साथ रहना ठीक नहीं ।"

ललिता,—"ठहरो, घबराओ नहीं । (सामने फिर देख कर) हैं, पिता गए किधर ?

घनश्याम,—"हां, अब तो वे वहां पर नहीं हैं ! (ठहर कर) लो, वे फिर न जानें किधर से अपने ठिकाने पर पहुंच गए ।"

यह सुन कर ललिता ने भी देखा कि उसके पिता सेठ यमुनादास के साथ धीरे २ कुछ बातें कर रहे हैं !

थोडी देर में लोगों ने क्या देखा कि सेठ रनछोर लाल उसी हाल के बीच वाले दरवाजे पर एक स्टूल के ऊपर खडे हो गए और उस भीड़ की तरफ देख और अपने दोनों हाथ उठा कर जोर २ से यों कहने लगे,—

"मैं अपने मित्र और बाल्य बन्धु श्रीमान् सेठ यमुनादास जी की ओर यहां पर इस समय उपस्थित समस्त मान्य स्त्री पुरुषों से क्षमा चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि आप लोग इस हार की चोरी का अपवाद अपने ऊपर कदापि न समझेंगे । तथापि यह निश्चय है कि इस सभ्यमण्डली में कोई पापी चोर सभ्यता का जामा पहिर कर अवश्य आ घुसा है और उसने समस्त उपस्थित

सज्जनों के मान को कलङ्कित करने के लिए ऐसा घोर-कुकर्म किया है। अतएव मैं आशा करता हूँ कि आप लोग अपने २ मन से इस उपस्थित अनर्थ के क्षोभ को दूर करके ऐसा यत्न करेंगे कि जिसमें मैं उस चोर को गिरफ्तार करने में समर्थ होऊँ। यदि इस काम में आप लोग मेरी सहायता करेंगे तो मैं निश्चय उस पतित चोर को सब के सामने पकड़ लूँगा और ऐसा होने से आप सब महामान्य महोदयों का भी मुख उज्वल होगा।"

यद्यपि उस समय वहां पर लगभग दो सहस्र स्त्री पुरुष तथा बालक-वृन्द उपस्थित थे, परन्तु इस अचिन्तनीय घटना और सेठ रनछोर लाल की ओजस्विनी वक्तृता से वहां पर ऐसा सन्नाटा छाया हुआ था कि यदि उस समय वहां पर सूई भी गिरती तो उसका भी हलका शब्द सुनाई देता। यहां पर यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि जब तक सेठ रनछोर लाल बोलते रहे, उन्होंने कई बार तीखे नयनों से अपनी लड़की और घनश्याम की ओर भी देखा था।

निदान, अपना वक्तव्य समाप्त करके वे स्टूल से उतर पड़े और साथ ही उन्होंने सेठ यमुनादास के प्यादों को यह हुक्म दिया कि,—"मकान का सदर फाटक बन्द कर दिया जाय और बिना हमारी आज्ञा के कोई व्यक्ति यहां से बाहर न जाने पावे।"

यद्यपि यह बात वहां पर उपस्थित सज्जनों में से बहुतों को बहुत ही बुरी लगी, किन्तु उस नौलखे हार की विलक्षण चोरी का ख़याल करके लोग अपना २ क्रोध अपने २ मन ही में दबा कर रह गए।

सेठ रनछोर लाल की आज्ञा का पालन तुरंत किया गया और सदर फाटक बंद करके बीसों प्यादे मकान के चारों ओर बाग में चौकसी के लिए मुस्तैद होगए।

इतने ही में फिर रनछोर लाल ने अपनी ढीठ लड़की और निरंकुश घनश्याम की ओर लाल २ आंखों से घूर कर देखा, क्योंकि वे दोनों अब भी पास ही पास खड़े थे। परन्तु इस बार घनश्याम रनछोर लाल की क्रोध भरी दृष्टि से कुछ कांप उठा और मुख पर पसीने के आ जाने से उन्हें पोछने के लिए अपने पार्सी कोट के बाईं तरफ़ वाले पाकेट से झटके के साथ रुमाल खैंचा और उससे अपने चेहरे का पसीना पोछना शुरू किया।

परन्तु इस रुमाल के खैंचने से जो एक अद्भुत काण्ड हो गया, उसकी घनश्याम को कुछ खबर ही न थी! अर्थात् ज्यों ही उसने अपने जेब से रुमाल खींचा, त्यों ही उसके साथ ही साथ एक चीज और उसके जेब से निकल कर धरती पर गिर पड़ी, जिसे ललिता ने देखा; और देखते ही चट उसने अपने हाथ का पङ्खा गिरा कर उस (पङ्खे) के उठाने के मिस से घनश्याम के जेब में से गिरी हुई उस चीज को उठा कर अपने जाकेट के पाकेट के हवाले किया। इसके बाद उसने चारों ओर घूम कर यह बात जान ली कि "मेरी इस कार्रवाई को किसी ने नहीं देखा!

इस बात के लिखने में जितना समय लगा है, उसका हजारवां हिस्सा भी उस कार्रवाई में नहीं लगा था; अर्थात ज्यों ही वह वस्तु घनश्याम के जेब से धरती पर गिरी त्यों ही चटपट ललिता के जेब के अन्दर जा पहुंची।

तो वह वस्तु कौन सी थी?—सुनिए—वह वस्तु वही नौलखा हार था, जिसके चोरी जाने की धूम इस समय सेठ यमुनादास के यहां मची हुई है और सब लोग इसी ताक में हैं कि,—"देखें, रनछोर लाल वह बहुमूल्य हार क्यों कर बरामद करते हैं!!!"

(क्रमशः)

सूर और श्याम ।

[लेखक-लाला भगवान दीन]

"सम्पादक लक्ष्मी"

(१)

ज्यौं पुत्र-प्रति-अनुरागिनी, माता न सुत को छोड़ती ।
जैसे लवाई धेनु सब, आपत्ति सुत हित ओढ़ती ॥
अनुकूल नायक ज्यौं सदा, निज भामिनी के संग है ।
निज भक्त प्रति भगवान का, त्यौंही प्रसिद्ध प्रसंग है ॥

(२)

ज्यौं जरा-बाधित वृद्ध नर, निज यष्ठिका छोड़ै नहीं ।
जैसे सुनेही प्रेम पथ से, तनक मुख मोड़ै नहीं ॥
ज्यौं सती-मन सर्वदा, रहता स्वपति के संग है ।
निज भक्त प्रति भगवान का, त्यौंही प्रसिद्ध प्रसंग है ॥

(३)

ज्यौं कामिनी की चाह में, रहता सदा कामी पड़ा ।
ज्यौं लालची कंजूस का, मन द्रव्य पर रहता अड़ा ॥
सुत नारि धन पर ज्यौं गृही, का ध्यान नित्य अभंग है ।
निज भक्त प्रति भगवान का, त्यौंही प्रसिद्ध प्रसंग है ॥

(४)

जैसे कृषक तन मन लगा, रक्षा करै निज खेत की ।
पाखंडियों को स्वार्थ हित, ज्यौं ताक व्यक्ति अचेत की ॥
विज्ञानियों की दृष्टि जैसे, कार्य कारण संग है ।
निज भक्त प्रति भगवान का, त्यौंही प्रसिद्ध प्रसंग है ॥

(५)

ज्यौं नायिका उत्कंठिता, पिय मिलन हित उत्सुक रहै ।
अभिसारिका ज्यौं विवश हो, संकेत-थल का पथ गहै ॥
ज्यौं अनुशयाना वाम का, थळ-नाश-शोच अभंग है ।
निज भक्त प्रति भगवान का, त्यौंही प्रसिद्ध प्रसंग है ॥

(६)

संसार में रोगी नहीं, तो वैद्य का क्या मान हो ?
होवे न सुत, उस पर कहो, कैसे जनक का भान हो ?
बिन अंधकार कहो भला, कैसे प्रभा का ज्ञान हो ?
हो भक्तिभावाभाव तो, कैसे भला भगवान हो ?

(७)

श्री कृष्ण-लीला-धाम को, जब जा रहे थे सूर जी ।
(सौन्दर्य्य की माधुर्य्य की, छाई छटा चहुँ ओर है ।
लाखों करोड़ोंका अभी, बसता जहां चितचोर है) ॥

(८)

यौं बावली सी मति हुई, रससिंधु जी की चाह में ।
पथ भूल कर वे जा गिरे, इक अंध-कूप अथाह में ॥
हे कृष्ण केशव कृष्ण केशव, प्रेम से रटते रहे ।
छाके रहे प्रभु प्रेम में, दिन रात यौं कटते रहे ॥

(९)

दिन तीन बीते कूप में, तब कृष्ण ने आकर कहा ।
है कौन अंधे कूप में, क्यौं व्यर्थ बक बक कर रहा ॥
ले हाथ यह मेरा पकड़, मैं खींच लूं ऊपर तुझे ।
यह व्यर्थ का बकवाद तेरा, है नहीं भाता मुझे ॥

(१०)

ये बैन बांके कृष्ण के, जब सूर के कानों पड़े ।
उनको लगे मीठे बहुत, यद्यपि रहे नी-रस कड़े ॥
निज हाथसे जब कर धरा, कोमल अलौकिक जँच पड़ा ।
आ कूप ऊपर ज्यौं किया, कुछ सोचकर पंजा कड़ा ॥

(११)

त्यौंही झिटिककर कर भगे, नूपुर बजे ध्वनिसे भली ।
पट-छोर तन से छू गया, तन में उठी पुलकावली ॥
बनमाल-पुष्प-सुगंध-युत, जब वायु भी कुछ बह चली ।
तब तो अहो वहीं खिल उठी, श्री सूरके दिल की कली ॥

(१२)

हे कृष्ण प्रिय ! चितचोर जी, जाते कहां हो भाग के ?
मुझ दीनके आधार तुम, तुमही सुफल अनुरागके ॥
यौं दीन निर्बल जानकर, क्यौं आप हौ जाते भगे ।
इस सूर की लकुटी तुम्हीं, इस हीनके तुम ही सगे ॥

(१३)

हे कृष्ण प्यारे तुम मुझे, ज्यौं जरासंध न जानना ।
या कालयवनसमान पुनि, मुझको कदापिं न मानना ॥
छल कपट कर इनसे भले, तुम भागकर बचते रहे ।
पर नाथ भग सकते नहीं, अब आप यौं मेरे गहे ॥

(१४)

हां कर झिटिककर यौं भले, इसहाथसे छुट जाइये ।

पर चित से भगो निकल, तब बीर तुमको जानिये।
श्री नंद रानी ने पिलाया, दूध उत्तम मानिये॥

(१५)

यह सूर की वचनावली, पागी अलौकिक प्रेम की।
ठिठके खड़े सुनने लगे, मर्य्याद लांघी नेम की॥
मुख मोड़ हेरे सूर दिशि, दै दिव्य दृग दर्शन दिये।
सुन्दर अलौकिक वह छटा, लै सूर ने धारी हिये॥

(१६)

पटपीतकीफहरानिवह, मुख-छवि-छटाछहरानिभी।
धावनि अलौकिक बेगकी, बनमालकी लहरानिभी॥
हिय में सुभागी सूर के, दृग-मग तुरत ही धँस गई।
मधुमें फँसै ज्यौं मक्षिका, मति छबिछटा में फँस गई॥

(१७)

शिर मोरपंखों की झुकनि, उझकनि रसीले नैनकी।
चमकनिसचिक्कणकचनकी, ठमकनिसुचंचलपगनकी॥
झमकनि अमोलबुलाककी, दमकनिसुदंतनकी भली।
देहान्त तक श्रीसूर के, चितसे न छन भर को टली॥

(१८)

यौं सूर ओर बिलोकती, यह मूर्ति कृष्ण कृपालकी।
दे मोद वाचक वृन्द को, काटै व्यथा जग जाल की॥
है 'दीन' की विनती यही, बर विज्ञ वाचक वृन्द से।
छल छोड़ सत्य सुप्रेम कीजै, राधिका नँदनन्द से॥

हमारी श्रोत्रेन्द्रिय।

बनावट।

ज्ञान प्राप्त करने का कान भी एक द्वार है। केवल बाहर से देख कर हम लोग इस अद्भुत इन्द्रिय के विचित्र दो कलों और पुर्जों को नहीं देख सकते हैं। साधारणतः जिसको हम लोग 'कान' कहते हैं, वह इस श्रोत्रेन्द्रिय का एक छिद्र मात्र है; इस के भीतर पेचीले, घुमावदार रगों के पतले पतले अनेक मार्ग हैं। इन रगों में से कितने तो केवल वायु से पूरित रहते हैं किन्तु शेष में जल के सदृश एक प्रकार का द्रव पदार्थ भरा हुआ रहता है। बहुत से छिद्रों के मुख पर पतले झिल्लीदार पर्दे लगे हैं; यदि उन पर किसी वस्तु का कुछ भी आघात पहुंचता है, तो वे उसी प्रकार कांपने और सनसनाने लगते हैं, जैसे अंगुली या लकड़ी से बजाये जाने पर खँजड़ी या ढोल के ऊपर का चमड़ा कांपता और गूंजता है। इन झिल्लीदार पर्दों में दो ऐसे भी पर्दे हैं, जिनके एक छोर से सूक्ष्मातिसूक्ष्म कुछ अस्थि-पंजर निकले हैं; इनकी बनावट जेबी घड़ी के जंजीर के सदृश है, और उसी के तरह ये लचीले भी हैं। ये अस्थि-पंजर उन दोनों पर्दों को आवश्यकतानुसार कड़ा या ढीला करने का काम देते हैं। जिस प्रकार ढोल या खंजड़ी बजाने के लिये अंगुलियों से उन के चमड़े पर आघात करना पड़ता है, कुछ २ उसी तरह ये अस्थि-पंजर उन पर्दों पर सर्वदा मंद मंद आघात किया करते हैं। इसी से उन में प्रकंपन होता है, जिससे स्वरोत्पत्ति होती है। जिस प्रकार सितार, बीणा, सारंगी इत्यादि वाद्य-यंत्रों में तार लगे रहते हैं, उसी प्रकार हमारी श्रोत्रेन्द्रिय के अत्यन्त आभ्यंतरिक भाग से बहुत पतले २ तागे के सदृश कुछ स्नायु-पुंज निकले रहते हैं, और इन सब का संबंध हमारे मस्तिष्क के गूदे या दिमाग से है, जो मनुष्य का ज्ञान-भंडार है और जिसमें उसकी चेतना-शक्ति का निवास है। जिस प्रकार तार-रहित वीणा इत्यादि यंत्रों से स्वर नहीं निकल सकते हैं, उसी प्रकार इन आभ्यन्तरिक स्नायु-समुदाय के अभाव से, अथवा उनके निर्बल पड़ जाने से मनुष्य को शब्द-ज्ञान कुछ भी नहीं होता है।

(अ) कान का बाहरी शंखाकार भाग (conche); (व) कान का बाहरी छिद्र (External Auditory Meatus); (स) झिल्ली (Tympanic Membrane;) (द, य) बाहरी और भीतरी अस्थि-पंजर (ossicles or chain of bones); जिन का संबंध 'स' और 'स' दो झिल्लीदार पर्दों से है; (ज, य, फ) अर्द्ध वृत्ताकार सम्मुख, पीछे,

श्रीमान दादाभाई नारोजी।
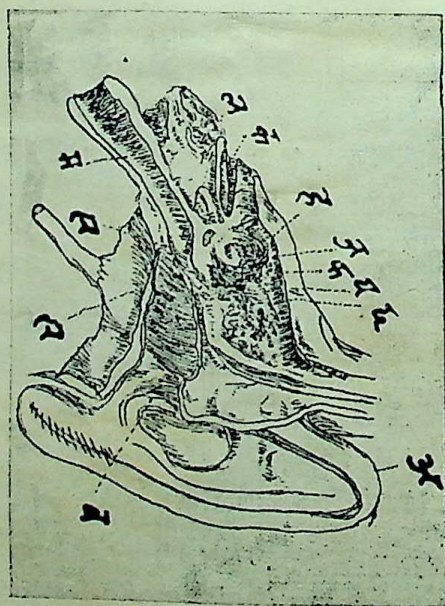
वाम श्रोतेन्द्रिय का चित्र।

अभ्युदय प्रेस प्रयाग।

श्रोर बाहर के वायु-जल-पूरित रग-समूह (Semi-circular canals); (ल) पेंचदार रग-समूह (cochlea); (म) झिल्ली से कान के मुख तक का मार्ग (Eustachian Tube); (क) स्वर-संचारक; स्नायु-पुंज (The Fibers of the Auditory Nerve);

स्वरोत्पत्ति के कारण।

स्वरोत्पत्ति के लिये यह आवश्यक है, कि किसी दृढ़ द्रव अथवा वायु पदार्थ में कुछ प्रकंपन उत्पन्न किया जाय। छोटी पीतळ की घंटी में लोह को हिलाने से घंटी के धातुवाली दीवार (दृढ़ पदार्थ) में प्रकंपन प्रारंभ होता है, इसी से स्वर निकलता है। वर्षाऋतु में जब जलधारायें परस्पर टकराती हुई, समुद्राभिमुख आगे बढ़ती हैं, तब स्रोतों (द्रव) से भयंकर प्रचंड शब्द सुन पड़ते हैं, तोपों के दगने पर के भयंकर नाद, अथवा बांसुरी में के मधुर स्वर वायु के ही प्रकंपन से उत्पन्न होते हैं। पुनः जब स्वर एक बार उत्पन्न हो गया, तब वह किसी दृढ़, द्रव अथवा वायु-मार्ग से बहुत दूर तक फैळ सकता है। स्वर की गति दृढ़ की अपेक्षा द्रव में, और द्रव की अपेक्षा वायु में विशेष होती है।

श्रोत्रेन्द्रिय के कुछ पुर्जों के कार्य्य।

सर्वज्ञ विधाता ने स्वरोत्पत्ति के हेतु मनुष्य की श्रोत्रेन्द्रिय में दृढ़, द्रव, और वायु, ये तीनों पदार्थ यथा-स्थान बना रक्खे हैं। हमारे श्रवण-छिद्र की दीवार धातु-घंटिका की दीवार के सदृश स्वर उत्पन्न कर उन्हें वह आभ्यन्तरिक घुमावदार तथा द्रव और वायु से भरी रगों (ज, य, फ और ळ) में पहुंचाती है। ये स्वर उनमें पहुंच कर वहां के द्रव और वायु पदार्थों में मंद २ आघात पहुंचाते हैं इस कारण उन में प्रकंपन प्रारंभ हो, वैसी ही लहरें उत्पन्न होती हैं, जैसी नौका पर से मल्लाहों के डांड़ों के खेने पर नदी की जळ-धारा में। ये लहरें पूर्वोक्त झिल्लीदार पर्दों पर आघात पहुंचाती हैं, जिनके आगे-पीछे दो वायु-पूरित (व और म) कोठरियां हैं, अर्थात् एक तो वह, जो हमारी श्रोत्रेन्द्रिय से बाहर की ओर, और दूसरी वह जो भीतर की ओर (हमारे मुख में, कंठ के समीप) खुली रहती है। उपर्य्युक्त रगों में द्रव की लहरों के टकराने से इन दोनों स्थानों के वायु-मंडल में भी प्रकंपन प्रारंभ हो जाता है। इन्हीं प्रकंपनों का प्रभाव उस स्नायु-समुदाय पर पड़ता है, जिसका संबंध हमारे कपाल-स्थित ज्ञान-भंडार के गूदे से है; अस्तु, इन्हीं ज्ञान-तन्तुओं द्वारा स्वर हमारे मस्तिष्क में पहुंच कर हमारी चेतना को अपने आगमन की सूचना देते हैं। सुतरां हम लोगों की श्रोत्रेन्द्रिय की उपमा उस धातु घंटिका से दी जा सकती है, जिसके अधोभाग में कुछ जल, और शेष में वायु भरा हो। यदि इस घंटिका की दीवार पर किसी वस्तु से आघात किया जाय, तो एक स्वर उत्पन्न होगा, और यह स्वर केवल दृढ़ पदार्थ पीतल ही के प्रकंपन से नहीं उत्पन्न होता है, किन्तु उसी के साथ २ घंटिका के जल, तथा तदुपरि वायु के प्रकंपन भी उपर्य्युक्त स्वरोत्पादन के हेतु हैं।

श्रोत्रेन्द्रिय की अँधेरी गुफा।

चक्षु-इन्द्रिय की अपेक्षा श्रोत्रेन्द्रिय विषयक ज्ञान विद्वानों को अभी कम प्राप्त हैं। नेत्र तो केवल एक ही अति स्वच्छ तथा प्रकाश की निर्मल किरणों से भरी कोठरी है। हम लोग इस कोठरी को खोल कर यथा-तथ्य देख सकते हैं, तथा इसमें के प्रत्येक पुर्जे पर प्रकाश का जैसा २ प्रभाव पड़ता है, उसे मालुम कर सकते हैं। हमारी श्रोत्रेन्द्रिय में तो अनेक प्रकाशहीन अंधेरी गुफायें हैं; इसमें की पेंचीली रगें और स्नायु-पुंज बहुत घूम फिर कर मस्तिष्क-गढ़ में पहुंचती हैं। प्राचीन काल के दुर्गों में के अंधेरे और प्रकाशरहित कारागारों के सदृश हमारी श्रोत्रेन्द्रिय की गुफायें और कोठरियां हैं, तथा गढ़ों ही के भू-गर्भ-मार्गों के सदृश इसमें की द्रव और वायु भरी नितान्त प्रकाश-हीन और अन्धकार-मय रगें हैं। हम लोग केवल इतना ही कह सकते हैं, कि इन्हीं प्रकाश-हीन श्रोत्रीय गुफाओं के द्वारा हम लोगों की आत्मा को शब्द-

ज्ञान होता है। जिस प्रकार नेत्र के प्रकाश-किरणाच्छादित निर्मल मंदिर में आत्मा, आसन लगाये, भूमंडल-खचित चित्र-विचित्र के दृश्यों और अद्भुत २ लीलाओं की समीक्षा किया करता है, प्रायः उसी प्रकार, किन्तु परिवर्तित अवस्था में, अर्थात् इस प्रकाश-हीन कारागृहवत् गुफा में आवृत हुई वही आत्मा, बन्दी-गृह निवासियों की भांति, प्रत्येक ज्ञान-तन्तुरूपी पहरेदारों से इस बाह्य-संसार के नये २ समाचारों के जानने की चिन्ता किया करता है। जिस प्रकार यह कहा जाता है, कि कृतयुगादि में मनुष्य देव-वाणी सुना करते थे; किन्तु यह वे नहीं जानते थे, कि वह ध्वनि कहां से, और कैसे उनके श्रवण-पुट में आ रही है, कुछ उसी प्रकार, पूर्व युगों के मनुष्यों के सदृश, प्रकाश-हीन श्रवण-गुफाओं में आवृत हमारी आत्मा को शब्द-स्वर का ज्ञान होता है। सारांश यह, कि बाह्यभू-मंडल के अनेक प्रकार के स्वर किसी रीति से इन्हीं अदृश्य मार्गों द्वारा हमारी आत्मा तक पहुंचते हैं।

शब्द की महिमा।

अस्तु, ऐसी विचित्र हम लोगों की यह श्रोत्रेन्द्रिय है। एक तरह पर हमारी चक्षु-इन्द्रिय की अपेक्षा यह अधिकतर पूर्ण और महत्व की (मानुषिक) इन्द्रिय है। मनुष्यों का सार्थक शब्द ही उनको मनुष्य-पद दिये है। नेत्र और घ्राण की शक्ति तो मनुष्यों में भी प्रायः वैसी ही है, जैसी अनेक अपर जीवों में। शब्दों ही द्वारा हम लोग परस्पर के दुःख-सुख को सुन और समझ सकते हैं, शब्दों ही द्वारा हम लोग अपने दुखी संबंधियों के साथ अपनी सहानुभूति प्रगट कर सकते है, पुनः शब्दों ही द्वारा एक मनुष्य का प्राप्त किया ज्ञान भंडार दूसरे को प्राप्त हो सकता है। ऐसे अमूल्य शब्द-ज्ञान का मार्ग यह इन्द्रिय-रत्न श्रवण है। भला इससे क्या यह नहीं कहा जा सकता है कि अन्धे होने की अपेक्षा बधिर होना कठिन-विपत्ति है?

बधिरों की उदासीनता।

जो मनुष्य जन्म-कालही से, अथवा बहुत बालकपनही से बधिर हैं, वे निज जीवन भर, अपने कुटुम्बियों और इष्टमित्रों से अन्धों की अपेक्षा विशेषतर विलग प्रतीत पड़ते हैं। अन्धे तो साधारणतः प्रसन्न-चित्त और प्रफुल्ल-बदन रहते हैं, पर बधिर जन प्रायः उदास, चिड़चिड़े और संदिग्ध-चित्त होते हैं। उन लोगों का ऐसा होना कोई आश्चर्य भी नहीं है, क्योंकि क्लेश में, निज बंधु तथा इष्ट-मित्र जनों की सहानुभूति-सूचक शब्द ही हम लोगों को साहस दिला कर हमारे कठिन से कठिन दुःखों और व्यथाओं को हलका करते, हमें भविष्यत् के सुखों की आशा दिलाते हैं। किन्तु बधिर जन तो ऐसी सहायता और सहानुभूति से प्रायः सर्वथा वंचित रहते हैं, तो वे क्यों न वैसे रहें।

मनोरंजनार्थ बधिरों को अनावकाश और असामर्थ्य।

अंधे मनुष्य दृष्टि-हीन होने से ऐसे अनेक कार्य्यों में लगाये नहीं जाते हैं, जो दृष्टि सेही किये जा सकते हैं, इस लिये ऐसे कार्य्यों के अवसर पर, बहुत अकाज होते हुए भी, कार्य्य-सम्पादन के अयोग्य होने से, वे छोड़ दिये जाते हैं, निर्विघ्न अपने प्रिय मित्रों के साथ बैठ वे गपाष्टक कर सकते हैं, तथा अपने इच्छानुसार वार्तालाप इत्यादि कर अपना मनोरंजन कर सकते हैं; किन्तु बधिर जन तो मनुष्य के करने योग्य प्रायः प्रत्येक शारीरिक उद्यमों के करने में लगाये जा सकते हैं, इस कारण एक तो मनोरंजन के लिये उनको सावकाश ही कम प्राप्त होता है, दूसरे, यदि वह प्राप्त भी हुआ, तो उनके साथ वार्तालाप इत्यादि कर उनको आनन्द देने के योग्य ऐसे व्यक्ति-विशेष की आवश्यकता होती है, जो नेत्र और कर-पल्लवी भाषा में अधिक पटु हों, और उनसे उपयुक्त संकेत कर उनको अपने हृदय का भाव समझा सकें, तथा, यदि वे जन्म-बधिर और मूक हैं, तो वैसे ही संकेतों द्वारा

उनके भी अभिप्राय को समझ सकें। पर ऐसे व्यक्ति-विशेष यदि अलभ्य नहीं, तो दुष्प्राप्य अवश्य हैं। कुछ ऊंचे सुनने वाले मनुष्यों की दशा भी इनसे कुछ बहुत अच्छी नहीं रहती है, बोलने की इच्छा रहते हुए भी मनुष्य उनसे वार्तालाप करने में जी चुराते हैं, और जब ऐसा बधिर किसी सभा-मंडली में जाता है, तो वहां की वार्तालाप इत्यादि को पूर्णतः न सुन सकने से वह अत्यंत व्यग्र हो जाता है। डाक्टर कीटो नामी एक विद्वान् ने इस विषय का वर्णन करते हुए अपनी लास्ट सेन्सेज (Lost Senses) नामी एक पुस्तक में एक स्थान पर यह भावपूर्ण और सहानुभूति उत्पादक वाक्य लिखा है :–"इस वृद्धावस्था से प्राप्त अनेक क्लेशों में सब से असह्यतर क्लेश यह है, कि मैं अपने घर के छोटे २ बालकों के कोमल होंठों को हिलते हुए तो देखता हूं; किन्तु उनकी तोतरी बातें सुनने में असमर्थ हूं; दूसरे लोग तो उनके अस्फुट मधुर वचनों को सुन कर मुसकराते; हँसते, तथा उनका मुख-चुम्बन करते हैं, किन्तु ये आनन्दोत्पादक स्वर मेरे लिये शुष्क वायु है; इस मधुर रस का आस्वादन मैं नहीं कर सकता; केवल उनका मुख-मात्र मैं देखता रह जाता हूं, मुझे इनके प्रिय स्वरों का कुछ ज्ञान नहीं होता है; यह मुझे असह्य है।"

प्रसन्न-चित्त अंधे-सूरदास।

जो मनुष्य कुछ दिन तक देख और सुन कर अंधे और बधिर हुए हैं, उनकी दशा में भी प्रायः कुछ ऐसाही अंतर सूचित होता है। उदाहरणार्थ, हिन्दी-भाषा-कविभास्कर श्री सूरदास जी की दशा पर विचार कीजिये। इनके किसी ऐसे छन्द का तो मुझे स्मरण नहीं है, जिसमें उन्होंने निज अन्धत्व पर शोक प्रगट किया हो, बहुत संभव है, हो, पर ऐसे छंद के होते हुए भी, मैं यह कह सकता हूं, कि इस दुःख से ये विशेष दुःखी नहीं रहे होंगे। सर्वदा निज ध्यान, भक्ति और भजनों द्वारा श्रीकृष्ण भगवान और राधिका महारानी के परमानंद-दायक लीलाओं का गान करने में मग्न-मन और प्रफुल्ल-वदन अवश्य रहते रहे होंगे। इन्होंने जो श्रीराधाकृष्ण जी को ही अपना इष्ट-देव माना है, केवल इस से ही इन का सर्वदा प्रसन्न-वदन रहना स्वयं-सिद्ध है। नेत्र-विहीन तो ये अवश्य थे, पर निज पवित्र हृदय की परम स्वच्छ दृष्टि द्वारा श्री कृष्णचन्द्र आनन्द-कंद और वृज-वधूटियों की वृन्दावन-विहार और रास इत्यादि लीलाओं के अनुभव करने की योग्यता इनमें निस्संदेह थी। क्या ऐसे भी पुरुष कभी दुःखी रह सकते हैं?

मिल्टन।

इंगलैण्ड देश में मिल्टन (Milton) नामी एक बहुत बड़े कवीश्वर हो गये हैं, वे अपनी आधी अवस्था के पश्चात् अंधे हो गये थे, पर इसी नेत्र-हीनावस्था में उन्हों ने अपनी कविता के बड़े २ ग्रंथों (Paradise Lost, Paradise Regained, and Samson Agonistes) को लिखा। यद्यपि पैरेडाइस लास्ट नामी ग्रंथ में उन्हों ने अपने अन्धत्व पर बहुत शोक प्रगट किये हैं, पर फिर भी, एक बहुत ही अच्छी कविता में, जो कुछ ज्ञानेन्द्रियां उस समय शेष रह गई थीं, उन्हीं पर उन्होंने संतोष और हर्ष प्रगट किया है। उन्हीं की वह कविता निम्न लिखित है :—

"When I consider how my light is spent
Ere half my days in this dark world and wide,
And that one talant which is death to hide
Lodged with me useless, though my soul more bent

To serve therewith my Maker, and present
My true account, lest He returning chide,
'Doth God exact day-labour, light denied',
I fondly ask. But Patience, to prevent
That murmur, soon replies God doth not need
Either man's work or his own gifts. Who best
Bear His mild yoke, they serve Him best. His state
Is kingly; thousands at His bidding speed;

And past o'er land and ocean without rest;
They also serve, who only stand and wait.''

उपर्युक्त कविता के मधुर शब्दों का रसास्वादन केवळ वेही सज्जन कर सकते हैं, तथा इस के गंभीर भावों को केवळ वेही मनुष्य समझ सकते हैं, जिन को अंग्रेज़ी विद्या का कुछ ज्ञान है। निम्न लिखित पदों में यहां पर उस का केवळ नीरस भाषानुवाद दिया जाता है :—

'मोकह जब सुधि होत दृष्टि मम हाय ! सिधारी,
आधो जीवन शेष, जगत विस्तृत, तम भारी;
दृग ये प्रभु के दान दुरैबो मृत्यु कहावत,
मेरे हित सो व्यर्थ; यदपि पुनि मन यह आवत,
तिन महँ प्रभु निज लाय, सत्य निज कर्म भाव-तन
दिखलावों मैं वाहि निठुरता तासु निवारन;
पै उर पुनि यह होत, देखि गति विधि कै वामा
'किमिहरि दिनकर-किरण, लेत हरि दिन-करकामा,'
लखि मम उर की विथा, शान्ति पुनि शान्ति देति तब
हरि नित, रे ! निष्काम, प्रयोजन कर्म ताहि कब ?
सरल परीक्षा तासु, निवहि वामे जो जाने,
सकल भक्ति-नीदान परम पद वासन पाते;
महाराज दर्बार, दास तिन लक्ष-सहस्तन
धावत विनु विश्राम मध्य दश-चारि भुवन-गन
सोऊ सेवक तासु सवै विधि सबळ कहावत
'यदपि सकल विधि निवल, वैठि जी-तन सों ध्यावत'।

पुनः उन्हों ने इसी विषय में बातें करते हुए अपने एक मित्र से अपना संतोष निम्न लिखित पदों में प्रगट किये हैं :—

........................''Though my eyes
Breft of light their seeing have forgot,
Nor to their orbs doth sight appear
Of sun or moon, or star, throughout the year.
Cr m m, or woman. Yet I argue not
Against Heaven's hand or will, nor bate a jot
Of heart or hope; but still bear up and steer
Right onward.''

..................यद्यपि ये नेत्र हमारे
ह्वै प्रकाश तें रहित देखिवो भूल गये हैं,
वर्षन सों नहिं दर्श चन्द्र-रवि इनहिं भये हैं,
कोटिन उड़गन गगन-मध्य इन कहँ नहिं चमकत,
नातरु नर अरु नारि समीपहुं के ये परखत;
हरि-इच्छा यह शीस न कहिवो कछु जी-तन को,
नातरु उर कछु शोच आशङ्क गई न मन को;
सहि हौं सब सहर्ष शोक कछु मन नहिं लैहौं,
निज करतब रत रहत वाहि मग पगन बढ़ैहौं।

निराश वधिर—प्रसिद्ध गायक बाटोवेन।

अब एक वधिर गायक का उदाहरण लीजिये। थोड़े ही दिन हुए, जर्मनी देश के प्रशिया प्रान्त में एक बाटोवेन (Beethoven) नामी प्रसिद्ध गायक हो गये हैं। ये निज युवावस्था ही में वधिर हो गये थे। इनके वधिरत्व के कठिन क्लेश को इनकी शेष इन्द्रियां दूर करने में समर्थ न हो सकीं; तत्पश्चात् ये सर्वदा उदास, चिन्तित, और प्रायः निराश रहा करते थे और इसके थोड़े ही दिनों के पश्चात् इसी चिन्ता में इनका जीवन शेष भी हो गया। श्री सूरदास जी और कवीश्वर मिल्टन की दशा में परस्पर कैसा विरोध है !!

(क्रमशः)

राजा चेतसिंह।

[लेखक—"पं० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी"]

(२)

अतः पाठक समझ सकते हैं कि बनारस का राज्य बजाय देहली के सम्राट् की अधीनता में होने के, कम्पनी के आश्रित हुआ और वहां की नियमित राजस्व ठीक समय पर नवाब अवध द्वारा दिये जाने के बजाय, सीधा कम्पनी को मिलने लगा। यह प्रबन्ध सन् १७६५ ई० के अन्त तक जारी रहा। इस बीच में नवाब शुजा-उ-दौला से बराबर छेड़ छाड़ होती रही। अन्त में शुजा-उद्दौला ने कम्पनी को आत्मसमर्पण किया। क्लाइव इस बीच में पूर्णाधिकार प्राप्त गवर्नर जनरल हो कर इंगलैंड

से आये। उन्होंने देखा कि सम्राट् शाह आलम अयोग्य हैं और यदि अवध का सूबा पूर्व सन्धि के अनुसार उन्हें दे भी दिया जाय तो बिना कम्पनी की सहायता वे उस प्रान्त को अपने शासन और अधिकार में रख न सकेंगे। अतः क्लाइव ने पूर्व स्वीकृत प्रबन्ध को रद्द कर के उसमें फेरफार किया और उन्होंने पूर्ववत् मय बनारस प्रान्त के शुजा-उद्दौला की अवनिष्ट निज़ामत उसे फेर दी। किन्तु राजा बलवन्तसिंह के स्वत्वों की आलोचना करते हुए उन्होंने कहा :—

"Signal and important services rendered by him to the affairs and interest of great Britain." और राजा बलवन्तसिंह के सद्व्यवहार और उपकारों को स्मरण कर सन्धि में एक धारा लिखी। वह यह थी :–

"Shujah-ul-Doulah engages in the most solemn manner to continue Balwant Singh in the zemindaries of Benares, Ghazeepore, and all those districts he possessed at the time he came over to the late Nawab Jaffir-ali-Khan and the English, on condition of his paying the same revenue heretofore."

अर्थात् इस शर्त्त पर कि जो राजस्व राजा बलवन्तसिंह अभी तक देते रहे हैं यदि बराबर देते रहे तो शुजा-उद्दौला राजा बलवन्तसिंह की अधिकृत ज़िमीदारी में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालेगा। इस प्रबन्ध की सूचना पाकर डिरेक्टरों ने शुजा-उद्दौला को उसकी निज़ामत लौटा देना अच्छा समझा और जिन लोगों ने कठिन समय में कम्पनी की सहायता की थी उनके साथ जो व्यवहार किया गया उसको भी उन्होंने स्वीकृत किया।

नवाब शुजा-उद्दौला ने अवध की निज़ामत को पुनः प्राप्त कर के सन्धि पत्र के उपरोक्त उद्धृत पांचवें ठहराव को भंग कर के राजा बलवन्तसिंह को निज अधिकारों से वंचित करने और उन्हें गिरफ़्तार करने में ज़रा भी विलम्ब न किया। कम्पनी का साथ देने के कारण ही राजा बलवन्तसिंह को नवाब की घृणा और क्रोध का पात्र बनना पड़ा था कम्पनी को यह बात मालूम थी अतः जब जब नवाब ने बलवन्तसिंह पर दबाव डाला तब तब सन्धि के अनुसार कम्पनी को राजा बलवन्तसिंह की रक्षा करनी पड़ी। राजा बलवन्तसिंह से उनका राज्य अपहृत करने की नवाब की सभी चेष्टा विफल हुई। राजा बलवन्तसिंह २२ अगस्त सन् १७७० ई० को निजभवन रामनगर में मृत्यु को प्राप्त हुए। उनके केवल एक पुत्र था जिसका नाम चेतसिंह था और जो एक दासीकन्या के औरस से उत्पन्न हुआ था। राजा बलवन्तसिंह ने उसी चेतसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया था और उसे, बनारस जौनपुर चुनार और गाज़ीपुर ज़िलों का अधिकारी नियुक्त किया था।

राजा बलवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार सुन नवाब शुजा-उद्दौला, युवा राजा पर अपना प्रभुत्व जताने, उन्हें अपने अधिकार में करने एवम् उनसे धन लेने के लिये स्वयं काशी के लिये प्रस्थानित हुआ। किन्तु मार्ग में बीमार हो जाने से उसे रुक जाना पड़ा। उसने युवा राजा को काशी का राजा मानने के बदले बीस लाख रुपये का एकमुश्त और पांच लाख रुपये सालाने का नज़राना वसूल करने को, अपना एक गुमाश्ता (Agent) काशी भेजा। ज्यों ही यह खबर अंगरेज़ों को लगी त्यों ही उन्होंने सिपाहियों की एक बटालियन सेना साथ कर, एक सेनापति को काशी भेजा, जिससे युवा राजा पर नवाब अत्याचार न करने पावें। अंगरेज़ों के बीच में पड़ने से नवाब राजा पर ज़ियादती न कर सका और ८ सितम्बर सन् १७७० ई० को मामला तै हुआ। राजा चेतसिंह

ने १७ लाख का एकमुश्त और ढाई लाख का सीलाना नज़राना नवाब को देना मंजूर किया। यह नज़राना, सालाना १३ लाख खिराज के अलावा था। इतना हो चुकने पर नवाब ने बाज़ाप्ता चेतसिंह को बनारस के राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त किया।

किन्तु चेतसिंह का अधिकार प्राप्त करना, काशी की प्रजा को अभिमत नहीं हुआ। प्रजा की ओर से राजा चेतसिंह के विरुद्ध आवेदन पत्र जाने लगे। लोग राजा चेतसिंह को राजा बलवन्तसिंह का शास्त्र-सिद्ध पुत्र नहीं मानते थे। जो सैनिक अफसर, सेना सहित, अंगरेज़ों की ओर से काशी में शान्ति रक्षा के लिये नियुक्त किया गया था, उसने कलकत्ते की कौंसिल को पत्र द्वारा सूचना दी कि बनारस का राज्य पाने के लिये कई प्रार्थी हैं। इनमें से राजा बलवन्तसिंह का दौहित्र महीप नारायण भी एक है जिसका यहां के ब्राह्मण पक्ष लेते हैं। क्योंकि महीप नारायण की माता, राजा बलवन्तसिंह की ख़ास रानी गुलाब कुँअर से उत्पन्न हुई थी और शास्त्रानुसार महीप नारायण की माता ही राजा बलवन्तसिंह की यथार्थ सन्तान है। राजा चेतसिंह राजा बलवन्तसिंह की धर्मपत्नी से उत्पन्न नहीं हुआ था बल्कि एक राजपूत स्त्री से उत्पन्न हुआ था जिसे राजा बलवन्तसिंह ने अपने घर में डाल लिया था।

कलकत्ते की कौंसिल के प्रेसीडेण्ट ने इस मामले में दस्तन्दाज़ी करनी उचित नहीं समझी और इंगलेण्ड को जो रिपोर्ट उन्होंने भेजी उसमें लिखा कि वज़ीर की अनुमति से राजा चेतसिंह को उनके पिता राजा बलवन्त के समान बनारस के राज्य का पूर्ण अधिकार दिया गया है *। किन्तु राजस्व (Revenue) में, तब से अब अन्तर अवश्य हुआ है। अर्थात् बनारस से जो राजस्व प्रथम मिलता था उसमें अब अढ़ाई लाख की वृद्धि करके २२,४८,४४६ रु० कर दिये गये हैं और इच्छा न रहते भी, अंगरेज़ों के दबाव से वज़ीर ने इस आशय का एक कौलनामा लिख दिया है।

वज़ीर का असली अभिप्राय राजा चेतसिंह को क़ैद कर उनकी जागीर ज़प्त कर लेने का था, अतः उसने चेतसिंह को लखनऊ में अपने ज्येष्ठ पुत्र के विवाह में सम्मिलित होने के लिये निमंत्रण भेजा, किन्तु अपने पिता के मंत्रदाताओं की सम्मति से राजा चेतसिंह ने वज़ीर को लिख दिया कि यहां आपस में हम लोगों में शत्रुता चल रही है। इसके अलावा लखनऊ जाने पर मुझे भय है कि आप मुझे क़ैद करेंगे। अतः इस विवाह में सम्मिलित न होने के लिये मैं क्षमा किया जाऊं। इस चेष्टा में विफलमनोरथ होने पर वज़ीर ने खुल्लंखुल्ला राजा चेतसिंह के साथ शत्रुता करनी आरम्भ की, और उसके अधिकारों में हस्तक्षेप किया। सन् १७७३ ई० में ब्रिटिश सरकार ने सन्धि के अनुसार बनारस राज्य के स्वत्वों की रक्षा के लिये दस्तन्दाज़ी की और राजा चेतसिंह के साथ सन्धि के अनुसार वज़ीर बर्त्ताव करें यह बात कार्य्यरूप में परिणत करने तथा अन्य मामले तै करने के लिये कलकत्ते की कौंसिल ने, गवर्नर जनरल वारिन हेसटिंगज़ को बनारस भेजा। वारिन हेसटिंगज़् को बनारस भेजने के लिये जो मन्तव्य कौंसिल में स्थिर किये गये और उनके अनुसार हेसटिंगज़् साहब को जो निर्देश दिये गये, उनमें से पाँचवां निर्देश हम नीचे उद्धृत करते हैं।

"We empower you to renew, in behalf of Rajah Cheyte Singh, stipulation which was formerly made with the Vazier

* "Holding that country on the same terms as his father."

(६) फौजातथा विला... तथा अन्य स्थलों

in favour of ... Balwant Singh, in consideration of his services in the year 1764."

अर्थात् सन् १७६४ ई० में जो सेवा राजा बलवन्त सिंह ने की थी, उनको लक्ष्य कर के वज़ीर के, साथ राजा बलवन्त सिंह के जो एहदोपैमान हुए थे, उन्हीं के अनुसार अब राजा चेतसिंह की ओर से वज़ीर के साथ एहदोपैमान फिर से नये कराने का हम तुम्हें अधिकार देते हैं ।

(क्रमशः)

धर्म्म वीर । *

[लेखक-पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय]

यह जगत जिसके सहारे से सदा फूले फले ।
ज्ञान का दीया निराली जोत से जिस के जले ॥
आँच में जिस के पिघल कर काँच हीरे सा ढले ।
जो बड़ा ही दिव्य है तल छट नहीं जिस के तले ॥
हैं उसे कहते धरम जिससे टिका है यह धरा ।
तेज से जिसके चमकता है गगन तारों भरा ॥१॥

पालने वाला धरम का है कहाता धर्म्म वीर ।
सब लकीरों में उसी की है बड़ी सुन्दर लकीर ॥
है सुखों से भरी संसार में उसकी कुटीर ।
वह अलग करके दिखाता है जगत को छीर नीर ॥
है उसी से आज तक मरजाद की सीमा बची ।
सीढ़ियाँ सुखकी उसीके हाथ कीन्ही हैं रची ॥२॥

एक देशी वह जगतपति को बनाता है नहीं ।
बात गढ़ कर एक का उस को बताता है नहीं ॥
रंग अपने ढंग का उस पर चढ़ाता है नहीं ।
युक्तियों के जाल में उस को फसाता है नहीं ॥
भेद का उस के लगाता है वही सच्चा पता ।
ठीक उसका भाव देता है वही सब को बता ॥३॥

तेज सूरज में उसी का देख पड़ता है उसे ।
वह चमकता बादलों के बीच मिलता है उसे ॥
वह पवन में और पानी में झलकता है उसे ।
जगमगाता आग में भी वह निरखता है उसे ॥
राजती सब ओर है उसके लिये उसकी विभा ।
पत्थरों में भी उसे उसकी दिखाती है प्रभा ॥४॥

पेड़ में उस को दिखाते हैं हरे पत्ते लगे ।
वह समझता है सुजस के पत्र हैं उस के टँगे ॥
फूल खिलते हैं अनूठे रंग में उसके रँगे ।
फल उसे रस में उसी के देख पड़ते हैं पगे ॥
एक रज कण भी नहीं है आँख से उसके गिरा ।
राह का तिनका दिखाता है उसे भेदों भरा ॥५॥

वह समझता है जो मिलते हैं उसे पर्वत खड़े ।
हैं उसी की राह में सब ओर यह पत्थर गड़े ॥
जो दिखाते हैं उसे मैदान छोटे या बड़े ।
तो उसे मिलते वहाँ हैं ज्ञान के बीए पड़े ॥
वह समझता है पयोनिधि प्रेम से उस के गला ।
जंगलों में भी उसे उसकी दिखाती है कला ॥६॥

हैं उसी की खोज में नदियाँ चली जाती कहीं ।
है तरावट भूलती उसकी कछारों को नहीं ॥
याद में उसकी सरोवर लोटता सा है वहीं ।
निर्झरों के बीच छींटें हैं उसी की उड़ रहीं ॥
वह समझता है उसी की धार सोतों में बही ।
झल मलाता सा दिखाता झीलमें भी है वही ॥७॥

भीर भौरों की उसी की भर रही हैं भाँवरें ।
गान गुन उसका रसीले कंठ से पंखी करें ॥
भन भनाकर मक्खियाँ हरदम उसी का दम भरें ।
तितलियाँ हो हो निछावर ध्यान उसकाही धरें ॥
वह समझता है न है झनकार झींगुर की उगी ।
है सभी कीड़े मकोड़ों को उसी की धुन लगी ॥८॥

है अछूती जोत उसकी मंदिरों में जग रही ।
मसजिदों गिरजा घरों में भी दरसता है वही ॥
बौध मठ के बीच है दिखला रहा वह एकही ।
जैन मंदिर भी छुटा उसकी छटा से है नहीं ॥
ठीक इन में दीठ जिसकी है नहीं सकती ठहर ।
देख पड़ती है उसी की आँख में उसको कसर ॥९॥

---

* यह कविता साहित्य सम्मिलन में पढ़ी गई थी। पिछली संख्या में "दादूदयाल और उनका सम्प्रदाय" वाला लेख भी सम्मिलन में पढ़ा गया था।

कर्महेतु।

(MOTIVES OF ACTIONS).

पुण्य और पाप में क्या भेद है? कर्तव्य और अकर्तव्य की क्या मीमांसा है? आचार और अनाचार का स्वरूप क्या है? और उनका निर्णय किस प्रकार होना चाहिए या हो सकता है? इन गम्भीर और दार्शनिक प्रश्नों को छोड़ कर इस छोटे से लेख में साधारण बुद्धि की रीति (Common sense) से यह बतलाया जावेगा कि वह कौन से विचार या हेतु हैं जिन के कारण मनुष्य उन विचारों और कर्मों से अपने को बचाते हैं जिन से बचना चाहिये और जिन से बच कर ही व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण हो सकता है। यह तो मनुष्यों की शिक्षा, बुद्धि और देश काल की अवस्था पर निर्भर है कि वह किस कर्म को किस विचार से करते या नहीं करते हैं। कौन सा विचार या हेतु किस देश या सम्प्रदाय में किस प्रकार से प्रचलित हुआ और उसका वहां कितना ज़ोर है इसकी कोई विशेष व्याख्या न कर केवल इतना बतलाया जावेगा कि वह कौन से हेतु हैं जिनके द्वारा संसार में आचार अनाचार, पाप पुण्य, उचित अनुचित, आदि की व्यवस्था की जाती है; वह कौन से विचार हैं जिनको दृष्टि गोचर करके मनुष्य कई कर्मों और विचारों को त्यागते और स्वीकार करते हैं।

इनमें से पहले विचार या हेतु को हम शारीरिक हेतु कह सकते हैं। संसार में प्रायः मनुष्य कई अनुचित कर्मों को केवल शारीरिक रोग या पीड़ाओं के भय से नहीं करते। उनके अन्दर कोई उच्च और पवित्र विचार काम नहीं करता। किन्तु यह समझ कर [illegible] से [illegible] अन्तः [illegible] जागेंगे तो प्रातः सिर में दर्द होगा। [illegible] अधिक वीर्य नष्ट करेंगे तो काया क्षीण होगी। यदि चोरी करेंगे तो पिटेंगे। बच्चे अधिक ऊँचे स्थान से इस लिए नहीं कूदते कि गिर कर हमारे हाथ पांव टूट जावेंगे। बहुत लोग धन का अपव्यय केवल इस कारण नहीं करते कि शायद वह रोगावस्था में काम आवे। इस प्रकार से पूर्वानुभूत कष्ट और ऐन्द्रिय सम्वेदन मनुष्यों को कई एक दुखदाई कर्मों से बचाते हैं। पशुओं में भी इस प्रकार के चिन्ह पाए जाते हैं। जंगली असभ्य लोगों में तो शारीरिक हेतु अधिकतर काम करते हैं। और इसी की आज्ञा से प्रायः वह लोग बहुत से कष्टों और दुःखों से बचते हैं और उचित अनुचित का ख्याल रखते हैं। जो व्यक्ति केवल शारीरिक हेतुओं पर ही अधिक ध्यान देते और बुरे कार्यों को रोगादि के भय से नहीं करते हैं, जिनका हृदय सामाजिक पवित्रता आदि भावों से शून्य है वह अधम कोटि के मनुष्य हैं। उनका आत्मिक विकास बहुत कम हुआ है। उनकी आत्मा अन्नमय कोष ही है। वह ज्ञानमय और आनन्दमय कोषों से अभी बहुत दूर हैं किन्तु कुछ कर्म ऐसे भी हैं जिनका करना या न करना केवल शारीरिक सुख दुख के ख्याल से ही आवश्यकीय है अधम कोटि के तो वह मनुष्य हैं जो हर एक काम में ज्ञानतः या अज्ञानतः अपने शरीर की आवश्यकताओं को सर्वोपरि समझते हैं। न उनको अपने आत्मा की उन्नति और अवनति का ख्याल है और न जाति हित और सन्तान हित का। दूसरा विचार या हेतु सरकारी दण्ड का है इस का ठीक ठीक अनुभव उसी समय हो सकता है जब राजकीय दण्ड व्यवस्था देश या समाज से उठा ली जावे। जो लोग आज चुपचाप साधु बने बैठे हैं, जो न

(६) फौजा तथा विलायत तथा अन्य स्थलों ... न किसी रस्से तो किसी ... उस द्रव्य को स्वार ... बचती ... करते हैं, यदि राजदण्ड व्यवस्था उन पर से उठा ली जावे तो वह अपने असली रूप में प्रगट होंगे । दण्ड का भय एक विशेष श्रेणी के मनुष्यों को क़त्ल, खून, मार, पीट, चोरी जारी से बहुत कुछ रोकता, फांसी का भयानक दृश्य, काल कोठरी का एकान्तवास, चक्की की पिसाई मनुष्यों को नीच और अनुचित प्रवृत्तियों से रोके रखती हैं। यह बात ठीक है कि सरकारी दण्ड का भय शिक्षित और उच्च श्रेणी के मनुष्यों पर बहुत नहीं होता, क्योंकि उनके अन्दर दूसरे विचार और भाव काम करते हैं और उनको नीच और अनुचित कार्यों के करने से रोकते हैं परन्तु साधारण जन समुदाय में तो सरकारी दण्ड का भय बहुत कुछ प्रभाव डालता है । अतः यह समाज की शांति और सुप्रबन्ध के लिए लाभदायक और न्याययुक्त है । जिस देश या राज में सरकारी दण्ड का भय नहीं होता या जहां कुछ समय के लिए राज्यक्रान्ति हो जाती है; उस देश में क्या २ अत्याचार और अनाचार होते हैं इसकी साक्षी संसार के इतिहास में मिल सकती है ।

अधिकतर सराफ़ और ठठेर कम तौलने से क्यों डरते हैं । बलवान निर्बलों पर अत्याचार करने से क्यों हिचकते हैं। रेलवे मुलाजिम अपनी ड्यूटी पर इतना ध्यान क्यों देते हैं । अच्छे खासे रईस भी जालसाजी और धोखेबाजी से क्यों परहेज़ करते हैं । यदि विचार कर देखा जावे तो मालूम होगा कि अन्य विचारों और भयों की अपेक्षा सरकारी दण्ड का भय उनके कारोबार में बहुत काम करता है और मनुष्य समाज में शांति को स्थिर रखता है ।

तीसरा सामाजिक हेतु है । इस हेतु का प्रभाव मनुष्य समाज में सर्वोपरि है । हम बहुधा बुरे कामों को इस लिए नहीं करते कि हमारे मित्र, पड़ोसी या जाति वाले हम को बुरा कहेंगे । देश और समाज में हमारी हँसी होगी; हमको दूसरों के सामने लज्जित होना पड़ेगा । सामाजिक हेतु का प्रभाव राजदण्ड या कानून व्यवस्था से अधिक प्रभावोत्पादक है । इसका असर बड़ी दूर तक पहुंचता है । सरकारी कानून से चुगुलखोरों, मिथ्यावादियों, कृतघ्नियों और शराबियों के लिए कुछ अपवादों को छोड़ कर कोई विशेष दण्ड का विधान नहीं है । यदि कोई मनुष्य आवश्यकता पड़ने पर भी आत्म-निर्बलता का परिचय देता है । मार्ग में चलती हुई पराई बहू बेटियों को कुदृष्टि से देखता है; भरी सभा में साफ़ झूठ बोल जाता है; घर में अपनी धर्मपत्नी का अपमान करता है और उस के साथ निर्दयता से व्यवहार करता है तो इन सब कुकर्मों और कुव्यवहारों के लिए सरकार उसे कोई सज़ा नहीं दे सकती, क्योंकि यह बातें कानून की सीमा से परे हैं । सरकारी कानून तो वहीं हस्तक्षेप करता है जहां समाज के अमन आमान में बिगाड़ पैदा होने की सम्भावना हो ।

शादी गमी के मौके पर लोग सामाजिक व्यवस्था या मर्यादा के भय से ही प्रायः एक दूसरे की सहायता करते हैं बाज़ार में बदनाम हो जाने के डर से हिसाब किताब को शुद्ध रखते हैं और नियत समय पर प्रतिज्ञा को पूरा करने का प्रयत्न करते हैं । हम सर्व साधारण में असभ्य और जंगली समझे जांयगे इस कारण सभा समाजों में नियम पूर्वक वादविवाद करते और गम्भीरता पूर्वक बैठते हैं । इस प्रकार यदि हम अपने आन्तरिक और बाह्य कर्मों की मीमांसा करने लगें तो हमें भली भांति प्रतीति हो जावेगा कि समाज के मत का प्रभाव हमारे नित्य कर्मों पर बहुत बड़ा है। अपने देश या जाति की वाह २ लेने ही के लिए

हम प्रायः ऐसे काम करते हैं जिनकी उत्पत्ति सामाजिक हेतु से होता है। प्रगट में तो हम धर्म के नाम से कई लोक हित के काम करते ह परन्तु यथार्थ में धर्म का केवल नाम ही होता है। वास्तव में तो धर्मात्मा कहलाने और लोगों की दृष्टि में प्रतिष्ठित जचने के लिए करते हैं। प्रायः आज कल लोग सदाव्रत, धर्मशाला, घाट आदि नाम चलने के लिए बनवाते हैं। सामाजिक हित या देश हित का उन्हें बहुत कम ख्याल होता है। हमारे देश के सेठ साहूकार; राजे महाराजे, रईस ताल्लुकेदार सरकार को प्रसन्न करने और राज-भक्त कहलाने के लिए हा कई लोकहितकारी कामों में बड़े २ चन्दे देते हैं। परन्तु इन चन्दों के देने में लोक हित या देश हित की मात्रा शून्य के बराबर होती है। अतः ऐसे काम चाहे धर्म हित और देश हित के नाम से किये जांय लेकिन उन का वास्तविक प्रयोजन कुछ और ही होता है।

सामाजिक हेतु या व्यवस्था के जहां बहुत से लाभ हैं वहां ही इससे बहुत सी हानियां भी होती हैं। इन हानि लाभों का न्यूनाधिक होना समाज की शिक्षा, नीति, रीति और धर्माधर्म की मीमांसा पर निर्भर है। जिस देश में सामाजिक मर्यादा को लोग अन्धाधुन्धी से मानते हैं, जिस देश या समुदाय में अन्धविश्वास की अधिकता है, जहां लोग समाज या देश के सुख, दुख, हानि, लाभ, उन्नति अवनति पर दृष्टि न करके रूढ़ि के दास होते हैं वहां के समाजमत या समाज के बन्धनों को तोड़ना प्रत्येक शिक्षित और विचार-शील मनुष्य का कर्तव्य हो जाता है। जिस समाज में व्यक्ति विशेषत्व का अपमान है। जो समुदाय चलने फिरने खाने पीने उठने बैठने में भी बाधक है, जो जरा २ सी बात में व्यक्तियों को धमकी देकर उनसे उनकी आत्मा के विरुद्ध अनुचित कर्म [illegible] से [illegible], और [illegible] पतन हुए बिना न [illegible] क्योंकि ऐसी समाज का अन्तःकरण निर्बल हो जाता है। लोग समाज या जाति के भय से प्रगट में कुछ करते हैं और गुप्त में कुछ और ही। दम्भ, लम्पटता, बाह्य आडम्बर, और भीरुता दिन प्रति दिन बढ़ती जाती हैं। व्यक्तियों में सत्य के प्रगट करने का बल नहीं रहता है। झूठी प्रथाओं के नाम पर, हानिकारक और आत्मघातक पाखण्ड की ओट लेकर, सत्य और न्याय की उच्च और सनातन मर्यादा की गरदन पर छुरी चलाते हैं। ऐसी सामाजिक मर्यादा को निर्बल करना; उसकी जड़ को काटना ही देशहितैषी, शिक्षित, और विचार-शील सज्जनों का परम कर्तव्य है। सामाजिक व्यवस्था देशकाल और आवश्यकताओं के अनुसार बदलनी चाहिये। जिस व्यवस्था का स्थापन करना एक समय जाति रक्षा के लिए कर्तव्य था उसी का दूसरे समय तोड़ना परम कर्तव्य हो जाता है। परन्तु हां ऐसा करना साधारण पुरुषों की शक्ति से बाहर है। इस प्रकार की झूठी और बनावटी कुचालों को तो वही धक्का पहुंचा सकते हैं जिन्हों ने अपने हृदय में सत्य और ज्ञान के बल को धारण किया है। जिनका धर्म और न्याय की अन्तिम विजय पर पूर्ण विश्वास हो जो अपने देश भाइयों और जाति वालों की गालियां सुनने और अपमान सहने को उद्यत हों। पतित समाज में हलचल मचाने के लिए; पाखण्डी, बनावटी, छली और कपटी लोगों को उनके वास्तविक स्वरूप में प्रगट करने के लिए कुछ ऐसे वीरों की आवश्यकता होती है। जो धर्म, सदाचार, पवित्रता, सरलता, ज्ञान और सत्यशीलता की मर्यादा को स्थिर करने के लिए धर्माभास और अन्धवि-श्वास की दिखावटी मर्यादा का चकनाचूर करें

(६) फौजा तथा विलायती
[illegible]) तथा अन्य स्थलों में अप
उस द्रव्य को स्वास्थ्य [illegible]

और अब [illegible] बतलावें कि तुम मृत्यु को [illegible] है। सामाजिक व्यवस्था या मर्यादा के नियम यदि इसी प्रकार से कभी कभी ठीक न किये जावें तो समाज का अनुचित भय मनुष्यों को उत्कृष्ट बनाने के स्थान में निकृष्ट बनाता है और समाज में से स्पष्ट भाषण, निर्भयता, निष्कपटता, सत्यानुराग, आत्मबल आदि गुणों का ह्रास हो जाता है । इस प्रकार राजदण्ड व्यवस्था से सामाजिक व्यवस्था अधिक व्यापक है और जिन स्थानों और समयों पर राजदण्ड कुछ नहीं कर सकता वहां सामाजिक व्यवस्था वा दंड काम करता है, और लोगों में उच्च श्रेणी की मर्यादा या सदाचार को स्थिर रखता है, इसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था को सत्य और न्याय पर स्थिर रखने के लिए यह परम आवश्यक है कि सच्चे सदाचारी, देश हितैषी और आत्मत्यागी देशकाल की आवश्यकताओं के ज्ञाता विद्वान सामाजिक नियमों और बन्धनों में परिवर्तन करें और साधारण जन समुदाय उनके अनुगामी बनें । संसार की जातियों के इतिहास और समाज शास्त्र के अनुसार वह समाज जीवित नहीं रह सकती जो समयानुसार अपने में परिवर्तन करने में हठ और दुराग्रह करती है । जो सामाजिक मर्यादा के नाम पर बहुत कुछ उछलते कूदते हैं और संसार की नवीन शक्तियां और स्वाभाविक परिणामों पर ध्यान नहीं देते वे सामाजिक व्यवस्था के नेता वा रचैता कदापि नहीं हो सकते । अतः यह परम आवश्यक है कि शिक्षित और विचारशील व्यक्ति समाज की अन्धपरम्परा की परवाह न कर उन्हीं कर्मों को करें जो देश और जाति के लिए लाभदायक और उन्नतिकारक हैं । जिन लोगों को न अपने देश का पता है और न परदेश का, और न तो जन समुदाय की वास्तविक अवस्था को समझते हैं और न समझने का प्रयत्न ही करते हैं उनकी बातें निःसार और त्याज्य हैं । हां एक बात और है जिससे होशियार रहना चाहिए और वह यह है कि जो लोग समाजहित या देशहित के लिए नहीं किन्तु भोगविलास या आलस्य के कारण समाज के हितकारक और निर्दोष नियमों का उल्लंघन करते हैं वे सर्वथा निंदनीय हैं ।

चौथा धार्मिक हेतु है । इसकी व्यवस्था प्रत्येक धर्म या मज़हब में भिन्न २ प्रकार से की गई है । इस व्यवस्था से जहां एक ओर अनेकानेक प्रकार के अत्याचारों, असत्य सिद्धान्तों और कल्पनाओं का प्रचार हुआ है ; वहीं दूसरी ओर धर्म या मज़हब के ख्याल से बहुत से लोकहित और समाजहित के काम भी हुए हैं । धार्मिक जगत में दो श्रेणी के लोग हैं प्रथम तो वे हैं जो इस लोक या परलोक में धार्मिक कर्मों की फल प्राप्ति के लिए या किसी देवी देवता को प्रसन्न कर उससे वरदान पाने की आकांक्षा से किन्हीं अच्छे कर्मों को करते हैं उनका ख्याल है कि यदि हम अन्नदान देंगे तो हमको परलोक में अन्न के ढेर मिलेंगे । यदि हम रत्ती भर सोना देंगे तो राजा कर्ण की तरह हमको सोने के पहाड़ दिखाई देंगे । यह स्वर्ग या कैलाश, गऊ लोक या इन्द्रलोक की प्राप्ति के लिए प्रायः अपने धार्मिक कार्य करते हैं वह लोग पाप कर्मों से इस लिए घृणा नहीं करते कि इनसे हमारा अंतःकरण मलिन होगा, हम मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं रहेंगे या हमारे इस नीच कर्म या विचार से मनुष्य जाति या स्वदेश की हानि होगी वरन वे झूंठ इस लिए नहीं बोलते कि झूंठ बोलने से हमको नर्क की अग्नि में जलना पड़ेगा । वे आभूषण वस्त्र की चोरी इस लिए नहीं करते कि शायद उन्हें मर कर गिरगिटान या चिम-

लाचार होना पड़े। वह निवाज इस लिए पढ़ते हैं कि शायद ऐसा न करने से खुदा का कहर उन पर नाज़िल होगा। इस श्रेणी के मनुष्य धार्मिक जगत में नीच कोटि के माने गए हैं। इस प्रकार के धार्मिक लोग जो सज़ा या जज़ा नर्क या स्वर्ग के ख्याल से नेक कामों को करते या बुरे कामों से बचते हैं तथा उन सांसारिक लोगों में जो सरकार के दंड के भय से या अपने मित्रों या जाति वालों को खुश करने के लिए किन्हीं विशेष पापों से बचते और किन्हीं विशेष हितकारी कर्मों को करते हैं कोई बहुत बड़ा भेद नहीं है, हां इतना अन्तर अवश्य है कि नारकीय दण्ड अधिक कष्टदायक दूरस्थ है और अधिक काल तक रहने वाला है और सरकारी दण्ड उतना कड़ा या उतने काल तक रहने वाला नहीं होता; एक को इसी लोक में भोगना होगा और दूसरे को परलोक में। दूसरी श्रेणी के वह लोग हैं जो पाप कर्मों या नीच वृत्तियों से इस लिए घृणा करते हैं कि वह ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध है; वह यह समझते हैं कि यदि ईश्वरीय आज्ञा के विरुद्ध चलेंगे तो हमारा आसमानी बाप दुखी होगा हम उसके पुत्र कहलाने के योग्य नहीं रहेंगे; हम को वैसा ही सच्चा, पवित्र, दानी, ज्ञानी और दयालु बनना चाहिए जैसा कि वह स्वयम् है। इस श्रेणी के धार्मिक लोगों के कर्म करने के भाव उच्चतर और उत्तमतर हैं। परन्तु हां, इस प्रकार के धार्मिक हेतु को हम सामाजिक हेतु के अन्तर्गत ला सकते हैं क्योंकि वहां तो ईश्वर को प्रसन्न या अप्रसन्न करने का ख्याल रहता है और यहां अपने मित्रों और पड़ोसियों को।

धार्मिक व्यवस्था या ईश्वरीय आज्ञा भी एक बाह्य प्रेरणा है। किसी के दबाव, हुक्म, धमकी, उपदेश, या लिहाज़ से प्रेरित होकर यदि हम उच्च से उच्च या [illegible] से [illegible] करें तो जैसे उसकी Moral worth (आचारिक मूल्य) घट जाती है उसी प्रकार इसे भी समझना चाहिए।

पांचवां हेतु अपने आत्मा की आवाज़ है। जिसे हम आत्मिक हेतु कह सकते हैं (moral or spritual motive) मनुष्य के अन्तःकरण में सैकड़ों ऐसी नीच वृत्तियां और भाव उत्पन्न हुआ करते हैं जिनके रोकने और दमन करने के लिए आत्मिक हेतु के अतिरिक्त अन्य हेतु कारगर नहीं हो सकते। यदि हम किसी का बुरा मनाते हैं या किसी से ईर्षा द्वेष मन में रखते हैं तो क्या इन भावों को शारीरिक, सामाजिक या राजकीय हेतु दबा सकते या सज़ा दे सकते हैं? कदापि नहीं। आत्मिक हेतु का अवलम्बी वह है जिसने तामसिक वृत्तियों से युद्ध करके अपने हृदय को स्वच्छ और पवित्र बनाया है; जिसने अपनी आत्मा को सत्य और ज्ञान से परिपूर्ण किया है। जो किसी बाहरी दबाव, सामाजिक प्रशंसा या अप्रशंसा, मान अपमान, की परवाह नहीं करता; जिस कर्म या विचार को यथार्थ या कल्याणकारी समझता है उसी का प्रचार करता कराता है जो दूसरे पर दया केवल इस लिए नहीं करता कि ईश्वर उस पर भी दया करेगा। जो दान इस लिए नहीं करता कि इसके फल से मुझे अमरावती भोगने को मिलेगी किन्तु धार्मिक और लोक हितकारक कर्मों को इस लिए करता है कि ऐसा करना मेरा परम कर्तव्य है इससे मनुष्य जाति में ज्ञान और सुख की वृद्धि होगी; पापियों की पाप से निवृत्ति होगी; धनहीनों और निर्बलों को सहारा मिलेगा; वह अनुचित और अधार्मिक कर्मों से शारीरिक पीड़ा, राजकीय दंड, या ईश्वरीय क्रोध से बचने के लिए परहेज़ नहीं करता किन्तु उसका आत्मा इतना बलवान है, उसकी बुद्धि और मन इतने पवित्र हैं जो बुरे कर्मों

(६) फौजा तथा विलायती ... तथा अन्य स्थलों में अप... ऐसा करना ... को केवल ... इस द्रव्य को स्वास्थ्य ... मनुष्यत्व को ... जाता है; इससे देश और समाज की हानि होगी; संसार में पाप और अत्याचार की वृद्धि होगी। ऐसे लोग ही मनुष्य जाति की आत्मा हैं। जिस समाज या जाति में ऐसे लोगों का अभाव है वह जाति आत्मिक संसार में तो क्या, सामाजिक और राजकीय बातों में भी कोई विशेष उन्नति नहीं कर सकती। ऐसे लोग शुष्क ज्ञानी नहीं होते हैं और उनके जोशीले Sentiments (जज़बात) अन्धे नहीं होते वरन वह बुद्धि पूर्वक होते हैं। विचार और मीमांसा के पश्चात् जो बात उन्हें न्याययुक्त और सत्यतापूर्ण प्रतीत होती है उसी को मानते, कहते और करते हैं। जो जोश से अन्धे हो कर काम करते हैं; सत्यासत्य, उचित अनुचित; का विचार नहीं करते वह लोग आत्मिक हेतु का अवलम्बन नहीं कर सकते। यह ठीक है कि ऐसे संस्कृत आत्मा की आवाज़ पर काम करना और अपने जीवन को व्यतीत करना अत्यन्त कठिन और दुःसाध्य है क्योंकि इस अवस्था तक पहुंचने के लिए सत्यप्रियता, ज्ञान, आंतरिक, अनुभव, आत्मसमर्पण और मानसिक बल की आवश्यकता है। इस प्रकार की प्रेरणा को अनुभव करने के लिए शारीरिक, सामाजिक और धार्मिक हेतुओं से गुज़रना पड़ता है और यह सब हेतु आत्मिक हेतु को अनुभव करने के लिए साधन हैं। पृथ्वी पर अनेक जातियां, अनेक सम्प्रदाय और समुदाय हैं। उनके आचार, विचार, धर्माधर्म, नीच ऊंच और सत्यासत्य की व्यवस्थायें भिन्न २ हैं। अतः अनेक प्रकार के हेतुओं का होना स्वाभाविक है। इनमें से प्रत्येक हेतु क्रमशः मनुष्य जाति को ऊपर की ओर ले जाने वाले हैं। संसार में ज्यों २ सत्य विचारों और पवित्र भावों का प्रचार होगा, मनुष्य की प्रवृत्ति भ्रातृभाव और प्रेम की ओर झुकेगी, ज्यों २ ज्ञान रूपी प्रकाश से मनुष्य जाति का अन्तःकरण प्रकाशित होगा, त्यों २ आत्मिक हेतु का अवलम्बन कर कर्म कराने वालों की संख्या बढ़ती जावेगी।

(प्रकाश)।

'मातृभूमि की पूजा' *

[लेखक—श्रीयुत् हनुमानप्रसाद पोद्दार]

भारतवासी भगवान के अनन्त ऐश्वर्य्य को युगयुगान्तर से भिन्न २ भावों तथा भिन्न २ आकारों में पूजते चले आये हैं। आज भी हम ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर के रूप में भगवान की सृष्टि, स्थिति एवम् संहारकारिणी शक्ति की पूजा करते हैं। सरस्वती एवं लक्ष्मी को हम उन्हीं के ज्ञान और ऐश्वर्य्य की अधिष्ठात्री देवी समझ कर पूजते हैं, सूर्य्य एवं अग्नि में उन्हीं की ज्योति का दर्शन कर तथा गंगा यमुनादि में उन्हीं की करुणा का प्रवाह समझ कर पूजते हैं, इसी तरह पीपल के वृक्ष में, तुलसी कुंज में, पत्थर में, मिट्टी में जहां तहां हम उन्हीं को अधिष्ठित समझ कर उनकी पूजा करते हैं परन्तु हा! आज हम मातृ भूमि के रूप में उनकी पूजा नहीं करते—आज अनेक दिनों से हम ऐसा करना भूल गए हैं।

हिन्दुओं ने असंख्य भावों से भगवान की पूजा की है नन्द यशोदा ने पुत्र भाव से, देवी रुक्मिणी ने पति भाव से, वीर शिरोमणि अर्ज्जुन ने सखा भाव से, स्वामी शंकराचार्य्य ने आत्मभाव से, तुलसीदास ने जगदीश्वर भाव से, श्रीचैतन्य ने प्राणेश्वर भाव से, महात्मा शिवाजी ने स्वदेश भाव से और महाराणा प्रताप ने स्वजाति भाव से, उन की पूजा की है।

* अनेक दिनों पहिले के "...वाणी" में प्रकाशित ... लेख के आधार पर लिखित।

आज सामाजिक अवस्था तथा देशकालानुसार हिन्दुओं में अनेक देवी देवताओं की पूजा होती है, देवता का नाम कुछ भी रक्खा जाय तथा उस की पूजा की पद्धति कुछ भी हो, पर वह सब उसी एक जगन्नियन्ता जगदीश्वर के प्रभाव से अनुष्ठित होती है, तथापि हमारे धर्म्मशास्त्रों में लिखा है कि विशेष देवता की आराधना से विशेष फल प्राप्त होता है। आज वर्त्तमान युग में हमें सर्व मंगळमयी, शिवा सर्वार्थसाधिका, सर्वैश्वर्य्यरूपिणी जननी जन्मभूमि की पूजा की पूर्ण आवश्यकता है, मातृस्तनों के साथ साथ जिसके जळ, फळ तथा आधार से हमारी देह परिपुष्ट हुई है, जननी की तरह जिसने हमको अपने वक्षस्थळ पर धारण कर रक्खा है; तथा हमारा अन्तिम चिर विश्राम-स्थान भी जिसकी गोद में होने वाला है ऐसी अन्नपूर्णारूपिणी, जगद्धात्री जननी की पूजा न करना हमारे धर्म्म भाव का परिचायक कदापि नहीं हो सकता। आज शुभकाल समागत हुआ है शान्त और समाहित चित्त से अपने देह और मन को पवित्र कर के—आओ—भ्रातृगण! आज हम सब मिलकर जननी जन्मभूमि की पूजा करने में प्रवृत्त हों।

भक्त गण अपनी इच्छानुसार अपने इष्टदेवता की मूर्ति कल्पित कर उसका ध्यान करते हैं आओ! आज हम भी अपने इष्टदेवता की जननी जन्मभूमि के रूप में ध्यान करें। हिमाचळ जिस के मस्तक का किरीट है, जाह्नवी जिसका कण्ठहार है, घन-श्याम वृक्षराशि जिस के विचित्र वस्त्र हैं, मृग मद मलयज से जिसका देह सौरभित हो रहा है, महासमुद्र जिस के चरण युगलों को धोता हुआ अविराम कलकल स्वर से मानो जिस की बन्दना कर रहा है, नवप्रस्फुटित कमल दल से जिस के कण्ठ शोभा पा रहे हैं, और नवोदित अरुण किरणों से जिसका मुखमण्डल उद्भासित हो रहा है, ऐसी "भुवन मन मोहिनी" हमारी जननी है; जिसकी आराधना एवं बन्दना से हम इस जगत में अतुल सुख [illegible] से [illegible] अन्तः [illegible], क्या हम उस को भूले ही रहेंगे [illegible]

यहां पर यह प्रश्न हो सकता है कि हम किस मन्त्र से माता की आराधना करें तथा मातृ पूजा के निमित्त किन २ सामग्रियों को एकत्रित करें? इसका सीधा उत्तर यह है कि सन्तान माता को जिस नाम से सम्बोधन करे वही उसकी पूजा का मन्त्र है तथा माता का मुख उज्ज्वल करने के लिये जो कुछ करे वही उसकी पूजा का आयोजन है। आज हमें उचित है हम अपना तन, मन, धन, विद्या, बुद्धि, सामर्थ्य, पुरुषार्थ आदि समस्त शक्तियों को मातृपूजा की सामग्रियों के रूप में समर्पण करदें—अपने प्रत्येक हृदय मन्दिर में मातृ मूर्ति स्थापित करें।

एक समय फारस का एक सम्राट शिकार खेलने के ळिये जारहा था। रास्ते में हठात् एक किसान से उसका सामना हो गया, किसान ने यह सोचकर कि "खाळी हाथों राजा का दर्शन नहीं करना चाहिये" राजा को भेंट देने के ळिये पासही के एक ताळाव में से एक अंजळि जळ ले कर सम्राट के सन्मुखीन हुआ। परम प्रतापान्वित, अतुळित शक्तिशाळी सम्राटने सरळ हृदय किसान की अकपट राजभक्ति देखकर उसकी वह सामान्य जलांजळि सादर ग्रहण की थी। इसी प्रकार आज हम भी दरिद्र तथा अधःपतित होने पर भी भक्ति भरे हृदय से मातृ चरणों में अन्ततः एक अंजलि जल प्रदान करने में तो समर्थ हैं। माता हमारे सामान्य उपहार को अवश्यही सादर ग्रहण करेगी। इसी से आओ! भाईयो! आज हम अपनी २ सामर्थ्य के अनुसार मातृपूजा करने में प्रवृत्त होवें। हमारे देश के कविगण माता का यश गान करें, लेखक माता को गौरवान्वित बनाने वाले ग्रन्थ लिखें, चित्रकारगण जननी की मूर्तियां अंकित करें, शिल्पी और व्यवसायीगण देश की समृद्धि बढ़ाने का यत्न करें, इसी प्रकार धनी, दरिद्र, पण्डित, मूर्ख, सभी अपनी २ शक्ति एवं सामर्थ्यानुसार मातृपूजा करने में दत्तचित्त हों।

(६) फौजा तथा विलायती ...) तथा अन्य स्थलों में अप... सभी सन्तान इस ... उस द्रव्य को स्वास्थ्य ... मातृपूजा ... दशों दिशाओं में मातृ-मूर्ति विराजमान है भक्तगण अपनी इच्छानुसार मातृ मूर्ति के दर्शन कर उनके चरणारविन्दों में अपना जीवन उत्सर्ग कर सकते हैं। प्रिय भ्रातृ गण! आप साकारवादी हों वा निराकारवादी, यदि आपने कभी अपने इष्टदेवता का माता, पिता वा गुरू के रूप में ध्यान किया है तो एकबार जननी जन्मभूमि के रूप में ध्यान कीजिये।

भक्तगण भगवान को सर्वत्र विराजित देखकर कृतार्थ होते हैं आज आप भी अपनी बहु साधुजन निषेविता, बहु पुण्यमयी, सुजलासुफला,' जननी जन्मभूमि को—"स्वर्गादपि गरीयसी मातृ भूमि को" अपने प्राणाराम में अधिष्ठित देख कर अपने जन्म को तथा जीवन को सार्थक कीजिये।

भगवान् शंकराचार्य्य कहते थे कि परब्रह्म के दर्शन करने पर समस्त जगत नन्दनवन विदित होने लगता है, समस्त वृक्ष कल्पवृक्ष मालूम होते हैं एवं संसार की समस्त नदियां भगवती जाह्नवी के समान प्रतीत होने लगती हैं इसी प्रकार यदि आज हम मातृभूमि को अपने इष्टदेवता के रूप में देखने लगेंगे तो आज हमारा स्वदेश नन्दनवन हो जायगा तथा सब प्राणियों में भ्रातृ प्रेम का संचार होगा सब में स्वदेश भक्ति भीनेगी सब एक के दुःख में दुःखी और सब के सुख में सुखी होंगे और विरोध का नाश होगा।

हा! वह सुदिन कब आवेगा कि जब भारत-वासी भगवान को मातृ भूमि के रूप में तथा मातृ-भूमि को भगवान के रूप में देखकर कृतार्थ होंगे।

आज हम अनेक दिनों से मातृभूमि के रूप में परमात्मा को आत्मसमर्पण करना भूल गए हैं। हा! आज कौन हमको जगावेगा—आज भारत के वे पूजनीय और प्रातः स्मरणीय महात्मा कहां हैं कि जिन्होंने मातृभूमि के रूप में भगवान को आत्मसमर्पण कर अपने आर्य्यत्व का पूर्ण परिचय दिया था।

हमारे शास्त्रकारों का कथन है कि भक्तों की आराधना से प्रसन्न हो कर समय २ पर भगवान् अपनी एक विशेष मूर्ति प्रकट करते हैं। क्या आज ऐसा कोई नहीं है कि जो अपनी असाधारण साधना एवं उग्र तपस्या के प्रभाव से भगवान को हमारे हृदय मन्दिर में मातृभूमि के रूप में अवतारित कर सकें।

हे दयामय जगदीश्वर! भारतवासियों ने ज्ञान से हो वा अज्ञान से सर्वदा ही तुम्हारे ऐश्वर्य्य की पूजा की है और कर रहे हैं इसी से हे मधु-सूदन! आज कृपाकर के पुनः दर्शन दीजिये अपने इस वाक्य को स्मरण कीजिये—

> यदायदा हि धर्म्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥१॥

भगवान्! हम तो समझते हैं कि उपयुक्त समय है शीघ्रही हमारे हृदय मन्दिर में अवतीर्ण होकर कृतार्थ कीजिये जिससे कि हम आप को मातृभूमि के रूप में और मातृभूमि को आप के रूप में देख कर अपने जीवन को सफल करें और मनुष्य जन्म को सार्थक करें।

ग्रामीण दृश्य।

[लेखक—श्रीयुत् पं० मक्खन द्विवेदी—गजपुरी]

(१)

सुअट्टालिका उच्च वासी सुजानें,
तनक आप नीचे उतर आइएगा।
चलो संग मेरे किसी ग्राम में तुम,
निराली छटा इक वहां पाइएगा ॥

(२)

चढ़ा आज कल पूस का है महीना,
हवा बह रही है सदा शीत सानी।
नदी चल रही मन्द ही चाल से अब,
किनारे से हट कर गया दूर पानी ॥

(३)

हरे खेत सर्वत्र हैं देख पड़ते,
जिसी ओर हम लोग आंखें घुमावें ।
पड़े ओस के न पत्तियों पै चमकते,
हरे वस्त्र पै मोतियों को बिछावें ॥

(४)

कहीं शीत शीतार्त हो खेतवाला,
पड़ा झोपड़ी में पुआलें बिछा के ।
सभी काटता पास धूनी जला के,
तथा जोर से तान मामीया गाके ॥

(५)

कहीं तीसियों के सभी फूल नीले,
खड़े हो रहे खेत में झूमराई ।
किसी ने मही पै मनो है बिछाया,
हरे पीत नीले पटों की रजाई ॥

(६)

जुड़े गांव के लोग चौपाल में हैं,
कथा हो रही मोद औ प्रेम सानी ।
कोई गा रहा गीत "रानी सरंगा",
कोई भूत की कह रहा है कहानी ॥

(७)

"वहां गांव में प्रेत है एक रहता,
बड़े वृक्ष पै थान अपना बना के ।
निशा अर्ध में कीट को बीन खाता,
नदी तीर पै लुक भारी जलाके" ॥

(८)

कहीं पाठशाला बना गांव का है,
गुरू बालकों को जहां है पढ़ाता ।
गणित और भूगोल साहित्य हिन्दी,
तथा बात विज्ञान की कुछ सिखाता ॥

(९)

तपा पूजने को कहीं डीह काली,
चलीं गीत गाती सभी गांव वाला ।
इसी भांति निर्दोष आनन्दकारी,
सभी ढंग ही है यहां का निराला ॥

[illegible] तब से आज अनन्त [illegible]

[लेखक—पं० शारदा चरण पाण्डेय]

आज का दिन एक नया दिन है। पिछले दिनों की बात पुरानी पड़ गई आगे के नए दिनों में नित्य नई नई बातें होंगी । पुरानी बुरी बातें नष्ट होकर नई अच्छी बातें प्रकट होंगी । लोगों की पुरानी आसुरी प्रकृति बदल जायगी । सब प्रकार की दुष्टता दूर होगी । दुराचारी अपने कुत्सित कर्म जाल में फटफटायेंगे और पश्चात्ताप करेंगे तथा आगे को सदाचारी रहने की दृढ़ प्रतिज्ञा करेंगे । एक न एक दिन सब के सब सुधर कर सीधे सत्य की सूध पर चलेंगे । बस जिस दिन जो सत्य की सीधी पगडण्डी पर प्रातःकाल से सायंकाल तक और रात्रि में जब तक जागता रहे तब तक चलेगा वह दिन उसके लिये एक नया दिन होगा । जिस दिन जो मनुष्य अपने पिछले पुराने पापों से घबरा कर पश्चात्ताप के आँसुओं से अपने गाल धोवेगा उस दिन वह नए दिन का अर्थ समझेगा । जिस दिन जो स्त्री पुरुष अपने दुष्ट स्वभाव रूप पुराने पापी से लड़ाई ठानेंगे उस दिन उनका नए दिन में प्रवेश होना आरम्भ होगा। नया बने बिना किसी को नए दिन का आनन्द प्राप्त नहीं हो सक्ता । जिस क्षण से जो कोई नया बनने की इच्छा और चेष्टा करे उसी क्षण से उसके लिये नए दिन का आरम्भ समझना चाहिये । अच्छे काम करने से ही नया बनना सम्भव है । अच्छे काम करने वालों को बुढ़ापे में जवानी चढ़ती है। क्या इस लेख को पढ़ने के अनन्तर किसी छोटे से अच्छे काम को कर लेना तुम्हारे लिये कुछ कठिन है ? क्या भगवान् से अच्छे काम करने के योग्य बनने की प्रार्थना करना भी तुम्हें कठिन प्रतीत होता है ? यदि तुम किसी का दुःख दूर नहीं कर सके तो भगवान् से यह प्रार्थना अवश्य कर सक्ते हो कि "हे भगवन् ! मुझे दूसरों को सुख देने और

(६) फौजातथा विलायती ... तथा अन्य स्थलों में अप... उस द्रव्य को स्वास्थ्य ...ओ " ऐसी २ छोटी छोटी ... का प्रचार घर घर होना चाहिये।

पाप का फल सर्वनाश है परन्तु पाप को पाप मानने में जिन्हें सन्देह है ऐसे भी कोई हैं जो कहते हैं " कोई क्या जाने भगवान् काहे में प्रसन्न होते हैं ! " सावधान ! देखो ! विनाश के मार्ग पर सरपट दौड़ते हुए लोगो ! पीछे फिरो ! पीछे फिर चलो ! ! झूठ के महल ढाये जायँगे और उन में निवास करने वाले चकनाचूर होंगे । वृद्ध हिन्दी-प्रदीप संपादक ने अपने " कलिराज की सभा " शीर्षक लेख में जिन बातों से अप्रसन्नता प्रकट की थी उनमें मनुष्यों का " निकम्मे अनाचारी दुर्व्यापारी धर्मारी कुकर्मारण्यचारी " होना प्रधान बात है। एक बुद्धिमान् ने उस तक को निकम्मा बताया है जो अच्छा काम कर रहा हो सही पर जिसने सम्भव होते हुए अधिक अच्छे काम में अपने आप को नहीं लगाया ! इस समय मैं लिख रहा हूं इससे अधिक अच्छा काम मैं कौन करता यह मेरे विचारने की बात है । आप इस लेख को पढ़ रहे हैं; यदि किसी आवश्यक काम को अधूरा छोड़ कर पढ़ रहे हैं तो पहले उस काम को पूरा करो पीछे यह लेख पढ़ लेना । भले आदमी भले काम करते हैं सो ठीक है पर बुरे लोग भले काम करने से भले आदमी बन जाते हैं यह बात भी बहुत ठीक है। इस लेख को लिखने के अतिरिक्त मैंने और पढ़ने के अतिरिक्त आपने आज और ऐसा कौन अच्छा काम अबतक किया कि जिसके करने से किसी को कुछ भी सच्चा लाभ हुआ यह मेरे और आप के विचारने की बात है। अपने आप किसी अच्छे काम का उठाना अच्छी बात है पर दूसरों के उठाए हुए अच्छे काम में सहायता करने से ही मनुष्य किसी बड़े काम को आप उठाने के योग्य बनता है। भलाई कोई करो कहीं करो किसी के साथ करो मेरी भलाई है बुराई कोई करो कहीं करो किसी के साथ करो मेरी बुराई है ऐसा समझना और समझने का यत्न करना मानों अपने लिए नए दिन का आरम्भ है। किसी भले काम के होने में किसी को सन्देह हो तो हो पर भला काम करना भला है क्या इसमें भी किसी को सन्देह हो सकता है ? मनुष्य को भले काम से रोकने वाला उसका परम शत्रु उसके भीतर घुसा रहता है। उसका स्वरूप महा भयंकर है जिसका कुपथ्य करने वालों को रोग रूप से दर्शन होता है वह आप मनुष्य से कुपथ्य कराता है और उस कुपथ्य से पुष्ट होकर उसे अनेक अनर्थों में प्रवृत्त कर अन्त में उसका सर्वनाश करता है। महा पुरुषों को दिव्य दृष्टि से ऐसा प्रतीत हुआ कि जिस प्रकार कितने ही लोग तोता, मैना, लाल, कबूतर आदि पक्षी और गाय, भैंस, बकरी, घोड़ा आदि पालते हैं उसी प्रकार वह घोरान्धकार स्वरूप दुर्दमनीय पाप भगवान् के निवास करने योग्य मनुष्य के इस शरीर मन्दिर में काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य कपट पाखण्ड आदि अनेक सर्प वृश्चिकाकार अभद्रक अर्द्ध जन्तुओं की रचना कर बड़े यत्न से उन्हें पालता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि बहुतेरे आदमियों ने अपने भीतर छछूँदरें पाल रक्खी हैं ! बहुतों ने चील कौए पाल रक्खे हैं ! अनेक धनी मनुष्यों ने उल्लू पाल रक्खे हैं ! पर जिन लोगों ने सांप और बिच्छू पाले हैं ऐसे भी बहुत हैं ! मिस्र देश में एक स्थान है जहां कुछ ऐसे चित्र हैं जिनमें धड़ आदमी का और सिर किसी पशु का है और कुछ चित्र ऐसे हैं जिनमें धड़ पशु का है और चेहरा मनुष्य का है। विचार दृष्टि से देखने पर मनुष्य के धड़ पर मनुष्य का चेहरा कम दीखता है ! दाग़ ने ठीक कहा है-

"बस कि दुशवार है हर काम का आँसा होना ।
आदमी को भी मयस्सर नहीं इन्साँ होना ॥"

"केचिन्मृगमुखा व्याघ्राः केचिद्व्याघ्रमुखामृगाः"।

यदि देखने वाला हो तो मनुष्य की आंख में उस के भीतर अपना घर बना कर रहने वाले बड़े बड़े जानवर चलते फिरते दीखते हैं ! भला आदमी यदि

अपनी दृष्टि किसी अपूर्व पुरुष की दृष्टि से मिलावे तो तत्काल वह उसकी ठीक स्थिति जान लेगा । जिस मनुष्य ने अपने भीतर जितना गहरा पैठ कर देखा है उस मनुष्य की दृष्टि दूसरे के भीतर भी उतनी ही गहराई तक जा सकती है । किसी ने कहा है:-

"नैन नैन पर जात हैं नैन नैन के हेत ।
नैन नैन के मिलत ही नैन ऐन कह देत ॥"

जिन नेत्रों को ईश्वर का दर्शन हो गया उन नेत्रों पर अपना सर्वस्व वार कर फेंकने वाले की बलिहारी ! जो जुग जुग जीने का अर्थ समझना हो तो किसी भजनानन्दी प्रेमी पुरुष के नेत्रों को निहारे । बड़ों की दृष्टि में बड़ी शक्ति होती है । जो पवित्र भाव और पवित्र विचार वाला है उस की दृष्टि में लोगों के हृदय को पवित्र करने की शक्ति होती है । इसीलिये गुरुओं की कृपादृष्टि से बढ़ कर युवा मनुष्यों के लिए अधिक उपयोगी और कोई पदार्थ नहीं । धन्य हैं जो गुरुजनों के चरित्र देखते और सुनते हैं । धन्य हैं जो गुरुजनों की आज्ञा में चलते हैं । गुरुओं की सेवा में सदा से सब मनुष्यों को मनमाना बल वीर्य पराक्रम और सब प्रकार का ऐश्वर्य मिलता चला आता है । सच्ची गुरु भक्ति से ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है । संसार के सब देशों की सच्ची उन्नति का मूल कारण गुरु भक्ति ही है । गुरुसेवा और परोपकार के द्वारा पुराने पापी को पाप पाश से बच कर निकल जाना ही परम पुरुषार्थ है ।

———

जापान का नारी समाज ।*

[लेखक—पं० गौरचरण गोस्वामी]

जापान के सम्बन्ध में वैदेशिक भाषाओं में बहुत से ग्रंथ हैं, किन्तु उनमें से एक में भी जापानी रमणियों की सामाजिक अवस्था के विषय में एवं प्राचीन जा[illegible] तब से [illegible] अन्तः [illegible] तुल्य था, और उनके द्वारा कैसे [illegible] चुके हैं, इनका कुछ भी विवरण नहीं मिलता । जापान के सर्व प्रथम नारी विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठाता अध्यापक "जिन्‌ज़ोन् रूसि" (Ginzon Ruso) ने लिखा है कि पाश्चात्य समालोचकों ने जापानी रमणियों को चीन और कोरिया देशों की स्त्रियों की तरह अप्रयोजनीय और स्वतंत्र सत्ता हीन सामाजिक जीव समझ रक्खा है । किन्तु पूर्व समय में, विशेषतः बौद्ध और कनफ्यूसीय धर्मों के प्रचलित होने के पहले, स्त्रियों के द्वारा जापान में तरह तरह के अलौकिक कार्य्य हुए हैं । उस समय स्त्री पुरुषों की अवस्था एक सी ही थी । "पुरुष ही सब कुछ हैं, रमणियां कुछ नहीं" यह बात तब तक जापान में प्रचलित नहीं हुई थी । राजनैतिक क्षेत्र में भी स्त्रियां क्षमताशालिनी हो गई थीं । इतिहासों से यह भी मालूम होता है कि जापान का राज्य ६ रानियां कर चुकी हैं । रमणियां उस समय शारीरिक, मानसिक, या नैतिक, किसी अंश में भी पुरुषों से कम नहीं थीं । वे लड़ाइयों में अद्भुत वीरत्व दिखा कर गौरवान्विता और प्रख्याता एवं अच्छे २ ग्रन्थों के लिखने के कारण साहित्य जगत् में यशस्विनी हो चुकी हैं । यद्यपि उस समय कोई बालिका विद्यालय नहीं था, किन्तु उस समय के रमणी-समाज की यह क्षमता, और चरित्र देख कर स्वभावतः ही मन में यही उदित होता है कि पुरुषों से प्राचीन रमणियां कम शिक्षिता नहीं थीं ।

इसके पीछे बौद्ध और कनफ्यूसीय धर्मों के समय से स्त्रियों की अवस्था बदलने लगी । किन्तु यह भी सत्य है कि रमणियों के प्रभाव ही से इन धर्मों का प्रचार हुआ । जापान में बौद्ध धर्म की पूर्व प्रचारिका जापानी रमणियां ही थीं । इस धर्म की जड़ का पता लगाने भारतवर्ष में जेनसिम्नि,

———

* प्रवासी के एक लेख के आधार पर ।

(६) फ़ोजा तथा विलायती ... तथा अन्य स्थलों में अप विदुषियां आई थीं। केवल उस द्रव्य को स्वास्थ्य ही, बौद्ध एवं कन्फ्यूसीय धर्म्मों के समय में भी बहुत दिनों तक राजनैतिक और साहित्य क्षेत्र में स्त्रियों की प्रधानता रही।

फ्यूडल तंत्र (Feudal) के समय से जापान में स्त्रियों की स्वाधीनता घटने लगी, स्त्री-शिक्षा बन्द हुई, स्त्रियों का घर से बाहर निकलना बन्द किया गया एवं अविद्या का अधिकार हुआ।

जब पाश्चात्य सभ्यता का प्रकाश जापान में पहुंचा, तो स्त्री-शिक्षा का पुनर्जन्म हुआ। कई विद्यालय बने। गवर्नमेण्ट ने भी उचित समझ कर स्त्री-शिक्षा के लिये कानून बनाया। इसके थोड़े दिनों बाद सर्कार की तरफ़ से नार्मल स्कूल स्थापित हुआ। अध्यापक जिनज़ोनरुसी ने लिखा है कि "वे स्त्री-शिक्षा की उपयोगिता समझ कर उसकी शिक्षा-प्रणाली जानने के लिये अमेरिका गये और वहां के सब विद्यालयों को देखने लगे। वहां से लौट कर उन्होंने जापान की स्त्री-शिक्षा पर एक पुस्तक के द्वारा राय प्रकट की। पुस्तक पर जापानियों का ध्यान आकर्षित हुआ, और उससे "कोटा जोगका" (बड़े बालिका विद्यालय) की स्थापना हुई।

इसके पीछे सन् १६०१ में अध्यापक महाशय का 'बालिका विश्वविद्यालय' स्थापित हुआ। केवल जापान में ही नहीं, किसी देश में भी ऐसा विद्यालय नहीं है। सबसे अच्छा एक ही, यह बालिका विश्वविद्यालय है। इस विद्यालय में तीन विभाग हैं। (१) होम (Home) या गृहस्थली विभाग (२) जापानीय साहित्य भाग एवं (३) अंगरेज़ी साहित्य विभाग।

विश्व विद्यालय के खुलने के समय अधिष्ठाताओं ने प्रत्येक विभाग में, ३०, ३०, बालिकाओं के आने की आशा की थी। किन्तु थोड़े ही दिनों में बालिकाओं की संख्या बढ़ गई। पहिले दो विभागों में सो, सौ, और तीसरे में पचीस कुल ढाईसो बालिकाएं विश्वविद्यालय में भर्ती हुई। पिछले वर्ष में ही, पाँचसौ, दूसरे में ८०० तीसरे में ही १००० बालिकायें होगई। इससे ज्ञात होता है कि जापानियों को स्त्री शिक्षा से कितना प्रेम है।

हिन्दुस्तानी स्त्रियों की मारीशस के टापू में शोचनीय दशा *।

सन् १८३४ से हिन्दुस्तानी पुरुष और स्त्री मारीशस के टापू में बसने तथा कुछ समय तक काम करने के ठेके पर भेजे जाने लगे। यह कहना असंगत न होगा कि इसकी प्रथा सभ्यता के रूप में गुलामी है क्योंकि जिस प्रकार हिन्दुस्तानियों को मारीशस में रहना और काम करना पड़ता है उसमें स्वतंत्रता की झलक भी नहीं है। शुरू २ में स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा बहुत कम जाती थीं इस लिये मारीशस की गवर्मेंट ने क़ानून पास किया जिसके कारण यह आवश्यक हुआ कि १०० मनुष्य के लिये ३३ स्त्रियां भी भेजी जांय। हिन्दुस्तानी दलाल ग़रीब अबलाओं को जिनमें उच्च जाति वाली भी होतीं हैं, कलकत्ते फुसला कर ले जाते हैं और कदाचित यह कहना असंभव नहीं है कि इस कार्य में इमीग्रेशन एजेन्ट (Immigration Agent) की भी जिसके ही ऊपर मनुष्यों को बाहर भेजने का भार रहता है साजिश होती है। कलकत्ते से यह सब पुरुष और

* मि० मन्नोलाल बेरिस्टर ने एक पत्र भारतीय स्त्री मण्डल में भेजा था उसी का सार रूप यह लिखा गया है।

स्त्रियां फुसला कर और लोभ दे कर मारिशस भेजी जाती हैं। पुत्रियां इस प्रकार अपनी माताओं से, बहिनें अपने भाइयों से और स्त्रियां अपने पति से अलग कर दी जाती हैं और अपनी संख्या से तिगुने पुरुषों के साथ मारीशस भेजी जाती हैं। इन स्त्रियों की दशा इस प्रकार की रक्खी जाती है जिसे देख कर नीच से नीच कठोर से कठोर पुरुष भी लज्जित हो और कदाचित पशुओं के जनाने वाले व्यापारी भी इस प्रकार से अपने पशुओं की दुर्दशा न करते होंगे। ये बेचारी गरीब अबलायें जो कि कानून आदि कुछ भी नहीं जानतीं और पुलीस के नाम से घबड़ाती हैं इमीग्रेशन के अफसर के सामने सहम जाती हैं और दलालों के कहने पर अपनी स्वतंत्रता, गृह, जात पांत को तिलांजली दे देती हैं और अपने को किसी कुली आदि की स्त्रियां बतला देती हैं या जहाज पर किसी पुरुष को अपना पति बना लेती हैं या मारीशस पहुंचने पर किसी पुरुष को चुन लेती हैं। मैं स्वयम् ऐसे मामलों को जानता हूं जिनमें दो २ तीन २ पुरुषों के साझे में एक ही स्त्री रही हो। इन बातों का कहना सभ्यता के विरुद्ध है किन्तु कर्तव्य कहलाता है और हम आशा करते हैं कि आप लोग हमें क्षमा करेंगे और साथ ही साथ यह भी आशा करता हूं कि स्त्रियों के पद को ऊंचा चाहने वाले नेता लोग अपनी गरीब बहिनों के लिये कुछ उद्योग करेंगे।

जिस अपमान के साथ हिन्दुस्तानी पुरुष और स्त्रियां १८३४ से मारीशस में लाई जाती हैं उसका पूरी तरह से वर्णन करना मेरे लिये असम्भव है। लेख को कम करने के लिये मैं यह कहता हूं कि हिन्दुस्तानी पुरुष और स्त्रियां मारीशस में बस गये हैं उन लोगों ने अपनी मेहनत संयम और कम खर्च से न केवल अपनी स्वतंत्रता पाली है किन्तु अपने संचित ध[illegible] तब से आज अन्तः [illegible] है और गृहस्थ को [illegible] हमें कहते आनन्द होता है कि ये लोग अपने सजातीय भारत में रहने वाले भाइयों से अधिक धनी भी हैं किन्तु स्वतंत्र अबलाओं को भी दुःख है जिसे कि हमें पूर्ण आशा है कि भारतीय गवर्मेंट चाहे तो दूर कर सकती है। अब हम मारीशस में रहने वाली स्त्रियों को दो भागों में विभक्त करते हैं (१) जो कुली हैं (२) जो स्वतंत्र हैं और हम आशा करते हैं कि आप लोग दोनों प्रकार की स्त्रियों के दुःख दूर करने की चेष्टा करेंगे।

कुली स्त्रियां।

मारीशस में पहुंचने पर यदि वे अपने हिन्दुस्तानी पति को छोड़ने पर तथा फरासीसियों को अपना पति बनाने पर जो कि चीनी के कारखानों में नौकर रहते हैं, और जिनके मातहती में उन्हें हर मिनिट रहना पड़ता है, नहीं राज़ी होतीं तो वे इन स्त्रियों पर अत्याचार करते हैं।

स्वतंत्र स्त्रियां।

फरासीसी कानून के अनुसार जिससे कि मारीशस में काम होता है कोई विवाह जो कि Status civil अफसर के सामने नहीं होता नियमानुकूल नहीं समझा जाता। बहुत से हिन्दू और मुसलमान इतने समझदार नहीं होते कि उस दिक्कत और तरद्दुत का जो कि उनको बच्चों और औरतों को उस हालत में उठानी पड़ती है जब कि उनका विवाह (जो कि मोलवियों और पुरोहितों के द्वारा किया जाता है) वहां के कानून के मुताबिक नाजायज समझा जाता है पहले ही से ख्याल कर लें। कचहरी तथा गवर्मेंट के कागजातों में बहुत सी मुसलमानों और हिन्दुओं की स्त्रिया उढ़री के नाम से लिखी जाती हैं चाहे वे भले ही घर की

(६) फौजातथा विलायती
…) तथा अन्य स्थलों में अप…
क्यों न उस द्रव्य को स्वास्थ्य… ऐसा होता है कि बेचारी स्त्रियां उन मर्दों से जिन्हें कि हमेशा से वे अपना पति समझती आती हैं (क्योंकि उनका विवाह हिन्दू और मुसलमान रीति से उनके साथ हुआ है) जबरदस्ती घर से निकाल दी जाती हैं। तब वे बेचारी वहां के मजिस्ट्रेट और जजों से जा कर प्रार्थना करती हैं कि वे उनके पति लोगों को ठीक राह पर लावें जिससे भला उनके बच्चों की परवरिश तो हो किन्तु मजिस्ट्रेट क्या करें। वे लोग ऐसे मामलों में कुछ नहीं कर सकते और उन बेचारी स्त्रियों को यह कर कि वहां का कानून हिन्दू और मुसलमान पुरोहितों के द्वारा कराये हुए विवाहों को नाजायज मानता है बिदा कर देते हैं। आप लोग अनुमान कर सकते हैं कि ऐसे फ़च्च ला से उन बेचारी अबलाओं की कैसी दुर्दशा होती है। गत वर्ष रायेल कमीशन मारीशस में बैठा था और इस पर विचार भी किया गया था और कमिश्नरों ने अपनी रिपोर्ट के २८६—६०, पैराग्राफ में यह सिफारिश भी कर दी है कि यह फ़च्च ला वहां के हिन्दू और मुसलमानों के ऊपर न लगाया जाय लेकिन फरांसीसी और वहां के निवासियों के प्रतिनिधि लोग मारीशस की कौंसिल में उसका अवश्य विरोध करेंगे, अतः आप लोगों को चाहिये कि उन लाख डेढ़ लाख मारीशस निवासी हिन्दू अबलाओं के दुःख का ख्याल कर अपने भरसक यत्न कर भारत सर्कार से कालोनीज के सेक्रेटरी आफ स्टेटस् के ऊपर इस बात का जोर दिलावें कि वे फरांसीसियों के विरोध का ख्याल न कर कानून में सुधार कर डालें जिसकी कि गत वर्ष के रायल कमीशन ने सिफारिश की है।

——०——

सम्पादकीय टिप्पणियां ।

मद्रास के सहयोगी हिन्दू ने एक खबर छापी है कि वहां के समाल कोटा फार्म के एक देशी इसाई मि० पेटरसन हैट लगाने के कारण अपने मनेजरी से पदच्युत होकर सहकारी मनेजर बनाये गये हैं। कहा जाता है कि वहां के कृषि विभाग के डिरेक्टर साहब मि० कोच्मैन ने उनसे कहा था कि टोप तुम्हें अच्छी नहीं मालूम होती तुम साफा बांध कर दफ्तर में आया करो। मि० पेटरसन ने इस आज्ञा का पालन नहीं किया इस लिये वे पदच्युत किये गए। उन से यह भी कहा गया है कि यदि वे अब आज्ञा का उलंघन करेंगे तो उनके वेतन में भी कमी की जायगी। मि० पेटरसन का कथन है कि वे जन्म से ही हैट लगाते आये हैं और वह उसे नहीं बदल सकते। यह इस बात का एक अच्छा नमूना है कि अंग्रेज, जिनके दिमाग में बचपनही से personal right and freedom का तत्व भरा रहता है उनका आत्मगर्व में आने पर कैसा दिमाग बढ़ जाता है। यदि मि० पेटरसन के स्थान पर कोई हिन्दुस्तानी होता तो आज उस की क्या गति होती! यहां पर एक प्रश्न उठता है कि मि० कोचमैन से यदि उनका कोई अफसर यह कहै कि उनका नाम उनके पद के योग्य नहीं है या कि वह उन्हें शोभा नहीं देता और इस कारण वे अपना नाम बदल डालें तो क्या वे अपना नाम बदल डालेंगे।

पाठकों को विदित है कि विद्यार्थियों के सभा आदि में जाने के लिये कितने सख्त कानून बन गये हैं। भारतीय विद्यार्थी अपने जातीय सभा (National assembly) में भी नहीं जा सकते। किन्तु बड़े आश्चर्य और खेद की बात है कि यहां के एक प्रसिद्ध कालेज के प्रोफेसर (शिक्षक) कलकत्ते से वहां की एक प्रसिद्ध वेश्या को प्रदर्शिनी में लाने के लिये गये थे। ऐसी स्थिति…

ट्रेनिंग देने के अधिकारी हैं और विद्यार्थियों को यही शिक्षा भी दी जाती है कि वे गुरु का अनुकरण करें। क्या हमारी सरकार हमारे विद्यार्थियों का ऐसे प्रोफेसरों की शिक्षा में रहना भी उन के कांग्रेस में जाने से अधिकतर श्रेय समझती है?

हिन्दुओं पर मुसलमानों की दया।

समय २ पर देश के निवासियों की गणना हुआ करती है इस गणना से यह लाभ होता है कि इस बात का पता लगता है कि देशवासियों की संख्या घटी है या बढ़ी और यह बात जानने को कि किस जाति या जनसमूह में घटती बढ़ती हुई है यह भी लिखा जाता है कि कौन २ किस २ जाति या जनसमूह का मनुष्य है। भारतवर्ष में मुसलमानों की संख्या ५ करोड़ और करीब पचास लाख के है हिन्दुओं की संख्या करीब २२ करोड़ के है इस लिये जहां कहीं अधिकार का प्रश्न उठता है तो न्याय से यही कहता है कि जहां एक मुसलमान को अधिकार मिले वहां ६ हिन्दू को अधिकार मिलने चाहियें—मुसलमान भारतवर्ष के "चौकीदार" हैं यह कह और मुसलमानों में "विनाशक शक्ति" (Dynamic force) है इसकी धमकी दे वे हक से ज्यादे अधिकार के मालिक बन बैठे हैं परन्तु तृष्णा बुरी होती है इतने से वे संतुष्ट नहीं हैं। उनकी अब यह कोशिश है कि किसी भांति यदि हिन्दुओं की संख्या कम हो जाय तो मुसलमानों को ज्यादे अधिकार मिल जांयगे। इसी उद्देश से मुसलमानों ने सरकार से यह प्रार्थना किया है कि अगली सन् १९११ की गणना में छोटे २ जाति के हिन्दुओं की—मेहतरों और डोमों की—गणना हिन्दुओं में नहीं होनी चाहिये। क्यों? क्योंकि उनकी हिन्दू समाज में गणना न होने से मुसलमानों को ज्यादे अधिकार मिल जांयगे और वे खा[illegible] स दुनियां में दीन इसलाम दिनोंदिन फैले और हिन्दू काफ़िरों का नाम निशान भी इस हिन्दुस्तान से मिट जाय—अफसोस इतना ही है कि खोदा को अभी इतना तास्सुफ नहीं आया है कि वह कुछ एंगलो इंडियन अंगरेज़ों की तरह सिर्फ मुसलमानों का भला चाहे और हिन्दुओं का नाश होने दें।

पाठकों को विदित है कि सर विलियम वेडरबर्न कुछ और कांग्रेस के सभासदों के साथ एक डेपूटेशन लेकर लार्ड हारडिंग के पास गये थे। यह पहिला ही अवसर था कि वाइसराय ने कांग्रेस को वास्तव में कांग्रेस माना और उसके डेपूटेशन से मिलने की कृपा दिखलाई। एक बार पहिले मद्रास की कांग्रेस ने भी डेपूटेशन भेजने की इच्छा प्रगट की थी किन्तु लार्ड एलगिन ने उससे मिलना अस्वीकार किया और कहा "कि हमारे पूर्वजों ने कोई ऐसा उदाहरण नहीं दिखलाया है।" आत्माभिमानी लार्ड कर्जन ने तो शाही मिजाज से साफ २ कह दिया कि वे कांग्रेस के सभापति से सभापति की हैसियत में नहीं मिल सकते। हम लोग लार्ड हार्डिंग की इस उदारता के लिये उन्हें धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि आगे आने वाले वाइसराय भी इसी पथ का अवलम्बन करेंगे। लार्ड हार्डिंग का उत्तर सन्तोषदायक है और उसमें उदारता तथा भारतवासियों के प्रति सहानुभूति झलकती है। वाइसराय के उत्तर का सार यह था कि वह किसी भी जाति विशेष का पक्षपात न कर सब पर एकही प्रकार का न्याय करेंगे।

अब की बार पार्लीमेन्ट के सभ्यों के चुनाव में लिबरल दल की जीत रही और यह आशा है कि आइरिश लोगों को होमरूल मिल जायगा। अलस्टर के निवासी यह कह रहे हैं कि यदि आइरिश लोगों को होमरूल दिया जायगा तो वे

(६) फौजातथा विलायती ... तथा अन्य स्थलों में अप... अपने उस द्रव्य को स्वास्थ्य ... इसी प्रकार स्वतंत्रता की श्रीमिळीशुक वोट चाहने वाली कोमळांगी ळळनायें भी कह रही हैं कि यदि उन्हें वोट देने का अधिकार न मिळा तो वे भी शस्त्रों का प्रयोग करेंगी। निस्सन्देह यह कोरी धमकियां प्रतीत होती हैं और कोई भी विचारवान यह नहीं समझता कि वास्तव में शस्त्र काम में ळाया जावेगा। वृटिश पेनळ कोड इतना कहने वाळों को भी दोषी नहीं ठहरा सकता किन्तु उसका बच्चा इण्डियन पेनळ कोड और प्रेस ऐक्ट गवर्नमेंट क्या पुलिस वाळों के कामों की मुक्तकंठ से आळोचना भी नहीं सहन कर सकता। बाप से आगे न बढ़ा रहा तो वह ळड़का ही क्या?

नया निकला हुआ मुसलमानी साप्ताहिक समाचार पत्र सहयोगी कामरेड से मालूम हुआ कि एक उदारचेता मुसलमान महाशय ने 'कामरेड' के पास १५००) पंद्रह सौ रुपये की एक अच्छी रकम इस लिये भेजी है कि इसी रकम में से ऐसे मुसलमान विद्यार्थियों (अंडर ग्रेजुएटों) के सालाना चंदे का कुछ अंश दिया जाया करे कि जो लोग पूरा दाम दे कर यह अखबार नहीं खरीद सकते। क्या हमारे हिन्दू उदारचेत्ता धनी जनों में से कोई ऐसा आवश्यक दान न करेंगे जो उन के हिन्दू जाति और उनकी मातृभूमि के हित में सहारा हो और हिन्दी भाषा की उन्नति हो! निःसंदेह यह उदाहरण अनुकरण करने योग्य है और हम उस दानी मुसलमान भाई को इस सत्दान के लिये बधाई देते हैं कि उनका यह धन उनके जाति के हित में व्यय होता है।

इस अङ्क में डाक्टर मणीलाल बैरिस्टर एट ला का एक लेख मारीशस (मिर्च) के टपू में हिन्दुस्तानी स्त्रियों की दुर्गति के विषय पर छापा गया है। पाठक उसे ध्यान पूर्वक पढ़ें और उस कलंक और दुख को मिटाने के लिये डाक्टर साहब के कहे उपायों से तुरन्त काम आरंभ करें। क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सब की स्त्रियों के साथ वहां वही बर्ताव है। खेद की बात है कि इसमें हम लोगों का ही भारी अपराध है। हम लोगों में क्या इतना जातीय गौरव है क्या इतना राष्ट्रीय सात्विक अभिमान है कि हम इस अप्रतिष्ठा को बोध कर सकें। हम लोगों में क्या इतना आत्मगौरव है कि समझ सकें कि विदेश में जाकर स्त्रियों को यदि अप्रतिष्ठा सहना पड़े तो उस का कुछ अर्थ ही और होता है। क्या हम में इतनी राजनैतिक चर्चा है, आर्थिक ज्ञान है कि हमारी स्त्रियां के किसी टपू में जाने पर उनकी इच्छा के विरुद्ध उनके देश वेश के व्यवहार, समाज की रीति भांति के विरुद्ध यदि उनका विवाह कराया जाय वा उनके साथ बुरा बर्ताव किया जाय तो वह हमारे भद्र भाव पर कुछ दूसरी रोशनी डालता है।

हिन्दू और मुसलमान की एकता।

पिछली संख्या में हिन्दू सभा की आवश्यकता दिखाते हुये हम ने लिखा था कि इसी के चिरस्थायी होने पर दोनों जातियों में मेल होने की संभावना हो सकती है। पाठकों को यह भी विदित है कि इन्हीं दोनों जातियों में मेल कराने का विचार कर पिछली कांग्रेस के सभापति सर विलियम वेडरबेन यहां पधारे थे। अस्तु सर विलियम के सभापतित्व में दोनों जातियों के आठ २ प्रतिनिधियों की एक सभा बनाई गई है जो इस बात पर विचार करेगी कि दोनों जातियों में किस प्रकार मेल किया जाय। कांग्रेस वाले किस प्रकार निष्कपट होकर और सभ्यता पूर्वक इस कार्य को किया चाहते हैं यह जो लोग कांग्रेस में आये थे उनसे छिपा नहीं है। कांग्रेस वालों की इस उदारता की ओर ध्यान देते हुये हम जब मुसलिमलीग की कार्यवाही को देखते हैं, जिसकी बैठक अभी नागपुर में हुई थी तो चित्त में बहुत दुःख होता है। हिन्दू पठित समाज को यह विश्वास था कि जब मुसलमानों के नेता हिज हाईनेस आगा खां

और मि० अमीर अली ने सर विलियम से हिन्दु और मुसलमानों में मित्रता कराने की बात उठाई थी तो मुसलमान लोग भी अपनी कानफरेन्स में जाति का घमंड न दिखावेंगे और कोई बात ऐसी न कह बैठेंगे या कोई ऐसा प्रस्ताव न पास करेंगे जिस से मेल होने में बाधा पड़े। यहां पर यह कहना आवश्यक नहीं प्रतीत होता कि कांग्रेस वाले इस बात की कितनी फिक्र रखते हैं कि कोई ऐसी बात न हो जाय जिससे किसी जाति वाले को कुछ वास्तविक दुःख पहुंचे। यदि कांग्रेस और मुसलिम लीग के रिपोर्टों का मिलान किया जाय तो हमें पूर्ण विश्वास है कि पढ़ने वाले को यह प्रगट हो जायगा कि मुसलिम लीग द्वेष भाव फैलाने में कितनी अग्रसर हो रही है। कांग्रेस आज पर्यन्त ऐक्य के लिये चिल्लाती रही किन्तु मुसलिम लीग की पिछली कानफरेन्स में आरम्भ से अन्त तक "Separation" Separation" अलग रहो अलग रहो की ध्वनि गूंजती रही! रिसेपशन कमेटी के सभापति खान बहादुर मलिक की राय में हिन्दू मुसलमानों को सब सरकारी जगहों दफ्तर, कोर्ट, स्कूल आदि में भी भिन्न २ दरवाज़ों से जाना चाहिये। खान बहादुर तो केवल रिसेपशन कमेटी के ही सभापति थे उन्होंने जब इतना कहा तब कुल कान्फरेन्स के सभापति मि० सैयदनबी उल्ला को तो सर्वथा उनसे अधिक कहने का हक़ ही था। हिन्दू और मुसलमानों के विरोध के कारण बतलाने की अभिलाषा ने आप पर प्रबलता दिखलाई और आपने "की तो बूझै लाल बुझक्कड़ और न बूझै कोय" वाली कहावत को चरितार्थ करते हुये कहा कि हिन्दू लोग शिवाजी के उत्सव को बड़ी धूम धाम से मनाते हैं जिससे मुसलमानों के चित्त में खेद होता है।

"What is the inner meaning of Shivaji celebrations ? Do not they suggest the revolt of Hinduism against Islam and by implication against *foreign domination* * The apotheosis [illegible] us a *foretaste*, as it were, of what the *poor Mohemmadans have to expect under Hindu hegimony*. If then our feelings are irriated, is it to be wondered at ?"

माशा अल्लाह—क्या कहना है। मियां नबी उल्ला साहेब इस को आप भी मानेंगे कि सब से ज्यादे हिन्दू मुसलमानों में नाइत्तिफाकी पंजाब में है और उसी से कुछ कम यू० पी० में। फर्माइये तो कि इन जगहों में कब और किस मौके पर शिवा जी का उत्सव मनाया गया है? अजी हज़रत आप को बी० उर्दू की कसम बताइये तो आप प्रेसीडेन्टी का एड्रेस देते थे या ख्वाब देखते थे शिवा जी उत्सव तो पूना की तरफ मनाया जाता है लेकिन वहां तो इतना ज़हर नहीं फैला है। असिल बात यह है कि जब आप कोई माकूल वजह मुसलमानों की हिन्दुओं से नाइत्तिफाकी रखने की न बता सके तो आपने यह गैरमाकूल बात बकदी।

मुसलमानों का अपने प्रतिनिधियों को अलग चुनने के अधिकार के बारे में आपने फर्माया कि हिन्दुओं को इसके विरोध में कुछ कहना उचित नहीं है।

Have not the Hindus a permanent standing majority ? What more do they want ? Why do they grudge us separate *adequate* representation ? Being secure in their over whelming majority, *it looks as if under the plausible plea of unity they want to lord over us, to have it all their own way, and to stiffle our feeble voice*."

आप फर्माते हैं कि हिन्दुओं की संख्या तो अधिक रहती है (गोया यह आपही की इनायत है) और इससे ज्यादे हिन्दू क्या चाहते हैं। अफसोस है कि हिन्दुओं की और कांग्रेस की चिल्ला-

* The Italics are ours.

(६) फौजातथा विलायती हुईं) तथा अन्य स्थलों में अपनी पहुंची और वे बार बार उस द्रव्य को स्वास्थ्य ... है कि हिन्दू न्याय चाहते हैं न्याय न कि पक्षपात। आख़ीरी जुमले के लिये हमें गोसाई तुळसी दास की एक चौपाई याद पड़ती है।

"जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी॥"

सैयद साहब ने तो इतना ही अपनी ज़बाने शीरी से फर्माया था लेकिन मि० महमदअली ने अपनी राग अलग ही अलापी। आप ने कहा कि अगर हिन्दू सच ही मेल चाहते हैं तो उन्हें चाहिये कि वे उर्दू को राष्ट्र भाषा मान लें। क्यों नहीं, मेल न होने से हिन्दुओं ही का तो नुकसान है वे ज़रूर ही बी उर्दू का गले को हार बनावेंगे।

आज पर्यन्त मुसलिम लीग वाले और उनके नेताओं ने कभी हिन्दुओं से मेल करने की बात नहीं चलाई न इसकी उन्होंने कभी इच्छा ही प्रगट की फिर एकाएक उनके नेताओं को क्या सूझी कि एका एका की पुकार सुनाई देने लगी। यह शायद हमारे सीधे साधे पाठकों की समझ में न आया हो। हमारी समझ में तो लार्ड हार्डिंग ने, मुसलमान नेताओं के अभिनन्दन पत्र के उत्तर में जो शब्द कहे थे वेही इस मेळ के पुकार के कारण हैं।

"The previliges of one class were the disabilities of another" ! .... Even handed justice to all races, classes and creeds.

कांग्रेस।

इस वर्ष की कांग्रेस बड़ी सफलता पूर्वक समाप्त हुई। सूरत के विद्वेष और विरोध के पश्चात् कोई अधिवेशन ऐसा बड़ा न हुआ था। लगभग ६५० प्रतिनिधि (डेलीगेट) आये थे और भारत के सब प्रान्तों से। बंगाल जो प्रायः इधर कांग्रेस से उदासीन सा रहता था इस साल उसने भी कुछ विशेष सहयोग दिया। ८० प्रतिनिधि वहां के थे। सर विलियम वेडरबर्न जो भारत के पुराने सच्चे हितैषियों और मित्रों में एक हैं और मुख्य हैं, इसके सभापति हुए थे और अपनी ७२ वर्ष की वृद्धावस्था में, बीमारी की दशा में भी, हिन्दुस्तान की सच्ची हितेच्छा के वशीभूत होकर उनका पांच छ हजार मीलों की समुद्र यात्रा करके यहां आना और सब वर्ग और दलों में एकता, प्रेम, सच्चा भ्रातृभाव फैलाने की इच्छा से आना-यह सब घटनाएँ ऐसी हुई हैं जिनसे कलकत्ते के कांग्रेसी भाइयों को मालूम हो गया कि उदासीन रह कर काम करने से यह अधिक उचित, पुरुषोचित, होगा कि सब लोग मिळजुळ कर काम करें। क्योंकि इसमें काम भी अधिक होता है और अपने तथा सब के लिये विशेष लाभ होने की आशा की जाती है। प्रस्ताव प्रायः वही रहे जो हर साळ हुआ करते थे और जिन्हें पाठक वर्ग प्रायः साप्ताहिकों और दैनिकों में पढ़ चुके होंगे। इस वर्ष कांग्रेस के लिये नई बात यह हुई कि कांग्रेस का एक डेपुटेशन बड़े लाट हिज एक्सिलेन्सी दि वाइसराय लार्ड हार्डिंज की सेवा में गया था जिसने एक अभिनन्दन पत्र दिया।

दूसरी नई बात यह हुई कि एक मनतव्य किया गया कि तीन वर्ष लों दो चार प्रतिष्ठित अग्रणी गण विलायत में रह कर विलायत की प्रजा को हिन्द की प्रजा की दशा का ज्ञान करावें, जिसके लिये ३ वर्ष में साठ हजार रुपयों का चन्दा हो गया जिसमें से २०,००० वहीं पर जमा हो गया, इसमें सबसे बड़ा दान पारसीकर्ण मिस्टर टाटा का पांच हजार, राजा रामानन्द मद्रास का १५०००) और वीरवर प्रोफेसर राममूर्ति का एक सहस्र है।

दिसम्बर के आखिरी सप्ताह में प्रयाग में अब की सभा समाजों और कानफरेंसों की धूम थी—प्रायः सब सारी जाति के सभासद अपनी २ जाति के भलाई और उन्नति के लिये तत्पर देख पड़ते हैं। भिन्न जातियों को भिन्न आवश्यकताओं के लिये विशेष उद्योग करना होगा परन्तु सभी जाति और समाज में विद्या के वृद्धि की आवश्यकता [illegible] तब से आज अन्ततः [illegible] का बिधवा होने से बचे [illegible], और दूसरे [illegible]—इसमें यह देखकर खुशी हुई है कि प्रायः जितनी सभा समाज और कानफरेंस हुई हैं सभों में विद्या के प्रचार के लिये उद्योग किये जाने को और बाल विवाह रोकने के लिये विचार प्रकट किये गये हैं।

विषय सूची।

अभ्युदय प्रेस प्रयाग में कृष्णप्रसाद पांडे ने छाप कर प्रकाशित किया।

(६) फ़ौजा तथा विलायती
) तथा अन्य स्थलों में अप
उस द्रव्य को स्वास्थ्य

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १] माघ–फरवरी सन् १९११ [संख्या ४

प्रार्थना ।

[पाण्डेय लोचनप्रसाद लिखित]

१

आइये हे भ्रातृगन ! यह प्रार्थना सुन जाइये ।
सुन भुला मत दीजिये कुछ ध्यान इसपर लाइये॥
कौन हैं हम भाइयो ! किनके विमल सन्तान हैं ?
क्या न निज के ज्ञान से पूरित हमारे प्राण हैं ?

२

क्या हमारी योग्यता है ? क्या हमारा धर्म है ?
विश्व में करणीय उत्तम क्या हमारा कर्म है ?
मनुज क्या ? सुर दनुज के भी पूज्य हमही आर्य थे?
बुद्धि विद्या में न हम किस देश के आचार्य थे ?

३

स्वर्ग से भी सुखद सुन्दर यह हमारा देश था ।
खोजने पर भी न मिलता अघ रुजों का लेश था॥
गाय महिषी सकुल निर्भय मोदयुत घर घर रहीं।
पय, दही, घृत तक्र की यह भूमि वर निर्भर रही॥

४

समय पर होती सुधामय सुखद सुन्दर वृष्टि थी।
अन्नपूर्णा नाम से विख्यात भारत सृष्टि थी॥
थी जनों की धर्म में अनुरक्ति उज्वल निश्चला ।
वीर-जननी थी हमारी भूमि शोभित निर्मला ॥

५

पर समय के फेर से यह दास माता हो रही ।
सर्वस्व खो यह कुम्भकर्ण नींद में बस सो रही ॥
हो रहे निज पूर्व-गौरव चिन्ह क्रमशः लोप हैं ।
सह्य हा ! हा !! अब नहीं दुर्दैव का यह कोप है॥

६

अब अहिंसा प्रेम शुचि का पुण्य आश्रम हैं कहां?
आज वह भवभस्मकारी मंत्र-विक्रम हैं कहां ?
विमल तत्वज्ञान की शिक्षा अलौकिक है कहां ?
सर्वज्ञ मंजु मुनीन्द्र कृत दीक्षा अलौकिक है कहां?

७

शुष्क नीरस मलिन निष्प्रभ आज वृक्ष निकुञ्ज हैं ।
शान्ति-सुषमा-नाटिका, मृत, वाटिका के पुञ्ज हैं ॥
मृत्यु भय से विपिन से हैं मृग विहङ्गम भागते ।
देख हिंसा प्रभृति यह पशुवृन्द निजथल त्यागते ॥

८

हीन हो सब भांति गोकुल दीन बाणी बोलती ।
रोग-जर्जर परम दुर्बल हा! चहुं दिशि डोलती ॥

हो गया काया पलट हा! देखते ही देखते ।
आज क्या से क्या हुआ भारत तुम्हारा ओपते !

९

बल, बिभव, विक्रम हुए सब नष्ट निजता खोगई ।
धो गई संपत्ति सारी लोप विद्या हो गई ॥
नित्य गुड़ियों की तरह माता पिता जब मोद में,
हैं कराते व्याह ले के सुत सुता को गोद में ।

१०

तब वहां दांपत्य सुखका बास फिर किस भाँति हो!
बुद्धि, बल, विद्या, बिभवयुत किस तरह वह जातिहो!
श्रवण करके जन्म कन्या का जहाँ विद्वान भी,
बोलते हो व्यथित "वह मरजाय हेहेहरि! अभी!

११

"जो कहीं जीवित रही, सकुटुम्ब हम मर जायंगे,
"जन्म भर दारिद्र्य कन्या जन्म का फल पायँगे ॥"
इस दशा में उचित शिक्षा बालिका क्या पायगी!
हाय! वह आदर्श जननी बीर सुत कब जायगी!

१२

पुत्र पर निज अंब का पड़ता अपूर्व प्रभाव है ।
पुत्र का होता जननि-अनुरूप प्रादुर्भाव है ॥
हो गया अतएव दुख का स्थान हिंदुस्थान है ।
भीरु निर्बल हो रहे ऋषि-वृन्द के संतान हैं ॥

१३

छिप गया सब शौर्य साहस पूज्य आर्यावर्त का ।
ग्रास भारत हो गया दुर्भिक्ष दुख रुज गर्त्त का ॥
हीन से भी हीन नर अस्पर्श्य, अपने मित्र हों ।
किंतु अपने अंग रूपी शूद्र गण अपवित्र हों ॥

१४

दूर है छूना उन्हें वे पास आ सकते नहीं ।
मिष्ट बाणी या कभी आस्वास पा सकते नहीं ॥
हो निपट निश्चेष्ट और निकृष्ट पशु अज्ञान भी ।
नित्य के धिक्कार से आता निकट नहिं स्वान भी ॥

१५

शूद्र ऊँची जाति के तब नित्य के दुतकार से ।
अर्चना कब तक करें उनके पदों की, प्यार से !
सर्वदा व्यवहार में सम भाव होना चाहिए ।
उभय दिशि में निष्कपट सद्भाव होना चाहिए ॥

[भाग

ईश के हग में [illegible]
विश्व में स्वात[illegible] तव से [illegible] त्य है ॥
शूद्र होते नीच भी हैं [illegible] सदा ।
दूर करना धर्म है निज बन्धुगण की आपदा ॥

१७

बन्धु का बल विश्व में होता अतुल है, हे सखे!
प्रेम शूद्रों से न ऊँची जाति क्यों तब फिर रखे!
तुच्छ तुष से रिक्त कर नाज जम *सकता नहीं।
छिद्र लघु होतेहुए भी †बन्ध ‡थम सकता नहीं॥

१८

छाल से भी रहित होकर तरु न जी सकते कभी।
अङ्ग में से अल्प अन्तर नष्ट कर देता सभी॥
शूद्रगण को नीच कह कर ऊंच हम होने चले।
काट पद को अन्य अवयव रह कभी सकते भले!

१९

पांव कटते लोग हा! हा! पंगु जो हो जायगा,
विकट जीवनयुद्ध में फिर विजय कैसे पायगा!
युक्त हो सब अङ्ग से भी आज हिन्दू जाति तू!
देख पीछे है पड़ी भव-दौड़ में किस भांति तू!

२०

अतः तज के छल घृणा, कर नित्य पालन कर्म का।
ह्रास दिन दिन हो रहा है देख शाश्वत धर्म का॥
प्राप्त बल विद्या विभव सम्पत्ति सुख होंगे सभी।
निरत रह कर्त्तव्य में गत रोग दुख होंगे सभी॥

२१

एक मग में, एक मति से, साथ होकर सब चलें।
हों न हम कर्त्तव्य-च्युत रवि भूमि चाहें तो टलें॥
जान भाई तुल्य चारों वर्ण हिलमिल के गले।
हम कर जय-गान मां का, प्राप्त होंगे फल भले॥

२२

टेक पूर्वक मान मर्यादा हमारी हम रखें!
सुख तथा स्वाधीनता के फल सुधोपम हम चखें!
त्यागकर आलस्य मद मत्सर विषय की वासना।
कर्म में हों निरत, होगी पूर्ण मन की कामना॥

* उग सकता † मेंड़, बांध ‡ ठहर सकता ।

(६) फौजातथा विलायती
...) तथा अन्य स्थलों में अप
[...इस द्रव्य को स्वास्थ्य... अग्रवाल ।]

प्रकाश में ऐसा प्रतीत होता है कि इस पृथ्वी में जिसमें दिन प्रति दिन इतने व्याह होते हैं, बालक के उत्पन्न होने की प्रसन्नता होती है, बड़े बड़े संग्रामों में जय पाने से हर्ष होता है और जिसमें दिन के नियत समय पर हम बड़े उत्सुक हो स्वादिष्ट भोजन पाते और मारे आनन्द से शीघ्र २ बड़ी आहुतियां अपने उदरकुण्ड में डालते हैं—ऐसे सुखदायक संसार में हमारी बहुत सी मनोकामनायें पूर्ण होती हैं। हम विश्वास करते हैं कि अद्यावधि पर्य्यंत हमारी जो कल्पनायें पूर्ण नहीं हुई वह कल ही पूर्ण हो जावेंगी। सरसरी तौर से यही विदित होता है कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य इन्हीं इच्छाओं को पूर्ण करने का है। परन्तु जब हम इसके मर्म की परख करते हैं तो वहां कोई और ही भेद मिलता है। यह केवल प्रकाश्य में ही प्रतीत होता है आभ्यंतरिक दया कुछ और ही रङ्ग दिखलाती है। जीवन का आनंदित भाग उंचाई की तरफ को बढ़ने का है, अर्थात् जीवन तबही सुखी हो सकता है जब एक वस्तु का प्राप्त करना हम को दूसरी वस्तु प्राप्त करने के लिये उत्तेजित करता है और इस प्रकार एक के अनन्तर दूसरी इच्छा सदैव लगी ही रहती है। यद्यपि हम इस छोटी सी पृथ्वी में रहते हैं जिसमें हम छोटी २ कल्पनाओं और छोटे २ सांसारिक जालों से परिवेष्ठित रहते हैं जिन से छुटकारा पाना इस अल्प जीवन के सामर्थ से बाहर है; परन्तु एक दूरदर्शी मनुष्य सर्वदा नवीन क्षितिज के दर्शन किया करता है। जिस प्रकार ब्रह्माण्ड के अनगिनत नक्षत्रों की यात्रा कभी भी समाप्त नहीं हो सकती इसी भांति उसका जीवन भी होता है, जिसमें अनंत इच्छाओं को कभी विश्राम नहीं मिलता। ये इच्छायें मरण पर्य्यंत सर्वदा बढ़तीही रहती हैं।

सच्चे आनन्द का प्रश्न यह है कि हम किस प्रकार आरम्भ करें न कि किस प्रकार समाप्त करें; हम क्या चाहते हैं न कि हमारे पास क्या है। जिन्होंने इस प्रश्न को हल किया उन्होंने ही सच्चे आनंद का मार्ग पाया और सदा आगे ही बढ़ते रहते हैं; महत आंकाक्षाओं का ही नाम पूर्णानंद है, जिसका होना बड़ी २ जागीरों और रियासतों के होने से कहीं बढ़कर है जो प्रत्येक वर्ष हम को आनंद रूपी आमदनी बढ़ा कर ही दिया करती हैं और इस आमदनी का कभी अंत भी नहीं होता। इन्हीं महान अभिलाषाओं का होना आत्मिक वैभव का प्राप्त करना है। संसार के बड़े २ तत्ववेत्ताओं ने इन्हीं अनंत इच्छाओं के होने का नाम मोक्ष रक्खा है। उनका कथन इस प्रकार है कि मनुष्य आत्मा जब मुक्ति की इच्छा करता है तब परमात्मा की ढूंढ में निरंतर लगा रहता है। भाग्यवशात यदि वह परम ऐश्वर्य धाम में पहुंच जाता है, तब वह उसके अधिपति के अनंत गुणों को मान कर मुग्ध व चकित हो जाता है और आनंद में मग्न हो प्रत्येक गुणों को अपने में धारण करने लगता है। यही उसकी परमगति है यही उसकी मुक्ति है; बस न अनंत गुणवान ईश्वर के गुणों का अंत होना है और न जीव को उनकी यात्रा कर वापिस आना है, वहीं का वहीं उस ही में लय हो जाता है। इन्हीं अनंत गुणों के प्राप्त करने का नाम परमसुख, परमऐश्वर्य, परमानंद, मोक्ष व मुक्ति है। जीवन एक निरस, स्वादरहित अभिनय की भांति हो जायगा जिसका प्रस्ताव ठीक २ प्रकार से नहीं हुआ जब लों हम प्रत्येक अङ्क और गर्भाङ्क का रस न लें। ऐसे मनुष्य के लिये, जिसने न कोई विद्या पढ़ी, न विज्ञान के उद्यान में सैर की और न किसी प्रकार का स्वाद बढ़ाया संसार केवल भिन्न २ रंगों का नाटक है अथवा एक प्रकार से पथरीला उपमार्ग है जिसमें इतने

मनुष्य अपने घुटनों को बलात तोड़ रहे हैं। यह केवल उसकी आशायें और अभिलाषायें हैं जो उसके जीवन और जीवन के रहस्यों को जानने की इच्छा करती हैं जिससे मनुष्य का जीवन धैर्य और सुख से व्यतीत हो सकता है; यह वही कामनायें हैं जिनसे वह संसार, संसार के मनुष्य और संसार की वस्तुओं से बड़ा प्रफुल्ल आनंद और मगन रहता है। इन्हीं आशाओं से वह नित्य प्रातः नवीन २ इच्छाओं और अभिलाषाओं को लेकर उठता है और दिन का कार्य सम्पादन करने से नित्य नये नये आनंद अनुभव करता है। रात्रि को सुख से सोता है प्रातः काल फिर उसही नियम पर चलता है। उसके पास अभिलाषा और वस्तुओं के मर्म को जानने की इच्छा अर्थात् ज्ञानेच्छा रूपी दो नेत्र हैं जिन से वह संसार को आनंददायक दृश्य में देखता है, यही दो नेत्र उसके संमुख युवती को पूर्ण सोलह श्रृंगारों से सुशोभित और सुंदरता युक्त उपस्थित करती हैं, इन्हीं दो चक्षुओं से वह पत्थर के टीलों में अजीब २ करामात देखता है। मनुष्य अपने सारे धन दौलत को बरबाद कर दे, सारी रियासत को आग लगादे, राजा से रङ्क हो जाय परंतु यदि उसमें ये दो आंख हैं तो वह कदापि आनंद से वञ्चित नहीं हो सकता वरन धनवानों से भी धनवान गिना जावेगा। कल्पना कीजिये कि एक मनुष्य तमाम संसार के स्वादिष्ठ भोजनों से आज ही तृप्त हो जाय कि फिर इच्छा न रहे और सकल संसार को आज ही एक ही दृष्टि से देखले जिससे उसको पुनः भिन्न दशाओं के जानने की अभिलाषा न रहे और न किसी प्रकार की आकांक्षा या आशा शेष रहे तो क्या आप विचार नहीं कर सकते कि वह मनुष्य सुख और आनन्द से कितना दूर हो गया है और संसार में कितनी दीन हीन उसकी अवस्था है। वह मनुष्य सैर करने को साथ में केवल एक ही पुस्तक को ले गया है बड़ी होशियारी औ[illegible] होता हुवा धीरे[illegible] के या किसी सर[illegible] से [illegible] [illegible]कारी को देखने लगता है, [illegible] बंद कर चिन्तन करता है, कभी स्वाभाविक दृश्य को देखने लगता है; यह सब वह इस हेतु करता है कि यदि वह पुस्तक को शीघ्र पढ़ले तो अपने सैर के अंतिम भाग को आनंद रहित करदेगा। एक नवयुवक कारलाइल के पुस्तकों को पढ़ता है और साथ ही कई विद्वानों के टीका टिप्पणियों सहित पुस्तक को खतम करता है, अन्त समय वह बड़ी घबड़ाहट से चिल्लाता है और हैरान होता है कि क्या मेरे लिये कारलाइल से आनंद प्राप्त करना नहीं रहा, क्या अब मुझको साधारण समाचार पत्रों ही से समय व्यतीत करना होगा। एक अनुपम उदाहरण इतिहास में इस भांति है कि बादशाह सिकंदर रोता था और दुःखी होता था कि मुझ को अब पृथ्वी में लड़ना नहीं हैं, तमाम संसार मेरे अधीन हो गया अब मैं कहां जाकर नवीन राज्य जीतूं। गिबन ने 'रूम साम्राज्य का उदय अस्त' नामक इतिहास पूर्ण किया, उसको ज्ञात हुआ कि वह लिखने का आनंद थोड़े ही समय में लीन हो गया और उसको उदास और निराश होकर लेखनी बंद करनी पड़ी।

सौभाग्य से संसार के सबही मनुष्य चंद्रमा के लिये रुदन करते हैं और सब के सब अप्राप्त इच्छाओं की प्राप्ति की अभिलाषा करते हैं, सब मनुष्य सुमेरू पर्वत के पाने की इच्छा रखते हैं और सबही देवताओं के कोषाध्यक्ष कुवेर बनना चाहते है, कोई भी प्राप्त वस्तु से सन्तुष्ठ नहीं होता। जिस प्रकार गेहूं का वीज पूर्ण होने पर और गेहूं को उत्पन्न करता है इस ही प्रकार इच्छा रूपी बाल लवाया जाता है कि उसके बीज से और सहस्त्रों इच्छायें उत्पन्न होती हैं; परन्तु आनन्द बोने में है न कि लवाने में, जो आनन्द और सुख और आशायें बोते समय होती हैं वह

(६) फौजातथा विलायती प्रयोग में है व सच्चे) तथा अन्य स्थलों में अपारते हैं कि जब हमारा उस द्रव्य को स्वास्थ्य आनन्द होगा और हमारे तमोमें दुःखों का नाश हो जावेगा, परंतु बालक का जन्म केवल नई चिंताओं का आरम्भ है; दांत निकलेंगे, घुटनों से चलने लगेगा, अक्षरारम्भ होगा, व्रतबंद होगा, विवाह होगा इत्यादि प्रकार को चिंतायें निरंतर लगी ही रहती हैं और जीवन के अंतिम भाग तक उसके स्वास्थ्यादि की चिंता नहीं जाती। तुम विचारते हो कि जब तुम्हारा विवाह होगा तुम पर्वत के उच्च शिखर पर पहुंच जावोगे और तब से तुम्हारा मार्ग पर्वत की निचली ढालुओं में होता हुवा जायगा जिसमें तुम को कठिनता उठानी नहीं पड़ेगी; परन्तु तुम्हारी मंगनी का अन्त होताहै कि विवाह आरम्भ हो जाता है। गर्वित और असन्तुष्ट आत्माओं में प्रेम का उत्पन्न करना निसंदेह बड़ा कठिन कार्य्य है परंतु प्रेम को स्थिर रखना कोई साधारण बात नहीं है इस कार्य्य के संपादन के लिये युवक युवती को स्वच्छमन, स्वार्थ रहित औरनिष्कपट होना अत्यावश्यक है। यह प्रेममयी कथा यथार्थ में यज्ञमण्डप से आरंभ होती है जहां अग्नि देवता आचार्य्यादि की साक्षी से वर कन्या के संमुख एक बहुत आनंददायक संग्राम बुद्धि और प्रेम का—सारे जन्म के लिये अप्राप्य आदर्श जीवन बनाने के लिये—होता है। सचमुच यह आदर्श जीवन अप्राप्य है क्योंकि आज तक तो एक ही जीवन के बनने बिगड़ने का विचार था किन्तु आज से एक के स्थान में दो जीवनों को एक अंग बनाके आदर्श के उच्च सोपान पर चढ़ाना है। किसी पंडित का कथन है कि पुस्तक रचना का अन्त नहीं होता परन्तु वह नहीं जानता कि उसके इस कथन से पुस्तक रचने का व्यवसाय किस भांति अधिक आदरणीय प्रमाणिक हो रहा है। ठीक है, पुस्तक रचने का, अन्वेषण करने का, यात्रा करने का, धन उपार्जन करने का, विद्या प्राप्त करने का कभी भी अंत नहीं होता; एक प्रश्न का सुलझना दूसरे प्रश्न को सन्मुख लाता है; हम सदैव अध्ययन करते रहें हमारा जीवन सर्वदा के लिये विद्यार्थी का जीवन हो जाय परंतु हम मनोवांछित फल कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते और न कभी विद्या का अन्त होता है। हमने कभी भी अपनी कल्पनाओं का अनुकल्प नहीं बनाया, और जब हम एक द्वीप को तै करते हैं या एक पर्वत श्रेणी की यात्रा कर चुकते हैं तो यह केवल दूसरे महासागर या मैदान और उनके दूसरी ओर के टापुओं की छटा दिखलाता है; इस प्रकार इस अनन्त ब्रह्माण्ड में हमारी बड़ी से बड़ी दौड़ का अन्त नहीं होता। यह एक 'महाभारत' की पुस्तक तो है नहीं कि उठाई और आद्योपान्त पढ़ कर समाप्त कर दिया। इस पृथ्वी के एक एक भाग के एक ही देश में सैकड़ों ऐसे ऐसे कोने और पर्वतों की घाटियां पड़ी हैं कि यदि हम केवल एक ही कुटी के आस पास की भूमि को ही अपने ज्ञान के हेतु देखें तो भान होगा कि किस प्रकार भिन्न २ ऋतु सर्वदा नये नये अभिनय दिखलाते हैं और किस भांति हम उस स्थान पर अपनी सारी आयु व्यतीत कर देने पर भी वहां के आश्चर्य्यजनक नाटक क अन्त नहीं देख सकते और न हम वहां का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकतेहैं जिस पूर्णता को उपलब्ध करना ही पूर्णानन्द है।

इस संसार में केवल एक ही वस्तु प्राप्य है 'मृत्यु' और यह हम सब को प्राप्त हो सकती है परंतु अनेक कारणों से हम नहीं कह सकते कि मृत्यु की इच्छा करना और उसका पाना ठीक है अथवा नहीं। हम अपने जीवन के उपन्यास में एक अद्भुत तिलस्म गढ़ते हैं, निरन्तर चलना हमारा कार्य्य है विश्राम के लिये घबड़ाते हैं किन्तु विश्राम नहीं लेते, थक जाते हैं किन्तु थकान नहीं होती, सदैव आगे आगे और आगे—यही मूलमंत्र यही उद्देश्य और यही लक्ष रहता है। यहसत्य है कि हमको अपनी यात्रा का अन्त नहीं

पीना है वरञ्च यह अधिक सम्भव है कि हमारी यात्रा का कोई निर्दिष्ट स्थान ही न हो, और चाहे हम शताब्दियों व्यतीत होने तक भी अमानुषी सामर्थ्य से चलते रहें परंतु हम अपनी यात्रा के निकटवर्ती स्थान पर नहीं पहुंच सकते। परिश्रमी हाथ! तू परिश्रम करता है पर नहीं जानता किसके लिये; पांव! तुम चलते हो पर नहीं जानते कहां को। तुम समझते हो कि इस पर्वत की चोटी पर पहुंचते ही सुमेरु की शिखा प्राप्त होगी, परंतु लगातार एक के बाद एक सैकड़ों चोटियों में चढ़ जाते हो किन्तु सुमेरु की चूल लाल पीले वस्त्रों से सुभाषित छिपते हुए सूर्य्य के पास ही अस्ताचल में मालूम होती है जिसको देख कर चिल्लाते हो वह सुमेरु है वह सुमेरु है। हमको दुख है तो इस ही बात का कि हम अपने आनंद को पहिचानते नहीं; हमारा आनंद आशा और चलने ही में है न कि यात्रा के अंत करने में; सच्चा सुख कार्य्य को करने में है न कर देने में, प्रेम का रस वियोग में है न कि संयोग में।

—:०:—

कांग्रेस*।

भारतवर्ष में अंगरेज़ी शिक्षा के अधिकतर प्रचार होने के कारण शिक्षित भारतवासी सज्जनों के हृदय में प्रचलित शासनप्रणाली के सुधार और उन्नति की अभिलाषायें उत्पन्न हुईं। लार्ड रिपन महोदय के न्यायपरायण और उदार शासन ने इन आशाओं और अभिलाषाओं को परिपुष्ट कर दिया और उस समय के दूरदर्शी नेताओं को अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के हेतु एक राजनैतिक समाज संगठन करने की आवश्यकता मालूम हुई। इस विचार से कांग्रेस के जन्मदाता उदारहृदय मिस्टर एलेन आक्टेवियस ह्यूम उ[illegible] आफ डफरिन [illegible] हुए और अपना [illegible] मिस्टर ह्यूम का विचार था कि शिक्षित भारतवासी तथा उदारहृदय अंगरेज़ सज्जनों की हर साल के अन्त में एक सभा हो जिसके सभापति गवर्नर जनरल अथवा प्रान्तीय गवर्नर लोग हुआ करें और उपस्थित सामाजिक विषयों पर विचार किया जाय। उस अवसर पर भारतवासी नेता सज्जन शासनप्रणाली के सुधार के निमित्त गवर्मेन्ट को उचित परामर्श दिया करें परन्तु लार्ड डफरिन ने गवर्मेन्ट के अफसरों को सभापति बनाने के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और भारतवासी नेताओं को सभापति बनाने की अनुमति दी। इस प्रकार इंडियन नेशनल कांग्रेस नाम की इस जातीय महा सभा का सन १८८५ ई० में जन्म हुआ और स्वर्गीय मिस्टर ऊमेशचन्द्र बनर्जी महोदय इसके प्रथम सभापति हुये। उन्होंने इस महासभा के मुख्य उद्देश्य यह वर्णन किये थे:—

(१) समस्त भारतवर्ष में जातीयता (Nationality) के भाव का प्रचार करना और भारतवासी विविध मतावलम्बी और विभिन्न जातियों में एकता करना।

(२) प्रचलित शासन प्रणाली के त्रुटि के प्रति गवर्मेन्ट का ध्यान आकर्षित करना और उनके निवारणार्थ गवर्मेन्ट को परामर्श देना।

(३) शासन कार्य में विशेष अधिकार प्राप्त करने का यत्न करना और देशोन्नति का उपाय सोचकर शिक्षित समाज के सन्मुख उपस्थित करना।

अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने का केवल एक मार्ग कांग्रेस ने स्थित किया था अर्थात् न्यायानुकूल आन्दोलन करना (constitutional agitation)। हर साल दिसम्बर के अन्त में इस महा सभा का अधिवेशन होता चला आया है

* यह लेख बिलम्ब से आने के कारण पिछली संख्या में न प्रकाशित हो सका।

(६) फौजा तथा विलायत [illegible]पने विचारों को मन्(६) तथा अन्य स्थलों में अप[illegible] प्रकाशित करते हैं। इन्‌उस द्रव्य को स्वास्थ्य[illegible]ति गवर्मेंट आफ इंडिया और एक प्रति सेक्रेटरी आफ स्टेट की सेवा मे भेज दी जाती है। कांग्रेस से द्वेष रखने वाली एंगलो इंडियन समाज तथा उसकी अनुयायी अन्य समाज कांग्रेस को तीन दिन का तमाशा कहती है जिसका अभिप्राय यह है शिक्षित भारतवासी तीन दिन के लिये मिल कर व्याख्यान देकर तमाशा करते हैं जिससे देश का कोई उपकार नहीं होता है। इसमें संदेह नहीं है कि कांग्रेस के नेता लोग सिर्फ ३ ही दिन वर्ष भर में मिलकर कार्य करते हैं परन्तु यह कदापि नहीं कहा जा सक्ता है कि इससे देश का कुछ भी उपकार नहीं है। इस लेख में यह विचार किया जायगा कि कांग्रेस ने अपने उद्देश्य में कहां तक सफलता प्राप्त किया है।

(१) जातीयता के भाव का प्रचार।

कांग्रेस के मुख्य ३ उद्देश्यों में प्रथम उद्देश्य की सफलता देशवासियों के उत्साह तथा सहायता पर निर्भर थी और इसमें पूरी सफलता हुई है। यदि इस समय शिक्षित समाज में जातीयता का भाव और देशोन्नति की अभिलाषा विद्यमान है तो इसकी एक मात्र कारण कांग्रेस है उदाहरण के लिये स्वदेशी चर्चा के प्रति सर्वसाधारण की रुचि देखना चाहिये। शिक्षित समाज में कौन ऐसा मनुष्य है जो स्वदेशी की उन्नति नहीं चाहता है और वस्त्रादि मोल लेने के समय यह नहीं पूछ लेता है कि अमुक वस्तु स्वदेशी है अथवा विदेशी है। कांग्रेस विरोधिनी समाज चाहै अवसर हो अथवा न हो यह कहा करती है कि जातीयता की चर्चा केवल एक मुट्ठी भर कांग्रेस नेताओं में है और सर्वसाधारण से इस चर्चा से कुछ प्रयोजन नहीं है यह स्वार्थियों का भ्रम है। जातीयता का भाव समस्त भारतबासी में व्याप रहा है जहां २ भाषा के समाचारपत्रों की पहुंच है वहां२ जातीयता व्याप गई है। यदि इसकी चर्चा ग्रामवासी अशिक्षित समाज में की जाय तो वे लोग भी सुनकर प्रफुल्लित हो जाते हैं और अपने उद्योग भर इसके प्रचार करने पर उद्यत हो जाते हैं और यह अनुभव करते हैं कि उनके उद्धार का एक मात्र यही उपाय है। यदि मान्यवर मिष्टर दादाभाई नौरोजी के उस उपदेश के अनुसार कार्य किया जाय जो उन्हों ने कलकत्ता कांग्रेस को १९०६ में दिया था तो इस भाव के प्रचार में खूब उन्नति हो जाय। परन्तु इस उद्देश्य के सिद्धि मे एक अंश में त्रुटि रह गई है अर्थात शिक्षित मुसलमान समाजका बहुत बड़ा हिस्सा (सर सैयद अहमद अनुयायी समाज) कांग्रेस तथा इस भाव के विमुख है। ये लोग मुसलमान समाज की एक अलग जाति बनाने के उद्योग में तत्पर हैं। (यह विषय विस्तृत है और इस छोटे लेख में इसका उचित रूप से विचार नहीं हो सकता है)। इसके अतिरिक्त परस्पर द्वेष के कारण देश के अभाग्य से कांग्रेस ही में फूट होगई और सन् १९०७ के सूरत की घटना के कारण एक अंश शक्ति कांग्रेस से अलग हो गई। परंतु इस पृथक हुये भाग में जातीयताका भाव पूर्णरूप से विद्यमान है। इन सब समाजों में मेल कराने के निमित्त इस वर्ष प्रयाग कांग्रेस के सभापति सर विलियम वेडरवर्न महोदय भारतवर्ष में आये थे। परमेश्वर आपके उद्योग को सफल करें।

(२) शासन प्रणाली को त्रुटि और उसका सुधार।

कांग्रेस के द्वितीय और तृतीय उद्देश्यों की सफलता गवर्मेंट की इन उद्देश्यों से तथा कांग्रेस से सहानुभूति पर निर्भर थी। आरंभ में लार्ड डफरिन महोदय ने इस महासभा के प्रति सहानुभूति प्रकट की थी परन्तु उनके कई कार्यों की कांग्रेस ने बड़ी तीव्र आलोचना की थी

जिससे वह अंत में कांग्रेस से अप्रसन्न हो गये। तब से लेकर नवम्बर १९०५ तक जब लार्ड मार्ले स्टेट सेक्रेटरी नियुक्त हुये गवर्मेंट का कांग्रेस के प्रति व्यवहार संदेह और अविश्वास युक्त रहा बड़े २ सरकारी अफसर कटुवाक्य का प्रयोग करते रहे और निरंतर कांग्रेस को और इसको नेताओं को नीचा दिखाने का उद्योग करते आये। सर आकलैंड कालविन साहब इस प्रदेश के छोटे लाट ने बड़ा उद्योग किया था कि सन् १८८८ में प्रयाग में कांग्रेस न हो सके परन्तु स्वर्गीय पं० अयोध्यानाथ जी के असीम साहस के कारण कालविन साहब कृतकार्य न हुये। ऐसी अवस्था में यह कब आशा हो सकती थी कि कांग्रेस के मन्तव्यों को गवर्मेंट न्याय दृष्टि से देखती। यदि किसी समय गवर्मेंट कांग्रेस के विचार से सहमत भी हुई तो यह स्पष्ट रूप से प्रकाशित कर दिया जाता है कि कांग्रेस के कथन और उद्योग से गवर्मेंट सहमत नहीं है किंतु अन्य २ कारणों से वह अमुक विचार को स्वीकार करती है।

शासन प्रणाली के त्रुटि और उसके सुधार के संबंध में कांग्रेस के मुख्य मन्तव्यों का आशय इस प्रकार है:-

(१) उन करों का घटाना जिनका प्रभाव सर्व साधारण प्रजा पर पड़ता है यथा नमक* का कर।

(२) मालगुज़ारी का स्थायी प्रबंध (दायमी बन्दोबस्त (Permanent settlement) कर देना और भूमि कर में गवर्मेंट का भाग निश्चित कर देना। इस विषय में बड़े प्रबल आंदोलन के बाद जिसके नेता स्वर्गीय मिस्टर रमेशचंद्रदत्त थे लार्ड कर्जन के समय में गवर्मेंट ने स्पष्टरूप से इस प्रस्ताव को अस्वीकार किया और बड़े २ महानुभावों के परिश्रम पर पानी फेर दिया। गवर्मेंट ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करने में अपनी हानि दि[illegible] और इसको कृष[illegible] [illegible]ही बतलाया है यद्यपि [illegible] आर्थिक अवस्था आज भी बंदोबस्त के कारण अन्य प्रांतों के कृषको की अपेक्षा बहुत अच्छी और संतोषजनक है।

(३) प्रारम्भिक शिक्षा का मुफ्त कर देना और इसका प्रचार बढ़ाना। भारत गवर्मेंट ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था और सन् १९०६ ई० में सर एडवर्ड बेकर ने गवर्नर जनरल के कौंसिल में मदरसों में फीस उठा देने का वचन स्पष्ट रूप से दिया था परंतु प्रांतीय गवर्मेंटों के अनुरोध के कारण भारत गवर्मेंट ने अपनी प्रतिज्ञा पूरा न किया। शिक्षा सर्वसाधारण करना और शिल्प शिक्षा के प्रचार की आवश्यकता को गवर्मेंट उचित मानती है परंतु इसके निमित्त बजट में उसे रुपया नहीं बचता।

(४) विचार और शासन विभाग का पृथक करना। कांग्रेस का बहुत दिनों से यह मन्तव्य है कि इन दोनों भागों को पृथक कर देना चाहिये और उन मजिस्ट्रेटों को जो फौजदारी का कार्य करे कलेक्टर साहब के आधीन न रहनाचाहिये किंतु जिला जज और हाईकोर्ट के आधीन रहना चाहिये जिससे फौजदारी के मुकदमों में न्याय हो। गवर्मेंट ने इस मंतव्य को बहुत ही उपयुक्त और आवश्यक कहा है और सन् १९०७ ई० में वाइसराय के कौंसिल में सर हार्वी एडमसन ने परीक्षार्थ यह शैली बंगाल के कतिपय ज़िलों में स्थापित करने का वचन दिया था परंतु अब तक यह प्रतिज्ञा पूरी नहीं की गई है।

(५) पुलीस सुधार। सरकार ने सुधार तो अवश्य किया है परंतु यह नहीं कहा जा सकता उस सुधार के कारण किन अंशों में पुलीस प्रजा की रक्षक के स्थान में भक्षक हो गई है।

* गवर्मेंट ने नमक का कर अवश्य घटा दिया है।

(६) फौजा तथा विलायती (Home Charges) तथा अन्य स्थलों में अपव्यय कम करना और उस द्रव्य को स्वास्थ्य की उन्नति और शिक्षा प्रचार ऐसे कार्यों में लगाना । इसमें कांग्रेस को सफलता नहीं हुई है।

(७) इंडियन सिविल सर्विस परीक्षा का लंडन के अतिरिक्त भारतवर्ष में होना जिससे भारतवासी अधिक संख्या में उच्च पद प्राप्त करें। इस न्यायपूर्ण प्रस्ताव को गवर्मेंट इस कारण से स्वीकार नहीं करती है कि ऐसा करने से सिविल सर्विस में अंगरेज़ों की संख्या कम हो जायगी। इस प्रस्ताव को भारत हितैषी महानुभावों के उद्योग से पार्लामेंट ने सन् १८९४ में स्वीकार कर लिया था, परंतु भारत गवर्मेंट के हस्तक्षेप के कारण यह प्रस्ताव कागज ही पर रह गया। स्मरण रखना चाहिये कि उस समय विलायत में लिबरल दल का प्रभुत्व था और मिस्टर ग्लैडस्टन प्रधान मंत्री थे और भारतवर्ष में मुख्य विरोधी प्रजाप्रिय लार्ड मेकडानल पश्चिमोत्तर प्रदेशके लेफटिनेएट गवर्नर थे।

(८) उच्च पदों पर मुकर्ररी परीक्षा द्वारा हुआ करे। यह क्रम प्रचलित तो अवश्य हुआ था परंतु लार्ड कर्जन के हस्तक्षेप के कारण बंद कर दिया गया। गवर्मेंट के इस व्यवहार से यही सूचित होता है कि स्थानीय उच्चपदाधिकारी शासक गण (Men on the spot) को द्वेष तथा स्वार्थ के कारण मति भ्रम हो गया है और वे भारतवासियों को अधिकार देना नहीं चाहते हैं। इन लोगों का विचार उन रेल के मुसाफिरों के सदृश है जो स्वयं आनंद पूर्वक गाड़ी में बैठे हुये हैं और दूसरे मुसाफिरों को प्रवेश करने के उद्योग में देख कर चिल्ला उठते हैं कि यहां स्थान नहीं है यद्यपि स्थान अवश्य है और उन दूसरों ने भी महसूल दिया है और गाड़ी में बैठने का उनका भी उतना ही स्वत्व है जितना बैठे हुये सज्जन का है। यह वह भली भांति जानते हैं कि उन्हों ने गाड़ी को खरीद नहीं लिया है और न वह उसमें स्थायी रूप से रहेंगे परंतु पहिले आने से स्थान पाकर वह स्वभाव वस दूसरों को आने नहीं देना चाहते। ऊपर लिखे मन्तव्य अब कांग्रेस के कार्यवाही में पहिले की अपेक्षा कम रहा करेंगे क्योंकि कांग्रेस के नेताओं को शासन सम्बन्धी विषयों में अपना विचार प्रकाशित करने का नये कौंसिलों में अवसर मिला करेगा अतएव यह सब विचार अब से कौंसिल की रिपोर्ट में कांग्रेस रिपोर्ट की अपेक्षा अधिक रहेंगे।

(३) शासन कार्य में अधिकार प्राप्त करना।

इस उद्देश्य के संबन्ध में कौंसिल का सुधार मुख्य विषय था जिसके प्रति कांग्रेस ने विशेष रूप से ध्यान दिया था और इसमें सन्देह नहीं कि लार्ड मार्ले और लार्ड मिन्टो की उदारता के कारण इसमें कांग्रेस को पूरी सफलता प्राप्त हुई। जब से कांग्रेस स्थापित हुई तभी से इस के लिये आंदोलन प्रारम्भ हुवा था। और उद्योग सूक्ष्म रूप से सन् १८९२ ई० में सफल हुआ जिस समय म्युनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के प्रतिनिधियों को कौंसिल के मेम्बर चुनने का अधिकार दिया गया और गैर सरकारी सदस्यों को शासन विषयक प्रश्न पूछने का और बजट के विचार के समयमें अपना अभिप्राय प्रकट करने का अधिकार दिया गया। इन अधिकारों द्वारा जहां तक बन पड़ा कांग्रेस प्रतिनिधियों ने कौंसिल में प्रवेश करके योग्यता पूर्वक देश की सेवा की और विशेष अधिकार के लिये आन्दोलन करते रहे। कांग्रेस ने इस विषय में यह प्रस्ताव किया था :—

(१) डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्युनिसिपैलिटी को विशेष अधिकार दिया जाय और इन संख्याओं से सरकारी अफसरों से कोई सम्पर्क न रहै।

(२) प्रान्तीय तथा भारतीय (Imperial) कौन्सिल में गैर सरकारी मेम्बरों की संख्या बढ़ाई

जाय और उन लोगों को अपनी तरफ से प्रस्ताव उपस्थित करके कौंसिलके मेम्बरों की सम्मति लेने का अधिकार दिया जाय। कौंसिल में सरकारी और गैर सरकारी मेम्बरों की संख्या बराबर रहै।

(३) भारतीय कार्यकारिणी समिति (Executive council) में दो भारतवासी सज्जन नियुक्त किये जांय और बंबई और मदरास की कार्यकारिणी समिति में एक एक भारतवासी नियुक्त हो।

(४) सेक्रेटरी आफ स्टेट के कौंसिल में तीन भारतवासी सज्जन नियुक्त किये जांय।

(५) पारलामेन्ट के कामन्स सभा में कम से कम ६ भारतवासी प्रतिनिधि हों।

लार्ड मार्ले ने प्रथम प्रस्ताव के संबन्ध में यह कहा कि सन् १८८२ वाली लार्ड रिपन की व्यवस्था की उचित रूप से परीक्षा नहीं हुई और इस सम्बन्ध में अधिकार विभाजक कमीशन (Decentralisation Commission) की रिपोर्ट ने कुछ विशेष आज्ञा नहीं दी। परन्तु एक फल देखने में आता है कि कलेक्टर लोग अब म्युनिसिपल बोर्ड के चेअरमैन के पद को छोड़ रहे हैं और गैर सरकारी मेम्बर इस पद पर नियुक्त हो रहे हैं। द्वितीय प्रस्ताव पूर्ण रूप से स्वीकृत होगया और एक अंश में लार्ड मार्ले ने अपनी उदारता का परिचय दिया अर्थात् प्रान्तीय कौंसिलों में गैर सरकारी मेम्बरों की संख्या सरकारी मेम्बरों की अपेक्षा अधिक रहै। तृतीय प्रस्ताव के अनुसार एक सभ्य गवर्नर जेनरल के कौंसिल में और एक २ मेंबर बंबई और मदरास के गवर्नर के कौंसिल में भारतवासी नियुक्त हुये। इसके अतिरिक्त जिन २ बड़े प्रदेशों में कौंसिल नहीं है वहां कौंसिल स्थापन और एक हिन्दुस्तानी मेंबर नियुक्त करने को व्यवस्था की गई है जिसके अनुसार बंगाल में एक कार्यकारिणी कौंसिल स्थापित हुई है। चतुर्थ प्रस्ताव के अनुसार दो भारतवासी सज्जन सेक्रेटरी आफ स्टेट के कौंसिल में नियुक्त हुये। पंचम प्रस्ताव पर अभी तक कोई विचार नहीं हुआ। इससे स्पष्ट रूप से मालुम होगा कि अपने तृतीय उद्देश्य में कांग्रेस ने पूरी सफलता की है यद्यपि सुधार से आशातीत फल प्राप्त न हो सका क्योंकि निर्वाचन नियमावली अनेक अंशों में दूषित है। परन्तु लार्ड मिन्टो ने स्वयं इस त्रुटि को स्वीकार कर लिया है और संशोधन का वचन उन्होंने गवर्मेन्ट की ओर से दिया है। परन्तु पूरा फल इसका तभी मिल सक्ता है जब देश में शिक्षा का खूब प्रचार हो क्योंकि जब तक सर्वसाधारण में शिक्षा का प्रचार न होगा योग्य प्रतिनिधि कौन्सिलों में प्रवेश नहीं कर सक्ते हैं। यद्यपि हिस्सा बटाने के समय बहुत से लोग दौड़ पड़े परन्तु यह कोई नहीं कह सकता है कि इन सुधारों के निमित्त कांग्रेस के अतिरिक्त किसी दूसरे सभा वा समाज ने कुछ भी किया है और यदि कुछ त्रुटि रह गई है तो इसका एक मात्र कारण यही है कि सुधार की व्यवस्था प्रकाशित होने के बाद कांग्रेस ने इसके निमित्त वैसा उद्योग नहीं किया जैसा इसको करना चाहिये था। इस विषय में कांग्रेस के सफलता प्राप्त करने से यह लक्षित होता है कि एक दिन वह अवसर आवेगा जब प्रत्येक कांग्रेस मतावलंबी की मनोवांछित अभिलाषा पूरी होगी और भारत की शासन प्रणाली उपनिवेशों (Colonies) की भांति स्वतंत्र हो जायगी और हमको अपना पूरा स्वत्व प्राप्त हो सकेगा। संक्षेप में यह कांग्रेस और उसके कार्य का वृत्तान्त दिया गया है जिससे पाठकगण स्वयं अनुभव कर सकेंगे कि इस तीन दिन तमाशा करने वाली मंडली ने २५ वर्ष में कितना कार्य सम्पादन किया है परन्तु सब से बड़ा इस तमाशा का फल यह है कि इसके वार्षिक अधिवेशन से एक बड़ी राजनैतिक शिक्षा मिलती है। इसने राज-

नैतिक संसार में कार्य करने का क्रम भारत-वासियों को दिखा दिया है और स्वराज्य रूपी तारा का दर्शन करा दिया है जिसको प्राप्त करने के लिये हम सब जिस प्रकार चाहें उद्योग कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त कांग्रेस ने शिक्षित भारतवासियों के उद्योग परिश्रम और साहस से गवर्मेंट तथा अपने विरोधी समाज और संस्थाओं को परिचित करा दिया है। साथ ही साथ गवर्मेंट का व्यवहार इस संस्था के प्रति बदल गया है और अब गवर्मेंट की संदेह जनक दृष्टि कांग्रेस पर नहीं है। यह सुन कर पाठक गण हर्षित होंगे कि हमारे नये वाइसराय लार्ड हार्डिंग महोदय ने कांग्रेस के प्रेसिडेन्ट और प्रतिनिधियों से मिलना स्वीकार किया था। यह आश्चर्यजनक बात अवश्य है क्योंकि ९ वर्ष पूर्व लार्ड करजन ने उस वर्ष के प्रेसिडेन्ट सर हेनरी काटन से मिलकर उनके हाथ से कांग्रस के मन्तव्यों को लेना अस्वीकार किया था यद्यपि वे सर हेनरी काटन से मिले थे और उनको भोज में अपने यहां निमंत्रित भी किया था ॥

भारतवासी।

—:०:—

नौलखा हार।

[लेखक–पं० किशोरी लाल गोस्वामी]

दूसरा परिच्छेद।

नकली हार।

"अघटित घटितं घटयति,
सुघटित घटितानि दुर्घटी कुरुते।
विधिरेव तानिघटयति,
यानि पुमान्नैव चिन्तयति ॥"

(भर्तृहरिः)

किन्तु बेचारी ललिता ने जब तक उस हार को उठाकर अपने पाकेट के हवाले न कर लिया, तब तक उसे अघटन घटना पटीयसी माया के इस अचिन्तनीय कौतुक पर विचार करने का भी अवसर नहीं मिला। हां, जब उसने उस हार को अपने कब्ज़े में कर लिया, तब वह मनही मन यों सोचने लगी कि, "हाय, हाय, यह कैसा कौतुक है! यह नौलखा हार घनश्याम के पाकेट में कहां से आया! क्या, घनश्याम चोर हैं! किन्तु हाय, ऐसा विश्वास तो मेरा हृदय इस प्रत्यक्ष प्रमाण के पाने पर भी कदापि नहीं कर सकता!!! मेरे मन में तो यह भासती है कि घनश्याम के किसी गुप्त किंवा प्रगट शत्रु ने इस हार को उस के पाकेट में चुपचाप डाल दिया है, और मुझे विश्वास है कि यही बात भी होगी। हाय, हाय, इतने धन कुबेरों के बीच घनश्याम की कैसी दुर्दशा होती, यदि यह हार इसके पाकेट से बरामद होता! आहा, नारायण ने बड़ी रक्षा की कि यह निरपराध बेचारा बाल बाल बच गया।"

योंही सोचते सोचते उसके मुखड़े की सारी रंगत उड़ गई और उसके सारे शरीर का रुधिर मानो जमगया। इतनेही में घनश्याम ने उसकी ओर बिना देखेही यों कहा,—

"प्यारी, ललिता! तुम्हारे पिता इसी ओर आ रहे हैं, ऐसी अवस्था में अब हमारा तुम्हारा एक साथ खड़े रहना ठीक नहीं; क्योंकि तुम यह बात क्या नहीं देख रही हो कि मारे क्रोध के उन का चेहरा लाल हो रहा है!"

यह सुनते ही ललिता एक बेर जोर से कांप उठी, पर तुरंत उसने अपने धड़कते हुए कलेजे को अपने दोनों हाथों से भर ज़ोर दबाया और धीरे से केवल इतनाही कहा,–"कुछ पर्वा नहीं!"

घनश्याम को इस समय ललिता की यह ढिठाई अच्छी न लगी, इसलिये उसने उससे यों कहा,–"सुनो, मैं भी उनकी कोई पर्वा नहीं करता और न डरता ही हूं; परंतु मुझे यदि कोई भय है तो यही है कि मेरे कारण तुम्हें उनकी झिड़की सहनी पड़ेगी।"

यों कह और कुछ रनछोरलाल की ओर देख कर घनश्याम दोही चार कदम आगे बढ़ा था कि ललिता की बुआ रुक्मिणी वहीं पहुंच गई और उसने घनश्याम को पुकारा । ज्योंहीं घनश्याम उसकी तरफ़ घूमा और रुक्मिणी ने उससे कुछ कहना चाहा कि इतने ही में रनछोर लाल घनश्याम के पास पहुंच गए और उन्होंने उसकी आंखों के आगे एक टुकड़े कागज को रख कर यों कहा,-

"अभी थोड़ी देर पहिले एक आदमी, जिसे मैं नहीं पहिचानता, यह कागज का टुकड़ा मुझे देकर न जाने किधर गायब हो गया । बस, तुम इसे चटपट पढ़लो और साथही यह भी जान लो कि इसमें जो कुछ लिखा है, उसके मुताबिक कार्रवाई भी की जायगी ।"

उस कागज को पढ़ते ही मारे क्रोध के घनश्याम थरथर कांपने लगा और घृणा के साथ उसने रनछोरलाल की तरफ देखा । उस समय ललिता की बुआ तो उसी स्थूलाङ्गी युवती से बातें करने लग गई थी, जिसका ज़िक्र पहिले आचुका है; पर ललिता ने रनछोरलाल की बेढंगी बातें भी सुनीं और कागज के टुकड़े में पेन्सिल से जो कुछ लिखा था, उसे भी उसने पढ़ लिया । तो उस कागज में क्या लिखा था ? लीजिए, पढ़ लीजिए; उसकी नकल हम नीचे लिखे देते हैं,-

"तुम्हारे भावी जामाता और सुप्रसिद्ध चित्रकार बाबू घनश्यामदास भाटिया ने वह नौलखा हार चुराया है । यदि इस बात पर विश्वास न हो तो उसकी तलाशी लेकर देख लो । अभी तक वह हार उसके कोट के जेब में मौजूद है ।"

निदान, घनश्याम ने बड़ी नफ़रत के साथ रनछोरलाल की तरफ देख कर कहा,-"क्या आप इस गुमनाम गंदी लिखावट पर विश्वास करते हैं ?"

रनछोरलाल ने ताने के ढंग से कहा,-"जिस में हमारा विश्वास बना रहे, तुम्हें इस समय वही काम करना चाहिये ।"

घनश्याम,-"तो आप चाहते क्या हैं ?"

रनछोर लाल,-"तुम्हारे अङ्ग प्रत्यङ्ग की तलाशी लेना ।"

इतना सुनते ही घनश्याम का चेहरा मारे क्रोध के तमतमा उठा और उसने कुछ रुखाई के साथ कहा-"आपकी यह बात यद्यपि बहुत ही बुरी और अपमान से भरी हुई है, तथापि मैं आपको विश्वास दिलाने के लिये आपके इस घृणित प्रस्ताव से सहमत होता हूं । अस्तु, मैं तयार हूं, आप तलाशी लेना शुरू कर दें ।"

रनछोरलाल,-"नहीं, यहां नहीं; क्योंकि मैं इतने प्रतिष्ठित व्यक्तियों के आगे तुम्हें लज्जित या अपमानित नहीं किया चाहता; इसलिये तुम इस हाल के ऊपर वाले कमरे में आओ, वहीं तुम्हारी तलाशी ली जायगी, क्योंकि वहां पर सेठ यमुनादास भी उपस्थित हैं ।"

घनश्याम,-"तो क्या, उन्होंने भी इस कागज के टुकड़े को देखा है ?"

रनछोर,-"हां, क्योंकि उनसे छिपा कर मैं इस समय यहां पर कोई भी कार्रवाई नहीं कर रहा हूं और जो कुछ कर भी रहा हूं, वह उनकी सलाह से ।"

घनश्याम,-क्या, आपकी तरह उन्हें भी इस गुमनाम लिखावट पर अंधविश्वास होगया है ?"

रनछोरलाल,-"यद्यपि उनका विश्वास इस गुमनाम पत्र पर नहीं है और न वे तुम्हारी तलाशी ही लेना चाहते हैं, परंतु अपने भावी जामाता को इस कलङ्क से मुक्त करना मैं अपना परमकर्त्तव्य समझता हूं ।"

घनश्याम,-"ठीक है; तभी कल आपने अपने भावी जामाता को कोरी फटकार सुनाई थी; और आज एक गुमनाम चिट्ठी पर उसका घोर अपमान करने पर उतारू हुए हैं।

सच है,-मैंने जो दरिद्र होकर आप की सुशीला कन्या के पाणिग्रहण की अभिलाषा की थी, यह उसी की दक्षिणा आप मुझे दे रहे हैं।

रनछोर लाल,- "नहीं, नहीं; ऐसा समझना तुम्हारी भूल है। तुम्हें सोचना चाहिये कि मैं तुम्हें इस कलङ्क से मुक्त करने ही के लिये इस समय अपना कर्तव्य पालन कर रहा हूं।"

घनश्याम,-(रुखाई से) "बस, रहने दीजिये, बहुत हुआ! धन्यवाद है आपको, और हजार धन्यवाद है आप के इस अनूठे कर्तव्यपालन को! अस्तु, चलिये, मैं ऊपर चलने के लिये तयार हूं।"

यह सुनते ही रनछोर लाल आगे हुए और घनश्याम उन के पीछे हुआ। उस समय उसने ललिता की ओर भूल कर भी न देखा; क्यों कि उस समय उसे ललिता तो क्या, अपनी ही सुध न थी; नहीं तो, यदि वह इस समय ललिता के खिले हुये चेहरे की ओर देखता तो बहुत ही चकित होता, क्योंकि वह ललिता की इस समय की इतनी प्रसन्नता का कारण न समझता !!!

वास्तव में बात यह थी कि रनछोर लाल और घनश्याम की सारी बातें ललिता ने सुनी थीं, इसी लिये वह इतनी प्रसन्न हो रही थी कि उसने इस समय अपने प्रेमी को बेदाग बचा लिया, क्यों कि जब घनश्याम के पास वह हार न निकलेगा तो उसकी तलाशी लेने वाले उलटा उसी से क्षमा मांगने लगेंगे। बस, इसी से उस समय ललिता मध्यान्ह काल की कमलिनी की भांति खिल रही थी और अपनी कारखाई पर प्रसन्न होती हुई मन ही मन में कह रही थी कि,-भगवान ने बड़ी लज्जा रक्खी! पर इस बात की बेचारी ललिता को कुछ खबर ही न थी कि उसकी उस कारखाई अर्थात हार के गिरने-उठाने-की सारी बातें किसी चतुर व्यक्ति की दो आंखों ने भी भली भांति देख ली हैं!!! अस्तु।

घनश्याम के जाते ही एक और बाईस-तेईस बरस का सुन्दर युवक ललिता के पास आ पहुंचा। इसका नाम द्वारकादास था और यह ललिता का मौसेरा भाई था। डाढ़ी-मूछें इसे भी अभी तक नहीं आई थीं और यह भी परम सुन्दर था। यह भी धनाढय था और एक कपड़े की मिल का मालिक था।

इसे देखते ही ललिता के निराश हृदय में एकाएक आशा का सूर्योदय हो आया और उसने द्वारकादास से कहा,-"भैया! भाभी को किधर छोड़ आये।"

यह इशारा द्वारकादास की स्त्री कालिन्दी के लिए था, जिसे समझ और मुस्कुरा कर उस ने कहा, "वह अपनी एक सहेली की लच्छेदार बातों में उलझी हुई है।"

ललिता,-"चलो, यह भी अच्छा ही हुआ कि तुम इस समय मुझ से अकेले मिले; क्योंकि मुझे तुम से कुछ जरूरी बातें कहना है; इस लिए चलो, उधर एक निराले कमरे में चलें।"

यों कह कर वह एक निराले कमरे में पहुंची, पर जब तक वह कुछ बोले, द्वारकादास ने हंस कर उससे कहा,-"ललिता, इस समय तू मुझ से जो कुछ कहना चाहती है, उसे मैं तेरे कहे बिना ही जान गया!"

यह सुनते ही ललिता सन्नाटे में आगई और टकटकी बांधकर द्वारकादास के मुखड़े की ओर निहारने लगी। उसकी इस घबराहट को देख कर द्वारकादास खिलखिला कर हंस पड़े और बोले, "मुझ से कोई बात छिपी नहीं है!"

ललिता,-(आश्चर्य से) "एं! एं! तो क्या तुम सब बातें जान गए हो? क्यों भैया! तुम सर्वज्ञ कब से हुये?"

द्वारकादास ने मुस्करा कर कहा,-"बहिन, ललिता! यदि मैं सर्वज्ञ नहीं, तो भी चपल और सूक्ष्मदर्शी अवश्य हूं; इसी लिए मेरी आंखों के

आगे पड़ कर सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु भी छिप नहीं सकती और एक वस्तु को देखकर उनसे संबंध रखने वाली चार बिना देखी वस्तुओं का भी अनुमान मैं कर सकता हूं। सुनो, कल जो मौसा जी ने घनश्याम को और तुम को फटकारा था, वह बात भी मुझ से छिपी नहीं हैं।"

ललिता,-"यह बात तुम से किसने कही?"

द्वारकादास,-"बुआ जी ने और घनश्याम ने भी। अस्तु, सुनो-तो फिर यहां पर तुम्हें घनश्याम के साथ देखकर मैं इस लिए तुम दोनों पर नजर गड़ाए हुए था कि यदि मौसा जी इस समय तुम दोनों में से किसी को भी कुछ कहना चाहेंगे तो मैं उन्हें रोक दूंगा और यों कहूंगा कि 'ललिता के साथ मैं भी तो हूं!' इसके अतिरिक्त मुझे यहां पर एक और व्यक्ति पर भी नजर रखनी पड़ी है, जिस का हाल मैं पीछे तुम से कहूंगा। बस, इन्हीं सब कारणों से उस हार की सारी बातें मेरी आंखों से छिपी न रह सकीं और मैंने उस हार को घनश्याम के जेब में से गिरते और उसे उठाकर तुझे अपने जाकट के जेब में रखते मैंने देख लिया।

प्रिय पाठकों को समझना चहिए कि इसी बात का इशारा हम ऊपर कर आए हैं कि ललिता की इस कार्रवाई को किसी चतुर व्यक्ति की दो आंखों ने भी देख लिया था। अस्तु।

यह सुनकर ललिता चकित हो द्वारकादास का मुह निहारने लगी और वह यों कहने लगा, "बहिन, ललिता! केवल इतना ही नहीं, वरन मौसा जी ने घनश्याम के साथ जो कुछ बातें की हैं, उन्हें दूर रहने के कारण यद्यपि मैं नहीं सुन सका हूं परंतु यदि तू कहे तो मैं उन बातों का तत्त्व अपने अनुमान से ठीक ठीक तुझे सुना दूं; और इस के साथ ही यह भी जता दूं कि उस कागज के टुकड़े में क्या लिखा हुआ था, जिसे मौसा जी ने घनश्याम को दिखलाया था, यद्यपि वह कागज मेरा पढ़ा हुआ नहीं है?"

द्वारकादास की इन बातोंको सुनकर ललिता दंग हो गई और कहने लगी, "भैया, मैं रातदिन तुम्हारे साथ रहने पर भी आज तक इतना नहीं समझ सकी थी कि तुम यहां तक बाल की खाल खींचना सीख गए हो! परंतु सुनो तो सही-मेरा मन मुझ से बार बार यही कह रहा है कि घनश्याम बिल्कुल निर्दोष है और उसे इस बात की भी खबर नहीं है कि उसके जेब में यह हार क्यों कर जा पहुंचा! अस्तु, तुम इस विषय में क्या समझते हो?"

द्वारकादास "इस विषय में मेरा भी वही निश्चय है, जो कुछ कि तूने अभी अभी कहा है। क्योंकि यह बात कभी सम्भव नहीं कि घनश्याम ने वह हार चुराया हो! यह बात मैं इस लिये नहीं कह रहा हूं कि वह मेरा मित्र है, वरन पक्षपात रहित हो, न्याय से मैं यह कहता हूं कि घनश्याम जैसा सच्चरित्र और उदार व्यक्ति मैंने अब तक नहीं देखा है।"

अपने प्रियतम की बड़ाई सुन कर और द्वारकादास के विचार को अपने निश्चय से मिला हुआ समझ कर ललिता फड़क उठी और बोली,-"तो अब क्या करना चाहिए?

द्वारकादास,-"यह तो मैंने अभी तक नहीं सोचा है कि क्या करना चाहिए; किंतु हां, इस बात को मैंने जरूर सोच लिया है कि किसी दुष्ट ने भयानक षड़यन्त्र रच कर घनश्याम के बेआबरू करने का पूरा पूरा जाल फैलाया है, और सम्भव है कि ऐसी अवस्था में उस ने उस असली नौलखे हार को तो स्वयं हड़प कर लिया हो और उसकी नकल का नकली हार घनश्याम के जेब में रख कर उसकी प्रतिष्ठा भंग करने का मंसूबा बांधा हो और यह भी निश्चय होता है कि षड़यन्त्र की कार्रवाइयां कुछ आज ही की नहीं हैं, वरन इनकी नीव बहुत पहिले से पड़ चुकी होगी"।

द्वारकादास की इस विचित्र बात को सुन

कर ललिता एकदम से चिहुंक उठी और बोल उठी;—"तो क्या यह हार नकली है ?"

द्वारकादास,—"मेरा तो ऐसा ही अनुमान है; (इधर उधर देख कर) लाओ, देखूं ?"

इतना सुन और चारो ओर देख कर ललिता ने अपने जेब में से निकाल कर वह हार द्वारकादास के हाथ में दे दिया और उसने उस हार को भली भांति उलट पलट कर देखने और अपने पाकेट में रख लेने के बाद यों कहा, "बस, जो कुछ मैंने अनुमान किया था, आखिर वही बात निकली ? यह नकली हार है !!! "

ललिता,-(ताज्जुब से) "बिल्कुल नकली !!! "

द्वारका दास,—" हां, एक दम नकली !!! इस मे का एक हीरा भी सच्चा नहीं है और सेठ यमुनादास के बनवाये हुये असली नौलखे हार की यह बिल्कुल नकल है; किन्तु बलिहारी है, उस चतुर कारीगर के सुघड़ हाथ की, कि जिसने असली और नकली में तनिक भी भेद न रक्खा !!! "

ललिता,-"खैर, तो इसे तुम अपने ही पास रक्खो और बताओ कि अब,क्या करना चाहिये ?"

द्वारका दास,- "अच्छा, अब मैं इस बात पर गौर करता हूं ?"

क्रमशः ।

—:o:—

बसन्त ।

[लेखक—राय देवीप्रसाद (पूर्ण)]

भँवर गुंजार झनकार सो तंबूरा सम,
चटकैं प्रसूनन की कलियां सुताली हैं ।
चातकी चकोरी पिक गावतीं सुरीली तान,
नाचतीं कपोती स्यामा तीतरी मराली हैं ॥
"पूरन" विलोकि महिलोक कुसुमाकर में,
धाईं तजि नन्दन की सुखमा निराली हैं ।
छाईं बन बागन गंधर्बन की जाईं ये,
विहंग बनि आईं आली इन्द्रलोकवाली हैं ॥

लाले सजि बसन पलासन प्रसूनन के,
पूरन मयूर जोग आसन रमायो है ।
मंत्र कै पपीहा धुनि कोकिला कुहूकै तंत्र,
पवन सुगंधित को साधक बनायो है ॥
मौज सों मली है मुखमंजुल सरोज रज,
सुगुरु मनोज ही को अलख जगायो है ।
कंत बिन आली देखो करिकै अनन्त छल,
अवनि बसंत नव सन्त बनि आयो है ॥

बासित बयारी उतै स्वासा की सुगन्ध इतै,
अधरन लाली इत उतै जसवंत की ।
उत अरविंदन पै छटा ज्यों मलिंदन की,
अंगन पै इतै केश कालिमां अनंत की ॥
कोकिल कलाप उत मधुर अलाप इत,
टेसू उतै सारी इतै सूही छबिवन्त की ।
पूरन विलोकौ चलि कैसी लाल कानन में,
होड़ सो लगी है खोड़सी की औ बसंत की ॥

पीत रंग सारी जौन फूली सरसों की फली,
अलक छटा है पांति अलिन अनंत की ।
झूमर रसाल बौर अंगराग है पराग,
पौन रस बात है रसोली छबिवन्त की ॥
कोकिल कलाप की अलाप प्रेम भीनीतान,
कंजन बिकास भासी आभा रति कन्त की ।
पूरन हरनहारी मान रमनी गन को,
अवनी बनी है कैसी बनिता बसन्त की ! ॥

लाल बन बागन की भूरि छबि होन लागी,
विकसन लागी भीर टेसू छबिवन्त की ।
अरविंद पुंजन पै गुंजन मलिंद लागे,
बिलसन लागी रैन आभा निशकंत की ॥
बजन लगी है कुंज बंसी मंजु सांवरे की,
मोहन लगी है भीर गोपिन अनंत की ।
बैठी भौन भीतर ही भावरी न जानै, भला,
बावरी अजौं ना तोहि सुधि है बसंत की ?

किंशुक अनार गुलनार सहकार कुन्द,
चम्प कचनार जसवन्त छबिवन्त की।
शीतल सुगंध मन्द दायक अनंद पौन,
कंज बन भृङ्ग वृन्द चंदिका दिगंत की॥
कोकिल कलापी कीर चातक कलापन की,
मधुर अलापन की मङ्गल अनंत की।
ईश भगवन्त जू की महिमा कथन हारी,
महि मे लसति भूरि सुखमा बसन्त की॥

—:o:—

मनुष्य तत्व

[लेखक–पं० शारदा चरण पाण्डेय]

यद्यपि यह सब जानते हैं कि जितना कागज़ आज कल रंगा जाता है उतना पहले कभी नहीं रंगा गया क्यों कि संसार में काम बहुत बढ़ गया है अब ऐसे दिन नहीं रहे जैसे कोई सौ बर्ष तक रह कर विचारशीलों से अपना सार्टीफ़िकट ले चुके!। जिन दिनों की प्रशंसा में यह कहना कि तब एक कमाता था और दस खाते थे अब लज्जाजनक है क्योंकि न्याय की बात तो यह है कि जो कमाय न सो खाय भी न!–तथापि जिन थोड़ी सी बातों के पूर्ण रूप से प्रचार होने का फल न्याय निष्ठा और पारस्परिक प्रेम है उनके ऊपर इतना कुछ आज तक लिखा जा चुकने पर भी संसार को सदुपदेश की नएसिरे से आवश्यकता है। सदुपदेशानुसार जो जितना स्वयं चल चुका है उतना ही उपदेश उसके द्वारा उन्हें हो सकता है जो उससे बल बुद्धि और विद्या में न्यून हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि मतलब की बात छोटे से बड़े को पहुंच जाती है। भली बात को कह कर अथवा लिख कर प्रकाशित करने से उपदेशक और उपदिष्ट• दोनों का कल्याण है सो जिन बातों के भली होने में संसार के किसी भी भले आदमी को कुछ भी सन्देह नहीं उनमें पहली बात यह है कि जगत के सारे मनुष्य एकही कुटुम्ब के हैं जो एक दूसरे का प्यार करने अर्थात एक दूसरे की सेवा और सहायता करने के लिये उत्पन्न हुये हैं। दूसरी बात यह है कि जिन आवश्यक पदार्थों की प्राप्ति के लिये सैकड़ों हज़ारों क्या लाखों आदमी तरसा ही करते हैं और नाना षड़यंत्र रचकर अन्त में बेमौत मरते हैं उन पदार्थों की यथेष्ट प्राप्ति का एक मात्र उपाय मनुष्यों कीं सेवा और सहायता करना ही है। बस अब इस बात का विचार होना चाहिये कि मनुष्यों की सेवा और सहायता में जो जो विघ्न हों उनको दूर करने के निमित्त क्या करना? क्योंकि सुख और सम्पत्ति की जड़ सींच कर मुरझाई हुई कल्पलता को हरा कर लेना सब के लिये सम्भव है। किसी बात का सम्भव होना एक बात है और उस बात को कर दिखाना दूसरी बात है, अच्छी बात की प्रशंसा करने वाले तो सब हैं पर अच्छी बात को कर दिखा जाने वाले विरले ही हैं। एक वुद्धिमान् का यह कहना है कि जिस गुण की मनुष्य प्रशंसा करे जान लो कि वह गुण उसमें नहीं है। सेवा करने का फल क्या है? और सेवा कराने से सेवा करना अच्छा क्यों है? इन दो प्रश्नों का उत्तर देकर आगे और कुछ दिखाना है। सेवा करने से सच्चा सुख होता है और आगे को अधिक सेवा करने में रुचि होती है। "अधिकस्याधिकम्फलम" सेवा करने से मनुष्य की प्रसुप्त शक्तियां जाग पड़ती हैं। जो सेवा से जी चुराता है उस हरामपिण्ड को यह नहीं सूझ पड़ता कि जिसे मैं सुख समझता हूं और जो अभी मीठा लगता है वह मुझे अंत में सांप होकर डस लेगा! जितना आदमी अपने धन की रक्षा का उपाय करते हैं उतना अपने चरित्र की रक्षा का यदि करते तो संसार की दशा सुधर जाती। मनुष्य का चरित्र ही उसका गुप्त धन है। यदि चरित्र कुचरित्र हुआ तो सर्वनाश हुआ समझना। इस समय कौन मनुष्य कहां क्या कर रहा है सो सब चित्रगुप्त

के दफ्तर में दर्ज होता है और उसीके अनुसार धमराज के इजलास में फ़ैसला होकर मनुष्यों पर अकस्मात् नाना प्रकार के सङ्कट आ पड़ते हैं रेलें लड़ती हैं जहाज़ डूबते हैं संग्राम होते हैं भारी २ भूडोल आते हैं आग लगती हैं दिवाले निकलते हैं प्लेग आदिक रोग फैलते हैं और उपद्रवी लोगों के द्वारा बड़ी २ हानियां पहुंचती हैं इस प्रकार जगत् के लोगों की करतूत का लेखा चुकाया जाता है उस समय वर्षों के परिश्रम व्यर्थ होते हैं बड़े २ मनोरथ मिट्टी में मिल जाते हैं अक्खड़ों के टांके ढीले हो जाते और मानियों के मान मर जाते हैं यों ऊपर के नीचे होते और आगे के पीछे पड़ते हैं। ऐसे समय में अधर्म की गड़बड़ मिटाई जाकर धर्म की सुव्यवस्था स्थापित होती है और लोगों को सांस लेने के लिये स्वच्छ हवा मिलती है, सत्य के राज्य में अराजकता के लाने वालों को सदा से इसी प्रकार दण्ड मिलता है। यह नियम संसार के सब मनुष्यों के लिये है। सत्य के विरोधी सब देशों में है और सत्य के सेवक भी सब देशों में हैं। संसार भर के सत्य सेवियों का एक दल है परन्तु जिस सत्य सेवी का जिस देश में जन्म होता है उसको उसी देश के लोगों से लड़ने की आज्ञा होती है क्योंकि वह सत्य के विरोधियों का शत्रु बनाकर भेजा जाता है और जिनके बीच में रह कर उसको काम करना होता है वेही उससे वैर मानते हैं। देखो! सत्य के विरोधियों ने महात्मा ईसा को घोर यन्त्रणा देकर मारडाला! जैसे मनुष्यों ने उनको मारा वेसे अभी संसार में भरे पड़े हैं। भला ऐसे कितने घर होंगे जहां किसी न किसी रूप से सत्य का विरोध न किया जाता हो?

सत्य सेवी को पहले अपने आप से लड़ना होता है और फिर अपने ही घर वालों से और तदुपरांत अपने पड़ोसियों से निदान जो भी सत्य का विरोधी होगा उस का उसे सामना करना होगा चाहै वह उसे...मारही क्यों न डालै! सो यदि सत्य की-आज्ञा के अनुकूल चलने में ही मंगल है इस बात का किसी को दृढ़ विश्वास हो तो वह सच्ची बात कहने और करने में विलंब होना अनिष्ट है ऐसा समझ कर अपने आप को जिस क्षण से सत्य नारायण के अर्पण करता है उसी क्षण से उसको नाना क्लेश होने आरम्भ होते हैं परन्तु वह घबराता नहीं क्योंकि वह सत्य को सारी शक्ति की सहायता पाकर प्राणान्त कष्ट झेल सकता है। मैंने कई आदमी ऐसे देखे हैं जो संसार में आकर चरित्र धन का सञ्चय करना मुख्य समझते हैं और जिन की दृष्टि पड़ने से बड़े बड़े दुश्चरित्रों को भयभीत होना पड़ा है। ऐसे मनुष्यों की कुल बातें मान कर–जानने और मानने में बड़ा अन्तर है! आदमी सत्य की महिमा बढ़ाता और आदर्श पुरुष बनता है। एक मसल है "साँच कहैया डाढ़ी जार!" और यद्यपि "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्" ऐसी आज्ञा है तथापि इस समय "अप्रिय पथ्य" का प्रयोजन है और "स्पष्ट वक्ता न दोष भाक्" यह समझ कर एक बात यह बतानी है जो हिन्दू होकर भी हिन्दी नहीं जानता वह हिन्दू समाज को लज्जा का कारण है और उसको हिन्दी साहित्य का विरोधी समझना अनुचित नहीं और हिन्दू होकर अपने आचरण में सत्य का विरोध करने वाला हिन्दू कहलाने के योग्य नहीं। बड़े आश्चर्य की बात है कि विलायत जाने वाले तो बिरादरी से ख़ारिज हों और नाना प्रकार के झूठे प्रपञ्च रचने वाले आडम्बर प्रिय लोग अपने आपको पवित्र समझें! भला सच बताओ! सत्य की बिरादरी से ख़ारिज हिन्दू समाज में कितने लोग हैं? और सत्य के बताए हुए प्रायश्चित्त करके शुद्ध होने की लालसा रखने वाले कितने हैं? पराया माल मार कर बैठने वाले दिवालियों की तादाद क्या कुछ कम है? ओः! पुश्तैनी हराम खोरों के ज़िम्मे मनुष्य सेवा का कितना कितना ऋण है! सूद खोरों को देखो! उन का मूल धन उतना नहीं है जितना सेवा का सूद चुकाने के लिये चहिये! सत्य के

राज्य में दिवालिये बन कर बैठने का नियम ही नहीं है वहां तो चाहे हज़ार जन्म लो और चाहे दस हज़ार पर सेवा ऋण की कौड़ी कौड़ी चुकानी होगी!

एक कहावत है "जब तक जीना तब तक सीना!" सो एक जन्म में जितनी सेवा करने का नियम सत्य ने बांधा है उतनी सेवा यदि कोई न करै तो दूसरे जन्म में भोजन करने और सोने के समय में जागते हुये और भूखे रहते हुये अपनी इच्छा के प्रतिकूल उसको किसी को सेवा करनी होगी! जो अपनी इच्छा के प्रतिकूल किसी की सेवा में रक्खे गये हैं वे सेवा नहीं करते किन्तु सेवा ऋण चुकाते हैं। क्या धनवान लोगों का धन उनकी इच्छा प्रतिकूल ख़र्च नहीं होता? जो पुरूष अपनी इच्छा से उचित कार्य में अपना धन नहीं लगाता उसको धन हीन होकर अपनी इच्छा के प्रतिकूल वही कार्य करना होगा। जब महाराज अलवर ने अपने राज्य में हिन्दी का प्रचार किया तब सब को हिन्दी सीखनी ही पड़ी! जो अपनी इच्छा से भला काम न करैगा उसको कड़े अफ़सर की मातहती में रहकर उस काम की चक्की पीसनी होगी। कितने ही लोगों को अपना शृङ्गार करने में घण्टा डेढ़ घण्टा लग जाता है! उन को यह ख़बर नहीं है कि दूसरे जन्म में उन्हें घूरे के चीथड़ों की कथरी भी नसीब होना कठिन होगा! प्लेग के दिनों के बीसियों रोगी पानी को तरसा किये और किसी ने उनकी कुछ परवाह न की यह सेवा न करने का दण्ड था। हाथों से काम न लेने वाला दूसरे जन्म में लुञ्जा होगा। जो दूसरे की बात सुनी अनसुनी कर देगा वह गूंगा और बहिरा होगा। अनधिकारी होकर जो मनुष्य अपनी सेवा करावैगा वह अपने सेवक का चाकर बनैगा। अनधिकारी होकर जो मनुष्य दान लेगा उसको भिक्षा मिलना भी कठिन होगा। यह कितने शोक का विषय है कि मन्दिरों के पुजारी प्रायः निरक्षर और मूर्ख हैं तथा जिनके मौरूसी यजमान हैं उन पुरोहितों में से कितने हां कैसे हैं! जो ब्राम्हण वंश में उत्पन्न हो कर ब्राम्हणोचित कर्म नहीं करते उनको ब्राम्हण कहना अनर्थ है। हम इस समय के बड़े बड़े विद्वानों को ब्राम्हण बड़े बड़े सेनापतियों को क्षत्रिय बड़े बड़े सौदागरों को वैश्य और बाकी लोगों को शूद्र समझते हैं।

—:०:—

राजा चेतसिंह।

[लेखक—चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा।]

(गताङ्क से आगे)

वारिन हेसटिङ्गज़ बनारस गये और वहां वे राजा चेतसिंह के साथ उनके रामनगर वाले राजप्रासाद में ठहरे। ३ सितम्बर सन् १७७३ ई० को कलकत्ते को कौंसिल को सूचना दी कि उन्होंने वजीर के साथ एक नई संधि की है और उससे एक क़ौलनामा उनके उत्तराधिकारियों के साथ वैसा ही बर्त्ताव करने की प्रतिज्ञा है जैसा वह राजा बलन्तसिंह के साथ करता था। यह क़ौलनामा मेरे सामने सही किया गया है। यद्यपि इस क़ौलनामे में कोई नई बात नहीं है, बल्कि इसमें पुराने अहदोपैमान दुहराये गये हैं; तथापि नवाब वज़ीर ने मुझसे अनुरोध किया है कि तैशुदा मालगुज़ारी की रक़म में दश लाख रुपये और बढ़ाये जांय और लतीफ़गढ़ तथा विजयगढ़ राजा चेतसिंह से लेलिये जांय। पर जब मैंने वज़ीर की इन शर्तों को नामञ्जूर किया तब वह मुझसे कहा कि प्रयाग के सुलहनामे का लगाव सिर्फ राजा बलवन्तसिंह के साथ था। यह सुलहनामा उनकी आलऔलाद तक क़ायम रहेगा—इस बात पर सुलहनामा लिखने के वक्त ग़ौर नहीं किया गया था! हेसटिङ्गज़ साहब ने नवाब का रुख़ देख कर कौंसिल के सभ्यों को जो पत्र लिखा था उसे हम नीचे दर्ज करते हैं:—

"I am well convinced that the Raja's inheritance, and perhaps his life, are no longer safe than while *he enjoys the Company's protection, which is due by the ties of Justice and the obligations of public faith and which policy enjoins us to afford him ever most effectually*. His country is s strong barrier to ours, and we may depend upon him as a sure ally whenever we may stand in need of his services."

अर्थात् राजा चेतसिंह की रक्षा अगर कम्पनी द्वारा न की जायगी, तो उनके जानमाल की कुशल नहीं है। राजा साहब के पिता बलवंत सिंह ने नेकनीयती और सचाई के साथ, समय पर कम्पनी के साथ जो सलूक किया है उसका विचार करके कम्पनी का फ़र्ज़ है कि वह राजा जाहब के जानमाल की सदैव रक्षा करे। इसके अलावा राजा चेतसिंह का राज्य हमारी अमलदारी की सीमा को दृढ़ करता है। साथ ही हम लोग उक्त राजा साहब को कम्पनी का सच्चा मित्र समझ कर, ज़रूरत पड़ने पर, हमेशा उनसे मदद पाने की उम्मेद कर सकतेहैं।

अब हम उस क़ौलनामे का अंगरेज़ी अनुवाद भी उद्धृत करते हैं जिसे नवाब वज़ीर ने राजा चेतसिंह को लिख दिया था:-

"The affairs of the zemendary and tehud of the Circar of Benares, and Circar Chunar, and of the Mahals of Jaunpore, Bejoypore, Budholee, Sukteeghur, Mulhoos Khas, Circar Ghazipore, Sikandarpore, Khareed Shadiyabad, Toppeh, Sirnich &c. wich were under the charge of Rajah Balwant Singh deceased, I do hereby grant and confirm unto you upon their former footing. It is necessary that, after deducting the Nankar and half of the Jaghirs of Budholee, you monthly and annnally pay into the treasury of the Circar the established and stated payments. By favour of God, whatever is promotion of your honor shall be performed, and exclusive of the Jumma specified in the Kabooleent of the present Fussulee year 1178, *no increase* shall *hereafter be demanded;* and if you remain firm and steady in your obedience and in the payment of your rents, no harm shall by any means happen to your ryots or country. By the word of God and of the holy Koran and of the blessed Imaum, this agreement is made between me and my heirs, you and your heirs, and *it shall never be deviated from*."

अर्थात् ज़िमींदारी बनारस और सरकार बनारस, सरकार चुनार और मोहाल जौनपुर, विजयपुर, बुधौलो, सकतीसगढ़, मुलहूस ख़ास, गाज़ीपुर, सिकन्दरपुर, खरीदशादिबाद, टोपी, सिरनीच वगैरः की अमलदारी जो मरहूम राजा बलवन्तसिंह के कब्जे में थी-पहली शर्त्तों पर मैं तुमको अता फ़र्माता हूं। तुम्हारा फ़र्ज़ होगा कि बुधौली की जागीर का आधा नानकार निकाल कर तुम माह ब माह और साल ब साल हमारे ख़ज़ाने में क़रार के मुताबिक मालगुज़ारी जमा कराते रहो। खुदा के फ़ज़ल से; तुम्हारी हैसियत बढ़ने पर भी फसली सन् ११७८ की क़बूलियत में दर्ज जमा से एक कौड़ी भी ज़ियादा तुमसे न ली जायगी। अगर तुम हमारी फर्माबर्दारी से मुंह न मोड़ोगे और हमारे ख़ज़ाने में रुपये हमेशा वक्त पर जमा कराते रहोगे तो तुम्हें, तुम्हारी मिलकियत और रय्यत को हमारी तरफ से किसी तरह की ईजा नहीं पहुंचाई जायगी। पाक परवरदगार, कुरान शरीफ और मुतबर्रक इमामों के नाम पर यह कौलकरार हमारे और तुम्हारे

और हमारी और तुम्हारी आलऔलाद के बीच हुआ है और यह कभी नहीं तोड़ा जायगा।

इसी सिलसिले में हम उस पत्र को भी यहां उद्धृत करते हैं जो राजा चेतसिंह को हेसटिङ्गज् साहब ने लिखा था। वह यह है:-

"At this time Vizier of the empire having given you an agreement under his hand and seal, which I have countersigned *and also affixed my seal to it*, it is necessary that conformably thereto the treaty concluded at Allahabad by Lord Clive and the Vizier respecting Rajah Balwant Singh, your deceased father, you, with the greatest cheerfulness, pay to the Vizier the rents thereby established, in which case the Campany will always attend to your welfare, and afford you their care and protection, and on the agreements aforesaid *there shall never be any breach or deviation*."

अर्थात् हाल के वज़ीर ने इक़रारनामा अपने दस्तख़त व अपनी मोहर लगा कर तुम्हें दिया है और उस पर हमारी तसदीक़ है और हमारी मोहर भी लगी है। तुम्हारा फ़र्ज़ है कि इस इक़रारनामे के मुताबिक और इलाहाबाद में जो सुलहनामा लार्ड क्लाइव और वज़ीर के दर्मियान राजा बलवन्तसिंह के बारे में हुआ था-उसके मुताबिक़ तुम बड़ी खुशी के साथ मालगुज़ारी अदा करते रहो। ऐसा करने पर कम्पनी हमेशा तुम्हारे जानमाल की हिफाज़त करती रहेगी और इस क़रारनामे की शर्त्तें कभी तोड़ी न जांयगी।

अनन्तर ता० २६ जनवरी सन् १७७५ ई० को नवाब शुजा-उ-दौला की मृत्यु हुई। उसका ज्येष्ठ पुत्र आसफ-उ-दौला अवध का नवाब हुआ। इन्हों ने भी अपने बाप के पैर पर पैर रख राजा चेतसिह पर नज़र डाली और क़ौलनामे में खुदा, कुरान और इमाम के नामों की क़सम खाकर जो शर्त्तें इनके बाप ने अपनी तरफ से तथा अपनी आलऔलाद की ओर से की थीं उनकी ज़रा भी परवाह न कर आपने मालगुज़ारी की रक़म बढ़ानी चाही। निरुपाय हो राजा चेतसिंह ने कलकत्ते को लिखा और आत्मरक्षा के लिये वे कम्पनी की प्रतिज्ञात रक्षा के प्रार्थी हुए।

सुपरीम कौंसिल ने राजा चेत सिंह को अपनी खास निगरानी * में समझ, एजेण्ट द्वारा नवाब को ऐसा करने से रोका। एजेण्टने आम दरबार में क़ौलनामे की बात उठा कर राजा चेत सिंह के मामले को पेश किया। कम्पनी के एजेंट ने कहा कि राजा चेत सिंह और शुजा-उ-दौला के साथ जिस समय लिखा पढ़ी हुई थी उस उस समय कम्पनी को दोनों ने मध्यस्थ माना था। जो शर्त्तें कम्पनी के मध्यस्थ होने पर आप के वालिद और राजा चेत सिंह के बीच तै हो चुकी हैं उनके मुताबिक़ बर्त्ताव होता रहे-इस बात पर कम्पनी को सदा निगाह रखनी होगी। राजा चेत सिंह को मामूली ज़िमींदार समझना आपकी खाम ख्याली है †। कम्पनी के एजेण्ट की भावभंगी देख कर नवाब आसफ़-उ-दौला सतर्क हुए और नरम पड़े। बाप के सही किये हुए क़ौलनामे के मुताबिक़ राजा चेत सिंह के साथ हमेशा बर्त्ताव करने की क़सम खाई।

सन् १७७५ ई० में हेसटिंगज़् साहब ने अवध के नये नवाब आसफ़-उ-दौला के साथ नवीन सन्धि स्थापित करने का विचार किया। कौंसिल में बैठ कर हेसटिंगज़् साहब ने मन्तव्य पास किया कि राजा चेतसिंह नवाब की मातहती

* "Considered the Rajah as being under the particular protection of the Company."

† "He warned the Vizier that the Rajah was not to be considered in the light of a zemindar, as the Nawab Vizier desired to do."

से निकाल कर, कंपनी के मातहत कर लिये जांय और उन्हें विश्वास दिलाया जाय कि इस नवीन प्रबंध से उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न होगा। काशी के राज्य में उनकी स्वतंत्रता अक्षुण बनी रहेगी। कंपनी उनके स्वत्वों को कभी अपहृत न करेगी। बनारस की अमलदारी पर राजा चेत सिंह और उनके वंशधरों का एकसा स्वत्व सदैव बना रहेगा। इसके बदले में राजा चेतसिंह को कंपनी के ख़ज़ाने में सालाना २३,७१,६५६॥) [अर्थात् जो मालगुज़ारी वे वज़ीर को देते थे] जमा करानी पड़ेगी। यह रक़म देते रहने पर राजा चेतसिंह काशी की अमलदारी में पूर्णरूप से स्वतंत्रता उपभोग करेंगे *।

जब नवीन संधि पत्र का मसौदा नवाब की मंज़ूरी के लिये कंपनी के एजेएट के पास लखनऊ भेजा गया, तब उसके साथ एक पत्र एजेएट को भी भेजा गया था। उसमें लिखा था :—

"They regarded the cession of Benares and Ghazeepore as an essential artiole for the Company's interest, and that it must be insisted on."

That the perpetual and independent possession of Benares and its dependencies be confirmed and guaranteed to Rajah Cheyte Singh and his heirs forever, subject only to the annual payment of the revenue hitherto paid to the late Vizier, amounting to Rs. 23.71,656-11-0 and that Rajah Cheyte Singh shall exercise a free and independent authorlty in his own dominions subject only to the payment of his tributes."

अर्थात् बनारस और गाज़ीपुर को लेने में कंपनी का बड़ा लाभ है अतः तुम इस शर्त्त को नवाब से मंज़ूर कराते समय अधिक ज़ोर देना। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अदूरदर्शी नवाब ने बनारस राज्य का सारा अधिकार आनंद पूर्वक, सदा के लिये कंपनी को दे दिया।

नवाब की मंज़ूरी आने पर हेसटिंगज़् साहब ने राजा चेतसिंह के साथ संधि-स्थापित करने के लिये संधि के पांच नियम बना कर कौंसिल में उपस्थित किये। संक्षेप से वे नियम नीचे दिये जाते हैं :—

(१) ता० ६ सितम्बर सन् १७७३ ई० के क़ौलनामे के अनुसार जो ख़िराज राजा चेतसिंह नवाब शुजा-उ-दौला को देते थे वही अब से कम्पनी को देंगे। अर्थात् २२,४८४४९) सिक्कन्दी रुपये।

(२) राजा चेतसिंह को अधिकार होगा कि वे अपने राज्य के अन्तर्गत पूर्ण स्वतंत्रता से शासन करें और माननीय कम्पनी को अपना स्वामी समझें।

(३) राजा को लिख कर इस बात की एक सनद दी जाय कि वे बनारस के टकसाल घर में जिसे चाहें उसे नियुक्त कर सकते हैं। पर यह अधिकार इस शर्त्त पर दिया जायगा कि उन्हें समय २ पर गवर्नर जनरल और कौंसिल की आज्ञा माननी पड़ेगी।

(४) कम्पनी की इन रियासतों के बदले में राजा साहब को अपने ख़र्च से दो हज़ार घुड़ सवार सेना रखनी पड़ेगी। यह सेना गवर्नर जनरल के नियुक्त किये हुए अफसरों की देखरेख में रहेगी।

(५) जब तक राजा साहब ईमानदारी के साथ उपरोक्त ठहरावों के अनुसार व्यवहार करते रहेंगे और ठीक समय पर ख़िराज पहुंचाते रहेंगे और कम्पनी बहादुर की आज्ञा पालन करते रहेंगे, तब तक कम्पनी की ओर से अधिक रुपये राजा साहब से किसी भी बहाने से कदापि न लिये जायंगे और न अन्य किसी को राजा साहब के अधिकारों में हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया जायगा अथवा उनके राज्य की सीमाके भीतर किसी को उत्पात करने की आज्ञा दी जायगी।

["*No more* deamands shall be made upon him by the Honorable Company of *any kind, under pretence whatever* nor

* *At the same time guaranteeing him against any apprehentions from this government by their pledging its rights by the Company."* * * *

shall any person be allowed to interfere with his authority or *to disturb the peace of his country*."]

कौंसिल में गवर्नर जनरल के उपरोक्त पांचो प्रस्ताव स्वीकृत किये गये और मिस्टर फाउक [Fowke] नाम के एक सिविलियन, राजा को सनद देने, खिलत पहनाने और सन्धि के नियमों को समझाने के लिये काशी भेजे गये। फाउक साहब को इस कार्य-संपादन के लिये जो निर्देश दिये गये, उनका सार यह हैः-

तुम काशी पहुंच कर राजा चेत सिंह से जाकर स्वयं मिलना। अपने ऊपर कंपनी का आधिपत्य पहले स्वीकार करा कर तब चेत सिंह को तुम सनद देना। कम्पनी के सम्मानार्थ राजा चेतसिंह से तुम दस हज़ार रुपये का नज़राना लेना। प्रचलित प्रथानुसार तुम उनके राजप्रासाद में स्वयं जाकर खिलत पहनाना। अनन्तर तुम उन्हें भली भांति समझाना कि यदि वे किसी दूसरे के साथ मित्रता करेंगे तो उनकी रियासत कंपनी छीन लेगी। राजा साहब को यह बात समझानी भी ज़रूरी है कि जो खिराज वे नवाब शुजा-उ-दौला को देते आते हैं उसमें कमी बेशी न की जायगी। हां * टकसाल घर का अधिकार पाने पर उन्हें कुछ देना पड़ेगा। क्या देना पड़ेगा-यह बात आगे पीछे लिखी जायगी। जब तक वे इन शर्तों पर चलते रहेंगे तब तक उनसे नियमित धन से अधिक रोकड़ न ली जायगी। हमारी समझ में राज्य की रक्षा के लिये अंगरेज़ी ढङ्ग पर शिक्षित दो हज़ार घुड़ सवार सेना रखने की अत्यन्त आवश्यकता है, किन्तु तुमको इसके लिये राजा साहब पर दबाव डालने का अधिकार हम नहीं दे सकते* परंतु ब्रिटिश राज्य के प्रति सत्य व्यवहार करने और सदैव राजभक्त बने रहने के लिये तुम राजा साहब से अपने सामने शपथ करा लेना।

अनन्तर राजा चेतसिंह को देने के लिये लिख पढ़ कर जब सनद तयार की गयी और उस पर हस्ताक्षर करने का समय आया, तब कौंसिल में प्रश्न उपस्थित हुआ कि आया वह सनद ज़िमींदार की सनद है अथवा सुलहनामा †। इस पर सेक्रेटरी को निर्देश मिला कि वह विचार के लिये गवर्नर जनरल के प्रस्ताव को कौंसिल में उपस्थित करे। क्योंकि कौंसिल का नियम था कि ज़िमींदारी की साधारण सनदों पर अकेले गवर्नर जनरल के हस्ताक्षर ही हुआ करते थे, पर जब कभी किसी राजा के साथ संधि की जाती थी तब उस संधि-पत्र पर गवर्नर जनरल तथा कौंसिल के सब सभ्यों के हस्ताक्षर हुआ करते थे। कौंसिल में विचार के समय स्वयं गवर्नर जनरल साहब ने कहा कि यह ज़िमींदारी की सनद नहीं है बल्कि संधि-पत्र है। अतः कौंसिल के अन्यमत सभ्यों के हस्ताक्षर भी उस पर करवाये जांय। अन्ततोगत्वा इसी अभिप्राय का मन्तव्य भी पास हुआ और सब से उस पर हस्ताक्षर करवाये गये ‡।

क्रमशः।

---

* "It will be proper to inform the Rajah, that we do not mean to increase his tribute."

* "But we *cannot authorise* you to insist on this article."

† "Whether these intruments were to be regarded as mere zemindary sunnuds or of the nature of a treaty."

‡ "It was ruled that this was a treaty, and the documents therefore recieved the signatures of the Governor-General and all the Members of the Council."

"वासन्ती शोभा"।

सृष्टि की शोभा सुखकारी रसीली ऋतु वसंत का समागम हो गया । नवीन रचना, नवीन शोभाके नवीन सुखमाकी संपत्ति का स्रोत सारे चराचरमें वह उठा—शीतल मन्द सुगंध पवन का सुख ग्राही स्पर्श शुभ्रगात्र को आनन्द का पात्र बना चला । निराशा की शीत-लता से ठिठुरे, और कर्तव्य विमुख तुषार के सताये, आलस्य की कुहू में सर्वतो भावसे कर्म्म कारिता का विस्मृति रूपी आच्छादन ओढे जो विमुख व्यक्ति थे उनके हेतु प्रभात सी छवि दर-साता, उत्तेजना व उद्दीपन की धीमी गुद गुदी सी लगाता, नैराश्य की निराशा छुडाता, प्राचीन दोष का पतझड़ सा कराता सुरस ऋतु राज आज "अवनी से अंबर से, सकल दिगन्तन से बागन से बनसे बसन्त बरसो परै"।

वह देखो तरु वीथी आज षड् ऋतु व्यापी महाराज का आगमन जान नवीन रूप व रंग विरंगे पुष्पों का बाना सा धरे, अति उमंग व उल्लास के प्रकार को हर प्रकार दिखा रहे हैं। रोचक रसाल के विटप मंजरी की सलामी सी लेते, पवन झकोर के साथ झोका खाकर फौजी कवायद का अनुभव करा रहे हैं, उधर खेतों में सरसो के फूल फूल कर पीला फर्शसा बिछाते मानो 'वासंती श्री' के रूपका वास्तविक रंग दरसा रहे हैं और हरी पत्तियों का रंग तो मानो यह दिखाता है कि स्वागत के अनुकूल स्वरूप को धारण कर वसंतागमन का प्रत्यक्ष प्रमाण सूचित करने के निमित्त मारे आनंद के हरे भरे हो रहे है। उधर गेहू के पौधे बाल बालों के सरल भार को उठाये मानो इस उपदेश का भार ले रहे है और ज्योंही सीरी पवन की फवन का स्पर्श किञ्चिमात्र भी होता है तो झुक २ के दर्शकों को इस बात की याद दिलाते हैं कि—

"धोखा खाए हुए आदम को ज़माना गुज़रा,
देख के हँसते हैं जिस्को लबे गंदुम अब तक"।

ऊपर दृष्टि कीजिए, नभ की नीलिमा का शारदीय घन तुहिन जो आकाश को धुंधित कर रहा था महाराज का आगमन जान ऐसी लाइन सी क्लीयर कर के व्यर्थ अनावश्यक विस्तृत 'धूम्र ज्योतिस्सलिल मारुतां' द्वारा सिद्ध किए पटलको दूरकर वह हृदयानंदिनी झाकी दिखाते हैं कि प्राकृतिक शोभा का अनल स्वरूप मालूम होता है। कभी छोटी २ बदली की टुकडियां रजतकांति झलकाती, सूर्य्य प्रभा की आभा को बाष्फ पुटपाक में छुपाती एक अद्भुत झलक प्रकाश करती है। कभी २ स्नेह सुधा का सलिल सीकर अपवित्र संसार पर मार्जन सा छिड-कती, विरोध, मतभेद के पापों को इस धर्म्म-स्थली भारत भूमि से हटाने की चेष्टा सी करती और शुचि व अनन्य सौहार्द की सीरी समीर चलाकर द्वेष, आग्रह, और विषाद का विवाद जो इस शांत निष्कलङ्क कलाधर पर चिन्ह सा लग रहा था उसपर स्वच्छंद चंद्रिका सी अतुल कीर्ति फैला रही है। कहा तक कहा जाय, क्या २ समा देखा जाय, जड़ संसार अकथनीय शोभा का प्रसारण्य कर रहा है॥

वसंत पंचमी भी महोत्सव का अवसर है। प्रत्येक रसिक विवेकी जन विज्ञान चक्षु दायिनी महादेवी भगवती सरस्वती की पूजन करके मन को सुखी करते है॥

संसार वृद्धिकारी, मनुष्य गणना वर्धक, रोचक रसिक गण इसी सुअवसर पर महाराज मन्मथ का जन्मोत्सव मान परम सुख सिंधु में अप्रकाश्य हर्ष प्राप्त कर विषाद को समूल नष्ट करते हैं। अष्टरस प्रधान श्री शृङ्गार रस की सम्पूर्ण सामग्री एकत्रित कर, मानसिक व शारीरक सुख का सम्वर्धन करने मे प्रवृत होते हैं॥ गान, एवं अन्य सुख योजन कारी पदार्थों का उपभोग करके तुष्ट होते हैं और अपने पूर्वजों की [illegible] की इस आनन्द दाइनी प्रथा का

प्रचार करके अगाध स्पर्श का सुख भोगते हैं। किन्तु कौन ऐसा हत भागी है जिसके लिये 'पत्रं नैव यदा करील विटपे दोषो वसन्तस्य किम्' कहा गया है, वैद्यक के मत से इस सुअवसर पर बनस्पति में नवीन रस का संचालन होता है-शरीर धारी के बपु में नवीन रुधिर का प्रादुर्भाव होता है और उमंग व उल्लास द्विगुणित होता है।

भारत में बसन्त।

देश दशा पर ध्यान करने से एक नवीन आशा का तरु अंकुरित होता है। उन्नति से निरास, चित्त में ह्रास खाए, भय त्रास से सताये प्रजागण उन्नति का उद्गार कर चले, राजा का कोप, कठोर कानून की भयकारी अमासी श्रृङ्खला जिससे प्रजा जकड़ रही है, और सभा संबंधी आदि उग्र क़ानूनों की श्रृङ्खला ढीली हो चली-शांति व विश्वास का तारतम्य बंध चला। अनेक कान्फरेंस, सभा, व धार्मिक संप्रदाय के जनोने भी इस सुअवसरका सान्निध्य प्राप्त कर स्थानीय प्रदर्शिनी की भांति अपनी २ कर्तव्य कारिता की मधुरिमा दिखा चले।

ऋतुराज सरीखे, सर्व सुख देने वाले, षट ऋतु का समान आदर करने वाले, समयानुसार, क्रमसे, यथार्थ आवश्यकता व योग्यतानुसार, देश व गणना के सिद्धांत का विचार पूरित-कर-शांतभाव धारी श्रीमान बड़े लार्ड हार्डिंग भी बिराजे हैं।

इम्पीरियल कौन्सिल रूपी क्षेत्र स्थली में अनेक प्रकार की चुनी हुई देश दशा की गुहार को सुनने वाले लार्ड हार्डिंग बसन्त राज का रूप प्रत्यक्ष धारण कर बैठे। गोखले सरीखे कोकिल का कूजन, मुसलिम लीग का पठित पाठ, कण्ठ से निकाल कर सुनाने वाले तोते से नवाब साहब, मयूरसी केका सुनाने वाले मनोहरता की मूर्ति, अनेक प्रकार युक्त मालवीय जी आदि उपस्थित हुए।

जैसे कोई २ करील से वृक्ष वसंत की श्री का प्रादुर्भाव देख कर भी वैसे ही अप्रिय व पत्र पुष्प रहित अवस्था में बने रहते है हमारे क्षमा कवच धारी, तथा अपनी दुर्दशा का एक दूसरे से वखान मात्र करने वाले, अपर जन्य श्रम फलाभिलाषी, किंकर्त्तव्य विमूढ़, "समय पर सर्वदा चूकने वाले, प्रत्युत्पन्न तथा अनागत विधाता सी मति न रखने वाले, यद् भविष्य मात्र" की तुष्टि से पुष्टि पाने वाले हिंदू भाई करील वृक्ष की गणना में अपने को देख कर भी कर्म क्षेत्र में आज इतनी अपार हानि सहने पर भी उत्सुक व उत्तेजित नहीं होते-मानो "पत्रं नैव यदा करील विटपे दोषो वसंतस्यकिम्" की कहावत चरितार्थ कर लार्ड हार्डिंग के कार्य्यावली को स्वयं अनिर्बचनीय करने को उन्मुख हैं।

कल कंठी मयूर की केका कर्ण कुहरो से सुन कर किस किंपुरुष का हृदय, कर्म क्षेत्र में नृत्य करने को प्रवृत न होगा, कौन ऐसा पतित है जो पावन शब्दों का प्रयोग सुन कर भी देश की पवित्र दशा के विरुद्ध सहमत होने से संकुचित होगा। क्षणिक पाण्डित्य प्रकाशन मात्र से अपना अनिष्ट सर्वतोभाव से, सब के साथ असामान्य संबंध, केवल मौनावलंबन से ही नहि किंतु वार्जन प्रक्रियाका प्रयोग कर हिंदू समाज पर प्रभाव नहीं पहुंचा सकता, न आली जनाव का ही ख्याल आला कर सकते हैं। मयूर की कूक को तोते की आवाज से दवा देने का तमाशा इस समय पर एक अनोखा दृश्य हुआ पर इस कूक से मयूर को मूक बनाने की चेष्टा करना मानो ऋतुराज के समय में आनंद की आशा करने वाले प्रजावर्ग के कलेजे को टूक २ करना और महाग्लानि की हूक पैदा करना है।

धन्य ऋतुराज! तुमारा आगमन स्वागत!! तुमारी स्थिति आशा देनी वाली! तुमारा प्रादुर्भाव उन्नतिकारी! तुमारा प्रकाश सुखमा, शांति और सुक्रम का संचारी और जड़ जेतन

का प्रफुल्लकारी और नीरस को सुरस बनाने वाला है। भारतीय राजसभा में यद्यपि अनेक चैतन्य पुरुष विद्यमान थे पर तो भी वहां अभाव की पूर्ति करने के लिए थोड़े से ऐसे जड़ भी प्रगट हो स्थावर भाव की दशा में खड़े हो गये कि पूरी वसंत की बहार दिखा दी।

श्री मालवीय जी ने हिंदू की दशा सुधारने के लिये जो कुछ कहा सुना वह उत्साह, वह कर्तव्य कौन भद्र पुरुष नहीं प्रशंसनीय कहेगा-पर वृथा विरोध जो उसी वर्ग के जनों द्वारा किया गया वह आधुनिक इतिहास मे एक कलंक का टीका रहेगा जब तब फिर इसका प्रायश्चित न किया जाय। बसंत सुखमा उद्यान मे यह कार्य एक कंटक सा खटकता रहेगा-परमात्मा इस सर्वतो निम्न भाव का वस अंत करै।

"र"

—:o:—

आलोक।

[लेखक—पं० किशोरी लाल गोस्वामी]

उष्णता ही की भांति प्रकाश या आलोक के भी स्वभाव जानने के लिये विज्ञानवित् परिडतों ने जी तोड़ कर जो कुछ परिश्रम किया है, उसके मर्म को जान कर केवल आश्चर्य ही नहीं, बरन अत्यंत आनंद भी प्राप्त होता है।

किसी समय में पदार्थ विद्या के विद्वानों का यही मत था कि 'आलोक' भी उष्णता की भांति अत्यंत सूक्ष्म और तरल द्रव है, किंतु अब तो यह मत सर्ववादि सम्मत हो गया है कि 'द्रव' के किसी विशेष रीति से हिलने पर 'आलोक' प्रगट होता है, परंतु वह हिलना इतना सूक्ष्म और अदृश्य है कि सहसा नेत्रों से नहीं दिखाई देता, परंतु यह हिलने की क्रिया सभी जगह थोड़ी या बहुत व्याप्त अवश्य है।

इस विषय में विज्ञानवित् परिडतों ने बहुत से ऐसे नियमों को बना रक्खा है जिनसे प्रकाश की क्रिया भी ठीक २ जानी जा सके।

बृहस्पति-मण्डल के पीछे जिन ग्रहों का निकलना ज्योतिषियों ने एक समय गणित द्वारा निश्चय किया था, उन ग्रहों को फिर कुछ काल के पश्चात् देखने से यह अनुमान हुआ कि प्रकाश के आने में कुछ देर होती है। इस बात की परीक्षा करने से यह जाना गया कि प्रकाश में इतना 'बल' और 'वेग' है कि एक पल (१) में वह एक लाख बानवे हज़ार मील तक जाता है। इसी कारण से सूर्योदय होने के बाद सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर अर्थात् हमारी आंखों के सामने आठ पल में आता है।

बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि यह विषय यद्यपि हमारे आर्य शास्त्रों में भरा पड़ा है, परंतु आज कल के आलसी और सिद्धान्त ग्रंथ के न जानने वाले ज्योतिषियों के कारण यह विद्या भी पाश्चात्य विद्या गिनी जाने लगी है।

आलोक किसी प्रकाशमय वस्तु से निकल कर किरण-रूप होके सीधा जाता है और जिन वस्तुओं को छेद कर वह पार हो जाता है, उसे पार-दर्शक वा प्रकाश-बेधक कहते हैं। इसीतरह जो वस्तु प्रकाश को रोकती है उसे अपार-दर्शक या प्रकाश-रोधक कहते हैं।

प्रकाश-रोधक वस्तु प्रकाश को प्रतिस्फरित अर्थात् पीछे की ओर ढकेलती है, इसी प्रकार पार-दर्शक वस्तु प्रकाश को आगे की ओर फेंक कर उसे कम कर देती है। यही कारण है कि स्थान विशेष से प्रकाश में तारतम्य होता है।

---

(१) चौबीस घंटे का दिन रात होता है। एक घंटे में साठ मिनट और एक मिनट में साठ सेकेण्ड होते हैं। इसी तरह हमारे ज्योतिष के मत से साठ दण्ड का दिन रात होता है। एक दण्ड में साठ पल और एक पल मे साठ विपल होते हैं।

जैसे, चार हाथ की लंबी चौड़ी और ऊंची कोठरी में एक दीपक का जितना प्रकाश होगा, उससे दूनी लंबी, चौड़ी, और ऊंची कोठरी में वह उस (प्रकाश) का आधा रह जायगा, और इसी प्रकार स्थान की लंबाई, चौड़ाई, तथा ऊंचाई ज्यों ज्यों बढ़ती जायगी, प्रकाश में क्षीणता होती चली जायगी, यहां तक कि वही प्रकाश एक खुले हुये लंबे चौड़े मैदान में एक जुगुनू के अतिरिक्त और कुछ भी प्रतीत न होगा !

—:o:—

सम्पादक का कोरा उत्तर ।

[लेखक—पं० बद्रीनाथ भट्ट ।]

है अभी आपका मिला सुलेख महाशय,
पर नहीं समझ में आया कुछ भी आशय ।
हूं अतः विवश उसके प्रकाश करने में ।
है शोक आपको यों निराश करने में,
लेखन शैली मेरे उपयुक्त नहीं है,
व्याकरण दोष तक से भी मुक्त नहीं है ।
देता अवश्य स्थान इसे मैं सादर,
पर देंगे मुझको पाठक वृथा अनादर ।
इसके प्रकाश से करिये क्षमा प्रदान,
और निम्न लिखित बातों पर दीजै ध्यान ।
होनेके होनहार लेखक अभिलाषी,
होते हैं सदा सुधीर, सुशील, सुभाषी ।
अति ललित मधुर भाषा की शैली चहिये;
नहिं लक्कड़ तोड़ कठोर न मैली चहिये ।
हैं अस्त व्यस्त अभ्यस्त समस्त किताबें,
जिनको, वे लेखक धुआंधार कहलावें ।
इन अंड बंड खंडित लेखों के प्रेषक,
हैं कलम तोड़ घनघोर घमंडी लेखक ।
साहित्य सिंधु का सेतु बड़ा दुस्तर है,
अध्ययन मनन साधन आदिक का घर है ।
लिक्खाड़ लेखकों के लेखों को लखकर,
चञ्चल सत्काव्य-सरोज-मधुर-रस चखकर ।
निज मधुर-मधुप-ध्वनि-ध्वनित धरा को करिये,
आधुनिक धुआंधारों के कान कतरिये ।
कर अपना सुचिर प्रवेश ग्रंथ-सागर में,
कर सञ्चय रत्न अशेष उसी आकर में ।
साहित्य-सुंदरी को भूषित करियेगा,
लिख प्रचुर ग्रंथ भंडार पूर्ण भरियेगा ।
जब कर्मक्षेत्र में कल कल चहल मचैगी,
तब सत्य धर्म की धवलित ध्वजा बचैगी ।
अज्ञान-तिमिर का सर्वनाश जब होगा,
सद्धर्म, ऐक्य, सुख का विकाश तब होगा ।
चलते पुरजों की चाल नहीं चलने की,
दिलदार दलों की दाल नहीं गलने की ।
जब न्याय-दंड दिन कर नभ में आवेगा,
तब श्रीहत मुख खद्योत न दिखलावेगा ।
अब हिंदी का अभ्युदय समय आया है,
आशा का घन घनघोर घुमड़ छाया है ।
अब पुलकित होकर नृत्य मयूर करेंगे,
निज मद-कल से कानन को पूर्ण भरेंगे ।
भागेंगे उनकी ध्वनि काकादिक सुनकर,
वा होंगे दुख से भस्म वहीं जल भुनकर ।
नव-प्रफुलित-पद्म-पराग सुखद है जैसे,
कवि-मनोद्धार-अनुराग सुखद है वैसे ।
साहित्य-कलानिधि-शीतल-किरणों पाकर,
निश्चय प्रफुलित होगा जन-हिय-रत्नाकर ।
सेवा हिंदी का आप अवश्य करेंगे,
है आशा यही न धैर्य कदापि तजेंगे ।
क्या कहूं अधिक, हैं खुद ही आप सुविज्ञ,
हूं कृपा आपकी का अत्यंत कृतज्ञ ।
तन मन धन से सेवा हिंदी की कीजै,
जग में निज कीति बढ़ाय पुण्य यश लीजै ।

—— —

हमारी श्रोत्रेन्द्रिय ।

२

[लेखक—श्रीयुत जीतन सिंह]

एक बधिर मित्र ।

बाल्यावस्था के एक मेरे मित्र कुछ दिनों से किञ्चित् कम सुनते हैं, अवस्था इन की इस समय, प्रायः ४५ वर्ष की होगी । इन के बधिर होने के पहले जब अन्य साथियों के साथ हम लोगों का

समागम निज जन्म-ग्राम में हुआ करता था, तब थे हम सब लोगों के साथ वैसे ही हँसते, खेलते और प्रसन्न बदन रहा करते थे, जैसे बाल्य काल के पठन पाठन के समय में। किंतु अब ये कुछ चिंतित, उदास, किंवा वैसे प्रसन्न-चित्त नहीं मालूम होते हैं। अब ये बहुधा एकांत में सब से अलग और प्रायः ध्यानावस्थित रहते हैं। यद्यपि ये अपने मुख से अपनी इस चिंता और एकांत वासिता का कुछ कारण प्रकाश नहीं करते हैं, पर मेरा ख्याल है कि इन की उदासीनता का मुख्य कारण बहुत कुछ वही रोग है, और उसी की चिंता इन के शिथिल कपोलों के ऊपर, इस युवावस्था में ही, स्वेत बालों के रूप में प्रगट होकर स्पष्ट कहे देती है, कि मैं ही इन के स्वाभाविक प्रफुल्लित बदन को पद-दलित करती, असह्य बोझ से इन के हृदय-पटल को नित्य दबाये रहती हूं।

सारांश।

इन उदाहरणों से पाठकों को अंधत्व और बधिरत्व जनित दुःखों की कठिनता का परिचय भली भांति मिल गया होगा। जो मनुष्य अपनी पूर्वावस्था में देखने और सुनने का सुख अनुभव कर चुके हैं, उन में से अन्धत्व प्राप्त मनुष्यों में कौन विशेष दुखी और अधिक अभागा है, सब कोई सरलता से निर्णय कर सकेंगे। मुझे विश्वास है, कि हम लोग बाटोवेन साहब की अपेक्षा कवीश्वर सूरदास जी और मिल्टन के भाग्य को सराहेंगे, किसी बधिर मित्र की अपेक्षा एक अन्धे प्राणी को विशेष सुखी समझेंगे, सुतरां बधिर गायक की अपेक्षा अन्धे कवि को संतुष्ट करना अधिक सरल पायेंगे।

प्राचीन दृश्यों और स्वरों के ध्यान के विषय में।

मेरे उपरोक्त विचार का एक यह भी कारण है कि किसी देखी हुई वस्तु किंवा दृश्य को, मनुष्य, यथा तथ्य, अपने आभ्यंतरिक हार्दिक नेत्रों के सन्मुख उपस्थित कर सकता है। अनुपस्थित कुटुम्बी मित्र, पुत्र, बालकपन के साथी, मृत माता-पिता इत्यादि का ध्यान द्वारा दर्शन किया जा सकता है, अथवा यों कहिये, कि हम लोग जब चाहें, उनको ध्यान मार्ग से बुलाकर अपने हृदय-मंदिर में खड़ा कर सकते हैं। किन्तु क्या इन में से किसी के स्वरों का भी कोई ध्यान कर सकता है? मेरे विचार से तो अनुपस्थित व्यक्ति के स्वरों को ध्यान द्वारा पुनः सुनना, किम्वा ध्यान में उन का अनुभव करना, यदि असंभव नहीं, तो दुस्साध्य अवश्य है। यद्यपि हम लोगों में से कोई ऐसे भाग्यवान होंगे, जिन्हें चित्रकारी की नैसर्गिक विद्या में कुछ थोड़ा बहुत अभ्यास हो, तथापि अपने २ देखे हुए पर्वत, नदी, बाट, नगर, दुर्ग, घाट, कुञ्ज, मेला, मंदिर इत्यादि का शुद्ध २ चित्र हम सब लोग बात की बात में अपने हृदय-पटल पर खींच लेते हैं, और अपनी आंखों को बंद किये हुए भी उनका वास्तविक दर्शन पुनरपि कर सकते हैं। अब स्वर के विषय में विचार कीजिये; देखिये कोई कितना भी सुप्रसिद्ध और चतुर गाने वाला क्यों न हो, परंतु वह भी बिना अस्फुट स्वरों में किंचिंमात्र भुन भुनाकर आलाप लिये, ध्यान मात्र से हो, निज अभ्यस्त स्वरों और रागों का भी यथा-तथ्य, पुनः उच्चारण कठिनताही से कर सकता है; जिन स्वरों का उन को अभ्यास नहीं है, जिनका उनको केवल ध्यान मात्र है, उनको वैसेही गाकर सुना देना तो प्रायः असंभव ही है। इस बात का विलक्षण उदाहरण हम लोगों को अपने स्वप्नों में अच्छी तरह से मिलता है।

स्वरों का स्वप्न नहीं होता है।

जहां तक मुझ को स्वप्न के विषय में अनुभव है, मैं कह सकता हूं, कि हम लोगों को स्वरों का स्वप्न कभी नहीं होता है। एक अंगरेज़ी कवि कालेरिज ने तो अपनी एक

'कुबला खां' नामी कविता में लिखा है, कि "मैंने स्वप्न में एक बीणाधारी तरुणी देखा, वह हबशी जाति की युवती थी, और अपना बीणा बजा कर अबोरा नामी पर्वत के विषय में कुछ गान कर रही थी।" * पर इस कवि का स्वप्न मुझ को निरा स्वप्न ही सूचित होता है; मुझे पूर्ण विश्वास है, कि कवि की बीणा-गान के अनुभव की उक्ति निस्सार और प्रकृति विरुद्ध है; हम लोगों को स्वप्न में शब्द-स्वर और बीणा-ध्वनि इत्यादि सुनाई नहीं देती हैं। इस में संदेह नहीं, कि स्वप्न में भी हम लोग अनेक प्रकार के वार्तालाप के संकेत करते हैं, विचित्र २ बातें हम लोगों से संकेतों द्वारा कही जाती हैं, और उन का उत्तर भी हम लोग, बिना होंठ हिलाये, स्वर-रहित शब्दों द्वारा देते हैं; पर ये सब प्रायः उसी प्रकार के सार-हीन संकेत हैं, जैसे जागृत अवस्था का हम लोगों का अनुपस्थित मनुष्य के साथ की मांसिक वार्त्तालाप; अथवा किसी गाने का मांसिक आलाप। सारांश यह है कि ये सब बातें स्वर-रहित संकेतों द्वारा हम लोगों के ज्ञान-गोचर होती हैं। स्वप्न-संसार एक शांत-स्थान है; वहां के सब निवासी बधिर और मूक हैं।

जागते हुए भी प्राचीन स्वरों का सुनना असंभव है।

अब जागृत अवस्था के मनुष्य के किसी अनुपस्थित व्यक्ति के किये हुए स्वरों के अनुभव का उदाहरण लीजिये। एक अंगरेज़ी कवि स्काटलैण्ड देश की किसी गिरि-बाला (Highland lass) के गाने पर मुग्ध होकर यह कहता है:—

"चाहे उस की गीत का विषय जो कुछ रहा हो परन्तु ऐसा सूचित होता था, कि उस के गान के धारा-प्रवाह का अन्त न होगा; मैंने उस को निज काम में लगी हुई, हँसिआ पर झुकी हुई खेत काटने में गान करते हुए देखा। स्थिर और शान्ति भाव हो मैंने उसकी गीत को ध्यान पूर्वक सुना; और जब मैंने गिरि-शिखर की ओर अपना मार्ग लिया, तब, यद्यपि वह मधुर ध्वनि मुझ को सुनाई तो नहीं देती थी, तब भी वह गीत ज्यों की त्यों मेरे हृदय में अंकित हो गई, और बहुत काल तक मैं उस का अनुभव करता रहा" * इस महाकवि का नाम वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) था, जिस का शब्दार्थ 'उचित वक्ता' हो सकता है। मेरे विचार से ऐसे 'उचित वक्ता' कवि को प्रकृति के विरुद्ध ऐसी बात का लिखना उचित नहीं था। गीत का हृदय-पटल पर अंकित होना, और पीछे से भी उसका अनुभव करना सर्वथा प्रकृति-विरुद्ध है। मालूम होता है, कि उक्त गिरि-बाला का मनोहर रूप-लावण्य, उस की मुग्धावस्था, उस का खिलता हुआ यौवन, उस का अकृत्रिम शुद्धाचरण, उस के कोमल कर कमलों की हँसिया, और उससे खेत काटने के लिये उसका झुकना, इत्यादि ऐसे ही और २ अनेक भाव कवि के स्वाभाविक चंचल चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर लिये होंगे। उस की गीत के वे शब्द आभ्यन्तरिक ज्ञान द्वारा कभी किसी तरह पर नहीं अनुभव हो सकते थे।

---

* "A damsel with a dulcimer
In a vision once I saw:
It was an Abysinian maid,
And on her dulcimer she played,
Singing of Mount Abora."
Coleridge-'Kubla khan.'

* "Whatever the theme, the maiden sang,
As if her song could have no ending,
I saw her singing at her work
And o'er the sickle bending;
I listened motionless and still,
And, as I mounted up the hill.
The music in my heart I bore
Long after it was heard no more."
Wordsworth-'The Solitary Reaper.'

स्वप्न-दृष्ट पदार्थों का प्रबल प्रभाव।

सोते और जागते समय की सुनी हुई बातों का तो विचार हो चुका; अब स्वप्न में देखी हुई वस्तु का कुछ विचार कीजिये, जागृत अवस्था में जो पदार्थ हम लोगों के दृष्टि-गोचर होते हैं, हमारे हृदय पर उनका प्रायः उतना विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, जितना किसी क्षण-स्थायी स्वप्न में के दिखलाई पड़े किसी अद्भुत अथवा भयंकर पदार्थ का स्वप्न के पश्चात् भी पड़ा रह जाता है। यह प्रभाव यहां तक प्रबल होता है, कि जब जागृत अवस्था में भी हम लोग किसी भयानक पदार्थ अथवा विस्मयोत्पादक दृश्यको सम्मुख देखते हैं, तब भी सहसा हम लोगों के मुख से निकल पड़ता है, 'कि यह सत्य है, किंवा स्वप्न?' अब ऐसा विचार होता है, कि अंधे मनुष्य भी तो स्वप्न देखते होंगे, अथवा जागते हुए अपने हृदय की दृष्टि द्वारा किसी पूर्व परिचित, किम्वा अपरिचित पर सुनी अथवा स्पर्शेन्द्रिय से अनुभव की हुई, वस्तु का ध्यान उनके मन में भी आता होगा। सारांश यह, कि ये लोग इस प्रकार निज ध्यान द्वारा सब पदार्थों और दृश्यों के अनुभव करने के योग्य होने से अपने बधिर भाइयों की अपेक्षा विशेष भाग्यवान अवश्यमेव हैं।

प्राचीन घटना को पुनः यथावत देख लेना।

इस समय भी मैं अपनी वैसीही मानसिक दृष्टि द्वारा निज वाल्यावस्था की एक घटना का पूर्णतः ध्यान कर सकता हूं इस घटना को हुये अब प्रायः ३५ वर्ष हो चुके पर वह स्थान, वह मकान, वह घर, वह चारपाई, तथा उस घर में की प्रत्येक वस्तु मेरे सन्मुख ज्यों की त्यों उपस्थित हो जाती हैं, वैसेही रोंगटे अब भी खड़े हो जाते हैं। इसी प्रकार अपने वाह्य नेत्र, यदि, आप भी कुछ काल के लिये बंद करलें, और अपने ऊपर आई हुई किसी प्राचीन घटना का ध्यान करें, तो इसमें संदेह नहीं, कि वह तुरन्त, ज्यों की त्यों, अपने सन्मुख उपस्थित हो जायगी।

बिना देखी वस्तुओं का मानसिक चित्र उतार लेना।

यही नहीं, किन्तु बिना देखी, पर सुनी या पुस्तकों द्वारा पढ़ी हुई वस्तु, मंदिर और नगर इत्यादि का एक प्रकार का मानसिक चित्र भी हम लोग अपने हृदय-पटल पर खींच सकते हैं; और उनका अनुभव कर सक्ते हैं; बहुत संभव है वह अनुभव ठीक न हो अनदेखी वस्तुओं के हमारे मानसिक चित्र यथार्थ न उतरें पर उतरते वे किसी प्रकार के अवश्य हैं और हमारे मन को प्रायः वैसेही अनुरंजन करते रहते हैं, जैसे यथार्थ चित्रों के देखने में होता है। मैंने समुद्र कभी देखा नहीं है पर उस का एक प्रकार का चित्र अपने मन में मैं खींच लेता हूं, और अपनी विचार-दृष्टि-द्वारा उस वृहत जल-राशि का अनुभव कर सकता हूं। मुझे लंडन नगर देखने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ है, पर एक रात्रि के स्वप्न में मुझ उसका दर्शन हो चुका है; जिस प्रकार का वर्णन पुस्तकों में मैंने पार्लियामेण्ट में सेवकों, वेस्टमिनिस्टर ऐबी, लंडन टावर, बकिंघम राजमहल इत्यादिक पढ़ा है, और उससे जैसा मानसिक चित्र उनका मेरे हृदय पर बना है, वैसाही मुझे स्वप्न में दिखलाई भी पड़ा था। अतः आंख के न होने से भी हम लोगों को आंख का सुख मिल सक्ता है। स्वर बधिरों को कभी सुनाई नहीं देता है, उन्हें इसका स्वप्न भी कभी नहीं हो सक्ता है। संभव है कि कान बंद हो जाने पर कुछ २ सनसनाहट बधिरों को भी आती हो पर किसी उत्तम और पूर्व परिचित गीत का स्वर उनको मानसिक ज्ञान द्वारा कभी नहीं सुनाई देगा, चाहे प्रथम सुनते समय उस गीत का उनके हृदय पर कितना भी अधिक

प्रभाव पड़ा हो। इससे सिद्ध है कि कान के बिना स्वर सुनने का सुख हम लोगों को किसी प्रकार से नहीं मिल सक्ता है।

मनुष्य के हृदय पर स्वर का अमिट प्रभाव का पौराणिक उदाहरण।

चित्रकारी अथवा शिल्पकारी की अपेक्षा मनुष्य में गाना सुनने सीखने और जानने का प्रेम विशेष पाया जाता है। सस्वर गान और मधुरध्वनि का बाजा सुनकर देवता राक्षस और सर्प इत्यादि विषधर जीव भी वशीभूत होते सुने जाते हैं। श्रीकृष्ण भगवान की वंशी ध्वनि से बृज बधूटियों के चित्त पर जितना प्रभाव पड़ा था वह श्री मद्भागवत ग्रंथ में पूर्णतः वर्णन किया ही है। एक हिंदी कवि ने निम्न लिखित कवित्त में वंशी-ध्वनि के अमिट प्रभाव का अच्छा वर्णन किया है:-

"बाजी बौरानी, बाजी देखिवे को धाई,
बाजी अकुलानी सुनि वंशी बंशीधर की।
बाजी ना पहिरैं चीर, बाजी ना धरैं धीर,
बाजिन के उठी पीर, विरह अनल भर की॥
बाजी ना बोलैं, बाजी संग लागि डोलैं,
बाजिन को बिसरि गई सुधि बुधि घर की।
बाजी कहैं बाजी बाजी, बाजी कहैं कहां बाजी,
बाजी कहैं बंशी बाजी सांवरे सुंदर की॥

विदेशी पौराणिक उदाहरण।

हमारे ही देश के पौराणिकों ने मधुर ध्वनि-विशेष कर मुरली-ध्वनि-की इतनी बड़ाई नहीं की है; विदेशी पुराणों में भी इसकी प्रतिध्वनि पाई जाती है। प्राचीन यूनान देश के पुराणों में आर्फियस (Orpheus) नामी एक बंशी बजाने वाले की कथा है। ऐसा कहा गया है कि उस का बजाना सुनकर वृक्ष, पर्वत इत्यादि चलने फिरने लग जाते थे, नदियों का जल बहना बंद हो जाता था। अपनी स्त्री के मर जाने पर उसने अपनी बांसुरी को बजा कर यमराज को भी मोहित कर लिया था, और अपनी स्त्री को पुनः लौटा ले आने का उनसे बर पाया था। उसके विषय में लिखते हुए जे० फ्लेचर (J.Fletcher) नामी एक अंगरेज़ कवि ने यह बहुत ही सत्य लिखा है, कि :-

"In sweet music is such art—
Killing care and grief of heart
Fall asleep or, hearing, die."

अर्थात् "मधुर राग में अद्भुत प्रताप है-प्राण लेने वाली मन की चिंता और व्यथा या तो कुछ काल के लिये दूर हो जाती हैं, अथवा सुनते ही नाश को प्राप्त होती हैं!" बहुत ही सत्य है! और इसके अनुभव करने का एक मात्र मार्ग हमारी श्रोत्रेन्द्रिय है, जिससे हमारे वधिर और मूक भाई वञ्चित हैं; उन बेचारों के लिये यह कितनी बड़ी आपत्ति है?

गीत और वाद्य हमारे शारीरिक परिश्रम को हलका करने वाले हैं।

मधुर गान और सस्वर ताल-ध्वनि का श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा हमारे हृदय पर इतना प्रबल प्रभाव केवल निरुद्यम बैठे रहने ही की दशा में नहीं पड़ा करता है, किंतु कार्य में लगे होने पर हम लोगों को आनन्द देते हुए यह हमारे शारीरिक परिश्रम को भी हलका करता है तथा हमारा उत्साह बढ़ाता है। मार्ग में चलते, खेतों को बोते और काटते, आटा पीसते समय स्त्रियां क्यों गाती हैं? सड़कों पर कङ्कड़ दबाने के लिये बेलन खिंचवाते समय मेट किस लिये कुछ सस्वर कहता है, और उसके स्वर में स्वर मिलाते हुए, खींचने वाले इतने भारी बेलन को किस के बल से खींचते चले जाते हैं? बड़े २ काष्ट और पत्थरों को ऊंचे मकानों पर चढ़ाने में मनुष्यों का कौन सहायक होता है? बड़ी २ नौकावों के चलाने में मल्लाह अपने डांड़ों को ताल पर गिराते हुए गा गा कर क्यों नौकायें खेते हैं? कहार पालकी इत्यादि अपने कंधे

पर ले चलते समय, किसके बल से अश्व की गति से चलते हैं? यह सस्वर शब्द ही है, जो अपना प्रभाव हमारे हृदय पर डाल कर हमारे सब शारीरिक परिश्रम को दूर करने तथा उसे हलका करने में समर्थ होता है, इस का कारण-भूत-उत्पत्ति-स्थान-हमारी श्रोत्रेन्द्रिय, है इससे वञ्चित होना, इन सुखों से वञ्चित होना तथा मनुष्यत्व से वञ्चित होना है।

हमारी चक्षु-इन्द्रिय की एक विशेषता और अनेक दोष।

श्रोत्रेन्द्रिय की अपेक्षा हमारी चक्षु-इन्द्रिय में केवल एक विशेष गुण है, और वह यह है, कि किसी दूरस्थ दृश्य को हम लोग अपनी आंखों के उठाते ही देख सकते हैं। बीसों मील दूर पर्वत-स्थिति बड़े २ वृक्षों को केवल नेत्र से ही हम लोग देख लेते हैं; दूर-दर्शक यंत्र की सहायता से उस पर्वत पर की छोटी २ वस्तुओं को भी उत्तम रीति से देख लेते हैं; करोड़ों मील दूर के तारागणों को रात्रि में ज़रा आखें ऊपर आकाश की ओर करते ही हम लोग देखने लग जाते हैं!! हमारी श्रोत्रेन्द्रिय में यह अनुपम गुण नहीं है, सौ दो सौ गज़ के अंतर से भी शब्द यदि कुछ ऊंचे स्वर से न कहे जांय, तो वे स्पष्ट हम लोगों को नहीं सुनाई देते हैं, मील दो मील का कहां ठिकाना! किंतु हमारी श्रोत्रेन्द्रिय में एक यह विशेषता है, कि एक ही समय में उच्चारण किये गये दो, चार स्वरों के हम परस्पर मिलान कर सकते हैं। यह गुण हमारी चक्षु-इन्द्रिय में नहीं है। एक समय में केवल एक ही पदार्थ इससे देखा जा सकता है, एक ही समय में दो समीपस्थ पदार्थों का भी देखना सर्वथा असम्भव है। अस्तु, जब हम लोगों को दो दृश्यों का परस्पर मुकाबिला करना होता है, तब हम अपने 'प्रथम' की देखी वस्तु, अतः उस के अनुपस्थित गुणों को 'वर्तमान' में देखी जाती वस्तु के उपस्थित गुणों से मिलान करते हैं। श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा दो २ चार २ प्रकार के स्वरों के ज्ञान हम को एक साथ होते हैं, किन्तु दो दृश्यों के चित्र हमारे नेत्र-पट पर एकही समय कभी बन ही नहीं सकते हैं। यह अवगुण यहां तक बढ़ा चढ़ा है, कि जब किसी पदार्थ का चित्र एक बार हमारे नेत्र-पट पर बन जाता है, तब उसको मिटने और अदृश्य होने में कुछ काल लगता है; उस पदार्थ के हमारे नेत्रों से हट जाने पर भी कुछ काल तक उसका चित्र हमारे नेत्र-पटों पर बना ही रहता है?। इस धोखे को साधारणतः हम लोग शीघ्र अनुभव नहीं कर सकते हैं, अथवा अनुभव करते हुए भी, स्वाभाविक होने से, धोखे में पड़े रह जाते हैं। पर धोखा धोखाही है, और यह होता है, इससे छुटकारा नहीं हो सकता है। लड़कपन में बालक जाड़े की ऋतु में, अग्नि-सेवन करते समय, बहुधा 'लुत्तो' खेलते हैं, अर्थात् किसी पतली लकड़ी का कुछ भाग जला कर उसके जलते हुए छोर को घुमाते हैं। घुमाने से उस लकड़ी के जलते, किम्वा टिमटिमाते हुए नोक का एक चमकता हुआ अण्डाकार मार्ग बन जाता है। यह मार्ग क्या है? एक धोखा मात्र! लकड़ी अण्डाकार मार्ग में घुमाई जाती है, पहले एक ख़ास स्थान से उसके चमकते हुए नोक का एक चित्र हमारे नेत्र-पट पर बनता है, जब तक वह चित्र पट पर से मिट कर अदृश्य नहीं होने पाता, तब तक दूसरे, तीसरे, चौथे इत्यादि पूर्व स्थान के समीपस्थ विन्दुओं से निरंतर चित्र बनते तथा बिना मिटे अतः बिना अदृश्य हुए, रहे चले आते हैं, इस तरह पर केवल लकड़ी के छोर मात्र का जलता हुआ भाग, जो वस्तुतः एक विंदु मात्र है, बढ़ते २ एक लकीर सी भासित होने लगता है! यदि लकड़ी कुछ शीघ्रगति से गोलाई में घुमाई जावे, तो उसी जलते हुए एक विंदु मात्र से छः इञ्च की त्रिज्या का एक ख़ासा वृत्ताकार हलका बन सकता है!! इतना बड़ा धोखा! और तिस पर

भी "सब मानै देखी कही सुनी न मानै कोय !!!

चक्षु-इन्द्रिय का एक दूसरा अवगुण।

हमारी चक्षु-इन्द्रिय में एक और भी अवगुण है, दृश्य वस्तु की स्थिति के अनुसार हम को अपने नेत्र घुमाने पड़ते हैं। इधर उधर की चीज़ों के अवलोकनार्थ हमारी पुतलियां इस ओर उस ओर नाचती फिरती हैं, ये कभी स्थिर नहीं रहती हैं, कभी नेत्र के इस किनारे, कभी बीच में तथा कभी उस छोर की ओर दौड़ लगाया करती हैं। एक दूसरे से कुछ अंतर पर के दो पदार्थों के देखनेही के समय हमको अपनी आंखें फेरनी नहीं पड़ती हैं, किंतु इसकी आवश्यकता दो पासही पास के पदार्थों के देखने में भी पड़ती है। यही नहीं किन्तु जब किसी पुस्तक के पढ़ते समय हम लोग अपनी एक आंख को बंद भी कर लेते हैं, उसमें की पुतली, तब भी, निष्प्रयोजन पंक्ति के अक्षरों के साथ २ नेत्र के एक छोर से दूसरे तक दौड़ लगाया करती है। ऐसा दुर्गुण हमारी श्रोत्रेंद्रिय में नहीं है, यद्यपि हमारे श्रवण एक स्थान पर स्थिर हों, यद्यपि भिन्न २ स्वरों से हम लोग परिचित न भी हों, और चाहे जितने स्वर एक साथ, एक ही समय में उच्चारण कियेजाते हों, पर हमारी श्रोत्रेंद्रिय उन सब का मिलान तुरंत कर लेती है, परिचित स्वर को अनेक स्वरों में से सरलता से विलग कर लेती है तथा निज अभिलषित स्वर की ओर अपने ध्यान को स्थिर कर औरों की उपेक्षा कर सकती है। यह कैसा विलक्षण और अनोखा गुण है!

सारांश।

ऐसी विचित्र हमारी यह श्रोत्रेन्द्रिय है। इसी लिये हमारा अनुमान है, कि हमारी सब ज्ञानेन्द्रियों में श्रोत्रेन्द्रिय एक अमूल्य रत्न है, इसका बिगड़ना, या बेकाम पड़जाना हम लोगों के लिये साधारण क्षति नहीं है। अतः यह अत्यंत उचित है, कि इसकी रक्षा में हम लोग सर्वथा तत्पर रहें इसकी रक्षा में सब कष्ट-साध्य यत्न निछावर हैं।

आवश्यकता।

जो मनुष्य किसी कारण से आजन्म-बधिर हैं प्रायः वेही मूक होते हैं उपर्युक्त अनेक सुखों से ये बेचारे सर्वथा बंचित हैं। इन को भी सिखला कर गुणियों ने इनसे बोलाने की रीति निकाली है। कलकत्ता नगर में एक ऐसी पाठशाला है जहां पर मूकों को बोलने, पढ़ने और लिखने का ढंग सिखलाया जाता है किन्तु बंगला में। भारतवर्ष के प्रायः आधे भाग में हिन्दी-भाषा का प्रचार है और उसमें कई सहस्र गूंगे हैं, परंतु शोक का विषय है, कि इनके लिये एक भी पाठशाला नहीं है। क्या युक्त प्रदेश मध्य देश, विहार, मध्य-भारत और राज-स्थान के मुखिया और अधिकारी गण इस आवश्यकीय अभाव के दूर करने की कुछ चिन्ता करेंगे? देश में अनेक धनी भारी राजा, रईस, सेठ, साहूकार है, क्या कोई भी दयार्द्र दान-शील पुरुष इन दुखियों को मनुष्यत्व देने की उदारता दिखलावेगा?

—:o:—

तापालोक से कम्प।

[लेखक—पंडित गौरचरण गोस्वामी।]

आज पचास वर्ष हुये जगद्विख्यात वैज्ञानिक क्लार्क मैक्सवल साहेब ने, ताप, आलोक, विद्युत और चुम्बक आदि वस्तुओं को एक, ईश्वर की ही, तरङ्ग-आवर्त्तनादि का फल कहा था। पर बहुत से वैज्ञानिकों ने यह बात तब नहीं मानी थी। जर्मनी के पंडित "हैलम हौज़" साहिब ने स्वाधीन परीक्षा से भी गवेषणा पूर्ण वाक्यों में मैक्सवल साहिब की बात को अभ्रांत सिद्ध कर दिया, पर तब भी वैज्ञानिकों

ने नये सिद्धांत पर विश्वास नहीं किया। इसके पीछे सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जार्ज साहिब ने, एवम् डाक्टर जगदीशचन्द्र बसु महाशय ने कितनी तरह २ की परीक्षाओं से मैक्सवल की बात को सिद्ध किया, यह बात हमारे सब वैज्ञानिक पाठक जानते हैं। मैक्सवल साहेब जब आलोक और विद्युत की गवेषणा कर रहे थे, उस समय उनके मनमें एकाएक यह बात आई कि यदि ईश्वर का ही स्पन्दन और आवर्त्तनादि, आलोक, विद्युत और आकर्षण शक्ति का कारण है, तो अवश्यही किसी छोटी चीज़ पर आलोक पड़ने से उस चीज़ पर धीरे से धक्का लगेगा, पर उस समय यंत्रादिकों के न होने से मैक्सवल साहेब इस बात की परीक्षा नहीं कर सके थे। किंतु जब उनकी गवेषणा पूर्ण हो गई, तब उन्होंने कहा था कि यदि ईश्वर से तापालोकादिकों के उत्पन्न होने की बात सत्य है, तो निश्चय ही तापालोक से लगे हुए धक्के के अस्तित्व को लोग प्रत्यक्ष देखेंगे।

अर्द्ध शताब्दी के बाद मैक्सवल साहेब की भविष्यद्वाणी, ज्यों की त्यों, पूर्ण हुई है। अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय के अध्यापक निकलस् साहेब ने रायल इंष्टीट्यूट के एक अधिवेशन में आलोक से लगे हुए धक्के को दिखा कर यह बात अच्छी तरह सिद्ध कर दी है कि आलोकादि ईश्वर से ही उत्पन्न होते हैं।

कांच के किसी बर्तन की, वायु निकाल कर उसमें चार पंखों की एक चरखी रक्खी जाय, और उसको काला रङ्ग दिया जाय, तो बाहर से यदि किसी लैंप का प्रकाश उस चरखी पर किया जायगा, तो वह चरखी अपने आप चलने लगेगी।

—:o:—

सर्प की आत्महत्या।

कुछ दिन पहले "न्यू मेक्सिको" (New Maxico) के अन्तर्गत "सन् एंड्रिस" (San Audrias) पर्वत के पास की कई खानों की परीक्षा करने का सौभाग्य या सुयोग मुझे मिला था। इस स्थान में पहुंचने के लिए मुझे विवश होकर सकोरो मरुभूमि (Socorro desert) को पार करना पड़ा। यह विशाल मरुभूमि रेगिस्तान ६० माइल प्रशस्त है। इसमें सदा निर्भय भयङ्कर पहाड़ी सांप पथिकों के हृदय में भय उत्पन्न करते स्वच्छन्द इधर से उधर घूमा करते हैं। मेरा साथी "रेटल" सर्प के सम्बन्ध में लंबी चौड़ी गप्प मारता चलता था। परिश्रम से थका हुआ मैं भी उसकी बातें सुनता उस अशान्ति-पूर्ण मार्ग को लांघ चुका था। थका हुआ मैं आलस्य से भरे हुए नेत्रों को कुछ २ खोल कर अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में उसके सन्देह को दूर कर रहा था। इसी समय उस परिचालक-साथी की एक बात को सुन कर मुझे बड़ा ही आश्चर्य्य हुआ, मैंने भी जागकर उसकी बात को बड़े ही ध्यान से सुना।

परिचालक ने कहा "रेटल" (Rettle) सर्प जिस समय अत्यन्त क्रुद्ध होते हैं, उस समय वे स्वयं आत्महत्या कर लेते हैं। वे अपने चोखे दांतों से अपने पीठ पर घाव कर लेते हैं, और उसी क्षत-स्थान में मुंह डालकर विष भर देते हैं, इस तरह थोड़ी देर में वे मौत के मुंह में जा पड़ते हैं!

मैं इस बात की सचाई देखने के लिए बड़ा ही उत्कण्ठित हुआ। सौभाग्य का विषय यही है, कि ऐसी घटना के प्रत्यक्ष देखने का सुयोग मिलने पर भी मुझे किसी तरह का कष्ट नहीं उठाना पड़ा। थोड़ी ही देर में हम लोग एक फन्दे के पास पहुंचे। वहां पहुंचते ही हम लोगों ने देखा कि एक बड़ा भारी हीरके

पृष्ठ "रेटल" सांप भयङ्कर-फूत्कार करता युद्ध की इच्छा से फन्दे की मोटी २ रस्सियों को काट रहा है, और थकने पर ऊपर मुंह उठाकर लंबी २ सांस ले रहा है। इससे उस की छाती के ऊपर की लंबाई कई फुट बढ़ जाती थी।

हम लोगों ने तंबू का एक बांस खोल लिया, और मैं उस बांस की नोक से उस सांप को तंग करने लगा। छिन २ में सर्प का क्रोध भी बढ़ने लगा। कुछ देर बाद जब उसने देखा कि काटने की सभी चेष्टा व्यर्थ होती है, तब मेरे साथी के कथनानुसार उसने अपने नुकीले दांतों से अपने पीठ पर घाव कर लिया, और उसी में अपने मुंह को डाल दिया, देखते २ दस मिनट के भीतर ही सांप मर गया। यद्यपि सर्प की आत्महत्या के सम्बन्ध में मुझे विन्दुमात्र भी सन्देह नहीं रहा, तौभी अपने एक सन्दिग्ध-बन्धु के सन्देह को दूर करने के लिए इस घटना के कुछ दिन बाद ही अर्गन पहाड़ पर मैंने फिर एक सर्प की उसी तरह परीक्षा की थी।

मेरे घर में जो मरा हुआ सांप लटक रहा है वह लंबाई में ५ फुट से भी अधिक है।

अमेरिका के सभी सर्पों में हीरक-पृष्ठ "रेटल" सर्प ही अत्यन्त भयङ्कर और बड़ा विषधर होता है। इसकी लंबाई ८ फुट तक की होती है।

"प्रवासी"-रसिक।

—:o:—

भगवान बुद्ध का स्मारक।

बौद्ध भगवान यदि भारतभूमि में अवतार न लिये होते तो आज हम सभ्य लोगों की संतान कहलाये जाते या नहीं इसमें शङ्का है। रामायण और महाभारत का काल परम पूजनीय है किंतु वह केवल स्वर्गीय काल है और हम से बहुत दूर हैं। उसमें कई अलौकिक घटनायें ऐसी हो गई हैं जिनको कलिकाल के इतिहासवेत्ता कवि की कल्पना कहते हैं। उस समय के प्रत्यक्ष चिन्ह वा शिला लेख इत्यादि अभी तक हमारे हाथ नहीं आये हैं जिनकी आड़ पर हम आधुनिक दृष्टि से इतिहास संगठन कर सकें किंतु बुद्ध महाराज के चरित्र और उपदेश का जो प्रभाव हमारे देश में हुआ उसके कारण हमें प्रति दिन इतनी सामग्री मिलती जारही है जिसके सहारे ईसा से सात सौ वर्ष पहले से आज तक का पूर्ण इतिहास हमारे देश का तैयार है। इस का परिणाम जो है सब पर विदित है। नवीन सभ्यता की डींग मारने वाले पाश्चात्य देशों को हमारी बौद्ध कालीन सभ्यता के सामने सिर झुकाना पड़ रहा है। अतएव क्या यह हम भारतवासियों का परम कर्तव्य नहीं है कि हम बुद्धदेव को अपनावें। हमें उचित है कि हम अब उनका स्मरण कर अपनी कृतज्ञता दिखावें। फरवरी मास के "माडर्न रिव्यू" में हमारे एक मुसलमान भाई स० म० खुदाबक्स ने अमेरिका से A great occasion and an appeal शीर्षक लेख लिख कर बुद्धदेव की २५००वीं वर्षगांठ मनाने के लिये और उनके स्मरणार्थ कोई मेला वा तीर्थयात्रा करने का प्रस्ताव किया है। हमारी प्रबल इच्छा थी कि हम उस अवलोकनीय लेख का अनुवाद पाठकों की भेंट करते। किंतु स्थानाभाव से इस संख्या में उस लेख का अनुवाद नहीं दिया जा सकता। परन्तु यह हम अपना कर्तव्य ही नहीं वरञ्च धर्म समझते हैं कि हम सब भारतवासियों से विज्ञप्ति करें कि भगवान बुद्धदेव की वर्षगांठ मनाने की तैयारियां की जायं और किसी विशेष स्थान-सारनाथ इसके लिये उचित स्थान होगा-पर इस साल से बुद्ध भगवान के जन्म दिन की तिथि पर या उनके पहले उपदेश के दिन घड़ी पर बुद्धदेव के स्मरणार्थ कोई बड़ा मेला-यात्रा का करना निश्चय करें। हम अपने पाठकों को स्मरण कराते हैं कि यह वह बुद्धदेव हैं जिनके उपदेशों

के कारण चीन उन्नत दशा को प्राप्त हुआ और जापान ने संसार में नाम कमाया। इन्हीं महाराज ने भारतीय धर्म की पताका संसार के प्रायः सभी देशों-चीन, जापान, जावा, अमेरिका इजिप्ट, पालिस्टाइन, यूनान इत्यादि दूर देश और लङ्का-में फहराई थी। क्या ही अच्छा होता जो जन्माष्टमी, रामनवमी इत्यादि की तरह बौद्धाष्टमी वा ऐसे ही कोई सुअवसर भगवान बुद्ध के स्मरणार्थ मनाया जाता।

वर्मा।

भारत-स्त्री-महामण्डल।

बड़े दिनों की छुट्टियों में प्रयाग में जितनी सभायें हुई हैं उनमें से नवीन 'भारत-स्त्री-महामण्डल' है। पहले तो हम इस नवीन मंडल की अभी इतनी आवश्यकता नहीं समझते हैं क्यों कि सामाजिक सभा Social conference और कांग्रेस के साथ २ साधारणतः भारत महिला परिषद हुआ ही करता है। इस महिला परिषद के भी वही उद्देश्य-अर्थात स्त्री जाति में विद्या का प्रचार करना उनमें उच्च विचारों का फैलाना और उनकी दशा सुधारना है और स्त्री महामण्डल के भी येही उच्च उद्देश्य हैं। तो भेद ही क्या रहा। क्या हमारी शिक्षित महिलाओं को इतना शक्ति वा अवकाश कि दो परिषदों को चला सकें! देखने में तो यही आता है कि पुराने परिषद में भी कोई वास्तविक कार्य नहीं हो रहा है। दूसरी बात हमें इस नवीन मंडल में यह देखने में आती है कि इस मंडल के द्वारा अब हमारी ललनाओं में भी छोटी बड़ी का ख़याल पैदा होगा। उसके मुख्य भाषण में यह कहा गया है कि सभापति का आसन रानी महारानियों की बपौती मानी जायगी और बड़े बड़े घरानों की स्त्रियां उपसभापति की हकदार समझी जांयगी। साधारण कुलों की रमणियों के लिये कोई उच्च स्थान नहीं है। हम बड़ी तुम छोटी तो आदि में ही हो चला। जाने पीछे क्या क्या तिरष्कार सामान्य घरों की ललनाओं को सहने पड़ते हैं। क्या यह ढकोसला मेरी क्वीन (जार्ज पंचम बादशाह की रानी) से हाथ मिलाने और उनके गौन (लँगा) उठाने के लिये तो नहीं रचा जा रहा है! ईश्वर इस 'हम बड़े तुम छोटे' से अब तो पीछा छुटे!

वर्मा।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

बड़े लाट की कौंसिल।

बड़े लाट की कौंसिल हो गई। इसकी बड़ी धूम थी क्योंकि कौंसिल के कई प्रसिद्ध सभ्य बड़े २ महत्व के प्रस्ताव पेश करने वाले थे। इस में सन्देह नहीं कि बादल उमड़ घुमड़ कर बड़े वेग से उठे थे किन्तु प्रबल वायु के झकोरों से या तो वे छिन्न भिन्न हो गये या आंसू के समान कुछ बूंदें टपका कर निकल गये। एक प्रस्ताव को छोड़ कर या तो प्रस्ताव वापस कर लिये गये या वोट के बल से उन्हें हर जाना पड़ा? ये दोनों ही बातें स्पष्ट रूप से यह बतलाती हैं कि प्रजा के वास्तविक प्रतिनिधियों का प्रभाव कौंसिल में कितना कम है। मि० गोखले का प्रस्ताव बड़े महत्व का था और उनकी वक्तृता इतनी ओजस्विनी और प्रभावशालिनी था कि उनके सरकारी विरोधी भी उनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे। मि० मेसटन ने उनकी ग्लैडस्टन से तुलना की। हमे खेद है कि माननीय मि० गोखले ने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया।

यह सच है कि सरकार की तरफ से यह कहा गया है कि हमारे वाइसराय खर्च घटाने पर ध्यान देंगे और गवर्मेंट आफ इन्डिया के प्रत्येक विभागों के अफसरों ने अपने २ विभाग में व्ययकी कड़ी जांच करने का वचन दिया है। किन्तु गवर्मेंट के विभागों के अधिकारियों की जांच से विशेष खर्च की कमी की आशा नहीं की जा सकती, मि० गोखले के प्रस्ताव में कई सिद्धान्तों की बात थी कि जिनको मानना न मानना कुल गवर्मेंट के आधीन है न कि किसी विशेष विभाग के अधिकारी के और इस लिये गरीब प्रजा वर्ग के लिये, जिनके टैक्स से सरकार का भंडार भरता है, बड़े खेद की बात है कि गवर्मेंट ने मि० गोखले के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और राजकोष के मंत्री ने मि० गोखले को फुसला कर उनके प्रस्ताव को टाल दिया। भारतवर्ष में कदाचित् कोई दूसरा पुरुष नहीं है जो इस प्रस्ताव को इतनी योग्यता के साथ पेश करता इसी लिये यह अत्यन्त दुःख की बात है कि ऐसे बुद्धिमान देशहितैषी ने राजकोष के मंत्री की बातों में आकर अपना प्रजोपकारी प्रस्ताव वापस ले लिया। यह सत्य है कि उन्होंने केवल एक वर्ष के लिये ही अपना प्रस्ताव वापस ले लिया है और हमें विश्वास है कि वे एक वर्ष बाद फिर इस प्रस्ताव को पेश करेंगे किन्तु एक वर्ष के लिये भी ऐसे प्रस्तावका टलना बड़े दुर्भाग्यकी बातहै।

यही दशा माननीय मि०मालवीय के प्रस्ताव की भी हुई। हमारे समझ में नहीं आता कि प्रस्ताव पेश ही क्यों किये जाते हैं जब कि उन्हें वापस ले लेना है। यह हम मानते हैं जैसा कि माननीय मि० मालवीय के प्रस्ताव के लिये हुआ कि एकही अनुमोदन करता मिला और इससे यह प्रकट हो जाता है कि इस पर वोट लेना व्यर्थ है और इस लिये वापस ले लेना अच्छा प्रतीत होता है किन्तु संसार में जो कुछ बाह्य दृष्टि से अच्छा प्रतीत होता है वह सर्वदा अच्छा ही नहीं होता। वापस ले लेने से वोट में हारना अधिक अच्छा है। यह सच है कि सरकार की तरफ से मि०जेनकिंस ने यह वचन दिया है कि कौंसिल के नियमों के सुधार के समय बहुत से सज्जनों से सम्मति ली जायगी, और सरकार से ऐसा कहे जाने पर प्रायः लोगों की दृष्टि में प्रस्ताव पर ज़ोर न देना ही बुद्धिमानी की बात समझी जायगी विशेष कर जब यह बात स्मरण की जाती है कि प्रस्ताव का समर्थन केवल एक सज्जन (माननीय मि० बसू) ने किया था किन्तु इतने पर भी जब प्रस्ताव न्याय युक्त था तो उस का वापस लिया जाना केवल हिन्दू समाज के दुर्भाग्य की बात है। यदि प्रस्ताव न्याय और सत्य के अनुकूल था यदि वह अन्याय और पक्षपात को मिटाने या कम कराने के लिये पेश किया गया था तो उसको वापस लेना कौन सा न्याय था।

हज़ार हानि होते भी मेल।

माननीय मि० मालवीय के प्रस्ताव पर जो वादविवाद हुआ वह इस बात को पूर्ण रीति से सिद्ध करता है कि हिन्दू मुसलमानों की एकता तभी हो सकती है जब हिन्दू सर्वथा हानि सहते भी मुसलमानों के साथ जो कुछ पक्षपात किया जाय उसका विरोध न करें और न केवल हिंदू लोग मुसलमानों को जो उनके अलग प्रतिनिधियों के चुनने का सत्व मिला है उसे न्याय मानले किन्तु जितनी अधिक संख्या में मुसलमान काउन्सिल में भर गये हैं उसका भी विरोध न करें। देश में मुसलमानों की संख्या ¼ है किन्तु काउन्सिल में मुसलमान मेम्बर ११ और हिन्दू १२ हैं किन्तु इस बात के कहने से हमारे मुसलमान भाई चिढ़ते हैं। ऐसी दशा में मेल की चर्चा करना उपहास मात्र है? हम लोगों को मुसलमानों को जो सत्व मिला है उससे कोई साहजिक विरोध

नहीं है किंतु हम चाहते हैं कि सब के साथ एक प्रकार का न्याय हो। यदि मुसलमानों की संख्या किसी स्थान विशेष पर कम है और उनके हित की रक्षा के लिये मुसलमानों का वहां पर अधिक संख्या में चुना जाना आवश्यक है तो उसी प्रकार जिन स्थानों में हिंदुओं की संख्या कम है वहां पर हिंदुओं के सत्वों की रक्षा के लिये उनके प्रतिनिधियों का भी अधिक संख्या में चुना जाना आवश्यक है। मेल कराने वालों को उचित है कि वे ऐसा काम करें जो दोनों जातियों को पसंद हो ऐसा मेल जिसके कारण एक जाति वाले सर्वदा घाटे में रहें स्थायी नहीं हो सकता।

मि० महमदअली अपने "कामरेड" में लिखते हैं:—But if the Pandit asks why seperate electorates are created on a religious basis...........he should be prepared to hear from his opponents *that he and his Confrires* are not the men of their confidence, that musalmans are not sure of the company they are invited to join.................It is a question of trust and there are no short cuts to a peoples confidence. Similerly if the Hon. Mr. Malaviya asserts that Musalmans have no political importance................how is it possible to answer him without referring to the Rule of Islam in India for 800 years. No doubt it is humuliating to a Hindu to be often reminded of this ...."

तात्पर्य इसका यह है कि (१) मुसलमानों को मि० मालवीय और उनके अन्य साथियों में विश्वास नहीं है और इस लिये वे अपने प्रतिनिधियों को अलग चुना चाहते हैं। (२) इसी तरह मि० मालवीय के कथन का कि मुसलमानों में कोई राजनैतिक महत्व नहीं है उत्तर बिना इस बात की याद दिलाये नहीं दिया जा सकता कि मुसलमानों ने भारतवर्ष में ८०० वर्ष तक राज्य किया है।

पाठकों को यह स्मरण होगा कि सर आगा खां और मि० अमीर अली ने मेल की चर्चा आरंभ की थी। हिन्दू नहीं दौड़े गये थे न वे कभी कहते हैं कि कोई उनमें विश्वास करें। भारतवर्ष का सारा इतिहास चाहे वह किसी जाति वालों के द्वारा क्यों न लिखा गया हो इस बात को स्पष्ट रूप से कहता है कि हिन्दू, सत्य प्रिय और विश्वासभाजन हैं जिसके चित्त का आइना साफ है वही उसमें साफ प्रतिविम्ब भी देख सकता है, जिसके चित्त में मैल है वह दूसरे के चित्त में भी मैल ही देखता है। युधिष्ठिर को संसार में कोई झूठा ही न मिला किंतु दुर्योधन को सारा संसार झूठाही दिखाई दिया। रही राजनैतिक महत्व की बात उस पर भी विचार कर के देखना चाहिये कि यह कहां तक ठीक है। एक ही शासक के शासन में रह कर किसी जाति का यह कहना कि उसमें राजनैतिक महत्व है व्यर्थ नहीं तो कोई प्रतिष्ठा की बात नहीं है। राजनैतिक महत्व का अर्थ क्या है? यह कहा जाता है कि अङ्गरेजों के पहिले भारत की बादशाहत मुसलमानों के हाथ में थी।

हमे खेद है कि ऐसा कहने वालों ने और उनके मित्रों ने शायद इतिहास पढ़ने का कष्ट नहीं उठाया है। अङ्गरेजों के बादशाहत पाने के पहिले ही मुसलमानी राज्य चारों तरफ नाश हो चुका था और यदि था भी तो नाम मात्र के लिये। दिल्ली का बादशाह महरठों के हाथ का खेलौना था जैसा वे चाहते कराते थे, १८५७ की घटना के पहिले दिल्ली के बादशाह का राज्य दिल्ली को छोड़ कर कहीं नहीं था। पंजाब सिक्खों के हाथ में था। राजपूतों ने ५०, ६० वर्ष पहिले ही से अपना राज्य जमा लिया था, भारत का दक्षिण प्रांत तो एक भांति से सर्वदा ही स्वतंत्र रहा बंबई तथा मध्य प्रदेश में तो महरठों का राज्य ही था और उन्हीं से अङ्गरेजों

को वह मिला। बङ्गाल तो वारेन हेशटिङ्गस के समय से ही मुसलमानों के हाथों में न था। भारत में केवल अवध के सूबे को छोड़ मुसलमानों का राज्य कहीं नहीं था। इतिहास को इतनी साक्षी होने पर भी यह समझ में नहीं आता कि मुसलमान अपने को पहिले के बादशाह किस बिढते पर मानते हैं। यदि अङ्गरेजों के पहिले बादशाहत का अभिमान किसी को हो सकता है तो महरठों और सिक्खों को। मुसलमानों की बात यदि मान भी ली जाय तो यह समझ में नहीं आता कि उन्हें यह कहते शरम नहीं आती कि उन्हीं के पूर्वजों के भोग विलास में उनकी बादशाहत गई। एक राज्य स्थापित करना तो प्रशंसनीय अवश्य है किंतु उसके खो देने में फक्र क्या है? इतिहास से यह भी प्रकट होता है कि यदि कुछ काल तक अङ्गरेजों का प्रभाव न बढ़ता तो इसमें कोई संशय नहीं कि हिंदुओं का राज्य फिर से स्थापित हो जाता।

इन्डियन नेशनल कांग्रेस।

पाठकों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि कांग्रेस ने भारत के हित के लिये बहुत कुछ किया है और अभी बहुत कुछ हित उस से होने की आशा भी है किन्तु यह आवश्यक है कि कांग्रेस अब नये पथ का अवलंबन करे। अब भी यदि वह केवल गवमैंट को प्रजा की आकांक्षायें सुनाती रहेगी तो कुछ दिन में इसका महत्व प्रजा तथा गवमैंट दोनों की दृष्टि में गिर जायगा। इस में कोई संदेह नहीं कि इस काम को अब कौंसिल के मेम्बर बहुत अच्छी रीति से और कांग्रेस से कहीं अधिक प्रभाव के साथ कर सकते हैं।

कौंसिल में जब तक मेम्बरों को प्रस्ताव पेश करने का अधिकार है तब तक इतने अपव्यय के साथ ऐसी कांग्रेस करना जो केवल प्रस्ताव पास किया करे व्यर्थ है। हमारा किसी भांति से यह मतलब नहीं है कि कांग्रेस हमारा कुछ हित नहीं करती है किन्तु देश कालानुसार सब बातें बदलनी चाहिये। कांग्रेस ने सब से बड़ा देश का हित यह किया है कि उसके कारण एक प्रान्त के मनुष्य दूसरे प्रान्त वालों को भ्रातृभाव से देखते हैं और एक के दुःख में सब दुखी होते हैं किन्तु अब देश में इतनी जागृत फैल गई है और केवल इसी कारण कांग्रेस का होना व्यर्थ है। प्रस्ताव भी अब कौंसिल के सभासद गण पास कर लिया करेंगे, इस लिये अब यदि कांग्रेस को अपना महत्व बनाये रखना इष्ट है तो यह आवश्यक है कि अब वह नये पथ पर चले। कांग्रेस भारत के लिये स्वराज्य मांगती थी सो तो मिलने की आशा दुराशा मात्र है और यह कर्ज़न के समय से आज पर्यंत सब अधिकारियों के वचनों से स्पष्ट है। लार्ड करज़न को तो स्वप्न में भी वह समय नहीं दिखाई देता था जब कि भारतवासी स्वराज्य के अधिकारी हो सकें। लार्ड मार्ले ने १९०७ में साफ २ कह दिया था "British Rule will continue, ought to continue and must continue" कि बृटिश शासन बना रहे गा, इसका बना रहना आवश्यक है और यह अवश्य बना रहै। सर एडवर्ड बेकर का भी यही मत है। एक तरह से यह मान लेना चाहिये कि यही गवमैंट की पालिसी अब रहैगी। इन सब बातों के रहते यह बहुत आवश्यक है कि कांग्रेस अब नये मार्ग पर चलना आरंभ कर दे। प्रजा तथा गवमैंट दोनों के वर्तमान भाव से यही प्रतीत होता है। गवमैंट का भाव तो यह है। हम लोग अपना कर्तव्य समझते हैं और आप की मुफ़्त राय नहीं चाहते" प्रजा कहती है कि जो काम आज तक कांग्रेस करती रही वह अब कौंसिल में हमारे प्रतिनिधि कर लेते हैं अब कांग्रेस की जब तक वह इससे कुछ अच्छा कार्य न करे तब तक आवश्यकता नहीं है। कांग्रेस अपने को नेशनल कहती है इस लिये यह आवश्यक है कि वह एक भारतीय नेशन बनाने में अग्रसर हो।

हम पहिले भी कह चुके हैं और फिर भी कहते हैं कि कांग्रेस ने हमारे हित के लिये बहुत कुछ किया है और यह भी कहना असत्य नहीं है कि देश में जो कुछ जागृति है उसके कारणों में कांग्रेस का बहुत बड़ा भाग है किन्तु समयानुसार अब आगे बढ़ने की आवश्यकता है और कांग्रेस का कर्तव्य है कि वह अब उस पथ पर चले जिससे हमें हमारा पूर्व गौरव प्राप्त हो। पिछले वर्ष से मि० गोखले अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा के लिये काउन्सिल में कह रहे हैं किन्तु हम लोगों को उचित है कि केवल गवमेंट के ही भरोसे हम लोग न बैठे रहें किन्तु स्वयम भी कुछ करें। हम लोगों को चाहिये कि हम लोग अपने ऊपर कर लगायें, चन्दा करें और ग्राम २ में पाठशालायें खोल दें। अङ्गरेजी में एक कहावत है "God helps those who help themselves" ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो स्वयम अपनी सहायता करता है, हमारे आचार्यों ने भी कहा है "सम्पत्सुहि सुसत्वानामेक हेतुः स्वपौरुषम्" जब ईश्वर का यह नियम है तो फिर गवमेंट तो संसारी मनुष्यों के हांथ में है। विद्या का प्रचार ही एक मंत्र ऐसा है जिस के साधन से हमारा दुख दारिद्र्य सब दूर हो सकता है। कांग्रेस इस विभाग को ही अपने हाथ में लेले। प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों को चाहिये कि वे अपने २ स्थान में शिक्षा का काम शुरू कर दें। इसी प्रकार और भी बहुत से लाभकारी कार्य किये जा सकते हैं और प्रजा का राज्य स्थापित करने का यही मूल है।

मुसलिम लीग और अङ्गरेज।

इंगलैंड और भारत में मुसलिम लीग के मेम्बर लोग अंगरेजों का परसिया के मामले में हस्तक्षेप करना नहीं पसंद कर रहे हैं। हमारे मुसलमान भाई बड़े राजभक्त हैं और अंगरेजी गवमेंट में उन्हें पूरा विश्वास है किंतु यह समझ में नहीं आता कि अपने परसिया के भाइयों को वे क्यों इस गवमेंट के लाभ से वञ्चित रखना चाहते हैं।" क्या उन्हें बृटिश राज्य में पूर्ण विश्वास नहीं है? यहां के मुसलमानों के लिये जब बृटिश शासन अच्छा है तो इसी प्रकार से परसिया वालों के लिये भी वह हितकर होगा और इस लिये परसिया के हित के लिये यह आवश्यक है कि वह बृटिश राज्य में सम्मिलित कर लिया जाय। हमारी राय में मुसलमानों को सम्राट के पास एक अभिनन्दन पत्र भेजना चाहिये कि बृटिश साम्राज्य में परसिया और अफ़गानिस्तान दोनों मिला लिये जायं क्योंकि ऐसा होने से वहां वालों को भी बृटिश राज्य से लाभ होगा और साथ ही साथ मुसलमानों की गणना भी अधिक हो जायगी जिसके कारण उन्हें हिंदुओं के बराबर प्रतिनिधि चुनने का भी अवसर मिलेगा और अभी जो उन्हें अपने राजनैतिक महत्व का प्रलाप करना पड़ता है वह भी न करना पड़ेगा।

(मा० रिव्यू)

विलायत में स्वदेशी।

पाठकों को यह विदित होगा कि महारानी मेरी ने आज्ञा दी है कि राज तिलकोत्सव के समय के उनके कपड़े गौन इत्यादि उनके स्वदेश के ही हों। एक बार १८९६ में पार्लमेंट में मि० मेक्लेरन ने कामेन्स सभा में एक प्रश्न किया था कि वहां की सब कुर्सी मेज़ आदि स्वदेशी हैं या विदेशी और देशी वस्तुओं के होते विदेशी वस्तुओं को प्रतिष्ठा क्यों दी जाती है? अब इङ्गलैन्ड में यह तय हो रहा है कि मार्च महीने के अन्तिम सप्ताह में और अप्रैल के आरंभ के कुछ दिनों तक दूकानों पर केवल स्वदेशी वस्तु ही दिखलाई जांय और बेची जांय। इस स्वदेशी आंदोलन से वहां के दूकानदारों को बहुत कुछ लाभ होगा। किन्तु खरीदार सब इस आंदोलन के विरुद्ध हैं वे कहते हैं कि विदेशी वस्तु उनके स्वदेशी माल से अच्छी और सस्ती होती है। एक बड़े दूकानदार ने खुल्लम खुल्ला यह कह दिया है कि उसे स्वदेशी माल पर विदेशी मार्क लगा

कर बेचना पड़ता है क्योंकि फैसन परस्त रमणियां स्वदेशी वस्तु नहीं खरीदतीं क्योंकि विदेशी वस्तु अच्छी होतीं हैं। व्यापार सम्बन्धी पत्रों में खरीदारों के प्रति अपीलें छप रही हैं कि वे स्वदेशी वस्तु खरीदें। जब उन्नति के शिखर पर पहुंचे हुये इङ्गलैंड को भी स्वदेशी आंदोलन की आवश्यकता है तो फिर भारत का क्या कहना है। जो लोग सच्चे राजभक्त हैं उन्हें उचित है कि वे महारानी मेरी के इस उपदेश का ग्रहण करें और अपनी स्वदेशी वस्तु के उतनेही प्रेमी हों जैसे कि महाराणी मेरी हैं।

ट्रांसवाल की उद्दंडता।

हाल में एक भारतीय स्त्री सुधा नाम्नी ट्रांसवाल में अपने पति से, जो कि बृटिश प्रजा की नाईं सत्वाधिकार चाहने के लिये जेल में सड़ रहा है, मिलने गई थी। इस अपराध के कारण वह स्त्री पकड़ कर मैजिस्ट्रेट के सामने पेश की गई। मैजिस्ट्रेट ने स्त्री को एक वर्ष की सख्त सज़ादी और १६० पौंड (२२५०) रु०) जुर्माना किया क्योंकि उसने कोई यूरोपीय भाषा सीखने का प्रयत्न नहीं किया था जो कि अब नये कानून से आवश्यक है। थोड़े समय के लिये यह मान लिया जाय कि किसी ट्रांसवाल से आई हुई मेम को भारत में आने पर यहां की भाषा न जानने के कारण यह दण्ड दिया जाता तो क्या होता। किंतु सभ्यता के शिखर पर पहुंची हुई २० शताब्दी में ट्रांसवाल में यही हो रहा है।

युक्तप्रान्त के लिये कार्यकारिणी समिति

मि० सिनहा ने काउन्सिल में युक्त प्रान्त में कार्य-कारिणी समिति के लिये एक प्रस्ताव उपस्थित किया था। अधिक सम्मति विरुद्ध होने के कारण मि० सिनहा की हार हुई। किन्तु हमें प्रसन्नता इस बात की है कि वे अन्त तक लड़ते रहे और उन्हों ने प्रस्ताव को वापस नहीं ले लिया। सरकार की तरफ से मि० जेनकिन्स ने उत्तर में कहा था कि सर जान ह्युएट एक सुयोग्य लाट हैं और उन्हें कोई काउन्सिल के सलाह की आवश्यकता नहीं है मानो काउन्सिलों का होना न होना लाट की लायकी या नालायकी पर निर्भर है। बहुत से स्वच्छन्द राजे बहुत अच्छे राजे हुये हैं किन्तु यह स्वच्छन्दता का कोई बचाव नहीं है। यह कौन कहेगा कि सर एडवर्ड बेकर सर जान ह्युएट से कम योग्य हैं। क्या कोई ऐसा कहने का साहस करैगा कि, बङ्गाल में काउन्सिल का स्थापित होना यह सूचित करता है कि सर एडवर्ड बेकर लायक नहीं हैं। अन्त में मि० जेनकिन्स ने यह कहा था "It was enough that Sir John said he did not want a Council and that settled it," अर्थात यह कह देना काफी है कि सर जान ह्युएट कौंसिल नहीं चाहते और इसके उपरान्त वाद विवाद की कोई आवश्यकता नहीं है। इस वाक्य पर कुछ कहना तो मानो बुद्धि का अनादर करना है।

विषय सूची।

अभ्युदय प्रेस प्रयाग में बद्रीप्रसाद पांडे ने छाप कर प्रकाशित किया।

भाग १] फाल्गुन–मार्च सन् १९११ [संख्या ५

सच्ची स्वतंत्रता।

[लेखक–लाला भगवान दीन।]

सुनो तो भाई तुम्हारे मन में,
विचार कैसा समा रहा है।
"स्वतंत्र वह है जो इस जगत में,
अहं का सिक्का जमा रहा है" ॥ १ ॥

हमारे बाबा बड़े धनी थे,
पिता हमारे थे राय साहेब।
इसी तरह की अनेक बातें,
घमंड सूचक बता रहा है ॥ २ ॥

मगर विचारो तो दिल में यारो,
है उसकी बातों में सार कितना।
घमंड झूठा य उसका सारा,
उसे निकम्मा जता रहा है ॥ ३ ॥

कहोगे क्या तुम स्वतंत्र उसको?
पुकारोगे उसको वीर कहकर?
दुखी गरीबों का दुःख-बंधन,
न जिसके छुके छुटा रहा है ॥ ४ ॥

अनेक भाई स्वदेशवासी,
स्वग्रामवासी, पड़ोस वासी।
दिखाई पड़ते हैं रोज़ ऐसे,
जिन्हें महादुख सता रहा है ॥ ५ ॥

न अन्न भर पेट उनको मिलता,
न शीतबाधा के हेत कपड़ा।
स्वबंधुओं का बिछोह-झोंका,
जिगर भी उनका जला रहा है ॥ ६ ॥

विचित्र ऐसी दशा को लख कर,
न शोक जिसके जिगर में पैठे।
उसे भी मानव स्वतंत्र कहना,
अयोग्यता ही दिखा रहा है ॥ ७ ॥

मनुष्य ऐसे हैं जग में जितने,
उन्हें तो यारो गुलाम जानो।
गुलाम का भी तिलाम जानो,
वृथा हो भोजन मिटा रहा है ॥ ८ ॥

स्वतंत्र वह है जो बांध हिम्मत,
हटा के सारे जगत का सब भय।
मदद में दीनों के डट गया है,
पतित जनों को उठा रहा है ॥ ९ ॥

स्वतंत्र वह है जो हो के निरभय,
करे अनाथों के हित लड़ाई।

जड़ बातों को काट करके,
नगारा सच का बजा रहा है ॥ १० ॥
स्वतंत्र वह है जो हो के निर्भय,
समय के घोड़े पै कर सवारी ।
दया की एंडैं लगा लगा कर,
उमंग अपनी दिखा रहा है ॥ ११ ॥
घृणा को काटै, विरोध बांधै,
अनित्य आचार को भगा दे ।
सुवाक्य-बाणों की करके वर्षा,
जनों के संकट बहा रहा है ॥ १२ ॥
जो सत्य कहने में हिचकिचावै,
उसे समझलो महा निकम्मा ।
गुलाम का भी गुलाम है वह,
हिचकना उसका बता रहा है ॥ १३ ॥
नगर में, ग्रामों में, झोपड़ों में,
मनुज का एकत्र होके रहना ।
परस्पराश्रित का तत्व निर्मल,
भली तरह से जता रहा है ॥ १४ ॥
स्वतंत्र नर क्या कहोगे उसको,
जो अपने ही हित की बात सोचै ?
निकट-निवासी की दुःख-बाधा,
स्वहित के कारण भुला रहा है ॥१५॥
हमारी सम्मति है ऐसी प्यारे !
स्वतंत्र उस बीर को समझना ।
जो दुःख सागर में जगजनों के,
निमग्न होकर नहा रहा है ॥ १६ ॥
स्वदेशवासी मनुष्य कुल को,
नवीन उन्नति का पथ दिखाकर ।
स्वयंही उस पथ में गिरते पड़ते,
सबेग आगे को जा रहा है ॥ १७ ॥
पुकारता जा रहा है सब को,
कि भाई आओ बढ़ो तो आगे ।
ये देखो ऊंचे पै मोद का थल,
बहुत निकट ही दिखा रहा है ॥ १८ ॥
हटाता जाता है मग के पत्थर,
कु कंटकों को कुचलता जाता ।
गँभीर गड्ढों को पाट कर के,
सु पंथ चौड़ा बना रहा है ॥ १९ ॥
सभी पियारों का दुःख हरना,
सभी के धामों में मोद भरना ।
जुटाये हाथों को हे सियावर,
ये 'दान' विनती सुना रहा है ॥ २० ॥

वर्ष का अन्त ।
(बसन्त)

[लेखक-पं० माधव शुक्ल]

ग्रीष्म ।

वह तेज दुःसह अब दिनकर का कहां जाता रहा ।
जो प्राणियों पर घास जल पर क्रोध दिखलाता रहा ॥
उस आगसी तीखी हवा का भी पता कुछ है नहीं ।
उड़ती धधकती धूल जो थी सो भी दिखलाती नहीं ॥
पाकर बड़ा पद मत सताओ हों कोई खोटे खरे ।
जितना जलाते हैं उन्हें होते हैं वे उतने हरे ॥

वर्षा ।

जलते हुए संसार की ज्वाला बुझाने के लिये ।
आईं थीं मेघों की घटा जो संग दल अपना लिये ॥
शीतल मनोहर वायु, गर्जन श्याम मेघों का महा ।
वह दृश्य सुन्दर नेत्र से जानै कहां जाता रहा ॥
उससघनबादलबीचबिजुलीकी तड़पअतिसुखमयी ।
कौतुक देखाकर बात वह क्यों स्वप्न कीसी होगयी ? ॥
केवल दिखाते हैं नदी नद ताल लहराते हुये ।
जो स्वच्छ बूंदों से भरे हैं उनके बरसाये हुये ॥
लोकोपकारी जन लगा कर सर्व अपनी शक्ति को ।
हैं छोड़ जाते इस तरह निज कीर्तिही सम्पत्ति को ॥

शरद् ।

वह धूल पंक विहीन भूतल स्वच्छता आकाश की ।
आभा मनोहर चन्द्र के शतकोटि अधिक प्रकाश की ॥
तारागणों की चमचमाहट आदि बातें हैं कहां ।
सब अल्पही दिन में चले जाते जहां के हैं तहां ॥
सर में विमलता औ कुमुदनी, वह चमेली की लता ।
उन कांसफूलों का भी वन में कुछ नहीं मिलता पता ॥
सम्पत्ति पाकर गर्व करना व्यर्थ है संसार में ।
यह शून्य औ मिथ्या है जिसको देखते विस्तार में ॥

शिशिर।

देखो! जो वह पा करके अवसर ठंढ थी पड़ने लगी।
प्रारम्भ जिसका देखकर चिन्ता जनों की थी जगी॥

हेमन्त।

उसनेही फिर कैसा भयङ्कर रूप था धारन किया।
जिसने बनाकर आलसी सबको अपाहिज था किया॥
जिस ठंढ की आधिक्य से और वायु प्रहार से।
आता नहीं था बोल तक भी साफ मुखके द्वार से॥
थे कटकटाते दांत थर थर कांपते थे अंग सब।
जिस भानु का करते अनादर था वही आधार तब॥
ओले गिरा कर नष्ट कर खेतों व पौधों को महा।
इस भांति जिसने क्रूरता का अंत था दिखला दिया॥
हम देखते हैं आज वह भी आप ही निर्मूल है।
संसार का क्रम जान कर अत्यन्त करना भूल है॥
वे वृक्ष जिनमें नाम को भी एक भी पत्ते न थे।
देखो उन्हें वे आज कैसे हैं हरे फूले फले॥
सहते हुये दुख धैर्य से जिनका कि होता अन्त है।
करते हैं वे जग को सुखी जैसा कि आज बसंत है॥
सब पर्वतों बागों वनों में रंग विरंगे फूल हैं।
कर्तव्यवानों के लिये कैसे ये दिन अनुकूल हैं॥
छवि देख कर निज यंत्र लै जाता है देखो! चित्रकार।
अनुपमप्रकृतिकी सकलछवि एकआनमें लेगाउतार॥
यहछिन सुकविजनभीमधुपसम सुरसरसएकत्रकर।
अर्पण करेंगे रसिकजन को सदुपहार बनाय कर॥

——

केशर की कियारी।

होली।

[लेखक-पं॰ मदनमोहन कूल।]

धनि हो भारत भाई नुमाइश खूब दिखाई,
ह्वै उदार बहुतिक दिये चंदा समपति खूब लुटाई।
जो २ बात सुनी नहीं कबहूं सो आखन दिखलाई।
सुफल भई जन्म कमाई॥
कंकड़ औ कंक्रीट छोड़ के तेलकी सड़क बनाई,
जो थोरे पानी बरसन ते ह्वै गई स्वच्छ मलाई।
बिछलि सब मुख भरि खाई॥

हिन्दू होटल के हाकिम सब अच्छी रीति चलाई,
एकै थाल गिलास एक ही सातों जाति खवाई।
जो हिन्दू मात्र कहाई॥
जाहि चलावन को नेतागण केतिक धूम मचाई,
सो सब या प्रदर्शिनीके फल मिटगई छूत छुआई।
गई सब की हिन्दुआई॥
पश्चमीय शिक्षा की यह मति सब जातिन में छाई,
परदा सरदा उलटि पलटि कर लेले संग लुगाई।
चले सब हाथ मिलाई॥
रोप सोल डेक पम्प शूज़ औ स्लीपर सलेमशाई,
जिनयुवतिनकबहुना पहिरीनपकरितिन्हैपहिनाई।
नई यह आपति आई॥
परदे में जो बन्द रहन से बाहर चलत सकुचाई,
तिनके पिय प्रदर्शिनी के विच भल भल नाच नचाई।
थकीं तब पांव दबाई॥
कोऊ केला कोई बैर शंतरे कोऊ ले तनक मिठाई,
लजवंतिन की बांह पकरि पुन बंबा ढिग लेजाई।
अंजुलिन जल पिलवाई॥
आगे बेटवा पीछे बिटिया बीच लला की माई,
अंगुरी पकरे पहुंचा थामे चें में रोवत जाई।
मनहु यम संकट आई॥
जिले के हाकिम पकरि प्रजन को इस्पेशल खुलवाई,
टिकट रिटर्न चार दिन ही की लैलै दाम दिवाई।
करी अस खूब कमाई॥
जस आये वैसे नहिं आये बैठे अस पछिताई,
जाड़न मरे पेड़ के नीचे ड़ाढ़ी मूछ मुड़ाई।
चले जस पितहि जलाई॥
पहिले तो तहसीलदार ने बड़ि बड़ि बात बनाई,
ठेलि पेलि भरि दियो रेल में जैसे भेड़ पराई।
अंग नहिं सकत डोलाई॥
मुसकिल भई मुसाफ़िर दे जब हाय जुहार मचाई,
तब तहसीलदार गुस्सा सों तीखी त्यौर दिखाई।
बिगड़ के डांट बताई॥
कोयलन की गाड़िन में भरिभरि जस कैदी तनुहाई,
नहीं रोशनी बली न आसन नहिं टट्टी बनवाई।
पेस गति बरनी न जाई॥"

इक रही गाड़ी शीरे की सोऊ काम में आई,
जेहीछिनघुसे मुसाफ़िर वामें ह्वै गई भीजिबिलाई।
मनो जम नर्क दिखाई ॥
कहा भयो उपकार देशको का भई जाति भलाई,
केहिकारन इतनो धनखोयो सुख सम्पत्ति गवांई।
तनिक तुम सोचहु भाई ॥
केतिनको कृषिकर्म सिखाई केतिन वसन बिनाई,
कितनेसिखें उन्हींबातनको जिनकी कीन हिताई।
नुमाइशगाह लगाई ॥
राजन महाराजनकीगति लखिचित्तबहुत घबराई,
जो प्राचीन पौशाक छोड़के बिर्जिस कोट चढ़ाई।
चलत मुख चुरट दबाई ॥
हाथी घोड़ा ऊंट पालकी सबकी दीन्ह बिदाई,
भौं भौं पौंपौं धिकधिक धिक करती मोटर लाई।
गगन महि धूल उड़ाई ॥
धन्य विधाता तेरी करनी धन्य तेरी प्रभुताई,
भारत वृद्ध अहितके भागन सबको मनपलटाई।
कृपातन करहु कन्हाई ॥

कबीर।

अररररर कबीर
उठहु विश्वविद्यालय वाले ताकहु आंख पसार।
उद्यमकरहु कमर कसि कसिकै, भारत लेहु उबार।
भला-अब नहिं सोवन कर बेला है ॥
अररररर कबीर
अंधकार में बहुधंधिन के भूले मार्ग अनेक।
तुम सच्चे हो देशहितैषी राखौ अपनी टेक।
भला-विद्या की रोशनी कब करिहौ ॥
अररररर कबीर
छांड़िअफीम चरस अरु चंडू जागे मुसलिम लोग।
बेचि सनहकी लुंगी हुक्का देत "लीग" महँ योग।
भला-एहू उन्नति पर टूट पड़े ॥
सररररर कबीर
हम हूं पीर, मीर रहें बाबा, दादा रहे वजीर।
उनके पुरखा रहें शाह सब भारत मोर जगीर।
भला-एहि कारन हमरा हक्क बड़ा ॥

अररररर कबीर
खैरख्वाहि कै ओढ़ओढ़नियां लायल कै तम्बान।
"हां हजूर हम सब में राजी" मियां भये कुरबान।
कहैं बीबी हम सब तुमको देंगे ॥
अररररर कबीर
सुनहु विनय राजा, महाराजा, साहु महाजन लोग।
देहुधड़ाधड़दान विद्याहित फिर न मिली ई सुयोग।
भला-यह दान सभी से उत्तम है ॥
अररररर कबीर
अनरेबिल गोखले सभा में कहिन अनेकन भांत।
शिक्षा, औ, सेनादिकव्ययहित सुनिस न कोऊबात॥
भला-जै बोलो "पलिसी" देवी की ॥
अररररर कबीर
बरसा लड्डू सरगलोक से जासु रिफारम नाम।
बढ़िया मिला मुसलमानन का हिंदुनका वेकाम॥
भला-ई लिबरल व्यू की बलिहारी ॥
अररररर कबीर
स्वारथ स्व अपनाय के, "स्व" सब देहु भुलाय।
स्वत्व, स्वराज, स्वावलंब, केसब "स्वा" हैदुःखकेदाय।
भला-कुछ उलटी सीधी तो समझो ॥
(भंग का लोटा)

होली।

[लेखक-पं० माधव शुक्ल।]

होली में भया हिंद भंग पीकर मतवाला॥
व्याही हिंदी नारि छोड़ घर दै बाहर से ताला।
उर्दू बीबी संग निकाह हित चलें गधी चढ लाला॥
लिये इंगलिश सहबाला ॥ होली में ॥ १ ॥
वेशर्मी का जामा पहिने बैर फूट का माला।
गर्व की मौर कुमति का सेहरा ओढे द्वेष दुशाला॥
पगन में दिल्ली वाला ॥ होली में ॥ २ ॥
निंदा ढोल बजावत आगे सुजना बाजा वाला।
कोरट वाले भये बराती प्लीडर प्रोहित आला॥
चले गावत चौताला ॥ होली में ॥ ३ ॥
"माधव"कौतुकलखिबालकगनमंडलबांधबिशाला
पकड़ पूंछ गदहीकी खैंचत नाद करत विकराला॥
हंसत लखि स्वांग निराला ॥ होली में ॥ ४ ॥

प्राचीन काल में विज्ञान।

[लेखक—बाबू सालिगराम टंडन एम० ए०]

अति प्राचीन काल में वैज्ञानिक शास्त्र भारतवर्ष के अमूल्य शास्त्रों में से था। यद्यपि अब कोई प्राचीन पुस्तक इस विद्या पर नहीं मिलती, परन्तु और ग्रंथों से यह बात सर्वथा सिद्ध होती है कि अन्य शास्त्रों की भांति इस शास्त्र में भी भारत के ऋषि, मुनि निपुण थे। भारत के बुरे दिन आये, लोग आलसी हो गये, उद्योग करना छोड़ दिया; और स्वभावतः व्यावहारिक Practical शास्त्रों का नाश होगया। काल्पनिक (Theoretical) ज्ञान तो पुराना प्रचलित हो रहा, परन्तु कालचक्र इतना बली है कि इसमें किसी वस्तु की स्थिरता कहां? जब शास्त्रीय अध्ययन बंद हुआ सरस्वती पयान कर गई और प्राचीन वैज्ञानिक विद्या का सूर्य अस्त हो गया। इतिहास से यह ज्ञात होता है कि भारतवासी विमान पर गमन करते थे परन्तु आज दिन उन्हीं ऋषियों की सन्तान उत्सुक हो रहे थे कि प्रयाग की प्रदर्शिनी में विलायत से विमान आये तो उसे देखें। महर्षि भागीरथी महाराज हिमालय पर से गंगा जी को बहा लाये जो अभी तक वर्षा की न्यूनता में समग्र देश की कृषि को अपने जल से पोषित करती हैं। आज कल सिंधु नदी में प्रति वर्ष ही बाढ़ आया करती है, सहस्रों जीव मरते हैं, परंतु कोई इञ्जिनियर (Engineer) नहीं मिलता जो उसके वेग को सम्हाल सके। काल्पनिक ज्ञान की पुस्तकें थीं उनका भी घर और बाहर की लड़ाई के अंधकार में सर्व नाश हो गया।

भारतवर्ष से विद्या का संचार मिश्र में हुआ। परंतु व्यावहारिक विद्याओं का तो सर्व नाश ही हो चुका था, इनसे वह भी अनभिज्ञ रहे। मिश्र के सूच्यग्रस्तम्भ (Pyramids) इस बात के साक्षी हैं कि उनके इंजिनियर संसार में अद्वितीय ही थे। सूच्यग्रस्तम्भों की बड़ी २ चट्टानें सैकड़ों कोस से लाई गई थीं, उनके जोड़ अभी तक नहीं खुले हैं। वे लोग मुर्दे (Mummies) को ऐसे मसालों से भरते थे कि सहस्रों वर्ष बाद आज तक वह मुरदे नहीं सड़े। पर इतिहास में इस बात का कहीं भी पता नहीं चलता कि मिश्रवासियों ने विज्ञान शास्त्र में कोई उन्नति की हो।

इसके अतिरिक्त भारतवर्ष एवं मिश्र दोनों में विद्या के सार्वजनिक प्रकाशन से पण्डितों को एक अभाव सा उत्पन्न हो गया था; क्योंकि नई बात तो वह लोग कोई निकालते नहीं थे अतएव अपनी विद्या को कुछ चेले विद्यार्थियों के सिवा और सब से छिपाते थे। सब लोग जान जाते तो उनका आदर ही कौन करता, और इसी का फल यह हुआ कि किसी ने कोई नवीन ग्रन्थ नहीं रचा, जिस से कि विद्या को बहुत हानि पहुंची।

आधुनिक पश्चिमीय विज्ञान शास्त्र की आदि यूनानियों से है। यूनान के पण्डित बहुधा केवल दर्शन शास्त्रवेत्ता ही हुआ करते थे। यद्यपि वे बड़े बुद्धिमान और कला कुशल थे परन्तु वे विमार्ग में उद्योग करते थे। वे लोग अपने हाथों से कार्य करना नीच कार्य समझते थे और दासों से काम करवाते थे। मानसिक कार्य पण्डित लोग स्वयं करते थे। इसका फल यह हुआ कि वे कल्पित संकेतों से प्राकृतिक बातों का विवरण करने लगे। परीक्षा करके वे सत्य का निर्णय नहीं करते थे। वैज्ञानिक शास्त्र का तो आधार ही व्यावहारिक (Practical) है। वह कोई अन्तर्ज्ञानिक शास्त्र तो है नहीं और किसी मनः कल्पित विचार से हमको वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्ति नहीं हो सकती। प्राकृतिक नियम किसी की इच्छानुसार तो बदला नहीं करते; वह तो जिस तरह थे उसी तरह हैं और वैसी तरह चले जायंगे। हम को यत्न करना चाहिये कि सत्य बात की खोज करें। इन मानसिक बातों

से कभी काम नहीं चलता कि हमारी सम्मति में तो ऐसा नहीं ऐसा होना चाहिये, और चूंकि यूनानी पंडित परीक्षा के स्थान अन्तर्ज्ञान से अधिक काम लेते थे, कोई आश्चर्य की बात नहीं जो वे कला और दर्शन की भांति विज्ञान में कोई उन्नति न कर पाये। यूनानी पंडितों में पाइथागोराज़ (Pythogoras ४८३ वर्ष विक्रम के पूर्व), इम्पीडा क्लीज़ (Empedocles–विक्रम से ३८७ वर्ष पूर्व), (अरस्तु) Aristotle विक्रम से २८३ वर्ष पूर्व—अलक्षेंद्र का गुरु) और अफलातून (Plato) ने इस तरफ़ कुछ ध्यान दिया। उन लोगों को सूर्यकांत (आतशी शीशा) इन्द्र धनुष, द्रव पदार्थों की प्लवनशीलता (Buoyancy of the liquids) के बारे में मालूम था। प्रसिद्ध रेखा-गणितज्ञ यूक्लिड Euclid–विक्रम से २४३ वर्ष पूर्व) ने एक वैज्ञानिक शास्त्र भी रचा, परंतु वह इतना अशुद्ध है कि उस पुस्तक की रचना में संदेह पड़ता है। क्लियामोडीज़ [Cleomodes] और टोलमी [Ptolemy] ने भी इस ओर कुछ ध्यान दिया परंतु कोई बड़ी सफलता न प्राप्त कर सके।

इसी बीच में यूनान और मिश्र दोनों का पतन हुआ और रूम का राज्य फैला। रूमियों को कला और युद्ध शास्त्र में बड़ी रुचि थी, उन्हों ने वैज्ञानिक अध्ययन की ओर कुछ ध्यान ही न दिया। इसी समय ईसाई धर्म का रूम में प्रचार हुआ। नये मत सर्वदा उत्साह से भरे होते हैं, और इस अवसर पर इस मत में बहुत हठधर्मी भी थी। फिर क्या था, जहां २ रूम का अधिकार था ईसाई मत प्रवेश करने लगा और वैज्ञानिक अध्ययन से अरुचि होने लगी। इस समय तक मुद्रण यन्त्र (Printing) तो निर्मित नहीं हुआ था, कुछ हस्तलिखित पुस्तकों की ही विज्ञान ने शरण ली। वहां भी उनका पीछा न छुटा। यूनान की तो पुस्तकें कुछ बाकी भी रहीं, मिश्र का सब से बड़ा पुस्तकालय मुसलमानों के खलीफ़ा उमर ने मिश्र विजय के समय भस्म करवा दिया। ये आधुनिक विज्ञान के विकट कुदिन थे। इस समय विद्या का सूर्य धार्मिक बादलों में छिप गया; ईसाई इंजील पढ़ते थे, मुसलमान कुरान पढ़ते थे। चूंकि यह पुस्तकें ईश्वरीय ज्ञान मानी जाती थीं यह समझा जाता था कि सम्पूर्ण ज्ञान का रस इनमें भरा है, अन्य पुस्तकों का पढ़ना कुफ्र था उन्हें छूना भी धार्मिक लोग अपवित्र समझते थे। उस समय में जिसे देखो वही धर्म ग्रंथ द्वारा अपने लिये स्वर्ग को सीढ़ी लगा रहा था। ऐसे समय में भला व्यावहारिक निरूपण के लिये किसे अवकाश था।

अन्त में मुसलमानों ने कुछ वैज्ञानिक अध्ययन आरम्भ किया। मिश्र में यूनानी शास्त्र पहिले उन्होंने ग्रहण किये, और जब कि सर्व ईसाई ज्ञातियां असभ्यता में गिरती जाती थीं तब मुसल्मानों ने स्पेन में विद्या की ज्योति प्रकाशित की। परन्तु मुसल्मान विजय के मद में भरे हुए अति विषयासक्त हो रहे थे इस बात की कोई बड़ी आशा नहीं की जा सकती कि वे वैज्ञानिक अध्ययन युक्ति पूर्वक करते थे। उनका उद्योग अधिकतर पारस पत्थर और संजीवनी के खोज में था जिसमें कि उन्हें सफलता न प्राप्त हुई। उनके सब से बड़े वैज्ञानिक अलहज़ी (ग्यारहवीं शताब्दी) में कुछ ग्रन्थ भी रचे गये थे जो कि ५०० वर्ष तक पश्चिमी संसार में प्रमाण माने गये।

जब मुसलमान और ईसाइयों में धर्म युद्ध (Crusades) प्रारंभ हुआ, उस युद्ध से ईसाई योद्धा भी पारस और संजीवनी के लिये मतवाले हो गये। सारे यूरप में इसी की चर्चा होने लगी। परंतु अभी यहां धार्मिक उत्साह इतना बढ़ा हुआ था कि उसके बारे में तर्क

वितर्क अधर्म समझा जाता था । वे अवाशंकित विश्वास ही को धर्म का सब से बड़ा अंग समझते थे । अतएव वह समय व्यावहारिक शास्त्र की कथा कहानियों का था । उस समय में लंपट छली लोग अशंकनीय जन समूहों को बहका कर ज्ञानी बनने लगे । थोड़े समय तक तो यही अवस्था रही । परंतु जैसे लोहा चुम्बक की ओर खिंचता है; वैसे ही मनुष्य का चित्त सर्वदा ज्ञान की ओर आकर्षित होता रहता है । कभी २ तो ऐसे घोर बादल आ जाते हैं कि सब अन्धकारमय देख पड़ता है, परंतु तौ भी जहां कहीं थोड़ा सा प्रकाश देख पड़ा कि पतंग की भांति चित्त उसी ओर चलायमान हो जाता है । धीरे २ असाधारण विद्वान धूर्त्तों से अलग होने लगे । न्यायानुकूल तर्क वितर्क से प्राकृतिक बातों को मिलाना आरंभ हुआ । यह नींव व्यावहारिक ज्ञान की पड़ी । व्यावहारिक ज्ञान के प्रचलित होते ही लोगों की पोल खुलने लगी । पहिले के भ्रम ज्ञात हो गये । सत्य ने अपना अधिकार जमाया । अलौकिक मूल का स्थान विवेक और विचार ने लिया । देवी, देवता, भूत, प्रेतों का राज्य जो लगभग सहस्र वर्ष से चला आता था थर्रा गया; और लोगों का प्राकृतिक नियमों पर विश्वास बढ़ने लगा । तेरहवीं शताब्दी में राजर बेकन (Rojer Bacon of oxford) और अलबर्ट (Albert of cologne) दो बड़े ज्ञानी पंडितों और अपूर्व बुद्धिमानों ने व्यावहारिक शास्त्र की ओर ध्यान दिया । यद्यपि यह लोग उस समय कुछ मुख्य उन्नति न कर सके परंतु इन्होंने भविष्य के लिये रास्ता बना दिया । यह बात पूर्ण रीति से सिद्ध हो गई कि मनुष्य को प्रकृति के साथ साथ कार्य करना चाहिये; और किसी प्राकृतिक नियम को मालूम करने के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्यक्ष घटनाओं का अध्ययन किया जाय और मानसिक कल्पनाओं को त्यागा जाय। परंतु अभी पादड़ी सत्यान्वेषकों को बहुत कष्ट देते थे ।

अत्याचार का भी पात्र भर गया और मुद्रण कला के प्रचार होते ही जर्मनी में मार्टिन लूथर (Martin Luther) ने मताभिमानी पादड़ियों के पंजों से सत्य का उद्धार किया । फिर तो एक अपूर्व उत्साह के साथ यूरप में वैज्ञानिक अध्ययन आरंभ हुआ । १७वीं शताब्दी में इटली, इंगलैंड, फ्रांस में वैज्ञानिक समितियां खुलगई, जहां विद्वान मनुष्य मिलकर विचार करने लगे। फिर क्या था, न्यूटन (Newton) सरीखे बड़े २ वैज्ञानिक पैदा हो गये और ३०० वर्ष के बीच में सारे संसार का रंग बदल गया । जो बातें कि पहिले अगम्य समझी जाती थीं अब बच्चे तक उनसे परिचित हैं । रेलें खुलगई, नहर कट गईं, बिजली के आधार घर बैठे बिना तार के संसार भर के समाचार मिलने लगे, विमान बन गये, चित्रकारी, संगीत सभी के यंत्र बन गये, यहां तक कि अमेरिका के एक वैज्ञानिक ने ऐसा बिजली घर बनाया है कि किसी नौकर की आवश्यकता नहीं, बिजली का बटन दबाने से ही सब कार्य हो जाय—खाना पक जावे, मेज़ पर खाना आजावे, बरतन, कपड़े, जूते सब साफ़ हो जावें, गाना सुन लीजिये, जितने सांसारिक सुख हैं सब ही बिजली के बटन के दास हो गये । बिजली का बटन क्या हुआ मानों कल्पवृक्ष ही प्राप्त हो गया ! आशा है इन बातों का परिचय हम आगे के अंकों में पाठकों के संमुख उपस्थित करेंगे ।

इङ्गलैंड की वर्तमान राजनैतिक दशा।

आज कल इंगलैंड की राजनैतिक दशा बड़ी विचित्र है । हाउस आफ लार्डस में और हाउस आफ कामन्स में बहुत झगड़ा बढ़ रहा है । झगड़ा मृत सम्राट एडवर्ड के ही समय से चल रहा है इस लिये पूर्ण रूप से दशा का ज्ञान होने के लिये यह आवश्यक है

कि उस समय से जो २ बातें हुई हैं उसका संक्षिप्त रूप से कुछ वर्णन किया जाय। यह तो विदित ही है कि इंगलैण्ड के राजनैतिक दलों के दो प्रधान अङ्ग हैं जिसमें एक तो लिबरल दल अर्थात् उदार नीति का अवलम्बन करने वाले और दूसरा कन्सरवेटिव (टोरी-पुरानी लकीर के फकीर) कहलाता है।

हाउस आफ् लार्डस् और हाउस आफ् कामन्स।

हाउस आफ़ लार्डस के मेम्बर निर्वाचित किए जाते हैं। इसमें बड़े घराने के लोग रहते हैं और मेम्बरी भी एक प्रकार की बपौती सी चली आती है। सम्राट् को अधिकार है कि अपने मंत्रियों की सम्मति से जिसे वे चाहें लार्ड बना दें। इसमें अधिकांश अमीर लोग रहते हैं और सब देश के अमीरों की भांति इनमें से अधिकतर लोग किसी प्रकार के सुधार के विरोधी होते हैं। हाउस आफ़ कामन्स में मेम्बर प्रजा के चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं और जिस समय जिस तरह की, लिबरल या कान्सरवेटिव, राय की प्रजा में अधिकता होती है उसी प्रकार के हाउस आफ़ कामन्स के अधिकतर मेम्बर होते हैं। वर्तमान सभ्य देश की राजनैतिक प्रणाली में प्रजा के चुने हुए प्रतिनिधियों को ही क़ानून बनाने तथा कर लगाने का अधिकार रहता है। हाउस आफ़ कामन्स या प्रजा के प्रतिनिधियों में यदि लिबरल दल की अधिकता होती है तो गवमेंट लिबरल दल के हाथ में होती है यदि कंसरवेटिवों की अधिकता होती है तो गवमेंट कंसरवेटिव होती है। जिनकी अधिकता होती है वे अपनी एक कार्य कारिणी सभा स्थापित कर लेते हैं जो कि "केबिनेट के नाम से पुकारी जाती है और इसी के द्वारा सब राज काज होता है इन प्रजा के प्रतिनिधियों को ही कर लगाने का अधिकार है क्यों कि वहां स्वराज्य है वहां की राजनीति का पहिला सिद्धांत यह है कि "No taxation without representation प्रजा के प्रतिनिधि नहीं तो टेक्स नहीं, अर्थात् जब तक प्रजा के चुने हुए प्रतिनिधियों की सम्मति न हो तब तक कोई टेक्स नहीं लगाया जा सका। जो कानून, प्रस्ताव आदि इस केबिनट से पास होता है वह हाउस आफ लार्डस की सम्मति होने पर कानून हो जाता है। हाउस आफ लार्डस् को कामन्स के बनाए हुए कानूनों को वोटो (रद्द) करने का भी अधिकार है किंतु लार्डस स्वयम् बिना प्रजा के प्रतिनिधियों की राय के कोई कानून भी नहीं बना सकते, कर लगाना तो दूर रहा। हाउस आफ लार्डस के कार्यों को वीटो (रद्द) करने का अधिकार स्वयम् राजा को है किंतु राजा भी प्रजा के प्रतिनिधियों की राय बिना कर आदि नहीं लगा सकते। हाउस आफ लार्डस के कार्यों को रद्द करने का अधिकार राजा या रानी के हाथ में है तो किंतु रानी एन के समय से प्रायः २०० वर्ष हुआ यह अधिकार कभी काम में नहीं लाया गया इसके कारण यह पोथी का भांटा सा हो रहा है।

हमारे पाठकों को विदित है कि प्रायः ६ वर्ष से गवमेंट लिबरल दल के नेताओं के हाथ में है। इस वर्ष पार्लीमेंट का फिर से चुनाव हुआ था। इसमें आइरिश लोगों की सहायता से लिबरल दल ही अधिकार में बना रहा। दो वर्ष हुए लिबरल दल के एक प्रधान नेता मि॰ लायड जार्ज ने हाउस आफ़ कामंस में आय व्यय का चिट्ठा पेश किया था, यह बजट एक वर्ष के बाद विवाद के बाद पास हो गया है। अनेक लिबरल प्रस्ताव जिनमें अन्तिम गत वर्ष का बजट था हाउस आफ़ कामन्स में पास हो कर हाउस आफ़ लार्डस् में रद्द हो गया इससे दुःखी हो हाउस आफ कामन्स के नेताओं ने यह निश्चय किया कि हाउस आफ़ लार्डस् के प्रजा के प्रति-

निधियों के किए हुए काम को रद्द करने के अधिकार की काट छांट कर दी जाय। इस कार्य में हाउस आफ़ कामन्स को आइरिश नेताओं ने भी सहायता देना स्वीकार किया क्योंकि हाउस आफ़ लार्डस् ही के विरोध के कारण उन्हें होम रूल-स्वराज्य नहीं मिल रहा है। आइरिश लोगों को होम रूल पाने की अभिलाषा थी, और लिबरलों को लार्डस् के बल को तोड़ने की इस कारण दोनों एक दूसरे की सहायता पर उद्यत हुए। अधिकार जाने की बात सुन कर लार्डस् में भी बड़ी खलबली मच गई।

बजट के रद्द होने पर मि० एसक्विथ ने साफ २ कह दिया था कि या तो बजट और वीटो (रद्द करने वाला अधिकार) पास होंगे या हम लिबरल लोग अधिकार छोड़ देंगे। 'We stand or fall by the Budget and the veto' लिबरल दल वाले तो इस प्रश्न पर एक तरफ आन्दोलन कर रहे थे और कन्सरवेटिव दल वाले टैरिफ रिफार्म (एक प्रकार का स्वदेशी आन्दोलन) और जरमन पेरिल (जरमनी का भय) के विषय में चिल्ला रहे थे।

जरमन पेरिल।

जरमन पेरिल का यह मतलब है कि इंगलैंड में बहुत से लोगों को यह विश्वास है कि जर्मनी संसार में सब से बड़ी शक्ति होने के लिए तथा Naval Power (सामुद्रिक-शक्ति) में सब से बढ़ कर बनने के लिए प्रयत्न कर रही है। वास्तव में बात यह है कि जर्मनी वाले इस समय लड़ाई के जहाज, आकाश विमान हवाई नाव—आदि बहुत तैयार कर रहे हैं। इसमें कोई संशय नहीं कि जर्मनी शिल्पोन्नति में सब से आगे रहा चाहती है और फिर जो माल तैयार हो उसके निकासी के लिए नई २ बाज़ारें भी होनी चाहिए जो बिना आधिपत्य बढ़ाए निश्चित नहीं हो सकती। यह भी कह देना अनुचित न होगा कि जर्मनी के कैसर-सम्राट्—बड़े ambitious (उच्चाभिलाषी) हैं और जहाज़ों ताक़त में सब से उत्तम होने की इच्छा उनके जीवन का एक प्रधान उद्देश्य और अंश है। यह भी कहा जाता है कि जर्मनी के कुछ प्रधान राजनीति के नेताओं ने स्पष्ट रूप से इंगलैंड से लड़ाई करना होगा यह कहा था। इन सब बातों के कारण कंसरवेटिव दल के नेताओं तथा पत्रों ने यह शोर मचाना शुरू किया था कि इंगलैंड को अपनी नाविक शक्ति बढ़ाना चाहिये। कई पत्र के सम्पादक तो ऐसे घबड़ा गये कि वे भविष्यद्वाणी की भांति कहने लगे थे कि जर्मनी १९१० के भीतर ही इंगलैंड पर आक्रमण करेगी। कंसरवेटिव दल वाले नाविक प्रभाव बढ़ाने के लिये जहाज़ आदि लड़ाई के सामान बनाने की राय देने लगे। इसके लिये खर्च की आवश्यकता थी। उन लोगों ने प्रजा पर कर बढ़ाने की बात उठाई। लिबरल तथा सोशियालिस्ट दल वालों ने इसका विरोध किया और इस भय को उन्होंने बिलकुल निर्मूल बतलाया। इसका यह तात्पर्य नहीं था कि जर्मन पेरिल का लिबरलों पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा था किंतु बात यह थी कि वे समझते हैं कि उनकी सामुद्रिक सेना बड़ी प्रबल है और उसे अधिकतर बली करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मि० एसक्विथ भी Two Power standard (जितनी सामुद्रिक सेना किन्हीं दो राष्ट्रों के पास मिला कर हो उतनी स्वयम् अपने यहां रखना) रखने के लिये सहमत थे। लिबरल तथा कंसरवेटिव दल में इन्हीं बातों के कारण वादविवाद चल रहा था। यह हम पहिले ही लिख चुके हैं कि कानून बनाने का, कर लगाने आदि का अधिकार कामंस के हाथ में है और सम्मति से स्वीकार करने का अधिकार लार्डस् के हाथ में है। लार्डस् के कर बढ़ाने के प्रस्ताव को कामंस नहीं मानते थे इसी कारण कामंस का बजट भी लार्ड सभा में पास नहीं होने पाता था।

लार्ड सभा का वीटोवाला अधिकार नष्ट करने के हेतु प्रधान मंत्री ने जो व्यवस्था कामंस सभा द्वारा स्वीकृत करा लिया है वह इस प्रकार से है:—यदि कोई बिल एक पार्लामेंट के समय में तीन बार कामंस से पास हो कर लार्डस में रद्द हो जाय तो कामंस को यह अधिकार होगा कि वे बिना लार्डों की सम्मति के चौथी बार राजा की आज्ञा ले उसे कानून बना लें। एक प्रस्ताव यह भी पास हुआ था कि यदि हाउस आफ कामंस से किसी आय व्यय के प्रस्ताव के पास होने के ३० दिन के भीतर लार्डस उसे पास न कर दें तो कामंस को अधिकार होगा कि राजा की आज्ञा से वे उसे पास कर लें।

यह भी कहा जाता है कि मृत सम्राट ने मि० एसक्विथ को यह वचन दे दिया था कि यदि तीसरी बार भी लार्डस ने बजट को रद्द कर दिया तो वे स्वयं अपने अधिकार से बजट को पास कर देंगे। यह बात भी देखने में जैसी सरल मालूम होती है वास्तविक में वैसी सरल नहीं थी। लार्डस यह कहते थे कि राजा को नये लार्डस बनाने का अधिकार तो है किंतु वह बनाया हुआ लार्ड हाउस आफ लार्डस में बैठ कर राजनैतिक मामलों में अपनी राय दे सकता है कि नहीं यह लार्डस के आधीन है। इस प्रश्न पर सन् १८३२ में और १८६६ में आन्दोलन हुआ था। उसमें यही बात तै हुई थी कि लार्डस नये मेंबर को हाउस आफ लार्डस में नहीं बैठने देंगे और यदि कोई राजा लार्डस को हाउस आफ लार्डस में न बैठने दें तो वे लोग बल पूर्वक बैठेंगे। लार्ड ग्रैनवील (Lord Granville) ने तो यहां तक कहा था कि जो मंत्री राजा को नये लार्डस बनाने की राय दे उसे फांसी दे देना चाहिये।

"This would certainly be unconstitutional although it might perhaps be strictly legal; and the proper course, if such a thing were done, would be to impeach and hang the minister who advised it."

सारांश यह है कि यदि मृत सम्राट किसी प्रकार वर्तमान राजनैतिक दशा और संकट मिटाने के लिये नए लार्डस बनाने पर सहमत भी होते तो लार्डस इसका विरोध करते और नये मेम्बरों को हाउस आफ लार्डस में बैठने न देते इन सब बातों से पाठक समझ सकते हैं कि इङ्गलैंड में उस समय गवर्मेंट की क्या दशा थी। यहां पर यह भी बतला देना आवश्यक है कि केवल यह वीटो का झगड़ा नहीं है किंतु झगड़ा इस बात का है कि यदि लार्डस के हाथ में वीटो का अधिकार रहा तो लिबरल दल का होना एक प्रकार से नहीं के बराबर है क्योंकि जो यह करना चाहेंगे और लार्डस उससे सहमत नहीं होंगे तो वह काम कभी नहीं हो सकेगा। इस समय प्रश्न यह उपस्थित है कि लिबरलों को जिनकी संख्या फी सैकड़ा ४५ है और जो कभी २ फी सैकड़ा ५५ हो जाती है उन कानूनों के विषय में जो उनके तथा उनके भाइयों के लिये बनते हैं राय देने का अधिकार रहेगा कि नहीं। अब पाठक इस झगड़े के महत्व को समझेंगे। प्रश्न यह है कि राज काज में अधिकार किसका रहेगा लार्डस का कि प्रजा के प्रतिनिधियों का या दोनों का। सर्वत्र सभ्य देशों की राजप्रणाली इन बातों को सूचित करती है कि दोनों का अधिकार मिल कर होना चाहिये। इसी बात पर लार्ड रोज़बरी [Lord Rosebury] ने अपने व्याख्यान में कहा था कि सब देशों में जहां कहीं राज काज प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा होता है शासन कार्य और व्यवस्था बनाने के निमित्त सर्वत्र दो सभायें होती हैं। परंतु हमारे देश में लिबरल दल वाले लार्डस के अधिकार को तोड़ा चाहते हैं जिसका परिणाम यह होगा कि एकही सभा द्वारा शासन होगा जो सभ्य देशों में प्रचलित परिपाटी के विरुद्ध है और यह अनर्थ होगा।

लार्ड सभा के अधिकार के क्षीण हो जाने पर संभव है कि समृाट का अधिकार भी न्यून हो जाय। इसमें साम्राज्य के ऊपर विपद पड़ने का भय है [The Crown is in danger]" इन बातों के उत्तर में मि० चर्चिल ने कहा था कि, "इङ्गलैंड में तो एक प्रकार से एकही हाउस का अधिकार चला आता है क्योंकि पूर्ण अधिकार लार्डस् को रहता है। यदि हाउस आफ़ कामन्स में भी कन्सरवेटिव दल की अधिकता रहीतो फिर क्या है लार्डस और कामन्स एक हो जाते हैं और वस्तुतः में एक ही का अधिकार रहता है और यदि कामन्स में लिबरल रहे तो वे लार्डस के वीटो के सामने कुछ कर नहीं सकते तब भी एक ही का अधिकार रहा"

पाठक, अब आप विचारें कि उस समय इंगलैंड की राजनैतिक समस्या कैसी कठिन थी, और इसका हल करना कितना कठिन था, सम्राट एडवर्ड की मृत्यु के पूर्व इंगलैंड के घर की राजनीति की यह अवस्था थी। दो प्रधान दलों में झगड़ा बढ़ताही जाता था किंतु लिबरल दल की प्रजा में आधिक्य देख कर तथा अधिकार जाने के भय से लार्डस् ने बजट पास कर दिया।

लार्डस् को किसी प्रस्ताव के पास करने में प्रजा की राय लेने का भी अधिकार है। इस समय वे अपनी हार को छिपाने के लिए कहने लगे कि वे प्रजा की राय का आसरा निहार रहे थे और प्रजा की राय देख कर उन लोगों ने बजट को पास कर देना ही उचित समझा।

हम लोगों को विदित है कि सम्राट बेहोश होने के पहिले तक काम करते रहे और उन के जीवनकाल ही में बजट पास हो गया था। केवल वीटो (रद्द करने वाले अधिकार) की बहस अब [illegible] रह गई। इसी समय में समृाट की अकाल मृत्यु हो गई और महाराज पञ्चम जार्ज समृाट हुए।

महाराज एडवर्ड और सम्राट जार्ज।

ऊपर की बातों से यह विदित है कि समृाट एडवर्ड की सहानुभूति लिबरल दल से थी। इसके समर्थन में यह भी कह देना आवश्यक है कि कहा जाता है कि भूतपूर्व समृाट ने आवश्यकता पड़ने से कुछ लिबरल दल वालों को पीयरस (Peers) लार्डस बनाने का वचन दिया था यद्यपि इससे उन्हें बड़ी कठिनाइयों से सामना करना पड़ता। इसका यह फल होता कि हौस आफ़ लार्डस में भी लिबरल दल के सभ्य हो जाते और फिर बजट के पास होने में कठिनाई न होती। यह इंगलैंड में परंपरा से चली आई है कि समृाट यदि लिबरल चित्त के होते हैं तो युवराज कंसरवेटिव मत के। इसके सिवाय महारानी विक्टोरिया कंसरवेटिव दल की थीं और उन्हीं की देख भाल में समृाट जार्ज को शिक्षा मिली है। इससे और और भी बातों से यह अनुमान किया जाता था कि समृाट जार्ज कंसरवेटिव दल के होंगे। रिव्यू आफ रिव्यूज में मि० ब्रक ने लिखा था।

"King Edward did what he could to bring the Peers to reason, but while eminently successful in diplomacy abroad he proved unabale to ride the whirlwind at home. This was partly because ever since he came to the Throne his social prefrences have some what alienated the aristocracy and partly because his liberal sympathies have equally alieneated the unionists. It is almost a law of nature that the heir apparent should be of opposite political opinions to the reigning soverign. Qeen Victoria was a Tory of Tories, King Edward both as King and Prince of Wales has always been a man of modern views and inclined to Liberalism and his son the present Prince of Wales (now the

King) reverts accordingly to his grand-mother's creed.

सम्राट की मृत्यु के बाद कुछ काल तक सब झगड़ा बंद रहा। थोड़े दिवस बाद फिर से वाद विवाद आरंभ हुआ। झगड़े के शांति करने का कोई उपाय न दिखाई दिया और अंत में पार्लामेन्ट टूट गई। कुछ दिन के बाद फिर से पार्लमेंट बनी और ईश्वर की दया से अब भी गवर्मेंट लिबरल दल के अधिकार में है। जैसा कि पिछली पार्लमेंट में था अब की बार भी आईरिश दल बलवान है और उन्हें पूर्ण आशा है कि अब की बार उन्हें होम रूल [स्वराज्य] अवश्य मिल जायगा। इधर लिबरल दल वाले समझते हैं कि अब हाउस आफ़ लार्डस का वीटो [रद्द करने वाला अधिकार] न रहैगा किंतु लार्डस अभी तक दुर्योधन की भांति यही कह रहे हैं कि "शूच्याग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव" अभी तक वे अपने हठ पर स्थित हैं। आइरिश लोगों को स्वराज्य मिल जायगा यह भी बहुत से इङ्गलैंड निवासियों को दुःखदायी हो रहा है। कुछ लोग तो यही डींग मार रहे हैं कि यदि इन लोगों को स्वराज्य मिला तो वे अपने शस्त्रों को काम में लायेंगे किंतु वीर मि० रेडमन्ड (आइरिश दल के प्रधान नेता) पीछे हटना नहीं जानते और वे अपने प्रण पर स्थित हैं। किन्तु आइरिश लोगों को तभी स्वराज्य मिल सकता है जब लार्डसभा का ज़ोर कम होजाय उनके ज़ोर को कम करने का एक यही उपाय है कि उनका वीटो का अधिकार छीन लिया जाय किंतु यह बहुत कठिन है। दिन प्रति दिन यह झगड़ा विषम रूप धारण कर रहा है।

भीष्म पितामह।

[लेखक—श्रीयुत पुरुषोत्तमदास टंडन।]

हमारे पाठकों को कदाचित् उस चित्र के पहिचानने में कठिनता न होगी जो इस लेख के साथ है। यह उस समय की याद दिला रहा है जब कुरुक्षेत्र की रणभूमि में शर-शय्या पर लेटे हुए पितामह भीष्म जो अपने शरीर त्यागने के लिए इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायन हो जावें और जब पाण्डवों और कौरवों के नेताओं को उन्होंने उन बड़े सिद्धांतों का उपदेश दिया था जिन की ही अनभिज्ञता के कारण भारत संतान आज बुरी दशा को पहुंची हैं—

संसार के इतिहास में महात्मा भीष्म के समान दूसरा चरित्र मिलना कठिन है। यदि समानता दिखाई भी पड़ेगी तो केवल भारतवर्ष के इतिहास में। घोर संग्राम और भी स्थानों में हुये हैं, यूरप में यूनान देश और ट्राय देश के रहने वालों की लड़ाई प्रसिद्ध है। परंतु भारतवर्ष के वीरों और यूनान और ट्राय के वीरों में बड़ा ही अंतर है। एकिलीज़, हेकटर, यूलिसीज़ एजकस और एगेमेमनान अवश्य बड़े वीर और पराक्रमी थे परंतु उनकी तुलना भीष्म, द्रोणाचार्य युधिष्ठिर भीम और अर्जुन के साथ करना इतिहास के मर्मों का एक बारगी भूलना है। भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता और यूनान की प्राचीन सभ्यता दोनों में बहुत ही बड़ा भेद है। वही भेद भारतवर्ष के वीरों और यूनान के वीरों के कर्मों में है। यूरप के आधुनिक इतिहास की तो चर्चा ही क्या! आधुनिक इतिहास में उस विचित्र और पवित्र चरित्र का चित्र मिलना असंभव ही है जिसकी कीर्ति की कुछ छटा उसकी संतान को दिखलाने के लिये आज हमने लेखनी उठाई है।

भारतवासियों के लिये महात्मा भीष्म के चरित्र की चर्चा अमृत के समान है। जितना ही अधिक वे उनका स्मरण करेंगे, जितना ही अधिक वे उनके उपदेशों को आंख खोल कर पढ़ेंगे उतना ही अधिक बल और पुरुषार्थ उनमें आवेगा। देश की दशा को सुधारने और उसको फिर उस उच्च शिखर पर पहुंचाने में, जिस पर कि वह किसी समय में था, बाबा भीष्म का चरित्र हमारे लिये आदर्श रूप है। पितृ भक्ति, प्रतिज्ञा पालन, सत्य, धर्मपरायणता, शूरता, निर्भयता. देश भक्ति इन गुणों में कैसी अच्छी शिक्षा हमें भीष्म जी के चरित्र से मिलती है। इन्हीं गुणों से देश का, जाति का और भारतवासियों का उत्थान संभव है। इसी कारण से उन्हें भीष्म जी के चरित्र पर, जितना अधिक हो सके, मनन करना चाहिये।

भीष्म जी राजा शान्तनु के पुत्र थे। उन के पिता एक दिन आखेट के लिये जा रहे थे कि उन्हों ने एक सुन्दर युवती को देखा जिसे देख कर वे मोहित हो गए। वह सुन्दरी एक मल्लाह की पुत्री थी। राजा शान्तनु ने उस मल्लाह से उसकी पुत्री के साथ विवाह करने की इच्छा प्रगट की परंतु उस मल्लाह ने यह उत्तर दिया कि वह राजा के साथ अपनी पुत्री का विवाह केवल इस शर्त पर करेगा कि उससे जो पुत्र उत्पन्न हो वही राज्य का उत्तराधिकारी हो। राजा शांतनु को भीष्म बहुत ही प्रिय थे और वे बड़े पुत्र थे, इस कारण से उन्हों ने यह प्रतिज्ञा करना स्वीकार न किया परंतु उस सुन्दरी के मोह में जिसका नाम सत्यवती था, वे दिन २ दुर्बल और पीले पड़ते गये। पिता की यह दशा देख कर भीष्म को चिन्ता हुई और इस रोग का कारण खोजने पर उन्हें वास्तविक बात मालूम हुई। भीष्म तुरन्त ही उस मल्लाह के पास गए और उस से उन्हों ने यह प्रतिज्ञा की कि सत्यवती से जो पुत्र होगा वही राज्य का उत्तराधिकारी होगा मैं उत्तराधिकारी न हूंगा। मल्लाह ने यह बात तो मानली परंतु फिर यह कहा कि "तुमने अपने संबंध में तो प्रतिज्ञा करली कि तुम राज्य न लोगे परंतु यदि तुम्हारे पुत्र हुए और उन्हों ने राज्य छीन लिया तब हम क्या करेंगे।" इस बात को सुन कर भीष्म ने उसी समय यह कठिन प्रतिज्ञा की कि "हम आजन्म ब्रम्हचारी रहेंगे, तू अपनी पुत्री का विवाह पिता जी के साथ कर दे"।

पितृभक्ति का कैसा अच्छा उदाहरण हमको इस से मिल रहा है! परंतु इस प्रतिज्ञा करने से भी बढ़ कर प्रतिज्ञा पालन करने की रीति थी। जिस भांति भीष्म ने सत्यवती के पुत्रों की रक्षा और उनके साथ स्नेह किया वह हमें प्रतिज्ञा पालन की उत्तम शिक्षा दे रहा है। सत्यवती ने अपने पुत्रों के मरने पर स्वयं भीष्म से बहुत अनुरोध किया कि वह वंश चलाने के लिए अपना विवाह करें परन्तु दृढ़प्रतिज्ञ भीष्म की प्रतिज्ञा नहीं टल सकती थी, एक बार जो व्रत किया वह मृत्यु के दिन तक निवाहा। राज्य रहे चाहे न रहे, वंश चले वा न चले। वीर भीष्म की प्रतिज्ञा अटल है! उसका तोड़ना किसी प्रकार से सम्भव नहीं है।

पाठकगण, अब आप महाभारत का दूसरा चित्र अपने आंखों के सामने खींचें जब कि वृद्ध भीष्म संग्राम भूमि में अजेय, रथ पर चढ़े सूर्य के समान प्रकाशमान हो रहे हैं और क्षत्रीधर्म का निवाह करते और वाणों की वर्षा करते पांडवों की सेना का संहार कर रहे हैं। महाभारत को आरम्भ हुए नव दिवस व्यतीत हो चुके हैं। नव दिवस से वह रोमहर्षण संग्राम जिस में अंतिम बार भारतवर्ष के प्रचण्ड वीरों का महत्व दिखाई पड़ा था, बराबर हो रहा है। कुरुक्षेत्र की भूमि रुधिर की नदियों से रक्तवर्ण हो गई है, मांस और हड्डियों का विकट दृश्य आंख के सामने उपस्थित है, कायर अपने तुच्छ जीवन के मोह में पड़े भयभीत हो भाग रहे हैं, अपने क्षत्रिय धर्म में दृढ़ शूरवीर शंखनाद और धनुष

टंकार के शब्दों से उत्तेजित हो इस असार संसार को और अपने नाशमान जीवन को धर्म के आगे तुच्छ समझते हुए उस घोर युद्ध में मुदित हो २ कर प्रवेश कर रहे हैं जहां पितामह भीष्म ने अपने बाणों से मंडल बांध अर्जुन के रथ को ढांक दिया है और जहां वीर अर्जुन अपने तीक्ष्ण बाणों से भीष्म जी के हाथ में लिये हुए धनुषों को काट २ कर गिरा रहे हैं और भीष्म जी अपने शिष्य की हस्तलाघवता की प्रशंसा कर प्रसन्न हो रहे हैं। भीष्म जी ने दुर्योधन को महाभारत आरम्भ होने से पहिले बहुत समझाया था परंतु उसके न मानने पर और उसकी ओर से युद्ध करना अपना धर्म जान भीष्म जी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं दस सहस्र पाण्डवों के योद्धाओं को मारूंगा। आज वे उसी कठिन प्रतिज्ञा का पालन कर रहे हैं। युधिष्ठिर की सेना में आज प्रलय मच गया है। जिसी ओर पितामह के रथ और बाण जाते हैं उसी ओर योद्धाओं की लोथें दिखलाई पड़ती हैं। पांडवों की सेना भीष्म जी के प्रचंड तेज के सामने आज ग्रीष्म ऋतु के सूर्य से तप्त गौ के समान निःसहाय और निर्बल हो रही है। ऐसी अवस्था में पांडवों के सहायी श्रीकृष्णजी अर्जुन के रथ को छोड़ भीष्म के मारने के लिये सिंह के समान गर्जते क्रोध से दौड़े हैं। उनको अपनी ओर आते देख कर भीष्म जी हांथ जोड़ कर कह रहे हैं "हे कृष्ण, हे यादवेन्द्र आप आइये आपको नमस्कार है। आप मुझे अब इस महायुद्ध में गिराइये। हे निष्पाप! मैं आपका निस्संदेह दास हूं, आप इच्छानुसार प्रहार कीजिये, आप के हांथों से मरने में मेरा सब प्रकार से कल्याण ही है"। भीष्म जी हांथ जोड़ कर प्रसन्न चित्त यह कह रहे हैं और दूसरी ओर से अर्जुन श्रीकृष्ण के चरणों को पकड़ उन्हें उनकी इस प्रतिज्ञा की याद दिला रहे हैं कि "हम नहीं लड़ेंगे" और प्रार्थना कर रहे हैं कि "पितामह को मारना काम मेरा है, आप अपने प्रण की ओर ध्यान दीजिये," इस प्रकार अर्जुन के स्मरण दिलाने पर श्रीकृष्ण फिर रथ पर चढ़ गये हैं और फिर अर्जुन और कृष्ण और पांडवों की समस्त सेना पितामह के शस्त्र प्रहार से घायल और पीड़ित हो रही है।

अब सूर्य अस्ताचल को चले गये हैं। दिन के परिश्रम से थकी हुई दोनों सेनाएं अपने २ डेरों में विश्राम कर रही हैं। महाराज युधिष्ठिर के डेरे में सलाह हो रही है। युधिष्ठिर भीष्म जी के पराक्रम को देख निराश हो रहे हैं। अपनी सेना को भीष्म के सामने निःसहाय देख वे श्रीकृष्ण जी से कह रहे हैं कि "भीष्मजी का विजय करना महाकठिन और असम्भव है। मेरी सेना भीष्म जी के सामने पतंग के समान नष्ट हो रही है। मेरे शूरवीर प्रति दिन भीष्मजी के हांथों से मारे जा रहे हैं, इस कारण से मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मेरा कल्याण बन को चले जाने में ही है।" इस वचन को सुन कर श्रीकृष्ण जी ने युधिष्ठिर को ढाढ़स दिया कि अर्जुन अवश्य भीष्म पितामह को मारेंगे। फिर युधिष्ठिर ने कहा कि "अच्छा चलो हम सब लोग भीष्म पितामह ही से पूछें कि वे किस रीति से मारे जा सकते हैं। यद्यपि वे दुर्योधन की ओर से लड़ रहे हैं तो भी उन्होंने हम लोगों को युद्ध में सलाह देने का प्रण किया है। वे स्वयं अपने मारने का उपाय बतावेंगे" श्रीकृष्ण जी और सब पांडवों ने भी यह बात स्वीकार की और सब मिलकर नम्रता के साथ पितामह के डेरे में गये। भीष्म जी ने आदर और स्नेह से उनको अपने पास बिठाया और उनके आगमन का कारण पूछा। युधिष्ठिर ने अपने आने का कारण बताया और कहा कि "हम लोग आप में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं जानते, आप युद्ध में सदा धनुष मण्डल के साथ दिखाई पड़ते हैं, हम लोग आप को धनुष चढ़ाते, बाण लेते, संधानते और सूर्य के समान रथ पर चढ़ते हुए भी नहीं देख सकते हैं; तब किस पुरुष की

सामर्थ्य है जो आपको युद्ध में विजय कर सके, आपने अपने बाणों की वर्षा से युद्ध में प्रलय मचा कर मेरी बड़ी सेना का नाश किया है, अब जिस रीति से हम आपको युद्ध में विजय कर सकें और अपनी सेना बचा सकें, सो हे पितामह ! आप हमको बताइए।" इसके उत्तर में भीष्म जी ने कहा "हे राजा ! तुम्हारी सेना में द्रुपद का बेटा शूरवीर शिखण्डी नाम का है। जिस प्रकार से यह पहिले स्त्री था, फिर पुरुष हुआ, इस का बृत्तांत तुम जानते हो। अर्जुन तीक्ष्ण बाणों को लिये हुए शिखण्डी को आगे करके मेरे संमुख जो आवें तो धनुष बाण हाथ में लिये हुये भी मैं उस पहिले स्त्री रूप रखने वाले पर किसी अवस्था में शस्त्र न चलाऊंगा। इस कारण यह उत्तम धनुषधारी अर्जुन दूसरे को मेरे आगे नियत करके मुझ को मारे। निस्संदेह तुम्हारी विजय होगी। युधिष्ठिर तुम मेरे इसी वचन का प्रतिपालन करो।" धन्य हो वीर भीष्म ! यह तुम्हारे योग्य ही था कि सत्य का पालन कर स्वयं अपने मारने का उपाय बताया ! धन्य है वह भूमि जो तुम्हारे समान साहसी सत्यव्रत और दृढ़प्रतिज्ञ वीर पैदा करे ! तुम्हारे ही ऐसे पवित्रात्माओं के पुण्य से आज भी त्रैलोक्य स्थिर है, तुम्हारे ही प्रभाव से संसार में आज भी कुछ धर्म दिखाई पड़ता है और तुम्हारी कीर्ति की अजेय ध्वजा के नीचे आज भी भारतवासी यह यत्न कर रहे हैं कि बहुत दिनों के आलस्य के पाप का प्रायश्चित्त कर तुम्हारी संतान कहलाने के योग्य हों !

प्रातःकाल महाभारत का दसवां दिन आरंभ हो गया है, पांडवों की सेना भीष्म जी के उपाय बताने के अनुसार शिखण्डी को आगे कर भीष्म पितामह को मारने के लिये उद्यत हो रही है। कौरवों के बड़े २ सैनिक द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, जयद्रथ, अश्वत्थामा आदि भीष्म पितामह की रक्षा में प्रवृत्त हैं। घोर संग्राम हो रहा है। दोनों ओर के सहस्रों वीर रण गंगा में स्नान कर अपने क्षत्री धर्म को निवाहते वीर गति पा ब्रह्मलोक की यात्रा कर रहे हैं। पितामह भीष्म भी धनुष की टनकारों से घोर शब्द करते हुए अपने बाणों से आकाश को आच्छादित कर रहे हैं परंतु शिखण्डी के सन्मुख से हट जाते हैं और उसके बाण सहते हुये उस पर शस्त्र नहीं फेंकते हैं। आज उन्हों ने अपनी उस प्रतिज्ञा को जो उन्हों ने दुर्योधन से की थी पूरी कर दिया है और अब इस हत्याकाण्ड से हटा चाहते हैं। सन्ध्या का समय निकट है, सूर्य अस्ताचल को जाने ही वाले हैं। अर्जुन ने शिखण्डी की आड़ में लड़ते हुये भीष्म जी के अंगों में बाण ही बाण वेध दिये हैं। उनका कवच टुकड़े २ हो गया है। उनका शरीर भी शिथिल हो रहा है। भीष्म जी भी कह रहे हैं कि "जान पड़ता है कि ये सब बाण मुझे अर्जुन ही मार रहा है क्यों कि न शिखण्डी के न और किसी के बाण मुझे इस प्रकार पीड़ा पहुंचा सकते हैं"। तौभी टूटा ही कवच धारण किये वे लड़ रहे हैं और पांडवों की सेना का विध्वंश कर रहे हैं। परंतु बस अब अधिक बल नहीं रह गया ! रथ के टुकड़े हो गये हैं और महात्मा भीष्म रथ पर से पृथ्वी पर गिर पड़े हैं ! परंतु रोम २ में धंसे शरों ने उन्हें आकाश ही में रोक लिया है ! वे पृथ्वी तक पहुंचने नहीं पाये हैं और शरशय्या पर सच्चे वीर के समान पड़े हैं ! महात्मा भीष्म के गिरते ही चारों ओर हाहाकार मच गया है। युद्ध बंद हो गया है। कौरव और पांडव सभी कवच उतार और शस्त्र अलग धर महात्मा भीष्म के दर्शन के लिये दौड़ रहे हैं। उनके चारों ओर कौरव और पांडव, आंखों में आंसु भरे उपस्थित हैं। भीष्म जी का शिर लटका हुआ है। इस हेतु उन्हें तकिए की आवश्यकता हुई है। राजा लोग बहुत कोमल तकिये उनके शिर के नीचे रखने को उपस्थित कर रहे हैं। परंतु उन तकियों को देख कर भीष्म जी कहते हैं कि "हे राजाओ !

ये तकिये वीरों की शय्याओं पर शोभा नहीं देते"। फिर अर्जुन को देख कर वे बोले "बेटा अर्जुन! मेरा शिर लटकता है, तुम बहुत शीघ्र मेरे शयन के योग्य तकिया मुझे देदो"। आंखों से आंसू बहाते हुये अर्जुन ने "जो आज्ञा" कह कर और पितामह का आशय समझ गांडीव धनुष को हाथ में ले तीन बाणों से भीष्म जी के लटकते हुये शिर को सीधा कर दिया। भीष्म जी अर्जुन से बहुत ही प्रसन्न हुये और उनकी प्रशंसा करने लगे। इसी प्रकार शर शय्या पर पड़े भीष्म जी इस बात की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि सूर्य्य दक्षिणायन से उत्तरायण हो जांय, तब हम अपना शरीर छोड़ें! इसी शय्या पर से वे दुर्योधन और कर्ण को उपदेश दे रहे हैं कि इस देश नाशकारी संग्राम को मेरी ही मृत्यु के साथ बंद कर देना चाहिये। दुर्योधन और कर्ण के न मानने के कारण युद्ध बराबर हो रहा है। अन्त में कौरवों को जय कर युधिष्ठिर ने राज पाया है परंतु भाइयों के मरने पर शोकग्रस्त हो फिर पितामह के पास आये हैं और भीष्म जी ने उनको वह धर्म का उपदेश दिया है जो चिरकाल तक भारतवासियों को स्मरण रखना चाहिये। केवल मारने और न मारने में पाप वा पुण्य नहीं है। धर्म की और देश की रक्षा के लिये शत्रुओं का नाश करना ही सदा धर्म है। ऐसे समय मारने से मुख मोड़ना महा पाप है। धर्म ही एक मुख्य पदार्थ है। जीना और मरना सदा ही लगा रहता है, एक शरीर को छोड़ मनुष्य को दूसरे शरीर में जाना है। इस कारण शरीर के मोह में पड़ धर्म का त्याग करना केवल निर्बुद्धि और मूर्खता है। महात्मा भीष्म का चरित्र इस बात का उदाहरण है कि मनुष्य को किस प्रकार अपने धर्म को निवाहना चाहिये और भारतवासियों को सदा शिक्षा दे रहा है कि कायरता और शरीर के मोह को छोड़ तुम्हें निर्भयता से अपने धर्म पर आरूढ़ हो देश की रक्षा में प्रवृत्त हो जाना चाहिये।

नौलखा हार।

(३)

[लेखक-पं० किशोरी लाल गोस्वामी]

तीसरा परिच्छेद।

गुप्त शत्रु।

"आलोक सामान्यमचिन्त्यहेतुकं,
द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् ।"

(कुमार सम्भवे)

घनश्याम रनछोरलाल के पीछे पीछे सीढ़ी चढ़ता हुआ ऊपर चला जाता था कि इतने ही में पीछे से किसी ने उसके कंधे पर हाथ रक्खा! इससे वह चिहुंक उठा और उसने पीछे फिर कर उसी स्थूलांगी युवती को देखा, जिसका कुछ थोड़ा सा जिक्र हम ऊपर कर आए हैं; अर्थात् यह वही स्थूलांगी युवती थी जिसने पहिले परिच्छेद में घनश्याम और ललिता के पास पहुंच कर उस नौलखेहार का सा एक हार अपने लिये बनवाने की बात कही थी और जिसे देख कर घनश्याम कांप उठा था। सो यह स्थूलांगी युवती वही थी और इसका नाम अम्बालिका था।

घनश्याम ऐसे बेमौके अम्बालिका को देख कर सन्नाटे में आगया, पर उसे अम्बालिका ने देर तक उस हालत में न रहने दिया और उस ने उस के दाहिने हाथ को पकड़ मुस्कुराहट के साथ कहा,-

"इस तेजी के साथ कहां जारहे हो?"

घनश्याम,-(अपना हाथ खैंच कर) "कुछ काम है।"

अम्बालिका,-(फिर उसके हाथ को पकड़ कर) "क्या, मेरे साथ दो चार बातें करने में भी तुम्हें इतनी नफरत है? हाय, मैं जब से यहां आई हूं, बराबर इस बात का मौका देख रही हूं

कि क्यों कर तुम से निराले में भेंट हो और मैं कुछ अपने जी का अरमान निकालूं; पर तुम तो रनछोरलाल की रंगीली लड़की के पास से टसकते हो न थे।

इतना सुनते सुनते घनश्याम का चेहरा लाल हो आया और उसने झटके के साथ अपना हाथ खेंच घृणा पूर्वक कहा,-

"छिः छिः अम्बालिका ! तुम क्यों नाहक मेरी जान की गाहक बन रही हो ! मैंने हजार बार तुम से कह दिया कि तुम मेरी आस छोड़ो, पर तुम अपने हठ से बाज़ नहीं आतीं और बेचारे गोकुलदास के सच्चे और अगाध प्रेम की उपेक्षा करती हो। हा, तुम सरीखी निर्लज्ज स्त्री मैंने नहीं देखी !"

इतना कह कर घनश्याम तेजी के साथ ऊपर चढ़ गया और जब तक वह दिखलाई देता रहा, अम्बालिका कुचली हुई नागिन की तरह लाल लाल आंखों से उसकी तरफ देखती रही।

इसके बाद ज्योंही वह पीछे फिरी कि उस ने अपने सामने ही गोकुलदास को खड़े हुए देखा और यह देख कर भीतर ही भीतर वह बहुत ही लज्जित हुई।

यद्यपि अम्बालिका ऐसे कुअवसर पर गोकुलदास को देख कर मन ही मन बहुत ही लज्जित हुई और कुछ कांप भी उठी थी, पर ज़ाहिरा में उसने अपने मन के भाव को तनिक भी प्रगट न होने दिया और हंस कर कहा,-

"अहा, आप भी............ !!!"

गोकुलदास,-(घृणा के साथ) "हां मैं भी तुम्हारे उस विश्रंभालाप के सुनने के लिये यहां पर पहुंच गया था, जो कि तुम अपने चहेते के साथ......... ।"

इतने ही में किसी के आने की आहट पा कर गोकुलदास चुप हो गये और अम्बालिका को अपने साथ आने का इशारा कर के वे सीढ़ियां उतर कर एक बरामदे में पहुंचे, जहां पर उस समय कोई न था।

निदान, उस बरामदे में पहुंच कर गोकुलदास ने अम्बालिका के साथ क्या २ बातें कीं, या ऊपर जाने पर घनश्याम की क्या दशा हुई, इन बातों को हम पीछे लिखेंगे; क्योंकि यहां पर हम पहिले अम्बालिका, गोकुलदास और घनश्याम का कुछ थोड़ा सा परिचय दे कर तब आगे बढ़ना चाहते हैं।

यह अंबालिका सूरत के स्वर्गीय सेठ छेदालाल की एक मात्र कन्या है और पिता के मरने पर अब उनके कड़ोरों की दौलत की मालिक हुई है। जिस समय छेदालाल मरे थे, उस समय अम्बालिका सोलह बरस की थी और क्वारी भी थी, पर अब वह उन्नीस बरस की है पर अभी तक बिन ब्याही है।

अपने पिता की अगाध सम्पत्ति पाकर वह पूरी स्वाधीना बन गई और अहमदाबाद के सुप्रसिद्ध धनिक श्रेष्ठ सेठ गोकुलदास के स्वर्गीय और सच्चे प्रेम की उपेक्षा करके घनश्याम पर मरने लगी थी। यद्यपि उसके स्वर्गीय पिता सेठ छेदालाल ने उसकी सगाई सेठ गोकुलदास के ही साथ पक्की की थी, पर पिता के मरते ही वह परम स्वतन्त्र बन बैठी और गोकुलदास के प्रेम का अनादर करके घनश्याम पर न्योछावर हो गई। यद्यपि घनश्याम रनछोर लाल की कन्या पर आसक्त था और उसने अपने भरसक अम्बालिका को इस हठ से बाज़ आने के लिये बहुत कुछ ऊंच नीच समझाया था, पर वह ऐसी दीवानी हो रही थी कि अपने हठ से न हटती थी। यद्यपि वह उन्नीस बरस की पूर्ण युवती हो चुकी थी और कुछ स्थूलांगी भी होगई थी, पर सुंदरता में, हजारों सुंदरी स्त्रियों में, एक ही थी।

यह तो हुई अम्बालिका की कथा, अब गोकुलदास का हाल सुनिये,-

इनकी अवस्था लगभग तीस बरस के थी, और पहिली स्त्री के मर जाने पर स्वर्गीय सेठ छेदालाल ने इनके साथ अपनी लड़की अम्बालिका की शादी पक्की की थी; किन्तु जब वे मर गये और अम्बालिका स्वाधीना होकर घनश्याम को तंग करने लगी तो गोकुलदास अपने कड़ोरों की स्टेट को मुनीम गुमाश्तों के भरोसे पर छोड़ कर सूरत से बम्बई चले आये; और तब से, अर्थात् तीन बरस से ये बेचारे अम्बालिका की नकदरी कर रहे और उसके स्टेट की भी सम्हाल कर रहे हैं, पर वह हठीली इनकी कुछ सुनती ही नहीं। तो, सेठ गोकुलदास सूरत के विख्यात धनी होकर एक स्त्री की-स्वाधीना स्त्री की इतनी खुशामद क्यों कर रहे हैं? इसी लिये कि वे उस (अम्बालिका) पर आसक्त हो रहे हैं और सिवा उसके वे उर्वशी, रम्भा, मेनका, आदि स्वर्ग की अप्सराओं की भी चाह नहीं रखते।

अब घनश्याम का हाल सुनिए—

यह वही प्रसिद्ध चित्रकार है, जिसके सिद्ध हस्त की सविशेष सहायता पाकर आज दिन स्वर्गीय राजा रविवर्म्मा अमर हो रहे हैं और उनके सुन्दर चित्र संसार के समस्त चित्रकारों के गर्व को खर्ब करते हुए घर घर व्याप्त हो रहे हैं। यद्यपि घनश्याम न तो कड़ोरपती ही था और न लखपती ही, पर फिर भी वह निरा कंगाल भी न था। वह चित्र विद्या में बहुत ही निपुण था और अपनी उसी अलौकिक विद्या के कारण अमीरों की तरह बेफिक्री के साथ रहता था। इसकी द्वारकादास के साथ लड़कपन से मैत्री थी, इसी कारण वह द्वारकादास के साथ कभी कभी रनछोर लाल के यहां भी आया जाया करता था। योंहीं होते होते ललिता के साथ उसका प्रेम होगया, जो (प्रेम) ऐसा अगाध था कि जिसे अम्बालिका की कड़ोरों की दौलत भी नहीं तोड़ सकी थी।

बात यह है कि अम्बालिका घनश्याम पर मरने लगी थी और उसने अपनी सारी सम्पत्ति घनश्याम के चरणों पर भेंट कर देनी चाही थी; पर सच्चे प्रेमी घनश्याम ने उस पर या उसकी असार संपत्ति पर थूका भी नहीं और ललिता के प्रेम में अपने तईं दृढ़ रक्खा।

भगवान् कुसुमायुध की भी विचित्र लीला है कि अंबालिका तो घनश्याम पर मर रही है, पर वह उसे बिल्कुल नहीं चाहता; और गोकुलदास अंबालिका पर जान दिये देते हैं, पर वह उनकी तरफ देखती भी नहीं। इधर ललिता और घनश्याम, जो एक दूसरे के सच्चे प्रेमी हो रहे हैं, वहां उस प्रेम में भी बड़ी बड़ी बाधायें उपस्थित हो रही हैं, जिनमें सब से बढ़ कर तो इस समय इस नौलखे हार ही का प्रपंच एक ऐसा खड़ा हो गया है कि देखें, इसका परिणाम क्या होता है!

अस्तु, तो अब हम अपने उपन्यास के सिलसिले को वहां से शुरू करते हैं, जहां से घनश्याम और अंबालिका का संग छूटा था और वह गोकुलदास के साथ बरामदे में आ पहुंची थी।

बरामदे में आ और इधर उधर देख कर गोकुलदास ने कहा,—"श्रीमती! जो बात असंभव है, उसके लिये आप इतना हठ क्यों कर रही हैं?"

अंबालिका,—(त्योरी बदल कर) "आपकी इस बेढंगी बात का मतलब क्या है?"

गोकुलदास,—"मतलब तो आप मेरी बातों का भली भांति समझ चुकी होंगी, पर जब जान बूझ कर आप अजान बन रही हैं तो मैं आप से यह बात स्पष्ट कह देना उचित समझता हूं कि, जब घनश्याम ललिता पर आसक्त है और आप के प्रेम की वह कुछ भी पर्वा नहीं करता तो ऐसी अवस्था में आपका उसे तंग करना अनुचित ही नहीं, बरन लोक लज्जा और सभ्यता के भी विरुद्ध है। मैंने

अपनी आंखों से यह स्पष्ट देखा और कानों से भी साफ सुना कि आप जिस उमंग के साथ उसके पीछे दौड़ी थीं और जिस चाव के साथ आप ने उसके साथ बातें करनी शुरू की थीं, उस मर्द बच्चे ने उसी तरह की उपेक्षा और घृणा के साथ आपका अनादर करके अपने निर्मल हृदय के शुद्ध भावों का परिचय आपको दिया था; इतने पर जो आप...... ।"

अम्बालिका,-(क्रोध से) "ठहरिये, ठहरिये,-मैं आप से लोकलज्जा या सभ्यता की शिक्षा नहीं लिया चाहती और न आपका कोई उपदेश ही सुना चाहती हूं। आप से मैंने......... ।"

गोकुलदास,-(जल्दी से) "किंतु, सुनिये-वह तो आपको चाहता ही नहीं !"

अम्बालिका,-"तो इससे क्या हुआ ? मैं तो उसे जी जान से चाहती हूं न !"

गोकुलदास,-"लेकिन वह तो......... ।"

अम्बालिका,-"आज नहीं तो कल, झख मारेगा और चाहेगा।"

गोकुलदास,-"किंतु वह रनछोरदास की सुशीला कन्या को छोड़ कर आप जैसी मुखरा को शायद ही कभी चाहे।"

अम्बालिका,-(तेवर बदल कर) "बस, महाशय! अब आप अपनी ज़बान में लगाम लगाइये, क्योंकि आप को मुझे 'मुखरा' आदि कहने का कोई अधिकार नहीं है।"

गोकुलदास,-"किंतु, क्यों श्रीमती मैं किस बात में अयोग्य हूं, जो आप मेरे सच्चे और अगाध प्रेम का यों अनादर कर रही हैं ?"

अम्बालिका,-"यह मैं स्वीकार करती हूं कि आपका प्रेम अथाह है, परंतु मेरा मन ही जब कि मेरे वश में नहीं है तो फिर मैं करूं तो क्या करूं !"

गोकुलदास,-"यह ठीक है, किंतु उस अमाने मन को मनाना चाहिये।"

अम्बालिका,-किंतु ऐसा करने की मैं कोई आवश्यकता नहीं समझती, क्योंकि यह निश्चय है कि अभिमानी सेठ रनछोरदास उस दरिद्र घनश्याम के साथ अपनी लड़की का व्याह कभी न करेंगे। ऐसी अवस्था में, अन्त में, यही होगा कि मेरे अपार धन और रूप पर घनश्याम को एक न एक दिन तर्स खानी ही पड़ेगी।"

गोकुलदास,-"हां, निस्संदेह तुम्हारा हृदय वज्र से भी कठोर है।"

अंबालिका,-(मुस्कुरा कर) "यह बात आप ने सचमुच, बिल्कुल सच्ची ही कही, क्योंकि यदि मेरा जी इतना कड़ा न होता तो मैं आप जैसे हजारों आदमियों के प्रेम की उपेक्षा क्यों कर सकती। महाशय! केवल आप ही नहीं, वरन अब तक हजारों आदमियों ने मेरे अतुल धन और रूप पर अपना प्रभुत्व जमाने के लिये मुझ से विवाह करने की इच्छा प्रगट की थी, पर मैंने आप ही की तरह उन सभों को भी कोरा जवाब दे दिया। बस, इन सारी बातों का निचोड़ यही है कि मैं उस अलबेले चित्रकार पर मरती हूं और मेरे रूप, धन, यौवन और मन का मालिक वही है।"

गोकुलदास,-"लेकिन वह इन चीज़ों को बिल्कुल नहीं चाहता।"

अंबालिका,-"उस का चाहना न चाहना कोई चीज़ नहीं है।

गोकुलदास,-किंतु यह तुम निश्चय जानो कि वह ललिता के अतिरिक्त तुम से कभी व्याह न करेगा।'

अंबालिका,-"यदि ऐसा होना होता तो रनछोर लाल उसके पीछे हाथ धो कर न पड़ जाते !"

गोकुलदास,- (आश्चर्य से) "तुम्हारी इस बात का क्या अर्थ है ?"

अंबालिका,-"इसका अर्थ मैं आपके आगे प्रगट करना नहीं चाहती, हां, यदि आप सूक्ष्म दृष्टि से देखेंगे तो मेरी उस बात का मर्म अनायास समझ जायंगे। अच्छा, एक बात मैं आप से पूछ सकती हूं ?"

गोकुलदास,-"तुम मुझ से एक नहीं, हजार बात पूछ सकती हो।"

अंबालिका,-अच्छा, तो यह बतइये कि ललिता के व्याह के लिये सैकड़ों से बराबर बात चीत आया करती है, पर रनछोर लाल सभों को टका सा कोरा जवाब क्यों दे दिया करते हैं?"

गोकुलदास,-"इसका मुख्य भेद तो वे ही जानें, पर हां, इतना मैं अवश्य कह सकता हूं कि वे मुझ से ललिता के साथ व्याह कर लेने के लिये बराबर आग्रह कर रहे हैं और मैं उन्हें बराबर नाहीं करता आता हूं।"

अंबालिका,-"तो बस, बात बन गई?"

गोकुलदास,-क्या बन गई?"

अंबालिका,-"यही कि आप तो ललिता के साथ व्याह करलें और घनश्याम के साथ मैं।"

गोकुल दास, "बस, यही एक अनहोनी बात है"।

अम्बालिका,-"तो, बस, आप की बातें पूरी हुई न! अब मैं जा सकती हूं?"

गोकुल दास,-"केवल एक बात मैं आप से और कहा चाहता हूं, उसे सुन कर आप चली जायं।"

यों कह कर उन्होंने अपने जेब में से एक टुकड़ा कागज का निकाला और उसे अम्बालिका के हाथ में दे कर कहा,-"यह मैं नहीं जान सका कि यहां भीड़ में यह कागज मेरे हाथ में कौन दे गया।"

अम्बालिका ने उस कागज को पढ़ कर गोकुलदास के हाथ में दे दिया और लापर्वाही के साथ कहा,-

"मुझे तो इस लिखावट की कुछ भी पर्वा नहीं है, पर देखती हूं कि बेचारे घनश्याम को षड्यंत्र रचने वाले दुष्ट पीस डालना चाहते हैं।"

उस कागज के टुकड़े पर कई टेढ़ी मेढ़ी पंक्तियां पेंसिल से लिखी हुई थीं, जिन्हें अपने रसिक पाठकों के मन बहलाव के लिये यहां पर लिख कर तब हम आगे बढ़ेंगे।

वह लिखावट यह थी,-"गोकुलदास! तुम जिस स्त्री को चाहते हो, वह स्त्री घनश्याम पर मरती है; अतएव घनश्याम तुम्हारे प्रेममार्ग में कण्टक है; ऐसी अवस्था में इस समय क्या तुम अपने प्रणय के प्रतिद्वन्द्वी से अपना बदला नहीं ले सकते! वह बदला यों लिया जा सकता है कि सेठ यमुनादास का नौलखा हार जो चोरी गया है, उसे घनश्याम ने चुरा कर अपने कोट के पाकेट में रख लिया है। यदि इस अवसर पर तुम चाहो तो वह हार घनश्याम के जेब से बरामद करके उसे तुम हजारों भले आदमियों के सामने भरपूर मिट्टी कर सकते हो और ऐसा करने से तुम्हारे प्रणय का मार्ग भी सदा के लिए निष्कंटक हो जायगा।"

गोकुलदास ने उस पत्र को पुनः अंबालिका के हाथ में दिया और बड़े प्रशांतभाव से कहा,-

"सुनो बीबी अंबालिका, यदि मैं चाहता तो इस पत्र के पातेही घनश्याम के पाकेट की तलाशी लेलेता, पर न तो मुझे इस गुमनाम पत्र पर विश्वास ही होता है, और न मैं ऐसा नीच ही हूं कि एक भले आदमी की इज्ज़त में इतने लोगों के सामने बट्टा लगाऊं। यद्यपि घनश्याम मेरे प्रेममार्ग में कंटक अवश्य है, पर फिर भी वह बेचारा इस विषय में बिलकुल बे कसूर है; क्योंकि वह तुम को जरा भी नहीं चाहता। हां, तुम उसे अवश्य चाहती हो इस लिए यह संभव है कि उस की इस बेइज्जती से तुम्हारे सुकुमार या कठोर हृदय में बड़ी कड़ी चोट पहुंचेगी! अतएव यह भेद मैंने तुम पर प्रगट कर दिया और यह कागज भी तुम्हीं को देदिया है कि तुम यदि चाहो तो यह कागज घनश्याम को दे दो और इस भेद को भी उस पर प्रगट कर के उसे सावधान कर दो"।

सदाशय, गोकुलदास की इस महानुभावता को देख कर हठीली अंबालिका बहुत ही

चकित और लज्जित हुई और उसने जोश में आकर यों कह डाला कि,-

"सेठ गोकुलदास जी! आपकी इस लोकातीत गुण गरिमा ने इस समय मेरे हृदय के सारे गर्व को खर्व कर डाला; अतएव आज-इस समय-मैं आप से इस बात की प्रतिज्ञा करती हूं कि यदि अन्त तक घोरातिघोर उद्योग और यत्न करने पर भी मैं घनश्याम को न पा सकी तो मेरा तन, मन और धन एक दिन आप ही का होगा।"

बेचारे गोकुल दास को इन शब्दों के सुनने की आशा स्वप्न में भी न थी, अतएव वे अंबालिका की बातें सुन कर फड़क उठे और बोले,- "तो बीबी अंबालिका मैं भी इस बात की शपथ पूर्वक प्रतिज्ञा करता हूं कि तुम्हारी ही तरह मैं भी अन्त तक बड़े सब्र के साथ उस समय की प्रतीक्षा करूंगा, जब कि तुम्हें अपनी हृदयेश्वरी बनाने का हक़ मुझे प्राप्त होगा।"

अंबालिका,-"अच्छी बात है; किन्तु आपने इस यन्त्र की बात मुझ पर पहिले ही क्यों न प्रगट कर दी, और क्यों व्यर्थ आधे घंटे की देर करदी! मैं समझती हूं कि इतनी देर में घनश्याम के भाग्य में जो कुछ लिखा होगा, वह हो गया होगा।"

गोकुलदास,-"बेशक, देर बहुत हो गई, जिसका मुझे खुद पछतावा है; परन्तु नहीं, अभी भी समय है; क्यों कि मैं बराबर उसी तरफ देख रहा हूं कि अभी तक यमुनादास, रनछोरलाल या घनश्याम ऊपर से नीचे नहीं आये हैं और ऊपर उन तीनों के अतिरिक्त और चौथा व्यक्ति कोई नहीं है; अतएव यदि वास्तव में घनश्याम के पाकेट से वह हार बरामद भी हुआ होगा, तो वहां पर उस बात का जानने वाला चौथा व्यक्ति है कौन? और यदि वहां पर कोई कार्रवाई न की गई हो और रनछोरलाल यमुनादास हजारों भले आदमियों के बीच में ही उसकी प्रतिष्ठा भङ्ग करना चाहते हों तो तुम उसे बहुत आसानी से इस रहस्य से आगाह कर सकती हो और वह बेचारा बे इज्जती से बच सकता है। तुम सच जानो, अम्बालिका! कि मुझे घनश्याम से कोई राग-द्वेष नहीं है, पर इतना मैं केवल तुम्हारी प्रसन्नता ही के लिये कर रहा हूं कि जिसमें किसी तरह भी तो तुम्हारे संकीर्ण हृदय में स्थान पाऊं!!!"

इस बात का अम्बालिका ने कुछ भी जवाब न दिया और गोकुलदास की ओर एक बेर तिरछी नजरों से देख कर वह तेजी के साथ उस तरफ लपकी, जिधर ऊपर जाने के लिये सीढ़ियां बनी हुई थीं।

निदान, अम्बालिका तेजी के साथ ऊपर चढ़ गई और उसे ऊपर जाते द्वारकादास ने दूर से देख लिया, पर ललिता न देख सकी, क्यों कि उस तरफ़ उसकी पीठ थी।

अब यहां पर हम इस कहानी के सिलसिले को फिर बदल देना और वहां से प्रारंभ करना चाहते हैं, जहां से द्वारकादास और ललिता की बातों का सिलसिला टूटा था।

ललिता ने बड़ी घबराहट के साथ द्वारकादास से कहा,-"भैया! यह तो बड़ा भयानक षड़यन्त्र जान पड़ता है!"

द्वारकादास,-"वास्तव में बात ऐसी ही है।"

ललिता,-"भैया! क्या सचमुच यह बिल्कुल नकली हार है!!!"

द्वारकादास,-"तुम निश्चय जानो कि इस में एक भी असली हीरा नहीं है, क्यों कि मैं जवाहिरात के परखने में बिल्कुल अन्धा ही नहीं हूं।"

ललिता,-"हाय, यह कैसी भयङ्कर जूआ चोरी है!"

द्वारकादास,-"बल्कि इसे तो सीनाजोरी कहना चाहिये।"

ललिता,-"भैया, तुम्हारी बातें सुन सुन कर तो मेरे सारे शरीर का खून पानी हुआ जाता हैं! क्या तुम इस बात का भेद मुझे बतला सकते हो कि ऐसे षड़यन्त्र या प्रपञ्च रचने का मतलब क्या है?"

द्वारकादास,-"मतलब तो बिल्कुल साफ है!"

ललिता,-"क्यों कर?"

द्वारकादास,-"यों कि, जो दुष्ट इस भयानक षडयन्त्र को रच रहा है उसका सारा मतलब यही है कि घनश्याम इस कदर मिट्टी हो जाय कि फिर वह कभी जीते जी सभ्य समाज में मुंह दिखलाने योग्य न रहे"।

ललिता,-"तब तो ऐसा जान पड़ता है कि घनश्याम का कोई न कोई गुप्त शत्रु अवश्य है और उसी ने असली हार चुराकर उसकी नकल घनश्याम के पाकेट में डाल दी है!"

द्वारकादास,-"निस्संदेह यही बात हुई है।"

ललिता,-"किंतु वह नीच चोर कौन है, इसे तुम ने कुछ समझा?"

द्वारकादास,-"नहीं, अभी तक इस मामले की तह तक मैं नहीं पहुंच सका हूं। अच्छा, ललिता! यह तो बताओ कि तुम अंबालिका नाम की किसी स्थूलांगी युवती को पहिचानती हो?"

ललिता,-"पहचानती तो नहीं, पर इतना मैं ने सुना है कि वह घनश्याम पर लट्टू हो रही है।"

द्वारकादास,-"आज, अभी, थोड़ी देर पहिले, जिस सुंदरी और स्थूलांगी युवती ने तुम्हारी ओर आप ही आप मुख़ातिब होकर यों कहा था कि 'ऐसा एक हार मैं भी बनवाना चाहती हूं' उसे तुम पहचानती हो?"

ललिता,-"नहीं; तो क्या सूरत के स्वर्गीय सेठ छेदा लाल की कारी लड़की अंबालिका वही है?"

द्वारकादास,-"हां, वही अंबालिका है।"

ललिता,-"तो क्या उसी निगोड़ी ने अपने प्रेम का बदला न पाकर घनश्याम से यों बदला लेना चाहा है और वही नीचाशया चोट्टी उस हार के चुराने वाली है?"

द्वारकादास,-"किंतु, ललिता! यह बात मेरे मन में नहीं समाती कि जो अंबालिका घनश्याम पर अपनी जान निछावर किये बैठी है, वही अपने प्रणयी की इतने भले आदमियों के बीच इस तरह बेइज्जती करेगी! वरन, उस का तो जहां तक बस चलेगा वहां तक वह घनश्याम की भलाई ही करेगी।"

ललिता,-"तो क्या यह काम उस अहमदाबादी गोकुलदास का है, जो अंबालिका पर मरा मिटता है और अपने प्रतिद्वन्द्वी घनश्याम को मिट्टी में मिलाना चाहता है! क्योंकि यदि इस तरह घनश्याम सभ्य समाज में बेइज्जत किया जायगा तो फिर धनवती अंबालिका उसके साथ ब्याह करने का साहस कभी न करेगी; और ऐसा होने से मानो गोकुलदास का कंटक दूर हुआ!!!"

द्वारकादास,-"नहीं, ललिता! यह बात भी नहीं है। यदि तुम महानुभाव गोकुलदास के शील स्वभाव को जानती होतीं तो ऐसा दोष उन्हें कभी भूल कर भी न लगातीं। सच पूछो तो सदाशय गोकुलदास सभ्यता, सुजनता और महानुभावता की प्रतिमूर्त्ति हैं; अतएव यह कभी संभव नहीं कि उन्होंने अपने प्रणय मार्ग के प्रतिद्वंद्वी को अपमानित करने के लिये ऐसे घृणित और नीच मार्ग का अवलंबन किया होगा!"

ललिता,-"तो, तो, तो क्या ... ..."

इतना कहते कहते एकाएक वह रुक गई, और

उसके मन के भाव को समझ कर द्वारकादास ने कहा,–"भला, तुम यह जानती हो कि सैकड़ों धनिकों के आग्रह की उपेक्षा करके मौसा जी तुम्हारा ब्याह किस के साथ करना चाहते हैं?"

ललिता,–(घबराकर) "नहीं, यह तो मुझे नहीं मालूम !"

द्वारकादास,—"मौसा जी उसी सदाशय गोकुलदास के साथ तुम्हारा ब्याह करना चाहते हैं, किन्तु गोकुलदास इस बात को स्वीकार नहीं करते ।"

ललिता,—(चकित हो कर) "यह आज तुमने एक नई और गुप्त बात सुनाई !"

द्वारकादास,–"बेशक, यह बहुत ही छिपी हुई बात है, जिसे तुम्हारी बूआ जी भी नहीं जानतीं ।"

ललिता,–"तो इस बात के कहने से तुम्हारा असली मतलब क्या है ?"

द्वारकादास,–"यही कि यदि घनश्याम सभ्य-समाज में मुंह दिखलाने योग्य न रहेगा तो तुम सहज ही में गोकुलदास के साथ ब्याह करना स्वीकार कर लोगी ऐसी अवस्था में फिर तुम्हारी बूआ जी भी इस संबंध में बाधा न दे सकेंगी।"

ललिता,–"तो–तो–क्या, यह निन्दित काम मेरे पूज्य पिता जी का हो सकता है !!!"

द्वारकादास,—"अब तुम ठीक ठिकाने पर आ पहुंची हो; परन्तु ललिता! अभी तुम्हें विना कुछ जाने समझे अपने पूज्य पिता जी पर किसी तरह का संदेह न करना चाहिए। यद्यपि मेरा ऐसा संदेह उन पर कई बातों से हो रहा है, पर तुम से घनश्याम के छुड़ाने ही के लिए वे ऐसा नीच कर्म करेंगे, यह बात अभी मेरे मन में नहीं धँसती । अस्तु, घनश्याम के लिए तुम रत्ती भर भी चिन्ता न करो, क्योंकि मैं अपना सर्वस्व होम कर भी उसे निष्कलंक साबित करूंगा; और यह बात भी तुम निश्चय जानो कि इस षड्यन्त्र की बात अब मुझ से छिपी न रह सकेगी । अच्छा, ठहरो; मैं अभी आता हूं ।"

यों कह और ललिता को वहीं छोड़ कर द्वारकादास एक ओर जिधर भीड़ भाड़ थी, उसी ओर चले गये और ललिता वहीं पर उदासी के साथ टहलने लगी ।

———

वंशी-वादन ।

[लेखक–पं० किशोरी लाल गोस्वामी]

वर बसंत बानक विशद,
वृन्दा विपिन विराज ।
बनिता विबुध विनोद सों,
बिलसत बन-बन आज ॥
रुचिर रम्य आराम चहुं,
रति पति-रचना-सार ।
रसिकराज ऋतुराज रचि,
राजत रूप अपार ॥
शीतल श्रमहारी सुखद,
सरस सुगंध समीर ।
परसत परम पुनीत पुनि,
हरै हिए की पीर ॥
जुगुति जोरि जुग पानि बहु,
जतननि जलज-पराग ।
जमुना-जल-जलकन-सहित,
हितकरि वितरत भाग ॥
कहुं कलिन्द कुलनंदिनी,
कल कल-नाद विभोर ।
कमल-उपायन कर लिये,
भेंटत कूल अँकोर ॥ ५ ॥
खिले कमल-बन-जाल-महं,
मधुकर मत्त मनोज ।
रस-पराग-अनुराग-रमि,
फंसे निसा करि चोज ॥
पै, जे पहिले से मुंदे,
रहते कुमुद के कोस ।
परसि चंद्रिका खिलत ही,

निकसे चाखन ओस ॥
कोटिन कला प्रवीन, कल,
कौतुक कियो करोर।
कुटिल कलाधर कौमुदी,
मांहि दियो छिति बोर ॥
चमक चंद्रिका की चहूं,
चमचमात चख चौंध।
चटक चाव चित चाह चुभि,
चतुर चकोरन सौंध ॥
चित्र लिखी सी बनि गई,
छबि छिति-छोरन लागि।
रसना रस नाहिन अहो,
नयना नयना पागि ॥ १० ॥
कुसुमाकर कुसुमाकरनि
करनि कलाधर धीर।
धीर समीर सराहि हंसि
खिलीं 'कली' अलि-भीर ॥
बिचरति चोखी 'चातकी'
'चातक' लिये चलाक।
चहु 'चकोर' चंचित चतुर
चटक चन्द्रिका छाक ॥
चटक चैत की 'चांदनी'
चहु दिसि चलक चलाइ।
है, संजोगिन सुखद बहु
दुखद बियोगिन दाइ ॥
कल कल करति 'कपोत' सों
कुटिल 'कपोती' कोपि।
'स्यामा' सरसानी फिरै
छलनि 'छबीली' छोपि ॥
'लाल' लड़ें ते लुरि लड़त
करत कलोलैं 'कीर'।
नैन तरेरै 'तीतरी'
हरै भीतरी पीर ॥ १५ ॥
मंजु 'मराली' मुदित मन
मनसिज मौज मनाइ।
मिलति मानिनी मंजु छवि
मन 'मराल' सों लाइ ॥

करत 'कलापी' आपुहीं
कल-कंठनि कल नाद।
"पिया-पिया" की टेर सों
रचै 'पपीहा' बाद ॥
कलित-कंठ कूजत कुटिल
'कोकिल' कलानिधान।
देत संजोगिन प्रान पुनि
बिरहिन उर खर बान ॥
'काम' कुसुमधनु कानलों
ऐंचि जनावत सान।
करत केलि 'करि-कामिनी'
'करिवर निकर' महान ॥
वह छबि, वह रुचि, वह छटा,
वह रस, वह आनन्द।
"सूर" क्रूरमति ने कियो
आवत ही अति मंद ॥ २० ॥

पै, स्वभाव-सुषमा बहुरि
आई धरि नव वेश।
'प्रकृति-सती' ने विश्व को
सज्जित कियो विशेष ॥
'चकवा-चकई'-जुग मिले
खिले कमल-बन-जाल।
रस छाके बांके 'मधुप'
निकरे प्रातःकाल ॥
कली-कली रस लेन कों
चले भले आनन्द।
गुनगुनात इत उत फिरैं
कौतुक करैं अमन्द ॥
'कुसुमाकर' आकर कुसुम
खिलीं 'कली-कुल-कोटि'।
रस चाखत करि चाह 'अलि'
परसि 'परागन' लोटि ॥
कुसुम-रंग 'केसर' सरस
रुचै सुधा-रस-पाग।
मानों मन अनुराग के
जागे भाग सुहाग ॥ २५ ॥

लोनी 'लता' 'लवंग' की
लहलहात चहुं ओर ।
'भौंर-भीर' भरमाति अति,
गुनगुनाति करि रोर ॥
'सरसों' सजो सुहावनी,
सुन्दर सुघर सुजान ।
'सुमन-समूह' सुगंध-सनि,
सरसे लसे समान ॥
तरुण 'तमाल' निहाल ह्वै,
लसे 'रसाल' विशाल ।
'सुमन-माल' अलि जाल लै,
युव-जन-भाल निहाल ॥
बौराने इत 'आम' अति
उत 'प्रनपूर' प्रियाल ।
'पनस' 'असन' के कौतुकनि,
'कोविदार' उर 'साल' ॥
'जामुन' जुगुति जनावतो
'अर्क' 'विल्व' के पास ।
'बैर' विरोध बढ़ाइ कै
धिकसे लसे 'पलास' ॥ ३० ॥
'बकुल' अकुल संकुल 'मुकुल'
कुत्सित अंब कदम्ब ।
'किंशुक' किं सुखकर-निकर,
'ताल' उताल प्रलंब ॥
कड़ई 'नीम' कहाइ कै,
अँसुवन धोवति गात ।
'कदली' कलो खिली भली
'फलो' फली इतरात ॥
'नारकेलि' की केलि लखि,
दरके हिए अनार ।
करि कौतुक 'कचनार' कछु
करत 'कुंद' सों रार ॥
लता 'माधवी' को भली,
मिली ललकि 'सहकार' ।
नाशन-शोक 'अशोक' ये
हँसे लसे 'रिझवार' ॥

'चंपा' चपल चलांक-चित
मधुप न आवत पास ।
करै नहीं 'गुलनार' सों
रार 'कुसुम'-रंग-रास ॥ ३५ ॥
कलित 'केतकी' कंटकनि,
गहरे गरब 'गुलाब' ।
महा मानिनी 'मालती'
'जाती' जात-सुभाव ॥
फूलीं फलीं 'लतानि' लगि
'तरुन' तरुन नव नेह ।
ये गरबीली 'गेहनी',
वे गुनखानी 'गेह' ॥
इत उत अठिलाने फिरत,
सने सुहात सुहाग ।
रुचिर राग रचि रम्य वपु,
पसरे पगन 'पराग' ॥
'मही' मनोहर रम्य 'वन',
नवल 'नदी' 'जल' स्वच्छ ।
'तरु' पल्लवित 'लता' ललित,
मुकुलित मुकुल प्रतच्छ ॥
'कली' खिलीं ह्वै 'फूल' पुनि,
लागीं देन 'पराग' ।
मगन 'मंजरी' पाइ फल,
जागे भाग सुहाग ॥ ४० ॥
'जलचर' 'थलचर' 'व्योमचर',
करत अतुल आमोद ।
'वनमृग' 'शाखामृग' बहुरि,
बन बन करत विनोद ॥
जल महं प्रतिबिम्बित विपिन,
मनहु लखत निज गात ।
'दिन मैं कहा दिखात पुनि,
छवि लखात किमि रात' ! ॥
यहो अलौकिक 'धाम' नव,
लोकातीत ललाम ।
"वृन्दावन" बैकुण्ठ से,
परे रम्य आराम ॥

गिरि गोबर्धन-ग्राम-गो,
गोपी-ग्वाल-निकेत।
धन्य धन्य जिनकों कहत,
शिव अज शेष-समेत॥
तरल, तरंगित, तत्वमय,
'तरणि-तनूजा-नीर'।
तरसत ताहि 'त्रिदेव' तकि,
तृन तोरत तपि 'तीर'॥ ४५॥
नीरद वपु, नारद सखा,
नारायण नारीश।
गुणातीत, त्रिदेव पर,
तापत्रय-हर ईश॥
शैव कहत 'शिव' जाहि पुनि,
वैदिक 'ब्रह्म' महान।
बौद्ध कहत जेहि 'बुद्ध' त्यों,
नास्तिक 'नैव' बखान॥
नैयायिक 'कर्ता' भनत,
'अर्हन्' जैन बताहि।
मीमांसक कहि 'कर्म' यों,
वाद विवाद कराहिं॥
ज्ञान-गिरा-गोतीत-गति,
गुण-गरिमा-गंभीर।
गाथागार, गरिष्ट, गुरु,
गीतागीत, अभीर॥
राधा-उर-आधार, भव,
बाधा हरत हमेस।
श्रुति-शारद-शिव-ब्रह्म जेहि,
पाइ सकत नहिं शेष॥ ५०॥
जो भक्तन-हित अवतरयो,
धरि धरि रूप अनेक।
"भक्तवश्यता" प्रगट करि,
सदा निबाही टेक॥
जेहि लहि पुनि कछु लहन की,
रहै न जिय में आस।
जो छिन लखे सुदूर अति,
लखे सदाहीं पास॥
सोई शोभा सदन शुभ,
मूर्ति, शील-शुचि-धाम।
सजे सहज शृंगार सब,
सानुकूल, सतकाम॥
मोर मुकुट, पट पीत कटि,
लकुट भाव अनुकूल।
वनमाला-लालित नवल,
काँधे सुरँग दुकूल॥
वंशीवट, यमुना-निकट,
चटक-वेश गोपाल।
वर वंशी वादन करत,
मोहे विश्व विशाल॥ ५५॥

—:०:—

प्रयाग में धर्मपरिषद।

(CONVENTION OF RELIGIONS.

[लेखक—प्रकाश]

मर्यादा के पाठकों को मालूम होगा कि इस वर्ष धर्म परिषद का द्वितीय अधिवेशन प्रयाग में ता० ६, १० और ११ जनवरी को हुआ था। इस सभा का प्रथम अधिवेशन कुछ विद्वान सज्जनों के प्रयत्न और उत्साह से कलकत्ता राजधानी में महाराज दरभंगा के सभापतित्व में हुआ था और यह सौभाग्य द्वितीय अधिवेशन को भी प्राप्त हुआ। पाश्चात्य देशों में तो इस प्रकार की विद्वत परिषद प्रायः हुआ करती हैं जिनमें देशदेशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर के विद्वान अपने अपने विषयों पर विचार करने के लिये सहस्रों मील की यात्रा करके एकत्र होते हैं। यूरप और अमेरिका के ज्ञान और विज्ञान में जो सदैव परिवर्तन हुआ करते हैं वह इस प्रकार की विराट सभाओं का ही फल है। ज्योतिष, रसायन, भूगोल, जीव शास्त्र, यन्त्रशास्त्र, इतिहास, औषधिशास्त्र, शुद्धगणित, जलशास्त्र, विमानविद्या आदि के पढ़े २ धुरन्धर पण्डित वर्षों की गं-

और गवेषणा, परीक्षा और मनन के पश्चात् अपने नवीन विचारों का निरूपण करके पूर्व पण्डितों की भ्रांतियों और गलतियों को प्रगट करते और अपनी त्रुटियों का संशोधन करते हैं और इस प्रकार सत्य का क्रमशः प्रकाश होता जाता है। दो तीन वर्ष हुए कि इंगलिस्तान में पादरियों की एक सभा हुई थी जिसमें देश देशान्तरों से हज़ारों पादरी आए थे और उन्होंने अपने धार्मिक सिद्धान्तों के पारस्परिक विरोधों और चर्च की नवीन आवश्यकताओं पर बड़े २ लेख पढ़े थे। अभी पिछले वर्ष ही जरमनी देश की बरलिन राजधानी में स्वतंत्र विचार वाले धर्मवादियों की और इटली में दार्शनिकों की विराट सभाएं हुई थीं।

यह समय का प्रभाव है कि हमारे देश में भी स्वतंत्र और उदार विचारों का अब संचार होने लगा है। कुछ समय पूर्व हिन्दू धर्म के भिन्न २ सम्प्रदायवादी एक दूसरे की बात सुनना भी नापसन्द करते थे भला शान्ति और सभ्यता पूर्वक बैठकर सत्य की जिज्ञासा से अन्वेषणा करना तो दूर था।

परंतु आज वह समय आ गया है कि जैनी, वैष्णव, शाक्त, शैव, सनातनी, आर्यसमाजी, अद्वैतवादी, द्वैतवादी, सिख, बौद्ध, नास्तिक और आस्तिक सब प्रकार के हिन्दू मतावलम्बी एक स्थान पर मिलकर अपने २ विचारों को प्रकट करते दिखाई पड़ते हैं। इतना ही नहीं किन्तु विदेशीय ईसाई मूसाई, मुसलमान आदि मजहबों से अपने सिद्धान्तों का मिलान करने को उद्यत हुए हैं। यह अवश्य है कि अधिकतर इसमें पाश्चात्य शिक्षा पाए हुए हिन्दू सम्मिलित होते हैं जिसका मुख्य कारण अंगरेजी भाषा है परंतु फिर भी ऐसी सभा का आरम्भ होना धार्मिक स्वतंत्रता का एक चिन्ह है। धार्मिक स्वतंत्रता राजनैतिक और सामाजिक स्वतंत्रता का प्रथम सोपान है। धार्मिक विचारों की पराधीनता के ही कारण पूर्वीय देश आज भी पुरानी अवस्था में पड़े हुए हैं या कुछ वर्षों पूर्व पड़े हुए थे। धार्मिक दुराग्रह, सङ्कीर्णता और हठता के कारण ही धर्म के नाम पर सहस्रों घोर हत्याएं हुईं, बड़े २ राजविप्लव हुए और सांप्रदायिक विरोध और वैमनस्य का बाज़ार गर्म रहा। यूरप का वर्तमान इतिहास इस बात का साक्षी है कि धार्मिक स्वतंत्रता के बिना राजनैतिक और आर्थिक वृद्धि का होना असंभव है। धार्मिक हठवाद समाज के मानसिक, उन्नति का बाधक है। राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय संगठन के लिये यह परमा आवश्यक है कि प्रत्येक मतावलंबी अपने प्रतिवादी के विचारों और सिद्धांतों को उसी उदारता से देखे जिस प्रकार वह अपने विचारों को देखता है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि आप शांति पूर्वक सत्यासत्य का निर्णय भी न करें या आप अपने मत का प्रचार न करें या धार्मिक आडम्बरों और भ्रांतियों से दूसरों को सचेत न करें। ऐसा न करने से अंध परंपरा और अंधविश्वास का संसार में राज्य रहेगा प्रत्येक मतावलंबी अपने आंशिक सत्य को भी सर्वांश सत्य मानता रहेगा। चूंकि ऐसी सभाएं धार्मिक स्वतंत्रता और उदारता की द्योतक हैं इस लिये हम इन्हें देश और धर्म दोनों के लिये शुभ समझते हैं। ऐसी परिषद भिन्न भिन्न धर्मवादियों में परस्पर प्रीति, प्रतिष्ठा और सहनशीलता को उत्पन्न कर सकती हैं। मज़हबी तास्सुब और नफ़रत के दूर करने के लिए यह भी आवश्यक है कि लोगों की पारस्परिक भ्रांतियां दूर की जावें और विशेष कर भारतवर्ष ऐसे देश में तो इस की विशेष आवश्यकता है जहां राष्ट्र-निर्माण में धर्मवादियों के आपस का द्वेष और कलह क़दम क़दम पर देखने और सुनने में आता है और जहां खाना पीना, चलना फिरना, सोना जागना तक धर्म के नाम से होता है। इस लिये भिन्न भिन्न मतों के

सिद्धांतों के मिलान करने और एक दूसरे को यथार्थ रूप से समझने की अत्यन्त आवश्यक्ता है।

किन्तु यह मेल मिलाप ऐतिहासिक सभ्यता का नाश करके न होना चाहिए। जहां समान सिद्धांतों का निरूपण करना आवश्यक है वहां असमान सिद्धांतों का दिग्दर्शन कराना भी उतना ही आवश्यक है 'हम भी अच्छे और तुम भी अच्छे' की पालिसी, सत्यता से विमुख करने वाली है। यह ज़रूर है कि इस प्रकार के व्याख्यानदाताओं तथा लेखकों को आज कल बड़ी प्रशंसा होती है परंतु ऐसा करने से संप्रदायों और मतों के मंतव्यों और सिद्धांतों की असलियत और उनकी कमज़ोरियों का पता नहीं लगता। कौन मत किन बातों को नहीं मानता और उस के मुख्य आचार्य या संस्थापक ने किन २ युक्तियों से उनका खंडन किया है यह प्रकट करना भी सांप्रदायिक व्यक्ति विशेषत्व को व्यक्त करने के लिये बहुत ज़रूरी है। हमारी समझ में जिस प्रकार एक दूसरे पर झूठे आक्षेप करना और दोषों को ढूंढ २ कर निकालना हानिकारक और अनुचित है उसी प्रकार सब की वाह वाह लेने के लिये सब के सिद्धांतों को सत्य और सनातन सिद्ध करने का ठेका लेना भी सत्य और न्याय के गले पर छुरी चलाना है। प्रत्येक मतावलंबी को अपने मत के संस्थापक के विचारों, सिद्धांतों और धार्मिक पुस्तकों के आधार पर ही अपने धर्म या सम्प्रदाय की व्याख्या करनी चाहिये। यदि वह किसी को बुरी लगे तो लगे। सत्य के प्रगट करने में राजीनामा करना अधर्म है। हमारे विचार में जो ऐसा करते हैं वह सत्य के महत्व को नहीं समझते। अब हम इस वर्ष के अधिवेशन की कार्यवाही पर कुछ विचार प्रकट करते हैं। आशा है कि सभा के संचालक इस पर विशेष ध्यान देंगे।

प्रथम,-सभापति की वक्तृता समयोचित और इस पद के योग्य न थी। इस से तो प्रथम अधिवेशन की वक्तृता कहीं उत्तम थी। दो वर्ष लगातार एक ही सज्जन का सभापति होना ही शायद वक्तृता की निःसारता का कारण था। सभापति महाशय ने यह सोचने का कष्ट भी नहीं उठाया कि इतनी बड़ी विद्वद मंडली के सभापति का क्या कर्तव्य है; उसकी वक्तृता में क्या होना चाहिए और क्या न होना चाहिए। हमारे विचार में ऐसी विराट परिषद् के सभापति को किसी विशेष मत या सम्प्रदाय का पक्षपाती होकर सभापति का आसन न ग्रहण करना चाहिए। उस को तो धार्मिक जगत के इतिहास, कनवेन्शन के मंतव्य या उद्देश्य, ऐसी विराट सभा को ज़रूरत, वर्तमान धार्मिक विचारों में परिवर्तन, इत्यादि विषयों पर अपने विचार प्रगट करना चाहिए। सभापति महाशय अपनी वक्तृता यदि सनातन धर्म महामंडल के प्रतिनिधि बन कर पढ़ते तो अनुचित न होता। हम ने जहां तक उक्त सभा के मंतव्यों और नियमों को जाना है उस से तो यही प्रकट होता है कि कनवेन्शन के सभापति प्रत्येक मत के अनुयायी हो सकते हैं और यदि हर सभापति ने अपनी वक्तृता में अपने मत का राग आलापा तो फिर सभापति की वक्तृता भी सभापति के मत का प्रतिपादक करने वाला एक लेख हो जायगा और सभापति के भाषण की विशेषता लोप हो जायगी।

दूसरी बात समय की अनियमता थी। इस में कनवेन्शन कमेटी, लेखक और सभापति तीनों का ही दोष था। लेखों की जांच के लिये दो तीन विद्वानों की एक कमेटी होना चाहिये। यह कमेटी उन्हीं लेखों को पढ़ने की आज्ञा दे जो लेख विद्वता और विचार पूर्ण हों और नियत विषय के तत्व को ठीक ठीक व्यक्त करते हों। कमेटी को अपना नियत किया हुआ विषय समय और विषय-विभाग सब लेखकों के पास भेजना चाहिये और लेखकों को भी चाहिये कि

वह इतना बड़ा लेख न लिखें जो नियत समय के अन्दर न पढ़ा जा सके। उदाहरणार्थ यदि विषय मुक्ति का हो तो विषय-विभाग इस प्रकार होना चाहिये (१) मुक्ति लेखक के मत में क्या है (२) मुक्ति के साधन क्या हैं (३) जीव का बंधन कब और क्यों हुआ (४) उनके मत के समर्थन में यदि कोई युक्तियां हों तो वह दें (५) अपने आचार्यों और धार्मिक ग्रंथों को अपने लेख की पुष्टि में उद्धृत करो (६) तुम्हारी मुक्ति में क्या विशेषता है और दूसरों से किन बातों में मुक्ति विषयक विरोध है (७) मुक्त आत्मा की क्या अवस्था होती है।

यदि इस प्रकार का विषय विभाग भेज दिया जावेगा तो फिर लेखक महाशय न तो मनमानी बातें लिख कर श्रोताओं और पाठकों का समय ही नष्ट करेंगे और एक दार्शनिक या धार्मिक विषय पर एक उत्तम पुस्तक बन जाएगी जिस को पढ़ कर सत्यानुरागी सच और झूठ का निर्णय कर सकेंगे। कुछ लेख इतनी शीघ्रता से पढ़े गये जो श्रोताओं को साफ २ सुनाई भी नहीं दिए। सभापति महाशय सभापति के कार्य को यथोचित रीति से करने का ज़रा भी कष्ट न उठाते मालूम होते थे यदि वह विचार और बुद्धि से काम लेते तो कई लेख जो इतने नीचे स्वर से पढ़े जाते थे न पढ़े जाते और कई लेख जो बिल्कुल निःसार थे शीघ्र समाप्त हो जाते।

तीसरी बात जो बहुत ही विचित्र देखने में आई वह प्रार्थनाओं की भरमार थी। प्रार्थनाओं की इतनी अधिक मात्रा ज़रूरत से कहीं ज़िआदह थी। क्या प्रार्थना को ज़बरदस्ती लोगों के कानों में ठूसना प्रार्थना से अश्रद्धा पैदा कराना नहीं है? ईश्वर प्रार्थना कोई रस्म रवाज की चीज़ नहीं है। समय अवस्था और लोगों की श्रद्धा की कुछ भी परवा न कर सब मत वालों की प्रसन्नता और मनसमझौती के लिये थोड़ी २ देर में उन से प्रार्थना कराना प्रार्थना की गम्भीरता और उच्चता को नष्ट कर के उस के हलके पन का परिचय देता था। कनवेंशन के संचालकों का भाव तो अच्छा था। क्योंकि इस से उनकी धार्मिक उदारता का पता लगता है क्योंकि इस तरह ईसाई, मुसलमान, और हिंदू सब को अपनी अपनी इच्छानुसार प्रार्थना करने का मौक़ा मिलता है परंतु इसमें कई दोष हैं उदाहरणार्थ जिस समय पादरी साहब मसीही प्रार्थना करने खड़े हुए तो कई मुसल्मानों और हिंदुओं को केवल लोक रीति निभाने के लिये पादरी साहब का साथ देना पड़ा क्योंकि यदि वह बैठे ही रहते तो शायद मसीह मतावलम्बियों को कुछ हार्दिक कष्ट होता और वह अपने खुदा की तौहीन समझते। यद्यपि ऐसा करना उन के अंतःकरण के विरुद्ध था तदानुसार किसी हिन्दू देवी देवता की प्रार्थना में किसी ईसाई या मुसलमान का शामिल होना शैतान से बहकाया जाना है। जब यह दशा है तो प्रार्थना की इस प्रकार मिट्टी खराब करने के क्या मानी हैं। प्रथम तो मठ में कोई उसे गिरजा, मसजिद या मंदिर समझ कर प्रार्थना उपासना करने नहीं जाता क्योंकि वह तो एक विद्या-संबंधी सभा के ढंग पर होती है जिसमें नास्तिक, आस्तिक, जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णव, ईसाई, मूसाई सब मत और समुदायों के अनुयायी अपने २ सिद्धान्तों को प्रगट करने को एकत्र होते हैं। यदि ऐसे मौके पर प्रार्थना का किया जानाही प्रार्थनावादियों को मान्य ही हो तो क्या कोई ऐसी एक प्रार्थना नहीं हो सकती जो सब को माननीय हो और जिसमें सब सम्मिलित हो सकें यदि सब आस्तिकों की एक प्रार्थना भी नहीं हो सकती तो फिर धर्म या मजहब किस मर्ज की दवा है जो इतनी बड़ी सार्वजनिक बात में भी एक नहीं हो सकते।

कनवेन्शन में पढ़े गये लेखों पर एक दृष्टि ।

प्रत्येक मतवादी का इस बात पर जोर था कि मेरा मत सर्वोत्तम और सत्य है मेरा मत मनुष्य की प्रत्येक आवश्यकता को पूरा करने वाला है। मेरा मत सार्वभौमिक कल्याण, सार्वभौमिक शान्ति और सार्वभौमिक भ्रातृ भाव का प्रचारक है। इसलाम, ईसाई और यहूदी आदि सब मुख्य मतों के प्रतिनिधियों की यह सिद्ध करने की कोशिश थी कि हमारा मत उन्नतिशील है समय और अवस्था के अनुसार उन्नति करने वाला है। ईसाईयों के खुदावन्द मसीह, मुसलमानों के हज़रत महम्मद, पारसियों के महात्मा जरदस्त और बौद्धों के भगवान बुद्ध को तौ सब ने सुना ही था परन्तु इस बीसवीं शताब्दी के कुछ नये हजरतों और नवीन भगवानों का हाल भी सुनने में आया। स्वामी दयानन्द जी के ओर इशारा करते हुये एक जोशीले महाशय ने कहा कि जब तक सूर्य का प्रकाश नहीं हुआ था उस समय तक टिमटिमाते हुये चिरागों की आवश्यकता थी परन्तु अब जब सूर्य (स्वामी जी) का प्रकाश हो गया तो फिर चिरागों (दूसरे मत) का क्या काम। शब्द चाहे दूसरे हों परन्तु उनका मतलब यही था। हम इस दावे की यथार्थता और इसके धृष्टता का निर्णय विचारशील पाठकों पर छोड़ते हैं।

प्रायः लेखक अपने मत को वैज्ञानिक और बुद्धि युक्त सिद्ध करने का प्रयत्न भी करते और बीसवीं शताब्दी के सामाजिक, और दार्शनिक विचारों और सिद्धांतों को अपनी धार्मिक पुस्तकों में किसी न किसी रूप में बतलाते थे। नवीन ज्ञान विज्ञान की शब्दावली में अपने प्राचीन धर्म पुस्तकों के शब्दों का अनुवाद करते थे। हरवर्ट स्पेंसर, डारविन मिल और हक्सले के लेखों और विचारों को वाजे लेखकों ने चुरा चुरा कर अपने सिद्धांत बना लिये था और उन्हीं की आड़ में अपने मत की उच्चता प्रगट करते थे परंतु कहते यह जाते थे कि ये विचार हमारी धर्मपुस्तकों के हैं।

इन सब मतवादियों के लेखों को श्रवण और मनन करने के पश्चात् हमारे अंदर जो प्रश्न और शंकाएं उत्पन्न हुईं उन्हें हम पाठकों के सन्मुख रखते हैं और आशा है कि विचारशील और विद्वान सज्जनगण इन पर ग़ौर करेंगे। हमारा यह कथन नहीं है कि यह विचार सर्वमान्य हैं या इनमें भ्रांति नहीं हो सकती किन्तु हमारा कथन केवल इतना है कि कनवेनशन में पढ़े गये लेखों को सुनकर एक जिज्ञासू के अंदर क्या भाव उत्पन्न हो सकते हैं।

१–ईश्वर, जीव, प्रकृति, मुक्ति, बंध, पाप का कारण आदि विषयों पर मतवादियों में इतना विरोध क्यों है ? क्या इन कठिन और गूढ़ प्रश्नों की मीमांसा मनुष्यों की कल्पना का फल नहीं है ? क्या इनका पारस्परिक विरोध यह सिद्ध नहीं करता कि यह सब मतप्रवर्तकों और मतवादियों की विडम्बना मात्र हैं। इन पदार्थों का वास्तविक निश्चयात्मकज्ञान किसी को भी नहीं है। मनुष्य ही देश काल, अवस्था विद्या बुद्धि के अनुसार इनकी मीमांसा और व्याख्या करते रहते हैं।

२–आजकल के मतवादी अपने सिद्धान्तों को नवीन साइन्स के अनुसार बनाने का क्यों प्रयत्न करते हैं ? क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि शुद्ध ब्रह्मज्ञान की शक्ति दिन प्रतिदिन क्षय हो रही है। आसमानी किताबों और आर्ष ग्रन्थों, नवी और पैगम्बरों को विचारशील विद्वान मानने को तैयार नहीं हैं जब तक उनकी बतलाई हुई बातें बुद्धि तर्क और विज्ञान के अनुकूल न हों।

३-मत[वा]दियों की अपेक्षा शुद्ध वैज्ञानिक और दार्श[नि]क विद्वानों में सत्यानुराग, न्यायप्रियता, निष्[पक्ष]ता की अधिक मात्रा होती है। मतवादी ... ने हुए सिद्धांत की पुष्टि के लिये ... वाद करते हैं परंतु नवीन वैज्ञानिक चाहे वह नास्तिक हो और चाहे अज्ञेयतावादी हो, सत्य की खोज के लिये प्रयत्नवान होते हैं। नवीन विज्ञान और साइन्स आध्यात्मिक प्रश्नों के हल करने में जितना अधिक सहायता करता है मतवादियों की हठपूर्वक मानी हुई बातें उतना ही अधिक गण्डगोल मचाती हैं और लोगों को निश्चय पूर्वक किसी सिद्धांत तक पहुंचने नहीं देती। नवीन विज्ञान और साइन्स अपनी मानी हुई बातों को स्पष्ट क[र]ता चला जाता है और अब तक अज्ञातव्य पदार्थ के स्वीकार या अस्वीकार करने में आग्रह नहीं करता किन्तु मतवादी लोग किसी बात का स्वयम् यथार्थ ज्ञान न रखने पर भी स्वयम् सिद्ध बनने को तैयार रहते हैं। भूगर्भ विद्या, ज्योतिष, रसायनशास्त्र और जीवविद्या का एक शब्द भी न जानने पर भी सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय पर बाद विवाद करने को तैयार रहते हैं। ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव को इस प्रकार बयान करते हैं गोया ईश्वर से मुलाक़ात कर आए हैं। ईश्वर ने सृष्टि को कैसे बनाया, इसका उत्तर इतनी धृष्टता से देते हैं मानों परमात्मा ने इनसे सलाह लेकर सृष्टि बनाई हो। इनसे कोई पूछे कि मोक्ष क्या है तो कोई तो फ़ौरन ही कहेगा मोक्ष है ख़ुदा के सातवें आसमान पर जाना, और कोई कहेगा 'ब्रह्म का ब्रह्म हो जाना' और कोई कहेगा 'इच्छानुसार ब्रह्मांड की सैर करना'।

४-इसका क्या कारण है कि जिन्हों ने पुरानी मज़हबी किताबों या उनकी व्याख्याओं को पढ़ा है उस के अन्दर सार्वलौकिक शान्ति, सहनशीलता, और सब धर्मों की आनुषंगिक उपयोगिता इत्यादि विचार प्रायः नहीं ... जाते किन्तु वे लोग बड़े कट्टर और हठी होते ... और जो लोग वर्तमान समय की नवीन साहित्य इतिहास, साइन्स, समाज शास्त्र आदि को पढ़ते हैं उनका हृदय और बुद्धि इतने उदार क्यों हो जाते हैं। उनमें इतना हठ क्यों नहीं रहता? क्या इस से यह नतीजा नहीं निकलता कि पुराने ढंग की धार्मिक शिक्षा और आसमानी किताबों के स्थान में विद्यार्थियों को नवीन ढंग का ... चार शास्त्र, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति, विज्ञान आदि विषय पढ़ाये जावें और पुराने ढंग की धार्मिक शिक्षा जहां तक कम की जावे अच्छा है।

संसार।

[लेखक-श्यामबिहारी मिश्र और शुकदेवबिहारी मिश्र]

मेरो ... देखि जनि परौ जगत के फन्द।
आमें परे सुबुधि धिनसति है
होति ज्ञान गति मन्द।
भरमत मन विषयन महँ जस जस
बढ़त जात दुख दन्द॥
तजि मिथ्या जंजाल सकल यह
करु करतव्य सुछन्द।

वीर बालक।

(आख्यायिका)

[लेखक-आरा-निवासी पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा]

लड़कपन ही से मुझे मेले तमाशे में जाने का बड़ा शौक़ है। जब सुनता हूं कि आज भगवती जी का शृङ्गार है, जभी कोई आकर कह देता है कि आज बाबा युगेश्वर नाथ में भजन-मण्डली आई है तभी आनंद से हृदय नृत्य करने लगता है। जब पिता

...ब "घूरन" नाम कर के मेरे पिता का एक ...ड़ा विश्वासी नौकर रहता था उसी के साथ २ मेले में जाया करता था किन्तु पिता की मृत्यु होने पर जब सारे सुखों ने मुझ से बिदाई लेली तब वह मेरा बाल्य सहचर घूरन भी मेरे यहां का रहना छोड़ कर चला गया। तब से जहां ...हीं मेले ठेले में जाना होता है अकेले ही ...ता हूं।

...में जिसको जिस वस्तु की उत्कट चाह होती ...परमात्मा उसे अवश्य उस वस्तु को देता है। मुझे मेले तमाशे का शौक़ है इस लिये परमात्मा समय २ मेलों का अवसर उपस्थित कर ही देता है। माघ मेले से होकर जब से घर आया तब से किसी मेले ठेले में जाने का अवसर नहीं मिला था। इसी से चित्त नहीं लगता था। धीरे धीरे फागुन आया, फागुन के महीने में हमारे यहां शिवरात्रि के दिन बड़ा भारी मेला लगता है। फागुन का महीना ... हो शिवरात्रि के आने की आशा से मैं आनंद में डूब गया। किंतु जब मन में किसी वस्तु की आकांक्षा उत्पन्न होती है तो प्रतीक्षा करने का जी नहीं करता। एक २ घड़ी कल्प के समान बीतने लगती है। फागुन चढ़ते ही शिवरात्रि देखने की व्यग्रता मेरे सिर पर सवार हो गई। एक २ दिन ब्रह्मा के दिन सा बीतने लगा।

अस्तु; राम २ करते फाल्गुण कृष्ण पक्ष के तेरह दिन मैंने बिताये। आज शिवरात्रि है। सबेरे ही से शिव जी के भक्तगण स्नान सन्ध्या ...र शिव जी की पूजा अर्च्चा करने में लगे। महादेव के मन्दिर में भोरेही से हज़ारों आदमियों की भीड़ नज़र आने लगी। सूर्योदय होते २ महादेव जी के आस पास बड़ा भारी-बाज़ार बैठ गया। भीड़ भाड़ के मारे रास्ता चलना मुश्किल हो गया। मैं भी पूजा अर्च्चा से निश्चिंत हो मेले में चला। उस दिन मैंने व्रत किया था इससे खाना पीना तो था नहीं, सोचा, घर बैठे से मेले में घूमना फिरना कहीं अच्छा है।

मुझे मेले में जाता देख मेरी प्राण... मेरे आगे आई और कहने लगी, "... तुम्हारा भी हद लड़कों का सा स्वभाव है। ... मेले में गये बिना कौन हर्ज हुआ ... घर पर कोई दूसरा मर्द ... काम पड़ेगा तो किस से ज... कहूंगी?"

उसकी उस बात की ओर मैंने कान नहीं दिया। इतने में मेरे बड़े भैया की एक छोटी सी बालिका मेरी-पत्नी की गोद में आ बैठी। उसने पूछा, "चाची! चाचा कहां जाते हैं?"

बालिका पहले मुझ से बड़ा स्नेह रखती थी किंतु अब की बार जब से मेरी स्त्री अपने मैके से आई है तबसे अपनी चाची ही के सङ्ग ल...ी फिरती है। श्रीमती ने कहा, "मेला देखने ...ते जाते हैं बच्ची! तुमभी-जाओगी क्या?"

बालिका ने मानों हाथों चन्द्रमा पाया। वह झट से मेरे पास चली आई और मेरा कपड़ा पकड़ कर खड़ी-हो गई। मैंने सोचा लड़कों को मेले ठेले में ले जाना निरापद नहीं है अतएव उसे फुसलाने के लिये कहा, "नहीं बेटी! मैं मेले में नहीं जाता, एक दूसरे काम के लिये जाता हूं।"

किन्तु बालिका मानी नहीं। वह ज़ोर २ से रोने लगी। उसका रोना देख मैंने उसे फुसलाने के लिये मिठाई उस के हाथ में दी तौ भी वह चुप नहीं हुई। अंततः मेरी स्त्री ने उस से कहा, "अच्छा बेटी! जाने दो, तुम मेरे साथ चलना"। बालिका अपनी चाची की उस कोरी आशा पर विश्वास कर मन मार कर चुप होरही। मैं भी अपना पल्ला छुटा हुआ देख झट पट घर के बाहर चला आया और मेले के स्थान की ओर चला। वहां पहुंच कर देखा सड़क के दोनों ओर नाना प्रकार की वस्तुओं की दूकानें सजी हैं और बीच में टिड्डी दल की भांति मनुष्यों की आवाजाही लगी है। बीच २ में कहीं रामायण गायी जा रही है, कहीं सितार और तबला बज रहा है, कहीं ... दोस्त बैठ कर गप शप कर

ने हर एक व बदन से एक २ बूंद पसीने की ले ली और उसकी वैज्ञानिक परीक्षा से अच्छी तरह पता च[ल] गया कि, कौन किस प्रकार से ग्रस्त था [illegible] कार मुंह की राल से भी यह [illegible]

एक गर्भवती स्त्री नित्य [illegible] ति एक हबशी का चित्र देखा करती थी [illegible] उसके मन में यह चित्र अंकित हो गया। इस अंकित मन का ऐसा प्रभाव पड़ा कि स्त्री के गर्भ से हबशी बालक उत्पन्न हुआ यद्यपि स्त्री एक अंगरेज विदुषी थी।

अमेरिका के एक प्रसिद्ध विद्वान ने जिन्होंने अपने जीवन का बड़ा भाग अमेरिका की देशी २ प्रयोगशाला में व्यतीत किया है कहते हैं। 'मनही शरीर का प्राकृतिक संरक्षक है। हर एक विचार की प्रवृत्ति अपने छाप जमाने की ओर है। रोग, क्रोध, काम और दूसरे दुष्कर्मों का भयङ्कर मानसिक चित्र आत्मा में कोढ़ और क्षयादि बीमारियों को उत्पन्न करते हैं जो आत्मा से फिर शरीर में अंकित होते हैं। यह तो सब ही जानते और मानते हैं कि अचानक कहे हुए आह्लाद या शोक के समाचार कुछ ही देर बाद कभी २ दिल को ही निर्बल नहीं करते वरन मृत्यु वा विक्षिप्तता के कारण हो जाते हैं। विज्ञानवेत्ताओं ने पता लगाया है कि एक अपराधी और एक साधारण पुरुष के पसीने में बहुत भिन्नता होती है बहुधा दोषी के मन की दशा को जानने के लिये उसके पसीने की वैज्ञानिक परीक्षा की जाती है (Selenic) सैलेनिक ऐसिड का संसर्ग होने से उसमें गुलाबी रंगत आ जाती है।

भय से सहस्रों मनुष्यों की मृत्यु हो जाती है। यह मन ही की दुर्बलता है जो भय को भूत बना देती है। विशेष मानसिक उद्वेग से कई [बा]र उलटी (कै) हुई हैं। अत्यन्त क्रोध और भय के कारण लोगों को कमलभौएं हो गई हैं। बहुधा देखा गया है कि शोक और आश्चर्य से एकाएक बाल सुफेद हो गये हैं। पाठक जानते होंगे कि विख्यात ताजमहल बेगम की मृत्यु के कारण सम्राट शाहजहां के बाल यकवयक सफेद हो गये थे। यथार्थ में मलिन विचार और विपरीत मानसिक दशाएं रोग आदि दुःखों और विकारों को उत्पन्न करती हैं। यह कहना अयुक्त नहीं होगा कि मनसागर के मलीन परिमाणों से ही दुष्कर्मों की उत्पत्ति और लालन पालन होता है।

सात्विक विचारों का भी जिन का केन्द्र स्थान मन ही है हमारे शरीर पर बड़ा प्रभाव पड़ता है प्रेम, उपकार, सुभाषण, भ्रातित्व आदि के सम्बंध से यदि शरीर आत्मा से गंठित हो तो शरीर आत्मा के स्वकीय आनन्द का भोग करेगा। एक वैद्य एक रोगी का निरीक्षण करता है जी तोड़ सेवा करता है अनुपान और चर्य्या सब ठीक है पर रोगी को आराम नहीं होता वैद्य अपना सा मुंह लिये चिकित्सा छोड़ देता है। दूसरा एक नामी वैद्य ठीक पहिली दवा का प्रयोग करता है चर्य्या और अनुपान पूर्व ही की प्रकार हो[ता है] रोगी चंगा होता जाता है। आश्चर्य्य! एक ही दवा के दो असर! [illegible] यह है कि दूसरा वैद्य सच जानिये अपने सा[थ] आरोग्यता की स्पिरिट को लाता है। मिष्ठभाष[ण] और ख्याति का मंत्र रोगी के कान में फूंकता है उसका यश रोगी को आशा देता है। यश आशा को रोगी के पर्य्यङ्क पर छोड़ आता है। आशा रोगी के मन को अपने गोद में कोमल थपकी देती है और उसके ऊपर एक मनोहर और बलिष्ट प्रभाव डालती है। वैद्य का चिकित्सा रोगी शरीर के मन पर अपना सुप्रभाव डालती है इस प्रकार मन के द्वारा शरीर की अनुपम चिकित्सा होती है।

प्रायः हम बीमारों को अपने मित्रों, स्नेहियों से बड़े छोह से कहते हुये सुनते हैं 'जब तब आप रहते हैं मेरे दुःख दर्द सब दूर हो जाते हैं'। यह एक कहने की बात नहीं है। इसका अभिप्राय बड़ा गूढ़ है। मित्र की आशायुक्त प्रेममय मूर्ति रोगी के मन में आशा और साहस का

सञ्चार करती है। उसका सुन्दर सुभाषण उसकी उत्तेजक वाणी यातना को भुलाती है। उसकी सुखप्रदायिनी मधुर मुसक्यान रोगी की निराशा को हटा उत्साह और प्रेम को स्थान देती है। सत्य है मित्र का पवित्र धार्मिक जीवन उसमें वैराग्य उत्पन्न कर उसको प्रभु पद में लवलीन कर देता है।

हमारे शरीर में एक प्रकार का रस है जो हमारे शरीर में जीवन का सञ्चार कर रखता है। प्रेम, परोपकार, भ्रातृभाव आदि मन के द्वारा शरीर में एक विद्युत लहर उत्पन्न कर इस रस को प्रवाह में जोश पैदा करते हैं। शरीर के सब स्रोत खुल जाते हैं और सब ओर सब आत्मिक शक्तियां उसमें छलछलाती उमड़ आती हैं।

दूसरी ओर काम, क्रोध आदि कुवासनायें हमारे शरीर में एक ऐसे निकृष्ट भाव को उत्तेजित करती हैं, जिसको शारीरिक तूफान कहा जाय तो अनुचित न होगा। यह तूफान [illegible] शरीर के जीवनोत्तेजक और स्वास्थ्यवर्धक [illegible] को कडुआ और गंदा बना उसको क्रमशः विषमय कर देता है और यह दशा यदि बढ़ती गई तो वह एक विशेष रोग का रूप धारण कर लेता है। यही रोग अकालमृत्यु का कारण समझिये। इस विष को धोने के लिये प्रेम, उपकार आदि की लहर ही एक मात्र औषधि है। जिस तरह पर्वतों में बहती हुई धारा में खेती के समय बाढ़ लगाने से ऊपर के सब खेतों में पानी पहुंचता है और खेत हरे भरे हो जाते हैं इसी तरह मन के स्रोत को दुष्ट विचार के समय रोकने से शरीर बलिष्ट और कीर्तिवान हो जाता है वही बाढ़ पावस ऋतु में स्वतः टूट जाती है द्वार खुल जाता है धारा बड़े वेग से बहती हुई दुर्गंधयुक्त पदार्थों को बहाती हुई प्राकृतिक दृश्य को द्विगुणित करती है। इसी तरह पवित्र विचारों से शुद्ध और कुवासनाओं से स्तम्भित मन का स्रोत स्वतः खुल कर सब निकृष्ट विचारों को दूर कर शरीर को बलिष्ट और कान्तिवान बनाते हैं। हमारे पूज्य उपनिषदाकार हमको यही उपदेश देते हैं।

मन को शुद्ध कीजिये सुख [illegible] आपके द्वार पर हाथ जोड़े खड़े रहेंगे। [illegible]

हिन्दू शरीर।

[लेखक—श्रीयुत व्रजकिशोर जी कपूर]

हिन्दू जाति शरीर अंग शुचि चारि सुहाये।
प्रथम अंग मुख सुभग ब्राह्मण सहज सुभाये॥
ज्ञान ज्योति भण्डार शौचमय पावनकारी।
निज विचार मस्तिष्क शक्ति से जाति सम्हारी॥

(२)

द्वितिय प्रचण्ड प्रताप अंग भुज क्षत्रिय सोहै।
जिसके सम्मुख समर भूमि पर कालहु मोहै॥
रक्षहिं चारिहु वर्ण जाति सेवा चित धारैं।
हनि अन्याइन भूमि शक्ति भरि धर्म्म प्रचारैं॥

(३)

तृतिय अंग शुचि उदर वैश्य धन बैभव पूरे।
जिनके शुचि व्यवहार विराजति जग बिच रूरे॥
शिल्प कृषी व्यापार विविध उद्योग कराई।
गोरक्षा करि दान पुण्य जग करत कमाई॥

(४)

राजत अंग चतुर्थ भार सब तन का धारे।
चरण चरणतल सदृश शूद्र अरु अन्त्यज प्यारे॥
सहैं क्लेश अपमान धर्म नित अपना पालैं।
महामलिन अरु घृणित कार्य जगहित करिडारैं॥

(५)

है शिर परम पुनीत किन्तु बिनु पद जंघाकर।
छुवत न कोई रुण्ड पड़ा बेकार भूमि पर॥
निश्चय सो अस्पृश्य ब्राह्मण कुल का जाया।
जिसने क्षत्रिय वैश्य शूद्र को नहिं अपनाया॥

(६)

कुल कलंक अनआर्य त्याज्य क्षत्रिय सों निश्चय।
[illegible] शूद्र के लिये समर करि प्राण न अर्पय॥

करै न सो [illegible]ल गर्व मान मर्यादा छोड़ै ।
पामरहीन अकच्छ देश से नाता तोड़ै ॥

(७)

हिन्दू नहिं [illegible]श्य वृथा ही जग में आया ।
[illegible] वास करि दुख उपजाया ॥
वृथा जगत में जियो [illegible]हा नहिं क्यों उपजतही ।
शूद्रन रक्षा हेत न दे जो निज धन मन ही ॥

(८)

सोहत इक से एक जाति विचि[illegible]वर्ण चतुष्टय ।
है सम्बन्ध अटूट जगत में इनका निश्चय ।
सेवा वृत्ति अनूप शूद्र सुख संपतिकारी ।
सहि २ क्लेश अपार वर्णत्रय करैं सुखारी ॥

(९)

ले चमार मृत खाल खैंचि पदत्रान बनावै ।
जीवित पशु की सदा करत रक्षा मन लावै ॥
पासी कोरी डोम आदि अन्त्यज हैं जेते ।
सेवा विविध प्रकार करैं हिन्दुन की तेते ॥

(१०)

भरा हाथ से मैल छुए उसको नहिं दूजा ।
धो पुनि जल से उसे करै फिरि उससे पूजा ॥
जब तक अन्त्यज करै मलिन अरु घृणित कमाई ।
स्वास्थ्य नियम से बंधे तभी तक छुए न जाई ॥

११

पर नहिं वे अस्पृश्य नहीं वे भिन्न कदापी ।
श्रेयस्कर व्यवहार किये मिलि जावें आपी ॥
समय २ पर कार्य्य पड़े हिंदू उनसे ही ।
मिलें मिलावें छुएं बसें उनके संग में ही ॥

१२

हिन्दुन हित वे सदा प्राण अपने को वारें ।
अनहिंदू जो कहै उसे दुर्वचन प्रहारें ॥
हिंदू देव उपास्य रीति हिंदू ही धारें ।
मुंडन छेदन व्याह प्रथा हिंदू अनुसारें ॥

१३

ऐसा सुखद समाज ताहि तन भिन्न बतावें ।
हठ धर्म्मी उससे भी बढ़ कर कौन कहावें ॥
जो अपना नहिं अंग कहो फिरि अपना क्या है ।
प्रभु से अंग ही दान प्रथम जग हमें मिला है ॥

१४

हिंदुन में हो फूट भेद आपस में धारें ।
पुनि कुछ हिंदुन छोड़ि विलग निज पंथ पसारें ॥
आये दिन निज उदर विधर्म्मी उन्हें पचावैं ।
इसही से यह चाल अनोखी आज चलावैं ॥

१५

जो है नहिं यह बात तो क्या अधिकार तुम्हारा ।
जाति पांति की बात जहां व्यवहार हमारा ॥
जहं पंडित शास्त्रज्ञ वेदपाठी कोउ बोले ।
तहं पर टांग अड़ाय व्यर्थ तुम पीठो ढोले ॥

१६

हा यह कैसी नींद कि कटते अंग हमारे ।
तो भी पड़े अचेत मोह निद्रा के मारे ॥
पैर न जो तन रहें चलेंगे कैसे भाई ।
पंगु बने सब कार्य्य हानि जग होत हंसाई ॥

१७

जो तलवे भू लगैं इसीसे इनको त्यागैं ।
तो पुनि दूसर अंग विवश हो भूपर लागैं ॥
जो उनको भी तजो उदर भुज शिर सब छूटैं ।
छूटे सकल शरीर इतर जन सर्वस लूटैं ॥

[illegible]

भाव पूर्ण यह गद्य करे इंगित यहि भांती ।
मलिन काज मसि शूद्रन को नहि करहु विजाति ।
तो फिरि क्षत्रिय वैश्य शूद्र ब्राह्मण समुदाई ।
विवश करे सो मलिन कार्य्य नहिं और उपाई ॥

१९

जाति २ में दौड़ मची जग परत दिखाई ।
एक २ से अग्र होन हित रारि मचाई ॥
पैर कटे क्या दशा तुम्हारी तनिक विचारो ।
सब से पीछे पड़े नेकु लज्जा चित धारो ॥

२०

शूद्र हमारा अंग अंग हम शूद्रन के हैं ।
छोटा बड़ा न कोय सभी सम रुदा के हैं ॥
पालें निज कर्तव्य सभी तुसहित सब ही के ।
अपनी अपनी बार बड़े सब ही सब ही के ॥

२१

धारो यही विचार प्रेम युत सब से बर्तो ।
भेद भाव को छोड़ सदा एकता प्रवर्तो ॥
हिंदू भाव पवित्र सदा हिरदै बिच लाओ ।
पावन ऋषि सन्तान आर्य जग बीच कहाओ ।

कर्त्तव्य कर्म्म।

[लेखक-पं० गङ्गा प्रसाद अग्निहोत्री]

जिस समय इस भारत कर्म-भूमि को महात्मा मनु, याज्ञवल्क्य, पाराशर, व्यास, वृहस्पति, शुक्र, बाल्मीकि, विदुर, और भगवान् श्रीकृष्ण आदि उदार चरित तथा ज्ञानवृद्ध तपोवृद्ध महामहिम पुरुष अपनी सत्ता से अलंकृत कर रहे थे उस समय उक्त महापुरुषों ने अपने अपने ग्रन्थों में यत्र तत्र वे सब बातें लिख रक्खी थीं जिन्हें उन लोगों ने चिरकाल के अनुभव और सत्समागम के प्रभाव से जाना था। उन वस्त्वर्थ पारदर्शी महापुरुष कृत ग्रन्थों में उन सब साधनों का सविस्तर यथा तथ्य वर्णन पाया जाता है जिनके अनुष्ठान द्वारा मनुष्य मात्र इस संसार में रहने तक उसे सुख शांति देने वाली वस्तुओं को प्राप्त कर चिरकाल पर्य्यंत उनका उपभोग लेने के लिये समर्थ हो सकता है। इतना ही नहीं किंतु इस संसार की यात्रा को समाप्त करने के पश्चात् भी मनुष्य को सुख शांति देने वाले सिद्धांत स्वरूप साधनों का उपदेश उक्त महार्षियोंके ग्रन्थों में पाया जाता है। इस बात को वर्त्तमान समय के सब देश के विद्वच्चक्र चूड़ामणि सज्जन जन मानते हैं।

हमारे देश के प्राचीन आचार्यों ने कर्तव्य कर्म्म की गुरुता, योग्यता और महिमा को इतना श्रेष्ठ माना है कि उन लोगों ने उसे धर्म के पर्य्याय पद पर स्थित कर दिया है। तात्पर्य उन लोगों के ग्रंथों में कर्तव्य कर्म्म प्रायः धर्म शब्द द्वारा व्यक्त किया हुआ पाया जाता है। वास्तव में कर्तव्य कर्म का माहात्म्य और गौरव ऐसाही है कि वह धर्म मानकर किया जाय।

आचार्यपुंगव शुक्र जी ने हजारों वर्ष के पूर्व अपनी पुस्तक में कर्तव्य कर्म के विषय में निम्न लिखित सिद्धांत लिख रक्खा है।

विना स्वधर्म्मान्न सुखं
स्वधर्मोहि परं तपः।
तपः स्वधर्म रूपंय
द्वर्द्धितं येन वै सदा॥

इसका भावार्थ यह है कि मनुष्य स्वकर्तव्य कर्म का पालन किये बिना किसी को सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। स्वधर्म का पालन ही परम तप है। सारांश, स्वधर्म और तप अभिन्न हैं, यही कारण है कि तप की सहायता से स्वधर्म की सदा वृद्धि होती रहा करती है।

उक्त पद्य में स्वधर्म और तप की अभिन्नता कही गई है। अतः यह उचित जान पड़ता है कि हमारे देश के आचार्यों ने तप की जो व्याख्या लिखी है वह भी यहां विवेकी पाठकों के विचारार्थ लिख दी जाय।

भगवान् वेदव्यास ने अपने विश्व विख्यात महाभारत के शांति पर्व में तप की व्याख्या इस प्रकार लिखी है।

अहिंसा सत्य वचनं
दान मिन्द्रिय निग्रहः।
एतेभ्योहि महाराज
तपो नान शनात् परम्॥

अर्थात् मनसा वाचा कर्मणा किसी को दुःख न देना, सत्य बोलना, दान देना, इंद्रिय सुखों के वश न होना, और निराहार रहना, इनसे बढ़ के अन्य तप नहीं है। सारांश उक्त सब बातें तप की अंग भूत हैं! इनमें से जो अंग परिपूर्ण नहीं रहता वही तप का अंग हीन हो जाता है।

ऊपर हम इस बात को लिख आये हैं कि तप करने से कर्त्तव्य कर्म की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। तप शब्द का अभिप्राय जान कर हमारे पाठक महोदयों को यह विदित ही हो चुका होगा कि कर्त्तव्य-कर्म्म-चिकीर्षु जन के लिये तप की अत्यन्त आवश्यकता है इतना ही नहीं किंतु अहिंसा, सत्य, दान, इन्द्रिय नि-

ग्रहादिलक्षणाक्रांत तप के बिना कभी कोई कर्त्तव्यकर्म्म पारगामी हो ही नहीं सकता । साथ ही हमारे [illegible] पाठकों को यह भी विदितही हो [illegible] स्वकर्त्तव्य कर्म्म किये कभी किसी को सुख न[illegible] मिल सकता । इस प्रतिपादन से हमारे विचार[illegible] पाठकों को यह बात सहजही में ज्ञात हो सकती है कि व्यक्ति विशेष, जाति विशेष व देश विशेष का अभ्युदय उस २ व्यक्ति-विशेष, जाति विशेष और देश विशेष की कर्त्तव्यकर्म्मपरायणता पर अवलंबित रहा करता है। हमारे यहां के रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों का सात्विक रीति से पठन पाठन करने से यह बात ज्ञात हो सकती है कि जब कभी जिस किसी ने अपने कर्त्तव्य कर्म्म का यथावत् पालन किया है तब उसे हठात् विभव प्राप्त हुआ है। इस के विपरीत जब जब लोगों ने अपने कर्त्तव्य से मुंह मोड़ा है तभी उन्हें पतित हो कर दीन हीन होना पड़ा है ।

इस संसार में जितने मनुष्य उत्पन्न होते हैं उतने सब नाना प्रकार के कर्त्तव्य कर्म स्वरूप सूत्र से ग्रथित रहा करते हैं। प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि वह अपने माता पिता विषयक, इष्ट, बंधु मित्र विषयक, स्त्री पुत्र विषयक, दास दासी विषयक, पास पड़ोसी विषयक, सेवक स्वामी विषयक, कृषि वाणिज्य विषयक, जाति देश विषयक आदि अनेकानेक अपने कर्त्तव्य कर्म्मों का यथातथ्य पालन करने के लिये सत्यता पूर्वक प्रयत्न करे । इसी बात को शब्दांतर में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि जो माता पिता, चाहे वह विभव संपन्न हों, चाहे साधारण अवस्था के हों, अपने पुत्रों का उचित रीति से पालन पोषण कर उन्हें यथोचित शिक्षा देने का समुचित प्रबंध करते हैं उनके पुत्र हृष्ट पुष्ट सुशिक्षित, एवं सुशील होकर अपने कुल की अधिक उन्नति कर सकते हैं। किन्तु जो लोग अपने विभव विस्तार के मोह से वा अज्ञानवश अपने पुत्र पौत्रों का अनुचित लालन पालन कर उन्हें शिक्षा देने की उपेक्षा करते हैं उन के पुत्र पौत्र विपुल धनराशि के उत्तराधिकारी होने पर भी अपने कर्त्तव्य कर्म्म का पालन न करने के कारण अपने बाप दादा की सब संपत्ति को खो कर भीख मांगने लग जाते हैं

संसार के घटना चक्र पर ज्यों ज्यों विचार करते जाइये त्यों त्यों इस बात का रहस्य अधिकाधिक ज्ञात होता जाता है कि जो संबंध कार्य कारण में पाया जाता है वही संबंध, प्रत्येक मनुष्य, जाति वा देश की उन्नति और उस मनुष्य, जाति वा देश के कर्त्तव्य में पाया जाता है। जैसे मृत्तिका के बिना कोई घर नहीं बना सकता ठीक वैसे ही कर्त्तव्यकर्म्मरत हुए बिना कोई जन यथार्थ सुखी नहीं हो सकता। इस कर्त्तव्य कर्म्म की गुरुता और उसके परिणाम की न्यूनाधिकता प्रत्येक मनुष्य के दायित्व के अनुसार न्यूनाधिक रहा करती है। जैसे एक कुटुंब में दो प्राणी हैं और दूसरे में पांच । इ[illegible] दोनों कुटुंबों के भरण पो[illegible] अगुआओं पर अवलंबित है । पहले कुटुंब[illegible] अगुआ यदि अपने कुटुंब विषयक कर्तव्य [illegible] का पालन नहीं करेगा तो उसकी अकर्मण्य[illegible] का फल उस के आश्रित केवल दो जनों को भ[illegible]गना पड़ेगा। किन्तु दूसरे कुटुंब का अगु[illegible] यदि अपना कर्त्तव्य कर्म्म नहीं करेगा तो उ[illegible] का परिणाम उसके आश्रित पांच जनों को भोगना पड़ेगा। तात्पर्य्य जितना अधिक दायित्व होता है उतनाही अधिक कर्त्तव्य कर्म्म के पालन से सुख और उसकी विमुखता से दुख हुआ करता है। जिस प्रकार बड़े भारी जहाज में छोटा सा छिद्र हो जाता है और उसकी उपेक्षा करने से वह उस जहाज को जलमग्न कर देता है ठीक उसी प्रकार चाहे कोई मनुष्य अतुल धन संपत्ति का स्वामी भलेही हो ! किंतु ज्यों ही वह अपने कर्त्तव्यकर्म्म पालन के किसी अंश में उ[illegible] [illegible] करने लगता है त्योंही उसके अधःपात का आरम्भ हो जाता है । इस प्रतिपादन से यह

बात सिद्ध होती है कि जिस कुटुम्ब में जिस गांव में, जिस जाति में जिस देश में स्वकर्त्तव्य कर्म्म जागरूक सज्जनों की संख्या जितनी अधिक पाई जाती है उतनी ही अधिक, उस कुटुम्ब, उस गांव, उस जाति और उस देश की उन्नति की मात्रा पाई जाती है। सुख, समृद्धि, उन्नति, उदय, उत्कर्ष आदि ऐसी चीजें हैं जो बिना स्वकर्त्तव्य कर्म्म का यथातथ्य पालन किये, न कभी किसी को प्राप्त हुई हैं और न कभी होंगी। कोरी बातों का जमाख़र्च करने से यदि कोई सिद्धार्थ हो सकता तो संसार में सभी लोग सुखी और उन्नत हो जाते। क्योंकि कोरी बातें करने में किसी को अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता।

भारतवर्ष को मटियामेट करने वाला कौरव पांडवों का विषम संग्राम होने के पूर्व इस भारतवर्ष में कर्तव्य कर्म के एक निष्ठ भक्तों की संख्या बहुत अधिक थी। उस युद्ध के पश्चात [illegible] ज्यों ज्यों घटती गई त्यों [illegible] इस देश के विभव विस्तार तथा उसके [illegible] उत्कर्ष की मात्रा भी घटती चली गई। [illegible]व्य कर्म की भक्ति के ह्रास के साथ साथ [illegible]त्र संगठन की बात भी इस देश के लोगों [illegible] दूर होगई। कर्तव्य कर्म की विमुखता और [illegible]रित्र संगठनकी शिथिलता के जो प्रकृति [illegible]सुलभ अनिष्ट परिणाम हुआ करते हैं उनका सोलहों आने आधिपत्य इस समूचे देश पर हो गया।

कर्तव्य कर्म की तत्वभूत योग्यता को जानने वाले तथा कर्तव्यकर्म के पूर्ण उपासक हमारे वर्तमान प्रभु अंगरेज़ों का जब से इस देश में आगमन हुआ है तब से उनके संसर्ग से इस देश के लोगों का ध्यान अपने पूर्वजों के कई उत्तमोत्तम तथा अत्यंत आवश्यक गुणों की ओर आकृष्ट होने लगा है। उन्हीं गुणों में से कर्तव्य कर्म की उपासना भी एक है। सौभाग्य का विषय है कि अब हमारे देश में भी कर्तव्य कर्म के आराधक लोगों का आविर्भाव होने लगा है। जिस दिन हमारे देश में कर्तव्य कर्म की उपासना करने वाले [illegible]कवन चरित सज्जनों की संख्या यथावत [illegible] दिन इस देश का कल्याण होने में देर नहीं लगेगी। यह बात कभी [illegible]भव नहीं हो सकती कि जिस काम को कर्तव्य कर्म के प्रेमी सज्जन प्रारम्भ करे वह परिपूर्ण न हो सके। क्यों कि कर्तव्य कर्म में कार्य को पूर्ण रूप से सिद्ध करने की सिद्धि कूट कूट कर भरी हुई रहा करती है। ऐसी अवस्था में इस समय हमें यही मानना पड़ता है कि हमारे देश के जितने मनुष्य मिल कर एक काम को प्रारम्भ करते हैं उतने सब उस कार्य की सिद्धि से संबंध रखने वाले अपने अपने कर्तव्य कर्म का यथावत पालन नहीं करते। उन में से दो एक सज्जन अपना तद्विषयक कर्तव्य कर्म करते हैं। इसका परिणाम इतना ही होता है कि उनकी वह व्यवस्था वा सभा कुछ दिन लों चलती रहती है। पर उसका अभिप्रेतार्थ सिद्ध नहीं हो सकता। जिस कार्य की सिद्धि कीजिये बीस सज्जनों के कर्तव्य कर्म के बल की आवश्यकता है वह केवल दो एक सज्जनों के कर्तव्य कर्म के बल से क्यों कर पूर्ण हो सकता है। अतः हमारे देश के प्रत्येक जन को अपने कर्तव्य कर्म की पूरी पूरी आराधना करना सीखना और करना चाहिये। जिन लोगों के हाथ में जितने बड़े काम हैं उतनी ही अधिक बड़ी उनकी कर्तव्य कर्म पटुता होनी चाहिये तभी देश का हित होगा।

एक समय इसी भारत में वह था जब इस देश के कर्म्मवीर लोग अपने जीवन के अल्पाति अल्प अंश को विद्या, विज्ञान, शौर्य्य, आर्यता और विभव की प्राप्ति किये बिना बिताना घोर पाप समझते थे। एक समय वर्त्तमान है कि लिये [illegible] लोगों का बड़ा भारी समूह अपने २ बलवान् नीच स्वार्थ के पाश में इस प्रकार जक[illegible]

हो रहा है कि उसे कर्त्तव्य कर्म्म की कुछ खबर ही नहीं है। लोक संग्रह की उसे अणुमात्र भी चिंता नहीं है। यहां लों हमने जो निवेदन किया है उससे ... को कर्त्तव्य कर्म्म की उपासना और उसके मीठे फलों का कुछ बोध तो अवश्य ही हो जायगा।

संसार की उन्नति और अवनति के बीज मूल कारणों को पूर्णतया जानने वाले महर्षि वेद व्यास ने सभा पर्व में नीचे लिखा हुआ पद्य लिखा है:-

अव्यापरः परार्थेषु नित्योद्योगः स्वकर्म्मसु ।
रक्षणं समुपात्ताना मेतद्वैभव लक्षणम् ॥

इसका भावार्थ यह है कि जिस किसी मनुष्य वा जाति वा देश को विभव प्राप्ति की इच्छा हो उसे उचित है कि वह दूसरे के धन की इच्छा कभी न करे। साथ ही अपने कर्तव्य कर्म में निरन्तर रत रहा करे। और अपने शरणागत लोगों की रक्षा किया करे। यह तीन बातें वैभव का आदि कारण है। हम भरोसा करते हैं कि हमारे विवेकी पाठकगण व्यास जी के उक्त पद्य पर विचार तथा तदनुसार अपना चरित संगठन करने के लिये उद्योग करेंगे। "तथाहि शीघ्रं भवतु"।

देशभक्त होरेशस ।

[लेखक-श्रीयुत पं० सत्यनारायण जी]

नृपति पोर सइना कलूज़ियम* पति रिसियाई ।
नौ देवन को सौंह खाइ, इमि कह्यो सुनाई ॥
"करत प्रतिज्ञा आज, 'टारकिन'† संतति भारी ।
...हिं झेलिहैं कष्ट अधिक अब और अगारी" ॥
नियत दिवस करि सभा हेत सबके आवन कौं ।
भेजे चर पूरब पच्छिम उत्तर दच्छिन कौं ॥
समर निमंत्रन चहुं दिसि दूतनि दियो जनाई ।
गढ़ो गाम पुर धाम २ अस भेरि बजाई ॥
"धिक २ तिहि टसकन कौं, जो घर ठिड़कत जाई ।
कलूज़ियम-नृप जबै रोम पै करतु चढ़ाई ॥
बोलेटरी पुरी सौं, जहं बल विभव विशाला ।
बन्यो पूर्व विख्यात दुर्ग दुर्गम विकराला ॥
धनद सरिस भूपति हित यच्छनि आपु बनावा ।
जाहि लखत उरपटल परत अति अटल प्रभावा ॥
पुपलोनियां नगर सौं, जाके चहुं दिसि धाई ।
सुभग समुंदर सुंदर सुठि कौं घनी सुहाई ॥
स्वच्छ भांति सौं जासु पहरुअन कौं नित दरसत ।
सरडिनिया‡ के शैलशिखिर हिमतमयनभ परसत॥
पीसा नगर हाटसौं, सब सुख संपति सानी ।
पच्छिम भुअ मधि-रत्नाकर को जो महारानी ॥
मेसींलिया जहाज़ रहत जहं लंगर डारे ।
सुवरन बरन बार वारे किंकर भरि भारे ॥
उन देशनि सौं, जहां बहति ... ।
द्राच्छा अन्न प्रसून संकुलित थल अपनावनि ॥
टोनाकर करटोना, जहं नभ चुम्बनकारी ।
लसति कोट कमनीय कंगूरनि कोट संवारी ॥
सुखद पैठमय धाम सुभग शोभा धामनि सौं ।
शस्य श्याम अभिराम मनोहर बहु ग्रामनि सौं ॥
जहां तहां एपीनाइन शिखिरस्थ घनेरे ।
गृद्धवास सम देवदारु मंडित बहु खेरे ॥
चलि तिनहूं सौं विपुल वीर रस रंग सवाये ।
पैदल दल के दल सवार बल बादल छाये ॥
दीरघ वृक्ष बलूत चारु निज फल टपकामें ।
तरुन तरुन श्यामायमान औसर सरितामें ॥
हृष्ट पुष्ट मग मिथुन सञ्चरत इत उत चितवत ।
चरतसिमिनियन गिरिनूतनतृनसुखदिनबितवत ॥

---

* कलूजियम—एक शहर का नाम है।

† टारकिन—टारक्विन सुपरबस, रोम का अन्तिम बादशाह था। रोम निवासियों ने इसके अत्याचार से दुःखित हो उसे लड़के बालों सहित राज्य से निकाल दिया था और प्रजातन्त्र राज्य स्थापित किया था। टारकिन वहनृपति पोरसइना की सहायता से लड़कर राज्य लेने को आया था किन्तु वीर होरेशस ने उन सबों को मार भगाया।

‡ मेडीटरेनियन सागर में एक द्वीप है।

बहति मनोहारि क्लेटमनस कमनीय कलितसरि।
गोप ग्वाल-गन परम पियारी जो सर्वोपरि ॥
बुल्सो नियनमहासर सब सों सुंदर भारो।
जल वतकन युत अहेरियन मन रंजनकारी ॥

हिन्दुओ, अपना घर संभालो ।

(८ फरवरी के "लीडर" में छपे हुए "टी" के लेख का मर्मानुवाद)

हर एक मनुष्य को, जो भारतवर्षीय राजनीति का अनुशीलन करता रहा है, उसे यह बात भली भांति विदित है कि ज़रासी छेड़छाड़ से भी हिन्दू मुसल्मानों के प्रश्न पर विवाद खड़ा हो जाता है। इस समय इस विवाद के फिर छिड़ने के विशेष कर दो कारण हैं। पहिला सर विलियम वेडर्वर्न और हिज़ हाइनेस आग़ा खां क[illegible] म संधि कराने का उद्योग है और दूसरा वह वाद विवाद है जो माननीय पं० [म]दनमोहन मालवीय के वाइसराय की कौंसिल [मे]ं कौंसिल रेग्यूलेशन्स के उपस्थित करने पर हुआ था। जब २ यह प्रश्न छेड़ा जाता है दोनों ओर से वही पुरानो दलीलें दी जाती हैं। न तो कोई नई बात कही जाती है न कोई नई युक्ति क्योंकि कदाचित् इस विषय पर कुछ नया कहने को नहीं है। हिन्दुओं की ओर से कहा जाता है कि हिंदुओं की संख्या बहुत अधिक है, धन और शिक्षा में वे मुसलमानों से बढ़े चढ़े हैं मुसल्मान स्वयं राजनीति और राष्ट्रीय जीवन से अलग रहे, अन्त में सन् १९०६ में उन्होंने अपने एकान्तवास से बाहर आना पसंद किया। मुसल्मानों की ओर से कहा जाता है कि यद्यपि मुसल्मान संख्या में कम हैं पर उनकी कम संख्या भी राजनैतिक महत्व की है जिससे विशेष रक्षा और अधिकार का उन को स्वत्व है, और कौंसिल में प्रतिनिधि भेजने के विषय में हिन्दुओं ने उनके साथ न्याय-संगत बर्ताव नहीं किया और सब अधिकार को अपने ही हाथ में लेना चाहा तथा केवल इस में ही नहीं बरन और २ बातों में भ[ी हिन्दु]ओं के बर्ताव से मुसल्मानों को प्रतीत [हो] गया कि मुसल्मानों को हिन्दुओं से भवि[ष्य] में न्याय-संगत बर्ताव की आशा नहीं क[र]नी चाहिये। यह प्रत्येक जाति की स्थिति है और यह आशा नहीं है कि अगर यह बात दोनों जातियों पर ही छोड़दी जाय तो वे अपना मतभेद ठीक करके झगड़ा मिटा लेंगी। इस ख़ास विषय पर मैं कुछ अधिक नहीं कहा चाहता क्योंकि मैं जानता हूं कि हाल में ही दोनों जातियों में मेल कराने का प्रयत्न किया गया है और दोनों जातियों के प्रतिनिधियों की एक सभा प्रत्येक पक्ष की शर्तों पर विचार करने के लिये स्थापित की गई है। मैं सच्चे हृदय से आशा और विश्वास करता हूं कि इस उद्योग का कुछ अच्छा फल निकलेगा, परन्तु यह मालूम होता है कि कम से कम एक मत भेद के विषय में तो मेल होना कठिन है। मेरा आशय उस बात से है जो माननीय मि० जैंकिन्स ने कौंसिल में मुसल्मानों के अपने प्रतिनिधि अलग चुनने के विषय में कही थी। उन्हा ने साफ़ २ कह दिया कि भारतवर्ष की गवरमेंट मुसल्मानों से अपने प्रतिनिधि अलग चुनने के विषय में प्रतिज्ञा कर चुकी है इस लिये जब तक मुसल्मान स्वयं न चाहें, वह कुछ फेर फार नहीं कर सकती। यह तो ऐसा हुआ, अब हिंदुओं को विचार करना चाहिये कि मुसल्मानों के अपने प्रतिनिधि अलग चुनने के विरुद्ध आंदोलन करना उनके लिये अधिक बुद्धिमानी की बात होगी या उसको अनिवार्य बुराई मान कर छोड़ देना और असंतोष के अन्य कारणों को दूर करने का आग्रह करना अधिक लाभदायक होगा। मेरी और बहुत से हिंदुओं की राय में तो अब हिंदुओं के अपनी कार्य-प्रणाली में परिवर्तन करने का समय आ गया है

सब से पहिला कर्तव्य हिंदुओं का यह है कि वे अपना घर संभालें। यह काम वे उन शक्तियों के ठीक जाने बिना नहीं कर सकते जो उनके चारों ओर काम कर रही हैं। मेरे विचार में अब वह समय आगया है कि हिंदू उचित रीति से वर्तमान स्थिति का मुक़ाबला करें और सोचें कि उन्हें अपने लाभ के लिये क्या करना है? मुसलमान और उनकी स्थिति के विषय में हम जो चाहें सो कहें पर यह भली भांति प्रमाणित हो गया है कि नीति-नैपुण्य में मुसलमान हिंदुओं से बढ़े चढ़े हैं। उनके उद्देश्यों में आप भले ही दोष निकालें। आप भले ही कहें कि वे पहिले मुसलमान और पीछे भारतवर्षीय हैं परन्तु ठीक २ विचार करने से आप इस बात में ज़रा भी शंका नहीं कर सकते कि वे गत ५ वर्ष से बड़े उत्साह और योग्यता से अपने लाभ के लिये उद्योग कर रहे हैं। उन्होंने व्यवस्था की आश्चर्य-जनक शक्ति दिखलाई है। उनके नेता अनुपम अध्यवसाय और अनुराग से अपने उद्देश्य के पूर्ण करने में लग रहे हैं। मुसल्मानों के जन-समूह ने अपने नेताओं का जिस श्रद्धा और भक्ति से अनुसरण किया है कि जिस से विना संशय के उन का सहोद्योग-भाव प्रमाणित होता है। सबों ने ही स्वार्थ-त्याग किया है और सब से बढ़ कर बात यह है कि उन्हों ने ऐसा उत्साह और दक्षता दिखलाया है कि वह हिन्दुओं के अनुकरण करने के योग्य है। वाइसराय के निकट जो उनका डेप्यु-टेशन गया था उसकी पूरी व्यवस्था ही नीति-नैपुण्य का एक उत्कृष्ट प्रमाण था। मुसलिम लीग के बनाने और उसके उद्देशों के प्रचार में जो उत्साह उन्हों ने दिखलाया वह भी उन के नेताओं के लिये कम गौरव की बात नहीं है। उस की एक शाखा लंडन में तथा बहुत सी शाखाएं समस्त भारतवर्ष में स्थापित करने से यूरुप की बड़ी से बड़ी कैंसिलों में भी उसका बड़ा दवाव पड़ा है। इन शाखाओं ने जो काम किया है और जो ये प्रत्येक स्थान में कर रही हैं उसे देखिये। उनके उत्साह को देखिये और फिर अपनी भारतवर्ष की कांग्रेस कमेटी तथा इंग्लैंड की वृटिश कमेटी से उसकी तुलना कीजिये। यथार्थ बात यह है कि मुसलमानों में आन्दोलन का सच्चा भाव जागृत हुआ है। उन्हें नई जागृति का अवसर मिल गया है जिस का वह पूरा २ लाभ उठा रहे हैं और जिस से उन को सफलता होगी। उसी जागृति का एक नवीन रूप मुसल्मान विश्वविद्यालय का प्रस्ताव है। इस में मुझे लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि यह सिद्ध होगा और हिन्दू विश्व विद्यालय के स्थापित होने के बहुत पहिले मुसलमान विश्व विद्यालय स्थापित हो जायगा जिस से भारत-वर्ष के मुसल्मानों के इतिहास में एक नये युग का आरंभ होगा। फिर धनाढ्य मुसल्मानों के विषय में यह अवश्य कहना है कि उनका अपने ग़रीब भाइयों के साथ उपकार असामान्य प्रशंसा के योग्य है। भारत वर्ष भर में जो मुसल्मानों ने बड़े २ दान दिये हैं उन्हें देखिये और अलीगढ़ कालेज की दशा की हिंदू कालेज की डूबती हुई दशा से तुलना करिये। यह मैं भली भांति जानता हूं कि धनाढ्य मुसल्मानों के लिये अपने गरीब भाइयों की सहायता करना बहुत सहज है क्योंकि उनके विषय में अफ़सरी कोप का डर नहीं है; लेकिन इस बात के होते हुए भी यह कहना बिलकुल ठीक है कि जो जातिभक्ति उन्होंने दिखलाई है वह वास्तव में प्रशंसा के योग्य है।

हिंदुओं का यह विचार है कि मुसलमानों की बहुत सी उन्नति बनावटी है और वे सोचते हैं कि मुसलमान जो गवर्मेंट के कृपापात्र न होते तो वे जैसे आज हैं वैसे न होते। परंतु यह बात केवल कुछ अंश में सत्य है। यथार्थ बात तो यह है कि मुसलमान जीवन के प्रत्येक विभाग में ख़ूब उन्नति कर रहे हैं। साहित्य में भी केवल बङ्गालियों को छोड़ व उत्तरीय भारत के हिंदुओं

की अपेक्षा बहुत अधिक कार्य कर चुके हैं। बहुत से लेखकों ने उर्दू साहित्य की इतनी उन्नति की है जो हिंदुओं के ध्यान में भी नहीं आ सकती। विश्वविद्यालय की शिक्षा में भी मुसलमान अच्छी उन्नति कर रहे हैं। कुछ सर्वोत्तम "ग्रेजुएट" आज कल मुसलमान हैं। उनमें ऐसे विद्वान् और लेखक भी हैं जिनकी बड़े २ नामी हिंदी लेखकों से तुलना की जा सकती है। वकालत में भी मुसलमानों ने कुछ कम नाम नहीं पाया है। कम से कम एक सब से बड़ा भारतवर्ष का जज मुसलमान है। सैयद महमूद का नाम हिंदुस्तान में सदा याद रहेगा। आज कल उत्तरीय भारत में मुसलमान बैरिष्टर कुछ कम नहीं हैं और इस प्रांत में कदाचित ही कोई ऐसा ज़िला होगा जिसमें उच्चश्रेणी के एक दो मुसलमान वकील न होंगे। यह समझना है कि व्यापार और कारीगरी में भी मुसलमान पीछे हैं भूल है। बंबई और रंगून में मुसलमान दूकानदार बहुत बड़े आदमी हैं और सब खोजे पा[illegible]ा भाटियों के समान व्यापारी हैं। [illegible]क दिल्ली में ही बहुत सा व्यापार मुसलमानों के हाथ हैं मेरा अभिप्राय यहां केवल हिंदू [illegible]इयों को यही जताने का है कि मुसलमान [illegible]न्नति में उतने पीछे नहीं हैं जितना कि हमारे हिंदू भाई उन्हें अपने अज्ञान से समझते हैं। आजकल उनमें उन्नति का भाव फैल रहा है। अगर इसके साथ ही साथ हम यदि सिर्फ़ यह याद रक्खें कि मुसलमान अपने धर्म तथा सामाजिक और सांसारिक व्यवहार में हिंदुओं की अपेक्षा अधिक समानभाव हैं तो २० वर्ष के भीतर जो उन्नति वे करेंगे उसकी हम पूर्व-कल्पना कर सकते हैं। मुसलमान हिंदुओं की अपेक्षा अधिक उत्साही हैं। चाहे वे किसी काम के आरंभ करने में मंद हों पर जब एक बार उसका आरम्भ कर देते हैं तब वे सहज में नहीं रोके जा सकते। दूर का भविष्य देखने के लिये उनकी दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण है। हर एक अवसर जो उन्हें वर्तमान समय में मिलता है उसका सब से अधिक लाभ उठाने में भी वे बड़े चतुर हैं। आप को कठिनता से ऐसा कोई शिक्षित मुसल[illegible]न मिलेगा जो कहेगा कि मुझे भारतव[illegible] एकता होने की संभावना में विश्वास [illegible]हीं परन्तु इस विचार से वह यथार्थ बात कभी नहीं भूलेगा। वह जानता है कि भारतवर्ष में आज एकता नहीं होती न बहुत वर्षों तक हो सकती है। इस लिये तब तक अपनी जाति में नवीन जीवन का संचार करने में यथाशक्ति उद्योग करना वह अपना कर्तव्य समझता है। दान के समान एकता का आरंभ भी घर से ही होता है और जो मनुष्य अपना घर औरों के भरोसे छोड़ अपने पड़ोसी का घर संभालना आरम्भ करता है उसे अंत में दोनों ओर से निराशही होना पड़ता है। यही मुसलमानों की कार्य-प्रणाली मुझे दीखती है जो बहुत उत्तम है।

दूसरी ओर हिंदुओं को देखिये। यह बात शायद कितनों ही को बुरी लगे पर यह सच है कि हम आपस में आशातीत विरक्त हैं। हमारी प्रकृति में कोई ऐसी बात हैं जिससे एकता अ-संभव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है। आज इस समय असंख्य जातियों को छोड़ कर जो हिन्दुओं में पाई जाती है, बहुत से सभा समाज ऐसे हैं जो देश के सामाजिक और धार्मिक उद्धार के लिये श्रम कर रहे हैं लेकिन उनमें भी मत भेद पाया जाता है। कभी किसी वाक्य के अर्थ पर या कभी किसी संस्कार की पवित्रता पर हम बराबर वर्षों तक झगड़ते चले जाते हैं तो भी हम कुछ ठीक निर्णय नहीं कर सकते। यथार्थ बात यह है कि हिंदुओं की प्रकृति पर धर्म का बड़ा असर होता है और हम जानते हैं कि धर्म एक साथ ही एकता और भिन्नता का कारण है। हिंदुओं के पक्ष में यद्यपि यह बात बिलकुल सत्य है कि ख़ास बातों में वे एक हैं यद्यपि छोटी२ बातों में वे विभक्त हैं और

अनुभव से ज्ञात होता है कि मनुष्य-जाति के अधिक भाग में एकता की परीक्षा छोटी २ बातों से ही होती है ख़ास २ बातों से नहीं। फिर, हिंदुओं में ऐसे मनुष्य भी हैं जो प्राचीन बातों से बिलकुल अलग हैं और समाज-सुधार का नाम करके नई नींव डाल फिर समाज का संगठन करना चाहते हैं। साथ ही हमारे मध्य में ऐसे सुधारक भी हैं जो समाज-सुधार के नाम से कुछ ऐसे लुप्त आचार जारी किया चाहते हैं जिनके लिये जीवन की वर्तमान स्थिति में स्थान नहीं है। सिक्ख और जैनी कभी २ यह चिल्ला उठते हैं कि हम हिंदू नहीं हैं। सब के अंत में हमारा सब से कठिन पतित जातियों का सामाजिक प्रश्न है। यद्यपि हम उनके साथ आन्तरिक सहानुभूति प्रकट करते हैं तथापि इस बात पर हम एक मत नहीं हैं कि कहां तक हमें उनकी सामाजिक दशा उन्नत करनी चाहिये। मैंने ये बातें सिर्फ इस बात पर ध्यान दिलाने के लिये लिखी हैं कि समस्त हिंदू जाति की समाज-रचना छोड़कर यदि उसके सिर्फ उस भाग पर ध्यान दिया जाय जो राजनीति में लगा हुआ है तो हमें वहां क्या दीखता है? वहां वे मनुष्य हैं जो नरम दल के कहलाते हैं और बहुत दिन नहीं हुए कि हमारे बीच में वे मनुष्य भी थे जो गरमदल के कहे जाते थे। केवल नरम दल के पक्ष में अपने को रख कर जिसका मैं एक व्यक्ति हूं, हमें वहां क्या दीखता है? पहिले तो हमें बहुत से नरम दल वाले ऐसे दीखते हैं जो भारत-वर्षीय एक जाति के विचार में फंसे हुए हैं। वे स्वयम् कुछ नहीं करेंगे न कुछ ऐसा होने देंगे जिससे उनके विचार के कार्य में परिणत होने में विघ्न हो। प्रतिनिधियों के भिन्न २ चुनाव को वे सहन नहीं कर सकेंगे क्योंकि भारतवर्ष को एक जाति बनाने में उससे विघ्न होता है। अलग २ प्रतिनिधि का होना भी वे पसन्द नहीं करेंगे क्योंकि यह बात मुसलमानों को अधिकार नहीं है। प्रतिवाद वे ख़ूब करते हैं पर बहुधा घटना के हो जाने पर करते हैं। कई बार हमने सुना है कि वाइसराय के पास हिंदुओं का डेप्युटेशन जायगा पर अच्छा ही हुआ कि वह नहीं गया नहीं तो वह उनके भारत-वर्षीय एक जाति बनाने के उद्देश्य के विरुद्ध होता। वे हिंदुओं को भिन्न व्यवस्था नहीं रक्खेंगे क्योंकि वह भारतवर्षीय नहीं होगी और जो भारतवर्षीय व्यवस्था है उसे वे मरी सी रक्खेंगे क्योंकि उसे वे अधिक नहीं चेता सकते। वे कांग्रेस की एक कमेटी अवश्य रक्खेंगे। जो कुछ हो उस पर अवश्य विचार किया करें पर काम चाहे कुछ न करें। उनके अधिकांश नेताओं को अवकाश नहीं है, नामी वकील सदा समय के अभाव की शिकायत किया करते हैं और उनके अनुगामी स्वयं कुछ कर नहीं सकते। हिंदुओं में ज़िमीदार और व्यापारी लोग अवश्य लोक-प्रिय विषय से अलग रहते हैं क्योंकि विवेक पराक्रम का उत्तम भाग है। राजा महाराजा उल्का की भांति राजनैतिक प्रकाश में अपने चमकीले घोषणा-पत्रों से एक दम चमक उठते हैं पर यह उनका काम नहीं है कि अपने ग़रीब भाइयों के पथ-प्रदर्शक बनें और उनके साथ २ काम करें। संक्षेप में हिंदू जाति की आज कल ऐसी स्थिति है और जब यह बात याद आती है कि जब कभी कोई हिंदू कौंसिल में या कांग्रेस के प्लैटफार्म पर हिंदुओं की ओर से कुछ कहता है तो वह एक साथ अभारतवर्षीय और जातीय एकता का बाधक जान बैठा दिया जाता है, तब यह स्थिति मुझे हिंदुओं के लिये बहुत अशुभ-सूचक दीखती है।

हमारा कर्तव्य।

मुझ से कदाचित् पूंछा जायगा कि क्या मेरी यह इच्छा है कि कांग्रेस बन्द कर दी जाय? मेरा उत्तर है-नहीं! पर मेरा कहना यह है कि हिंदुओं की ख़ास अपनी एक व्यवस्था सिर्फ आत्म-रक्षा के लिये होनी चाहिये। जैसी व्यवस्था वर्तमान स्थिति में हिंदुओं की होनी चाहिये वह मेरी राय में

हिंदू सभा में पाई जाती है। यह बात कांग्रेस तथा हिंदू और मुसलमानों के भी लाभ की है कि वे विषय जिनमें हिंदू और मुसलमान स्पष्ट-तया भिन्न हैं जैसा कि यह प्रतिनिधि सभाओं का सवाल है कांग्रेस की विषय-सूची से निकाल दिये जांय। अगर इसे हम कांग्रेस से निकाल दें तो भी कांग्रेस के पास हिंदू मुसलमान दोनों के काम की बहुत सी बातें रह जायंगी।

मैं जानता हूं कि हिंदू सभा ने अपने लिये एक बड़ी भारी विषय-सूची बनाई है। मेरी राय में वह अधिक परिमित होती तो अच्छा होता। मैं यह बात पसंद नहीं करता कि हिंदू सभा में हिंदू जाति के किसी ख़ास भाग का अधिक ज़ोर हो और इससे बचने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि उसमें धार्मिक प्रश्न न उठाये जांय। अगर हिंदू सभा केवल हिंदुओं के राजनैतिक लाभ, सामाजिक उन्नति और शिक्षा कोही अपना लक्ष्य माने तो यह भी थोड़ा काम नहीं [illegible] मेरा विश्वास केवल वार्षिक अधिवेशनों [illegible] नहीं है। इसकी शाखायें भारतवर्ष भर में फैलायी जायं और वे बराबर काम करती रहें। अपने उद्देश्य के पूर्ण करने में सफलता होगी या नहीं इस बात का आधार नेताओं की बुद्धि-मानी और चातुर्य पर है। यदि मुसलमान उत्साही नेता पाने में समर्थ हुए हैं तो हिंदुओं को भी ऐसे नेता पाने में कठिनता नहीं होनी चाहिये। अगर हिंदू समय के अनुसार उन्नति न करेंगे, अगर वे सिर्फ विचार करते रहेंगे जैसा कि उनके पूर्वज करते रहते थे तो उन्हें संसार को अधिक उज्वल आदर्श दिखाने में सफलता भले ही हो जाय पर वे अपनी जाति की शक्ति दृढ़ करने में सफल न होंगे और वा-स्तव में उस भवितव्यता के योग्य होंगे जो इस समय होती दीखती है।

पत्नी-व्रत।

(आख्यायिका)

[लेखक-पं० ईश्वरी प्रसाद शर्म्मा]

भुवनमोहन की पत्नी किशोरी आज चार दिनों से बीमार है। इन चार दिनों के बीच उसने, एक दिन भी अपने मुख में अन्न नहीं दिया। उसकी बीमारी क्यों एकायक इतनी बढ़ गयी किसी की समझ में नहीं आता। किशोरी अपने सास ससुर की बड़े प्यार की सामग्री है। भुवनमोहन उसको अपने प्राणों से भी अधिक मानते हैं। इस समय वही किशोरी मरणापन्न हो रही है इस लिये परिवार के सभी लोग व्यग्र हैं, सभी के मुख पर अहर्निश गहरे विषाद की काली रेखा खिंची रहती है। भुवन को न दिन को चैन है न रात को नींद, वे सदा अपनी प्राण-प्रणयिनी पत्नी की शय्या के पास बैठ कर उसकी शुश्रूषा करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर डाकृर के यहां जाकर उस की बीमारी का हाल सुनाते और डाकृर के कहे अनुसार किशोरी की परिचर्य्या करते हैं।

भुवन की अवस्था लगभग बीस वर्ष की है, वे प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में पढ़ते हैं। इस बार ज्योंही उनकी परीक्षा समाप्त हुई त्योंही घर से पत्नीकी अस्वस्थता का समाचार आया। समाचार पाते ही भुवन का चित्त व्याकुल हो गया, उन के मुखचन्द्र की वह दमदमाती हुई कांति क्षणमात्र में बिलीन हो गयी। उस की बड़ी २ कमल सी आँखें आँसुओं से भर गयीं। वे चटपट घर जाने को तैय्यार हो गये। उनके मकान प्रयाग से दो तीन घंटे की राह है। साँझ होते होते भुवन घर पहुंचे। घर पहुंच कर उन्होंने देखा कि उनके जीवन की सहचरी, उन के सुख दुःख की सङ्गिनी; उनकी वह प्राणा-

धिका प्रियतमा मृत्युशय्या पर पड़ी है। पीड़िता की अवस्था देख भुवन का कलेजा चकनाचूर हो गया। उनके सारे आनन्द और उत्साह की इतिश्री हो गयी।

परन्तु विपत्ति आने से अधीर होना मनुष्य का काम नहीं है। भुवन ने स्थिर किया कि इस समय घबराना उचित नहीं है। धैर्य्य पूर्व्वक किशोरी की सेवा शुश्रूषा करना ही इस समय मेरा कर्त्तव्य है। यह सोच सारी दुश्चिन्ताओं को त्याग कर वे अक्लांत भाव से अपनी पत्नी की दवा दारू करने लगे। उन्हों ने विचार किया, "जो प्राणेश्वरी मेरे सुख के लिये अपने प्राणों तक को उत्सर्ग करने को प्रस्तुत रहती है उसके ऊपर ऐसी विपत्ति आयी हुई देख कर मेरा चुप बैठ रहना ठीक नहीं। इस समय मुझ से उस की जैसी कुछ सेवा करते बने करनी चाहिये। जिस प्रकार पत्नी का धर्म्म है कि अपने पति के सुख की ओर सदा लक्ष्य रक्खे वैसे ही क्या पुरुष का कर्त्तव्य स्त्री को सुखी रखने की चेष्टा करना नहीं हो सकता? क्यों नहीं! मेरा विश्वास है कि जो पुरुष स्त्रियों को क्षुद्र दासी की भाँति समझते हैं वे बड़े ही नीच हृदय, स्वार्थी और कुटिल हैं। मेरा ही सुख जिसका प्रधान लक्ष्य है उसका आनन्द मेरा लक्ष्य हुए बिना उस अलौकिक प्रेम का प्रतिदान क्यों कर दिया जा सकता है?"

अपने इन्हीं सब विचारों के अनुसार भुवन अनेक दास दासी तथा अपनी माता और बहन के रहते भी जहां तक बनता है वहां तक स्वयं ही रोगिनी की सेवा करते हैं। लोग उन्हें स्त्री-देवता का उपासक भले ही कहा करें परन्तु भुवन को आनन्द इसी बात का है कि वह अपना कर्त्तव्य करते हैं। जो मनुष्य अपने कर्त्तव्य पालन में तत्पर है वह लोगों के निन्दावाद अथवा प्रशंसावाद की पर्वाह नहीं करता।

(२)

कालकी गति किसी की अपेक्षा नहीं करती। कोई कुछ करे काल की गति उस के लिये रुकी नहीं रहती। काल-चक्र सदा घूमा करता है। इसी चिरकालिक नियम के अनुसार पन्द्रह दिन का समय किधर निकल गया सो कुछ मालूम नहीं पड़ा किंतु इन पन्द्रह दिनों में किशोरी अभी तक अच्छी नहीं हुई। सारी औषधियां व्यर्थ गयीं, किसी का कुछ असर नहीं हुआ। रोग दिन दिन बढ़ता ही गया।

भुवनमोहन अपने पाठागार में अकेले बैठे हैं, सिर नीचा किये, गालपर हाथ धरे, वे किस गहरी चिन्ता में पड़े हुए हैं सो शायद पाठकों को बतलाना नहीं होगा। प्राणोपमा पत्नी की अस्वस्थता ही उनकी सारी चिन्ताओं का मूल है। इस समय उनकी आंखों में पलक नहीं; वे एकटक पृथिवी माता की ओर दृष्टि गड़ाये हुए हैं। किस विधि-विपाकसे किशोरी सी सरल-हृदया, निष्कलंक-चरित्रा, साध्वी स्त्री ऐसे सङ्कट में पड़ी है सो उनकी समझ में नहीं आया! कब के किये हुए कर्म का फल मनुष्य कब और क्यों-कर भोग करता है सो कौन जान सकता है?

भुवन अभी तक बैठे ही हैं। सहसा उन के पाठागार का द्वार खोल कर भीषण आर्त्तनाद करती हुई एक बारह वर्ष की लड़की उनके कमरे में आयी। लड़की भुवन को इकलौती बहन है। सहसा इन्दुमती को इस प्रकार रोती चिल्लाती हुई देख कर भुवन के देवता कूंच कर गये। कुछ क्षण तक वे कुछ भी बोल नहीं सके-मानों उन की वाक शक्ति ही किसी ने हरण कर ली। जब भुवन की आवाज़ खुली उन्होंने रुकती जीभ से पूछा, "क्या हुआ? बहिन! क्या हुआ? इन्दु!! तुम ऐसा क्यों विलाप कर रही हो?"

किन्तु इन्दु केवल "भैया! भैया!!" कह कर रह गयी, उस के मुंह से और कोई बात नहीं निकली। देखकर भुवन की आँखें भी आँसुओं से भर गयीं। उन का सूखा हुआ चेहरा और भी छोटा सा हो गया! घर के भीतर से माता का रोदन और साथही कई एक स्त्रियों

का हाहाकार सुनकर भुवन समझ गये कि उन की क़िस्मत फूट गयी !!! वे झटपट दौड़ कर घर के भीतर चले गये । वहां देखा किशोरी की शय्या को घेरे हुए अनेक स्त्रियाँ सिर धुन २ कर रो रही हैं, पासही खड़े डाकृर रघुनाथ बार बार उन्हें शान्त करने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहे हैं । भुवन ने प्रवेश करते ही पूछा, "रघुनाथ बाबू ! कुछ आशा है कि नहीं ?"

डाकृर—"भुवन बाबू ! अब तो जीवन की आशा रखना व्यर्थ है, किंतु हां जब तक सांस तब तक आस । अभी तक यह मरी नहीं है"।

इसी समय सहसा किशोरी ने आँखें खोलीं। उस समय उन सहज सुकुमार मृगो की सी आँखों की ज्योति एक विलक्षण ही प्रकार की दिखलाई पड़ी । उन्हें देखने से इस समय आनन्द के बदले भय उत्पन्न होता है । जिन प्यारी २ आँखों को देखने पर चित्त में श्रद्धा, भक्ति और प्रीति की त्रिवेणी बहती थी आज उन्हीं खंजनमदगंजन आँखों की ओर दृष्टि करते कलेजा कांपता है !!! धन्य रे काल! तेरी कैसी विलक्षण क्षमता है !!

भुवन किशोरी को आँख खोले देख कर उस के पास जा शोकाकुल कण्ठ से बोले, "प्रियतमे! क्या तुम एकबारगी मेरी मोहमाया छोड़, मुझ को इस संसार-समुद्र में अकेला बहता हुआ छोड़कर चली जाओगी! किशोरी, "मैंने तुम्हारा कौनसा अपराध किया था ?"

दिया बुझने के पहले एक बार बड़े ज़ोर से भभक उठता है। किशोरी का निर्वाणोन्मुख जीवनदीप भी उसी प्रकार निर्वाण होने के पहले भभक उठा। भुवन की वे प्रेम रस सानी शोकपूरित बातें सुनकर उस मुमूर्षु दशा में किशोरी के मुख पर हँसी आई। उस समय उसकी लुप्तप्राय शक्ति न जाने कहां से लौट आई। वह साहस कर बोली, "भीड़ देखने से मेरा चित्त और भी भयातुर हो रहा है आप लोग ज़रा भीड़ भाड़ कम करें तो मैं दो चार बातें चलते चलाते करलूं।"

किशोरी की वह अंतिम प्रार्थना सबों ने स्वीकार की। अब उस कमरे में केवल वेही दोनों पति पत्नी रह गये। ... किशोरी ने न जाने अपने शिथिल अंगों में कहां से ऐसी शक्ति संग्रह की कि अन्यान्य लोगों के चले जाने पर वह शय्या पर सोई थी सो उठ कर बैठ गई और धीमे स्वर से बोली, "प्यारे! अब तो मैं चली, अब मेरे बचने की कोई आशा नहीं है। मैं प्रत्यक्ष यमदूतो को अपने सामने खड़ा देखती हूं। किंतु प्रियतम! क्या तुम इस मरती हुई पर दया कर उसकी एक अंतिम प्रार्थना स्वीकार करोगे ?"

भुवन ने कहा, "प्राणेश्वरी! तुम्हारी बात मैंने कब नहीं मानी है जो तुम ऐसा कह रही हो? तुम यदि मुझे जलती अग्नि में प्रवेश करने को कहोगी तो मैं उसमें भी आगा पीछा नहीं करूंगा।"

किशोरी से अब बैठा नहीं गया वह फिर लेट रही। बोलने में बहुत श्रम होने के कारण कुछ देर तक उससे बोला नहीं गया। उसने फिर आंखें मूंद लीं। भुवन मंत्र से फूंके हुए की भांति चुप चाप खड़े एक टक से यह सब देखते रहे।

किशोरी पुनः बल आकर्षण करके कहने लगी, "प्राणेश! मेरी एक प्रार्थना है। मेरे जितने अरमान थे, मेरी जितनी अभिलाषायें थीं तुमने मुझ पर दया करके सभी पूरी की हैं, दासी की मरते समय की बात भी वैसेही दया करके पूरी करना यही प्रार्थना है।"

अपने मन के उछलते हुए वेग को रोक भुवन बोले, "तुम्हारी बात मैं अवश्य मानूंगा।"

उनका ऐसा उत्तर सुन बड़े आदर से उन का कोमल करपल्लव अपने हाथ में लेकर किशोरी कहने लगी, "स्वामिन्! विधि के

प्रचण्ड प्रताप के आगे किसी की कुछ नहीं चलती। आज हमारी तुम्हारी चिरविदा है, न जानें किस पुण्य बल से कब ऐसा समय आवेगा जब पुनः तुम्हारे इन पूजनीय चरणों को अपनी छाती से लगाऊंगी, किंतु यदि वेद पुराण और शास्त्र सब सत्य हों तो यह मैं दृढ़ निश्चय करके कह सकती हूं कि मैं जन्मान्तर में भी तुम्हारे ही चरणों की दासी होऊंगी। अस्तु; इस जन्म में ईश्वर ने मुझे सन्तान का सुख नहीं दिया और मैं आप की गोद में बच्चा खिलाने को नहीं दे सकी, इस लिये मेरे न रहने पर जिसमें यह दुःख कभी २ आप को सताया न करे और आप की सेवा शुश्रूषा के कार्य्य में कमी न हो इसके निमित्त आप अपना एक दूसरा विवाह कर लीजियेगा, यही मेरी भिक्षा अथवा प्रार्थना है। मैं किसी लोक में क्यों न रहूं किंतु आपका सुख ही मेरी चिंता का विषय होगा। आप यदि सुखी रहेंगे तो मेरी आत्मा जहां कहीं होगी वहां उसको शांति मिलेगी अन्यथा उसे कष्ट पहुंचेगा।"

बात सुनकर भुवन की मुखप्रभा मलिन हो गई। उनकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया। उन्होंने रूंधे कण्ठ से कहा,

"प्राणेश्वरी! मैं तुमसे लाख बार कह चुका हूं कि मैं उन पुरुषों में से नहीं हूं जो स्त्री को केवल भोग विलास की सामग्री मात्र समझते हैं अथवा उन्हें ईश्वर की दी हुई बेदाम की दासी समझते हैं बल्कि मेरा सिद्धांत है कि ईश्वर ने स्त्री और पुरुष- ये समाज के दो अङ्ग-बनाये हैं। इनमें से प्रत्येक का स्वत्व और अधिकार एक समान होना चाहिये। इस लिये पति के न रहने पर स्त्री का पुनर्विवाह करना जैसा अन्याय, अधर्म और नीचता है, मेरी समझ से स्त्री की मृत्यु हो जाने पर पुरुष का पुनः विवाह करना भी वैसेही घोर अधर्म है।"

किशोरी चुप है; वह आधी खुली आधी बन्द आंखों से भुवन के भुवनमोहन रूप को देखती हुई एक दृष्टि से उनकी बातें सुन रही है। भुवन कहने लगे।

"प्रियतमे! हृदय एक ही है, वह एक बार से अधिक किसी को दिया नहीं जा सकता। प्राणमयी! जिस हृदयासन पर मैंने तुम्हारी स्वर्गोज्वल मूर्ति स्थापन कर रक्खी है उसपर से तुम्हें हटा कर किस मन से मैं दूसरी को बैठने दूंगा? क्या तुम भुवन को ऐसा नीच जानती हो?"

अब भी किशोरी नहीं बोलती। भाव के आवेग में वह कहते गये।

"जीवनदायिनी! विधि की जब ऐसीही इच्छा है कि मैं तुम्हारे संसर्ग से वञ्चित रहूं तब किसकी सामर्थ्य है जो विपरीत कर सके? परन्तु प्रेममयी! यह तुम निश्चय जानना कि तुम्हारी प्यारी स्मृति मेरे मन से कभी दूर नहीं होगी, उस स्मृति को हटा देना भुवन जैसे कोमल हृदय वाले मनुष्य के लिये साध्य नहीं है उसके लिये राक्षसी प्रकृति वाले मनुष्य की आवश्यकता है।"

अब के किशोरी बोल उठी, "प्यारे! आज हमारे लिये कैसे आनंद का अवसर उपस्थित है। तुमने स्वर्गीय आनंद की नदी सी बहा दी है। मरण इस समय मेरे लिये शत सहस्र सुखों से बढ़ कर मालूम पड़ता है। किंतु हे अभागिनी के ईश्वर! तुम विवाह करके फिर संसारी हो जाना और संतानोत्पत्ति कर पितरों के ऋण से उद्धार होना यह प्रार्थना मैं मरते दम तक करती ही जाऊंगी।"

भुवन बोले, "प्रेमप्रतिमे! यह अन्याय अनुरोध मत करो, यदि तुम्हें वस्तुतः मेरे सुख का लक्ष्य हो तो इस कठोर बात को अपनी जिह्वा पर मत लाओ।"

इसी समय भुवन की माता उस कमरे में आ पहुंची। उधर किशोरी की भी अधिक श्रम करने के कारण संज्ञा लोप हुई जाती थी। थोड़ी ही देर में किशोरी की दशा अत्यंत शोचनीय हो गई और वह ऊर्द्ध्श्वास लेने लगी। डाक्टर रघुनाथ बाबू भी बुलाये गये किंतु उनके आते ही आते किशोरी की सारी देह सर्द हो गई, नाड़ी छूट गई और उसका प्राण पखेरू तन-पींजरे को छोड़ चल बसा। उस समय भी भुवन अपनी हृदयेश्वरी को गोद में लेकर बैठे थे।

३

किशोरी की मृत्यु होने के बाद से भुवन के जीवन का आनंद सदा के लिये विदा हो गया। पत्नी के मृत्यु-काल का वह वार्तालाप, गोद में सिर रखे हुए उसका वह हृदय-दाही प्राण विसर्ज्जन वे जन्म भर नहीं भूले। पत्नी की स्मृति वे कभी अपने जी से नहीं भुला सके। जब कभी उनको अपनी प्राणाधिका प्रियमता की स्मृति आ जाती तब वे आंसू गिरा २ कर रोने लगते। भुवन पूर्ण पत्नी व्रत थे, वे अपनी प्रतिज्ञा में अटल थे, उन्होंने अपनी प्रतिज्ञानुसार जन्म भर फिर दूसरा विवाह नहीं किया।

भारत की महिलायें चिरकाल से अपने पतिव्रत धर्म के लिये प्रसिद्ध हैं, अपने इसी गुण से उन्होंने जगत् भर के स्त्री संसार में ऊँचा आसन पाया है। किंतु दुर्भाग्य से धीरे २ इस धर्म का भी ह्रास होता चला जाता है और विधवा विवाहादि के प्रचार की आवश्यकता बतलाई जा रही हैं इसका एक मात्र कारण यही है कि यहां के पुरुष अपने पत्नीव्रत को भूल से गये हैं और दिन २ यहां के पुरुषों से यह धर्म बिदा होता जाता है किन्तु इस दुर्दिन में भी कभी २ भुवन के से पत्नीव्रत दिखलाई पड़ते हैं। वह क्या ही सौभाग्य का दिन होगा जब भारत के घर २ पत्नीव्रत पुरुषों और पतिव्रता स्त्रियों का अवतार हुआ करेगा।

भारतवर्ष में प्रारम्भिक शिक्षा।

[लेखक—श्रीयुत् बाबू भगवानदास हालनां]

सार की सब उन्नतियों का मूल शिक्षा है। जिस देश में शिक्षा का अधिक प्रचार है वही देश अधिक समृद्धिशाली और सब बातों में सम्पन्न है। जिस देश में शिक्षा का महत्व पूरी तरह स्वीकार नहीं किया जाता वही देश अधिक दरिद्र और सब बातों में गिरा हुआ है। संसार के कुछ समृद्धिशाली देशों का दरिद्र भारतवर्ष से मिलान कर के देखिये। अमेरिका के युनाइटेड् स्टेटस्, कैनाडा और आस्ट्रेलिया में प्रायः सब के सब लोग पढ़े लिखे हैं। जर्मनी में १००० व्यक्तियों में केवल १ व्यक्ति और ग्रेटबृटेन में १०० व्यक्तियों में ५ से भी कम व्यक्ति अशिक्षित हैं। रशिया में भी जो यूरोप के देशों में सब से पिछड़ा हुआ है २० फी सदी व्यक्ति पढ़े लिखे हैं। किन्तु भारतवर्ष में १०० व्यक्तियों में ९४ व्यक्ति से भी अधिक निरक्षर हैं और हमारे युक्त प्रान्त में तो ९७ फी सदी व्यक्ति अशिक्षित हैं। जिस देश में अविद्या ने इतना अधिक राज्य कर लिया हो उसकी ऐसी हीन दशा होना कोई आश्चर्य नहीं। भारतवासियों का अशिक्षित रहना भारतवर्ष ही के लिये नहीं किन्तु अंगरेज़ी राज्य के लिये भी बड़ा अमंगलकारी है, इस बात को लार्ड कर्ज़न ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया था। उन्होंने कहा था,—

"भारतवर्ष में हमें सब से अधिक भय किस बात से है? जनसमूह में इतने मूढ़विश्वास, रोग, शोक, पाप, उपद्रव और अशांति उत्पन्न होने का मूल कारण क्या है? अविद्या। और इसके दूर करने का एक मात्र उपाय क्या है? विद्या-प्रचार। जितनी ही जनसमूह को हम विद्या पढ़ावेंगे उतने ही अधिक वे सुखी होंगे और जितने ही वे सुखी होंगे उतना ही अधिक वे समाज का उपकार करेंगे।"

लार्ड कर्ज़न के इन शब्दों पर दृष्टि रख कर गवर्मेंट का पहला धर्म है कि वह भारत-वासियों को मूर्ख न रहने दे। भारतवर्ष से इस मूर्खता के निकालने का एक मात्र उपाय जन-समूह में प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार करना है। जनसमूह में विना शिक्षा प्रचार किये देश की नैतिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक दशा नहीं सुधर सकती। यद्यपि इस समय भारतवासियों को उच्च शिक्षा, शिल्प शिक्षा, वैज्ञानिक शिक्षा सभी प्रकार की शिक्षाओं के देने की आवश्यकता है किन्तु सब से अधिक आवश्यकता प्रारम्भिक शिक्षा देने की है। जब उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा ही न दी जायगी तो अन्य प्रकार की शिक्षाएं कैसे दी जा सकेंगी ?

कुछ लोगों का ख्याल है कि संसार के अधिक लोग सिर्फ मेहनत मजूरी करने के लिये ही पैदा किये गये हैं उन्हें थोड़ी बहुत शिक्षा देने की भी आवश्यकता नहीं। यदि नीची श्रेणी के लोगों को भी शिक्षा दी जाने लगेगी तो वे पढ़ लिख कर अपने २ काम धन्धे छोड़ देंगे और ऊंचे बन बैठने का दावा करेंगे। यह विचार बड़ा ही भ्रांतिपूर्ण है। क्यों साहब, नीच लोग तो पढ़ लिख कर ऊंचे हो जांयगे पर जिन्हें आप ऊंचे लोग समझे हुए हैं क्या वे पढ़ लिख कर और अधिक ऊंचे न होंगे ? इस बात के अनेक प्रमाण मिलते हैं कि प्राचीन काल में भारतवर्ष में विद्या का बहुत अधिक प्रचार था और नीची श्रेणी के लोगों को भी शिक्षा दी जाती थी। 'भोज प्रबन्ध' में लिखा है कि राजा भोज की सभा में बाहर से एक पण्डित आये और उन्होंने राजा से रहने के लिये मकान मांगा। राजा ने आज्ञा दी कि फलाने कुम्हार का मकान खाली कराया जाय। कुम्हार राजा के पास आया और बोला, "मैं मूर्ख नहीं हूं, मेरी परीक्षा कर लीजिये। मैं मकान क्यों खाली करूं?" चाहे आज कल हम समय के फेर से विद्या का महत्व पूरी तरह स्वीकार न करें किन्तु अब भी हमें बचपन में "विद्वत्वञ्च नृपत्वञ्च नैव तुल्यं कदाचन। स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥" "साहित्य-संगीत-कला-विहीनः साक्षात्पशुः पुच्छ-विषाण-हीनः" का पाठ याद कराया जाता है। शिक्षा मिलने ही से मनुष्य में पूरी तरह मनुष्यत्व आता है और वह सुख से अपना जीवन बिता सकता है। "Survibal of the fittest" अर्थात् "जो सब से योग्य होता है वही विजय प्राप्त करता है" यह सिद्धान्त सब काल और सब देशों पर पूरी तरह घटता है। हमें यह सब लिखने की कोई आवश्यकता न थी यदि हमारे कुछ शिक्षित देशवासी भी यह न समझने लगते कि सारे जनसमूह को शिक्षा देने से लाभ की जगह हानि होने की संभावना है। अब इससे बढ़ कर हमारे देश में शिक्षा की और क्या शोचनीय दशा होगी कि पढ़े लिखे लोग भी यह कहने लगें कि लोगों को पढ़ाने की आवश्यकता नहीं ?

आज कल सभ्य संसार में यह सिद्धांत सर्वत्र स्वीकार किया जाता है कि जनसमूह में शिक्षा फैलाना समाज का पहला धर्म है। और इस विचार को कार्य्य में परिणत करने के लिये अभी तक एक मात्र इस उपाय का आविष्कार हुआ है कि प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य और मुफ़्त की जाय। भिन्न भिन्न देशों की गवर्मेंटें अपने २ यहां प्रारंभिक शिक्षा को अनिवार्य और मुफ़्त करके इस धर्म का पालन कर रही हैं। कुछ देशों में प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य और मुफ़्त दोनों है, और कुछ देशों में पूर्ण रूप से अनिवार्य न होने पर भी मुफ़्त या अधिकतर मुफ़्त दी जाती है किंतु भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जहां प्रारम्भिक शिक्षा न अनिवार्य है न मुफ्त। ग्रेट बृटेन और आयर्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, स्विटज़रलैंड, आस्ट्रिया-हंगेरी, इटली, बेलजियम, डेनमार्क, नार्वे, अमेरिका के यूनाइटेड स्टेट्स, कैनाडा, आस्ट्रेलिया और जापान में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य और

मुफ्त दोनों है। इन देशों में अनिवार्य रूप से शिक्षा देने का समय साधारणतः ६ वर्ष है किंतु अमेरिका के कई देशों में नौ नौ वर्ष तक अनिवार्य शिक्षा देने का नियम है। हालैंड में प्रारम्भिक शिक्षा मुफ्त नहीं किंतु अनिवार्य है। स्पेन, पार्चुगल, ग्रीस, वलगेरिया, सर्विया और रोमेनिया में प्रारम्भिक शिक्षा मुफ्त और थोड़ी वहुत अनिवार्य है। टर्की में भी प्रारम्भिक शिक्षा मुफ्त और कुछ कुछ अनिवार्य है और रशिया में अनिवार्य शिक्षा का प्रचार न होने पर भी अधिकतर शिक्षा मुफ्त दी जाती है। यहां बड़ौदा राज्य में भी १६०७ से प्रारम्भिक शिक्षा पर्ण रूप से अनिवार्य और मुफ्त कर दी गई है।

अब, सुनिये, कि भिन्न २ देशों में सारी जनसंख्या में कितने फी सदी व्यक्ति प्रारम्भिक शिक्षा पाते हैं। जिन देशों में जितने ही अधिक काल तक अनिवार्य शिक्षा देने का नियम है वहां उतने ही अधिक व्यक्ति प्रारम्भिक शिक्षा पाते हैं। इंगलैंड में ६ से ७ वर्ष तक अनिवार्य शिक्षा देने का नियम है। इस हिसाब से वहां सारी जनसंख्या में १५ फी सदी व्यक्तियों को प्रारम्भिक शिक्षा अवश्य मिलनी चाहिये। युनाइटेड स्टेटस् में ८ वर्ष तक अनिवार्य शिक्षा दी जाती है और सारी जनसंख्या में २१ फी सदी व्यक्ति प्रारम्भिक शिक्षा पाते हैं। जापान में ४ वर्ष तक और इटली में केवल ३ ही वर्ष अनिवार्य शिक्षा दी जाती है। पाठकों को भिन्न २ देशों में प्रारंभिक शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों की संख्याओं पर विचार करते समय इस बात को नहीं भूलना चाहिये कि वहां कम या अधिक काल तक अनिवार्य शिक्षा देने के नियम के अनुसार ही वहां पढ़ने वालों की संख्या कम या अधिक है। अमेरिका के युनाइटेड स्टेटस् में सारी जनसंख्या में २१ फी सदी; कैनाडा, आस्ट्रेलिया, स्विटज़रलैंड और ग्रेट बृटेन और आयलैंड में २० फी सदी से १७ फी सदी; जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगेरी, नार्वे और नेदरलैंडस् में १७ से १५ फी सदी; फ्रांस में १४ फी सदी से अधिक; स्वीडन में १४ फी सदी; डेनमार्क में १३ फी सदी; बेलजियम में १२ फी सदी; जापान में ११ फी सदी; इटली, ग्रीस और स्पेन में ८ से ६ फी सदी, पोर्चुगल और रशिया में ४ से [illegible] फी सदी व्यक्ति प्रारम्भिक शिक्षा पाते हैं। फिलिपाइन द्वीप में ५ फी सदी और भारतवर्ष में बड़ौदा में भी सारी जनसंख्या में ५ फी सदी व्यक्ति प्रारम्भिक शिक्षा पाते हैं किन्तु भारतवर्ष में सारी जनसंख्या में केवल १.६ फी सदी व्यक्ति ही प्रारम्भिक शिक्षा पाते हैं।

अब, देखिये, कि भिन्न २ देशों में प्रारम्भिक शिक्षा में सारी जनसंख्या में आदमी पीछे क्या व्यय किया जाता है। भिन्न २ देशों के व्यय का ब्यौरा नीचे दिया जाता है:-

देश का नाम	व्यय शि० पे०		व्यय रु० आ०
युनाइटेड स्टेटस्	१६- ०	=	१२)
स्विटज़रलैंड	१३- ८	=	१०।)
आस्ट्रेलिया	११- ३	=	८।≡)
इंगलैंड और वेल्स	१०- ०	=	७।।)
कैनाडा	६- ८	=	७।)
स्काटलैंड	६-७।।	=	७≡)।।
जर्मनी	६-१०	=	५≡)
आयलैंड	६- ५	=	४।।।-)
नेथरलैंडस्	६-४।।	=	४।।)।।
स्वीडन	५- ७	=	४≡)
बेलजियम	५- ४	=	४)
नार्वे	५- १	=	३।।-)
फ्रांस	४-१०	=	३।≡)
आस्ट्रिया	३-१।।	=	२।)।।
स्पेन	१-१०	=	१।≡)
इटली	१-७।।	=	१≡)।।
सर्विया	१- २	=	।।≡)
जापान	१- २	=	।।≡)

देश का नाम	व्यय
रशिया	०-७॥ = ।≡)॥
बड़ौदा	०-६॥ = ।≤)॥
वृटिश भारतवर्ष	० —१ = —)

भिन्न २ देशों का व्यय शिलिंग पेंस के साथ साथ रुपये आने में भी इस लिये दिया गया है कि हमारे भारतीय पाठक उस पर दृष्टि डालते ही एक देश के व्यय का दूसरे देश के व्यय से सुगमता से मिलान कर सकें। उक्त अङ्कों से विदित होता है कि प्रारम्भिक शिक्षा में सब से अधिक व्यय युनाइटेड स्टेटस् में होता है और सब से कम भारतवर्ष में। सारी जनसंख्या में आदमी पीछे युनाइटेड स्टेटस् में प्रारम्भिक शिक्षा में भारत वर्ष का १६२ गुना खर्च होता है और भारतवर्ष का १२० गुना इंगलैंड और वेल्स में; ८२ गुना जर्मनी में; ५८ गुना फ्रांस में; १४ गुना जापान में; ७॥ गुना रशिया में और ६॥ गुना बड़ौदा में व्यय होता है। भारतवर्ष में प्रारम्भिक शिक्षामें जो कुछ व्यय होता है वह सभ्य देशों के प्रारम्भिक शिक्षा में होने वाले व्यय के सामने समुद्र में बिन्दु के बराबर भी नहीं।

अब तक इस लेख में यह दिखाया गया कि भारतवर्ष शिक्षा में अन्य देशों से कितना पीछे हटा हुआ है, इस समय भारतवर्ष के जनसमूह में प्रारम्भिक शिक्षा फैलाने की कितनी अधिक आवश्यकता है, भिन्न २ देशों में किस तरह की प्रारंभिक-शिक्षा प्रणाली प्रचलित है, उनमें सारी जनसंख्या में कितने फी सदी लोग प्रारम्भिक शिक्षा पाते हैं और सारी जनसंख्या में आदमी पीछे प्रारम्भिक शिक्षा में क्या क्या व्यय होता है। अब यह दिखाया जाता है कि भारतवर्ष में पिछले २५ वर्षों में (सन १८८२ से ले कर १९०७ तक) प्रारम्भिक शिक्षा में कितनी उन्नति हुई है और इस विषय में गवर्मेंट ने अपना कर्तव्य कहां तक पालन किया है। सन १८५४ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने गवर्मेंट आफ् इण्डिया को शिक्षा के सम्बंध में एक डिस्पैच (राजपत्र) भेजा। इसी डिस्पैच के प्रकाशित होने के समय से भारतवर्ष में वर्तमान शिक्षाप्रणाली प्रचलित हुई है। सन १८८२ के शिक्षा कमीशन के मतानुसार १८५४ के पहले भारतवर्ष में ६ लाख लड़कों को देशी चटशालों में शिक्षा दी जाती थी। १८५४ के डिस्पैच में ईस्ट इण्डिया कंपनी के डाइरेक्टरों ने यह घोषणा की थी कि,–

"यह हमारा एक बड़ा पवित्र कर्तव्य है कि हम भारतवर्ष के जनसमूह में ऐसी लाभकारी शिक्षा का प्रचार करें कि उनकी पूरी तरह नैतिक और आर्थिक उन्नति हो और इस कार्य्य में जो अधिक खर्च होगा उसे हम प्रसन्नता से देंगे।"

इस प्रकार अंगरेजी राज्य में पहले ही पहल १८५४ में शिक्षा की उन्नति का सूत्रपात हुआ। फिर दूसरी बार १८८२ में भारत के सच्चे हितैषी स्वर्गीय लार्ड रिपन के समय में भारतवर्ष में शिक्षा की उन्नति करने की ओर गवर्मेंट का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ। लार्ड रिपन ने इस बात की जांच करने के लिये एक कमीशन नियत किया कि सारे भारतवर्ष में शिक्षा की कैसी दशा है। इस कमीशन को इस बात के जांच करने की विशेष रूप से हिदायत की गई कि १८५४ के डिस्पैच में प्रारम्भिक शिक्षा के संबंध में जो नीति अवलंबन की गई थी वह कहां तक कार्य में परिणत हुई। कमीशन ने जांच की कि १८८२ में भारतवर्ष में ८५००० सर्कारी प्रारंभिक स्कूल थे और उनमें २१॥ लाख लड़के पढ़ते थे। इनके अतिरिक्त ३॥ लाख लड़के गैर-सर्कारी स्कूलों में पढ़ते थे। इस प्रकार १८८२ में २५ लाख लड़के प्रारंभिक शिक्षा पा रहे थे। प्रारंभिक शिक्षा पाने वाले इन लड़कों की संख्या उस समय की सारे भारत की जनसंख्या में १-२ फी सदी हुई। इस कमीशन ने गवर्मेंट को सम्मति दी कि,–

"यद्यपि इस समय भारतवर्ष में सब प्रकार की शिक्षाओं की उन्नति करने की जरूरत है किन्तु अब से जनसमूह में प्रारम्भिक शिक्षा का पूर्ण रूप से प्रचार करना गवमैंट का पहला धर्म होना चाहिये । भिन्न २ प्रान्तों की अवस्थाओं के अनुसार कानून बना कर प्रारम्भिक शिक्षा का पूर्ण रूप से विस्तार होना चाहिये।"

यह हुई १८८२ में प्रारम्भिक शिक्षा की दशा। अब देखिये कि आज २५ वर्ष बाद भारतवर्ष में प्रारम्भिक शिक्षा को क्या उन्नति हुई है । इस समय ११३,००० प्रारम्भिक स्कूल हैं और उनमें ३६ लाख लड़के और लड़कियां पढ़ते हैं। गैर-सर्कारी स्कूलों में ६ लाख लड़के पढ़ते हैं। इस प्रकार इस समय ४५ लाख लड़के यानी भारतवर्ष की सारी जनसंख्या में १·६ फी सदी व्यक्ति प्रारंभिक शिक्षा पारहे हैं। १८८२ में सारी जनसंख्या में १·२ फी सदी व्यक्ति प्रारंभिक शिक्षा पारहे थे और इस समय १·६ फी सदी व्यक्ति पा रहे हैं। इसमें भी अधिक उन्नति पिछले पांच वर्षों ही में हुई। भारतीय शिक्षा के डाइरेक्टर-जनरल मि० आरेंज ने १६०७ की रिपोर्ट में इस बात की शिकायत की थी, कि "पिछले पचीस वर्षों में भारतवर्ष में प्रारंभिक शिक्षा की बहुत ही कम उन्नति हुई है और यदि भविष्य में प्रारंभिक शिक्षा की उन्नति पिछले पांच वर्षों की तरह भी हो तब भी जनसमूह में पूरी तरह प्रारंभिक शिक्षा फैलने में अभी सैकड़ों वर्ष लग जांयगे" लार्ड कर्जन ने भी इस बात को स्वीकार किया था कि 'प्रारंभिक शिक्षा के संबन्ध में गवर्मैंट ने अपना कर्त्तव्य पालन नहीं किया है।' * १८८२ में प्रारंभिक शिक्षा में ३६ लाख रुपया वार्षिक व्यय होता था, आज कल ६३ लाख रुपया व्यय होता है। इस व्यय में म्युनिसिपल बोर्डों और सर्व साधारण की सहायता भी सम्मिलित है। २५ वर्षों में प्रारंभिक शिक्षा में केवल ५७ लाख रुपया व्यय बढा है। अब इन्हीं २५ वर्षों में जमीन का लगान ८ करोड़, फौजी खर्च १३ करोड़, और सिविल विभाग का खर्च ८ करोड़ बढ़ गया है १८८२ में गवर्मैंट को भूमि कर से २१ करोड़ की आमदनी थी अब २६ करोड़ की आमदनी है; उस समय १६ करोड़ फोज में खर्च होता था अब ३२ करोड़ खर्च होता है; तब ११ करोड़ रुपया सिविल विभागों में खर्च होता था अब १५ करोड़ रुपया खर्च होता है। १८८२ में रेलवे में औसत से ४ करोड़ रुपया वार्षिक मूलधन में लगाया जाता था अब १५ करोड़ रुपया लगता है। इन सब बातों को देख सुन कर और गवर्मैंट हमारे हित के लिए जो जो काम समय समय पर करती है उस के लिए उसके कृतज्ञ होते हुए भी यह कहना हम सर्वथा उचित समझते हैं कि भारतवासियों को प्रारंभिक शिक्षा देने में गवर्मैंट ने पूर्ण रूप से अपना कर्त्तव्य पालन नहीं किया है। यदि गवर्मैंट चाहती तो अब तक भारतवर्ष में प्रारंभिक शिक्षा का बहुत अधिक प्रचार होगया होता और हमें यह कहने का अवसर न मिलता कि अभी तक भारतवर्ष में सारी जनसंख्या में केवल १०६ फी सदी व्यक्ति ही प्रारंभिक शिक्षा पा रहे हैं। अवश्य ही भारतवर्ष में प्रारंभिक शिक्षा की इतनी कम उन्नति होना उस इंगलैंड के लिए जो स्वाधीनता और सभ्यता के सब से ऊँचे शिखर पर पहुँच चुका है और जिस के अधीन रहते हम लोगों को १५० वर्ष से अधिक हो गए हैं गौरव की बात नहीं कही जा सकती और इस के लिए हम अंगरेजों की प्रशंसा नहीं कर सकते। अधिक टिप्पणी करने की जरूरत नहीं।

जनसमूह में प्रारंभिक शिक्षा के पूर्ण रूप से प्रचार करने के लिए शिक्षा को अनिवार्य करना आवश्यक है। जब शिक्षा अनिवार्य कर दी गई तो गरीबों को गिरा न गुजरने के लिए शिक्षा मुफ्त कर देनी चाहिए। पहिले शिक्षा अनिवार्य

*'I am one of those who think that the Government has not fulfilled its duty in this respect.'

की जाती है, पीछे मुफ्त। अभी तक सारे संसार में केवल इसी उपाय के अवलम्बन से जनसमूह में शिक्षा का प्रचार हुआ है। यदि भारतवर्ष में भी जनमूह में शिक्षा का प्रचार करना है तो भारतवर्ष में भी प्रारंभिक शिक्षा को पहले अनिवार्य और पीछे मुफ्त करने के अतिरिक्त और कोई दूसरी गति ही नहीं है। अब हम यहां कुछ विशेष देशों के उदाहरण देकर यह दिखाते हैं कि उनमें प्रारंभिक शिक्षा को पहले अनिवार्य और पीछे मुफ्त करने के लिये कौन २ उपाय काम में लाये गये हैं। पहले इंगलैंड ही को लीजिये। १८७० में प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य करने का प्रयत्न किया गया। १८७० के कानून के अनुसार गवर्मेंट ने जनसमूह में शिक्षा प्रचार करने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ली। इस कानून का मुख्य उद्देश्य यही था कि उचित रूप से शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय। इस कानून द्वारा स्कूल बोर्डों को अधिकार दिया गया था कि वे लड़कों को स्कूल में आने के लिये बाध्य करें। इसके बाद १८७६ और १८८० में दो कानून और बने। १८७६ के क़ानून ने माता पिताओं को अपने २ लड़कों को स्कूल भेजने के लिये बाध्य किया और जहां स्कूल बोर्ड नहीं थे वहां स्कूलों में लड़कों के भेजने के लिये कमेटियां बनाई गईं। १८८० के कानून ने स्कूल बोर्डों और उक्त कमेटियों को बाध्य किया कि अपने अलग नियम बनावें और उन्हें काम में लावें और १८८२ में सारे देश में शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। अब देखिये कि १८७१ और १८८२ के बीच में विद्यार्थियों की संख्या कितनी बढ़ी। १८७१ में इंगलैंड और वेल्स की सारी जनसंख्या दो करोड़ २७ लाख थी और यह हिसाब लगाया गया था कि उस समय कम से कम ३० लाख लड़कों को स्कूल में जाना चाहिये। किंतु उस समय केवल १३ लाख यानी स्कूलों में जाने योग्य लड़कों में केवल ४३ फ़ी सदी लड़के स्कूलों में जाते थे। १८७६ में २० लाख यानी स्कूलों में जाने योग्य लड़कों में ६६ फी सदी से भी अधिक लड़के स्कूलों में जाने लगे। अन्त में १८८२ में स्कूल में जाने वाले लड़कों की संख्या ३० लाख से भी बढ़ गई और स्कूल में जाने योग्य लड़कों में बच्चा २ स्कूल में जाने लगा। इस प्रकार ११ वर्षों में सारे जनसमूह में शिक्षा फैल गई। १८९० में प्रारंभिक शिक्षा मुफ़्त कर दी गई।

अब उस जापान को लीजिये जिसका नाम लेते ही भारतवासियों के हृदय में नई आशा का सञ्चार होने लगता है। जापान में अन्य बातों के सुधार के साथ शिक्षा का सुधार भी १८७२ में प्रारंभ हुआ। उस वर्ष जापान के सम्राट् की ओर से जापान की शिक्षा प्रणाली में एक नई नीति अवलंबन करने की आज्ञा निकली। इस राजाज्ञा में यह घोषित किया गया कि 'अब से शिक्षा का इस तरह प्रचार किया जायगा कि किसी गांव में कोई कुटुंब मूर्ख न रहे और किसी कुटुंब में कोई मनुष्य मूर्ख न रहे।' चाहे कुछ लोग इन शब्दों को जापान का उच्चाभिलाष ही कहें किंतु उसने ३० वर्ष में अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी है। जिस समय यह आज्ञा निकली थी उस समय स्कूल में जाने योग्य लड़कों में २८ फी सदी लड़के स्कूल में जाते थे। इस समय ९० फी सदी से भी अधिक लड़के स्कूलों में पढ़ते हैं। जापान एक दरिद्र देश है और ३० वर्षों में उसने इतना कर के दिखा दिया यह कोई साधारण बात नहीं। यद्यपि पहले जापान में अनिवार्य शिक्षा नाम मात्र को जारी हो गई थी किंतु वह यथार्थ रूप से काम में नहीं लाई गई। १८९० में लड़कों को स्कूलों में भेजने का पूरा प्रयत्न किया गया और अलग २ अवस्था के अनुसार अनिवार्य शिक्षा देने का समय उसे तीन से चार वर्ष का कर दिया गया। १९०० में सर्वत्र ३ वर्ष तक अनिवार्य शिक्षा देने का समय नियत किया गया और यथासंभव प्रारंभिक शिक्षा मुफ्त दी जाने लगी।

अब हम इस बात पर विचार करते हैं कि अब भारतवर्ष में जनसमूह में शिक्षा का किस तरह प्रचार किया जाय। यह हम ऊपर दिखा ही चुके हैं कि यह कार्य केवल प्रारंभिक शिक्षा को अनिवार्य और मुफ्त करने से हो सकता है। सन १९०७ में लार्ड मिण्टो की गवर्मेंट ने एक तरह से प्रारंभिक शिक्षा को मुफ्त करना निश्चय कर लिया था और गवर्मेंट आफ़ इण्डिया के फाइनेंस मिनिस्टर सर ऐडवर्ड बेकर ने कहा था कि 'यद्यपि सालाना चिट्ठे (Budget) में प्रारंभिक शिक्षा के मुफ्त करने के संबंध में कोई रकम स्वीकार नहीं की गई है किंतु सेक्रेटरी आफ् स्टेट ने आश्वासन दिया है कि यदि गवर्मेंट इसके लिये कोई उचित व्यवस्था तैयार करेगी तो वे उसे स्वीकार कर लेंगे।' इधर प्रान्तीय गवर्मेंटों ने गवर्मेंट आफ् इण्डिया को सम्मति दी कि प्रारंभिक शिक्षा मुफ्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर क्या था सब सुधार जहां का तहां धरा रह गया। यों टाल मटोल करते दो तीन वर्ष बीते। उधर कौंसिलों में सुधार होने से भारतवासियों को कौंसिलों में किसी विषय पर प्रस्ताव उपस्थित करने का अधिकार मिला। इस अधिकार का उपभोग कर माननीय मि० गोखले ने पारसाल १८ मार्च को वाइसराय की कौंसिल में यह प्रस्ताव उपस्थित कियाः-

"यह कौंसिल सम्मति देती है कि सारे भारतवर्ष में प्रारंभिक शिक्षा को अनिवार्य और मुफ्त करने का कार्य आरंभ कर दिया जाय और इस विषय में सब बातों पर निश्चित रूप से विचार करने के लिये सर्कारी अफ़सरों और गैर सर्कारी लोगों का एक कमीशन नियत किया जाय।"

१८५४ के डिस्पैच के २८ वर्षों बाद १८८२ में लार्ड रिपन के शिक्षा कमीशन ने प्रारंभिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया और यह बड़ी विचित्र बात है कि ठीक २८ वर्षों बाद मि० गोखले ने वाइसराय की कौंसिल में इस मामले को उठाया। अपने प्रस्ताव के समर्थन में मि० गोखले ने एक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण और मर्मस्पर्शिनी वक्तृता दी। मि० गोखले की इस वक्तृता से इस ओर भारतवासियों का विशेष रूप से ध्यान आकर्षित हुआ। मैं भी मि० गोखले की इस वक्तृता और उनके प्रस्ताव के संबंध में वाइसराय की कौंसिल में जो वादविवाद हुआ उसे पढ़ कर यह लेख लिखने के लिए प्रेरित हुआ हूं और इसके लिखने में मुझे मि० गोखले की इस वक्तृता से और उस वक्तृता से जो उन्होंने अभी १६ मार्च १९११ को वाइसराय की कौंसिल में प्रारंभिक-शिक्षा-बिल उपस्थित करते हुए अधिक सहायता मिली है। वाइसराय की कौंसिल में मि० गोखले के उक्त प्रस्ताव का प्रजा के प्रतिनिधियों ने ही नहीं किन्तु भारतीय शिक्षा के डाइरेक्टर-जनरल मि० आरेंज जैसे योग्य व्यक्ति मुक्तकंठ से समर्थन किया। गवर्मेंट की ओर से इस बात के आश्वासन दिलाने पर कि उनकी बातों पर गवर्मेंट पूरी तरह विचार करेगी मि० गोखले ने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया। मि० गोखले ने अपनी वक्तृता में गवर्मेंट को कई बातों के करने की सम्मति दी थी। उन्होंने यह भी कहा था कि भारतीय शिक्षा के डाइरेक्टर-जनरल का पद तोड़ दिया जाय और उसकी जगह पहले होम डिपार्टमेंट में शिक्षा के लिए एक अलग सेक्रेटरी नियत किया जाय और वाइसराय की कार्य्यकारिणी समिति में शिक्षा के लिए एक अलग मेम्बर बैठे। मिस्टर गोखले की यह बात बहुत जल्द मान ली गई और शिक्षा के डाइरेक्टर-जनरल का पद तोड़ कर गवर्मेंट आफ् इंडिया का एक अलग शिक्षा विभाग बनाया गया। इस नए शिक्षा-विभाग के अधिपति माननीय मि० बटलर हैं। अब इस साल १६ मार्च १९१०, को वाइसराय की कौंसिल में मि० गोखले ने अपना प्रारंभिक-शिक्षा-बिल उपस्थित किया इस बिल का मर्मांश नीचे दिया जाता है:—

सम्मति दी कि 'गवर्मेंट बालकों के माता पिताओं को वाध्य करे कि वे उन्हें देशी भाषा में उत्तम शिक्षा दें।' फिर १६०५ में शिक्षा की विशेष रूप से जांच करने के लिये एक कमीशन वैठा और इस कमीशन की अधिकांश सम्मति को उपनिवेशों के मंत्री ने* स्वीकार किया। इस कमीशन ने इस प्रकार सम्मति दी थी (१) जिन जिन स्थानों में गवर्नर घोषणा कर देंगे वहां २ स्कूलों में ६ वर्ष तक लड़कों को अवश्य जाना होगा (२) लड़कों से फीस बिलकुल न ली जाय (३) लड़कियों को भी अधिकता से शिक्षा दी जाय (४) अपने २ स्थानों में बालकों की शिक्षा की देखरेख करने के लिये जिला और प्रान्तीय कमेटियां बनाई जांय (५) सड़क के कर (Road cess) से जो आमदनी हो वह इन कमेटियों को दे दी जाय और इस रुपये से एक शिक्षा फण्ड स्थापित किया जाय। यह नई व्यवस्था पहले ही पहल १६०८ में काम में लाई गई। १६०८ में सीलोन के गवर्नर ने १६ जिलों में प्रारंभिक शिक्षा को अनिवार्य करने की घोषणा की। १६०६ की रिपोर्ट में इस व्यवस्था के काम में लाये जाने के संबंध में इस प्रकार लिखा है।

"अभी तक इस व्यवस्था के जारी करने में कोई दिक्कत उपस्थित नहीं हुई है और इस बात की पूर्ण आशा है कि इस कार्य में कुछ स्कूलों के मैनेजरों ने जो २ कठिनाइयां उपस्थित होने की बात कही थी वे कोई भी कठिनाइयां भविष्य में न उठेंगी। आशा है कि इस साल यह व्यवस्था सब जिलों में पूरी तरह जारी हो जायगी।"

१६०१ में लङ्का में प्रारंभिक स्कूलों में २३७,००० लड़के यानी वहां की सारी जनसंख्या में ६६ फी सदी व्यक्ति शिक्षा पा रहे थे। और भारतवर्ष में १६०३ में भी सारी जनसंख्या में केवल १·६ फी सदी व्यक्ति प्रारंभिक शिक्षा पाते थे। हा, यह देख कर किस सहृदय का हृदय टूक टूक और नेत्रों से अश्रुपात हुए विना रहता कि रामचन्द्र की अयोध्या (भारतवर्ष) में रावण की लङ्का के समान भी प्रारंभिक शिक्षा का प्रचार नहीं है! ये सब बातें पूर्ण रूप से भारतवर्ष के दुर्भाग्य की सूचक होने के सिवा और कुछ नहीं है।

अब भारतवर्ष ही में बड़ौदा राज्य ने प्रारंभिक शिक्षा के संबंध में जो व्यवस्था की है वह सुनिये। सन १८६३ में श्रीमान् गायकवाड़ ने परीक्षा करने के लिये पहिले पहल अमरेली तालुका के कुछ गांवों में अनिवार्य और मुफ्त शिक्षा का प्रचार किया। ८ वर्ष परीक्षा करने के बाद श्रीमान ने पूरे अमरेली तालुका में प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य और मुफ्त कर दी। इसके ६ वर्ष बाद १६०७ में सारे बड़ौदा राज्य में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य और मुफ़्त कर दी गई और हुक्म दे दिया गया कि ६ वर्ष से १२ वर्ष तक के लड़कों और ६ वर्ष से १० वर्ष तक की लड़कियों को स्कूलों में अवश्य पढ़ना होगा। अब यह हुक्म दे दिया गया है कि ११ वर्ष तक की लड़कियों का पढ़ना आवश्यक है। १६०६ में बड़ौदा में १६५,००० यानी वहां की सारी जनसंख्या में ८·६ व्यक्ति प्रारंभिक शिक्षा पारहे थे। इस समय स्कूल में जाने योग्य लड़कों में ७६·६ फी सदी लड़के बड़ौदा में और केवल २१·५ फी सदी लड़के बृटिश भारतवर्ष में शिक्षा पा रहे थे। इसी समय जब बड़ौदा में स्कूल में जाने योग्य लड़कियों में ४७·६ फी सदी लड़कियां शिक्षा पा रही थीं तब बृटिश स्कूल में पढ़ने योग्य लड़कियों में ४ फी सदी लड़कियां पढ़ती थीं। बड़ौदा में १६०६ प्रारंभिक शिक्षा में ७॥ लाख रुपया यानी सारी जनसंख्या में आदमी पीछे ।-)॥ खर्च हुआ किंतु बृटिश भारतवर्ष में आदमी पीछे केवल -) व्यय होता है।

* सीलोन इंगलैंड के आधीन एक उपनिवेश (colony) है और कोलोनियों की देख रेख करने के लिए इंगलैंड में एक कोलोनियल सेक्रेटरी नियत है।

अब फिलिपाइन्स को लीजिये। १३ वर्ष हुए कि फिलिपाइन द्वीप स्पेन के अधिकार में से अमेरिका के प्रभुत्व में आया। स्पेन के समय में फिलिपाइन वालों को शिक्षा देने का कोई नियम नहीं था किन्तु फिलिपाइन्स के अमेरिका के राज्य में आते ही वहां जनसमूह को नियमित रूप से प्रारंभिक शिक्षा देने की व्यवस्था की गई। यह नहीं कहा जा सकता कि फिलिपाइन वाले भारतवासियों से अधिक बुद्धिमान् हों या पढ़ने लिखने में भारतवासियों से उनकी अधिक रुचि हो किन्तु १३ वर्षों में वहां जो शिक्षा की उन्नति हुई है उसके लिए अमेरिका के उच्च उद्देश्यों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करनी पड़ेगी। वहां शिक्षा मुफ्त दी जाती है और शिक्षा-विभाग के अधिकारी शिक्षा को अनिवार्य करने की सम्मति देते हैं पर अभी तक वहां अनिवार्य शिक्षा देने के लिए कोई कानून नहीं बना है। किन्तु लोगों में शिक्षा का प्रेम इतना उमड़ चला है कि कितनी ही म्युनिसिपैलिटियों ने अपने अपने हाते में बलपूर्वक शिक्षा देने का हुक्म जारी कर दिया है और लोग प्रसन्नता से इस हुक्म की तामील कर रहे हैं। यद्यपि इस में सन्देह है कि म्युनिसिपैलिटियों के ये हुक्म कानूनन कहां तक जायज़ (मानने के योग्य) हैं पर वहां इनके जायज़ या नाजायज़ होने पर किसी ने ध्यान तक नहीं दिया है। १९०३ में १५०,००० लड़के प्रारंभिक शिक्षा पाते थे, १९०८ में ३६०,००० लड़के शिक्षा पाने लगे। फिलिपाइन्स में १९०३ में यानी सारी जनसंख्या में २ फी सदी व्यक्ति प्रारम्भिक शिक्षा पा रहे थे, १९०८ में ५ फी सदी यानी दूने से भी अधिक व्यक्ति शिक्षा पाने लगे। इसी अरसे में देखिए भारतवर्ष में प्रारंभिक शिक्षा की क्या उन्नति हुई है। १९०३ में भारतवर्ष में सारी जनसंख्या में १.६ फी सदी व्यक्ति प्रारंभिक शिक्षा पा रहे थे, १९०८ में १.९ फी सदी व्यक्ति प्रारंभिक शिक्षा पाने लगे। फिलिपाइन्स भी विदेशियों के अधीन है और भारतवर्ष भी विदेशियों के अधीन है। यह भी स्मरण रखने के योग्य है कि फिलिपाइन्स एक छोटा सा द्वीप है-फिलिपाइन्स को जनसंख्या केवल ७० लाख है और भारतवर्ष इंगलैंड के राजमुकुट में सब से चमकता हुआ रत्न है।

अब लङ्का (सीलोन) की कथा सुनिये। लङ्का की दशा दक्षिण भारत से मिलती जुलती है। कुछ लोग यह कह देंगे कि इंगलैंड एक पश्चिमीय देश है और भारतवर्ष एक पूर्वीय देश है, इंगलैंड और भारतवर्ष की क्या तुलना ? यह सिद्धांत बिलकुल सारहीन है क्योंकि पश्चिमीय देशों में भी लोग आरंभ में जनसमूह में शिक्षा प्रचार करने के विरोधी थे और वहां भी अनिवार्य शिक्षा देने की प्रणाली थोड़े ही दिनों से कोई चालीस पचास वर्षों के भीतर ही प्रचलित हुई है और जापान, फिलिपाइन्स जैसे पूर्वीय देशों में भी यह प्रणाली पूर्ण सफलता से काम में लाई गई है। अब यदि उक्त सिद्धांत को भी कुछ मान लिया जाय और यह भी मान लिया जाय कि जापान और फिलिपाइन्स पूर्वीय देश होने पर भी उनका भारतवर्ष से कोई सम्बन्ध नहीं तब भी यह कोई नहीं कह सकता कि लङ्का और भारतवर्ष की तुलना करना ठीक नहीं। लङ्का में इंगलैंड का राज्य है और उसी इंगलैंड की पताका भारतवर्ष में भी फहरा रही है। लङ्का में प्रारम्भिक शिक्षा सर्कारी और सर्कार की सहायता से चलने वाले इन दो तरह के स्कूलों में दी जाती हैं। लङ्का में पहली तरह के एक तिहाही और दूसरी तरह के दो तिहाही स्कूल हैं। सर्कारी स्कूलों में बहुत काल से बालक बलपूर्वक पढ़ने के लिये बुलाये जाते हैं और जो माता पिता अपने बालकों को पढ़ने नहीं भेजते उन पर गांव का पंच कुछ थोड़ा सा जुर्माना कर देता है। १९०१ में गवर्मेंट ने इस बात की जांच करने के लिये एक कमेटी नियत की कि लङ्का में प्रारंभिक शिक्षा का अच्छी तरह कैसे प्रचार किया जाय। इस कमेटी ने गवर्मेंट को

"अनिवार्य शिक्षा का प्रचार करने में नियमित व्यय से जो व्यय अधिक होगा उसके लिये गवर्नर-जनरल-इन-काउन्सिल यह नियम बनावेंगे कि बढ़ा हुआ व्यय प्रान्तीय गवर्मेंट और म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक बोर्ड में किस हिसाब से बांटा जाय। इस बात का नियम भी गवरनर-जनरल-इन-काउन्सिल ही बनावेंगे कि भिन्न २ स्थानों में कितने फी सदी लड़के या लड़कियों को स्कूल में जाना चाहिये। इस कानून का प्रचार सारे भारतवर्ष में होगा। हर म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड प्रांतीय गवर्मेंट की अनुमति लेकर और गवरनर-जनरल-इन-काउन्सिल के बनाये नियमों को स्वीकार करके अपने २ यहां घोषणा द्वारा इस कानून को जारी कर सकते हैं। जहां यह कानून जारी हो चुका हो वहां रहने वाले ६ वर्ष से १० वर्ष तक के लड़कों के माता-पिता या रक्षकों का धर्म होगा कि वे अपने २ लड़कों को स्कूल में भेजें। यदि (१) लड़के के मकान से स्कूल १ मील से अधिक दूर हो या (२) उसका रक्षक उसे धार्मिक विचार से स्कूल में भेजना न चाहे या (३) वह बीमार हो या (४) वह खेती या अन्य आवश्यक घर के काम में लगा हो (५) या वह घर ही पर अच्छी तरह शिक्षा पा रहा हो तो इन दशाओं में उसे स्कूल जाने की ज़रूरत नहीं है। स्कूल में जाने की उम्र के लड़कों को कोई आदमी नौकर नहीं रख सकेगा, यदि कोई ऐसा करेगा तो उस पर २०) तक जुर्माना होगा। जहां पर यह कानून जारी होगा वहां की म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक बोर्ड को स्कूल के लिये ऐसे स्थान आदि का प्रबन्ध करना पड़ेगा जैसा शिक्षा-विभाग आवश्यक समझे। जिस जगह यह कानून जारी हो चुका हो वहां की म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक बोर्ड प्रांतीय गवर्मेंट की मंजूरी से अपने यहां एक अलग शिक्षा-कर लगा सकते हैं, पर इस टैक्स की सब आमदनी प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार ही में लगाई जायगी। इस कानून के अनुसार जिन बालकों को शिक्षा दी जायगी उनके माता-पिताओं या रक्षकों की आमदनी १०) रु० मासिक से अधिक न होने पर उनसे फीस न ली जायगी और दूसरे गरीब लड़कों की फीस भी थोड़ी बहुत माफ की जायगी। म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अपने २ हाते में एक ऐसी कमेटी (School Attendance Committee) बनावेंगे जो इस बात का प्रबन्ध करे कि स्कूल में जाने के योग्य सब लड़के स्कूल में जा रहे हैं इस कमेटी के काम करने के नियमों को प्रांतीय गवर्मेंट की अनुमति से म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक बोर्ड ही बनावेंगे। यदि यह कमेटी समझेगी कि कोई स्कूल में जाने के योग्य लड़का स्कूल में नहीं जाता तो वह मैजिस्ट्रेट से उसके पिता या रक्षक की शिकायत करेगी। मैजिस्ट्रेट हुक्म देगा कि उस लड़के को फलानी तारीख के पहले स्कूल में भेज देना चाहिये। यदि इस हुक्म की तामील नहीं होगी तो फिर उस लड़के के पिता या रक्षक पर मुकदमा चलाया जायगा और उस पर पहले पहिल २) रु० तक जुर्माना होगा और फिर बार २ यही अपराध करने पर हर अपराध के लिये १०) रु० तक जुर्माना होगा। प्रांतीय गवर्मेंट किसी विशेष जाति को इस कानून से बरी कर सकती है। जहां बालकों को अनिवार्य शिक्षा देने के लिये यह कानून जारी हो चुका है वहां की म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड प्रांतीय गवर्मेंट की अनुमति लेकर गवरनर-जनरल-इन-काउन्सिल के नियमों को स्वीकार करके लड़कियों के लिये भी यह कानून जारी कर सकते हैं।"

माननीय मि० गोखले ने इस बिल का उद्देश्य इस प्रकार बतलायाः—"इस बिल का उद्देश्य भारतवर्ष की प्रारंभिक-शिक्षा-प्रणाली में अनिवार्य शिक्षा देने के सिद्धान्त का प्रचार करना है। अन्य देशों के अनुभव से यह पूरी तरह सिद्ध

हो चुका है कि किसी न किसी रूप में बल [Compulsion] का प्रयोग किये बिना जनसमूह को पूरी तरह प्रारंभिक शिक्षा नहीं दी जा सकती और अब वह समय आ गया है कि भारतवर्ष में भी यह सिद्धान्त काम में लाया जाय।"

मि० गोखले ने अपने बिल का मसौदा बड़ी ही होशियारी से बनाया है। पारसाल वाइसराय के कौंसिल में एक मुसलमान सज्जन ने कहा था कि आरम्भ में मुसलमान बालकों को मखतबों में कुरान और अन्य धर्मग्रन्थों की शिक्षा दी जाती है, प्रारम्भिक शिक्षा के अनिवार्य होने से उन्हें धर्म-शिक्षा मिलने में अड़चन होगी। इसी तरह एक अन्य सज्जन ने कहा था कि यदि कृषकों के बालकों को शिक्षा दी जायगी तो उन्हें खेत के काम में अपने बालकों से सहायता न मिलेगी और मजूरों को मजूरी देनी पड़ेगी। यह भी कहा गया था कि शिक्षा मिलने से मजूर महंगे हो जाँयगे। यद्यपि ये दलीलें बड़ी ही पोच हैं और इनको माननीय मि० मज़ूरलहक आदि सज्जनों ने तत्क्षण काटकर ही हवा में उड़ा दिया था किंतु मि० गोखले ने अपने बिल में यह नियम कर दिया है कि यदि किसी लड़के का रक्षक उसे धार्मिक विचार से स्कूल में न भेजना चाहे या वह लड़का खेती या अन्य घर के काम में लगा हो तो उसे स्कूल जाने की जरूरत नहीं है। इतने ही पर मि० गोखले को सन्तोष नहीं हुआ है। यदि किसी विशेष जाति या समाज के लोगों को बल पूर्वक शिक्षा में कष्ट होगा तो मि० गोखले के बिल के अनुसार प्रान्तीय गवर्मेंट उस जाति या समाज को इस कानून से बरी कर देगीं। अब और क्या चाहिये? भारतीय शिक्षा के डाइरेक्टर-जनरल मि० आरेंज ने जनसमूह में शिक्षा प्रचार करने के लिये अन्य बातों के साथ नए स्कूलों के स्थापित करने और पुराने स्कूलों के सुधार करने की भी सम्मति दी थी। मि० गोखले ने अपने बिल में इस बात का विधान किया है कि जिस जगह प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य की जायगी वहां की म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को स्कूल के लिए ऐसे मकान या अन्य स्थान आदि का प्रबन्ध करना पड़ेगा जैसा शिक्षा विभाग आवश्यक समझे। मि० गोखले के बिल में कई बातें आवश्यकता से भी अधिक कोमल हैं किन्तु फिर भी मि० गोखले अपने बिल में उचित संशोधन करने के लिए तैयार हैं। साल भर तक मि० गोखले का यह बिल गवर्मेंट और सर्वसाधारण के समस्त विचारार्थ उपस्थित रहेगा, उस के बाद उसके संबंध में उचित कार्रवाई की जायगी।

अब सब से अधिक आवश्यक बात विचार करने की यह है कि यदि भारतवर्ष में प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य और मुफ़्त कर दी गई तो इस कार्य में कितना और अधिक व्यय होगा और वह कहां से आवेगा? अभी आरंभ में मि० गोखले लड़कियों को अनिवार्य शिक्षा देने के पक्षपाती नहीं हैं, अभी वे केवल लड़कों ही को अनिवार्य शिक्षा देना चाहते हैं। इस समय भारतवर्ष में सारी पुरुषसंख्या (मर्दों) में ६ वर्ष से १० वर्ष तक के यानी स्कूल में जाने योग्य लड़के १२ फी सदी हैं। शिक्षा संबंधी पिछली पञ्चवार्षिक रिपोर्ट देखने से विदित होता है कि इस समय ४२ लाख लड़के यानी सारी पुरुषसंख्या में ३ फी सदी व्यक्ति प्रारंभिक शिक्षा पा रहे हैं। मतलब यह कि स्कूल में जाने योग्य लड़कों में चौथाई लड़के इस समय शिक्षा पा रहे हैं। उक्त रिपोर्ट के देखने से यह भी विदित होता है कि १९०६-०७ में लड़कों के स्कूलों में प्रांतीय, म्युनिसिपल, लोकल, फीस और सब मदों से १ करोड़ ३१ लाख रुपया व्यय हुआ। अब यदि सब लड़कों की सब फीस माफ कर दी जाय तो (किंतु मि० गोखले ने अपने बिल में कुछ लड़कों की कुछ फीस माफ की है) सब लड़कों को पढ़ाने में चौगुना यानी ५॥ करोड़ रुपया वार्षिक खर्च पड़ेगा। मतलब यह कि अब जो खर्च पड़ता है उस से कोई ४

करोड़ रुपया और अधिक खर्च पड़ेगा। यह चार करोड़ रुपया आज नहीं उस समय लगेगा जब भारतवर्ष में कोई बालक निरक्षर न रहेगा, यदि २० वर्ष में भी भारतवर्ष में सब बालकों को प्रारंभिक शिक्षा दी जा सके तो मि० गोखले इस बात से बड़े सन्तुष्ट होंगे। अब यह रुपया कहां से आवे ? मि० गोखले चाहते हैं कि बालकों को शिक्षा देने की ज़िम्मेदारी गवर्मेंट आफ़ इंडिया अपने ऊपर ले और जो व्यय हो उस में तीन हिस्सों में २ हिस्सा वह दे और १ हिस्सा म्युनिसिपैलिटी आदि से ले। इस तरह सब बालकों को शिक्षा देने में गवर्मेंट के हिस्से में २ करोड़ ६६ लाख रुपया पड़ेगा और २० वर्षों बाद उसे इतना रुपया सालाना खर्चना पड़ेगा। पहले गवर्मेंट की नियमित आय ही से यह खर्च अच्छी तरह निकल सकता है। गवर्मेंट आफ़ इंडिया के खजांची सर ऐडवर्ड बेकर ने हिसाब लगाया था कि गवर्मेंट की आय में नियमित रूप से १ करोड़ २० लाख की वृद्धि होती है। फिर यदि इतने से भी काम न चले तो गवर्मेंट के अन्य विभागों में खर्च कम किया जाय। आवश्यकता पड़ने पर टैक्स भी लगाना चाहिए। माननीय मि० गोखले तो यहां तक कहते हैं कि यदि कहीं से भी प्रारम्भिक शिक्षा के लिए रुपया न मिले तो नमक ही पर ॥) मन का टैक्स बढ़ा दिया जाय; इससे यदि भारतवासियों को कुछ कम नमक भी खाने को मिले तो चिन्ता की बात नहीं किन्तु उनका मूर्ख रहना अच्छा नहीं। मैं तो यहां तक कहता हूं कि यदि प्रारम्भिक शिक्षा के लिए गवर्मेंट को ऋण भी लेना पड़े तो ऋण ले कर भी उसे लोगों को शिक्षा देनी चाहिए। गवर्मेंट कितने ही लाभकारी कार्य्यों के लिए ऋण लिया करती है। मैं नहीं जानता कि लोगों को शिक्षा देने से बढ़कर कौनसा कार्य्य अधिक लाभकारी है ? ऐसी ही जगह "ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत" की कहावत का पूरी तरह सदुपयोग हो सकता है।

अब दो बातें लिख कर मैं इस लेख को समाप्त करता हूं। यदि भारतवर्ष में प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य और मुफ़्त करने में गवर्मेंट को कुछ भी आगा पीछा हो सकता है तो यही (१) अधिक व्यय के लिए रुपया कहां से आवे ? (२) कहीं बल पूर्वक शिक्षा देने से लोगों में असन्तोष न फैले ?

यह निश्चय है कि यदि गवर्मेंट प्रारंभिक शिक्षा को अनिवार्य और मुफ्त करना ठान ले तो पहिले कारण के लिए यह कार्य्य किसी तरह रुक नहीं सकता। यदि बंग भंग के लिए जिससे बंगालही नहीं सारे भारतवर्ष के लोग असन्तुष्ट हैं शासन में खर्च बढ़ाने के लिए भी गवर्मेंट के पास पूरी तरह रुपया है तो हम नहीं मान सकते कि इच्छा करने पर गवर्मेंट के पास प्रारंभिक शिक्षा के अनिवार्य और मुफ्त करने के लिए जिस से सारे भारतवर्ष के लोगों को पूर्ण सन्तोष होगा रुपए की कमी होगी। अब दूसरे कारण के लिए यह वक्तव्य है कि भारतवर्ष में प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य करना पहले ही पहल भारतवर्ष में बल (Compulson) का प्रयोग करना नहीं है। गवर्मेंट पहले भी अच्छे कामों में बल का प्रयोग कर चुकी है। भारतवर्ष में बल का प्रयोग करना नई बात नहीं है। माननीय मालवीय जी ने पारसाल वाइसराय की कौंसिल में बहुत ही ठीक कहा था कि भारतवर्ष में लोगों को बलपूर्वक जबरदस्ती—टीका लगाया जाता है। यदि गवर्मेंट अन्य देशों की अवस्था से भारतवर्ष की दशा भिन्न समझे तब भी वह यह नहीं कह सकती कि बृटिश भारतवर्ष की दशा बड़ौदा राज्य से भिन्न है। जब बड़ौदा और लङ्का में भी बालकों को ६ वर्ष तक अनिवार्य शिक्षा देने का नियम है तब यह नहीं कहा जा सकता कि बृटिश भारतवर्ष में बालकों को ४ वर्ष तक भी अनिवार्य शिक्षा देना उचित नहीं। जापान में जब स्कूल में जाने योग्य २८ फी सदी लड़के स्कूल में जाते थे उस समय प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य की

गई। मि० गोखले चाहते हैं कि भारतवर्ष में जिस जगह स्कूल में जाने योग्य ३३ फी सदी लड़के स्कूल जाते हों उस जगह बालकों को अनिवार्य शिक्षा दी जाय। हमारी समझ में यदि गवर्मेंट लोगों को सच्चा राजभक्त बनाना चाहती है तो कुछ तो वह प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य और मुफ्त कर अपनी सच्ची प्रजावत्सल्यता का परिचय दे। इस समय लोगों में शिक्षा के प्रचार के लिए कितना अधिक उत्साह और प्रेम उमड़ रहा है उसका इसी से पता लगता है कि हिज़ हाईनेस आगाखां मुसलमान विश्वविद्यालय के लिए २० लाख रुपया एकत्र कर चुके हैं और हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए ३ करोड़ रुपया एकत्र करने के लिए माननीय पं० मदनमोहन मालवीय बद्धपरिकर हैं और उस के लिए कलकत्ते में ८ लाख एकत्र भी कर चुके हैं। ऐसी दशा में हमें आशा है गवर्मेंट लोगों को कभी निराश न करेगी और मि० गोखले के प्रारम्भिक शिक्षा-बिल का पूर्ण रूप से अनुमोदन करेगी।

हम अपने देशवासियों से निवेदन करते हैं कि उन्हें गवर्मेंट के पास तार और पत्र भेज कर मि० गोखले के बिल का समर्थन करना चाहिए। इंडियन नेशनल कांग्रेस और मुसलिम लीग प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य और मुफ़्त करने के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास कर चुकी है। किन्तु यह कार्य्य इतने महत्व का और ऐसा लोक हितकारी है कि सब सभा समाजों को इसका पूर्ण रूप से समर्थन करना चाहिए। हम प्रार्थना करते हैं कि इंडियन नेशनल कांग्रेस और मुसलिम लीग ही को नहीं किन्तु भारत-धर्म-महामण्डल, सनातन-धर्म महासभा, आर्य्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, गुरुकुल, ऋषिकुल नागरी प्रचारिणी सभा आदि सब छोटे बड़े सभा-समाजों को इस बिल के समर्थन में प्रस्ताव पास करके गवर्मेंट के पास भेजने चाहिएं। इतने ही पर हम लोगों का कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। खेद है कि मि० गोखले ने अपने बिल में प्रान्तीय गवर्मेंटों की मंजूरी लेकर म्युनिसिपैलिटियों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को जो शिक्षा के लिए एक अलग टैक्स लगाने का अधिकार दिया है उस का बंगाल के अखबारों और सभा समाजों ने विरोध किया है। यद्यपि हमारे प्रांत में भी म्युनिसिपैलिटियों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों की आर्थिक दशा है बहुत खराब पर हम देश के हित के लिए इस टैक्स का लगना आवश्यक समझते हैं। हम नहीं जानते जो लोग इस टैक्स का विरोध करते हैं उन्होंने क्या समझकर प्रारंभिक शिक्षा को अनिवार्य करने की सम्मति दी है? बिना पूरी तरह स्वार्थ त्याग किए बिना कष्ट उठाए हमें किसी लोकहितकारी कार्य में सफलता की आशा नहीं करनी चाहिए। संसार के सभ्य देशों में शिक्षा के पूर्ण प्रकाश होने से उन देशों का दुःख दारिद्र्य बिलकुल मिट गया है। अपने देश के जन्म जन्मांतरों के दुःख-दारिद्र्य को मेटने के लिए यदि हमें कुछ और भी दरिद्र होना पड़े तो हमें प्रसन्नता से दरिद्र होना चाहिए। हमारे विचारशील देशवासियों को इस शिक्षा कर के संबंध में पूर्ण रूप से विचार कर अपना मत स्थिर करना चाहिए।

नौलखा हार।

[लेखक—पं० किशोरीलाल गोस्वामी]

चौथा परिच्छेद।

दोषारोपण

(गताङ्क से आगे)

"अल्पीयसोऽप्यामयतुल्य वृत्ते-
र्महापकाराय रिपोर्विवृद्धिः॥"
(किरातार्जुनीये)

निदान, रनछोरलाल के पीछे २ घनश्याम ऊपर वाले कमरे में पहुंचा, जहां पर सेठ जमुनादास बड़ी बेचैनी के साथ टहल रहे थे।

घनश्याम को देखते ही उन्होंने उसको तरफ बढ़ कर उसका हाथ पकड़ा और रूँधे हुए गले से यों कहा-

बाबू घनश्याम दास जी, यद्यपि इस अनूठे नौलखे हार के एकाएक गायब हो जाने से मैं बहुतही दुखी हुआ हूं, तथापि इस ढंगसे आप की पाकेट तलाशी लेने की मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है; क्योंकि यह बात मैं भूला नहीं हूं कि आप एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं और मेरा निमंत्रण पाकर यहां पधारे हैं, किन्तु मेरे बन्धु सेठ रनछोरलाल का बड़ा आग्रह है कि आप के पाकेट की तलाशी लीजाय। ये तो नोचे,-समस्त सभ्य मंडली के सामने ही, आप की तलाशी लिया चाहते थे, किन्तु मैंने व्यर्थ आपको इतने लोगों के सामने अपमानित करना नहीं चाहा; इसी लिए यहां पर एकान्त में, ये आप के पाकेट की तलाशी लिया चाहते हैं, क्योंकि किसी के लिखे हुए गुमनाम रुक्के पर शायद इन को पूरा पूरा विश्वास हो गया है।"

सेठ यमुनादास की बातों को खूब ध्यान से सुन कर घनश्याम ने उदासी के साथ कहा,- "महाशय, मैं यद्यपि इस षड्यन्त्र के मर्म को भली भांति समझ रहा हूं और यह भी सोच रहा हूं कि इस कमीनेपन की कार्रवाई कौन सा नीच किस उद्देश्य की सिद्धि के लिये कर रहा है, तथापि अपने ऊपर आरोपित कलङ्क को बिलकुल मिटा देने की इच्छा से मैं तलाशी देने के लिये तैयार हूं। (रनछोरलाल की तरफ घूम कर) तो बस, अब आप अपनी कार्रवाई शुरू कीजिये और मेरी तलाशी ले लीजिये।"

इतना सुनते ही रनछोरलाल उसकी तरफ बढ़े और उन्होंने अच्छी तरह उसके कपड़ों की तलाशी ली, पर वह नौलखाहार न मिला ! पाठक महाशय यह बात जानते ही हैं कि असली नौलखाहार तो अभी बिलकुल ही गुम हो रहा है। हां, उसकी नकल का हार जो घनश्याम के पाकेट में से गिर पड़ा था, वह ललिता के द्वारा अब द्वारकादास के पास पहुंच चुका है। जब घनश्याम के पास कुछ भी न निकला तो उसने ताने के साथ रनछोरलाल से यों कहा;-

"अब थोड़ा सा 'कस्टर आयल' और मँगवाइये, जिसे मैं पीजाऊँ,-क्योंकि अगर मैं उस हार को निगल गया होऊँगा तो जुलाब लेने से वह फौरन बरामद हो जायगा।"

किन्तु हार के न पाने से रनछोरलाल का चेहरा बिलकुल झांवला पड़ गया था और हज़ार कोशिश करने पर भी फिर उनके मुंह से कोई बात न निकली।

घनश्याम ने फिर यमुनादास की तरफ़ घूम कर यों कहा, "क्यों, साहब ! अब तो मैं हार चुराने की तुहमत से बरी हुआ न !"

हार के न मिलने से यमुनादास भी रनछोर लाल की इस बेहूदा कार्रवाई पर बहुत ही नाराज हुये थे। उन्होंने घनश्याम के हाथ को पकड़ लिया और बड़ी आज़िज़ी के साथ यों कहा,-"महाशय, यद्यपि मेरे मित्र बन्धु ने बिना आगा पीछा सोचे आपका बड़ा अपमान किया, तथापि मुझे इस विषय में बिलकुल निरपराध जान कर आप अपनी सज्जनता से मुझे क्षमा कीजियेगा। वास्तव में आपके किसी गुप्त किन्तु प्रबल, शत्रु ने आपके विरुद्ध कोई भयानक षड्यन्त्र रचा है; आशा है कि निरपराधियों का सदैव सहायता करने वाला परमेश्वर आपका मंगल करेगा।"

इतना कह कर सेठ यमुनादास नीचे चले गये और घनश्याम ने घृणा के साथ रनछोर लाल की ओर देख कर यों कहा,-"मुझे चोरी के कलङ्क से बचा हुआ देख कर आप प्रसन्न तो अवश्य हुए होंगे !"

इस ताने को रनछोरलाल ने भली भांति समझा और भीतर ही भीतर कुढ़ कर यों कहा,- "तो क्या तुम समझते हो कि तुम्हें बेदाग

बचा हुआ देख कर मैं मन ही मन अप्रसन्न हो रहा हूं !"

घनश्याम,–"यह बात तो आप अपने कलेजे पर हाथ रख कर अपने मन ही से भली भांति पूछ सकते हैं !"

रनछोरलाल,–"इसका क्या अर्थ ?"

घनश्याम –"यही कि जिसमें मैं आपकी सुशीला कन्या के पाणिग्रहण की योग्यता से हाथ धो बैठूं, आप हाथ धोकर वही प्रयत्न करने लग गये हैं !!!"

रनछोरलाल,–(उस बात का जवाब न देकर) "सुनो जी, मुझ जैसे धन कुवेर की कन्या के पाने का स्वप्न देखना, तुम जैसे दरिद्र के लिये क्या उचित है ?"

घनश्याम,–"किन्तु महाशय ! आपकी कन्या मुझ से जो जान से प्रेम करती है, इसलिये ऐसे पवित्र प्रेम में बाधा देना क्या उचित है ?"

रनछोरलाल,–"नहीं, वह तुम से कभी नहीं प्रेम करती; और तुम जो उससे प्रेम करते हो, उसकी अगाध सम्पत्ति का ध्यान करके ही प्रेम करते होगे; क्योंकि मेरी सारी दौलत की एक मात्र उत्तराधिकारिणी वही तो है !"

घनश्याम,–"महाशय, आप क्यों नाहक मेरा इतना अपमान कर रहे हैं ! आप कौन हैं, यह मैं जानता हूं; नहीं तो अब तक मैं आपसे अपने अपमान का बदला चुका लिये होता हा, हम दोनों के पवित्र, विशुद्ध और अकृत्रिम प्रेम का आप यों उपहास करते ज़रा नहीं सङ्कोच करते !"

रनछोरलाल,–"बस, अब तुम अपनी ज़बान में लगाम दो और यह निश्चय जानो कि तुम्हारे साथ ललिता का व्याह कभी नहीं होगा।"

घनश्याम,–"आप भी यह निश्चय जानें कि यदि परमेश्वर सच्चे प्रेम की मर्यादा का रक्षक है तो ऐसा अवश्य ही होगा।"

रनछोरलाल,–"यदि मेरी लड़की मेरी इच्छा के विरुद्ध तुम से व्याह करेगी तो मैं अपनी सम्पत्ति में से उसे एक कानी कौड़ी भी न दूंगा।"

घनश्याम,–"आप की दौलत की न तो उसे ही कुछ आकांक्षा है और न मुझे ही पर्वा है।"

रनछोरलाल,–"तुम्हारे इस गर्व को यदि चूर न किया तो मैं ने जी ही कर क्या किया!"

इतना कहते कहते वे उस कमरे से निकल कर नीचे उतर गये और घनश्याम भी यों कहते कहते सीढ़ी उतरने लगा कि,–"आप अपनी भलमन्सी से ज़रा न बाज़ आइये, मेरा भी परमेश्वर है।"

"ठीक है, ठीक है; इसमें कोई सन्देह नहीं।" यों कहते कहते एक तरफ की कोठरी से अम्बालिका निकल आई और उस ने घनश्याम को सीढ़ी उतरने से रोक कर फिर यों कहा,–"मैं तुम को इस आरोपित कलंक से मुक्त होने के हेतु हृदय से बधाइयां देती हूं।"

घनश्याम,–"तो, क्या तुम भी इस लांछन की बात जान गई हो !"

अम्बालिका,–"हां, मुझ से अभी थोड़ी देर पहिले इस रहस्य की बातें सेठ गोकुलदास ने कहीं और एक कागज़ के पर्चे को मुझे देकर तुम्हें सावधान कर देने के लिए इधर भेजा।"

यों कह कर उसने वह पर्चा घनश्याम को दिखलाया उस पर्चे की लिखावट भी वैसे ही हाथ की थी, जिस हाथ से कि वह पर्चा लिखा गया था, जिसे रनछोरलाल ने घनश्याम को दिखलाया था।

उसे देख कर घनश्याम ने कहा,–"यह पर्चा सेठ जी ने किस से पाया ?"

अम्बालिका,–"यह बात तो वे न जान सके कि भीड़ में कौन व्यक्ति उनके हाथ में इसे देगया, किन्तु यह ठीक है कि इस की लिखावट पर उन्हें तनिक भी विश्वास नहीं है; इसी लिए इस के पातेही उन्होंने यह पर्चा देकर तुम्हें सावधान कर देने के लिए मुझे भेजा।"

घनश्याम,-"अम्बालिका ! ऐसे देवोपम, उदार और शान्त प्रकृति महात्मा के प्रेम का तुम यों अनादर कर रही हो, इसका मुझे महाशोक है। अस्तु, क्या मैं इस पर्चे को ले सकता हूं !"

अम्बालिका,-"शौक से ।"

यों कह कर उसने घनश्याम के हाथ में वह पर्चा देदिया और घनश्याम ने उसे अपने पाकेट में रख कर फिर कुछ कहना चाहा था कि इतने ही में दूसरी बगल की कोठरी में से द्वारकादास निकल आया और उसने घनश्याम के हाथ को पकड़कर यों कहा,-"वास्तव में, इस समय तो तुम इस कलंक से अवश्य बच गए, परन्तु आगे की राम जाने! अस्तु, चलो, नीचे चलें; क्योंकि तुम्हारे साथ बहुत सी बातें करनी हैं।"

इतना सुनकर घनश्याम तो द्वारकादास के साथ नीचे उतर गया, और अम्बालिका भी वहीं खड़ी खड़ी द्वारकादास को इस रंग में भंग करने के कारण खूब कोसने के बाद नीचे उतर गई।

नीचे आकर दोनों मित्र जब एक निराली जगह में पहुंचे तब द्वारकादास ने यों कहा,-"मैं यह बात अच्छी तरह से सोच रहा हूं कि किसी पाजी शैतान ने तुम्हारी सारी इज्ज़त आबरू को मिट्टी में मिला देने के लिए एक बहुत बड़े चकाबू के जाल को फैलाया है !"

घनश्याम,-"यह तो तुम सच कह रहे हो और मैं भी ऐसा ही समझ रहा हूं; किन्तु यह तो बताओ कि वह कौन सा शैतान है, जो इस तरह मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ा है !"

द्वारकादास,-"उसका हाल भी तुमसे छिपा न रहेगा, परन्तु अब मेरी सलाह यही है कि तुम चटपट यहां से चल दो; क्योंकि यद्यपि एक बेर तुम इस अपवाद से बाल बाल बच गए हो, तथापि यह सम्भव है कि फिर भी तुम पर कोई न कोई दैवी विपत्ति आजाय !"

घनश्याम,-"मैं तो समझता हूं कि इस षड्यन्त्र के मूल रनछोरलाल ही हैं और वे मुझे हर तरह से मिट्टी में मिलाया चाहते हैं, किन्तु मैं यों चोरों की तरह यहां से कभी न भागूंगा, वरन जब बारात आ जायगी, और विवाह हो जाने के बाद सब निमंत्रित व्यक्ति जाने लगेंगे तभी जाऊंगा।"

द्वारकादास,-"किन्तु मित्र! बिना समझे बूझे किसी का नाम अपने मुंह से न निकालो-और विशेष कर यहां पर; क्योंकि 'दिवा निरीक्ष्य वक्तव्यम्........।'

घनश्याम,-"अच्छा, यह तो बतलाओ कि इस रहस्य की बातें तुमने कैसे जानीं ?"

द्वारकादास,-"सुनो, मैं जब से यहां पर आया हूं,-तब से बराबर रनछोर लाल पर अम्बालिका पर ललिता पर और तुम पर अपनी आंखें जमाए हुए हूं; किन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि मेरी आंखों में धूलडाल कर कौनसा भूत तुम्हारे पाकेटमें वह नौलखाहर कब रख गया?"

घनश्याम,-(चकित होकर) "क्या मेरे पाकेट में कभी वह नौलखा हार आ भी पहुंचा था?"

द्वारकादास,-"हां, यदि असली नहीं, तो भी नकली नौलखा हार एकबेर तुम्हारे पाकेट में अवश्य आ घुसा था !'

इतना कह कर उसने घनश्याम को वे सारी बातें सुना दीं कि 'क्योंकर वह हार उसके पाकेट में से गिरा और किस तरह उसे उठा कर ललिता ने उसकी आबरू बचाई।' इसके बाद उसने उस पर्चे का हाल घनश्याम से पूछा, जो उसे द्वारकादास ने दिखलाया था। इस पर घनश्याम ने उस पर्चे की बात उसे बताकर एक और पर्चा अपने पाकेट में से निकाल कर उसे दिखलाया, जो अम्बालिका से उसको मिला था।

निदान, उस पर्चे को देख कर द्वारकादास ने उसे अपने पाकेट में रख लिया और कहा,-"इस पर्चे को मैं अपने पास रक्खे लेता हूं।"

घनश्याम,-"हां, हां, इसे तुम अवश्य रख लो; क्यों कि वह नकली हार भी तो तुम्हारे ही पास है न!"

द्वारकादास,--"हां, वह मेरे ही पास है, और इस पर्चे को भी मैं इसी लिये अपने पास रख लेता हूं कि यदि सम्भव हुआ तो इन्हों की सहायता से एक दिन में असली नौलखा हार के चुराने वाले को गिरफ़ार भी कर सकूंगा।"

घनश्याम,--"आहा, आज ललिता ही ने मेरी इज़्ज़त बचाई! यदि रुमाल निकालने के समय एकाएक वह हार मेरे जेब से निकल कर धरती पर न गिर पड़ा होता तो आज मेरी सारी आबरू खाक में मिल गई होती; और उस बेचारी को इस बात की क्या खबर होती कि मेरे पाकेट में किसी ने वह नकली या असली-हार डाल दिया है! किन्तु एं! वह हार किसने और कब मेरे जेब में डाल दिया, इसकी मुझे ज़रा भी खबर नहीं!!! हा! यदि वह हार मेरे पाकेट से आज बरामद होता तो क्या फिर मैं कभी जीते जी सभ्य मंडली के सामने अपना काला मुंह दिखला सकता था!!! अस्तु, तुम यह तो बताओ कि अब करना क्या चाहिये?"

द्वारकादास,--"अभी तक मैं यह बात नहीं सोच सका हूं कि अब क्या करना चाहिये; किन्तु कोई चिन्ता नहीं--मैं बहुत जल्द यह बात स्थिर कर लूंगा कि असली हार का चुरानेवाला कौन है और उसे क्यों कर गिरफ़ार करना चाहिये।"

घनश्याम,--"किन्तु गोकुलदास या अम्बालिका तो इस षड्यन्त्र में नहीं हैं न?"

द्वारकादास,--"नहीं, कभी नहीं; बरन यह सम्भव है कि मुझे इस हार के चोट्टे के पकड़ने में अम्बालिका से विशेष सहायता मिल सकेगी।"

घनश्याम,--"और कदाचित् सेठ यमुनादास भी इस षडयन्त्र में न होंगे।"

द्वारकादास,--"नहीं, वे भी इस षडयन्त्र से बिल्कुल अनजान हैं।"

घनश्याम,--"बस, फिर इस प्रपंच के नायक वेही महात्मा हैं, जिनका नाम मैं तुम्हारे आगे अभी कुछ देर पहले, ले चुका हूं।"

द्वारकादास,--"अस्तु, देखा जायगा।"

हमारे पाठकों को समझना चाहिए कि चतुर शिरोमणि द्वारकादास मनही मन यह बात भली भांति समझ गया था कि 'वास्तव में इस षड्यन्त्र के रचने का उस असली हार के चुराने वाला कौन व्यक्ति है; परन्तु फिर भी उसने अपने मन की बात ललिता या घनश्याम से इस लिए नहीं कही कि 'षट्कर्णोभिद्यतेमन्त्रः'। और सेठ गोकुलदास या अम्बालिका पर उस का पूरा पूरा विश्वास इस लिए था कि 'सेठ गोकुलदास ऐसा नीच कर्म कभी न करेंगे; और जो अम्बालिका घनश्याम को प्राण से बढ़ कर चाहती है, वही उस (घनश्याम) की प्रतिष्ठा भंग करे, यह कभी सम्भव नहीं।' इसके अतिरिक्त द्वारकादास ने जब अम्बालिका को ऊपर जाते देखा था, तो ललिता से 'अभी आता हूं'-यों कह कर वह भी ऊपर चला गया था और उसने उस 'हाल' की एक बगल वाली कोठरी में से उस 'हाल' में होते हुए सारे अभिनय को देखा था। इस के बाद अम्बालिका के साथ घनश्याम की जो कुछ बात चीत हुई थी, उसे भी उसने सुना था। यही कारण था कि वह इस षड्यन्त्र के रचने वाले को अपने अनुमान-प्रमाण से पहचान गया था, पर समय का खयाल कर के उसने अपने मन के भेद को भीतरही भीतर छिपा रक्खा था।

घनश्याम ने कहा,--"तो अब मुझे क्या करना चाहिए?"

द्वारकादास,--"इस समय करना तो तुम्हें यह चाहता था कि तुम मेरे कहे मुताबिक यहां से फौरन चल देते, परन्तु वैसा तुमने किया नहीं, इस लिए अब तुम चुपचाप तमाशा देखते रहो कि मैं क्या करता हूं और किस तरह उस हार के चुराने वाले को पकड़ता हूं।"

घनश्याम,--"अच्छी बात है।"

यों कह कर वह द्वारकादास के साथ वहां से कुछ ही कदम चला था कि ललिता वहां पर

पहुंच गई और उसने एक काग़ज़ के टुकड़े को घनश्याम के हाथ में देकर यों कहा,-"यह वही काग़ज़का टुकड़ा है, जिसे कुछ देर पहिले पिता जीने तुम्हें दिखलाया था। यह धर्ती में पड़ा हुआ मुझे मिला, इस लिए इसे मैंने उठा लिया।"

इतना सुनतेही द्वारकादास ने उस पर्चे को घनश्याम के हाथ से ले लिया और अपने जेब में से अम्बालिका के दिये हुए पर्चे को निकाल कर उसके साथ ललिता के दिये हुए पर्चे की लिखावट का मिलान कर के यों कहा,

"ये दोनों पुरज़े किसी एकहीव्यक्ति केहाथ से लिखे गए हैं।"

घनश्याम,-(उन दोनों पर्चों को देख कर) "ठीक है।"

द्वारकादास,-"ख़ैर, इसे भी मैं अपने पास रखता हूं।"

यों कह कर उसने उन दोनों पर्चों को अपने जेब में रख लिया, इस के बाद वे तीनों उस बड़े 'हाल' के आगे वाले दालान में पहुंचना चाहते थे, जहां पर स्त्री पुरुषों का बड़ा भारी जमाव जम रहा था, किन्तु बीच ही में अम्बालिका ने आकर उन्हें घेर लिया और बहुत ही धीरे धीरे यों कहा,-"जिस नीच ने असली नौलखेहार को चुरा कर उसकी नकल का हार (घनश्याम की ओर इशारा करके द्वारकादास से) इनके ज़ेब में डाल दिया था, निश्चय है कि वह पापी इनसे मनही मन बड़ी डाह रखता है; इसलिये किसी न किसी तरह वह दुष्ट इनकी प्रतिष्ठा को चार भले आदमियों के बीच भंग करना चाहता है। ऐसी अवस्था में, यद्यपि ये बीबी ललिता के कर्तव्य से एकबेर बाल बाल बच गये हैं, तथापि यह भी सम्भव है कि वह पाजी अब कोई दूसरा भी वार इन पर कर बैठे,-इन्हें उचित है कि अब ये चटपट और चुपचाप यहां से चल दें।

उसकी इस विचित्र बात को सुन कर घनश्याम तो कुछ न बोले, पर द्वारकादास ने आश्चर्यचकित होकर उससे यों पूछा,-"क्या, उस असली या नकली हार के रहस्य से आप कुछ जानकारी रखती हैं?"

अम्बालिका,-(हँस कर) "आपने उस हार के रहस्य की जो बातें बाबू घनश्यामदास जी से अभी एकान्त में कही हैं, उन्हें मैंने छिप कर बिलकुल सुन लिया है इसी से मैं इस रहस्य के तत्त्व को कुछ २ समझ सकी हूं; किन्तु मैं बाबू घनश्यामदास या ललिता बीबी की बैरिन नहीं हूं और न आप ही के साथ मेरा कोई आन्तरिक द्वेष है कि इस रहस्य की बात को सर्वसाधारण के सामने मैं खोल दूंगी। अतएव आप लोग मुझ से किसी तरह का भय न करें और अपना हितू जान कर मुझे भी अपनी मण्डली में मिला लें। इससे यह होगा कि मैं भी-जहां तक मुझ से हो सकेगा-आप लोगों की इस मामले में सहायता करूंगी; क्योंकि आप घनश्यामदास के जैसे सच्चे मित्र हैं, वैसेही मैं भी इनकी सच्ची शुभचिन्तका हूं, इसलिये उस असली हार के चोर के पकड़ने में यदि आप लोग मुझसे सहायता चाहेंगे तो मैं सच्चे जी से आप लोगों की सहायता करूंगी।

द्वारकादास,-"आपकी इस उपकारिता के लिये मैं आप को शुद्ध हृदय से, और अपने मित्र घनश्यामदास तथा ललिता की ओर से भी अनेक धन्यवाद देता हूं और आशा करता हूं कि आपकी अमूल्य सहायता से हमारे मित्र का विशेष उपकार होगा। निस्सन्देह, आपकी इस चतुराई के आगे मैंने हार मानी,-और हां, आपने जो यहां से चले जाने के लिये घनश्याम दास को सत्परामर्श दिया, वैसीही सलाह अभी कुछ देर पहिले इन्हें मैं भी दे चुका हूं, किन्तु खेद की बात है कि इन्होंने मेरी वह नेक सलाह ज़रा न मानी।"

अम्बालिका,-"यह इनकी बड़ी भारी भूल हुई कि इन्होंने इस उत्तम परामर्श को स्वीकार

नं किया; क्योंकि इन्हें यह बात सोच लेनी चाहिये थी कि जिस पापी के प्रथम उद्योग में घोर बाधा आ पड़ी, उसके क्रोध, गर्व और घृणा की मात्रा क्या और भी बढ़ न गई होगी! और ऐसी अवस्था में क्या वह पतित इनको फिर किसी दूसरे चकाबू में फँसाने के लिये कोई नई दुर्घटना न घटावेगा!!!"

द्वारकादास,-"अवश्यमेव; मैं आपके इस उचित तर्क का हृदय से समर्थन करता हूं।"

अम्बालिका,-"मैं अतिशय सन्तुष्ट हुई कि आपने मेरी बातों का यथोचित सन्मान किया; अस्तु-तो, ऐसी अवस्था में, जब कि ये यहां से नहीं गये हैं, इन्हें किसी आनेवाली भयङ्कर दुर्घटना का सामना करने के लिये तैयार रहना चाहिये; क्योंकि.............।"

अम्बालिका की बात पूरी भी न होने पाई थी कि तेज़ी के साथ आगे बढ़ कर रनछोरलाल ने घनश्याम का दाहिना हाथ पकड़ लिया और बड़े ही गर्व, क्रोध और झल्लाहट के साथ यों कहा,-"पाजी, बेईमान, चोट्टे! अब तेरी सारी चालाकियों का खून हो गया और आख़िर वह भयानक चोरी पकड़ ही तो ली गई!!!"

देशभक्त होरेशस।

ईसा के ७५३ वर्ष पूर्व इटली के देश में रोमुलस ने एक छोटा सा नगर बसाया जिसका नाम रोम रक्खा गया और रोमुलस ही उसका प्रथम राजा हुआ। रोमुलस के बाद छः राजे और हुये जो कि अधिकतर आलसी और विषय लोलुप होते गये सातवां राजा रोम का टारकिनस सुपरवस हुआ जो कि और राजाओं की अपेक्षा अधिकतर अन्यायी था। इसका अन्याय दिन २ बढ़ता गया और प्रजा इस वंश को बलातकार सिंहासन से अलग कर देने का विचार करने लगी। राजकुवँर सेक्सटस से जो कि अन्यायी और धोखेबाज था प्रजा को बहुत पीड़ा पहुंचती थी, राज्य को अपनी पैतृक सम्पत्ति समझ कर ये लोग लोकमति की कुछ परवाह न करते थे। ५१० बी० सी० में इस राजकुवँर के अन्याय की सीमा यहां तक बढ़ी कि इसने एक प्रतिष्ठित तथा रूपवती अबला लुक्रेशिया का सतीत्व भ्रष्ट किया। अबला इस दुःख के कारण अपने कलेजे में कटार मार कर मर गई। इस सती के आत्मबध ने प्रजा की कोपाग्नि में घी का काम किया और बात की बात में सारी प्रजा बिगड़ खड़ी हुई और ५०६ बी० सी० में टारकिनस सुपरबस को सकुटुम्ब रोम के बाहर निकाल दिया। रोम से बाहर होते ही ये सब पुराने राज्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगे। पहले तो इन्हों ने इट्रूरिया प्रान्त के बिआई और टारक्विनी नगरवासियों से मिल कर एक छोटी सेना बना रोम पर धावा किया पर इसमें इन्हें सफलता न हुई और एट्रूस्कना सेना को लौटना पड़ा। हताश हो टारकिन क्लूजियम के राजा लार्स पोरसेना के शरण में गया जो एट्रूरिया प्रान्त के बाहर समीपवर्ती राज्यों का मुखिया था। इसने सब प्रान्तों से सेना इकट्ठी कर एक बड़ा दल बांध रोम पर धावा किया-रोम नगर पवित्र टाइबर नदी के तट पर बसा था जिस पर कि एक लकड़ी का पुल था। पुल के बाहर टाइबर के इस पार रोम लोगों का जेनिकुलम का किला था। लार्स पोरसेना का यह विचार था कि जेनकुलम को जीतकर सेना पुल के पार हो जाय और तब नगर के भीतर रोमन लोगों से युद्ध कर उन्हें परास्त करे। जब जेनिकुलम के किले के जीते जाने की खबर रोम में आई वे बड़े व्याकुल हुए और जब इन लोगों ने देखा कि उनकी सेना दल बादल सहित बढ़ती आती है तो रोमन नगर के पञ्चों ने एक सभा की और इस विचार में थे कि क्या किया जाय।

इतने में एक वीर नागरिक जिस का नाम होरेशस् था सामने आया और उसने कहा कि मैं दो साथियों को साथ लेकर पुलके उस पार के फाटक पर शत्रु की सेना को रोकता हूं पुल की राह तङ्ग होने के कारण वे सब मिलकर मुझ पर आक्रमण न कर सकेंगे—और जो व्यक्ति मेरे सामने आए गा उसको मैं वहीं काट गिराऊंगा, इस प्रयत्न में यदि मेरे प्राण भी जांय तो देश और धर्म की रक्षा के लिये प्राण जाना बड़े पुण्य की बात है। मैं जाकर वहां शत्रु सेनाको रोकता हूं आप लोग तब तक पुलको काटकर गिरा देने का प्रबन्ध करें—इसने लारिशस और हारमीनियस दो और वीरों को साथ लिया—और इन तीनों वीरों ने जाकर पुल के फाटक पर युद्ध किया। पहले तो लार्स पोरसेना की सेना वाले इनकी धृष्टता देख कर हंसे और तीन २ योद्धाओं को एक २ समय में इनसे लड़ने के लिये भेजा। इनको अपने जीवन का डर तो था ही नहीं "यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमम्मम" यह तो अपना जीवन देश और धर्म के समर्पण करही चुके थे जो इनके सामने आया उसे उन्होंने स्वर्ग का रास्ता दिखाया। यों युद्ध होही रहा था कि रोमन लोगों ने पुल को तोड़ दिया। लार्सपोर्सेना तथा टारक्विनस सुपरबस को कुछ न चली और रोम अन्यायियों के हाथ से बच गया—इसी वीर शिरोमणि देशभक्त होरेशस की वीरता का वर्णन कविता में किया गया है।

"रा० वि० शु०"

सम्पादकीय टिप्पणियां।

पिछले बड़े लाट की काउन्सिलों में सर जी फ्लीटउड विलसन ने आय व्यय का चिट्ठा पेश किया था। पाठकों को विदित होगा कि गत वर्ष खर्च के लिये रुपयों की अधिक आवश्यकता होने के कारण कई एक नए कर लगाये गये थे या बढ़ाये गये थे जैसे सिगार सिगरेट पर मिट्टी के तेल पर। सर विलसन ने गत वर्ष सिगार सिगरेट पर अधिक कर लगाने की आवश्यकता दिखाते हुये कहा था कि इससे देशको बहुत कुछ लाभ होगा। यहां के नवयुवकों में सिगरेट ऐसो हानिकारक चीज का पीना बन्द होगा! पाठकों को यह भी विदित होगा कि अधिकतर सिगार सिगरेट के रोजगारी इस देश में अंगरेज लोग हैं और वे विलायती माल भी मंगाते हैं। तमाखू पर कर लगते ही उन लोगों ने आन्दोलन शुरू किया और आन्दोलन बहुत हुआ। दूसरी वस्तु जिस पर कर लगा था वह मिट्टी का तेल था। मिट्टी का तेल अधिकतर अमेरिका और बर्मा से आता है

पाठकों को यह भी विदित होगा कि सिगरेट, तमाखू पर कर लगाने के लिये सभी गैर सरकारी मेम्बरों ने एक स्वर से सर विलसन की राय का समर्थन किया था किन्तु मिट्टी के तेल पर कर लगाने का विरोध किया गया था और यह कहा गया था कि तमाखू सिगरेट आदि सुख विलास आदि की सामग्री हैं इन पर कर लगाने से यह कुछ अधिक दामों को हो जांयगी जिसका फल कुछ अच्छा ही होगा किन्तु मिट्टी का तेल आज दिन आवश्यक हो रहा है और इस पर कर लगाना बोझ से दबे हुये गरीबों पर अधिक बोझ रखना होगा। अब की बार के आय व्यय के चिट्ठे को पेश करते समय सर विलसन ने तमाखू पर कर कम करने की बात पेश की थी और कर कम भी हो गया। यह समझ में नहीं आता कि इस कर को घटाने का क्या कारण है। १९०८-१९०९ में १२९ मिलियन गैलन मिट्टी का तेल भारतवर्ष में आया था, १९०९-१९१० में १३९ और कर लगने

पर १६१०-१६११ में १२८ मिलियन। इन अङ्कों से यह बात साफ प्रगट होती है कि यद्यपि कर के कारण तेल महंगा हो गया था किन्तु वह आवश्यक इतना है कि उसकी बिक्री बहुत नहीं घटी। अब तमाखू सिगरेट आदि पर भी कर का प्रभाव देखिये १६०८-१६०९ में ५५॥ से ७३। लाख पाउन्ड तक की तमाखू भारतवर्ष में काम में लायी गयी किन्तु १६०९-१० में केवल १५ लाख की तमाखू बिकी। इस से यह साफ प्रगट होता है कि तमाखू सिगरेट केवल बिलास की वस्तु है और कोई बहुत आवश्यक वस्तु नहीं है नहीं तो बिक्री में एक दम से इतनी घटी न होती। मि० विलसन ने अब की बार बजट में यह प्रस्ताव किया था कि तमाखू पर का कर घटा दिया जाय इसका कारण जो उन्होंने बतलाया था वह यह है तमाखू पर कर होने से सिगरेट आदि महगो होने के कारण कम बिकी और इससे गवमेंट की आय में कमी हुई इस कारण यदि तमाखू पर कर कम कर दिया जाय तो अधिक बिक्री होने की सम्भावना है और इससे गवमेंट की आय में वृद्धि होगी।

पाठक समझें गवमेंट की आय की वृद्धि करने के लिये यह आवश्यक है कि तमाखू सिगरेट आदि पर कर कम किया जाय जिससे वह अधिक बिके और तमाखू आदि से देश को क्या हानि पहुंचती है इसे गत वर्ष सर-विलसन ने ही कहा था और तमाखू आदि पर कर लगाने का एक कारण यही बतलाया गया था कि इससे हानि होती है। बात क्या है सो समझ में नहीं आती। गत वर्ष खर्च के लिये रुपयों की कमी थी आय बढ़ाने के लिये कुछ वस्तुओं पर कर लगाने की आवश्यकता थी तमाखू पर कर लगाया गया यद्यपि यह कह दिया गया था कि तमाखू सिगरेट आदि से देश को हानि पहुंचने की सम्भावना है अब की बार देखा गया कि कर लगाने से उतनी आय नहीं होती कर कम किया गया चाहे इससे देश को हानि ही क्यों न पहुंचे यदि कर घटानेसे आय बढ़तीहै तो अच्छा यह होता कि मिट्टी के तेल पर का कर कम किया जाता क्योंकि यह एक आवश्यक वस्तु है और इसके महंगे होने से गरीब प्रजा पर व्यर्थ एक भार पड़ता है। गवरमेंट को एक बात पर सदा ध्यान रखना चाहिये कि प्रजा में कोई ऐसे भाव न उपजें जिससे गवरमेंट के हितकारक होने में उनके मन में शंका उठे। बहुत से मनुष्यों के मन में यह भाव पैठ रहा है कि शायद तमाखू पर कर घटाने का कोई भीतरी कारण हो जो प्रजा पर नहीं प्रगट किया जा रहा है। तमाखू और सिगरेट के रोजगारी अंगरेजों ने विलायत में जो आन्दोलन किया था यह उसी का तो फल नहीं है और कहीं फिर जैसा कि पुराना इतिहास पुकार रहा है इंगलैंड के रोजगारियों के हित के लिये भारत अपने हितसाधन से तो नहीं रोका जा रहा है। भारतीय प्रजा का हित तो मिट्टी के तेल वाले कर को कम करने में है न कि तमाखू के। यदि कर घटाये जाने की आवश्यकता है तो गरीब प्रजा का हक पहिले है कि उनके साथ सब से पहिले रियायत की जाय। जब सब यही कह रहे हैं कि तमाखू पर कर बना रहै और सब प्रजा का हित इसी में है कि तेल वाला कर कम किया जाय तो फिर कोई कारण नहीं है कि तमाखू का कर कम किया जाय और तेल पर बना रहै। तमाखू के कर को कम करने में चाहे अंगरेज रोजगारियों का हित हो किन्तु भारतीय प्रजा का उसमें कुछ भी लाभ नहीं है।

हमें पूर्ण आशा है कि गवरमेंट की यह कदापि इच्छा नहीं है और तमाखू पर कर घटाने में कोई भीतरी कारण नहीं है तथापि गवरमेंट के लिये यह आवश्यक है कि वह ऐसा मौका ही न दे कि प्रजा के मन में ऐसी शंका उठे।

बौद्ध काल ही से हुवा । अब हमारा पवित्र कर्तव्य है कि जैसे शंकर स्वामी ने बौद्ध मत को ध्वस्त करके भी उस के सद्गुणों को नहीं छोड़ा, वैसेही हम भी अपने समय के अनुचित आचरणों का सुधार कर प्राचीन हिन्दू और बौद्ध मतों के मिश्रण को अपने लिये पूर्ण उन्नतिकारी बनावें ।

लेखक-पं० अनन्तराम वाजपेयी
तथा लक्ष्मी शंकर मिश्र ।

स्वर्गीय पण्डित सरयूप्रसाद जी मिश्र ।

संस्कृत के धुरन्धर पण्डित होने पर भी साधारण लोगों के उपकारार्थ हिन्दी भाषा में अनेक ग्रन्थों के रचने वाले स्वर्गीय पंडित सरयू प्रसाद जी मिश्र का नाम तो बहुत लोगों ने सुना होगा ।

इन पण्डित जी का जन्म प्रतिष्ठित सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में काशी जी के मुहल्ले बांस के फाटक में संवत् १९०६ कार्तिक कृष्णा ११ रविवार (ता० ७ नवम्बर सन् १८५२ ई०) को हुआ था । इनके पिता का नाम पण्डित माता दयालु मिश्र था जो अपने समय में काशी के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी हो गये हैं ।

बचपन में पं०जी एक बार ऐसे रुग्ण हुए कि माता पिता ने औषधि आदि से लाभ की आशा छोड़ दी और बालक को गणेश जी पर अर्पण कर आये । गणेश जी की कृपा से बालक स्वस्थ हुआ और पुनः माता पिता की रक्षा में आया । पण्डित जी की माता विदुषी थीं बचपन ही से वे अपने पुत्र को अनेक प्रकार की शिक्षा दे चलीं । तुलसीकृत रामायण के पद्य और धर्म सम्बन्धी अनेक पौराणिक इतिहास पं० जी ने अपनी माता से सुन रक्खे थे । माता पिता का प्रेम भी पुत्र पर अतुल था । एक बार तीर्थयात्रा में कहीं रेल छुट गई और स्टेशन पर के लोगों ने यात्रियों को शरण नहीं दी । शीत ऋतु का समय था । खुले मैदान में रात्रि के समय माता पिता को पुत्र समेत रहना पड़ा । पण्डित जी को अपने जीवन में बारम्बार वह अवस्था स्मरण आती थी कि माता पिता ने उन्हें शीत से बचाने हेतु अपने सब कपड़े उन पर डाल दिये और दोनों प्राणी केवल एक धोती ओढ़े शीत सहते रात भर जागते रह गये ।

केवल घर में माता ही से शिक्षा प्राप्त की हो सो नहीं कुछ अवस्था बढ़ने पर माता पिता ने इन्हें बनारस जयनारायण कालिज में पढ़ने को बिठला दिया । शब्दरूपावली का आरम्भ पण्डित जी को पादरी हूपर ने कराया था जिन्हें पण्डित जी जन्म भर 'गुरो !' ऐसा सम्बोधन करके पत्र लिखा करते थे । आश्चर्य की बात यह है कि पीछे से संस्कृत विद्या में व्युत्पत्ति पाके स्वयं पं० जी ने फिर उन्हीं हूपर साहिब को संस्कृत के अनेक ग्रंथ पढ़ाये थे । हूपर साहिब भी पण्डित जी का बड़ा आदर करते थे ।

जयनारायण पाठशाला में पण्डित जी को वहाँ के प्रधान संस्कृताध्यापक पण्डित गोपाल उपासनी जी के शिष्य होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । स्कूल में पढ़ने के लिये पर्याप्त समय न मिल सकने के कारण पण्डित जी ने गुरु जी के घर पर उपस्थित हो पढ़ना आरम्भ किया । गुरु जी ने भी मन लगा के शिक्षा दी । पण्डित जी अपने गुरू की सेवा भी बड़ी भक्ति और श्रद्धा समेत करते थे यहाँ तक कि गुरू ने प्रसन्न होके इन्हें आशीर्वाद दिया था कि तुम्हें थोड़े ही परिश्रम में बहुत विद्या आ जावेगी । काल पाके गुरू जी का यह आशीर्वाद फला पण्डित जी अपने समय के विद्वज्जनों में एक ही थे । गुरू जी के पास पण्डित जी को केवल सिद्धान्त कौमुदी का थोड़ासा भाग और रघुवंश काव्य के कुछ सर्ग पढ़ने का अवसर मिला था पर पीछे से स्वयं अभ्यास करके पण्डित जी बड़े व्युत्पन्न दार्शनिक और कवि हुए । पं० जी की

गुरू जी पर अटल भक्ति जन्मभर बनी रही उन की मृत्यु का समाचार सुनके पं० जी ने दिनभर उपवास किया और विधवा गुरुआइन जी की अर्थ द्वारा सहायता उनके मरण पर्यन्त करते रहे।

अठारह वर्ष की अवस्था में पं० जी को काशी छोड़ के विदेश जाना पड़ा। बारह वर्ष के लगभग पण्डित जी ने जबलपुर में निवास किया और धनी लोगों तथा पाठशाला आदि में पढ़ा के पण्डित जी ने अपनी जीविका का निर्वाह किया। पं० जी को विदित हो गया था कि शिक्षा के अभाव से इस देश के लोगों की बड़ी दुर्दशा थी और संस्कृत समझने वाले लोग बहुत अल्प थे अतएव भाषा में ग्रन्थ लिख के मैं देश का उपकार करूँ यह विचार उनके चित्त में समाया। पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कृत आख्यान मञ्जरी का भाषानुवाद पं० जी का पहिला परिश्रम भाषा की उन्नति के लिये हुआ पर धनाभाव के कारण वह छप न सकता था। मिस ब्राब्रं महाशया की सहायता से इस ग्रन्थ का प्रथम भाग पहिले छपाया गया प्रथम भाग को द्वितीय वार और शेष भागों को पीछे से बाँकीपुर खड्गविलास प्रेस के स्वामी बाबू रामदीन सिंह जी ने छपा दिया था।

जबलपुर में पण्डित जी को बाबू कैलास चन्द्र दत्त एम्० ए० (प्रोफेसर संस्कृत कालेज जबलपुर) एक बड़े सुहृत मिले उन के उत्साह दिलाने से पं० जी ने बंगला, मरहठी, उड़िया, गुजराती आदि अनेक भाषायें सीखी और अंगरेज़ी पढ़ने की भी चेष्टा की। पण्डित जी ने कालिदास कृत रघुवंश का पद्यबद्ध भाषानुवाद भी किया। इस में प्रत्येक श्लोक का अनुवाद भाषा में प्रायः संस्कृत के छन्दोंही में किया गया है और इस बात पर ध्यान रक्खा गया है कि मूल का भाव अनुवाद में छूटने न पावे। शब्द प्रायः ऐसे रक्खे गये हैं जिन्हें प्राचीन हिन्दी के कवियों ने अपने ग्रन्थ में लिखा है। संस्कृत के जो शब्द अपभ्रंश रूप में अब भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों में प्रचलित हैं उनका भी बहुतायत से प्रयोग किया गया है। यद्यपि यह ग्रन्थ अनुवादात्मक है तथापि स्वतन्त्र पढ़ने वालों के लिये हिन्दी भाषा में यह विशेष व्युत्पत्ति प्राप्त कराने में लोगों का बड़ा सहायक होगा। संस्कृत में जैसे वाल्मीकीय रामायण के रहते हुए भी कालिदास कृत रघुवंश काव्य का प्रचार विरल नहीं है वैसेही भाषा में तुलसीकृत रामायण के होते हुए भी हिन्दी रसिकों के बीच में रघुवंश के इस पद्यबद्ध भाषानुवाद का प्रचार विरल न होगा।

स्त्री शिक्षा के अभाव से माताओं को जन्मे हुए बच्चे की रक्षा करते न देख पं० जी के चित्त में यह विचार हुआ कि लोगों को इस विषय में सावधान करना उचित है अतएव उन्होंने वङ्गभाषा से मातृशिक्षा का भाषानुवाद करके मित्रों की सहायता से उसे छपवा डाला। यह ग्रन्थ नवप्रसूत बालकों की रक्षा किस रीति से की जावे इस के नियम बतलाता है। इस ग्रन्थ के यथेष्ट प्रचार से मूर्ख माताओं की असावधानता से मरने वाले छोटे २ बच्चों की संख्या बहुत घट जा सकती है। न केवल ग्रन्थ रचना ही के द्वारा किन्तु समय २ पर समाचार पत्रों में लेख आदि देके भी हिन्दी भाषा तथा उसके रसिकों का पण्डित जी ने बड़ा उपकार किया। कवि वचन सुधा, शुभचिन्तक, क्षत्रिय पत्रिका और हिन्दी प्रदीप आदि समाचार पत्रों में समय २ पर पण्डित जी के अनेकों बहुमूल्य लेख छपे हैं।

पाठशालाओं के लिये जो भाषा की पाठ्य पुस्तकें मध्य प्रदेश में प्रस्तुत हुई उनमें भी पण्डित जी ने ग्रन्थ सङ्कलन करने वालों को भांति भांति की सहायता दी थी।

न केवल भाषानुवाद ही किन्तु संस्कृत के काव्य भी पं० जी ने रचे। अठारह वर्ष की अवस्था में रोग से मुक्त होने पर अनेक छन्दों में अनुप्रास युक्त सौ श्लोकों का एक सूर्य शतक पण्डित जी ने रचा था। श्रीगणेश जी पं० जी

के इष्टदेव थे अतएव उनके माहात्म्य के वर्णन में 'हेरम्बचरित' नामक एक द्वादश सर्गात्मक महाकाव्य भी पं० जी ने प्रणयन किया। सूर्य शतक तो छपगया पर अर्थाभाव से हेरम्बचरित अभी तक नहीं छपाया जा सका है।

पं० जी भाषा तथा संस्कृत की स्फुट कविता तथा समस्या पूर्त्ति आदि भी किया करते थे जो सामयिक समाचार पत्रों में प्रगट हुआ करती थी।

प० बालकृष्ण थत्ते से पं० जी ने न्यायशास्त्र पढ़ा था और वैशेषिकदर्शन का भाषानुवाद भी कर डाला था। पुनः दुहरा के इस अनुवाद का अधिकांश पं० जी शुद्ध भी कर चुके थे और लोगों की समझ में आने के लिये उसे ग्रन्थाकार लिख के प्रस्तुत भी कराया है। यह ग्रन्थ बहुत बड़ा हो गया है पर वैशेषिक सूत्र का अर्थ विशद करने के लिये कोई उपायान्तर था भी नहीं। छओं दर्शनों के पढ़ने में भी पं० जी ने बहुत श्रम किया और अन्त में वेदान्त के सिद्धान्त उनके चित्त में दृढ़ता पूर्वक जमे। उपनिषद्, भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र आदि के पठन पाठन से पं० जी को इतनी व्युत्पत्ति हो गई कि उनके सामने बड़े २ विद्वान् युक्ति द्वारा विवाद में ठहर नहीं सकते थे। वेदान्त के सिद्धान्त को भली भांति समझ के पं० जी को भगवद्भक्ति का बड़ा पक्षपात था तथा उनके मत में ज्ञान और भक्ति दोनों मनुष्य को परम पुरुषार्थ प्राप्त कराने वाली थी। नारद के भक्तिसूत्र की टीका भी पं० जी ने संस्कृत में लिखी थी और ग्रन्थान्तरों से भक्ति के श्लोकों का संग्रह भी किया था।

अनेकों पुराण तथा धर्मशास्त्र आदि पढ़ के पं० जी ने चुने हुए श्लोकों का एक संग्रह भी अपने पास लिख रक्खा था जिससे समय २ पर उनका बड़ा काम निकला करता था। बासुदेव रसानन्द, सुसिद्धान्तोत्तम और सिद्धान्तदर्पण आदि ग्रन्थों को उनके प्रकाशित होने से पूर्व पं० जी ने शोधन किया था।

पं० जी की विद्या में बड़ी रुचि थी और वे रात दिन में जब अवसर पाते विद्याध्ययन ही में लगे रहा करते थे। यद्यपि जीविका निर्वाह के लिये उन्हें पाठशाला में वा महाजनों के घर पर पढ़ाने जाना पड़ता था तथापि उन्हें भृतकाध्यापन अर्थात् वेतन लेके पढ़ाना प्रिय न था। उन्होंने धनार्थ विद्याध्ययन नहीं किया था किन्तु ज्ञान में रुचि होने के कारण उन्होंने दर्शनशास्त्रादि में अधिक समय व्यय किया था। अंगरेज़ी पढ़ने में ऐहिक सुख के अतिरिक्त आध्यात्मिक उन्नति का सहारा न पाके उन्होंने उपेक्षा की। सुभीते अनुसार बँगला, मरहठी आदि पुस्तकों को पढ़ के इतिहास, भूगोल, विज्ञानशास्त्र आदि का भी ज्ञान पण्डित जी ने भलीभाँति प्राप्त किया था। उपयुक्त विद्यार्थी को घर पर बिना वेतन पढ़ाने में भी पं० जी की बड़ी रुचि थी। पं० जी के विद्यार्थी भी उनका बड़ा आदर करते और उन पर भक्ति रखते थे।

सं० १९४० में डिविनिटी स्कूल प्रयाग के प्रिन्सपल डाक्टर हूपर साहब ने पं० जी को जबलपुर से प्रयाग में बुला लिया। यहां भी पं० जी का मन विद्याध्ययन ही में लगा रहा। पं० जी समय २ पर लोगों के कहने से हिन्दू समाज वा धर्म सभा आदि में जब तब व्याख्यान भी दिया करते थे। प्रयाग में आने पर पं० जी की मित्रता पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० मदनमोहन मालवीय. पं० आदित्यराम भट्टाचार्य, पं० शिवराम जी पांड़े वैद्य आदिकों से हुई। बांकीपुर के महाराज बाबू रामदीनसिंह जी भी पं० जी पर बड़ी कृपा रखते थे। बाबू रामदीनसिंह जी ही के अनुरोध से पं० जी ने 'हैहय कथा संग्रह' नाम का एक बड़ा ग्रन्थ लिखा जिसमें पुराणों, इतिहासों, शिला लेखों और वैदिक मन्त्रों तक से हैहय वंश विषयक बातें खोज खोज के लिखी हैं। बाबू रामदीनसिंह जी स्वयं हैहय वंशी राजकुमार हैं अतएव उन्होंने पं० जी से यह श्रम कराया था। उक्त बाबू साहब के

अनुरोध से पं० जी ने और भी कई एक छोटे बड़े ग्रन्थ रचे थे और बाबू साहब ने बहुत दिनों तक धन द्वारा पं० जी की सहायता की थी। पं० आदित्यराम भट्टाचार्य ने भी स्वसङ्कलित, संस्कृत शिक्षा, गद्यपद्य संग्रह और ऋजु व्याकरण आदि ग्रन्थ में पं० जी से सहायता ली थी और समय २ पर धन द्वारा वे पं० जी की अनेक प्रकार से सहायता भी करते थे।

पं० मदनमोहन जी मालवीय ने पं० जी से संस्कृत एम्० ए० कोर्स कुछ दिन लों पढ़ा था। ये महाशय पं० जी पर बड़ी भक्ति रखते थे। परिडत जी के पुत्रों को कालिज में फीस देने का प्रयोजन पड़ने पर मालवीय जी ने बहुत कुछ सहायता दी थी। पं० बालकृष्ण जी भट्ट ने भी कई अवसरों पर पं० जी का बड़ा उपकार किया और पं० जी भी श्रम पूर्वक लाभदायक लेखों को प्रस्तुत कर छापने अर्थ भट्ट जी को दिया करते थे। पं० शिवराम जी ने भी अपने स्वाभाविक औदार्य से बिना मूल्य अपनी बहुमूल्य औषधि दे के पं० जी की बहुत भलाई की थी इस विषय में पं० जी जन्मभर उनके कृतज्ञ बने रहे। पं० जी की शिक्षा और संमत्यनुसार चलन से शिवराम जी ने संसार में अपनी बड़ी उन्नति की। प्रयाग वासी मित्रों की सम्मति से पं० जी ने 'दिव्य दम्पति' नाम एक वृहद् ग्रन्थ रचा जिस में धर्मशास्त्रों और वैद्यक शास्त्रों द्वारा सिद्ध किया है कि हिन्दुओं के बीच प्रचलित बाल्य विवाह की रीति शास्त्रानुमोदित नहीं है और इसके न रोकने से जाति तथा देश के शीघ्र अधःपात का भय है।

पिता, माता और ज्येष्ठ भ्राता के मरने पर पं० जी को अपना विधवा, भगिनी, भौजाई और अनाथ भतीजों तथा भाञ्जों का संरक्षण करना पड़ा। एक तो आप अल्प दूसरे व्ययाधिक्य पर अनेक यत्नों से पं० जी ने सब का पालन पोषण यथोचित रीति से किया। पं० जी के एक कन्या थी जिसके विवाह की चिन्ता कभी २ पं० जी को व्याकुल करती थी पर ईश्वर की कृपा से पं० जी के शिष्य पं० मथुराप्रसाद जी त्रिपाठी और पं० भगवद्दत्त मिश्र को सहायता से यह कार्य भी भली भाँति निपट गया।

पं० जी ने अपने पुत्रों को संस्कृत और अङ्गरेज़ी में अच्छी शिक्षा दी उनके पुत्रों में से तीन जेठे ग्रेजुएट हो चुके हैं और कनिष्ठ पुत्र बी० ए० क्लास में पढ़ रहा है अपने पुत्रों को पं० जी ने स्वयं भी परिश्रम करके संस्कृत पढ़ाया था और उनके द्वितीय पुत्र हरिमङ्गल मिश्र ने संस्कृत में एम० ए० पास किया।

पं० जी को अपने पुत्रों पर बड़ी ममता थी। इन्हीं पुत्रों का क्लेश बचाने के लिये पं० जी ने अपनी स्त्री के मरने पर पुनर्विवाह न किया और पुत्रों के विषय में माता पिता दोनों का कर्त्तव्य अकेले ही निबाहा।

पं० जी के वेदान्त सम्बन्धी विचारों और युक्तियों को उनका मध्यम पुत्र बड़े ध्यान से सुनता था। संवत् १९६४ में अकस्मात् उसका देहान्त हो जाने से पं० जी को बड़ा शोक हुआ यहाँ तक कि निद्रा नाश होगया अन्त में संवत् १९६४ को मार्ग शीर्ष शुक्ल पञ्चमी को परिडत जी पुत्र शोक से परलोक सिधारे।

परिडत सरयूप्रसाद जी मिश्र ने संसार में अपना जीवन एक महर्षि की नाईं व्यतीत किया उनका आचरण सर्वथा निर्दोष और अनुकरणीय था। उनका अधिकांश समय विद्याभ्यास ही में बीतता था। वे प्रतिदिन प्रातःकाल उठते, वायु सेवन के लिये जाते और समय पर नियमपूर्वक सन्ध्या बन्दन इत्यादि किया करते थे। वे विद्यार्थियों और अतिथियों का बड़ा सत्कार करते थे। उनकी चाल सीधी सादी थी। बहुमूल्य वस्त्र जैसे रेशमी वस्त्र, दुशाला अथवा और किसी प्रकार के दिखाऊ कपड़े उन्होंने कभी धारण न किया। अपने सब पुत्रों पर वे सदा समभाव रखते थे। पुत्रों के आचरण की ओर इनका बड़ा ध्यान रहा करता था और वे

वर्णानुक्रमिक विषय सूची।

दाराका मस्तक और औरंगजेब।

"राय कृष्णदासके अनुग्रहसे प्राप्त"

मर्यादा ।

सचित्र मासिक पत्रिका ।
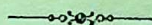
दूसरा भाग, दूसरा खण्ड ।

वैशाख–कार्तिक ।

(मई–अक्तूबर)

१९६८

अभ्युदय प्रेस–प्रयाग ।

वार्षिक मूल्य तीन रुपया ।

शाहजहाँका अन्तिमकाल ।

ليلى و مجنون

लैला मजनू

Star Press,—Cawnpore.

आंधेरी रात्रि

K.G.G.
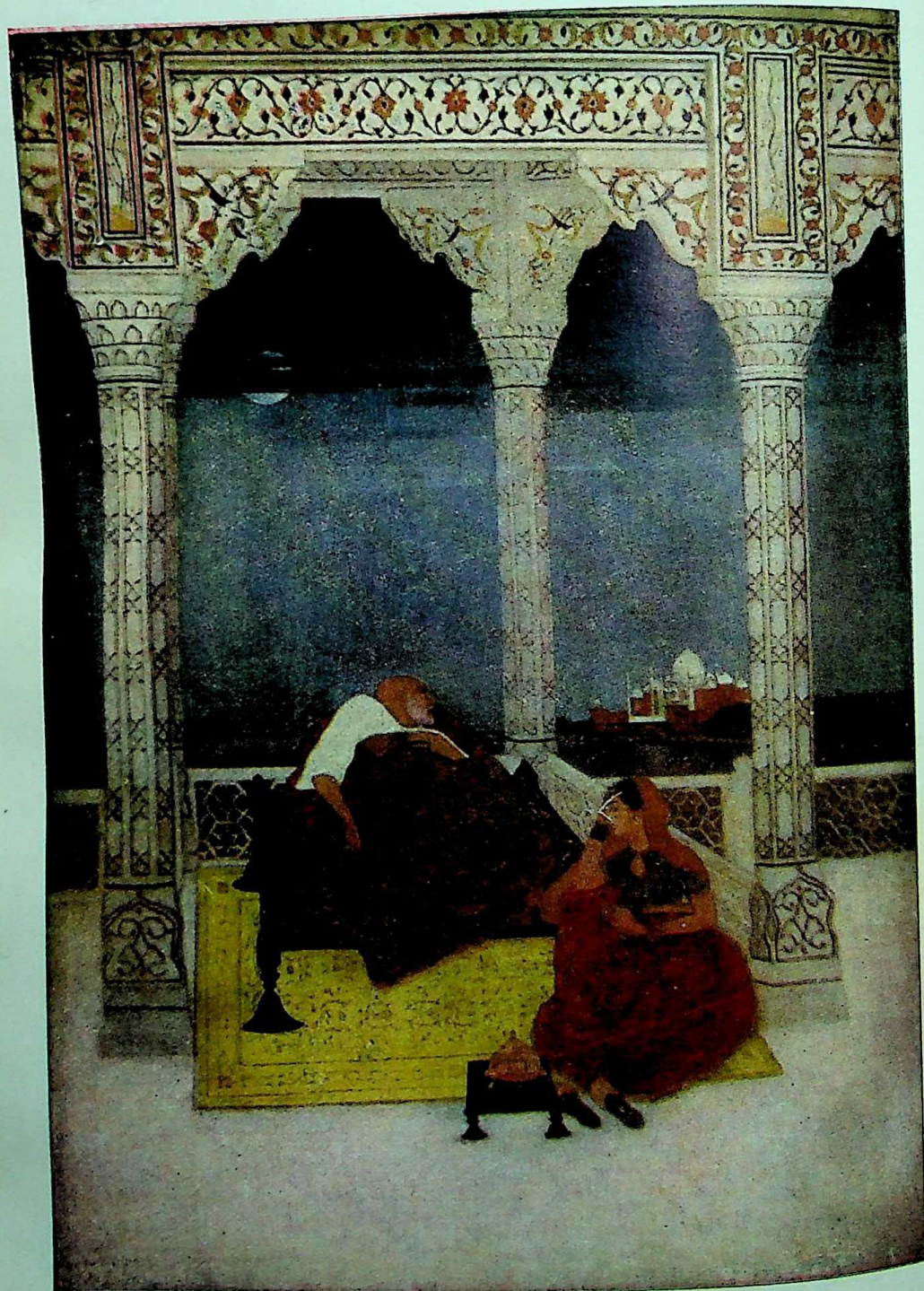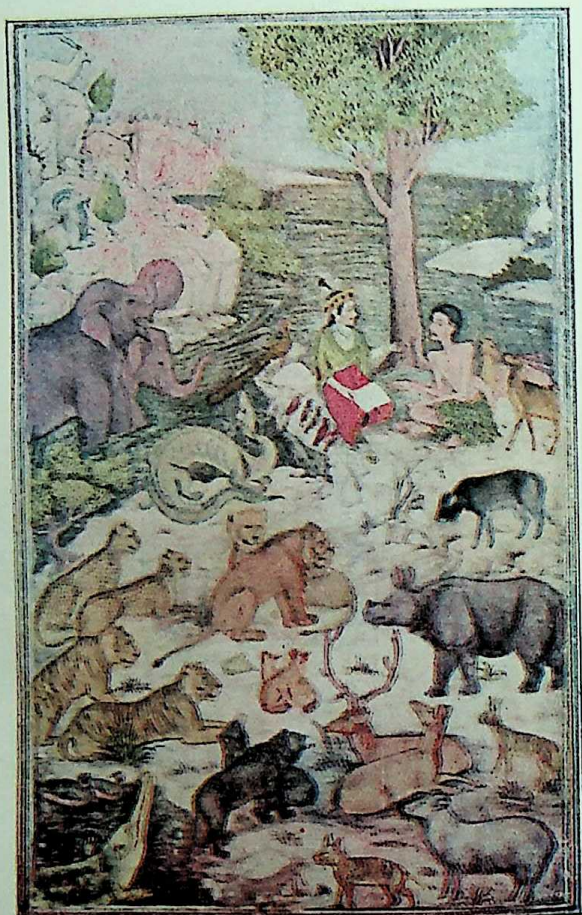
पण्डितवर गोविन्दनारायण जी मिश्र।
सभापति द्वितीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।
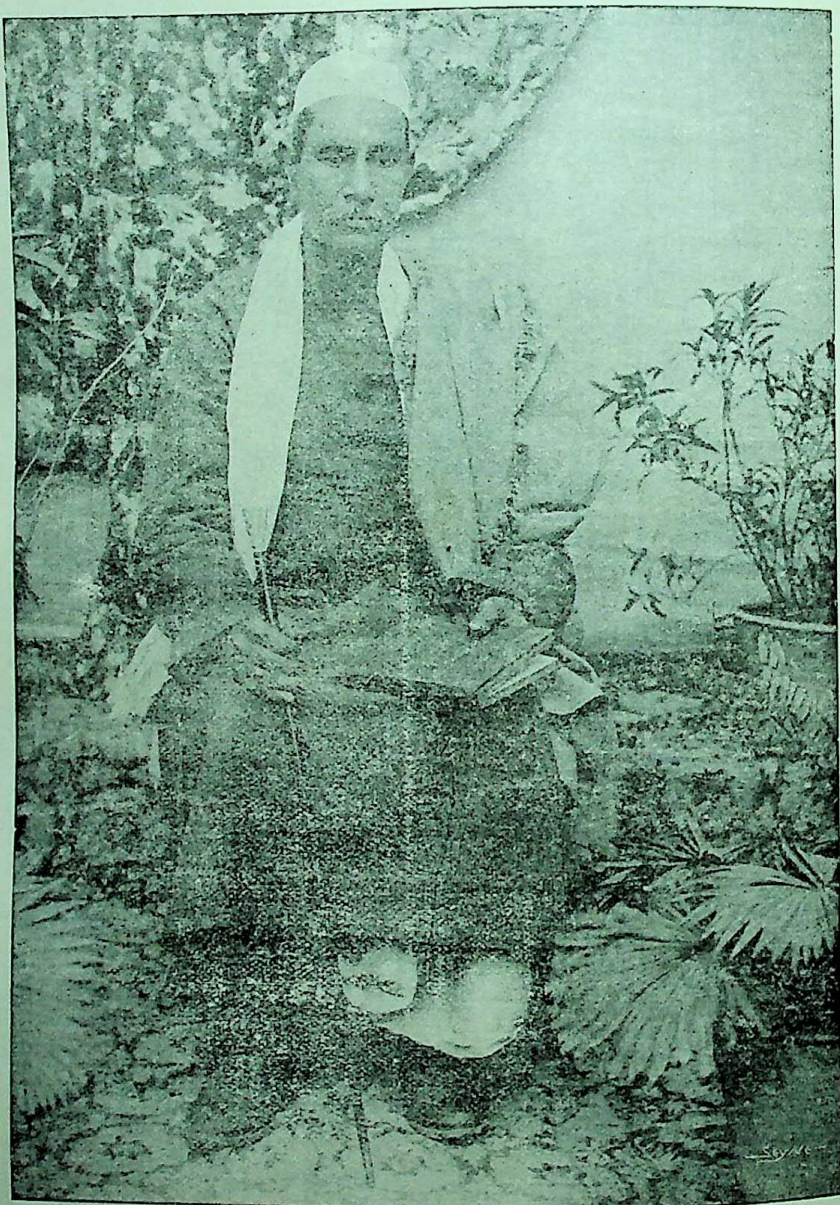
अभ्युदय प्रेस-प्रयाग।

परिडत बालकृष्ण भट्ट–सभापति रिसेप्शन कमेटी

देशभक्त जार्ज वाशिङ्गटन ।

अंतिम काल ।
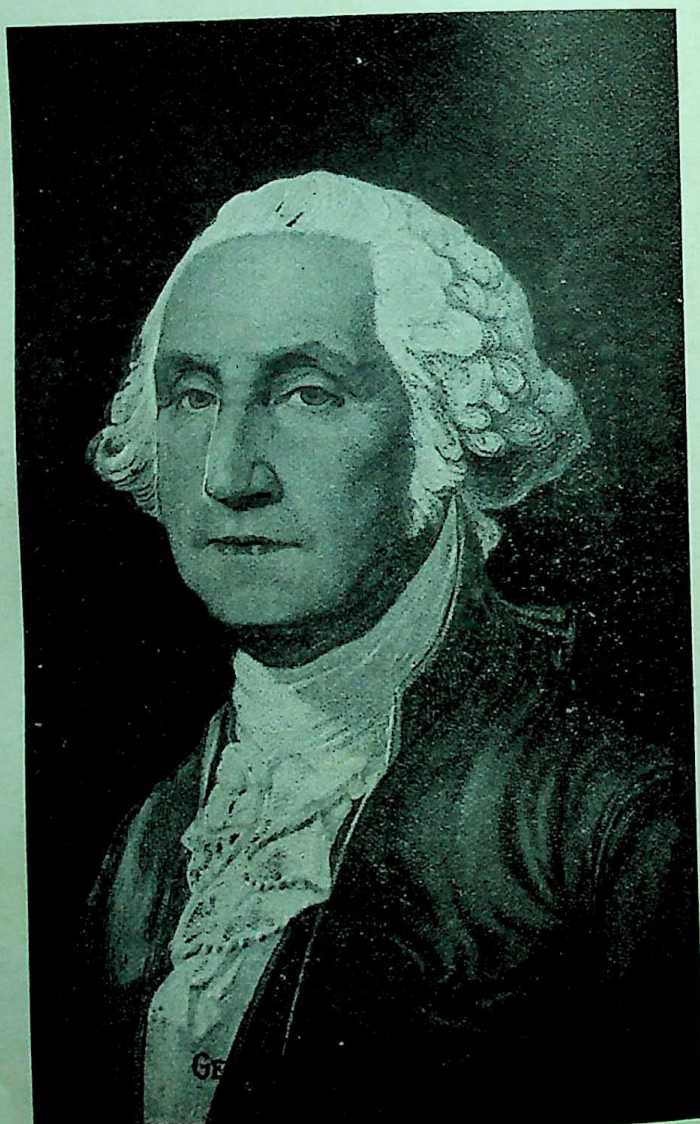
साहित्य सम्मेलन प्रयाग में आये हुए सज्जनों का एक ग्रूप।

अभ्युदय प्रेस–प्रयाग।
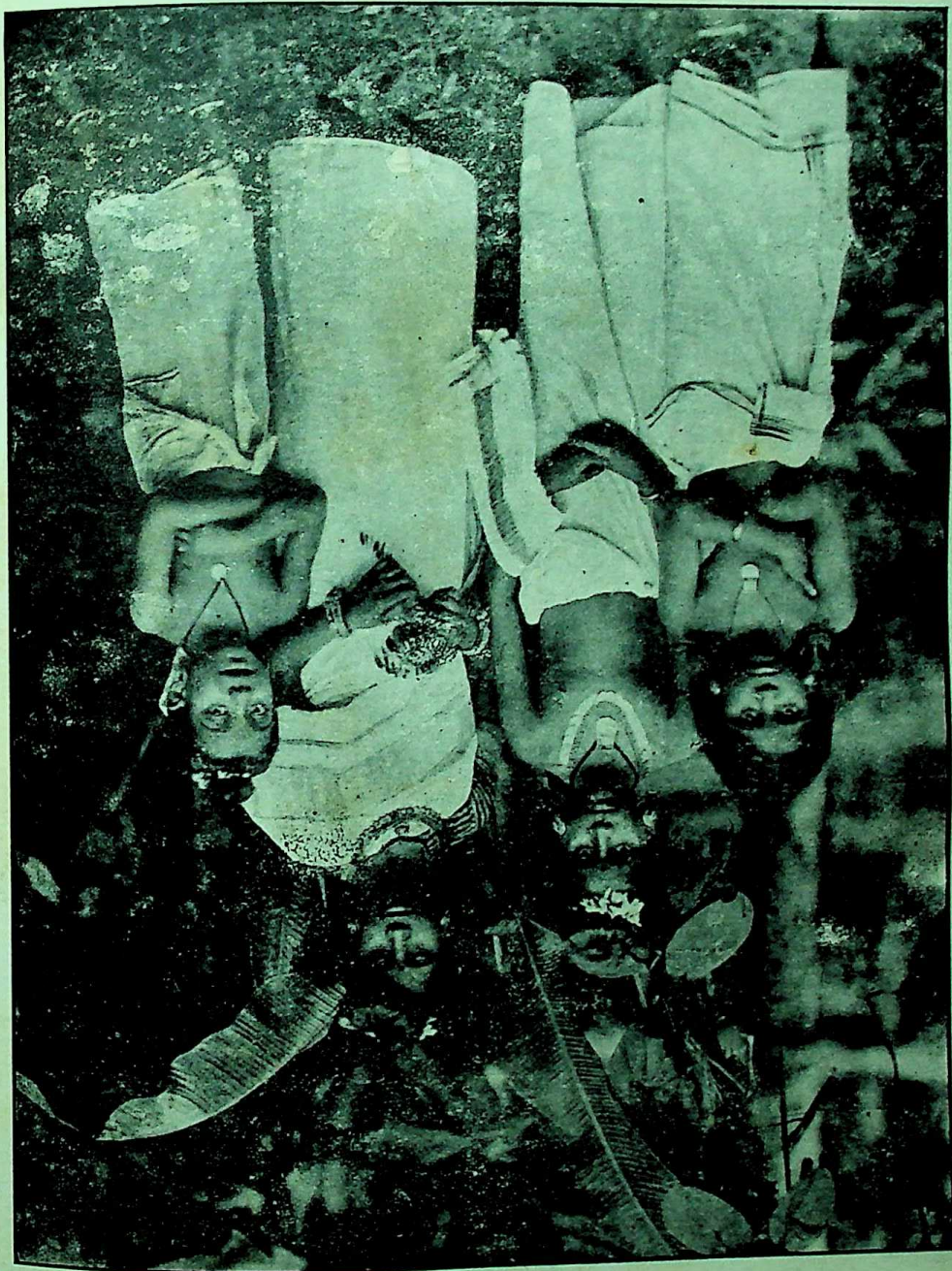
दाक्षिणात्य मलयाली बालिकाएं।

अभ्युदय प्रेस-प्रयाग।

यूनिअन स्टेशन वाशिङ्गटन ।

हिन्दू मंदिर, सेनफ्रैनसिस्को ।

मर्यादा

कारकारन गेलेरी आव आर्ट्स

मर्यादा

यू. एस. पोस्ट आफिस, वाशिङ्गटन

मर्यादा

वाशिङ्गटन मान्यूमेन्ट।
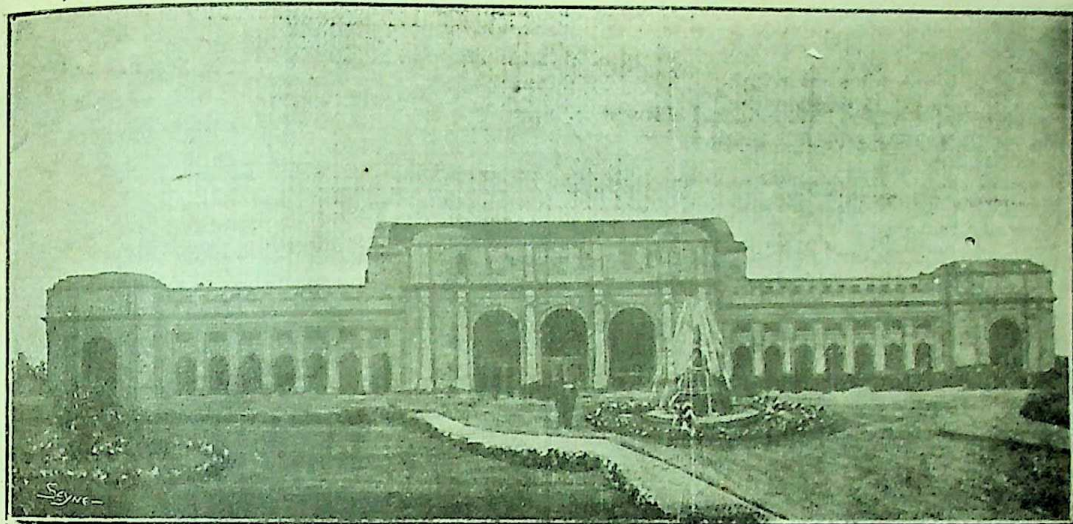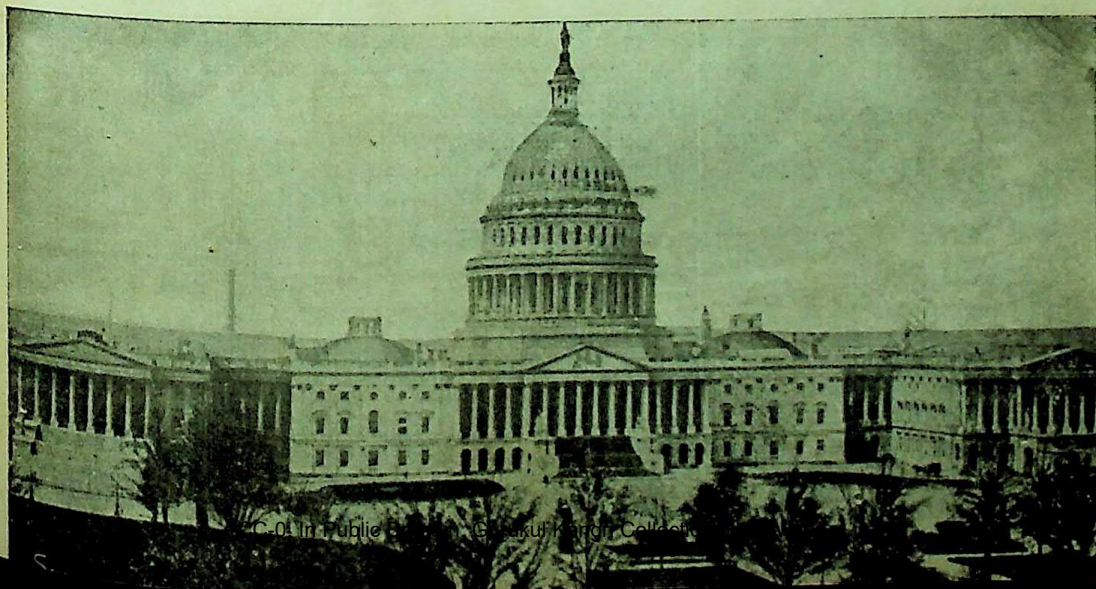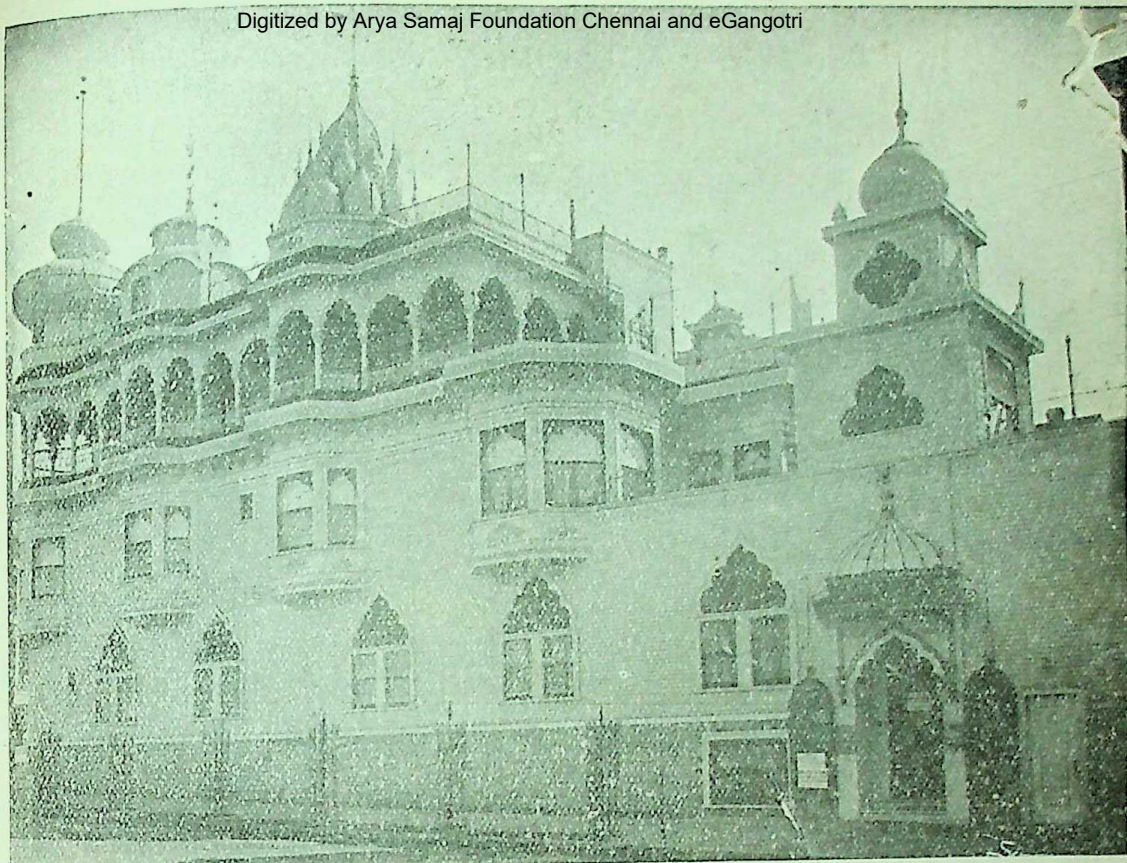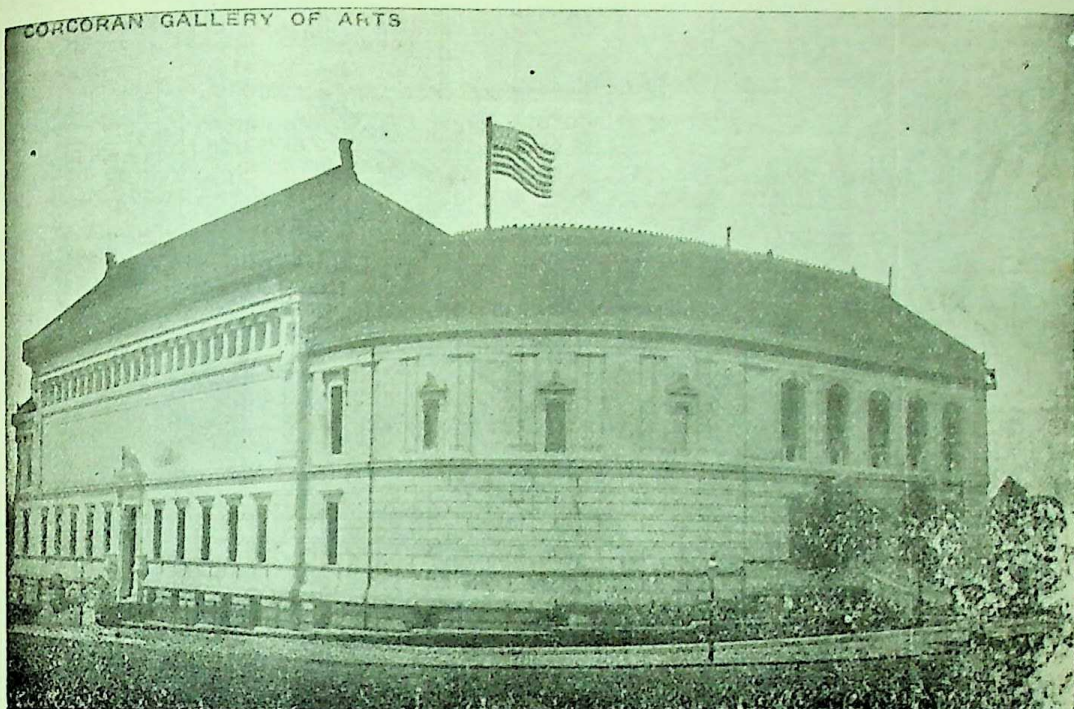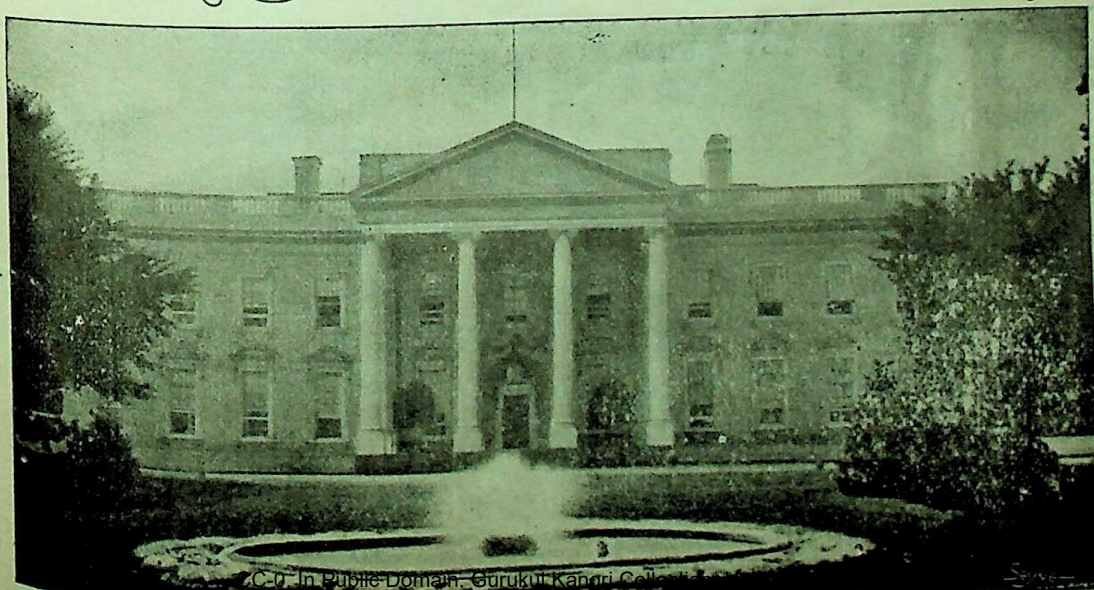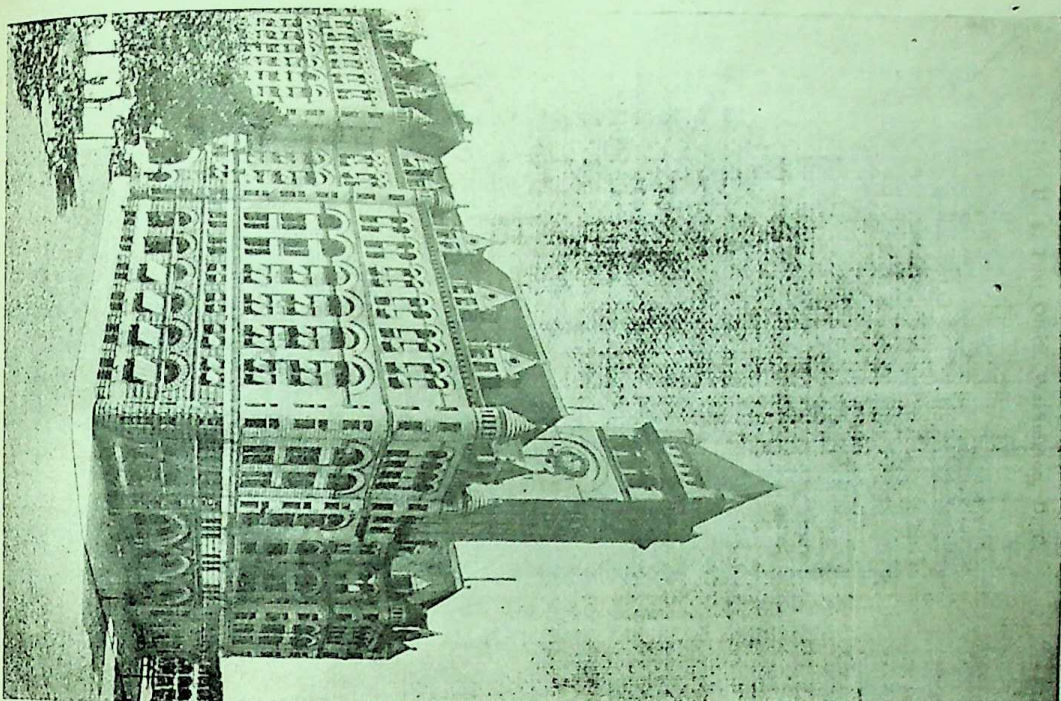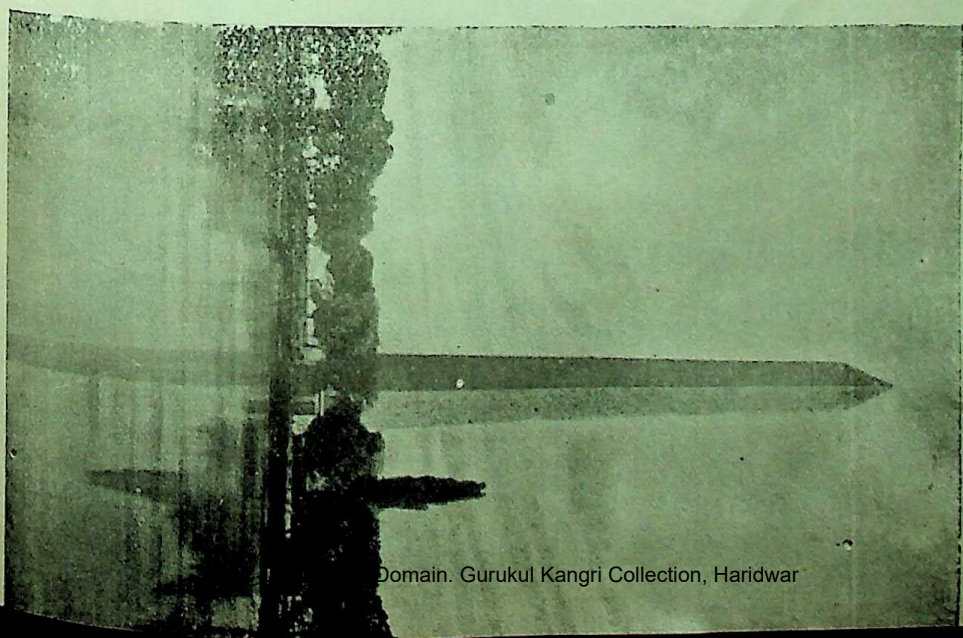
क्लिफ हाउस।
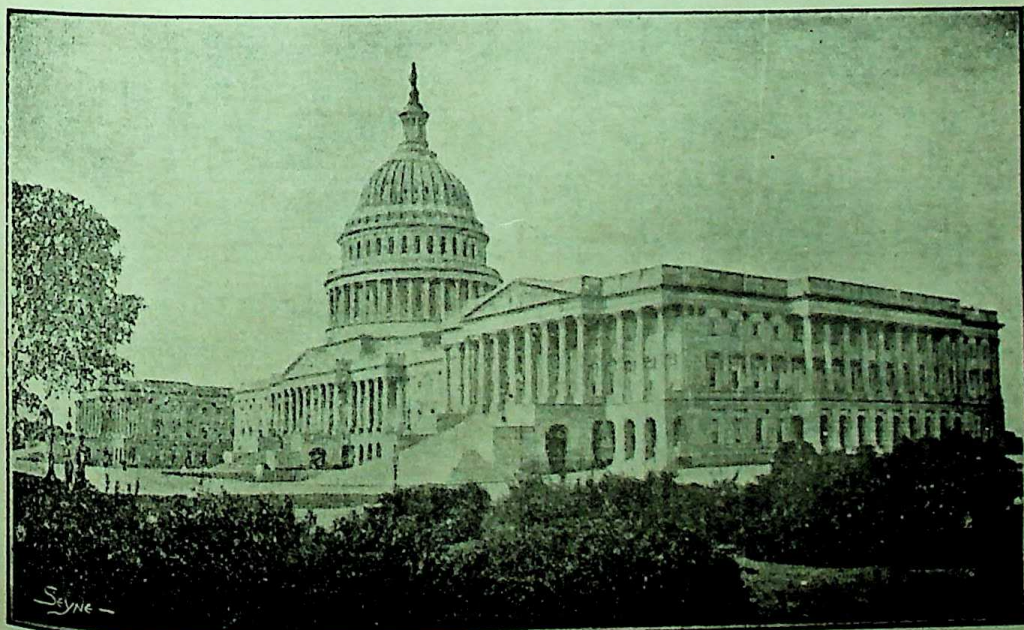
निदाघ काल।

[लेखक- पं० बद्रीनाथ भट्ट ।]

(१)

है हिन्द में आज निदाघ आगया।
व्यथा बढ़ाता सब जीव लोक की॥
चराचरों को झुलसा रहा यहां।
चला सनासन् लपटें भयङ्कर।

(२)

जो गन्धि थी मंद-समीर-प्रेरिता।
पुनः स्वचैतन्य-प्रदान-कारिणी।
अत्युग्ररूपा वह धर्म-दुस्सहा।
नहीं रही है अब मोददायिनी॥

(३)

जो उष्णता घोर-निदाघ विस्तृता।
संसार में व्याप्त हुई इतस्ततः॥
है जीवलोकाकुलचित्त कारिणी।
गला रही सर्व शरीर धातुएं॥

(४)

हैं धर्म संतप्त-मृणाल हो तरु।
प्रसून मुर्झे जल में गिरा रहे॥
मानो कहें हैं अति नम्र भाव से।
'निदाघ जाओ बस प्रार्थना यही'॥

(५)

मृगादि व्याघ्रादि सभी बनेचर।
हैं दुःख से शत्रु न मित्र चीन्हते॥
पड़े नदी तीर यथा गता सब।
हुए करालोदर काल के वलि॥

(६)

सुपुष्ट जो मत्त-मतङ्ग, मांस से।
थे नित्य कर्ते बनराज गात्र को॥
वही पड़े आज समाधि सी लगा।
हैं हो रहे काकपदाभि ताड़ित॥

(७)

पधारते ही इस ग्रीष्मकाल के।
हुए यहां हैं गत-स्वत्व से सभी॥
सर्वस्व मानों सब ख़र्च भी दिया।
तो भी हुआ ख़ारिज ही मुक़द्दमा।

(८)

कुबेर के भी धनवन्त जो बचा।
उन्हें नहीं हैं कुछ कष्ट व्यापता॥
गुलाब का इत्र जहां भरा पड़ा।
भला वहां क्या खटका निदाघ का?

(९)

परन्तु शोकार्त्त किसान खेत में।
स्वेदाम्बु-प्रच्छन्न-शरीर होकर॥
हैं देख लीजे हल को चला रहे।
नहीं विचारों पर वस्त्र एक भी॥

(१०)

करालकालान्तक-ताण्डवोपम।
उठें बबूले नभ में जहां तहां॥
अखण्ड मार्त्तण्ड-प्रचण्ड तेज से।
न लोचनोन्मीलन है सुहा रहा॥

(११)

जो गान गा के पिक पुञ्ज ने सदा।
किया हमें मुग्ध अहा! बसन्त में॥
निदाघ में है उस गान की ध्वनि।
होती हमें ज्ञात फटी मृदंग सी॥

(१२)

जो थी कभी शान्ति-समृद्धि-शालिनी।
प्रसन्न चित्ता सुखदा वसुन्धरा॥
अत्युग्रतप्ता प्रखर-प्रभावती।
हुई प्रचण्डा अति दुस्सहा वही॥

(१३)

निदाघ! तेरा अब राज्य है सही।
परन्तु है ये सब अल्पकाल का॥
बसंत का भी जब अन्त हो गया।
तेरी बताती फिर बात क्या कहें?

(१४)

प्रचण्ड पाखण्ड-घमंड नाशिनी।
आ जायगी वारिद-मेघ-मालिका॥
सभी मिटा के तब चिन्ह आदि जो
तुझे करेगी बस लुप्त प्रायसा॥

(१५)

इसी लिये तू अब छोड़ जा हमें।
भला इसी में तव दीखता यहां॥
सभी नहीं तो धन मान छीन कै।
निकाल देगा तुझको पुरन्दर॥

(१६)

अच्छी शिक्षा जो नहीं मानते हैं।
बैरी को भी जो नहीं जानते हैं॥
लक्ष्मी जाती है उन्हें छोड़ भाग।
इससे तू भी भाग जा हे निदाघ!

"अक्षरों का भारतवर्ष में आगमन और विस्तार"।

[लेखक—श्रीयुत् गरुड़ध्वज।]

इस संसार में इतने पदार्थ हैं कि उनमें कोई मनुष्य अच्छे प्रकार से भिज्ञता और दक्षता प्राप्त नहीं कर सकता है। कतिपय ऐसी वस्तु हैं जिनसे हमारा द्वेषभाव रहता है और इस हेतु हमारी इन्द्रियों से वे पृथक् रहती हैं, कतिपय ऐसी वस्तु हैं जिनका हमें वहिर्ज्ञान ही है और हम उनके आन्तरिक भेदों को नहीं जानते, परन्तु बहुत सी ऐसी वस्तु हैं जिनसे हमारा प्रति दिन का सम्बन्ध रहता है हम उन्हें व्यवहार में लाते हैं और इस कारण बहिर्दृष्टि से हम अपने को उनसे पूर्णतया परिचित समझते हैं। किसी भी वस्तु का ज्ञान तब तक विशेषतया नहीं हो सकता जब तक हम उसकी उत्पत्ति और नाना प्रकार के वर्धनशील और अवरोध पूर्ण रहस्यों तथा उसकी उन्नति और अवनति और अन्त में उसकी युवावस्था और क्षयकाल को न जाने। उदाहरणार्थ नागरी अक्षरों की उत्पत्ति ही को लीजिये। इस भारत के अधिकतर भाग में बहुतों का इनसे घनिष्ट सम्बन्ध रहता है परन्तु हममें से कितने ऐसे हैं जिन को इनके वर्ण विभाग और रूप (Orthography) का अच्छे प्रकार ज्ञान है।

यह हमारा हतभाग्य है कि हम अपने वर्णाक्षरों की ओर ध्यान तक नहीं देते जब कि विदेशी विद्वान उसके इतिहास को जानने के वास्ते इतने उत्सुक हो रहे हैं—मैं भी यहां पर एक परदेशी आचार्य का हिन्दी (हिन्दुस्तान के) अक्षरों के सम्बन्ध में जो मत है उसे प्रगट करता हूं—तथापि हमें दृढ़ विश्वास है कि यदि देश की सब प्रधान पत्रिकाएं देवनागरी को उसकी सर्वश्रेष्ठ मर्यादा तक पहुंचाने के लिये अग्रसर होंगी तो हमें एक दिन इसे राष्ट्रलिपि के नाम से उच्चारण करने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

अब प्रश्न यह है कि अक्षरों का प्रचार भारतवर्ष में कब से हुआ और इनका आगमन कहां से हुआ।

हमारी देवनागरी के पूर्व पितरों की उत्पत्ति और उनका भारतवर्ष में वर्तमान रूप धारण करने के विषय में विद्वन्मंडली ने दो मत निर्धारण किये हैं।

(१) कनिङ्हम साहब का मत है कि वर्ण प्रक्रिया भारतवर्ष ही में स्वतन्त्रता से उत्पन्न हुई है।

स्वभावतः यह बात असम्भव नहीं है कि भारत में ब्राह्मणों ने एक वर्णप्रक्रिया चित्रविद्या से निर्माण करली हो परंतु वर्तमान में हमारे पास इसके विरुद्ध साक्षी ही नहीं है परन्तु पर पक्ष के पुष्टि के वास्ते बहुत ज्यादे।

(२) सब प्राप्य साक्षी इसी बात को प्रगट करती हैं कि भारतीय वर्णमाला आर्यावर्त के ऋषियों की निर्माण की हुई नहीं है। और यह कि भारतवर्ष में द्राविड़ व्यापारियों से ईसा मसीह के जन्मकाल के सातवीं शताब्दि पूर्व लाई गई। इस मत के पुष्टि के वास्ते तीन सिद्धान्त हैं:—

प्रथम भारतीय साहित्य में 'लिखने' के विषय जो प्राचीन सूचनाएं हैं।

(क) सबसे प्राचीन बात लिखने के विषय में एक बौद्ध पुस्तक "सिलाज" में जो कि प्रायः ४५० वर्ष ई० पू० लिखी गई पाई जाती है। इस पुस्तक में एक विवरण उन बातों का है जो कि एक बौद्ध सन्यासी को नहीं करना चाहिये, इनमें से एक बालकों का खेल भी है जो "अक्षरिका" कहलाया जाता था; यह खेल इस प्रकार से खेला जाता था कि एक बालक किसी बालक के पीठ में या हवा में कुछ लिखता था और एक अन्य बालक को यह अंकित अक्षर बताने पड़ते थे। इस 'अक्षरिका' के खेल से साफ प्रगट होता है कि उस समय वर्णों का ज्ञान मनुष्यों को अच्छी प्रकार से ज्ञात था।

(ख) "विनय" नामक बौद्ध पुस्तक में, जो कि दो या तीन शताब्दियों के पश्चात् लिखी गई थी, भिक्षुओं के वास्ते लिखने के विषय बहुत से नियम दिये हुवे हैं। जैसे—

(१) लिखना एक प्रकार की प्रशंसनीय विद्या समझा जाता था, परन्तु मठ के भिक्षुकनियों को लिखना सीखने का निषेध किया जाता था।

(२) किसी अपराधी को जिसका नाम राजा की ड्योढ़ी में लिखा जाता था उस को मठों के संरक्षक भिक्षु की तरह ग्रहण नहीं कर सके थे।

(३) यदि किसी बालक के भविष्य में जीवन निर्वाह करने के विषय वादानुवाद होता तो उसके माता पिता यह निर्णय करते कि यदि वह लेखक का धर्म ग्रहण करेगा तो वह कुशल से और आनन्द पूर्वक रहेगा परन्तु इस अवस्था में उसकी अंगुलियों में व्यथा होगी।

(४) यदि कोई भिक्षु किसी मनुष्य को आत्महत्या के लाभों के विषय लिखे तो लेख के प्रत्येक अक्षर के वास्ते वह एक पाप करता है इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि लिखना उस समय अच्छी प्रकार से प्रचलित था और यह भी ज्ञात होता है कि यद्यपि लिखना बालकों के खेल के और मित्रों के परस्पर के व्यवहार में काम में आता था तथापि पुस्तकों और लम्बे लेखों के वास्ते अयोग्य था जैसा कि निम्न लिखित बातों से साफ प्रगट होता है।

(१) यदि उस समय भारत में पुस्तकों का प्रचार अच्छी रीति से होता तो पुरातन हस्त लिखित लेखों (Manuscript) से बौद्ध सन्यासियों का प्रतिदिन बड़ा सम्बन्ध रहता हम बौद्ध पुस्तकों में भिक्षुओं की तुच्छ से तुच्छ जैसे भोजन बनाने के भाण्ड इत्यादियों का वर्णन पाते हैं परन्तु कहीं भी प्राचीन लेखों और पुस्तकों के विषय कुछ भी नहीं लिखा है। इस प्रकार गौण रीति से यह बात सिद्ध होती है कि उस समय पुस्तकों का अभाव था।

इसकी अपेक्षा और भी बहुत सी सूचनाएं इस सिद्धान्त को पुष्ट करती हैं कि बौद्ध काल के पूर्व पुस्तकों का प्रचार भारत में बहुत कम था। जैसे "अंगुत्तर" (एक बौद्ध पुस्तक) के २-४७ में बौद्ध धर्म के क्षय होने के कारण लिखे हैं जिन में से एक यह भी है कि अति विद्वान् और पठित् भिक्षु लोगों ने बुद्धदेव के उक्त "सुत्तान्तो" को अपर पुरुषों को सिखाने में बहुत कम ध्यान दिया।

मनुष्यों को पुस्तकों को पढ़ने की अपेक्षा अपनी मानसिक शक्ति को बढ़ाने का, जिससे कि वे जो कुछ सुनें अपने हृदय में धारण कर सकें, उपदेश दिया जाता था।

बौद्ध पुस्तक "विनय" में लिखा है कि "पतिमोक्ष" (जिसमें बौद्ध धर्म के २२७ नियम लिखे हैं) प्रत्येक बिहार में प्रतिमास पढ़ा जाना चाहिये और यदि मठ के भिक्षुओं में से किसी को भी यह कण्ठाग्र याद न हो तो वे अपने में से किसी अल्पवयस्क भिक्षु को एक निकटवर्ती विहार में पतिमोक्ष सीखने के वास्ते भेज दे।

इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि यद्यपि भारत में उस समय पुस्तकों का प्रचार बहुत कम था तथापि आर्य लोग अक्षरों से चिरपरिचित थे।

यह बात अद्भुत प्रतीत होती है कि यदि अक्षरों का प्रचार अच्छी प्रकार से था तो पुस्तकें क्यों नहीं लिखी गईं। इसके दो कारण हो सकते हैं।

(१) लिखना भारत में बहुत पीछे काम में लाया गया-इसके भारत में आने के पूर्व आर्य ऋषियों ने ज्ञान और विद्या को चिरस्थायी करने की एक अच्छी रीति (कि किसी मन्त्र या ऋचा को कण्ठाग्र करना और उसे अपने पुत्रों और शिष्यों को बताने की) पूर्णता की शिखर को पहुंचा दी थी और वे अपने पुरातन और वंशपरम्परागत रीति को सहसा छोड़कर एक अपूर्ण रीति को ग्रहण नहीं कर सकते थे।

(२) वरन यदि वे लिखना चाहते भी तो उनके पास अति दीर्घ लेखों और पुस्तकों को लिखने के वास्ते कोई पदार्थ नहीं था।

द्वितीय सिद्धान्त जो कि यह प्रगट करता है कि भारतीय वर्णमाला द्राविड़ व्यापारियों से दक्षिण में लाई गई और वहां से उत्तर की ओर पयान किया।

यह बात प्रथम लेबर साहबने ढूंढ निकाली और बूलर साहब से विस्तृत और पुष्ट की गई कि कुछ प्राचीन भारतीय अक्षर असीरिया देश के तौलों और पैलेस्टाइन के "मीसा" स्तम्भ के अक्षरों से सादृश्यता रखते हैं।

अब यदि कोई यह प्रश्न करे कि भारतीय बणिकों का पैलेस्टाइन के किनारे "मीसा" स्तम्भ खोदने वालों से कुछ सम्बन्ध नहीं था तो यह कहा जा सक्ता है कि भारतीय अक्षर उसी स्थान से निकले हों जहां से उत्तरी और दक्षिणी सिमिटी अक्षरों का प्रादुर्भाव हुआ अर्थात् प्राचीन सिमिटी अक्षरों से जो कि यूफ्रेटीज़ नदी के घाटी में काम में लाये जाते थे। ये बातें शताब्दी ई० पू० अथवा उससे भी पहिले की होंगी जब कि प्राचीन सिमिटी अक्षर बायें से दक्षिण की ओर लिखे जाते थे।

तीसरी साक्षी केनेडी साहब के सिद्धान्त के अनुसार है जो कि एशियाटिक सोसाइटी की १८९८ वाली संख्या में अच्छी प्रकार बताया गया है। वह इस प्रकार है:-

(१) ईसा मसीह के सातवीं शताब्दी पूर्व भारत के पश्चिमी बन्दरगाहों और बभेरू (बैबिलन) के बीच बहुत वाणिज्य होता था।

(२) सम्भव है कि यह व्यवहार इससे भी पूर्व से चला आया हो।

(३) सम्भव है कि भारतीय व्यापारी जो बभेरू तक जाते थे उस से भी आगे पैलेस्टाइन के पश्चिमी तट तक चले गये हों या वे यमन तक समुद्री राह से गये हों अथवा अफ़गानिस्तान की ऊंची घाटियों से गये हों।

इन सब बातों से भारतवर्ष में लिखने की प्रथा का सब से प्रथम आगमन के विषय अच्छी प्रकार से सूचना मिलती है। दूसरे शब्दों में यह इस प्रकार कहा जा सकता है कि ७वीं शताब्दी के आदि में वा ८वीं शताब्दी के अन्त में द्राविड़ी व्यापारी भारत के दक्षिण-पश्चिमी बन्दर-गाहों से समुद्र की राह से बभेरू में, जो कि उस समय एक बहुत बड़ा व्यापारी शहर था, वाणिज्य करते थे, ये व्यापारी वहां एक लिखने की पद्धति से परिचित हो गये और जिसका प्रचार इन्हों ने भारत में किया, यही अक्षर पश्चात् भारतनिवासियों की बोल चाल की और अध्ययन करने के वर्णाक्षर हुये। इन्हीं से सब प्रकार के अक्षर जो कि वर्तमान में भारतवर्ष, श्याम और सिंहलद्वीप में प्रयोग किये जाते हैं निकले हैं।

जिस समय यह लिपी भारतवर्ष में लाई गई उस समय भारतवासियों का एक बहुतही महान वैदिक साहित्य था जिसको ब्राह्मणों ने बहुत काल से अपने स्मृति में स्थान दे रक्खा था। ये अक्षर पुरोहित वर्ग को अल्पही काल में ज्ञात हो गये थे परन्तु उन्होंने अपनी पुरातन प्रथा नहीं छोड़ी।

बभेरू निवासी मिट्टी की पट्टिकाओं में लिखते थे परन्तु भारत में मनुष्य एक लेखनी से भूर्जपत्र में चिन्ह करते थे । पहिले पहल मसि मनुष्यों को मालूम नहीं थी ।

किञ्चित्काल पर्यन्त ताड़ के पत्ते काम में लाये जाने लगे और इसके कुछ ही समय पश्चात् एक प्रकार की मसि भी निर्माण की गई जोकि अंकित अक्षरों पर घिसी जाती थी ।

इस प्रकार यह कहा जासक्ता है कि जब तक ये सब वस्तुएं निर्माण नहीं की गईं तब तक कोई पुस्तकें नहीं लिखी गईं ।

अब प्रश्न यह है मनुष्य इनको ढूढ़ने में पहिले से दत्तचित्त क्यों नहीं हुए । इसके खण्डन में यही कहदेना उचित है कि इनकी पहिले उतनी आवश्यकता नहीं थी ।

भारतीय व्यापारी जोकि अक्षरों का ज्ञान बभेरू से सीख आये थे उन्होंने बभेरू निवासियों के समान मिट्टी पट्टिकाओं में लिखने की प्रथा भारत में नहीं चलाई । यद्यपि आर्यावर्त में बहुत से स्थानों में लिखी हुई ईंटें और पट्टिकाएं प्राप्त हुई हैं तथापि ताम्र और सुवर्णपत्र बहुधा लिखने के काम में लाये जाते थे । परन्तु जबसे भूर्जपत्र और ताड़ के पत्ते प्रयोग किये गये तभी से लम्बे लेख और पुस्तकें लिखी जाने लगी ।

संस्कृत भाषा पाली भाषा से पूर्व की है परन्तु इस की अपेक्षा यह जानना चाहिये कि जितनी ही शुद्ध संस्कृत में और विना पाली शब्दों के मेल की कोई पुस्तक हो वह उतने ही अर्वाचीन समय में रची गई हैं । जिस समय से पाली भाषा का जन्म हुआ तब से दोनों ही भाषाएं अपने रूप को अच्छे २ वाक्यों और पदों से भूषित करने में उद्यत हुईं और इस प्रकार से दोनों ही भाषाएं अपने स्वरूप में शनैः २ कृत्रिम होती गईं । यह द्वन्द बहुत शताब्दियों तक होता गया परन्तु जिस समय अक्षर अपनी पूर्ण सीमा तक पहुंचे उसी समय पाली भाषा सम्पूर्णतः क्षीण हो गई और संस्कृत ने जन समुदाय में आदर का स्थान पाया, खृष्ट्राब्दीय पांचवीं शताब्दी से संस्कृतही सर्वश्रेष्ठ मानी जाने लगी और यही भाषा अधिकतर यज्ञादि धार्मिक विषयों में काम में लाई गई ।

यह एक प्रकार की सर्व परिचित भाषा होने के कारण अन्यदेशों में भी समझी जाती थी । पुरोहितवर्ग ही केवल उस समय विद्याभाण्डार के स्वामी थे इस हेतु उन्हीं की भाषा ऐसी थी जिस में विदेशीय विद्वानों के मध्य व्याख्यान दिये जायं, परन्तु इस के साथ ही साथ भारत में अन्य भाषाएं समय के परिवर्त्तन से अर्ध संस्कृत और अर्ध ग्रामीण भाषाओं के सम्मेलन से उत्पन्न होती गईं और उन में संस्कृत व्याकरण का बहुतसा भाग मिल गया ।

संस्कृत श्रेष्ठ और उत्कट भाषा होने के कारण निम्न जातीय मनुष्यों में बहुत कम काम में लाई जाती थी, अतएव व्याख्यानदाता उन को सुधारने और धार्मिक विषय समझाने के लिये उन्हीं की भाषा को व्यवहार में लाते थे । इस प्रकार पाली भाषा की उन्नति हुई । परन्तु फिर समय के परिवर्त्तन से संस्कृत की उन्नति होने लगी और अधिक विद्वत्ता पूर्ण संस्कृत शब्द भाषा में मिलते गये जब तक कि अन्त में भाषा शुद्ध संस्कृत बन गई ।

यही परिवर्तन आजकल हमारी हिन्दी भाषा में भी हो रहा है । वही भाषा जिस का आदि जन्म संस्कृत से था और पश्चात् यवन और अन्य विदेशीय भाषाओं के सम्पर्क से कलुषित हो गई थी और उर्दू के नाम से विख्यात थी अब फिर से संस्कृत शब्दों और पदों के सम्मेलन से अपने पूर्व पितर संस्कृत से जा मिलेगी और इस प्रकार "सर्वे गच्छन्ति स्वोद्भवं" इस सिद्धान्त को सत्य करके दिखावेगी ।

—०—

भारत और पश्चिमीय संस्थाएं ।

जब कोई देशभक्त चाहे वह नाइल के किनारे पर बसता हो या गङ्गा के, इस प्रश्न को उठाता है कि शासन में अधिकतर अधिकार प्रजावर्ग के चुने हुये प्रतिनिधियों के हाथों में होना चाहिये तो उसे प्रायः यही उत्तर मिलता है कि प्रतिनिधि शासन-प्रणाली पश्चिमीय प्रबन्ध है और पूर्वीय देशों में इसका होना असम्भव है तथा पाश्चात्य देशों की सब बातों में नकल करना पूर्वीय देशों को हानिकर होगा । इस बात के जानने के लिये कि क्या सचमुच उपर्युक्त विचार ही से हमारे शासक हम लोगों पर राज्य कर रहे हैं । यह आवश्यक मालूम होता है कि इस मत की जांच की जाय ।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अब भारतीय गवरमेंट और उनके इङ्गलैंड के प्रभुओं को यह मानना पड़ा है कि अब समय आगया है जब कि प्रजा के प्रतिनिधियों को शासन में अधिक अधिकार और सरकारी विभागों के बड़े २ स्थानों पर नियत करना आवश्यक है । किन्तु इस विचार को कार्य में परिणत करने के लिये जिस पथ का अवलम्बन किया जा रहा है वह सरकार के उद्देश्य की सत्यता में विश्वास कराने की अपेक्षा शङ्का को बढ़ाता है । हम लोगों से कहा जाता है कि पूर्व पूर्व है और पश्चिम पश्चिम और जो गवरमेंट का क्रम पश्चिमीय देशों के लिये हितकारी है वह पूर्वीय देशों के लिये हितकारी नहीं हो सकता । पूर्वीय निवासी एक न एक प्रकार के स्वेच्छाचार को पसन्द करते हैं और प्रतिनिधि-शासन-प्रणाली उन्हें चित्त से रुचिकर नहीं होती । हम लोगों को बतलाया जाता है कि बहुत पुराने समय में अशोक इस प्रकार से राज्य करते थे और अकबर और औरङ्गजेब के समय में शासन-प्रणाली ऐसी थी और साथ ही साथ यह मान लिया जाता है कि यद्यपि सारा संसार उन्नति कर रहा है और बड़े २ परिवर्तन नित्य प्रति होते भी हैं किन्तु भारत अपनी पुरानी ही जगह पर जहां कि वह सैकड़ों वर्ष पहिले था स्थित है। प्लासी की लड़ाई के समय से और १८५७ की घटना के बाद से जब से कि स्कूल और कालेजों का जन्म हुआ हम लोगों की विचारशक्ति बढ़ती ही जाती है । बड़े २ राजनीतिज्ञ मिल, बर्क, मेकाले आदि के उपदेशों को पढ़ने से तथा पाश्चात्य देशों की शासन प्रणाली को ध्यान से ५०। ६० वर्ष तक मनन करने से हमारा शिक्षित समाज सभ्यता और भाव में एक प्रकार से पूर्ण रीति से पश्चिमीय हो रहा है यहां तक कि इन बातों में हम लोग अपने पूर्वजों से उतनाही मिलते हैं जितना कि वर्तमान समय के अङ्गरेज महारानी विक्टोरिया के समय के पहिले के अपने पूर्वजों से। हम लोगों का उद्देश्य और हमारा कर्तव्य ज्ञान भी हमारे पूर्वजों से बिलकुल प्रतिकूल है और चाहे अच्छा परिणाम हो या बुरा हम लोगों ने अपने विचार और उसीके साथ ही साथ पुरानी शासन प्रणाली का क्रम सब बदल दिया है जैसे कि पुराने पहिनावे समयानुसार फैशन सदृश न होने से छोड़ दिये जाते हैं । पाश्चात्य राजाओं का कर्तव्य जान कर तथा यह सीख कर कि "Government is a contrivance of human wisdom to provide for human wants" (लोगों ने अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपनी बुद्धि से गवमेंट रूपी यत्न का निर्माण किया है) और एमेरिका की लड़ाई के सबक को विवश हो न भूल कर "That taxation and representation should go hand in hand" कि कर और प्रतिनिधि साथ २ चलते हैं अर्थात् यदि प्रतिनिधि नहीं तो कर नहीं" हम लोग कभी भी प्रसन्नता से इस बात पर सहमत नहीं हो सकते कि हमारा राजकाज

विदेशी लोग हम लोगों की अपेक्षा भली प्रकार चला सकते हैं यद्यपि हम लोग यह भी जानते हैं कि हमारे पूर्वजों को यह प्रणाली बहुत ही रुचिकर थी। अशोक और औरङ्गजेब का समय काल के गाल में समा गया और वही शासन प्रणाली जो उस समय के लिये हितकर रही होगी अब नीरस और व्यर्थ है जब कि वही समय और वही अवसर अब वर्तमान नहीं है। समय अब बदल गया है और उसी के साथ ही साथ हम लोगों के विचारों और रहन सहन में भी परिवर्तन हो गया है। तिरस्कृत पूर्व निवासी भी प्रतिनिधि शासन प्रणाली का अपना सत्व और अधिकार मानने लगे हैं और जो गवर्मेंट इस बात को जान कर अनजान बनती है और राष्ट्रीयता की इस बाढ़ को रोकना चाहती है वह अवश्यही एक न एक दिन अपने प्रयत्न में बिफल प्रयास होगी। सच्ची राजनीतिज्ञता उठती हुई लहर के ऊपर २ तैरने में है किन्तु बाढ़ को रोकने के प्रयत्न में बाढ़ के नीचे डूब जाना केवल मूर्खताही कही जायगी। यदि आज हिन्दुस्तानियों के स्थान पर कोई गोरी जाति होती तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे शासकों के विचार में यह बात आवश्यक जचती कि उन्हें किसी न किसी प्रकार की नियम बद्ध स्वतंत्रता देना आवश्यक है और उस समय चाणक्य की इस उक्ति से काम लिया जाता "सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धंत्यजति पंडितः" कुछ रखने के लिये आधी का दे देना बुद्धिमानी है। सब से बड़ी गलती जो पश्चिमीय लोग कर रहे हैं वह यह है कि उनकी राय में प्रजावर्ग में स्वातंत्र्यप्रियता और शासन में अधिकार की इच्छा केवल पश्चिमीय देश के निवासियों में होती है और इस का पट्टा ईश्वर ने केवल पश्चिमीय देशों के निवासियों को लिख दिया है। यदि अङ्गरेज़ों तथा और युरोपीय देश निवासियों के इस प्रयत्न में कोई पाप नहीं है कि उनका देश उन्हीं के लिये है तो फिर यदि भारतवासी ऐसाही करते हैं तो वे क्या पाप करते हैं। केननस्काट हालेंड साहब ने Common Wealth नाम के एक अखबार में यह लिखा था:-

"And why is it that an Englishman is so paralysed by a nationalism of this sort? What else could he look for? He has poured out upon the East a literature and a civilization charged and steeped in the spirit of liberty. Did he imagine that it would not bear its fruits?

Why then does he stand there bewildered and indignant muttering. "I gave them law and order: I gave them drains and roads; and bridges and railways and trams; I gave them everything that could make them feel comfortable and secure. What on earth do the ungrateful beggars want more.

What do they want! why everything that an Englishman would want. They want to do for themselves what we have done for them.

If they were white an Englishman could not be blind to this inevitable craving for liberty. Why is it that he always finds it incomprehensible when brown humanity turns out to be as human as he is.

"इसका क्या कारण है कि अङ्गरेज भारतवर्ष में राष्ट्रीयता की बाढ़ देख कर हतबुद्धि हो जाता है? इसके सिवाय वह और क्या देखने की आशा करता है? उसने पूर्वीय देशों में ऐसे साहित्य और सभ्यता का प्रचार किया है जिसमें स्वतन्त्रता पूर्ण रूप से भरी है। क्या वह समझता था कि यह निष्फल जायगा और इस प्रचार का कुछ फल न होगा?

इन सब कारणों के होते वह क्यों विक्षिप्त की भांति क्रोध से गुनगुनाता है "मैंने उन्हें कानून और शान्ति दी; मैंने उनके लिये नालियां बनवाईं, सड़कें बनवाईं, रेल और ट्रैम दौड़ाई

मैंने सब कुछ उनको दिया जिससे वे आराम से रहें, अब ये कृतघ्न भिक्षुक और क्या चाहते हैं?

वे क्या चाहते हैं? निस्सन्देह वही सब चीजें जो एक अङ्गरेज चाहैगा। वे अपने लिये वही किया चाहते हैं जो हमने उनके लिये किया है।

यदि वे गौर जाति के होते, तो कोई भी अङ्गरेज उनकी स्वतन्त्रता की लालसा को अन्ध दृष्टि से न देखता। तब फिर काले आदमियों का अङ्गरेज ही की तरह मनुष्यत्व को प्राप्त करना उसकी समझ में क्यों नहीं आता"

भारतवासी प्रतिनिधि-शासन-प्रणाली के योग्य नहीं हैं। हमारे स्थानीय शासक गण सर्वदा इसी युक्ति से काम लेते हैं और प्रायः अङ्गरेज जो कुछ भारतवासियों से सहानुभूति करना चाहते हैं इसी उत्तर से सन्तुष्ट हो बैठ रहते हैं किन्तु इस युक्ति को प्रमाण से ठीक साबित करवाने का कोई कष्ट नहीं उठाता। हम यहां पर यह पूछना चाहते हैं कि कब और किस समय हिन्दुस्तानियों को राज्य शासन में कुछ अधिकार दिया गया और वे अयोग्य ठहरे। हमारी समझ में नहीं आता कि अङ्गरेज लोग भारतवासियों की प्रतिनिधि शासन प्रणाली की योग्यता को किस रीति से आज़माते हैं और किस मान से। जितनी जातियां आज दिन भूमण्डल में स्वतन्त्र हैं तथा जहां कहीं प्रतिनिधि शासन प्रणाली स्थित है कहीं भी यह नहीं देखा गया कि पूर्ण रूप से योग्य होने पर उन्हें स्वतन्त्रता मिली हो। फ्रान्स, जरमनी, जापान और विशेष कर परसिया सब को बड़ी २ कठिनाइयों से सामना करने के बाद, क्या बड़े २ विप्लवों के बाद, बर्तमान स्थिति का दिग्दर्शन हुआ। जैसा कि *Rev. J. P. Hopps* ने कहा था।

What is wanted is the sense of responsibility and the sharing of that responsibility by all orders of the people. A nation has to learn Self-Government just as it has to learn everything else and nothing helps so much as to put the nation, the whole nation in charge of its own destiny. It is as absurd to say that Nationality must not be granted until the people are quite fit to rule as it is to say that a man must not go into the water until he has learnt to swim.

रेवरेण्ड जे० पी० होप्स ने कहा था:-

आवश्यकता इसकी है कि प्रजा में उत्तरदायित्व का भाव लाया जावे और राष्ट्र के सभी दशा के लोग उस उत्तरदातृत्व भाव के भागी बनाये जावें। राष्ट्र को जैसे और सभी बातें सीखनी पड़ती है वैसेही उसे स्वराज्य तन्त्र भी सीखना पड़ेगा और राष्ट्र को उसके इस काम में और किसी दूसरी बात से उतनी सहायता नहीं मिल सकती जितना कि उसको, उस सम्यक् राष्ट्र को, उसका अदृष्ट उसी के हाथ सौंप देने से (तात्पर्य्य कहने का यह है कि राष्ट्र को जैसे और सब बातें सीखने से आती हैं वैसेही आत्मशासन प्रणाली भी सीखने से आ जायगी, और जैसे कोई काम बिना उसे अपने हाथों किये धरे नहीं आता वैसे ही राष्ट्र का अदृष्ट वा उसकी भलाई बुराई उसी के मत्थे डाल दिये बिना उसे स्वशासन करना नहीं आ सकता।)

यह कहना कि जब तक कि लोग पूर्ण रीति से राज्य वा शासन करने के योग्य न हो जावें किसी की राष्ट्रीयता न स्वीकार की जानी चाहिये ठीक वैसी ही व्यर्थ की बकवाद है जैसा कि यह कहना कि जब तक कोई तैरना न सीख लेवे उसे पानी भीतर न धसने देना चाहिये।" बिना पानी में धंसे तैरना किसी को आया है?

यदि यह थोड़े समय के लिये मान भी लिया जाय कि भारतवासी अभी स्वराज्य, या प्रतिनिधि शासन प्रणाली के योग्य नहीं हैं तो भी यह कोई कहने का साहस नहीं कर सकता

कि ये सर्वदा योंहीं अयोग्य बने रहेंगे । यदि भारतीय गवर्मेंण्ट सत्यही हम लोगों पर शासन हमारे हित ही के लिये कर रहा है और यदि इस कहावत में कुछ भी सत्य का अंश है कि:-

"Free play for men of all races to attain to the best that is in them, is the principle which British Rule has sedulously endeavoured to realise in all parts of the Globe, by introducing institutions for the protection of life and property, and giving all possible scope to varities of traditions, sentiment and culture."

तब हम लोग चाहते हैं कि हम लोग भी प्रतिनिधि शासन प्रणाली के अधिकारी होने के लायक बनाये जांय चाहे इसमें आरम्भ में हम लोगों से गलतियां भी हों। यह सत्य है कि हम लोगों में साम्प्रदायिक और जातीय भेद बहुत हैं और इन सब के कारण भारतवासियों का एक राष्ट्र बनाना या उनका स्वयं बनना असम्भव दिखलाई पड़ता है किन्तु जैसा कि नपोलियन कहा करता था Impossible is a word to be found in the dictionary of fools" असम्भव शब्द केवल मूर्खों के कोष ही में होता है; हज़ार भेद होने पर भी हम लोगों में ऐसे तत्व और germs वर्तमान हैं जिनको अच्छी तरह से मिलाने से हम लोगों का एक राष्ट्र बन सकता है किन्तु मिलाने का काम केवल powerful outside influence (बाहरी शक्ति) कर सकता है जो Divide and rule की पालिसी पर न चलता हो।

सब से विचित्र बात जिसे हम नहीं समझते वह यह है कि प्रजा शासन प्रणाली की चर्चा में तो हमारे विदेशी हितेच्छू यह कहते हैं कि पूर्व पूर्व है और पश्चिम पश्चिम और पाश्चात्य देशों में जो बातें हितकर हैं वह पूर्वीय देशों के लिये हितकर नहीं हैं किन्तु व्यापार सम्बन्धी बातों में वे अपने इस कथन को भूल जाते हैं। हमने यह कहे जाते नहीं सुना कि निःशुल्क व्यापार Free trade पाश्चात्य प्रथा है और यह पूर्वीय देश भारतवर्ष के लिये हितकर नहीं है। यदि प्रतिनिधि शासन प्रणाली के योग्य भारतवासी नहीं हैं तो फिर Free trade रूपी व्याघ्र के मुख के ग्रास वे क्यों बनाये जाते हैं, क्या Free Trade भारतवासियों के लिये हितकर है?

भारत ने इङ्गलैण्ड का बहुत हित किया है एक प्रकार से यों कहना चाहिये कि इङ्गलैण्ड की बर्तमान उन्नत दशा मोगल बादशाहों की उदारता का फल है। इस हीन दशा में भी आज भारत के ही सहारे इङ्गलैण्ड की तूती भुमंडल में बज रही है। इस में कोई सन्देह नहीं कि इंगलैण्ड साम्राज्य के मुकुट में सबसे देदीप्यमान और अनमोल रत्न भारत ही है। इंगलैंड को भी उचित है कि वह उसे मस्तक ही पर धारण किये रहे और उसे पद दलित न करै, जब इंगलैण्ड की कहीं तीन तेरह में भी गिनती न थी उस समय भारत ने उसे अपने बराबर बिठाया और पूर्वीय उदारता के वश केवल उसने बराबर ही नहीं बरन अपने को स्वयम नष्ट कर इंगलैण्ड को आज सारे संसार में सब से ऊंचा स्थान दे रक्खा है। इंगलैण्ड को भी उचित है कि वह अपने ऋषियों Macalay, Burke Gladstone के उपदेशों पर चलें और भारत को उसके भलाई का उससे अधिक बदला दे। इंगलैण्ड आज दिन सर्व शक्ति सम्पन्न है और अपनी शक्ति का कुछ ह्रास कर भारत को शक्तिमान बनाने में उसकी प्रशंसा ही है। आज दिन भारतवासियों के चित्तों में स्वतन्त्रता का जो कमल खिल रहा है उसका बीजारोपण इंगलैण्ड ही ने किया था अब उसका यह धर्म और कर्तव्य है कि वह प्रयत्न करै कि कोमल कमल नाल वायु के झकोरों से कहीं टूट कर नष्ट भ्रष्ट न हो जाय। इंगलैंड का कर्तव्य बड़े महत्व का है

पूर्व और पश्चिम को मिलाना और एक करना उसका परम कर्तव्य है और इस प्रयत्न से मुख मोड़ना उसके लिये प्रशंसनीय नहीं होगा।

प्रेमपरिचय।

[लेखक-पं० माधवशुक्ल]

ढूंढ़ा सब संसार प्रेम का पता न पाया।
प्रेमी जन से पूंछ २ दिन व्यर्थ गंवाया॥
खोज थका कर यत्न हृदय मंदिर के भीतर।
किन्तु वहां भी पता मिला मुझको न अधिकतर॥
कहते थे सब लोग मुझे पागल दीवाना।
किस धुन में हूं मग्न किसी ने यह नहि जाना॥
रहता था नहिं कभी एक क्षण मन थिर रखकर।
उत्सुकता वश फिरा किया करता था दर दर॥
था यद्यपि मैं दुखी दृष्टि में दर्शक जन के।
औ था भी होगया वास्तविक दुर्बल तन से॥
किन्तु प्रेम पीयूष पूर्ण प्याला पीने से।
रहत दोनों नेत्र मस्त मद में भीने से॥
कहां जांय क्या करैं कौन सा यत्न बनावैं।
जिस करने से सत्य प्रेम का दर्शन पावैं॥
इस इच्छा मद में अतीव होकर मतवाला।
धन, जन सम्पति सुख कुटुम्ब सब कुछ तज डाला॥
बन में करके तप अभीष्ट पाते थे ऋषि गन।
यह विचार कर मैंने भी तब लिया मार्ग बन॥
करता वहां निवास अनेकों दिवस बिताया।
शिर अपना कंदरा गुहाओं से टकराया॥
किन्तु न तब भी हुई पूर्ण मेरी अभिलाषा।
बनी रही इतने पर भी हिय प्रेम पिपासा॥
तब होकर मैं विवश लगा अतिशय घबड़ाने।
थिरता मन की गई बुद्धि नहिं रहीं ठिकाने॥
उसी दशा में मिला एक मुझको सन्यासी।
महा वृद्ध तेजस्वि उसी जंगल का बासी॥
उसने मुझ से कहा "अरे! क्यों खोता दिन है।
जा अपने घर चला प्रेम पथ बड़ा कठिन है॥
औ, अवश्य ही प्रेम हेतु जो हो उत्सुक मन।
तो पुराण इतिहास आदि निजकर अवलोकन॥
उसमें कविजन कथित प्रेम का पढ़ कर वर्णन,
तू अवश्य ही होजावेगा परम तुष्ट मन"॥
इस प्रकार मैं उसका कहना ठीक जानकर।
छान बीन कर लगा देखने ग्रन्थ आनकर॥
पहले देखा प्रेम पूर्ण श्रीकृष्ण कहानी।
जयदेवादिक भणित प्रेम के रस से सानी॥
वह जादू की वेणु प्रेमरस पूर्ण मनोहर।
तिसमें भी मैं ढूंढ थका कर एक एक स्वर॥
और कहां तक कहैं कृष्ण के अंग अंग में।
मोर मकुट में बांकी छबि में श्याम रग में॥
गोपिन, ग्वालन, गौ बन में बृषभानु लली में।
यमुना तट में घर घर में ब्रज कुंज गली में॥
कुब्जा गृह में और सुदामा के तण्डुल में।
विदुर शाक में शवरि बैर में पाण्डव कुल में॥
यह सब लीला देख हुआ मोहित मैं यद्यपि
किन्तु हृदय को शान्ति मिली क्षण भर नहिं तद्यपि॥
हो सकता क्या अधिक प्रेम परिचय जग इससे।
अस्थायी कह किन्तु हुआ मन तुष्ट न तिससे॥
फिर देशों के इतिहासों को देख थके हम।
किन्तु व्यर्थ ही हुआ हमारा सकल परिश्रम॥
वही दशा फिर हुई हमारे हृदय देश की,
अस्थिरता के संग अशान्ति ने फिर प्रवेश की॥
तज बन मैं इस वार देश की ओर सिधारा।
पूरा करना रहा दैव को इष्ट हमारा॥
इस अशान्ति में मुझे दिखाया सब शुभ लक्षण।
बढ़ते ही एक देश हुआ धन हीन निरीक्षण॥
मैं टकराता हुआ गया उस दुखी देश में।
देखा तहं एक पुत्रवती को मलिन वेष में॥
पांच पुत्र थे उसके छोटे बड़े मिलाकर।
जिनमें प्रायः थे अबोध सबही अतिशयतर॥
देख देख कर तिन्हें मनहि मन में मुसक्याती।
चूम चूम हिय से लगाय फूले न समाती॥
दृष्टि लगाए हुए उन्हीं पांचों के ऊपर।
करती सब को प्यार मधुर शब्दों को कह कर।
थी जग की सम्पत्ति तुच्छ पांचों के सन्मुख।
वही प्राण वहि जीवन के थे दुःख और सुख॥
वे बच्चे भी लपट लपट कर अंग अंग में।
अनुपम सुख को लूट रहे थे मात संग में॥

जब तब उनमें कभी लड़ाई हो जाती थी ।
माता उनको गले लगा कर समझाती थी ॥
कहीं एक को ले लेती यदि अंक उठाकर ।
चारो जाते रूठ नाक औ भौंह चढ़ाकर ॥
तब लेती सब को बिठाय वह बड़े प्यार से ।
जिससे वे विकसित हो जाते पुष्पहार से ॥
होता था अनुमान देख कर तिन्हें गोद में ।
इन्द्रासन ये तुच्छ जानते इस प्रमोद में ॥
था यद्यपि भर पेट अन्न का नहीं ठिकाना ।
माता को था महा कठिन संसार बिताना ॥
घर भी टूटा वस्त्र फटे आकृति भी चिन्तित ।
वस्त्रहीन बालक रहते थे धूल धूसरित ॥
तौ भी किसी प्रकार अन्न कुछ वह संचित कर ।
करती पुत्रन तुष्ट आप वरु तृप्त न होकर ॥
इस प्रकार माता का अनुपम प्रेम देख कर ।
मैं हो गया अवाक् अचल चित्रित सा दर पर ॥
प्रेम अश्रु से पूर्ण नेत्र हो गये अचंचल ।
औ असीम आनन्द पूर्ण गद्गद हृदयस्थल ॥
सत्य प्रेम जिस्के हित भूले दुःख अनेकन ।
देखा तिस्को वहां लोटते भूमि नग्न तन ॥
हुआ मुझे आनन्द परम उस समय अलौकिक ।
जिस्के सन्मुख तुच्छ सकल सुख हैं स्वर्गादिक ॥
निश्चय ही जग सत्य प्रेम है सुत माता में ।
नर नारी में गुरु न शिष्य में नहि भ्राता में ॥
अहह ! अलौकिक प्रेम एक माता में पाया ।
और मुझे संसार प्रेम मिथ्या सा भाया ॥
जैसा मुझको मिला "प्रेम परिचय" अनुपम सुख ।
करता हूं मैं उसी तरह पाटक जन सन्मुख ॥

जङ्गबार टापू ।

[लेखक-श्रीयुत मङ्गलानन्द पुरी]

गत वर्ष में अफ्रिका महा द्वीप तथा उसी के निकटस्थ जङ्गबार टापू को गया था आज वहांही के कुछ वृत्तान्त पाठकों के विनोदार्थ सुनाता हूं ।

इसे अङ्गरेज़ लोग ज़ंज़िबार Zanzibar कहते हैं परन्तु भारतीय गण जो वहां गये हैं अपनी भाषा में जङ्गबार बोला करते हैं । वस्तुतः यह अरबी के दो शब्दों ज़ंज़ + बहर से बना है जिस का शब्दार्थ उस भाषा में समुद्र पर राज्य करने वाला या ऐसाही कुछ है निदान् यह अरबी का शब्द है और यह सूचित करता है कि अरब के लोगों ने ही पूर्वकाल में इस का यह नाम करण संस्कार किया था ।

बंबई से स्टीमर वहां १२ से १५ दिनों तक में पहुंच जाता है । कराची पोर बन्दर (काठियावाड़) द्वारिका से भी स्टीमर जाते हैं । गुजराती हिन्दू तथा मुसलमानों से भरी हुई जहाज़ें प्रायः मास में दो तीन जाती और आती होंगी । सब लोग जहाज़ पर बैठते समय सारी आवश्यकता की वस्तुएं मोल ले कर रख लेते हैं और लोहे के चूल्हों पर जो जहाज़ में बने हैं रसोई सब प्रकार की अपनी इच्छानुसार बना लिया करते हैं । पन्द्रह दिन जहाज़ में रहना होगा इस अन्दाज़ से आटा दाल चावल घी आलू प्याज मसाला लकड़ी इत्यादि लोग लेकर साथ रख लिया करते हैं फिर कुछ कष्ट नहीं होता बनाते खाते चले जाते हैं । जो छुआछूत मानते हैं जहाज पर रसोई बनाना अधर्म मानते हैं वे १५-२० दिनों की खोराक के अन्दाज़ पकवान (दूध में आटा गूंध कर घी में खस्ता) बना कर रख लेते हैं वही खाते हुये समय काट लेते हैं । स्टीमर वाले रसोई बनाने के लिये कोयला और पीने भर का मीठा पानी दे देते हैं । बरतन साफ़ करने इत्यादि में समुद्र का खारी पानी काम आता है, यह लिखने का अभिप्राय यह है कि हिन्दुओं को समुद्र पार जाने में कोई आपत्ति नहीं रह गई जो चाहें देश देशान्तरों में जा २ कर अपनी सर्व प्रकार की उन्नति कर सक्ते हैं । हां स्टीमरपर होटल भी मौजूद रहता है जिस में फर्स्ट और सेकन्ड क्लास वाले

(तथा दूसरे भी फीस देकर) भोजन करते हैं। हमने देखा है कि उन फर्स्ट सेकन्ड क्लास वाले भी हिन्दू मुसलमानों को वह अङ्गरेज़ी खाना पसन्द नहीं आता अतः वे भी अपना निज प्रबन्ध करने पर मजबूर होते हैं।

तीसरे दर्जे या डेक Deck के यात्रियों को वम्बई से ३५) या अब शायद २५) भाड़ा जङ्गबार का देना पड़ता है। यहां का पास सहज ही वम्बई में मिल जाता है केवल यह बतलाना पड़ेगा कि किस कार्य से यात्रा की जाती है।

अब जङ्गबार का वृत्तान्त सुनिये। यह टापू भूमध्य रेखा Equator से कुछ नीचे है। प्रायः ६० मील लम्बाई और ४० मील तक चौड़ाई होगी इस के आस पास सैकड़ों छोटे २ (एक २ आध २ मील वाले) टापू विद्यमान हैं। प्राकृतिक शोभा बड़ी अपूर्व है। गरमी वहां उन दिनों होती है जब इस देश में सरदी होती है। सरदी बहुत कम पड़ती है वर्षा अच्छी होती है। गर्मी प्रयाग के बैशाख मास से अधिक नहीं होती यद्यपि तासीर गरम कही जाती है। पैदावार में मुख्यतः लौंग है। वहां की गवर्नमेन्ट को लौंग के द्वाराही मालगुजारी प्राप्त होती है। लौंग के वृक्षों से सारा टापू भरा पड़ा है जिन के पत्तियों के सुगंध से हमारा दिमाग़ भर जाया करता था। प्रायः दो करोड़ रुपये का लौंग वहां से प्रति वर्ष अन्य देशों को मुख्यतः यूरोप को जाता है। इस के सिवाय जायफल, सुपारी, कई प्रकार के नीबू, बड़े आम, नारियल और केला इत्यादि भी बहुतायत से उपजते हैं। अनाज उत्पन्न हो तो सक्ता है पर कोई इन की खेती नहीं करता क्योंकि लौंग से ही अधिकांश भूमि पटी पड़ी है। इसकी उर्वराशक्ति इत्यादि पर विचार करते हुये हम यदि एक शब्द में यह कह दें कि परमेश्वर ने इसे हिन्द महासागर के बीच एक प्राकृतिक वाटिका उत्पन्न किया है तो अत्युक्ति न होगी॥

जंगवार का टापू दो तीन सौ वर्षों पूर्व पोर्तुगाल वालों के हस्तगत हुआ था फिर जब उनका ह्रास होने लगा और वे इसे न सम्हाल सके तो अरब देशीय एक अमीर का वहां आधिपत्य हो गया जो अब सुलतान कहलाता है।

अरब और फारस के बीच में जो समुद्र पर्शियन गल्फ़ Persian Gulf नाम से विख्यात है वहां मोती उत्पन्न होता है। मोती के व्यापार निमित्त सदा से भारतीय (प्रायः सिंधी गुजराती) व्यापारी वहां थोड़े बहुत रहा करते थे (वे अब भी हैं) अतः जब मस्कत का एक अमीर जंगवार का सुलतान बन कर वहां जाने लगा तब उसने एक हिन्दू (भाटिया जाति) को अपने साथ ले जाकर उसे मन्त्री या दीवान बनाया क्योंकि हिन्दू पूरे विश्वासपात्र और ईमान्दार सिद्ध हो चुके हैं। इस प्रकार धीरे २ अनेक भारतवासी वहां प्रवेश कर सके और ज्यों २ उस सुलतान की उन्नति होती गई त्यों २ हिन्दियों (हिन्दू मुसलमानों) को वहां अधिक २ भरती होती चली गई।

अफ्रिका का सारा पूर्वीय भाग (लगभग ३००० तीन सहस्र मील उत्तर दक्षिण और एक सहस्र १००० पूरब पच्छिम) सुलतान जंगवार ही के आधीन हो गया था अतः सारे अफ्रिका की मुख्य मण्डी और व्यापार केन्द्र यही जंगबार था। सारे अफ्रिका का व्यापार तथा राज्य प्रबन्ध भी भारतनिवासियों के ही हाथों में आ गया था। चिरकाल तक ऐसा ही रहा परन्तु अब वह अवस्था नहीं है। यूरोपियन शक्तियां इटैलियन, बृटिश, जर्मन, पोर्तुगीज़ ने सुलतान जंगवार को धमका कर अफ्रिका का बंटवारा आपस में कर लिया है और अब केवल अफ्रिका पर सुलतान का नाम मात्र प्रभुत्व रह गया है। सुलतान स्वयं भी अब बृटिश की संरक्षा में इसी प्रकार हैं जैसे जैपुर जोधपुर आदि के राजा गण हैं। सुलतान का शासन

घटने के साथही साथ भारतनिवासियों का व्यापार भी घट गया। यूरोपियनों के सामने भला कौन ठहर सक्ता था। वृटिश और जर्मन कम्पनियों ने दूसरों को नीचे गिरा दिया। अब उन्हीं यूरोपियन सौदागरों की तरफ से छोटे व्यापारी या एजन्ट इत्यादि बन कर भारतवासी व्यापार कर रहे हैं तिस पर भी हम यही कहेंगे कि अफ्रिका और जंगबार का व्यापार अधिकतर भारत निवासियों ही के हाथों में है। वहां की एक सरकारी रिपोर्ट का सारांश यह है कि यदि भारतनिवासियों को इस देश से निकाल दिया जाय तो एक दम सारा काम बन्द हो जाना सम्भव है। शायद शरीर जैसे प्राण बिना मुरदा हो जाता है उसी प्रकार अफ्रिका हमारे बिना पूर्ववत् ऊजड़ गांव जंगलियों असभ्यों या पशु तुल्य मनुष्यों का घर बना पड़ा रहेगा।

जिस भूभाग में हम इतने उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं वहां भी हम अपनी जड़ जमा न सके वरन उखड़ते जा रहे हैं यह क्यों? केवल अपनी मूर्खता बेसमझी सुस्ती आलस्य प्रमाद इत्यादि हो के कारण। यदि पाठक सुनने को तैयार हों तो मैं ऐसी अनेक बातें सुना सकता हूं और सिद्ध कर दूं कि हम दूसरों पर जो दोषारोपण किया करते हैं यह हमारी भारी भूल है हमें उचित है कि हम पहिले अपने आन्तरिक दोषों को खोजें और उन्हें निवारण करें।

जंगबार का इससे पूर्व जो सुलतान सन् १८६० में था उस की बहुत प्रशंसा सुनी जाती है। उसने हिन्दुओं के नेता (उसी भाटिया जाति वाले मन्त्री के वंशजों) लोगों से कहा कि हम इस जंगबार नगर के बीच का अमुक भाग (जो नगर के बीच में बड़े मौके पर था) देते हैं तुम लोग अपना पृथक "हिन्दू मुहल्ला" बसा लो और अपना मन्दिर भी बनवालो तथा अपने स्त्रियों को बुलवा कर यहां के मुस्तकिल बाशिन्दे बन जाओ। इस पर उस समय उन टिर्रेखां मूर्खों ने उत्तर दिया था कि "वाह! हम इस म्लेच्छ देश में अपना देवालय कैसे बना सक्ते हैं और हमारे घर की देवियां भला कहीं समुद्र पार आ कर धर्म भ्रष्ट कर सक्ती हैं इत्यादि" निदान वह स्थान जो हिन्दुओं को देवालय निमित्त मुफ्त मिल रहा था ईसाइयों ने हर्ष तथा धन्यवाद पूर्वक प्राप्त किया और आज नगर के बीचो बीच में कृष्ण मन्दिर के स्थान में क्राइष्ट का डङ्का पिट रहा है। यह मुझे सुना कर वहां वालों ने वह गिरजा भी दिखलाया जिसे देख सुन कर मुझे अपने हिन्दू भाइयों की मूर्खता पर अत्यन्त शोक हुआ।

पाठक गण! आप यह सुन कर आश्चर्य करेंगे कि उक्त टिर्रेखां महाशय अपनी प्रतिज्ञायें पूरी भी न कर सके। उस म्लेच्छ देश में हिन्दू देवालय भी कई एक (जिन में एक स्वयं उन्हीं भाटियों का है) बन चुके हैं और इस समय हिन्दू गृहिणियां भी सैकड़ों नहीं बरन् सहस्रों वहां अपने पतियों पुत्रों के साथ गृहस्थाश्रम चला रही हैं। हम इन हिन्दुओं का सारे ही बातों में यही हाल देखते हैं कि "पांडे जी पछतायंगे और फिर चने की रोटी खायंगे" इसी पर इनका अनुवर्तन रहा करता है। प्रयाग में जब पानी का बम्बा जारी हुआ उस समय बहुत से हिन्दू इस का पानी नहीं पीते थे पर आज यह अवस्था हम देखते हैं कि किसी ब्राह्मण तक के घर में कुवां से पानी भरने का साधन डोल रस्सी विद्यमान नहीं रह गया। इसी प्रकार इन की सारी बातें देखी जाती हैं। रेल में बैठकर पानी पीना भी कुछ वर्षों पूर्व धर्म का नाशक था पर आज दिन वहां भोजन तक से भी कोई हिन्दू अधर्मी नहीं माना जाता। फिर जंगबार में अपना निज ऐसा भारी नुकसान सहन कर लेना कौन सी आश्चर्य की बात है।

जंगबार के सुलतान की सज्जनता देखिये जब उन्हें प्रथम हिन्दू स्त्री के वहां पहुंचने की रिपोर्ट मिली उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से उसे अपने दरबार में बुलवाया यद्यपि वह अत्यन्त

निर्धन साधारण मनुष्य की स्त्री थी पर इस का कुछ विचार न कर के सुलतान ने उस का मान किया और ३००) तीन सौ रुपया तथा एक दुशाला भेंट दे कर हिन्दू जाति को वहां बसने का उत्साह दिया।

हमें यहां यह प्रगट करना भी उचित ज्ञात होता है कि वह कौन सा गुण है जो हिन्दुओं को अन्य जातियों की ओर से उक्त प्रकार की प्रतिष्ठा दिलाता है और प्राचीन काल से आज तक संसार भर की जातियों में उसने हमें ऊँचा आसन दे रक्खा था यद्यपि वह इन दिनों शनैः शनैः हम लोगों में घटता जाता है। श्रीमनु भगवान के शब्दों में वह यहः-

"धने शुचिः स शुचिः न मृद्वारि शुचिः शुचिः।
मनु०।

जो धन के व्यौहार में शुद्ध है अर्थात् ईमान्दार है वही शुद्ध पवित्र है केवल पानी से स्नान करने या मट्टी से बार २ हाथ पांव मांजने वाला शुद्ध नहीं है।"

दूसरे की थाती को सुरक्षित रख कर उसे एक २ पाई का हिसाब समझा कर दे देना या दश २ रुपये मासिक वेतन पर नौकरी करने वाले हिन्दुओं का लाखों की दौलत सिपुर्द की जाने पर भी ईमान का तनिक भी न डिगाना हो एक गुण है जिसने अरब के कट्टर मुसलमान सुलतान को वश में कर रक्खा था जिसके कारण वह अपने स्वदेशियों हम मजहब जाति भाइयों तक का विश्वास न कर के काफिर हिन्दुओं का इतना सत्कार करता था। आज दिन भी वहां हम देख रहे हैं कि मुसलमान खोजा बोहरा जाति वाले व्यापारी बड़े २ लखपती धनाढय पड़े हैं जिनके व्यापार भी बढ़े चढ़े हैं परन्तु यदि उनका महता (हिन्दू क्लर्क जो ३०) ४०) या ५०) मासिक पर नौकर होता है) पृथक् हो जाय तो वे बिलकुल निकम्मे हो जायं। कारण यह है कि वे मूर्ख हैं काला अक्षर उन के लिये भैंस समान है। उनका महता सारे स्याह सफेद का कर्ता धर्ता हुआ करता है उस की शक्ति इतनी अधिक देखी गई है कि अगर वह बेईमान हो तो लाखों की सम्पति अपने घर डाल ले पर वे हिन्दू जाति के गौरव को संसार में अब भी स्थिर किये हुये थोड़े धन पर सन्तोष करते हुए शान्ति का जीवन बिता रहे हैं।

जंगबार या अफ्रिका में हमने हिन्दुओं से भारतीय मुसलमानों की संख्या अधिक देखी जिसका कारण हिन्दुओं का छूतछात ही है। वे इसी रुकावट के कारण समुद्र पार बहुत कम जाते हैं इस लिये इन्हें उचित है कि छूतछात का व्यर्थ बखेड़ा त्याग कर देश देशान्तरों में जा कर व्यापार इत्यादि की उन्नति करें।

यद्यपि यूरोपियन जातियां हम से द्वेष करती हैं तथापि हमें इसकी कुछ परवाह न करके समुद्र पार के देशों में अवश्य २ ही जाना चाहिये। हमें संसार की दूसरी जातियों से सबक सीखना चाहिये कि जो भूखों मरते थे वे आज इसी विदेश यात्रा की बदौलत मालामाल हो रहे हैं।

जंगबार का हाल इतने ही पर समाप्त करता हूं आगे किसी अङ्क में अफ्रिका का वृत्तान्त भी पाठकों को सुनाऊँगा।

प्रेमोपहार।

(भौंरा और कली)

[लेखक—पं० किशोरीलाल गोस्वामी]

(१)

"अरी! तू कौन है बाला!
कहाँ से आज आई है?
कि फुलवारी को मथ डाला,
बता, क्या बीन लाई है?"

(२)

"सुनो जी ! मालती, बेली,
जुही, चम्पा, निवारी हैं;
किया सब ने था, अठखेली,
अली को प्रानप्यारी हैं।"

(३)

"बता, तो, क्यों है, तेरी ओर–
मन मेरा खिँचा जाता ?
पकड़ते हैं, उसे भर ज़ोर–
पर वो हाथ कब आता !"

(४)

"भला, कब तुझको चाहा है ?
औ कब बेचा है, मन अपना ?
बता, किसने निबाहा है,
दिखा कर नेह का सपना ?"

(५)

"औ, मैने जब तुझे चाहा–
तो, मन का खोल के ताला।
प, तूने, जब बना, ढाहा—
औ, मटियामेट कर डाला !"

(६)

"बनाई प्रेम रत्नों की,
बिना 'गुन' गूँथ के माला।
कसर कुछ को, न, यत्नों की,
प, तूने देख कर, टाला !"

(७)

"नहीं इच्छा तो जाने दे,
न, हठ देने में करते हैं।
हमारे मन को आने दे,
बिना जिसके, कि भरते हैं !"

(८)

"अकेले हम जगत् में हैं,
पड़े हैं एक कोने में।
न लेने हैं, न देने हैं,
तो डर क्या जान खोने में !"

(९)

"हैं, अपने भाग ऐसे ही,
कि, जो अपने थे, वे भी, सब।
किनारे हो गए; क्या ही,–
दिखाया है, समय ने अब !"

(१०)

"अकेले जन्म ही धारा–
मिलेगा, दूसरा, तब क्यों ?
जो अपने आप को मारा,—
तो फिर, जंजाल यह सब क्यों ?"

(११)

"है, आशय यह कि, जब तूने,
बिसारा हमको, तब सब ने।
किया अपराध क्या हमने,—
लगे, जो, सबसे यों दबने !

(१२)

"करेगी सुध, मुझे जब, मार—
कर, रो रो, बलाएँ ले।
तो, देगा—'प्रेम का उपहार'—
धीरज तुझको; यह लेले !"

(१३)

"लिया जी ! लेलिया, उसको,
हँसो औ मान जाओ तुम !
तुम्हें भी दे दिया, इसको,
न रूठो, पास आओ तुम !"

"सदा हम पास रहते हैं–
तेरे; तू देख नैनों से।"
तेरी झिड़की को सहते हैं,
कहे जो कुछ, कि, बैनों से !

"चलो, अब होचुका लड़ना,
गले से आ मिलो, रसलो !
य, लेलो, पावँ का पड़ना;
हँसो, बोले, सुनो, जस लो !!!"

(सरस्वती से पुनः परिवर्धित और मुद्रित)

देशभक्त होरेशस।

२

[लेखक—पं० सत्यनारायण जी]

लकड़हार के कुठार की आहट छिन २ में।
अब न सुनाई परै सरित-औसर-तट-बन में॥
विहरत सुख स्वच्छन्द सिमिनियन हिरना सारे।
जात न तहँ कोउ व्याध अहेरहिं हेरन हारे॥
पय सम सित बछुरा क्लेटमनस सरितट डोलत।
चरत ग्वार बिन छूटे बिझकत मुदित कलोलत॥
बुल्सिनियन सर बूड़ि वतक कहुं सिरहिं उछारैं।
निधरक मन अब पैरत पुनि २ बूड़क मारैं॥
जा संवत में एरीशयम कृषी अति नीकी।
लुनहिं बृद्ध कृषिकार सुहावनि भावनि जी की॥
अम्बुवती अम्ब्रोसरि अब के बालक जैहैं।
तोर करत भाजन हित भेड़नि तहां न्हवैहैं॥
अरु लूना-लघु कुण्डन में खिलकति बहु बाला।
आसव काढ़न हरषि खूंदिहैं दाख रसाला॥
तिन कल कोमल चपल चलत चरननि-चहुँओरी।
उठिहैं ललित मृदुलतर मंचुल झाग अथोरी॥
क्यों सुतात अरु भ्रात पोर सेना संग धाई।
उनके गये समोद, रोम पै करन चढ़ाई॥
गिने जोतिषी तीस चतुर जो सगुनी भारे।
रहत पोर सेना ढिंग ठाड़े सांझ सकारे॥
पूर्वज बुध जन लिखित पत्तिरा जिनने खोले।
उलटि पलटि मुसिक्याइ एक सुर सों सब बोले॥
"श्रीपति युग पद पदम मधुप षट पद मतवारे।
जाउ, पोर सेना! सिधाउ अब देस-दुलारे॥
जाओ २ नाथ! लौटि घर सकुशल आओ।
विछय-वैजयन्ती विनोद सों यहँ फौराओ॥
सुवरन रोम-ढाल द्वादस निरभय चित लैयो।
पुलकि नार्शीया-यज्ञकुण्ड के चहुँ लटकैयो॥"
करि परेट जब सिमिटे दल की करी सँभारा।
पैदल अस्सी सहस, सहस दस भये सवारा॥
पुनि सब सेना जुरी, सूट्रियम द्वार अगारी।
कियो पोर सेना घमंड लखि ताकौ भारी॥
ताके आगे पंक्तिवद्ध सजि सेन सुहाई।
मिले देश निष्कासित रोमन आमें आई॥
अरु बहु सुहृद राज-दल-बलयुत विपुल सुहायो।
मेमीलियस कुमार मिलन को तामें आयो॥
दखि दूरि सों भीर धूरि मड़राति नगर में।
भारी हलचल मची, टाइवर तोर पुरन में॥
विस्तृत बहु मैदान दूरि दूरिनु लों छाये।
सिमिटि २ तिनसों, सबर जन रोमहि धाये॥
कोसनु लों तब नगर चहूं दिसि जमघट भारी।
जुर्‌यो रोकि सब गैल ठसोठस भरि नर नारी॥
त्रासजनक अतिघोर दृश्य की यह अधिकाई।
लगातार द्वै दिन रातिनुलों दयी दिखाई॥
वैसाखी वलचलत चकित भयभीत वृद्धजन।
सोचयुक्त अलसात गर्भ वारी नारी गन॥
हिलकि २ मा रोइ लाल-मुख चंद निहारति।
हृदयलगे मुसिकात शिशुहिं चूमति चुमकारति।
डारि २ डोलिनुमें रोगी गन को धाई।
सेवक लीये जात श्रमित तन मन भय पाई॥
भाजे जात किसान छांडि निज खेती पाती।
विड़रे डोलत विकल हाथ में लिये दरांती॥
मदरा की अन गिन मसकनिसों लदे लदाये।
खच्चर खर के पुञ्ज तहां चहुं ओरन छाये॥
अति अपार तहँ हेड़ अजाकुल अरुभेड़निकी।
गणनाको करिसकै अमित संख्या गायनिकी॥
लदी नाज वोरनुसों कहुँ गृह-वस्तु भराई।
भारी लम्बी लार तहां छकरनु की छाई॥
अटल वोझसों दवी विपुल चररर चर्राती।
घोर सोरयुत मीर द्वार में अड़ि २ जाती॥
भयबस पियरे परे नागरिक लखन लगे अब।
हृदय विदारक दृश्य टार्पियन भूधरसों सब॥
जिन गाम निमग में पामें अरि आगि लगामें।
तिनसों कढ़ि निशीथ में लोहित लौ भैरामें॥
लखि नभलों परकास भयेमन सकल हिरासा।
सोचतगये दिनराति, वँधीपरि कोउनआसा॥
घरी २ कोउ न कोऊ चर दौरत आवै।
भीषज भयसों भरी खरी तहँ खबरि सुनावै॥
अब रिपु सेना पूरब पच्छिम लौं छितराती।
अ.. कुमारिशम गुचि तिनकरसों सकल सनाती॥

वरबेना ते ओश्टालों सब धरनि उजारी।
जेनीकुलम उड़ाइ सेन अस्टर सब मारी॥
ज्यों यह उत्कट समाचार दुखमय सुनिपायो।
मंत्रि सभा में कोउ न एसा बार लखायो॥
सोच-संकु की करक न या के उरमें करकी।
धर २ जाको धरक २ धुक धुको न धरकी॥
उठि बैठ्यो घबराइ कौन्सल मन भय पाई।
हरवराइ सब उठे सभासद अति अकुलाई॥
तन झगानि लभेड़ि वेग सों ह्वै इक ठौरे।
धरत उतावल पाँइ कोट को दिसि कों दौरे॥

स्वदेश-प्रेम। *

[लेखक–पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी]

है ऐसा कोउ अधम मनुज जीवित जग माहीं।
जाके मुख सों बचन कबहुं निकस्यो यह नाहीं॥
"जन्मभूमि अभिराम यहा है मेरी प्यारी।
वारों जापै तीन लोक की सम्पति सारी"?
सात समुद्र पार विदेशन सों करि विचरन।
भयो नांहि घर चलन समय हरषित जाको मन?
जौ ऐसौ कोउ होय वेग ही ताकों देखो।
भली भांति सों वाके सब लच्छन कों पेखो॥
चाहे पदवो वाको होय बहुत हो भारी।
बाको नाम बड़ो कर जाने दुनियां सारी॥
इच्छा के अनुकूल होय वाकों अगनित धन।
कविता वाके हेतु तऊ नहिं करिहैं कवि गन॥
केवल स्वारथपन में ही सब समय गँवायो।
मन स्वदेश हित साधन में कबहूं न लगायो॥
धरी रहत सब धन, बल, पदवी एक किनारे।
सिर पै जम के आय बजत हैं जबहिं नगारे॥
सुठि सुन्दर सुख्याति नांहि जोवन में पैहै।
जा माटी तें बनो फेरि वामें मिलि जैहै॥
सुमरन, सोक, सुकाव्य मरे पै कोउ न करिहै।
करम हीन हतभाग मौत दोहरी सों मरिहै॥

(* Scott के Love of country की छाया पर)

"कल है"

[लेखक–श्रीयुत राय देवीप्रसाद पूर्ण]

नारी का महत्व।

(१)

नारी के सुधारे देश जग में प्रसिद्ध होत,
नारी के सँवारे होत सिद्ध धन बल है।
शोभा गेह २ की है सोमा सुचि नेह की है,
दाता नर देह की है संपदा की थल है॥
कैसे हे भारतखण्ड होयगो उधार तेरो,
दुखित अखण्ड जामें नारिन को दल है?
ह्वैके गुनपालक अनारी बन जानें यही,
नारी बस बालक बनावन की कल है!

(२)

घर औ समाज के हैं जितने सुखद काज,
सब में सदा ही भाग नारी को प्रबल है।
रथ एक चक्र हीन प्राणी अर्ध अङ्ग हीन,
तैसे बर नारी हीन नरता अफल है॥
जौन जौन देशन ने नारी की सँवारी दशा,
तिनको समुन्नति को मिलो चारु फल है।
बनिता सुधार में अरत ह्वैकै हाय २,
परत भरतखण्ड कैसे तोहि कल है?

(३)

गोद में प्रसूती के सुबालक प्रमोद भरो,
पावत सुगमता सों सीख प्रति पल है।
जो जो वा अवस्था में सिखत सो अमिट होत,
जैसो लगै बीजा तैसो होत आगे फल है॥
बीर धीर तेजसी सुकर्मी जसी धर्मी आदि,
माता ही बनावै यह बात में न फल है।
प्राण को मनुष्यता के सांचे सांचे ढालन को,
बिरची बिरञ्चि बर नारी रूप कल है

"कल की आवश्यकता"

(४)

नामदार शानदार बड़े बड़े देशन में,
कल की बदौलत ही दौलत को फल है।

कल की बदौलत ही जंगी धूमपोतन की,
धूम सों बिकल होत वैरिन को दल है ॥
पूरन स्वदेशी औ स्वराज्य की पुकार यह,
कल के प्रचार बिन निरी कल कल है।
जहां कल चलै तहां कल है सकल भांति,
जहां कल नाहीं तहां नाम को नकल है ॥

गाय ।

(५)

तिल दैके तेल पैये कपड़े कपास दैके,
जैसो बस्तु दीजै तैसो मिलै प्रति फल है।
दूसरो कलन में है इतनी ही करामात,
तापै रूप जात भरपूर धन बल है॥
याको दीन्हे तुच्छ तृण पात भूसा चूनी भूसी,
उपजत दूध सों पदारथ अटल है।
जग सुखदाई सुचि पूरन सुहाई देखो,
बिधि ने बनाई कैसी गाई रूप कल है ॥

एक युवा तुर्क की सौजन्यता * ।

(१)

तुर्की के सुल्तान की सेना का सेनापति हामिदबे बग़दाद के समाज़ में अपने स्वच्छ चित्त और प्रसन्न प्रकृति के लिये विख्यात था। शोक और चिन्ता उस के निकट भी नहीं फटकने पाती थी। दुर्दैव और आपदा के पीछे तो वह लट्ठ लेकर दौड़ता था। किन्तु आज शाम को चिन्ता और गम्भीर विचार दीपक की ज्योति के आसपास की पुतली की भांत उसके लिपट रहे हैं।

हामिदबे के सलीमा का नाम पुकारते ही बैठक के कमरे के पास वाले कमरे से बांये हाथ से बालों को हटाते हुये एक परम रूपवती हास्यमय मुखमंडल को बादलों के बीच से चन्द्रमा की नाई प्रकट कर बोली "पिता जी क्या आज्ञा है।"

हामिदबे ने कहा "सलीमा ! मैंने शुक्रवार को येमन के बग़ावत को दबाने के लिए जाना निश्चय किया है। रफात और हसन भी मेरे साथ जांयगे।"

"क्यों पिता जी कलही तो आप कहते थ कि अभी हमारे जाने का ठीक नहीं और आज यह खबर ?"

"बेटी कारण यह है कि मुझे बग़दाद से फौरनही येमन को जाने की आज्ञा मिली है। देर होने से बाग़ी लोगों का ज़ोर बढ़ जायगा।"

सलीमाने एक लम्बी आह भरी और उसके मृगनयनों के दृगों से दो मोती गिरे! अपनी पुत्री को छाती से लगाकर हामिद ने उसे धीरज दिया "अब तू सयानी होगई है। तुझे धीरज धरना चाहिये। ईश्वर ने चाहा तो हम शीघ्रही शत्रुओं का दमन कर घर लौट आयेंगे। इस बीच तेरे चाचा तेरी रक्षा करैंगे।" इतने में हामिद के भतीजे, सलीमा के भावी पति राफत ने अपना सलाम भेजा। हामिदबे ने सलीमा को अन्तःपुर के लिए विदा किया और राफत को पास बुलवा कर उस से कहा कि आप अच्छे मौके पर तसरीफ लाये हैं। शुक्र को हम लोगों को रणक्षेत्र को पयान करना होगा तुम्हे इस बात की सूचना देनी थी। अब तुम लोगों को चलने की तैयारियां करनी चाहियें।

(२)

पाठक बृन्द को विदित हो कि सीलमा सेनापति हामिदबे कि एकलौती कन्या है। माता इसकी स्वर्गलोक को सिधार गई है। पिता का इस पर बड़ा स्नेह है। इसी कारण हामिदबे ने प्रण किया है कि कन्या का विवाह हो जाने के पहले मैं दूसरा विवाह न करूंगा ताकि सलीमा

---

* फरवरी (१६१०) माघ की माडर्न रिव्यू Modern Review के A noble yark के अधार पर।

को सौतेली मां की डाह का अनुभव न हो। हामिदबे का विचार था कि वह सलीमा को राफत की अर्धाङ्गिनी बनावे। यह विचार मात्रही नहीं था वरंच हामिदबे संकल्प कर चुका था कि राफतही से मैं अपनी लड़की का पाणिग्रहण करवाऊंगा। राफत बड़े धनाड्य पुरुष का लड़का था और सेना में भी इसी अल्प अवस्था में अच्छे ओहदे पर पहुंच गया था और सम्भव था कि कभी हामिद के पद पर सेनापति बनता। अतः राफत से सलीमा की मंगनी हो चुकी थी। हसन हामिदबे के दूर के रिस्तेदार का पिता हीन पुत्र था। बाल्यावस्था ही में हसन के माता पिता का परलोक बास हो चुका था। इस अनाथ बालक को हामिद अपने कुटुम्ब में लेआया और पुत्रवत् पालने लगा। बाल्यावस्था में हसन और सलीमा भाई बहिन सदृश परस्पर क्रीड़ा करते। दोनों एक दूसरे को प्यार करते। यह बचपन का प्रेम सयाने होने पर बहुत दृढ़ हो गया और वे एक दूसरे को प्राणसम प्यार करने लगे। मालूम होता है कि इन के बीच प्राणेश्वर और प्राणेश्वरी का नाता स्थिर होने के संकल्प विकल्प हो चुके थे। कदाचित् हामिद भी इन के चित्तों के भावों को चेत गया हो पर उसने अनाथ युवक को अपनी लाड़ली कन्या के योग्य न समझा हो। आह! देखिये माता पिता को कितनी कम समझ व अदूरदर्शिता होती है। क्या हामिद को यह खयाल न आया होगा कि यह तुच्छ युवक सलीमा के जीवन का सुखदाता होने योग्य था!

(३)

जिस शाम को सलीमा की अपने पिता से बातें हुईं थी उसी रात्रि को सलीमा की आंखें न लगीं। दूसरे दिन भी वह उदास रही किन्तु जब सूर्य अस्ताचल के पीछे जाने लगे उसे सहसा किसी पिछली बात की याद आई।

सलीमा ने अपनी सहेली हसीना से "आबा" मांगा और रेशमी पोशाक पहन कर खड़ी हुई। "हसीना आज घर पर मेरी तबियत उचट रही है ज़रा मैं बाग़ की ओर को जाती हूं अगर आज बाबाजान और दिन से जल्दी घर लौट आयें तो तुम जानती हो कि मैं तुम्हें बाग़ के किस कोने पर मिलूंगी। मुझे चट से बुला लेना।" हसीना ने मुसकराते हुए कहा अगर ऐसे मौके पर बुलाने आई तो मार तो नहीं पड़ेगी! थोड़ी देर में सलीमा एक पुष्प कुंज के समीप खड़ी कभी इधर उधर ताकती कभी फूल चुनती दिखाई दी। धीरे २ अंधकार ने अपना प्रभाव फैलाना शुरू किया और विरही जनों के दिलों को दुःखाने वाला चांद अपनी छटा से फुलवाड़ी की अनुपम शोभा बढ़ाने लगा। आकाश मेघ रहित होने के कारण चांदनी और भी चमक रही थी। तिस पर विशेषता यह कि यह कुंज भी स्वेत पुष्प चमेली बेला इत्यादि सुगन्धित पुष्पों से लदा था। और सलीमा भी सफेद रेशम का लंहगा पहले, स्वेत वर्ण चादर ओढ़े, हिमवर्ण करकमलों से सुफेद फूल चुन रही थी। धीमी २ वायु पुष्पों की सुगन्ध चुरा ले जा रही थी। निकटवर्ती सरोवर से सरसर करती हुई मन्द २ शीतल वायु आ रही थी। चिड़ियों ने अपना चहकना बंद कर दिया। केवल उल्लू कभी २ कर्कष शब्द से कर्ण विदीर्ण करता जाता था। इस निर्जन वाटिका में फूल तोड़ते समय टहनियों के हिलने से जो शब्द होता सलीमा उससे भी चौंक उठती और इधर उधर ताकने लगती। मनही मन मानो वह कहती थी कि इतनी देर क्यों। इस कुंज को छोड़ कर सलीमा एक गुलाब के पौधे के पास गई और उसमें से एक अधखिली कली को तोड़ कर एक २ पत्ती अलग २ कर फेकने लगी। * इतनेमें एक दीर्घ काय

* सलीमा ने अर्धविकसित फूल को तोड़ कर फिर उसे तोड़ २ क्यों फेका ? क्या इससे उसने यह संकेत किया कि यदि हसन मुझे न मिला और राफत से मेरा निकाह हुआ तो मेरा जीवन कली की भांति (टूक २) होगा वा मैं आत्मघात कर डालूंगी। वर्मा

सुडौल सुन्दर जवान सहसा उसकी बग़ल में खड़ा हो उसके स्कंध पर हाथ रख बोला "प्रिये गलाब को कली ने क्या कसूर किया था जो उसे यह सज़ा मिली ?" "क्यों मैंने तुम्हें अपने हृदय में स्थान दिया" फिर सलीमा बोली "हसन तुमने पीछे से चुपके से आकर इतना क्यों डराया।" "मैंने चाहा कि तुम्हें ऐसी बेखबरी में पकड़ूं।" "हस्सन तुमने मुझे यहां इतनी देर अपनी बाट जोहने में तग किया। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती २ थक गई। यही नहीं वरंच मैं देरी के कारण बहुत घबड़ा गई थी। मैं ही जानती हूं आप की देरी के कारण मुझे कितना कष्ट सहना पड़ा।" "सलीमा मैं क्या करूं। मैं विवश था। परसों हमें कूच करना है सफर तैयारी के कारण विलम्ब हुआ। हां तुम अपनी तो कहो यह क्या स्वांग रचा है। तुम तो मुर्दे से भी अधिक पीली और फोकी पड़ गई हो।" सलीमा ने उत्तर दिया "हसन मुझे अब आप बेहतर हालत में कभी नहीं पायंगे। इसका कारण तुम जानते ही हो।" हसन ने सलीमा को अपने वाहों के बीच कर लिया। जैसे चुम्मक पत्थर को पास लाने से सुई स्वयं एक अदृश्य चाल से चुम्मक पत्थर पर जा चिपटती है वैसे ही सलीमा युवतियों के नखरे करने के बदले स्वयं अपने प्रणयी के वाहों के बीच आगई और उसकी छाती पर अपना सिर लगा कर सिसकने लगी।

हसन सलीमा को आस्वासन और धैर्य देने लगा। सलीमा ने प्रेरणा की कि मुझे भी पिता जी से कहकर रणभूमिकी ओर ले चलो। वहां मैं आप के समीप होने से प्रसन्न चित्त रहूंगी।

हसन बोला "सब्र करो ईश्वर ने चाहा तो हम लोग शीघ्र ही शत्रुओं को पराजय कर के सकुशल घर लौट आवेंगे" थोड़ी देर चुप रह कर हसन फिर कहने लगा। "हां! मैं घर लौट आने की कामना क्यों करूं! मुझे चाहिये कि मैं रणभूमि में प्राण विसर्जन कर बीर गति को प्राप्त होऊं" (शहीदबनूं।) "नहीं! नहीं! ऐसा न कहो। मैं ईश्वर से प्रार्थना करती रहूं गो कि तुम शीघ्र जयघोष के साथ घर लौट आओ" "क्यों सलीमा! मेरे घर लौट आने से क्या प्रयोजन? तुम्हारा पाणिग्रहण तो रफ़ात से कराया जायगा। देखो लाग बहुधा कितना अनर्थ करते हैं। अपने संकीर्ण विचारों के वशीभूत हो अपनी तबियत के मुताबिक़ अपनी कन्याओं को कुपात्रों को दे डालते हैं। वे जरा भी इस बात का विचार नहीं करते कि वर से कन्या प्रसन्न है या नहीं अथवा दम्पति गाढ़-प्रेम को शृङ्खला में बंधे हुए आजन्म सुखपूर्वक कालक्षेप करेंगे या नहीं। पिता बहुधा उच्चकुल तथा धनाढय घरों में स्वेच्छानुसार अपनी कन्या को दे डालते हैं। वे अपनी पुत्री के प्रेम वा प्रकृति की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते आहा कितनी कुमारियां ससुराल में जीते जी जल रही होंगी? क्या वे उन पिताओं को श्राप न देंगी जिन्होंने उनकी मरजी के खिलाफ उन्हें अयोग्य वर के घर में ढकेला!! ऐसे लोगों को दण्ड अवश्यही मिलेगा!"

"हसन! ईश्वर पर विश्वास रखो। वह दयालु न्यायाधीश है। ये लोग अन्यायी और अत्याचारी हैं। जिस परमात्मा ने हम दोनों के दिल मिलाये हैं वह हम दोनों को अलग नहीं करेगा?" "सलीमा! इन अमृत मय वचनों से मेरे हृदयपट पर नवीन आशा का प्रादुर्भाव होने लगा है। मैं तो हताश हो गया था और संकल्प कर चुका था कि मैं इस युद्ध से बच कर घर न लौटूंगा। रणक्षेत्र में ही प्राण विसर्जन कर वीर लोक में अर्थात् स्वर्ग में तुम्हारी बाट देखता रहता और तब वहां हम तुम फिर एक हो जाते। फिर हमारे जोड़े को तोड़ने की किसकी सामर्थ थी? तब हमारा जीवन आनन्द से कटता।

किन्तु मेरा यह ख्याल है कि रणभूमि में जान बूझ कर प्राण त्यागना भीरुपन और स्वार्थपरता का निशानी है। अब तुम्हारे वचन सुनकर मेरे चित्त में नवीन आशा का संचार हो गया है और यदि मुझे इस जीवन में निराश भी होना पड़े तौभी अब मैं साहस के साथ सब कष्ट सहने तथा मुसीबत झेलने और आपदाओं का सामना करने के लिये कटिबद्ध हो गया हूं। ईश्वर पर भरोसा रखते हुए मैं तुम्हारे वियोग को यन्त्रणा सहता रहूंगा"–

"हां! हसन ठीक है। हम को धीरज और साहस के साथ वियोग की यन्त्रणा सहना उचित है।" शायद सलीमा कुछ और कहती किन्तु इतने में मनुष्य के पावों का शब्द सुनाई दिया। "देखो हसन! हसीना मुझे बुलाने आ रही है। कदाचित पिता जी आ गये होंगे। अच्छा अब मैं तुमसे विदा होती हूं।"

(४)

सेनापति हामिदबे की सेना ने यमन के बाग़ियों का तहश नहश कर दिया। वे सब तितर बितर हो गये। अब वे लोग छिप २ कर अकेले दुकेले सिपाहियों पर छापा मारने लगे।

राफत और हसन दोनों ने हामिदबे को इस संग्राम में अपनी वीरता और रणकुशलता का अच्छा परिचय कराया।

एक बार राफत और हसन ने कुछ अरब लोगों का पीछा किया। जब अरब इनसे बहुत दूर भाग गये। हसन उन भगेड़ों की गति जाहने लगा और राफत अपनी खून से रंगी हुई तलवार को साफ करने लगा। इतनेमें पीछे से आकर एक बाग़ी ने राफत पर प्रहार किया। हसन दस हाथ के फासले पर था, वहां से वह बिजुली के समान तड़प कर राफत के पास पहुंचा। उसके पहुंचते २ एक चोट राफत कमरपर खाई चुका था किन्तु हसन ने पहुंच कर राफत को अपनी बग़ल में कर लिया और स्वयं उस अरब के सामने हो गया। उसने अरब की तलवार का वार बचा कर उसका एक ही हाथ में सफाया कर दिया और राफत को अपने कंधे पर रख खेमे की ओर चला। वह बेहोश राफत को ले कर थोड़ी दूर भी न चला था कि फिर राफत के प्राण का प्यासा एक बाग़ी सन्मुख आ खड़ा हुआ। राफत के शरीर को पृथिवी पर रख हसन ने इस बाग़ी को भी वीरलोक भेजा। अपने खेमें पर ले जाकर हसन ने राफत की चिकित्सा करवाई और स्वयं उसकी सेवा सुश्रूषा करता रहा। थोड़े ही समय में राफत आराम हो गया।

(५)

सुल्तान की सब सेना कुछ सिपाहियों को रणभूमि में छोड़ कर जयघोष करती हुई बग़दाद पहुंची और किसी के घर रोना पीटना किसी के घर आनन्द मचा। हामिदबे के भवन में भी नाना प्रकार के भाव व विचार उत्पन्न हो रहे हैं। हामिदबे भी हसन के आत्मत्याग की सराहना मुक्तकण्ठ से करने लगा। राफत भी सोचने लगा कि हसन मुझे दो बार मौत के मुंह से छुड़ा लाया अब राफत ऋण चुकाने की फिकर में लगा। दिन रात वह इसी चिन्ता में रहता कि हसन से कैसे उऋण होऊं। अन्त में उसने एक तदबीर सोचा।

राफत अपने चचा हामिदबे के पास पहुंच कर बोला "चाचा जी मैं आप से एक बिनती करता हूं आशा है आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे। आपको मेरी मनोकामना पूर्ण अवश्य करना होगा अन्यथा सदैव के लिये मैं दुःखी होजाऊंगा।" हामिदबे ने मुसकराते हुए कहा कहो तो क्या कहते हो। मैं तो तुम्हें अपना सर्वस्वही देचुका हूं। "चाचाजी आपको विदित ही है कि यह हसन की उदारता, मैत्री, वीरता और आत्मत्याग का फल है कि मैं आज आपके सन्मुख प्रस्तुत हूं। यदि हसन कोई साधारण पुरुष होता तो मैं आज शृगाल और गिद्धों की उदर में सड़ चुका होता। अब मुझे हसन

की असीम मित्रता और सुजनता का बदला देना है। मैं बिना आपकी सहायता के इस ऋण से उऋण नहीं हो सकता।

"मैं कुछ काल से कुछ विशेष प्रकार की घटना देखता हूं जिनको मैं आज तक आपके ध्यान में न ला सका। और इस घटना के कारण भी आप ही हैं कदाचित आपको विदित हो कि हसन और सलीमा के बीच कितना गाढ़ा प्रेम है। क्या मृत्युलोक में इतना स्नेह आपने किसी युवक और युवती के बीच देखा है? वे बाल्यावस्था ही से एक दूसरे को प्यार करते आये हैं। आपने सलीमा की मंगनी मुझ से की थी जिसके लिये मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूं, किन्तु मेरी अभिलाषा है कि सलीमा का निकाह (विवाह) हसन से हो ताकि वे दोनों सुख पूर्वक रहें।

चाचाजी मैं आशा करता हूं आप इस प्रस्ताव का विरोध न करेंगे, यदि आपने विरोध किया तो वह मेरे लिये बड़ा हानि-कारक होगा। इस संसार में हसन के सिवाय सलीमा के योग्य और कोई वर नहीं" हामिदबे कुछ सोच ही रहा था इतने में राफत फिर बोल उठा 'मैं इनके बीच की प्रेम कहानी बहुत दिनों से जानता हूं। हसन की सुजनता और उदारता पर ध्यान दीजिये। उसने निराश और बिरह की पीड़ा को किस सहनशीलता के साथ सहा और कभी अपने चित्त के भावों को प्रकट न किया। यदि रणक्षेत्र में वह मेरी सहायता न करता तो मैं उसे उसकी प्राणेश्वरी से वंचित करने वाला कहां होता? मेरी मृत्यु हो जाने पर वह सलीमा का स्वामी अवश्य ही होता। तथापि उसने मुझे बचाया। हे तात अपने हठ के कारण इन दो व्यक्तियों को चिर-काल के लिये दुःखी न कीजिए।"

कुछ सोचकर हामिदबे ने उत्तर दिया "क्या राफत तू इस बात पर कटिबद्ध है और क्या यह सब तू अंतःकरण से कह रहा है।"

"चचा जान! चाहो तो मेरा कलेजा देखलो। यह तो मेरी प्रबल इच्छा है। बिना इस मनोकामना के पूर्ण हुये मैं प्रसन्न नहीं रहसकता" राफत को छाती से लगाकर हामिदबे बोला "मैं धन्य हूं! तुम मेरा गौरव बढ़ाने वाले हो।" "सुनो राफत मैं यह सब कुछ समय से देखता आ रहा था किन्तु तुम्हें वचन दे देने के कारण मैं विवश था और सब मैंने उसी परमात्मा की इच्छा पर छोड़ दिया था जो सबकी दिक्कत व आपदाओं को दूर करता है। यह सब सुन कर राफत बड़ा प्रसन्न हुआ और धन्यवाद देते हुये हामि-दबे से विदा होना ही चाहता था कि इतने में हसन आ पहुंचा और राफत को संकेत करते कहने लगा कि चलिये मित्र आप से कुछ काम है। हामिदबे ने हसन से कहा 'राफत अब तक तुम्हारी शिकायत कर रहा था।" हसनने मुस-कुरा दिया। राफत उस से कहने लगा "हसन तुमसे कुछ विज्ञप्ति है मानोगे?" उधर हामिदबे दूसरे कमरे से सलीमा को लाकर उसका हाथ हसन के हाथ में दे कहने लगा। "हसन तुम्हारी वीरता सुजनता और आत्मत्याग के लिये मैं इससे बढ़ कर पुरष्कार और कुछ नहीं दे सकता। मैं सलीमा को अपनी और रा-फत की तरफ से तुम्हें अर्पण करता हूं। इसके योग्य संसार में अन्य कोई नहीं है। सलीमा को सुख प्रदान कर अपना जीवन सफल करना। इसी सप्ताह में विधिपूर्वक विवाह भी होजायगा।" इस समय इन चारों व्यक्तियों की दशा बड़ी विचित्र और विभिन्न थी। हसन के शिर में खुशी के मारे चक्कर आने लगा ज़बान हकला गई और नेत्रों में जल भर आए। वह कृतज्ञता भी शब्दों द्वारा प्रकट न कर सका। सलीमा की दशा और ही विलक्षण थी। पसीने से उसका सारा बदन भींग गया कपोल लाल होगये। उसकी शोभा अकथनीय थी।

ईश्वर पर विश्वास रखने वालों को अंत में सुख ही मिलता है।

शिवाजी के दरबार में अङ्गरेज़ एलची ।

[लेखक--पं० गौरचरण गोस्वामी]

भारतवर्ष के सुपुत्र शिवाजी के दरबारमें अङ्गरेज़ एलची के आने की बातको किसी भी अङ्गरेज़ इतिहासकार ने नहीं लिखा । हम नहीं जानते, मिल, थौरेण्ट, हण्टर आदि, विख्यात ऐतिहासिकों ने अपनी पुस्तकों में इस बात का क्यों नहीं उल्लेख किया । यहां तक कि, सुविख्यात ग्रेण्ड डफ् साहिब ने भी, जिन्होंने महाराष्ट्र देश का बड़ी खोज के साथ इतिहास लिखा है, इस विषय में एक अक्षर भी कहना बुरा समझा ।

जहांगीर, शाहजहां, आदि, भारतवर्ष के सम्राट् थे। उनके यहां अङ्गरेज़ दूतका आना कुछ आश्चर्य्यप्रद नहीं । पर प्रादेशिक शासनकर्त्ता के पास ऐलची भेजना आश्चर्य्य नहीं तो क्या कहा जा सक्ता है ? क्योंकि उनसे अङ्गरेज़ों का कुछ मतलब निकलना कठिन ही नहीं असम्भव था। इस के दो कारण हो सक्ते हैं, एक यह कि प्रादेशिक शासनकर्त्ता बादशाह के आधीन होते थ, विना उसकी अनुमति के वे क्या करते ? दूसरी बात यह कि उन्हें अङ्गरेज़ों से हद्द से ज़्यादा चिड़ होती थी, फिर अङ्गरेज़ों का उनसे क्या काम निकलता ? पर शिवाजी से उन का काम निकल सकता था, क्योंकि वे प्रादेशिक शासनकर्त्ता होने पर भी स्वतन्त्र थे उद्धत औरङ्गजेब, चाहे उनको "पहाड़ी मूसा" ही क्यों न कहे, पर यह हम ज़ोर के साथ कह सकते हैं, कि उस समय शिवाजी स्वतन्त्र सत्ता-हीन-नहीं थे। रायगढ़, कङ्कन, आदि सब राज्य उस समय उन्हीं के आधीन थे । मुगलों का इनके साथ कुछ सम्पर्क नहीं था ।

शिवाजी के राज्य में कई प्रधान बन्दर थे, जहां विदेशी वणिकों के अर्णव पोतादि ठहरते थे । जिस समय मुगलों के साथ शिवाजी का घोर युद्ध हो रहा था, उस समय, वे सब स्थान अरक्षित हो रहे थे, वहां के काज़ी, कोतवाल, आदि विदेशी वाणिज्यकारों पर मनमाना अत्याचार करते थे । उनके अत्याचार से अङ्गरेज़ व्यापारियों को भी बहुत-कष्ट उठाना पड़ता था। इस से ईष्ट इण्डिया कम्पनी ने अपना बहुत नुक्सान होता देख कर शिवाजी के पास एलची या दूत भेजना उचित समझा ।

अङ्गरेज़ ऐलची डा० फ्रेयर साहिब जब महाराष्ट्राधिपति से मिलने गये थे, उस समय उनका प्रताप सूर्य्य, अपना तेज बढ़ा रहा था । औरङ्गज़ेब को कई युद्धों में हराकर शिवाजी उस समय स्वतन्त्रता के साथ राज्य कर रहे थे।

एलची पहिले शिवाजी की राजधानी रायगढ़ के पास के "पञ्चारा" नाम के ग्राम में जाकर उतरे । वहां उन्होंने सुना कि नये राजा, इस समय रायगढ़ में नहीं हैं । तीर्थयात्रा के लिये गये हुए हैं, पर दो एक दिनों में ही आ जायँगे फ्रेयर साहिब की पहिले से ही शिवाजी के मन्त्री नारायण पण्डित जी से मुलाक़ात थी । वे सब से पहले उन्हीं से जाकर मिले, उन्हें नज़र देकर फ्रेयर साहिब ने अपनी सफलता के मार्ग को और भी निष्कण्टक कर लिया ।

शिवाजी युद्धजीवी थे, "शान्ति" क्या वस्तु है, वे नहीं जानते थे इससे, वाणिज्य के साथ देशोन्नति का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस विषय में वे बिलकुल अनभिज्ञ थे । इस से अङ्गरेज़ एलची के मन में तरह तरह के सन्देह उत्पन्न होते थे, पर नारायण जी के विश्वास दिलाने पर उनका मन स्वस्थ हुआ ।

उन दिनों पञ्चारे में बड़ी गरमी पड़ रही थी, अङ्गरेज़ से वहां, फिर कैसे रहा जाता ? उन्होंने पहाड़ पर चढ़ने की बहुत इच्छा की। उन्हीं दिनों खबर आई, कि शिवाजी, रायगढ़ या "वापरी" में आगये हैं । अङ्गरेज़ दूत उनके दर्शन करने को चले ।

रायगढ़, पहाड़ी क़िला है। मज़बूती में उसने बीसों क़िलों के दांत खट्टे किये होंगे। डा० फ्रेयर ने वहां पहुंच कर चार दिनों तक विश्राम किया। शिवाजी का उन्हीं दिनों राज्याभिषेक था, शहर भर में धूम मच रही थी, डाकृर को भी निमन्त्रण दिया गया। राज्याभिषेक के दिन फ्रेयर साहब, नज़रों को साथ लिये, दल बल सहित राज-सभा में पहुंचे।

रायगढ़ की पार्वत्य बारहदरी मनुष्यों से पूर्ण थी। शिवाजी रत्नमय सिंहासन पर बैठे हुए थे, उनकी दाहिनी तरफ़ उनके वंशधर शम्भूजी और प्रधान मन्त्री पेशवा बैठे हुए थे। सेनाध्यक्ष, सेना नायक आदि अस्त्र शस्त्रों से सुशोभित खड़े हुए थे।

सब से पहिले वेद गान, और ईश्वर स्तुति कर ब्राह्मणों ने नये राजा को आशीर्वाद दिया। भाटों ने उनकी वीर-कहानी गान की। इन सब माङ्गलिक कार्य्यों के समाप्त हो जाने पर, नारायण जी ने अङ्गरेज़ एलची को महाराज के सामने उपस्थित किया। सबसे पहिले फ्रेयर साहब ने सलाम कर तरह तरह की बहुमूल्य वस्तुएं शिवाजी के नज़र कीं। महाराज ने हँस कर भेट स्वीकार कर, दूत को अपने पास बुलाया। द्विभाषियों की सहायता से शिवाजी ने उनसे दो चार बात किया। एलची बिदा हुए। नारायण जी की सलाह से शिवाजी ने उनकी सब बातें मान लीं थीं, उन्होंने हुक्म लिखने का भार भी अपने मन्त्री पेशवा को दे दिया था। दो चार दिनों बाद शिवाजी ने उसमें दस्तख़त कर मुहर कर दी, और ये स्वत्व ईस्ट इंडिया कम्पनी को दिये—

१—अङ्गरेज़ व्यापारियों को महाराष्ट्र पति के राज्य भर में व्यापार करने की अबाध आज्ञा दी जाती है।

२—अङ्गरेज़ों के सिक्के महाराज के राज्य में चलाये जायँ, महाराज के सिक्के पूना, बम्बई, में चलें। पर सिक्के अच्छे, बादशाहियों की तरह होने चाहियें।

३—अङ्गरेज़ों के वाणिज्य-पोत (जहाज़) बन्दरों पर अच्छी तरह रहें। यदि जहाज़ डूब जायँ, तो उनका मालिक राज्य है।

और भी कई बातों का हुक्म मिला, पर उनके लिखने की यहां हम आवश्यकता नहीं समझते। *

क्या यह सत्य है ?

[लेखक—श्रीयुत राधाकान्त मालवीय]

फ्रांस देश का विक्रमी सम्राट नैपोलियन बोनापार्ट ने जिसके नाम से एक समय सारा संसार चकित हो रहा था और यह आशा की जा रही थी कि कहीं संसार के बहुत से राज्य और जातियों को वह अपने हाथ में कर इंगलैंड का विध्वंस करने में समर्थ न हो जाय अपने नीचे के अफसरों को यह आज्ञा दे रक्खा था कि हमारी निन्दा यदि कहीं भी छपे तो हमें अवश्य देखा देना तारीफ छपे तो उसके देखाने की कोई आवश्यकता नहीं यदि निन्दा झूठी है तो हमारी कोई हानि नहीं होगी यदि ठीक है तो हमें अपने दोषों को दूर करने की कोशिश करना होगा।

जो जातियां इस संसार में मान से जीवित रहना चाहती हैं उन्हें भी इसी उपदेश को काम में लाना चाहिये-यदि उनकी अन्य लोग तारीफ छापें तो उसे वे देखें चाहे न देखें निन्दा को अवश्य देखना चाहिये और यदि वह ठीक हो तो अपने दोषों को दूर करने की कोशिश करना चाहिये। हैरल्ड बेगमी ने डेली क्रानिकिल में भारत से एक पत्र में लिखा है कि एक पुरानी कहावत है कि जहां स्त्रियों का मान होता है वहां ईश्वर

---

* "साहित्य" नामक बङ्गला मासिक पत्र के एक लेख के आधार पर।

भी प्रसन्न रहते हैं भारत में भ्रमण करने वाले मुसाफिर को पग २ पर चाहे वह सुन्दर विशाल शहरों में हो या गावों में यह कहावत की याद आती है-उसे चारों ओर देख यही विश्वास दृढ़ होता है कि भारत में स्त्रियों का आदर नहीं होता है—भारत की महिला अन्य लोगों को देखने में सुन्दरी भले ही लगे वह सुखो नहीं है। वह चैतन्य भले ही मालूम दें किन्तु वे अबला पराधीन सत्वरहित केवल पुरुष की कर्मचारिणी है—भारत में स्त्री जाति में यदि किसी का आदर होता है तो वह गौ का है।

पुरुष तो स्वामी है, शक्तिमान है, और बालक उसका उत्तराधिकारी हो युवराज है परन्तु स्त्री उनकी दासो है—इस संसार में स्त्री का जन्म पुरुष के साथ सुखों के सहभागिनी होने को नहीं हुआ है परन्तु पशुवत पुरुषों की सब भांति सेवा करने को—स्त्री स्वामी के लिये भोजन भले ही बनावे परन्तु जब तक उसका पति भोजन न कर ले उसे उसमें से एक अंश भी लेने का विचार भी नहीं करना चाहिये—पुरुष की सहायता करने को उसे जाना आवश्यक भी हो किन्तु उसके साथ २ जाने का उसे सौभाग्य नहीं प्राप्त हो सकता है—उसे बोझ भो ढोना हो परन्तु वह यह आशा नहीं कर सकती है कि पुरुष अपने हाथों से उसे मदद करेगा—भारत में हमें अब तक यह देखने का सौभाग्य नहीं हुवा कि स्त्री और पुरुष एक दूसरे का हांथ थामे साथ २ घूमते हों—भारत में हम चार हज़ार मील से ज्यादे घूम चुके हैं परन्तु आज तक हमने कहीं भी कुटुम्बियों को स्त्री और पुरुषोंको साथ २ भोजन करते नहीं देखा है। जो लोग भारत से हम से ज्यादे परिचित हैं वे बताते हैं ऐसा दृश्य कभी भी देखने को नहीं मिलेगा। परंतु हमने कड़ी धूप में दोपहर में स्त्रियों को खेतों में काम करते देखा है—सड़कों पर बोझा ढोते, पानी लाते और जांता पीसते भले ही देखा है परन्तु प्रसन्न मुख स्त्रियां हमने नहीं देखा है। बूढ़ी स्त्रियों के आंखों से दुख की कथा मालूम होती थी और उनके आनन्द रहित जीवन पर विचार कर दुःख होता था।

दरिद्र भारत में सब से शोचनीय दशा बूढ़ी स्त्रियों की है और भारत में स्त्रियां चालीस वर्ष की अवस्था में बूढ़ी हो जाती हैं—यूरप में बूढ़ी स्त्रियों के चेहरों से स्वाभिमान शक्ति और सन्तोष मालूम होता है उन्हें देख यह मालूम होता है कि उन्होंने भी संसार में कुछ काम किया है और वे अपने काम को बड़े महत्व का भी मानती हैं। नई आयुवाले भी उनका आदर करते हैं परन्तु भारत के बूढ़ी स्त्रियों की दशा इससे विपरीत है उनके आंखों से दुःख शोक और निरुत्साह प्रकट होता है और वे यही कहती हुई मालूम होती हैं कि हम कैसी हतभागिनी हैं कि हम अब तक जीवित हैं ईश्वर का क्यों हम पर कोप है कि वह हमें मृत्यु नहीं देता है ईश्वर से मनाइये हमें जल्दी मृत्यु दे—

भारत में स्त्रियों के जन्म होना ही संसार के अधिकांश सुखों से बंचित रहना है। स्त्री जाति की दशा शोचनीय है। बाल्यावस्था में माता का स्तन पान करते भले ही वे आनन्द करलें परन्तु थोड़ी ही बड़ी होने पर उन्हें मालूम हो जाता है कि उनमें और उनके भाई में क्या अन्तर है और उन्हें भाई के तुल्य अधिकार पाने का विचार भी नहीं करना चाहिए। विवाह के समय तक उन्हें उनकी पराधीन दशा का पूरा ज्ञान हो जाता है।

ऐसी ही शोचनीय दशा यूरप में भी पहिले थी किन्तु विज्ञान के फैलने से यह मत मान ली गई कि स्त्री और पुरुष के अधिकार बराबर हैं और जब से यूरप में स्त्रियों का आदर होने लगा तभी से उन्नति भी शुरू हुई।

ऊंची जातियों में स्त्रियों की दशा और भी शोचनीय है। यह सत्य है कि उन्हें सड़कों पर

रायगढ़, पहाड़ी क़िला है। मज़बूती में उसने बीसों क़िलों के दांत खट्टे किये होंगे। डा॰ फ्रेयर ने वहां पहुंच कर चार दिनों तक विश्राम किया। शिवाजी का उन्हीं दिनों राज्याभिषेक था, शहर भर में धूम मच रही थी, डाक्टर को भी निमन्त्रण दिया गया। राज्याभिषेक के दिन फ्रेयर साहब, नज़रों को साथ लिये, दल बल सहित राजसभा में पहुंचे।

रायगढ़ की पार्वत्य बारहदरी मनुष्यों से पूर्ण थी। शिवाजी रत्नमय सिंहासन पर बैठे हुए थे, उनकी दाहिनी तरफ़ उनके वंशधर शम्भूजी और प्रधान मन्त्री पेशवा बैठे हुए थे। सेनाध्यक्ष, सेना नायक आदि अस्त्र शस्त्रों से सुशोभित खड़े हुए थे।

सब से पहिले वेद गान, और ईश्वर स्तुति कर ब्राह्मणों ने नये राजा को आशीर्वाद दिया। भाटों ने उनकी वीर-कहानी गान की। इन सब माङ्गलिक कार्य्यों के समाप्त हो जाने पर, नारायण जी ने अङ्गरेज़ एलची को महाराज के सामने उपस्थित किया। सबसे पहिले फ्रेयर साहब ने सलाम कर तरह तरह की बहुमूल्य वस्तुएं शिवाजी के नज़र कीं। महाराज ने हँस कर भेट स्वीकार कर, दूत को अपने पास बुलाया। द्विभाषियों की सहायता से शिवाजी ने उनसे दो चार बात किया। एलची बिदा हुए। नारायण जी की सलाह से शिवाजी ने उनकी सब बातें मान लीं थीं, उन्होंने हुक्म लिखने का भार भी अपने मन्त्री पेशवा को दे दिया था। दो चार दिनों बाद शिवाजी ने उसमें दस्तख़त कर मुहर कर दी, और ये स्वत्व ईस्ट इंडिया कम्पनी को दिये—

१—अङ्गरेज़ व्यापारियों को महाराष्ट्र पति के राज्य भर में व्यापार करने की अबाध आज्ञा दी जाती है।

२—अङ्गरेज़ों के सिक्के महाराज के राज्य में चलाये जायँ, महाराज के सिक्के पूना, बम्बई, में चलें। पर सिक्के अच्छे, बादशाहियों की तरह होने चाहियें।

३—अङ्गरेज़ों के वाणिज्य-पोत (जहाज) बन्दरों पर अच्छी तरह रहें। यदि जहाज़ डूब जायँ, तो उनका मालिक राज्य है।

और भी कई बातों का हुक्म मिला, पर उनके लिखने की यहां हम आवश्यकता नहीं समझते।*

क्या यह सत्य है ?

[लेखक—श्रीयुत राधाकान्त मालवीय]

फ्रांस देश का विक्रमी सम्राट नैपोलियन बोनापार्ट ने जिसके नाम से एक समय सारा संसार चकित हो रहा था और यह आशा की जा रही थी कि कहीं संसार के बहुत से राज्य और जातियों को वह अपने हाथ में कर इंगलैंड का विध्वंस करने में समर्थ न हो जाय अपने नीचे के अफ़सरों को यह आज्ञा दे रक्खा था कि हमारी निन्दा यदि कहीं भी छपे तो हमें अवश्य देखा देना तारीफ छपे तो उसके देखाने की कोई आवश्यकता नहीं यदि निन्दा झूठी है तो हमारी कोई हानि नहीं होगी यदि ठीक है तो हमें अपने दोषों को दूर करने की कोशिश करना होगा।

जो जातियां इस संसार में मान से जीवित रहना चाहती हैं उन्हें भी इसी उपदेश को काम में लाना चाहिये-यदि उनकी अन्य लोग तारीफ छापें तो उसे वे देखें चाहे न देखें निन्दा को अवश्य देखना चाहिये और यदि वह ठीक हो तो अपने दोषों को दूर करने की कोशिश करना चाहिये। हैरल्ड बेगमी ने डेली क्रानिकिल में भारत से एक पत्र में लिखा है कि एक पुरानी कहावत है कि जहां स्त्रियों का मान होता है वहां ईश्वर

---

* "साहित्य" नामक बङ्गला मासिक पत्र के एक लेख के आधार पर।

भी प्रसन्न रहते हैं भारत में भ्रमण करने वाले मुसाफिर को पग २ पर चाहे वह सुन्दर विशाल शहरों में हो या गावों में यह कहावत की याद आती है-उसे चारों ओर देख यही विश्वास दृढ़ होता है कि भारत में स्त्रियों का आदर नहीं होता है—भारत की महिला अन्य लोगों को देखने में सुन्दरी भले ही लगे वह सुखी नहीं है। वह चैतन्य भले ही मालूम दें किन्तु वे अबला पराधीन सत्वरहित केवल पुरुष की कर्मचारिणी है—भारत में स्त्री जाति में यदि किसी का आदर होता है तो वह गौ का है।

पुरुष तो स्वामी है, शक्तिमान है, और बालक उसका उत्तराधिकारी हो युवराज है परन्तु स्त्री उनकी दासी है—इस संसार में स्त्री का जन्म पुरुष के साथ सुखों के सहभागिनी होने को नहीं हुआ है परन्तु पशुवत पुरुषों की सब भांति सेवा करने को—स्त्री स्वामी के लिये भोजन भले ही बनावे परन्तु जब तक उसका पति भोजन न कर ले उसे उसमें से एक अंश भी लेने का विचार भी नहीं करना चाहिये—पुरुष की सहायता करने को उसे जाना आवश्यक भी हो किन्तु उसके साथ २ जाने का उसे सौभाग्य नहीं प्राप्त हो सकता है—उसे बोझ भी ढोना हो परन्तु वह यह आशा नहीं कर सकती है कि पुरुष अपने हाथों से उसे मदद करेगा—भारत में हमें अब तक यह देखने का सौभाग्य नहीं हुवा कि स्त्री और पुरुष एक दूसरे का हांथ थामे साथ २ घूमते हों—भारत में हम चार हजार मील से ज्यादे घूम चुके हैं परन्तु आज तक हमने कहीं भी कुटुम्बियों को स्त्री और पुरुषोंको साथ २ भोजन करते नहीं देखा है। जो लोग भारत से हम से ज्यादे परिचित हैं वे बताते हैं ऐसा दृश्य कभी भी देखने को नहीं मिलेगा। परंन्तु हमने कड़ी धूप में दोपहर में स्त्रियों को खेतों में काम करते देखा है—सड़कों पर बोझा ढोते, पानी लाते और जांता पीसते भले ही देखा है परन्तु प्रसन्न मुख स्त्रियां हमने नहीं देखा है। बूढ़ी स्त्रियों के आंखों से दुख की कथा मालूम होती थी और उनके आनन्द रहित जीवन पर विचार कर दुःख होता था।

दरिद्र भारत में सब से शोचनीय दशा बूढ़ी स्त्रियों की है और भारत में स्त्रियां चालीस वर्ष की अवस्था में बूढ़ी हो जाती हैं—यूरप में बूढ़ी स्त्रियों के चेहरों से स्वाभिमान शक्ति और सन्तोष मालूम होता है उन्हें देख यह मालूम होता है कि उन्होंने भी संसार में कुछ काम किया है और वे अपने काम को बड़े महत्व का भी मानती हैं। नई आयुवाले भी उनका आदर करते हैं परन्तु भारत के बूढ़ी स्त्रियों की दशा इससे विपरीत है उनके आंखों से दुःख शोक और निरुत्साह प्रकट होता है और वे यही कहती हुई मालूम होती हैं कि हम कैसी हतभागिनी हैं कि हम अब तक जीवित हैं ईश्वर का क्यों हम पर कोप है कि वह हमें मृत्यु नहीं देता है ईश्वर से मनाइये हमें जल्दी मृत्यु दे—

भारत में स्त्रियों के जन्म होना ही संसार के अधिकांश सुखों से बंचित रहना है। स्त्री जाति की दशा शोचनीय है। बाल्यावस्था में माता का स्तन पान करते भले ही वे आनन्द करलें परन्तु थोड़ी ही बड़ी होने पर उन्हें मालूम हो जाता है कि उनमें और उनके भाई में क्या अन्तर है और उन्हें भाई के तुल्य अधिकार पाने का विचार भी नहीं करना चाहिए। विवाह के समय तक उन्हें उनकी पराधीन दशा का पूरा ज्ञान हो जाता है।

ऐसी ही शोचनीय दशा यूरप में भी पहिले थी किन्तु विज्ञान के फैलने से यह मत मान ली गई कि स्त्री और पुरुष के अधिकार बराबर हैं और जब से यूरप में स्त्रियों का आदर होने लगा तभी से उन्नति भी शुरू हुई।

ऊंची जातियों में स्त्रियों की दशा और भी शोचनीय है। यह सत्य है कि उन्हें सड़कों पर

मजदूरी नहीं करना पड़ता है सिर्फ घर में भोजन पकाना पड़ता है और गृहस्थी का काम करना पड़ता है पर वे नीच जातियों के स्त्रियों से भी अधिक शक्ति रहित ज्ञानशून्य होतीं हैं आठ वर्ष के बालक को भी संसार का हाल उनसे ज्यादे मालूम रहता है। समुद्र की निर्मल तरंगें और हिमाचल का निर्वर्णनीय दृश्य मालूम होता है ईश्वर ने उनके लिये नहीं बनाया है उन्हें मनुष्य वर्ग की कहते संकोच होता है। उनकी दशा पक्षियों से अधिक मिलती है, अन्तर इतना ही है कि पक्षी पिंजड़ों में बन्द होते हैं ये गृहों में और पुरुषों ने इन्हें अपने हित के लिये कुछ काम करना सिखला लिया है।

संसार में तीन देश हैं जहां स्त्रियों का आदर करना धर्म के एक अंश से अधिक माना जाता है जरमनी, अमेरिका, और इङ्गलैंड, और आज यही तीनों देश संसार में सब से बड़े बने हुए हैं।

वह जाति कभी भी संसार में शक्ति नहीं प्राप्ति कर सकती जिसमें पुरुषों की माताएं अधम दासत्व में रक्खी जाती हैं।

जिस जाति में पवित्र कुटुम्ब और सुखी प्राणियों की संख्या अधिक होती है वही वास्तव में उन्नतिशील शक्तिशाली जाति होती है और उसी कुटुम्ब में सुख और शान्ति हो सकती है जहां स्त्रियों का आदर होता है और माताओं का मान होता है और ऐसी हो जातियों में वास्तविक कुटुम्ब सुख जाति की शक्ति को बढ़ाता है। जहां स्त्रियां गुड़ियों की नाई संसार से अनभिज्ञ गृहों में कैद रक्खी जातीं हैं वहां स्थिर शक्ति और उच्च विचार दिखलाई नहीं देते।

नौलखा हार।

[लेखक—श्रीयुत पं० किशोरीलाल गोस्वामी]

पांचवा परिच्छेद।

भयानक जूआ चोरी !

"मृगमीनसज्जनानां, तृणजलसन्तोष विहितवृत्तीनाम्।
लुब्धक धीवर पिशुना, निष्कारण वैरिणो जगति" ॥

(भर्तृहरिः)

उस समय रनछोरलाल के साथ साथ हाथ में एक नीले रंग के 'सिल्क' का चोगा लिए हुए सेठ यमुनादास भी उपस्थित थे और उनके पीछे सेठ गोकुलदास भी थे। पीछे समागत स्त्री पुरुषों का एक बड़ा भारी हजूम था, जो बेतरह शोरोगुल मचा रहा था।

रनछोरलाल ने फिर झिड़क कर घनश्याम से यों कहा,—"क्यों बे चोट्टे ! क्या अब भी तू कोई ऐसा मकर फरेब रच सकता है, जिससे पहिली बेर की तरह इस बार भी बच जाय !!!"

इस आकस्मिक घटना या अनभ्र वज्रपात से घनश्याम एकदम घबरा गया और उसका चेहरा पीला पड़ गया। यहां तक कि इस असंभावित अभियोग ने मानों उसकी जीभ ऐंठ दी और उससे कुछ भी न बोला गया। यह देख कर द्वारकादास ने रनछोरलाल से पूछा,—"ऐं, आप कहते क्या हैं ? क्या वह नौलखा हार मिल गया ?"

रनछोरलाल ने कहा,—"हां, मिल गया।"

द्वारकादास,—कहां पर मिला ?"

इस पर यमुनादास ने कहा,—"यह 'सिल्क' का 'चोगा' इन्हीं महात्मा (घनश्याम की ओर इशारा करके) का है। इसी के पाकेट में से सेठ रनछोरलाल ने मेरे सामने उस हार को बरामद किया।"

इतनी देर में घनश्याम ने अपने जी को ठिकाने कर लिया था (सो, उसने झटका देकर रनछोरलाल के हाथ में से अपने हाथ को छुड़ा लिया और बड़ी घृणा के साथ रनछोरलाल और यमुनादास की ओर देख कर कहा,—

"छिः ! छिः ! इस षड़यन्त्र का भी कोई ठिकाना है ? क्योंकि एक बेर तो किसी गुमनाम

रुक्के पर विश

तलाशी ली ; सब से बढ़ कर तो लोगों के जलने
निकला तो ;न और मुख्य कारण यह था कि ललिता
इसके ज़ेबसुन्दरी स्त्री उस पर जान देती थी। बस,
धिक्! क्यारणों से यमुनादास के यहां उपस्थित
डालता हैं में से केवल सदाशय महात्मा गोकुल-
द्वारा को छोड़ कर और कोई भी घनश्याम को
चोगा उसी नज़र से नहीं देख सकता था, इस लिए
घनको विपद ग्रस्त देख कर यदि धनिक मंडली
पहिन वको हंसी उड़ाने लगी थी तो इसमें आश्चर्य
रनछोई बात नहीं हुई। और द्वारकादास की
चलेगा ि पर भी उस समय उपस्थित व्यक्तियों
हालत में श्वास न हुआ क्योंकि वह घनश्याम का
श्याम" यह त्र था।
मोजूद है।" न, पुलिस के हेड कांस्टेबिल ने घन-
यों कह कर थ पकड़ लिया और कठोरता पूर्वक
भीतर लाल डोरे ,-"तुम्हें मेरे साथ जाना होगा।"
नाम को पारी पा घनश्याम ने वीरता व्यंजक
दिखलाया और यों कात का यों उत्तर दिया कि,
यह देखा कि इस (घ
इस चोगे को उतार क घनश्याम को ले कर दोहो
कर) कमरे में, जहां प कि विवाह-मंडप की ओर
अपने अपने चोगे, कोट, ाग लगी" का कोलाहल
रह रक्खे हैं, एक खूंटी प
सो, जब इसके कोट के पाछे ही-आंगन में बना
मिला तो इस सिल्क के चोगे के इसमें आग लग गई
किया गया। ईश्वरानुग्रह से इस चों ने बड़ा कोला-
में वह बहुमूल्य हार मिल गया और इ धूप से वह
समस्त सभ्य महाशयों का मुख उज्वल दी गई और
घनश्याम,-"वास्तव में, सच बोलने लोगों के
इस समय आपने हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिरने लगा।
भी मात किया! क्या कहना है! मेरे लिए चो
भी तैयार किया गया और उसके कालर के शान्त
भीतर मेरा नाम भी बना दिया गया; इसके बाद स
वह हार भी बरामद हो गया!!! भला; इस जूआ ले
चोरी का कुछ ठिकाना है!!! (रनछोरलाल की मुंह
ओर देख कर) भला, इस हार के बरामद करने की

यह सुन कर यमुनादास ने उस पुलिस मैन की मुट्ठी गरम की और यों कहा कि,-"जनाब, अब आप पधारिए, क्योंकि जब कि मेरी खोई चीज़ मुझे मिल ही गई है, तो फिर अब मैं इस मामले को चलाना नहीं चाहता, क्योंकि वह नालायक आज उपस्थित सभ्य मंडली के सामने ऐसा अपमानित हुआ है कि अब वह जाते जी कदाचित् लोगों को अपना काला मुंह कभी न दिखलावेगा। बस, उसके लिए यही दंड बहुत हुआ है।"

निदान, पुलिस कर्मचारी अपना काम करके चला गया। इतने ही में बारात आई और शुभ लग्न में यमुनादास ने कन्यादान दिया। उस समय वह नौलखा हार उनकी कन्या के गले में पड़ा हुआ था जिसे पास से भली भांति देख कर द्वारकादास ने अपने पास ही खड़ी हुई अम्बालिका के कान में कुछ धीरे से कहा, जिसका जवाब उसने भी धीरे ही से दे दिया। इसके बाद द्वारकादास ने उपस्थित सभ्य मंडली को सम्बोधन करके यमुनादास से यों कहना प्रारंभ किया :—

"सेठ यमुनादास जी! आपकी आंखों पर इस समय ऐसा पर्दा पड़ गया है कि आप असली और नकली को नहीं पहचानते। उस समय भी आपने मेरी एक भी बात न सुनी और व्यर्थ निर्दोषी घनश्याम का इतना अपमान किया। भला, ज़रा आप एक बेर ध्यान से देखें तो सही कि जिस हार को आपने अपनी कन्या के गले में पहिराया है वह असली है, या नकली! तब आपको यह बात स्वयं मालूम हो जायगी कि असली नौलखे हार का चोर कौन है।"

ऊपर लिखी हुई बातें द्वारकादास ने ऐसे उत्तेजक शब्दों में कही कि जिसे सुन कर उपस्थित नर नारियों में एक बेर खलबली पड़ गई और सेठ यमुनादास ने अपनी लड़की के गले से उतार कर वह हार भली भांति देखा तो

मजदूरी नहीं करना पड़ता है सिर्फ घर में भोजन पकाना पड़ता है और गृहस्थी का काम करना पड़ता है पर वे नीच जातियों के स्त्रियों से भी अधिक शक्ति रहित ज्ञानशून्य होती हैं आठ वर्ष के बालक को भी संसार का हाल उनसे ज्यादे मालूम रहता है। समुद्र की निर्मल तरंगें और हिमाचल का निर्वर्णनीय दृश्य मालूम होता है ईश्वर ने उनके लिये नहीं बनाया है उन्हें मनुष्य वर्ग की कहते संकोच होता है। उनकी दशा पक्षियों से अधिक मिलती है, अन्तर इतना ही है कि पक्षी पिंजड़ों में बन्द होते हैं ये गृहों में और पुरुषों ने इन्हें अपने हित के लिये कुछ काम करना सिखला लिया है।

संसार में तीन देश हैं जहां स्त्रियों का आदर करना धर्म के एक अंश से अधिक माना जाता है जरमनी, अमेरिका, और इङ्गलैंड, और आज यही तीनों देश संसा[र में] बड़े बने हुए हैं।

वह जाति कभी भी संसार में प्राप्ति कर सकती जिसमें पुरुषों अधम दासत्व में रक्खी जाती हैं।

जिस जाति में पवित्र कुटुम्ब प्राणियों की संख्या अधिक होती है वही में उन्नतिशील शक्तिशाली जाति होती है, उसी कुटुम्ब में सुख और शान्ति हो जहां स्त्रियों का आदर होता है और मान होता है और ऐसी हो जातियों विक कुटुम्ब सुख जाति की शक्ति को जहां स्त्रियां गुड़ियों की नाई संस भिन्न गृहों में कैद रक्खी जातीं शक्ति और उच्च विचार दिख

दिखलाकर) अपनी बंगल [द्व]ारा किया, की पुलिस [उप]त ज्योंहि [द्वारक]ादास ने [ने] कहा,- [ह]ैं, कि [पु]त्र को पु- [य]दि धन- [ह]ोगा तो यह निर- प्रतिष्ठा भङ्ग [ऐ]सा होगा!" [क]हा ही चाहते थे

नौलखा हार।

[लेखक—श्रीयुत पं० किशोरीलाल गोस्वामी]

पांचवा परिच्छेद।

भयानक जूआ चोरी!

"मृगमीनसज्जनानां, तृणजलसन्तोष विहितवृत्तीनाम्।
लुब्धक धीवर पिशुना, निष्कारण वैरिणो जगति" ॥

(भर्तृहरिः)

उस समय रनछोरलाल के साथ साथ हाथ में एक नीले रंग के 'सिल्क' का चोगा लिए हुए सेठ यमुनादास भी उपस्थित थे और उनके पीछे सेठ गोकुलदास भी थे। पीछे समागत स्त्री पुरुषों का एक बड़ा भारी हजूम था, जो बेतरह शोरोगुल मचा रहा था।

रनछोरलाल ने फिर झिड़क कर घनश्याम से यों कहा,—"क्यों बे चोट्टे! क्या अब भी तू कोई ऐसा मकर फरेब रच सकता है, जिससे पहिली बेर की तरह इस बार भी बच जाय!!!"

इस आकस्मिक घटना या अनभ्र बज्रपा[त] से घनश्याम एकदम घबरा गया और [उ]स [स]मय न चेहरा पीला पड़ गया। य[ह] [सं]भावित अभियोग ने मान[ो] और उससे कुछ भी न कर द्वारकादास ने रन[छोरलाल से कहा,-"] आप कहते क्या हैं? क[हिये यह कैसे हो] गया?"

[बो]ल उठे कि,-"अब और जो कुछ तुम्हें में कहना।" [कहि]ये, आप जिस ढंग की [कहते ह]ैं, उससे संभव है कि खयाल मेरे जी से

रनछोरलाल ने क[हा,-"] तो तुम मेरा क्या करोगे?"

द्वारकादास,-"यह बात तुमको समय पड़ने [पर मा]लूम हो जायगी। बस, अपने जी [मे]ं तुम मेरी ढकी हुई बातों का मतलब [समझ] लो और इतने आदमियों के सामने [मेरी प]ोल न खुलवाओ।"

इस पर यम[ुनादास ने] का 'चोगा' [...] इशारा कर[...] रनछोरल[ाल ने] किया।

[...]दान पुलिस को देखते ही अम्बालिका ठि[...] वहां से खिसक गई, और यमुनादास ने [द्वा]रकादास और रनछोरलाल के बीच बात बढ़ती हुई देखकर रनछोरलाल को तो हटाकर अपने पीछे कर लिया और द्वारकादास से यों कहा,—

"अच्छा आप इस समय मुझसे क्या कहा चाहते हैं?"

थी, और सब से बढ़ कर तो लोगों के जलने का प्रधान और मुख्य कारण यह था कि ललिता जैसी सुन्दरी स्त्री उस पर जान देती थी। बस, इन कारणों से यमुनादास के यहां उपस्थित धनिकों में से केवल सदाशय महात्मा गोकुलदास को छोड़ कर और कोई भी घनश्याम को अच्छी नज़र से नहीं देख सकता था, इस लिए उसको विपद ग्रस्त देख कर यदि धनिक मंडली उसकी हंसी उड़ाने लगी थी तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं हुई। और द्वारकादास की बातों पर भी उस समय उपस्थित व्यक्तियों का विश्वास न हुआ क्योंकि वह घनश्याम का सच्चा मित्र था।

निदान, पुलिस के हेड कांस्टेबिल ने घनश्याम का हाथ पकड़ लिया और कठोरता पूर्वक उससे यों कहा,-"तुम्हें मेरे साथ जाना होगा।"

यह सुन कर घनश्याम ने वीरता व्यंजक शब्दों में उसकी बात का यों उत्तर दिया कि, "मैं तयार हूं।"

वह पुलिसमैन घनश्याम को ले कर दोही चार कदम बढ़ा था कि विवाह-मंडप की ओर से-"आग लगी-आग लगी" का कोलाहल सुनाई दिया।

विवाह मंडप सामने ही-आंगन में बना हुआ था और वास्तव में उसमें आग लग गई थी। सो, उपस्थित नर नारियों ने बड़ा कोलाहल मचाया और लोगों की दौड़ धूप से वह आग आधे घंटे के अंदर ही बुझा दी गई और इस दूसरी बार फिर आग लगने से लोगों के मन में तरह तरह के भय का उदय होने लगा। अस्तु।

आग बुझने पर जब कुछ कोलाहल शान्त हुआ तब उस पुलिसमैन ने यमुनादास के पास आकर यों कहा,-"साहब! आग लगनेके झमेले में ऐसी भीड़ ने मुझे घेरा कि उस रेल पेल में आपका असामी न जाने किधर मेरा हाथ छुड़ा कर गायब हो गया।"

यह सुन कर यमुनादास ने उस पुलिस मैन की मुट्ठी गरम की और यों कहा कि,-"जनाब, अब आप पधारिए, क्योंकि जब कि मेरी खोई चीज़ मुझे मिल ही गई है, तो फिर अब मैं इस मामले को चलाना नहीं चाहता, क्योंकि वह नालायक आज उपस्थित सभ्य मंडली के सामने ऐसा अपमानित हुआ है कि अब वह जीते जी कदाचित् लोगों को अपना काला मुंह कभी न दिखलावेगा। बस, उसके लिए यही दंड बहुत हुआ है।"

निदान, पुलिस कर्मचारी अपना काम करके चला गया। इतने ही में बारात आई और शुभ लग्न में यमुनादास ने कन्यादान दिया। उस समय वह नौलखा हार उनकी कन्या के गले में पड़ा हुआ था जिसे पास से भली भांति देख कर द्वारकादास ने अपने पास ही खड़ी हुई अम्बालिका के कान में कुछ धीरे से कहा, जिसका जवाब उसने भी धीरे ही से दे दिया। इसके बाद द्वारकादास ने उपस्थित सभ्य मंडली को सम्बोधन करके यमुनादास से यों कहना प्रारंभ किया :—

"सेठ यमुनादास जी! आपकी आंखों पर इस समय ऐसा पर्दा पड़ गया है कि आप असली और नकली को नहीं पहचानते। उस समय भी आपने मेरी एक भी बात न सुनी और व्यर्थ निर्दोषी घनश्याम का इतना अपमान किया। भला, ज़रा आप एक बेर ध्यान से देखें तो सही कि जिस हार को आपने अपनी कन्या के गले में पहिराया है वह असली है, या नकली! तब आपको यह बात स्वयं मालूम हो जायगी कि असली नौलखे हार का चोर कौन है।"

ऊपर लिखी हुई बातें द्वारकादास ने ऐसे उत्तेजक शब्दों में कही कि जिसे सुन कर उपस्थित नर नारियों में एक बेर खलबली पड़ गई और सेठ यमुनादास ने अपनी लड़की के गले में से उतार कर वह हार भली भांति देखा तो

द्वारकादास,–"मैं इस समय आपसे विशेष कुछ न कह कर एक बेर उस नौलखे हार को देखा चाहता हूं, इसके बाद जो कुछ कहना होगा वह कहूंगा।"

इतना सुनते ही यमुनादास के बोलने के पहिले ही रनछोरलाल ने जरासा आगे बढ़ कर झुंझलाहट के साथ यों कहा,—"अब वह हार पैरों गैरों को नहीं दिखलाया जायगा।"

यमुनादास ने भी कहा,—"हां अब वह हार किसी को भी नहीं दिखलाया जायगा और विदा के समय वह लड़की के गले में पहिरा दिया जायगा।"

द्वारकादास,—"किन्तु उस हार को कृपा कर आप एक बेर मुझे अवश्य दिखलाइए और इतना विश्वास रखिए कि इतने आदमियों के बीच से-पुलिस के रहते वह हार अब न तो गायब ही हो जायगा और न बदला ही जा सकेगा।"

द्वारकादास के वाक्य का अंतिम अंश ऐसा विलक्षण था कि जिसे सुन कर यमुनादास चिहुंक उठे और बोले,–"आपने बदले जाने की बात क्या कही?"

द्वारकादास,–"उसका भेद मैं तब तक आपके आगे नहीं प्रगट कर सकता, जब तक कि आप उस हार को मुझे न दिखलावें।"

रनछोरलाल बोल बैठे,–"वह हार नहीं दिखलाया जायगा।"

द्वारकादास,–"हां, ठीक तो है! यदि वह दिखलाया जायगा तो भंडा न फूट जायगा!!!"

यमुनादास ने कहा–"सेठ द्वारकादास जी! इस अचिन्तनीय घटना से हम लोग अत्यन्त मर्माहत हुए हैं, क्योंकि ऐसे आनन्द के समय में इस तरह के निरानन्द को कौन सज्जन चाहेंगे! इस लिए इस समय आप अपना तर्क बंद रखिए और घनश्याम को थाने पर जाने दीजिए; क्योंकि विवाह की लग्न समीप है और बारात दरवाजे लगा चाहती है आप को जो कुछ कहना हो, उसे अदालत में कहिएगा और यदि घनश्यामदास निर्दोष होंगे तो अवश्य ही बेदाग छूट जायंगे।

द्वारकादास,–"अच्छी बात है, तो अब आप के जो जी में आवे सो कीजिए।"

इतना सुनते ही रनछोरलाल ने हेड कांस्टेबिल को इशारा किया और उसने घनश्याम का हाथ पकड़ लिया। यह देखते ही ललिता के मुंह से एक चीख निकल गई और उसने द्वारकादास की ओर विकलता से देख कर यों कहा, "भैया" क्या अब भी मैं चुप ही रहूं!"

द्वारकादास,– (हाथ मल कर) "हां, बहिन! यह मौका चुप ही रहने का है, फिर आगे चल कर मैं देख लूंगा॥

इतना सुनते ही ललिता बेसुध हो कर गिरने लगी थी कि उसकी बुआ रुक्मिणी ने उसे थाम लिया और फिर कई स्त्रियां उसे पकड़ कर एक ओर ले गईं।

ललिता का यह हाल देख कर आमंत्रित नर नारियों के कंठ से घृणा व्यंजक हास्य ध्वनि निकल पड़ी और सभी घनश्याम की ओर अंगुली मटका कर उसका मुंह चिढ़ाने लगे। यहां तक कि उपस्थित समस्त व्यक्तियों ने ही घनश्याम को हार चुराने का अपराधी समझा; इस का एक कारण यह भी था कि वह (घनश्याम) कोई धनाढ्य व्यक्ति न था और हार नौ लाख रुपए की लागत का था। और दूसरा कारण यह था कि धनिकों के साथ निर्धन व्यक्ति का मेल कभी नहीं हो सकता, क्योंकि श्रीमदान्ध व्यक्ति सदैव अपनी जाति के दरिद्र किम्बा परोसी दरिद्र से बड़ी घृणा किया करते हैं। इन बातों के अतिरिक्त घनश्याम गुणी, स्पष्ट वक्ता और सत्यभाषी पुरुष था, और कभी धनिकों की खुशामद या उनकी चापलूसी के लिए मुंह देखी बातें नहीं कहता था। इस लिए उससे सकल कुकर्म परायण धनिक मंडली मनहीं मन भीतर बहुत जला करती

चेतसिंह ने अपना एक वकील कलकत्ते भेजा वकील ने कलकत्ते पहुंच कर गवर्नर जनरल से राजा साहब की ओर से निवेदन किया कि कम्पनी बहादुर की आज्ञा पालन करने को राजा साहब सदैव प्रस्तुत हैं और समय आ पड़ने पर तन मन धन से कम्पनी बहादुर की सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। गवर्नर जनरल की आज्ञानुसार राजा साहब ने तीन बटालियन का सेना व्यय भार एक वर्ष के लिये उठाना स्वीकृत किया है। गवर्नर जनरल की इच्छा थी कि राजा साहब जब तक लड़ाई होती रहे तब तक बराबर तीन बटालियन सेना का ख़र्च दिया करें—पर राजा साहब ने जब केवल एक वर्ष के लिये तीन बटालियन सेना का ख़र्च देना अङ्गीकृत किया तब हेसटिङ्गज् साहब विचार में पड़े। प्रथम वर्ष का तीन बटालियन सेना का ख़ीमा, हथियार तथा अन्य ख़र्चों को छोड़ कर वेतन का ख़र्च ४७६०००) यानी पौने पांच लाख रुपये बैठता था। अन्त में आग्रही हेसटिङ्गज् साहब ने राजा साहब के वकील की प्रार्थना पर ध्यान न दे, आज्ञा दी कि जब तक लड़ाई समाप्त न हो तब तक राजा साहब को पांच लाख रुपये वार्षिक के हिसाब से बराबर देने होंगे। साथ ही राजा साहब को लिख कर आज्ञा भेजी कि प्रथम वर्ष का ख़र्च पांच लाख मछलीदार रुपये, फौरन कम्पनी के बनारस स्थित एजेण्ट को गिना दें।

कलकत्ते से उपरोक्त आशय का पत्र पाकर राजा चेतसिंह ने गवर्नर जनरल को एक पत्र लिखा और पत्रोत्तर पाने की प्रतीक्षा करते करते २८ सितम्बर सन् १७७८ ई० तक पांच लाख रुपये एजेण्ट को नहीं दिये। पत्र में लिखा :—

I have been honored with your gracious letter desiring that I will, as subject of the Company, take upon myself the payment of five Lakhs of *machlidar* rupees as my proportion of the expenses of the present war, and pay them to the resident Although I have no ability left, and the great burden of expense I laboured under from the time of the decease of the late Rajah till the expiration of the Nawab Vizier's authority over me is well known to Your Excellency, yet solely with a view to compliance with your orders, and to prove my fidelity, having sold and pledged every thing belonging to me, I will make good the aforesaid by instalments in six or seven months, although by parting with my effects, which are clearly necessary I am left in a state of inability for the future; yet, if you will show me much favour, that I shall again recover myself As a time is required for the sale of my effects and raising the money, I hope from your kindness, that the officers of Government may take from me in different payments the said sum in *sonath* species, as I shall not be able to procure this sum in muchlidar rupees, and that you will be graciously pleased to affix your signature to my requests, that I may apply myself with satisfaction and assiduity to the business of the sircar."

अर्थात् यद्यपि राजा बलवन्तसिंह की मृत्यु से नवाब के हाथ से निज परित्राण पाने के समय तक हमारा बहुत सा सञ्चित धन निकल गया है और हमारी इस समय इतनी हैसियत नहीं रही कि हम सरकार की मांग को फौरन जुटा सकें तथापि आप को आज्ञा न टालने के अर्थ हम अपना सर्वस्व बेच कर एवम् गिरवी रख कर पांच लाख रुपये देंगे। पर सामान बेचने और रुपये इकट्ठे करने में कुछ समय लगेगा अतः आप यह रक़म हमसे क़िस्तबन्दी करके छः सात मास में लेने की दया करें

उनके चेहरे की सारी रंगत उड़ गई और उन्होंने अपना सिर पीट कर यों कह डाला कि,-"हाय, हाय, वास्तव में यह हार बिल्कुल नकली है और इसमें का एक भी हीरा असली नहीं है !!!

राजा चेतसिंह ।

(भाग-१-संख्या ४ पृष्ठ ४६ से आगे)

[लेखक-चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा]

इन बातों की सूचना कोर्ट आव डिरेक्टरस को देते हुए हेसटिङ्गज़ साहब ने लिखा मेरी समझ में बनारस राज्य का सम्पूर्ण प्रबन्ध राजा चेतसिंह पर छोड़ दिया जाय और सिवाय खिराज की नियमित रकम लेने के कम्पनी को वहां के शासन में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। "बनारस राज्य के लिये इस नीति का अवलम्बन मुझे सर्वोत्तम प्रतीत होता है*।" इसी सूचना के अनुसार हेसटिङ्गज़ साहब ने २ दिसम्बर सन् १७७६ ई० को काशी-स्थित कम्पनी के एजेन्ट फाउक साहब को लिखा कि तुम्हारी यात्रा का उद्देश्य पूरा हो चुका, अब तुम इस पत्र को पाते ही फ़ौरन कलकत्ते वापिस चले आओ †।

किन्तु इसके बीस इक्कीस दिन के बाद ता० २३ दिसम्बर सन् १७७६ ई० को गवर्नर जनरल ने अपने पूर्व विचार के प्रतिकूल निश्चित किया कि बनारस में कम्पनी की ओर से एजेंएट की हैसियत में एक सिविलियन का रखना परमावश्यक है। अतः फाउक साहब की जगह ग्रहम साहब और उनकी सहायता के लिये बारवेल साहब नियुक्त कर के काशी भेजे गये।

असल में यह सब कार्रवाई फ्रांसिस के आवुर्दे फाउक साहब को काशी से हटाने के लिये की गयी थी-पर जब इस नये इन्तजाम की सूचना डिरेक्टरों को दी गई तब वे लोग हेसटिङ्गज़ साहब की चालाकी को समझ उन पर अप्रसन्न हुए और ग्रहम एवम् बारवेल की नियुक्ति अस्वीकृत कर फ्रांसिस फाउक को पुनः बनारस भेजने के लिये कड़े शब्दों में आज्ञा दी*। अन्त में १७ फरवरी सन् १७८० ई० को फाउक साहब बनारस की एजेंएटी पर पुनः बहाल हुए।

हमारे पाठकों को स्मरण होगा कि जुलाई सन् १७७८ ई० में अङ्गरेज़ों और फरासीसियों में युद्ध छिड़ जाने के समाचार यहां आये थे। हेसटिंगज साहब ने अंगरेज़-राजसत्ता अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए अन्य उपायों के साथ एक उपाय यह भी निकाला था कि इस युद्ध के ख़र्च का जो भार, इस समय कम्पनी पर पड़ा है उसका कुछ हिस्सा राजा चेतसिंह से लिया जाय। राजा चेतसिंह से कहा जाय कि जब तक युद्ध चलता रहै तब तक वे तीन बटालियन सेना का ख़र्च अपने पास से दें †। सुप्रीम कौंसिल से इस आशय की सूचना पाकर राजा

---

*"This the Governor General deemed the best policy."

†"That the object by his appointment to proceed to Benares being now accomplished, we have thought it necessary to annul the Commission which was given you for that purpose. We *direct therefore that you return to this* presidency on receipt of this."

*देखो द्वितीय खण्ड अध्याय १ पृष्ठ १०४ का फुट नोट।

† That Rajah Chetye Singh be required in form, to contribute his share of the burden of the present war, by consenting to the establishment of three regular battalions of sepoys, to be raised and maintained at his expense but only for the continuance of war."

मछलीदार रुपये इतनी जल्दी एकत्र न हो सकेंगे अतः सोनाथी रुपये को आप स्वीकार करें।

राजा साहब के पत्र पर विचार किया गया और गवर्नर जनरल ने निश्चय किया :—

"That as the demand made upon the Rajah was for immediate payment of the subsidy, and as he was able as a sovereign and independent authority to pay not only the sum demanded, but ten times as much, the demand for immediate payment should be immediately enforced."

अर्थात् राजा साहब से फौरन रुपये तलब किये गयें थे। चेतसिंह राजा हैं उन्हें अपनी अमलदारी में स्वतंत्र अधिकार प्राप्त हैं, तब पांच लाख ही क्यों, वे चाहते तो पचास लाख रुपये दे सकते थे। अतः फौरन रुपये देने की जो आज्ञा उन्हें दी गई है उसकी तामील उनसे फौरन करानी चाहिये। इस पर स्वतंत्रताचेता फ्रांसिस ने आपत्ति उपस्थित करते हुए गवर्नर ज़नरल को सन् १७७५ ई० की सन्धि * का स्मरण कराया और इस अन्तिम आज्ञा को सन्धि पत्र के ठहरावों के विरुद्ध और अन्यायानुमोदित बतलाया।

फ्रांसिस साहब की बात सुन कर कौंसिल के स्वार्थान्ध अन्य सभ्यों ने सत्य की हत्या कर के कहा कि सन् १७७५ ई० के सन्धि पत्र के ठहरावों के विरुद्ध ख़िराज की रक़म थोड़े ही बढ़ाई जाती है। इस समय विपत्ति आ पड़ी है। ऐसे समय अपने अधीनस्थ अधिकारियों से सहायता लेना परम्परा गत प्रथा है। इन स्वार्थान्ध सभ्यों को उस समय यह समझाने वाला कोई न था कि सन्धि में तो ख़िराज ही क्यों किसी प्रकार का बहाना दिखलाने पर भी ["On any pretence"] अधिक रुपये लेने की शर्त्त लिखी जा चुकी है इन लोगों को यह स्मरण न था कि इस समय भलेही वे आसुरिक तलवार बल के भरोसे अपनी प्रतिज्ञा को भङ्ग करके भी अपने को निर्दोष समझा करें, पर एक समय आवेगा जब उनके कार्यों की दूसरे लोग विवेचना करेंगे और उनके इन अन्याययुक्त कर्मों को तुच्छ समझ कर, बृटिश न्याय एवं जाति को कलङ्कित करने का दोष उनके मत्थे मढ़ेंगे। जिस संस्था अथवा समाज का अगुआ ही अन्याय और अत्याचार पर कमर कस ले तब उसके अनुयायी भला क्यों कर उसका अनुसरण करने में सङ्कोच करने लगे। भाग्यवश यदि उन में कहीं एक दो स्वतंत्रचेता हुए भी तो अधिक लोगों में उनकी बात "नगाड़खाने में तूती की आवाज़" के समान व्यर्थ जाती है। फ्रांसिस के विरोध करने पर भी गवर्नर जनरल एवं कौंसिल के अन्य सभ्यों की सम्मति से ग्रहम साहब को लिखा गया कि वे राजा चेतसिंह को सूचित करें कि उनकी प्रार्थना को कौंसिल ने अस्वीकृत किया और जो रक़म उनसे तलब की गयी है वह एकमुश्त उनको देनी होगी। हमारी इस आज्ञा का पालन फौरन होना चाहिये। तुम राजा साहब से जाकर स्वयं मिलो और रुपयों के लिये तकाज़ा करो और लिख कर उनसे पांच लाख मछलीदार रुपये तलब करो। तुम्हारा पत्र मिलने के दिन से पांच दिवस के भीतर अगर राजा साहब रुपयों का भुगतान न करें तो समझना कि राजा साहब ने कम्पनी की आज्ञा की अवहेला की और ऐसा करने पर तुम राजा साहब के साथ किसी प्रकार का व्यवहार न रख कर तदनुसार हमें सूचना देना और हमारे हुक्म की प्रतीक्षा करना।

* "As to the right of the Government to increase its demands on the Rajah beyond the terms, which the Government originally agreed to give him, which he consented to, and which were made the fundamental tenure by which he holds his traditions † to Mr. Foulke of the 24th August 1775."

† द्वितीय खण्ड २ अध्याय का १०४ पृष्ठ देखो।

कौंसिल द्वारा प्रार्थना अस्वीकृत होने पर और साफ जवाब पाकर राजा चेतसिंह ने ज्यों त्यों करके पांच दिन की मियाद के अन्दर ही पांच लाख रुपये अदा किये। जुलाई सन् १७७६ ई० में राजा चेतसिंह से फिर पांच लाख रुपये मांगे गये। रुपये वसूल करने के लिये नीचे उद्धृत पत्र एजेण्ट को भेजा गयाः—

"The period of one year for which the Rajah contributed the sum of five lakhs muchlidar Rupees, as his proportion of the burthen of the war with France for the last year, being expired, and the war still continuing, we find it necessary to maintain the same force, and to require that Rajah Cheyte Singh shall be at his share of the expense. We therefore direct that you demand from him payment of the above sum as his proportion of the charge for the current year, and remit the amount to us."

अर्थात् जिस वर्ष के व्यय के लिये राजा साहब ने पांच लाख रुपये दिये थे वह वर्ष समाप्त हो चुका। फ्रांस के साथ युद्ध अभी चल रहा है अतः हम अभी तीन बटालियन सेना रखना आवश्यक समझते हैं। राजा चेतसिंह को उचित है कि वे अपने हिस्से का खर्च वर्तमान वर्ष का अदा करें। उक्त पत्र के जवाब में उन्होंने हेसटिङ्गज़ साहब को पत्र लिखाः—

"Last year you directed Sheikh Ali Nacky, my Vakeel, that I should by any means, by disposing of my effects or by borrowing, make this payment (alluding to the demand of 1774) and *I should not be called upon in future*, and that you would take every means for my advantage and support. I accordingly put in practice every method in my power, and by loans made good the requisition. It is now absolutely out of my power to raise the sum required, and I am therefore hopeful that you will kindly be pleaseded to excuse me the five lakhs now demand and that nothing be demanded of me beyond the amount expresed in the Pottah."

अर्थात् गत वर्ष आपने जेरे वकील शेख आले नक़ी के मार्फत कहलाया था कि इस बार असबाब बेच कर अथवा कर्ज़ा काढ़ कर किसी तरह रुपये अदा कर दो आइन्दा फिर तुम से रुपये न मांगे जांयगे और आप मेरी भलाई के लिये कोई उपाय उठा न रखेंगे। मैंने उधार काढ़ कर किसी तरह रुपये पूरे किये किन्तु अब मेरी शक्ति के यह बात बिलकुल बाहर है कि मैं इस बार आपको आज्ञा का पालन कर सकूं मुझे आशा है कि आप मुझे इन पांच लाख रुपयों के देनेसे क्षमा करेंगे और "पोता" में जो रक़म देने को मैंने लिखी है उससे अधिक रुपया आप मुझ से आइन्दा तलब न करेंगे।

राजा साहब का उपरोक्त पत्र हेसटिङ्गज़ साहब को २७ अगस्त को मिला। २८वीं अगस्त को हेसटिङ्गज़ साहब ने राजा साहब के पत्र का यह उत्तर दियाः—

"I now repeat my demand, that you do, on receipt of this, without evasion or delay, pay the 5 lakhs of Rupees into the hands of Mr. Graham, who has orders to receive it from you and authority, in case of your refusal, to summon the two battalions of sepoy, under the command of Major Carnac to Benares, that measures may be taken *to oblige you to a compliance*, and in this case the whole expense of this corps, from the date of its march, will fall upon you."

अर्थात् राजा चेतसिंह ने अपने पत्र में हेसटिङ्गज़ पर अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करने का दोष लगाया था। पर स्वार्थ साधन में तत्पर हेसटिङ्गज़ ने उस पर ज़रा भी ध्यान न दिया और लिखा कि मैं अपनी बात को दुहराता और आपको आज्ञा देता हूं कि इस पत्र के पाते ही आप पांच लाख रुपये ग्रेहम साहब के हवाले करें। यदि आप रुपये न देंगे तो ग्रेहम साहब को अधिकार दिया गया है कि वह मेजर कारनक साहब की अधीनस्थ दो बटालियन सेना बनारस बुला कर तुम से आज्ञा पालन करावें। स्मरण रहे यदि पलटनों को भेजने की आवश्यकता पड़ी तो उनकी रवानगी के दिन से लेकर पलटनों का सारा खर्च तुम से और वसूल किया जायगा।

इस अध्याय के पढ़ने वालों को चाहिये कि वे एक बात अपने ध्यान में और जमालें। यानी दूसरी बार सन् १७७९ ई० के व्यय के लिये, पांच लाख रुपये राजा चेतसिंह से वसूल करने का मन्तव्य कौंसिल में पास होने के एक दिन पूर्व राजा चेतसिंह का एक अन्तरङ्ग पत्र [Private letter] हेसटिङ्गज् साहब को मिला था। उस पत्र में अन्य बहुत सी विनीत बातों के अतिरिक्त राजा चेतसिंह ने गवर्नर जनरल को लिखा थाः–

* * "And in every instance I depend on your faith religion, promise and actions."

अर्थात् मुझे सदैव आपके धर्म विश्वास, प्रतिज्ञा और कार्यों ही का भरोसा है। चेतसिंह अमृत को विष समझ रहे थे, जो हलाहल विषमय पुष्प था उसको उन्होंने नन्दन कानन का पारजात पुष्प समझ रक्खा था। उनको विश्वास था कि हेसटिङ्गज़ साहब ने दुबारा जो विपुल धन राशि मांगी है, उचित कारण दिखलाने पर वह क्षमा कर दी जायगी। हेसटिङ्गज़ साहब के भेजे हुए पत्र में फौरन पांच लाख रुपये देने की स्पष्ट शब्दों में आज्ञा होते हुये भी राजा चेतसिंह को उसके कार्य में परिणत न होने पर किसी प्रकार की आपत्ति का भय न था। राजा चेतसिंह को विश्वास नहीं होता था कि जिस पुरुष के धर्म विश्वास और प्रतिज्ञा पर मैं पूर्णतया निर्भर हूं वही मनुष्य मेरा अनिष्ट साधन करेगा और मेरी प्रार्थना 'अरण्य-रोदन' की तरह निष्फल जांयगी। राजा चेतसिंह ने २० सितम्बर को नीचे लिखा पत्र हेसटिङ्गज़ साहब को फिर भेजाः–

"Every two or three days I am called upon to pay 5 lakhs of rupees. Your gracious letter on this subject honored me by its arrival. I have dispatched on an urzee in answer, which will have been presented to you. In obediance to your order, by every means, and borrowing from all quarters, raised the sum, and at that time *you promised that it should not happen again*. I have it not in my power at present. You have honored me with the title of son and regarding me as your son, you have protected me. I am therefore hopeful that I may be excused from this requisition."

अर्थात् बार बार मुझ से पांच लाख रुपये तलब किये जाते हैं। आपका कृपापत्र पा कर उत्तर में मैंने आपकी सेवा में एक अर्जी भेजी है जो आपकी सेवा में उपस्थित की गई होगी। गत वर्ष आपकी आज्ञा के अनुसार ज्यों त्यों कर्ज़ा ले लिवा कर मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया था। उस समय आपने मुझे वचन दिया था कि फिर मुझे रुपये देने न पड़ेंगे। अब मेरे बस की बात नहीं है। आप एक बार मुझे अपने "पुत्र" की उपाधि प्रदान कर मेरा सम्मान बढ़ा चुके हैं और मुझे अपना पुत्र समझ कर आप मेरी रक्षा भी कर चुके हैं। अतः मुझे आशा है कि आप इस बार मुझे क्षमा करेंगे।

राजा चेतसिंह समझते थे कि देवतुल्य अङ्गरेज जाति में उत्पन्न हो कर हेसटिङ्गज साहब अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहेंगे। जिसको वे एक बार पुत्रवत् समझ चुके हैं उसका यदि असल में कोई अपराध भी होगा तो क्षमा करेंगे। राजा चेतसिंह को यह बात मालूम नहीं थी कि हेसटिङ्गज साहब के शब्दकोश में धन सञ्चय के समय, "प्रतिज्ञाभङ्ग" और "क्षमा" इन दोनों ही शब्दों का टोटा था। काम पड़ने पर लोग "गधे को बाप" बना लेते हैं। हेसटिङ्गज् साहब ने तो काम पड़ने पर मनुष्य को बेटा बनाया था। सो हेसटिङ्गज् साहब रुपये वसूल करने के समय भला राजा साहब की बातों पर क्यों ध्यान देने लगे। उनकी अर्ज़ी और चिट्ठियों का कुछ भी विचार न कर उन्हें धमकी दी गई। हार कर राजा चेतसिंह को पुनः पांच लाख रुपये किसी न किसी तरह देने पड़े। मैकाले साहब का कथन है कि बार बार धनरूपी रक्त-शोषण से परित्राण पाने के लिये राजा चेतसिंह ने हेसटिङ्गज् साहब को चुपके चुपके तीन लाख रुपयों को घूंस दी *। हेसटिङ्गज् साहब ने इस धन राशि को चुपके चुपके ले लिया। इसमें सन्देह नहीं कि हेसटिङ्गज् साहब ने इस घूंस को पहले तो पचाना चाहा था और इसकी सूचना कौंसिल वालों को नहीं दी-पर जब देखा कि मामला बढ़ता जाता है तब भंडा फूटने के भय से यह रक़म उन्होंने कम्पनी के कोष में पीछे जमा कर दी। पूंछने पर इन रुपयों को बिलम्ब से जमा कराने का सन्तोषजनक कारण आप न बतला सके। (क्रमशः)

* "Chetye Singh, in the hope of obtaining some indulgence, secretly offered the Governor-General, a bribe of twenty thousand pounds."

Macdulay.

अर्थात् गवर्नर-जनरल की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये राजा चेतसिंह ने बीस सहस्र पाउण्ड यानी तीन लाख रुपये की घूँस उनको चुपके चुपके दी।

हँसना।

[लेखक-श्रीयुत पं० जगन्नप्रसाद शुक्ल]

अग्नि जब तक प्रज्वलित नहीं होती, तब तक उसका दृश्यमान स्वरूप प्रकट नहीं होता; उसे दृश्यमान बनाने के लिये—उसे प्रज्वलित करने के लिये लकड़ी अथवा अन्य कोई आधार आवश्यक होता है! जब तक मनुष्य बोलता नहीं या जब तक अपने किसी अवयव की चेष्टा अथवा आक्षेप विक्षेप द्वारा कोई दृश्य कार्य नहीं करता तब तक उसका मानसिक विचार प्रकट नहीं होता। किसी मनुष्य के मन में इस समय आनन्द का निवास है, अथवा दुःख का दावानल जल रहा है, उसके मन की कली हर्ष से खिल रही है अथवा क्रोध से उसमें से चिनगारियां छूट रही हैं इत्यादि प्रकार के मनोभाव तभी प्रदर्शित होते हैं जब किसी तरह मुंह, आखें, नाक, हाथ पांव आदि की स्वाभाविक स्थिति में किसी तरह की भिन्नता दृष्टिगत होती है। यद्यपि बहुत सी ऐसी बातें हैं जिन्हें नित्य के अभ्यास और व्यवहार से हम आप ही जान लिया करते हैं तथापि इस विषय के जानने के लिये भी शास्त्र है। उसे मानसशास्त्र अथवा मनोविज्ञान कहते हैं। जैसे आनन्द, शोक, हर्ष, क्रोध मन के विकार हैं उसी तरह हँसना भी मन के रूपान्तर का हमारे शारीरिक अवयव और इन्द्रियों के चल विचल होने का एक रूप है। यथार्थ में हँसना कार्य है अतएव उस कार्य के होने का कोई कारण भी होना चाहिये। हम लोगों का अनुभव है जब हमें कोई आनन्ददायक वार्ता सुनाई पड़ती है तब हमारे दांत निकल आते हैं; जब मन की कलियों को खिला देने वाली कोई आश्चर्यजनक, कौतूहलवर्द्धक और प्रसन्नता बढ़ाने वाली घटना हम होते देखते अथवा सुनते हैं तब हम हहहां कर हँस पड़ते हैं। अतएव इससे मालूम पड़ा कि हँसने का

कारण आनन्द अथवा आश्चर्य है। हँसने के और भी कई छोटे मोटे कारण हो सकते हैं परन्तु उक्त दोनों कारणों में उनका अन्तर्भाव हो सकता है। हम लोगों में यह कहने की चाल है कि अमुक के हृदय की कली खिल गयीं, अतएव इसीसे मालूम पड़ता है कि हृदय फूल के समान कोई वस्तु है जिसमें कलियां होती हैं।

वैद्यकशास्त्र की दृष्टि से भी यह कथन निस्सार नहीं है। आयुर्वेद में हृदय के लिये हृत्-कमल संज्ञा है। उसका आकार भी बिना खिले हुए कमल की कली अथवा बादाम के आकार का है। यही नहीं बल्कि उसमें चार पँखड़ियां भी हैं। जैसे कमल का फूल भीतर पोला और परागकेसर-गर्भकेसर के जीरे के समान डण्डियों से पूर्ण रहता है उसी प्रकार हृदय भी भीतर पोला और स्नायुमय है। जैसे कमल की पँखड़ियों का ऊपरी हिस्सा ज़रा कड़ा होता है और भीतरी हिस्सा मुलायम होता है उसी तरह हृदय के भीतरी भाग में भी एक अन्तस्त्वचा का अस्तर लगा हुआ रहता है। वह इस प्रकार से लगा हुआ है कि उसके बाहरी अङ्ग के लिये एक प्रकार का आच्छादन स्वरूप हो गया है। इसी का नाम हृत्कोष है। जैसे कमल के फूल में एक प्रकार का रस रहता है उसी प्रकार हृत्कमल में भी रस रहता है। यह रस इस लिये रहता है कि हृदय की क्रिया होती रहे और उसमें हृत्कोष की रगड़ न लगे; अर्थात् यह रस अपने गीलेपन से रगड़ को बचाये रहे। उसकी जो चार पँखड़ियां हैं वे दो ओर दो दो भागों में विभक्त हैं। जिन स्नायु के तन्तुओं से हृदय की बनावट है वे बहुत ही उत्तेजनीय हैं इस लिये वे सिकुड़ती और फैलती रहती हैं। इन्हीं की प्रेरणा से शरीर में रक्त का सञ्चालन होता रहता है। हृदय में विलक्षण चेतना शक्ति है। हृदय की इस चेतना शक्ति को मन कह सकते हैं। मन का अङ्गरेज़ी अनुवाद माइण्ड (Mind) किया जाता है: परन्तु यह बिलकुल ठीक अनुवाद नहीं है। क्योंकि मन में बुद्धि का समावेश नहीं होता। अतएव बुद्धि सहित मन माइण्ड कहला सकता है। सूक्ष्मत्व और एकत्व मन के दो गुण हैं। अङ्गरेज़ी दर्शन शास्त्रज्ञ कैण्ट ने मानसिक क्रियाओं का जो विभाग किया है उससे भी मालूम पड़ेगा कि तर्कशक्ति अथवा तुलनात्मक शक्ति को छोड़ कर बाकी सब तरह की विचार शक्तियों का समावेश 'मन में होता है। सुख और दुःख का अनुभव करने और इच्छा करने की शक्ति का समावेश भी मन में ही होता है। इतना होने पर भी मन कोई स्थूल पदार्थ नहीं बल्कि सूक्ष्म वस्तु है। यदि वह स्थूल होता तो सब इन्द्रियों से उसका एक समय में ही सम्बन्ध हो जाता और उसे सदा सब विषयों का ज्ञान होता। परन्तु कार्यतः ऐसा नहीं देखा जाता। भिन्न भिन्न इन्द्रियों से मन का एक साथ ही सम्बन्ध नहीं जुड़ता। नैयायिकों के मन के अनुसार कोई भी दो क्रियाएं एक साथ नहीं होतीं। विकट दुःख के समय किसी को आनन्द नहीं होता और आनन्द के समय एक साथ ही दुःख का अनुभव नहीं होता। यदि ऐसा हो भी तो एक के बाद दूसरे का अनुभव होता है। कभी कभी हम यह समझ नहीं सकते कि परिवर्तन क्रिया कब हो गई परन्तु होती अवश्य है, वह इतनी जल्दी हो जाती है कि हम उसका अनुमान नहीं कर सकते। आतशबाजी की चरखी जिस समय फिरती रहती है उस समय हमें यही मालूम पड़ता है कि कई रङ्गों के प्रकाश का एक गोलाकार बना हुआ है परन्तु यथार्थ में वह भिन्न भिन्न रहता है और वह वर्तुलाकार स्थायी रूप नहीं है। उसी तरह एक साथ ही जब अनेक क्रियाएं होती हैं तब उनका क्रम हमारी समझ में नहीं आता। ऊपर हम कह चुके हैं कि हृदय की चेतनाशक्ति मन कहलाई जा सकती है। आयुर्वेद का सिद्धान्त है कि ज्ञान होना अथवा न होना मन का धर्म है। यहां पर शङ्का हो सकती है कि ज्ञान होना

अथवा न होना ये दोनों क्रियाएं एक दूसरे के विरुद्ध हैं अतएव ये कैसे स्वीकार की जा सकती हैं। परन्तु तत्वतः इस कथन में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। ज्ञान तभी होता है जब आत्मा, इन्द्रिय और पदार्थ तीनों एकत्र हों। इस एकत्रता को संयोग सम्बन्ध नहीं बल्कि सन्निकर्ष सम्बन्ध कह सकते हैं। कोई चीज हमारे सामने रहती है, चाहे वह आंखों के सामने भी हो परन्तु यदि उसकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित न हो तो उसका हमें ज्ञान नहीं हो सकता। जब कोई पदार्थ सामने हो तो आंखें उसे देखें, आत्मा उस पर विचार करे तब उसका ज्ञान होना सम्भव है। जिस समय दृश्य ज्ञान होता है उस समय कान, नाक आदि इन्द्रियों की क्रिया शब्द, गन्ध आदि विषय मन में नहीं रहते, परन्तु जब मन नेत्रों को निकटता छोड़ कर कान से मिलता है तब उसका शाब्दिक ज्ञान होने लगता है। इससे मालूम पड़ेगा कि जिस समय एक ज्ञान का अस्तित्व रहता है उस समय दूसरे का अभाव रहता है। अतएव मन के विषय में ज्ञान का भाव और अभाव दोनों का कहना सयुक्ति नहीं है। यदि ज्ञान का होना ही मन का कार्य कहा जाता तो जिस समय एक ज्ञान के भाव में दूसरे का अभाव रहता है उस समय की स्थिति का सूक्ष्म विचार किया हुआ न कहा जा सकता। अतएव हमारे ऋषियों ने इतना बारीक विचार किया है। चिन्ता करने योग्य, विचार, करने योग्य, तर्क करने योग्य, ध्येय-सङ्कल्प और स्मरण करने योग्य, विचार, कल्पना और ध्यान करने योग्य तथा जानने योग्य जितने पदार्थ हैं सब मन के विषय हैं। इन्द्रियों के द्वारा पदार्थों का ग्रहण करना, उन्हें अधिकार में रखना, तथा तर्क और विचार करना मन के कर्म हैं। इतनी क्रिया के पश्चात् बुद्धि की प्रवृत्ति होती है। क्योंकि जब तक मन का इन्द्रियों से सम्बन्ध नहीं होता तब तक ज्ञान होता ही नहीं। मन को जब किसी बात का ज्ञान होता है तब वह उसके विषय में विचार करने लगता है। वह शोचता है कि यह बात ऐसी ही है अथवा दूसरी तरह की है; इस काम को यों करें अथवा अन्य तरह से करें। मन उधेड़बुन में लगा रहता है परन्तु निश्चय करना उसका धर्म नहीं है। जैसे किसी कर्तव्याकर्तव्य कार्य के विषय में जानकार पंडित से व्यवस्था ली जाती है उसी तरह मन की शङ्का का निर्णय करना सदसद्विवेक बुद्धि का काम है। वह कहती है कि यह काम यों ठीक है, इसे इस प्रकार करना चाहिये। इसीसे बुद्धि में निश्चयात्मिका का विशेषण लगाया जाता है। अतएव किसी घटना के होने पर इन्द्रियां मन के संयोग से अपना विषय ग्रहण करती हैं फिर मन उनके गुण दोष की कल्पना करता है और बुद्धि उसके भले बुरे का निश्चय करती है। भले बुरे का ज्ञान होने पर मन प्रसन्न अथवा दुःखी होता है। हृदयस्थल पर रात दिन इस प्रकार का क्रियाकलाप होता रहता है। प्रसन्नता होने पर शरीर की सारी रगें स्फुरण पाती हैं और रक्त शरीर में शीघ्र शीघ्र सञ्चालित होने लगता है; इससे हृत्कमल की पखड़ियां खिल उठती हैं और हम हँसने लगते हैं। हमारे शास्त्रकारों ने इसी लिये मनुष्य को सदा प्रसन्न रहने की आज्ञा दी है। क्योंकि इससे रक्त का सञ्चालन अच्छा होता है, शरीर का रक्त साफ होता है सब स्नायु अपना मुंह खोल देते हैं जिससे विकार निकला जाता है अतएव मनुष्य आरोग्य रहता है। हँसना कोई बुरी बात नहीं है यदि अपनी हँसी किसी को दुःख देने वाली न हो किसी को हानि पहुंचाने वाली न हो तो वह पाप नहीं, असभ्यता भी नहीं बल्कि सब पुण्यों का घर और आरोग्यता वृद्धि का कारण है। जैसे सूर्य के देखने से कमल प्रकाशित होता है उसी तरह आनन्द दायक घटना के होने से हृदय पर एक प्रकार का

प्रकाश पहुँचता है, उसकी चेतनाशक्ति स्फुरण पाती है और वह खिल उठता है। कलियाँ खिल जाने पर जैसे अपने भीतरी भाव को छिपा नहीं रख सकतीं उसी तरह हृदय प्रफुल्लित होने से मनुष्य दांत निकाल कर हँसने लग जाता है।

इतना होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक एक वस्तु सब के लिये आनन्दवर्द्धक होगी। सूर्य देखकर सब प्रसन्न होते हैं परन्तु वह उल्लू के लिये असह्य है; चन्द्रमा सब को शीतल करता है परन्तु वही चोरों की ताप बढ़ाने का कारण होता है। अतएव किसी एक वस्तु की ओर देख कर अथवा किसी बात को सुन कर सब लोग एक समान नहीं हँसते हैं। जिस बात को सुन कर किसी मनुष्य के रोएँ खड़े हो जाते हैं और चित्त कुम्हला जाता है उसी को देख कर कुछ मनुष्यों को हँसी छूटती है। दूसरे जीवों का दुःख और विपत्ति देख कर दयालु तथा विद्वान और विचारवान लोगों को दुःख मालूम होता है, दया आती है; परन्तु वही दुःख और विपत्ति देख कर जङ्गली तथा क्रूर मनुष्यों को आनन्द मालूम होता है—वे ताली पीट पीट कर हँसते हैं। पढ़े लिखे सभ्य लोगों में भी ऐसे पत्थर के कलेजे वाले आदमियों की कमी नहीं है जो ऐसी बात देखने और सुनने से भी टस्स से मस्स नहीं होते, जरा सा होंठ भी नहीं हिलाते जिसके देखने और सुनने से दूसरे हज़ारों लोगों के पेट में बल पड़ जते हैं जिससे हज़ारों आदमी हँसते हँसते लोट पोट हो जाते हैं। अवश्य ही ऐसे लोगों का इन्द्रियों पर अधिक अधिकार रहता है जिससे वे अपना भाव रोक सकते हैं।

सचमुच देखा जाय तो आश्चर्य और हँसी तथा आनन्द और हँसी का बहुत नज़दीकी सम्बन्ध है। यदि कोई आश्चर्यजनक अथवा मज़ाक की बात हुई अथवा किसी बात के देखने या सुनने से मन को बहुत ही आनन्द हुआ तो आप ही हँसी आती है। इस प्रकार हँसा आने में कोई आश्चर्य नहीं है। जो लोग अपनी मुख-चर्या इस प्रकार अपने अधीन रख सकते हैं कि ऐसी बात होने पर भी अपना मनोभाव दृश्य-मान न होने दें उन्हें छोड़ साधारण लोगों का इस प्रकार हँसना स्वाभाविक ही है बहुत से हँसी आने पर भी न हँसने अथवा अपनी मुख-चर्या दबा रखने को विचारशीलता का लक्षण समझते हैं। लार्ड चेस्टरफील्ड ने एक जगह पर लिखा है कि जो सच्चा सभ्य सज्जन हो वह कभी न हँसे। इस कल्पना को हम सर्वथा उचित और सत्य नहीं मान सकते हम यह अवश्य कहेंगे कि असभ्यता के साथ बेमौके हँसना ठीक नहीं है, किन्तु आये हुए वेग को रोकना रोग का कारण होता है। बहुत हँसी रोकने से छींक और जँभाई रोकने से मुख टेढ़ा होने आदि की बीमारियां होती हैं उनके हो जाने का भय रहता है। अक्सर देखा जाता है कि यदि कोई राजा, बादशाह, अमीर अथवा विद्वान मनुष्य अकस्मात् जोर से हँसने लगे तो आस पास के बैठे हुए लोग भी चकित होकर बिना कुछ जाने भी हँसने लगते हैं। यहां यद्यपि उनके हँसने का कोई कारण नहीं है तथापि राजा या बड़े आदमी के अचानक हँसने का कौतूहल उन्हें इतना ज़बरदस्त होता है कि वे भी हँसने लगते हैं। इसके साथ ही एक चमत्कार यह भी होता है कि साथियों के भी हँसने से उस बड़े आदमी के हँसने का वेग कम हो जाता है उसकी हँसी की शक्ति ठण्ढी पड़ जाती है।

यद्यपि हँसने २ में भी अनेक भेद हो सकते हैं जैसे निन्दाद्योतक हँसी, चिढ़ाने की हँसी, आनन्द की हँसी और दिखाने की हँसी, तथापि आदि की दो हँसी उपेक्षणीय ही नहीं बल्कि त्याज्य हैं। अन्त की दो हँसियों में एक को असली हँसी और दूसरी को बनावटी हँसी कह सकते हैं। किसी बात से सचमुच कौतूहल अथवा आश्चर्य मालूम हो या किसी कारण से हमारे हृदय में आनन्द की हिलोड़ें उठ कर

अकस्मात् (हमारे पास उस दखन को कोई हो अथवा न हो) जो हँसी आती है, वही असली हँसी है। एकान्त में भी कोई पुस्तक पढ़ते २ किसी मज़ेदार प्रसङ्ग में हँसी आ जाती है वह असली हँसी है। किन्तु यदि मन में कोई आनन्द अथवा कौतूहल की हिलोड़ न हो और हम केवल दूसरों की देखा देखी हँसें अथवा हँस कर बात चीत करने को सभ्यता की निशानी समझ कर हँसें तो वह ऊपरी हँसी कहलावेगी। कोई लोग हमारे मन का भाव न जानने पावें इस विचार से जो हँसी हँस कर दिखाई जाती है वह बनावटी अथवा दिखावटी हँसी है। हमारे स्वर्गवासी बादशाह सातवें एडवर्ड महोदय की डायरी का (जिस समय वे युवराज थे) कुछ अंश एक अखबार ने उद्धृत कर छापा था। उसमें इस आशय का मज़मून था कि हमारे असली मन के भावों का पता पबलिक को नहीं लगता। जिस बात से हमें वास्तविक कोई आनन्द नहीं होता उसमें भी दिखाना पड़ता है कि हम इससे बड़े प्रसन्न हुए हैं, चाहे किसी बात से हमारे मन में प्रसन्नता की लहर भी न उठे परन्तु पबलिक में हमें हँस कर कहना पड़ता है कि इससे हम बहुत सन्तुष्ट हुए हैं। अवश्य ही इस प्रकार की हँसी बनावटी अथवा दिखावटी हँसी है। सच्ची हँसी में प्रसन्नता से जैसे मन हिल जाता है उसी तरह शरीर और ओंठ भी हिलते हैं परंतु मिथ्या हँसी में केवल ओंठ मात्र हिलते हैं, भीतर कोई विशेष विकार अथवा परिवर्तन नहीं होता।

एक प्रकार की और भी हँसी है, उसका सम्बन्ध मनुष्य के स्वभाव से है। मान लीजिये कि किसी जगह में कोई दिल्लगी की बात हुई और वहां के लोग खूब ठठाकर हँस रहे हैं, उसी समय वहां एक बाहरी आदमी आवे। उसे उन की हँसी का कारण मालूम न हो तथापि वह भी उन्हें देख कर उनके बराबर न सही परन्तु ज़ोर से हँसने लगे तो उसे आप क्या समझेंगे। इस घटना से मानों यह मालूम पड़ा कि उस स्थान का हास्य रस उस मनुष्य में आप ही आप प्रवेश कर गया। सारङ्गी अथवा सितार बजाने वाले इस बात को जानते हैं कि जो तार एक ही स्वर में मिलाये हुए रहते हैं उनमें से यदि एक छेड़ा जाय-बजाया जाय तो उस स्वर वाले सभी तार कम्पित होते हैं और उसी जाति का स्वर निकलने लगते हैं। ऊपर की हँसी भी इसी स्वभाव धर्म के अनुसार है।

हमारे यहां के ऐतिहासिक पुरुषों के स्वभाव की विस्तृत बातें लिखी हुई नहीं पाई जातीं इसलिये उनके उदाहरण मिलने कठिन हैं। कहते हैं कि आखिरी पेशवाई के सुप्रसिद्ध नाना फड़नवीस शायद ही कभी हँसते थे। अमेरिका के उद्धारक जार्ज वाशिङ्गटन के विषय में कहा जाता है कि वह कभी हँसता हुआ नहीं देखा गया। फ्रांस के प्रसिद्ध बादशाह नेपालियन के विषय में भी यही बात सुनी जाती है। जो मनुष्य चाहता हो कि हमारे मानसिक विचारों का किसी को पता न लगे वह कभी सहसा न हँसे, क्योंकि हँसी में भीतर की बहुत सी बातें बाहर निकल पड़ती हैं। जो बेमतलब हँसता है या जिसकी हँसी का कोई कारण नहीं होता उसे लोग मूर्ख समझते हैं। बदमाशों की हँसी लोग उसी समय ताड़ लेते हैं। बिना अभ्यास भांग पोलेने से किसी २ को बड़ी हँसी आती है परन्तु वह बेमतलब की हंसी होती है। शराब से मस्त बने हुये की हंसी भी अकारण होती है। पागल मनुष्य की हंसी बिना कारण और निरर्थक होती है। चतुर मनुष्य इन भेदों को जानते हैं और इन्हीं द्वारा मनुष्य की पहचान किया करते हैं। छोटे लड़के किसी दृश्यमान कारण के बिना सोते समय और कभी कभी जागते समय भी हंसते हैं, उस हंसी का कारण कोई नहीं समझ सकता। कोई कोई सयाने मनुष्य भी सोते

समय हंसते देखे जाते हैं। चाहे छोटे लड़के हों और चाहे सयाने मनुष्य हों, यदि उनकी कांख, पेट अथवा तलुओं पर सुहराया गदगुदाया जाय तो हंसी आती है। जैसी गुदगुदी उक्त भाग में होती है वैसी अन्यत्र नहीं होती। अवश्य ही इस विषय का सम्बन्ध वहां के चमड़े से लगी हुई शिराओं से है किन्तु प्रत्यक्ष कोई कारण मालूम नहीं पड़ता। अतएव इस से यह बात अवश्य जानी जाती है कि हंसी के लिए केवल मानसिक विषय की ही आवश्यकता नहीं है बल्कि शरीर की कुछ शिराओं से भी उसका कुछ लगाव है। इन बातों से यह बात सिद्ध होती है कि हंसने की वृत्ति सर्वथा मनुष्य के स्वाधीन नहीं है यही नहीं बल्कि उसके कारणों का पूरा निर्णय करना भी कठिन कार्य है।

मनुष्य कितना ही मट्ठ हो, कितना ही रूखा और कड़े दिल का हो, परन्तु यह नहीं हो सकता कि वह किसी सूरत से हंस न सकता हो। हंसी मज़ाक के ऐसे कितने ही चुटकुले हैं भोज कालिदास तथा अकबर और बीरबल के ऐसे कितने ही लतीफे हैं भाड़ों के कितने ही नकलें हैं जिन्हें पढ़ या सुन कर हंसी आये बिना नहीं रहती। उनमें से कितने ही तो ऐसी हैं जिनसे वे लोग भी हंस पड़े थे जिन्होंने न हंसने का प्रण किया था परन्तु वे सब भद्दी हैं इसलिये यहां पर हम उन्हें दर्ज नहीं करते। महाराष्ट्र प्रान्त में तीस चालीस वर्ष पहिले रहिमनकर बावा नामक कथक्कड़ हुए हैं। महाराष्ट्र में बीच बीच में गायन और बाजे के साथ जो कथा होती है उसे कीर्तन कहते हैं। उक्त बाबा अपनी कथा में हँसी कूट कूट कर भर दिया करते थे। कहते हैं कि ऐसा कोई मनुष्य ही नहीं होता था जो उनकी कथा में न हंसता रहा हो। कहते हैं सतारा में उनसे एक मराठे ने कहा कि आप कितना ही प्रयत्न करें तो भी मैं नहीं हंसूंगा। हां हां कहते तमाम शहर में यह बात फैल गई बहुत भीड़ इकट्ठी हुई और उनकी कथा भी आरंभ हुई। उन्होंने ऐसी ऐसी युक्तियों से अपना कथानक बांधा कि लोगों के हंसते हंसते पेट में पीड़ा होने लगी परन्तु उस मनुष्य ने ज़रा भी ओंठ न हिलाया। सब लोगों को उसके न हँसने का बड़ा आश्चर्य था, सब की दृष्टि उसी की ओर थी। कथा कहने वाले बाबा लज्जित हो रहे थे किन्तु किसी उपाय से उसे हँसा नहीं सकते थे। अन्त में लोगों ने समझा कि वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर जायगा अतएव सबेरा होते देख कथा समाप्त करने के लिये बाबा से कहा। अन्त में कथक्कड बाबा ने होली की नकल आरम्भ की, और मराठी ढंग की एक कबीर छेड़ कर जोर से उसके सामने जाकर कहा कि अब हँसते हो कि ज़ोर से चिल्लाऊं? मराठी के इस शब्द में बोंबलू कुछ ऐसा मज़ाक है कि वह मनुष्य खदखदा कर हँस पड़ा और फिर कथक्कड़ बाबा ने कथा समाप्त की।

कुछ विद्वान लोगों का कथन है कि जीवधारियों में केवल मनुष्य ही ऐसा है जो हँसता है, अन्य जीवधारी हँस नहीं सकते इस लिये उनके मत में मनुष्य हँसने वाला प्राणी है। किन्तु कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि मनुष्य के सिवाय बन्दर भी कभी कभी मौका पाकर हँसते हैं। सुनते हैं आस्ट्रेलिया में एक प्रकार का ऐसा पक्षी होता है जो किसी पेड़ पर बैठ कर इस ज़ोर से ठहाका मारता है कि रास्ता चलने वालों को आश्चर्य होता है कि यहां जङ्गल में कौन मनुष्य हँस रहा है! अरब में एक प्रकार का ऐसा वृक्ष है जो मनुष्यों को हँसाता है! इस पेड़ में छोटी छोटी छीमी लगती हैं और प्रत्येक छीमी में तीन दाने होते हैं। ये दाने चौरा (लुबिया) के दाने के समान भौंरे से काले होते हैं। यदि इन को पीस कर थोड़ा सा भी कोई मनुष्य खाले तो वह विना कारण खदखदा खदखदा कर बड़ी देर तक हँसता रहता है. खाली हँसता ही

नहीं बल्कि वह नाचने और गाने भी लगता है। उस समय उसे ज़रा भी लज्जा नहीं मालूम होती। कुछ देर तक यों तमाशा करने पर फिर उसे नींद आ जाती है। नींद से जागने पर वह अपने होश हवाश में रहता है परन्तु उसे यह बात ज़रा भी याद नहीं रहती कि थोड़ी देर पहले मैंने क्या क्या खेल किये थे।

मनुष्य की प्रकृति से हँसने का बहुत सम्बन्ध है। क्योंकि मनमाना खूब हँसने से अन्न ठीक हज़म होता है, सारे शरीर को एक प्रकार से व्यायाम का लाभ मिलता है और तबियत प्रसन्न रहती है। यही सबब है कि राजा महाराजा और रईस लोग दिल बहलाने के लिये अपने पास विदूषक अर्थात् मसखरे मनुष्य जान बूझ कर रखते हैं। नाटकों में जिन्होंने अच्छे विदूषक का पार्ट देखा होगा वे अच्छी तरह समझ सकते हैं कि तबियत को प्रसन्न करने में उन मसखरों का राजाओं को कितना उपयोग होता होगा। कभी कभी मनुष्य की मूर्खता से भी हँसी आया करती है। मृच्छकटिक नाटक के शकार का पार्ट इसका प्रमाण है। आज कल हमारे पास एक ऐसा भोंदू बेवकूफ नौकर है जिसकी अनेक बेहूदी करतूतों को सुन कर आस पास के लोग हँसी नहीं सँभाल सकते। सारांश, हँसना कोई बुरी बात नहीं है। मौके मौके पर सभ्यता के साथ सात्विक और स्वाभाविक हँसी हँसने से शरीर की आरोग्यता और मानसिक स्वस्थता पर उसका अच्छा असर पहुंचता है।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

हौड़ा गैङ्ग केस।

पाठक इस मुकदमे से अवश्य परिचित होंगे। इसका फैसला भी हो गया और जिन अभियुक्तों पर मुकदमा चलाया गया था उनमें से ३३ छूट भी गये। माननीय जजों ने फैसले में कहा कि मुकदमा साबित करने को काफी गवाही न थी। मुकदमा इस बात को पूर्णरीति से दिखलाता है कि न्याय सब से ऊपर रहता है और सत्य की झूठ पर अवश्यमेव अन्त में विजय होती है। गवर्मेंट ने न्याय किया इसके लिये कोई धन्यवाद देना हमें आवश्यक नहीं समझ पड़ता क्योंकि यही तो उसका कर्तव्य है, प्रजा भी एक प्रकार से इस न्याय से संतुष्ट ही है किन्तु प्रजा का कुछ अधिकार भी है और वह जानना चाहती है कि इतने मनुष्यों को जो इतने दिनों तक व्यर्थ में कष्ट भोगना पड़ा, जिसके कारण एक दो पागल होगए और मर भी गये इसके लिये उत्तरदाता कौन है. और इतना रुपया जो प्रजा का व्यर्थ में नाश हुआ उसका मुआ[illegible] कौन देगा ? सरकारी वकील का क्या यही कर्तव्य है कि जो पुलिस वाले मुकदमा भेज दें उसकी पैरवी कर दें बिना किसी विचार के कि मुकदमा चल सकेगा या नहीं या उनमें इतनी योग्यता नहीं थी कि वे देख सकते कि वास्तव में मुकदमे में गवाही काफी थी या नहीं ! यदि उनमें इतनी योग्यता नहीं है तो गवर्मेंट को उचित है कि वह किसी योग्य मनुष्य को उन के स्थान पर नियुक्त करे यदि उनमें योग्यता थी तो वे इस बात को बतलावें कि गवाही किस प्रकार से काफी थी ? पुलिस से भी यह पूछा जाय कि उसने इतने कम सुबूत पर क्यों मुकदमा खड़ा किया और जो इतने मनुष्यों को कष्ट मिला तथा प्रजा के इतने रुपयों का अपव्यय हुआ इसकी उत्तरदाता वह क्यों न बनायी जाय ? गवर्मेंट का कर्तव्य केवल इतना ही नहीं है कि वह निर्दोषों को मुक्त करदे किंतु उसका यह भी कर्तव्य है कि वह देखे कि निर्दोषों को व्यर्थ में तो कष्ट नहीं पहुंचाया जाता. और व्यर्थ में प्रजा के रुपयों का नाश तो नहीं

होता। यह तभी हो सकता है जब कि जो निर्दोष मनुष्यों को व्यर्थ कष्ट पहुंचावे उसे दंड दिया जाय। जब तक पुलिस यह नहीं समझती कि झूठे या कमज़ोर मुकद्दमे जिनके लिये उस के पास काफी गवाही नहीं है, चलाने से उसे दंड मिलेगा तब तक प्रजा वर्ग में से किसी मनुष्य को कुछ भी स्वतन्त्रता नहीं है, प्रतिदिन उसे शङ्का बना रह सकती है कि मालूम नहीं उसकी बारी कब आ जाय और उसे हवालात में कब जाना पड़े। दो एक नशेबाज़ों के कहने पर समाज के ३०, ४० मनुष्यों पर गवर्मेंट के विरुद्ध युद्ध करने का ऐसा गुरुतर अभियोग चलाना दूरदर्शिता नहीं कही जा सकती। हम आशा करते हैं कि गवर्मेंट Independent inquiry द्वारा जांच करावेगी कि किसके दोष से इतने मनुष्यों को कष्ट भोगना पड़ा, तथा प्रजा के इतने रुपयों का नाश हुआ और दोषी को उदाहरण के योग्य दण्ड देगी जिसमें ऐसे मुकद्दमों के चलाने का किसी को साहस न हो।

हवाई जहाज़।

कोई सप्ताह ख़ाली नहीं जाता जिसमें यह न सुनाई दे कि अमुक अङ्गरेज हवाई जहाज से गिर कर मर गया। हमारे हिन्दुस्तानी भाई प्रति बार यही सोचते होंगे कि अब कोई जहाज पर चढ़ने का नाम न लेगा किन्तु जब फिर उसी प्रकार की खबर वे पढ़ते हैं वे यही कहते होंगे कि विलायत वाले बड़े मूर्ख हैं जो अपने अनमोल जीवन को व्यर्थ में जहाज पर चढ़ कर खोते हैं। वास्तव में बात तो ठीक यह है कि विलायत वाले मूर्ख नहीं हैं किन्तु हमी लोग हैं जिनके चित्तों में ऐसे विचार उत्पन्न होते हैं। जाति उन्नति कर रही है उसका एक प्रधान सब से बड़ा सुबूत यही है कि उस जाति वाले अपने संकल्प से विचलित नहीं होते और नित्य प्रति जहाज पर चढ़ अपने यत्न में मरते हैं। संसार युद्ध में (Struggle for life) वही जाति उन्नतिशाली है और वही उन्नति की दौड़ में सब से आगे रह सकती है जिस जाति वाले अपने कर्तव्य के पूरा करने में मौत से नहीं डरते यही उन्नति के ताले की ताली है और इसीके कारण आज विलायत वाले सब जातियों से अग्रसर हैं जिस दिन यह देखा जायगा कि अब विलायत वालों में जहाज पर चढ़ कर मरने की हिम्मत नहीं है उसी दिन हम यह समझ लेंगे कि अब उनका अधःपतन शुरू होगा क्योंकि यह निर्विवाद बात है कि जब तक किसी जाति के मनुष्य "मरना जानते हैं" तभी तक उस जाति में जीवन रहता है। अपने मृत्यु के बाद कुटुम्बियों की दुःखावस्था का विचार उन्हें अपने अभीष्ट साधन से नहीं विचलित करता किन्तु यह विचार कि वे यदि सफल प्रयत्न हुये या न भी हुये तो भी एक न एक दिन उनका अनुकरण कर कोई न कोई उनका सजातीय सफलता लाभ करैगा और उनका मरना निष्फल न जायगा बरन उनके मरने ही के कारण एक न एक दिन उनकी जाति वालों को सुख लाभ होगा तथा वे स्वतंत्रता से वायु में विचरैंगे उन्हें साहस प्रदान करता है। धन्य वीर जाति, धन्य तुम्हारा साहस और धन्य तुम्हारी जातिसेवा।

बेगार।

किसी राज्य या शासन पर इससे गर्हित कोई दोषारोपण नहीं हो सकता कि उस राज्य या शासन में बहुत से मनुष्यों को साधारण स्वतन्त्रता की स्थिरता नहीं है, कि वहां यदि कोई मनुष्य किसी दूसरे को ज़बरदस्ती बिना उसकी रज़ामन्दी के किसी काम के लिये पकड़ ले जाय तो उस मनुष्य को कोई दण्ड नहीं मिलता—और फिर यदि उस राज्य के कर्मचारी ही मदान्ध हो ज़बरदस्ती काम लेने में अपनी हुकूमत दिखलावें तब तो वही श्लोक याद आता है:—

"प्रजानां पितरे ये च शास्तारः कर्मचारिणः।
यदि स्यात्तेषु वैषम्यं कं यान्ति शरणं प्रजाः" ॥

भूमण्डल की समस्त सभ्य राजनैतिक समाज में जहां कहीं प्रजा की प्राकृतिक तथा साधारण स्वतन्त्रता का कुछ भी ख्याल रक्खा जाता है किसी मनुष्य की, समाज में उसकी चाहे कैसी हो स्थिति क्यों न हो, स्वतन्त्रता का ह्रास करना तथा उससे उसके मन के विरुद्ध ज़बरदस्ती कोई कार्य सम्पादन कराना बड़ा भारी अन्याय समझा जाता है। अङ्गरेज़ लोग तो स्वातन्त्र्य प्रियता में आज दिन अन्य जातियों से कहीं आगे बढ़े हुये हैं, इङ्गलैंड में तो यह कहावत ही मशहूर है कि "Englishman's house is his castle" "किसी अङ्गरेज़ का घर उसका किला है।" इंगलैंड वाले क्या आज दिन सभी सभ्य कहलाने वाली जातियां किसी प्रकार की रुकावट अपनी स्वतंत्रता के उपभाग में नहीं पसन्द करतीं। जिस जाति में विलबर फोर्स, काबड़न, ब्राइट आदि महात्माओं ने जन्म लेकर गुलामी को स्वतन्त्रता दी जिन्हें कुछ न कुछ काम करने के लिये अवश्य ही दिया जाता था उन्हीं के वंशजों की राज्य प्रणाली में यह देख कर कि ग़रीब मनुष्य बेगार करने को ज़बरदस्ती पकड़ लिये जाते हैं और उन्हें उस की मजूरी कुछ भी नहीं मिलती बड़ा दुःख होता है। गवर्मेंट को उचित है कि अपने सुयश और प्रजा के सुख के लिये बेगार की दुष्ट रीति को जड़ से निकाल दे।

स्वदेशी वस्तुओं पर कर।

बड़े लाट की पिछलों कौन्सिल में जो रुई और स्वदेशी Cotton and Excise वस्तुओं पर कर लगाने आदि के प्रस्तावों पर वादविवाद हुआ था उस पर अङ्गरेज़ी पत्रों में जो आलोचनाएं छप रही हैं वे वैसी ही हैं जैसा कि हम लोग पहिले समझे हुए थे कि वे होंगी। मेनचेस्टर गार्डियन जो कभी २ भारत के हित की भी लिखता है वह भी इस समय हम लोगों के विरुद्ध ही लिख रहा है इसका कारण भी साफ़ही है एक तो वह निःशुल्क व्यापार का पक्षपाती है और दूसरे वह लैन्केशीयर का मुख पत्र है।

लिबरल दल वाले पत्र अब वहां के Tariff reformers शुल्क व्यापार चाहने वालों से कहते हैं कि यदि इङ्गलैंड में शुल्क व्यापार की नीति चलाई जायगी तो भारतवासी भी इसी नीति का अवलम्बन करने के लिये आन्दोलन करेंगे जिसको एक न एक दिन मानना ही पड़ेगा और उस समय इङ्गलैण्ड वालों को हानि सहनी पड़ेगी और इस कारण से इङ्गलैण्ड की पालसी भी निःशुल्क व्यापार की रहनी चाहिये। दूसरे दल वाले लिबरल दल वालों से कहते हैं कि भारत में नित्यप्रति शुल्क व्यापार के लिये आन्दोलन बढ़ता ही जायगा इस लिये इङ्गलैण्ड का हित इसी में है कि वह Imperial Preference (साम्राज्य सम्बन्धी रियायती कर) वाली नीति का अवलम्बन करे।

पाठकों को इन प्रश्नोत्तरों से विदित हो गया होगा कि झगड़ा केवल इस बात का है कि इङ्गलैण्ड की व्यापार नीति कैसी रहै भारतवासियों के कारण इङ्गलैण्ड निवासियों को किसी भांति भी हानि उठाना उचित नहीं इसमें दोनों दल की सम्मति एक ही है। दोनों दल के कहने की युक्ति यद्यपि ढकी मुदी है तथापि सारांश दोनों का यही है कि आर्थिक झगड़ों में इङ्गलैण्ड के हित के सामने भारत अपना हित न साधे जब कि उसके हित साधने से इङ्गलैण्ड को किसी प्रकार की हानि पहुंचने की संभावना हो।

दूसरे शब्दों में यह वही बात है जो लार्ड कर्जन के शासन में कहा गया था कि लेङ्काशायर और डंडी वालों के Dictate की इच्छानुसार भारत की Fiscal व्यापार नीति रहती है। भारतवासी भी इस बात को अच्छी तरह जानते हैं किन्तु उन्हें भविष्य में आशा है।

हम नहीं कह सकते कि उनके आशा के फलीभूत होने का समय कुछ भी निकट है। "Fiscal autonomy will not be conceded to the Govt. of India so long as it is not a responsible Govt. that is, a Govt. responsible to the people of the country as the Govt. of the self Govering countries are. Fiscal autonomy will not be ours until we have succeeded in obtaining political autonomy which is a thing of the distant future.

व्यापार नीति सम्बन्धी स्वतंत्रता भारत को तब तक नहीं मिल सकती जब तक भारत की गवर्मेण्ट प्रजा के हित चिन्तन के लिये बाध्य नहीं है जैसा कि स्वतंत्र उपनिवेशों में होता है।

कुछ आश्चर्यजनक पुस्तकें।

महारानी विक्टोरिया के पास आज तक संसार में जितनी एक खंड की पुस्तकें छपी हैं उनमें सब से बड़ी पुस्तक थी। वह ६३ पौंड यानी २१॥ सेर की वजन में और १८ इञ्च मोटी है। सब से बहुमूल्य पुस्तक "एमेरिका के स्वतंत्रता प्राप्त करने वाले युद्ध का सर्कारी इतिहास है जिसमें युक्त साम्राज्य एमेरिका का ६०००,०००) व्यय हुआ था। यह दश वर्ष में बनी थी और इसके ११० खंड हैं। दूसरी बहुमूल्य पुस्तक हिबरू भाषा की इंजील है। ज्यूज़ लोगों ने इसका दाम ३००,०००) लगाया था किन्तु पोप ज्यूलियस ने न बेचा। बृटिश अजायबखाने के चाइनीज़ विभाग में एक पुस्तक है जिसके ५,०२० खंड वर्तमान हैं। यह संसार में सब से बड़ी पुस्तक है। संसार में सब से छोटी पुस्तक जो मनुष्य के अंगूठे के नख के बराबर है इटली में बनी थी। यह $\frac{4}{10}$ इञ्च लंबी और $\frac{1}{4}$ इञ्च चौड़ी है। इसमें २०८ पृष्ठ हैं, हर पृष्ठ में ६ पंक्तियां हैं और प्रतिपंक्ति में प्राय १०० अक्षर हैं।

भगवान बुद्ध।

सब से अन्तिम अवतार भगवान गौतम बुद्ध का माना जाता है। भगवान बुद्ध के भक्त जो चीन और जापान, बर्मा और सीलोन, श्याम और हिन्दुस्तान में तथा अन्य देशों में हैं बुद्ध की २५०० वर्षवाली वर्ष गांठ के निकट होते हुए समय की बड़ी उत्कण्ठा से बाट जोह रहे हैं। बहुत से लोगों का विश्वास है कि उस समय के निकट होते ही संसार में बहुत सी आश्चर्यजनक घटनाएँ होंगी। कुछ लोगों का कहना है कि ये आश्चर्यजनक घटनाएँ शुरू भी हो गई हैं–थोड़े से अन्नाहारी जापानियों का विस्तृत मांसाहारी रूस के मुकाबले में विजय, आने वाली घटनाओं को सूचना देता है। इस कथन में कुछ सत्य भी देख पड़ता है यह कभी किसी को विश्वास भी नहीं हो सकता था कि अफीम से चूर चीन उन्नतिशील राज्यों की श्रेणी में आवेगा परन्तु आज उनकी अफीम भी दूर हो रही है शिक्षा भी फैल रही है। युवकों ने अन्य २ देशों में जा उपयोगी विद्या का संग्रह कर चीन में "आश्चर्य जनक घटना" की रचना आरम्भ कर दिया है और प्रजा मत से शासन करने के लिये पार्लियामेण्ट भी कायम हो गई है। जहां पहिले छोटे २ परिवर्तनों में खूनों की नदियां बहती थीं आज वही परसिया और टर्की में शान्ति से परिवर्तन समाप्त हो प्रजामत से शासन हो रहा है और किसी को यह भी कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती है कि राज विप्लव में हमारा भाई या पिता मारा गया।

हाय पराधीनता !!

एक जाति और देश के दूसरे जाति और देश के आधीन होने से सब से बड़ी जो हानि होती है वह यह है कि पहले देश के मनुष्यों में आत्म विश्वास (अपनी शक्ति में भरोसा) और

समारम्भ (किसी काम में अगुआ होने का) विश्वास नाश हो जाता है। इस बात का एक नया उदाहरण उपस्थित हुआ है। बालविवाह की बुरी रीति देश में पुरुष और स्त्रियों के बल को हानि पहुंचाती है-यह बहुत समय से लोग कहते आए हैं कि भारत में विधवाओं की संख्या और उनके असह्य दुःख के सागर का प्रवाह बढ़ रहा है। ८ वर्ष की कन्याओं का ६० वर्ष के बूढ़ों से विवाह होने से नाम मात्र के लिये पति के जीते भारत की अनेक कन्याओं को वैधव्य का दुःख भोगना पड़ता है। परन्तु इन अनर्थों को दूर करने के लिये जैसा चाहिये था वैसा प्रयत्न हम लोगों ने नहीं किया। यह सत्य है स्वामी दयानन्द सरस्वती ने तथा और भी संशोधकों ने इसके विपरीत बहुत कुछ कहा और अनेक जातियों में कुछ २ सुधार इस विषय में हुआ भी किन्तु जैसी भारी यह आग समाज को जला रही है उतना भारी प्रयत्न अब तक मिल कर हम लोगों ने नहीं किया और अब जब कि एमरिका से एक देवी आई है और भारत की बहिनों की दशा को सुधारने का बीड़ा उठाकर खड़ी हुई है तो उसके पीछे २ चलने को हमारे देश के अनेक विद्वान खड़े हो गए हैं। उस देवी के लिए यह बड़े धन्यवाद और प्रशंसा की बात है किन्तु हिन्दू समाज के नेताओं के लिये इसके विपरीत है। चाहिये था कि बिना किसी विदेशी के चेताये ही हम लोग अपनी दशा सुधारने को कटिबद्ध हो जाते किन्तु फिर भी हम को यह सुन कर सन्तोष होता है कि इस एमरिका से आई हुई देवी के कोकिल नाद से हमारे जाति के नेता सचेत हुए हैं। आशा और प्रार्थना की बात है कि देवी के जाने पर ये सो न जांय।

हमारे सहयोगी ।

बड़े शोक से लिखना पड़ता है कि आज कल कुछ हिन्दी पत्रों के सम्पादक आपुस के झगड़े लड़ कर तथा व्यक्तिगत आक्षेपों से अपने पत्रों के कालम के कालम रङ्ग कर वृथा अपने पाठकों के समय का भी नाश करते हैं तथा अन्य हिन्दी पत्रों को भी कलुषित करते हैं। स्वयं इन सम्पादकों में इतनी सहनशीलता नहीं है कि चुप रहें न हम लोगों में कोई ऐसी संस्था ही है कि इनके मुख को बन्द कर सकें। हमारे विचार में यह आता है कि यदि अन्य सम्पादक एक होकर कुछ करना चाहें तथा ग्राहक गण भी सम्मिलित हों तब यह गाली गलौज बन्द हो सकता है। सम्पादक ऐसे पत्रों से अपने पत्र का परिवर्तन करना छोड़ दें। हम किसी सम्पादक का अनादर नहीं करना चाहते हैं न हमें किसी से विरोध ही है किन्तु हिन्दी पत्रों के प्रतिष्ठा और सुख के लिये हम यह सूचना करते हैं। हम आशा करते हैं कि अन्य सम्पादक गण हमारे प्रस्ताव पर विचार करेंगे और अपनी सम्मति प्रकाश करेंगे।

हिन्दू मन्दिर ।

सुना जाता है कि भेरा (Bhera) का हिन्दू मन्दिर ढा दिया गया। हिन्दुओं का सब कहना सुनना और बिनती करना व्यर्थ हुआ। कहा जाता है कि डिप्टी कमिश्नर और सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस के मौजूदगी में यह काम हुआ। हथियार बन्द पुलीस फाटक पर खड़ी थी जिसमें हिन्दू आ जा न सकें और इस कारण वे अन्तिम बार भी मंदिर की बन्दना न कर सके। यह भी सुना गया है कि वहीं के स्कूल के मुसलमान मास्टर ने मंदिर के बड़े फाटक पर मूर्ति को तोड़ा। यह भी कहा जाता है कि बट वृक्ष जो मंदिर के पास था और जिसे हिन्दू पुनीत मानते हैं उसकी कुछ शाखें इस लिये काट दी गईं कि उनके कारण ताज़ियों के निकलने में बाधा होती थी। यह भी सुनाई देता है कि वहां के ज़िला स्कूल में हिन्दू और मुसलमान सबको कोरान पढ़ाया

जाता है। ये बातें कई पत्रों में छप चुकी हैं इसका खंडन अभी सर्कारी तौर पर वा और किसी रीति से नहीं हुआ। यदि ये सत्य नहीं है तो इनका खंडन प्रकाशित हो और यदि यह सत्य है तो हम आशा करते हैं कि गवर्मेंट शीघ्र प्रकाशित करेगी कि उसने उन लोगों को क्या दंड दिया जिन लोगों ने हिन्दुओं के धर्म और हृदय पर यह भयंकर चोट पहुंचायी है। गवर्मेंट के राज्य में ऐसी घटनाओं का होना गवर्मेंट के लिये प्रशंसा की बात नहीं है।

दरबार और शाही खरचा।

आज अफसरों का यह विचार हो रहा है सम्राट जार्ज का भारत में दर्बार बड़े धूमधाम से होना चाहिये कि समस्त प्रजा को विदित हो जाय कि ब्रिटेन का कैसा धन सम्पन्न और प्रभावशाली राज्य है–इस विषय में हमें यह ध्यान दिलाना है कि धूमधाम दो भांति की होती है एक तो ऐसी जिस से शिक्षित लोगों पर प्रभाव पड़े और दूसरी जिस से अशिक्षितों पर। यह कहा जाता है कि अशिक्षितों पर प्रभाव डालने की ज्यादे आवश्यकता है इस से धूमधाम के विषय में ऐसे वस्तुओं पर बहुत धन नहीं खर्चना चाहिये जिन से उन पर बहुत प्रभाव पड़ने की सम्भावना न हो। हमारी राय में यदि सम्राट दर्बार के दिनों में देशी पौशाक पहिने तथा साफा बांधे तो इसका सर्वसाधारण पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ सकता है। और प्रजा को मालूम होगा कि वास्तव में एक ऐसा सम्राट है जो विदेशी होने पर भी उन से सहानुभूति रखता है—

दिल्ली में एकत्रित होने वाले प्रायः धनाढ्य होंगे साधारण प्रजा को वहां जाने का मौका नहीं मिलेगा, इस से चाहे जितना धन क्यों न खर्चा जाय साधारण प्रजा को सम्राट के आगमन का आनन्द मनाने का कम अवसर प्राप्त होगा–यदि फ़ी सैकड़ा दस खेत का कर (land tax) दर्बार के समय से कम कर दिया जाय तो सारा भारत (जहां सौ में से पच्चासी आदमी की जीविका खेत से होती है) घर २ में इस आनन्द की बधाइयां मनावेंगे और गुन गावेंगे। और धन्यवाद देंगे उस कृपाल सम्राट को जो छ हजार कोस दूर रहने पर भी उनके सुःख दुःख में साथी होता है।

हिन्दी का अनादर।

बनारस के नये राज्य में सरकारी जगह निकलता है। सुना जाता है कि यह अङ्गरेजी और उर्दू में निकलता है। मालूम नहीं हिन्दी के स्थान पर वहां उर्दू को कैसे स्थान मिला किन्तु यदि उर्दू में निकलना आवश्यक ही है तो भी गजट का अनुवाद हिन्दी में भी अवश्य छपना चाहिये। एक हिन्दू राज्य में हिन्दी का ऐसा अनादर और विशेषतया संस्कृत विद्यालय के केन्द्र में उसकी सब से बड़ी और सब से योग्य कन्या का ऐसा अनादर हृदय को विदीर्ण करता है। हम आशा करते हैं कि श्रीमान काशी नरेश काशी के आस पास तो हिन्दी को अपने मान रखने में सहायता देगें।

हम और हमारे सहयोगी।

"मर्यादा"-दिन २ उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रही है। देखते ही देखते उसका छठा अङ्क भी निकल आया। निस्संशय कहा जा सकता है कि पूर्व की पांचों संख्याओं से यह संख्या अच्छी निकली है। इसका टाइटिल पेज ऐसे सुन्दर कागज पर छपा है कि हाथ से उठा लेने पर फिर उसे छोड़ने का जी नहीं करता। हमने जिस समय मर्यादा का पैकेट खोला उसी समय से हम जहां चलते हैं उसे लिये चलते हैं। और दफ़ा तो हम अपने मित्रों को भी पढ़ने को देते थे इस बार मित्रों की कौन कहे अपने भाई तक को हमने अभी तक मर्यादा पढ़ने को नहीं दी है। इस बार के सभी लेख पाठ्य और लाभदायक हैं। एतद्व्यतीत इसमें जो ३ चित्र निकले हैं वे भी बड़े अच्छे हैं, शिव-पूजन तो बड़ा ही भावमय चित्र है। मर्यादा की यह आशातीत शीघ्र उन्नति देख हम हृदय से प्रसन्न हैं। सभी हिन्दी प्रेमी मर्यादा की मर्यादा करें यही हमारी उनसे सांजलि प्रार्थना है।

शिक्षा।

मर्यादा-आर्यभाषा के मासिक पत्रों में नाम लेने योग्य दो ही पत्रिकाएँ हैं, एक सरस्वती और दूसरी मर्यादा। सरस्वती यद्यपि रंग ढंग में और अनेक प्रकार के लेखों में धनवती है, तथापि उसे संकुचितता की बड़ी भारी बीमारी लगी हुई है। राजनैतिक और धार्मिक विषयों के निर्वासन में पहले ही उसकी परिधि को बहुत तङ्ग किया हुआ था, ... अतः अन्य गुणों से युक्त होने पर भी विषय विस्तृत में मर्यादा सरस्वती को पार कर गई है। निःसन्देह मर्यादा ग्रहण करने योग्य मासिक पत्रिका है, और भविष्य में और भी अधिक ग्राह्य बनने की ओर झुकाव रखती है।

सद्धर्म प्रचारक।

मर्यादा-लेख बहुत सुन्दर सुन्दर और विज्ञतापूर्ण हैं। अभ्युदय प्रेस से जैसी पत्रिका के निकलने की आशा थी, पत्रिका वैसी ही निकली है। हम आशा करते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि दिनोदिन ईश्वर इसकी उन्नति करे और हिन्दी साहित्य में यह अतिउत्तम पत्रिकाओं में से हो।

भारतमित्र।

—:०:—

सूचना।

ग्राहकों के अनुरोध के कारण जो मर्यादा से चित्र अलग नहीं किया चाहते हमने मर्यादा में जो रङ्गीन चित्र प्रकाशित होते हैं उन्हें ।) में बेचना निश्चय किया है जिन्हें चित्रों को मोल लेने की इच्छा हो वे नीचे लिखे पते से चित्र मंगा सकते हैं।

मनेजर
"मर्यादा",
प्रयाग।

बद्रीप्रसाद पांडे द्वारा अभ्युदय प्रेस-प्रयाग में छप कर प्रकाशित।

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग २] ज्येष्ठ–जून सन् १९११ [संख्या २

सूफ़ी मत।

फ़ीमत को मुसलमान लोग दूसरे शब्दों में तसौवुफ़ कहते हैं। इस्लाम जगत की आत्मिक डोर सूफ़ी धर्म के हाथ बहुत काल से रही है। उन देशों के साहित्य को देखिये जहां तहां सूफ़ीमत की छाप आप को मिलेगी। वहां के भिन्न भिन्न सम्प्रदायों का निरीक्षण कीजिये आप तसौवुफ़ का ही लाखा जमा हुआ पायंगे। संसार से विरक्त "फ़कीर" 'वली अल्लाह' जिनकी आत्माएं शरा संकीर्ण साँकलों से अधीर हो गई थी सूफ़ी मत के पवित्र मद से 'आज़ाद' हो गये। कहां तक कहें सूफ़ीमत ने इस्लाम को एक बारगी पलटा दे दिया। आज मिश्र से हिन्द तक मुसलमानों में इसी का डङ्का बज रहा है, इसी को पताका फहरा रही है।

सूफी शब्द की उत्पत्ति।

सूफ़ी शब्द की उत्पति के विषय में विद्वानों का भिन्न २ मत है। कितनो का विचार है कि सूफ़ी शब्द 'सफ़ा' अथवा 'सरफ़' से निकला है। कारण सूफ़ियों का मुख्य सिद्धान्त अन्तः-करण की शुद्धि है।

दूसरों की राय है कि सूफ़ीमत की उत्पति 'सूफ़ शब्द से है। फार्सी में सूफ़ शब्द ऊन का अर्थवाचक है। ऊन फारस के साधुओं में सरल जीवन व्यतीत करने का एक चिन्ह है। फ़कीर वली लोग सांसारिक भोगविलास से विमुख हो सब बोरिया बधना छोड़ एकान्त सेवनार्थ प्रस्थान करते समय केवल एक ऊनी कम्बल कोही अपनाये रखते थे इसी से लोग उनको सूफ़ी नाम से पुकारते थे। यह सूफ़ी शब्द की उत्पत्ति पर दूसरी राय है यह अधिकतर युक्ति संगत भी है।

सूफ़ीमत की उत्पत्ति।

सूफ़ीमत की उत्पति के निस्वत अनेक मत अनेक कल्पनाये हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने इस विषय में बहुत खोज की है। कई एकों के तीर निशाने तक गये भी हैं (१) युरोप में सब से अधिक आदर प्रोफ़ेसर ब्रौन के मत ने पाया है। योरप के प्रायः सभी विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से प्रोफ़ेसर साहब की राय को सराहा है।

आपका विचार है कि सूफ़ीमत भारतवर्ष के वेदान्त का रूपान्तर है। सूफ़ीमत के उच्च-विचार दर्शनों से विशेषतया वेदान्त दर्शन के सिद्धान्तों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। यही

नहीं सूफ़ीमत कट्टर मुसलमानी मत से बहुत स्थानों में विपरीत भी गया है। वस्तुतः सूफ़ीमत के एक ओर वेदान्त से टक्कर खाने और दूसरी ओर मुसलमानी मत से विपरीत हो जाने से प्रोफेसर ब्रौन को "सूफ़ी धर्म Non-Mohamedan अमहम्मदी मत है" कहने का मौका मिला है। आप कहते हैं कि सूफ़ी धर्म आर्य विचारों का सेमेटिक मत के विरुद्ध हमला है। यह आर्यों को धोगां मुस्तो मार मार मुसलमान बनाने का प्रतिफल है। साथ ही यह ऐतिहासिक घटना भी ध्यान देने योग्य है कि छटी शताब्दी में भारत और फारस में बहुत मेल जोल रहा था। शेख मुहंमद एकबाल (M.A.Ph.D.) ने अपनी पुस्तक 'The development of Persian mystcism in Persia में इस राय के विरूद्ध बहुत कुछ लिखा है।

परन्तु उनकी युक्तियां शिथिल प्राय है। पाश्चात्य पण्डितों ने इस पर ध्यान भी नहीं दिया है।

(२) दूसरी कल्पना प्रोफेसर मर्कस और प्रोफेसर निकलसन की है। आप का विचार है कि सूफ़ीमत की उत्पत्ति Neo platonism अर्थात् महात्मा पिलातूस* के सिद्धान्तों से है। शाहजस्टेनियन के राज्य में पिलातूस के मतानुयाइयों के साथ बड़ा कठोर व्यवहार हुआ था। इससे तंग आकर सात फिलासफर ऐथिनस नगरी को नमस्कार कर फारस के दरबार में पहुंचे थे और विख्यात सम्राट् नौशेरवां के राजकाल में अपने पंथ की एक शाखा खोली थी। फल यह हुआ कि फारस के प्रायः सभी विचार शील पुरुष इनके रङ्ग में रङ्ग गये। इस ऐतिहासिक घटना को ध्यान रखते हुए यदि दोनों मतानुयाइयों के विचारों की तुलना की जाय तो इनकी शिक्षाओं के बीच घनिष्ट सम्बन्ध मालूम होगा।

प्रोफ़ेसर डेविस अपनी पुस्तक "The Persian mystics" में लिखते हैं, कि प्रेम की पुकार उनके हृदयों में यूनानी पण्डितों के आने से पहिले विद्यमान थी। (Neo-Platonism) के सिद्धान्तों ने उनके पूर्वी हृदयों में अनुकूल स्थान पाया। उनके आत्मिक विचार रूपी धारा में (Neo-Platonism) ने फटकन (Stepping Stone) का काम दिया। धारा से पार निकलते वे वहां पर और दूसरे पत्थर रखते गये (३) कुछ विद्वानों की यह भी राय है कि सूफ़ीमत मुहम्मद साहब के पूर्व शिक्षाओं के स्वकीय सिद्धान्तों को प्रकाश करता है। इस विचार का विशेषतया मुसलमान विद्वानों ने ही आदर किया है। साधारण मुसलमान भी सूफ़ियों को नबी साहब के विचारों का पैरोकार मानते हैं और सूफ़ी लोग भी अपनी शिक्षाओं का मूल कुरान की आयतों को मानते हैं। जैसे–

"मन अरफ़ नफ़सहू फ़क़द अरफ़ रब्बहू"

"जिसने अपनी आत्मा को जाना उसने परमात्मा को जाना"

"परमात्मा था और उसके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था"

"कुन्त कि नज़ा मुग़ैया फ़ारुतुन अबराज़"

"मैं गुप्त कोष था मैंने प्रगट होने की इच्छा की इस लिये मैंने सृष्टि रची कि मैं प्रगट होऊं"

फ़ारस में इस विचार ने कि सूफ़ीमत मुहम्मद साहब के पूर्व शिक्षाओं का प्रतिवादी है इतना जोर पकड़ा कि लोग सूफ़ियों के सर्वश्रेष्ठ कवि के पद्यों के विषय में कहने लगे।

"मस्नवी मोलवी मअनवी हस्त कुरान दर ज़बान पह्लवी"।

कि मौलाना रूम के पद्य संग्रह फ़ारसी भाषा में कुरान हैं।

---

* महात्मा पिलातूस का जन्म स्थान यूनान है। महात्मा सुक़रात से शिक्षा दीक्षा पाकर इन्होंने योरप में सब से पहिले वेदान्त मत का प्रचार किया था। इनकी बनाई हुई पुस्तक बड़ी आदर की दृष्टि से देखी जाती है—

सूफ़ीमत की शिक्षायें ।

इस्लाम ने सांसारिक पदार्थों के भोग को ही आनन्द माना है और विहिश्त में मनोहर वाटिकाओं की सैर, सुन्दर स्वादिष्ट भोजन, फल फूल कौसरूसलवील का स्वच्छ निर्मल कंचनमय जल, मनोरंजक सुवर्ण महलों का निवास, हूरो व ग़िलमानों की मैफ़िल, आदि २ भौतिक पदार्थों से परमानन्द प्राप्ति समझो है। सूफ़ी इन्हीं के विरुद्ध हैं। वे इनको पाखण्ड समझते हैं। उनका स्वर्ग प्रभु का दर्शन है। उर्दू का विख्यात कवि मीर उनकी आवाज़ में आवाज़ मिला कर कहता है।

(१) (२) (३)
शेख़ तुझे जन्नत मुझे दीदार।
वां भी हर एक की जुदा क़िस्मत॥

सूफ़ीमत में प्रवेश करने के पहले तृष्णा और मोह को दमन करना अत्यन्त आवश्यक है। उनका उपदेश हैं किः—

"तालिबे दुनिया मोअन्नस तालिबे ओक़बा मुखन्नस, तालिबे हक़ मुज़क्कर"।

दुनिया का भूखा स्त्री तुल्य है, विहिश्त का भूखा नामर्द है, ईश्वर का भूखा मर्द है।

नमाज़ रोज़े आदि बाहरी चटक मटक उनके मन को नहीं भाई। वे सदा इनके विरोधी रहे हैं। एक सूफ़ी साधू कहते हैं "मूर्ख मसजिद बनवाते हैं किन्तु वे अपने हृदय के मन्दिर को भूल जाते हैं"।

सूफ़ीमतावलम्वी ईश्वर को सत्य अविनाशी ही नहीं मानते बरन सौंदर्य्य और धर्माचार को भी उसके विशेष गुणों में समझते हैं। वह आदर्श सौंदर्य्य है इसीसे उन्होंने उसको माशूक़े अज़ली वा माशूक़े अवदी कहा है। जिस प्रकार सूर्य एक है परन्तु उसकी किरणें हज़ारहा काचों के टुकड़ों में पड़ने से हज़ारहा सूर्य दिखलाती हैं, इसी प्रकार वह सौंदर्य्यमय भगवान् एक है, परन्तु सांसारिक पदार्थों में उसका आभास पड़ने से असंख्य रूपों में दिखलाई देता है। कवि रज़ा कहते हैं—

(१) (२)
सूरते हक़ तो है हर आइने में जलवानुमा।
(३) (४)
दीदए हैरानी से नहीं मक़दूर हमें॥

सब पदार्थ वहीं तक सत्य हैं जहां तक परमात्मा की ज्योति उनमें विद्यमान है।

यह सब जगत् मिथ्या मृग तृष्णा के समान है। इसको माया का जाल कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। दूसरे शब्दों में जगत सत्य पिता का प्रतिबिम्ब मात्र है। उसके गुण और स्वरूप को प्रगट करता है परन्तु उसके समान प्रकृति (स्वभाव) नहीं रखता।

तेरी सूरत से नहीं मिलती किसी की सूरत।
हम जहां में तेरी तस्वीर लिये फिरते हैं॥
नासिख़।

इसकी पुष्टता में एक मनोहर दृष्टान्त सुनिये। जल की बावली में सूर्य का अक्स पड़ता है। यदि एक बादल का टुकड़ा सूर्य्य के सामने आ जाय अथवा एक पवन के झोंके से बावली का जल डगमगा जायतो या तो प्रतिबिम्ब अदृश्य हो जायगा या अपूर्ण रहेगा। पर इससे यह न समझना चाहिये कि सूर्य, जल, वायु मेघ के आधीन हैं। यह तो सब सूर्य्य के दास हैं। और सूर्य्य इनसे स्वाधीन है। दोष जल और वायु का है। जब तक ये अपने ढंग में हैं सूर्य के स्वरूप और गुणों को दिखावेंगे। विसाल शीराज़ी कहते हैं—

"हमीं फ़रक़स्त बा रुख़सारए ख़ूबां गुलिस्तां रा"
कि ओ पैवस्त शादावस्तो ईं आबे खिज़ां दारद"

(१) शरा अर्थात् बाहरी कर्म धर्म का पाबन्द। (२) स्वर्ग। (३) दर्शन।

(१) सत्य अर्थात् ईश्वर। (२) प्रकाशित। (३) आंख। (४) विस्मय।

"अर्थात् गुलाब वाटिका और प्रेमा के कपोलों में केवल इतनी ही भिन्नता है कि यह (कपोल) तो सर्वदा हरे भरे रहते हैं, और उनमें (गुलाब के फूलों में) पतझड़ का पानी है अर्थात् विकार युक्त हैं।"

सृष्टि उत्पत्ति और पाप की कठिन समस्याओं को सूफ़ीमत ने बहुत आसानी से हल कर दिया है। जब ही सूफ़ी को बोध हो गया कि ईश्वर पूर्ण सौंदर्य्य है यह कठिनता दूर हो गई। सौंदर्य्य का सहज स्वभाव है कि वह प्रगट होने की इच्छा करे। तब क्यों न यह प्रवृत्ति उस पूर्ण सौंदर्य्य के स्वभाव में पाई जाय।

"जो अपने ही तमाशे को गुलिस्तान में आया"।

प्रत्येक वस्तु का ज्ञान उसकी विपरीत वस्तु के द्वारा होता है। प्रकाश की ख़ूबी अंधेरे से है, भलाई की बुराई से, विद्या की मूर्खता से। इसी प्रकार अस्ति का ज्ञान भाव से होगा और पूर्ण सौंदर्य्य विपरीत भाव द्वारा प्रगट होगा। यही विपरीत भाव दुःख, कष्ट, क्लेश, दोष, बुराई अथवा पाप है।

जैसे ज्योति की अनुपस्थिति को अन्धकार कहते हैं, पर वास्तव में अन्धकार कोई वस्तु नहीं है, इसी तरह ख़ूबसूरती वा आचार के अभाव को दोष या पाप कहते हैं। यद्यपि दोष या पाप कोई पृथक वस्तु नहीं हैं। संसार के विकारयुक्त पदार्थों में उस सर्वश्रेष्ट की ख़ूबी के कुछ न कुछ अंश विद्यमान हैं। जैसे एक कांच के छेदित घनक्षेत्र से निकली हुई ज्योति ज्योति ही है यद्यपि उसमें उतना तेज और प्रकाश नहीं रहता है, और वे बहुरंगी हो जाती हैं। कवि इशरती कहते हैं—

दामाने निगह तंग व गुले हुस्न तु बिसयार।
गुलचींने बहारे तू ज़ेदामां गिला दारद॥

तमाम दुर्वासनाओं के दुःख और कष्ट का मूल अहंकार है। अहंकार केवल आभास मात्र है। और यही अहंतत्व सूफ़ीमत के मार्ग में सब से अधिक दुःखमय कन्टक है। इससे मुक्ति अवश्यही होनी चाहिये सांसारिक प्रेम (इश्क़-मजाज़ी) कुछ दर्जे तक अहंकार को हटा सकता है।

खलील आँ रोज़ बा आतश हमी गुफ़्त,
अगर मूये ज़े मा बाक़ीस्त दर सोज़॥
बदो मीं गुफ़्त आँ आतश कि ऐ शाह।
नपेशत मा बसीरम तू दरे सोज़॥

'हज़रत इब्राहीम उस दिन आगसे कहते थे-कि यदि मुझमें अहंतत्व का एकबाल भी बाक़ी है तो जला दे। आग ने उत्तर दिया हे राजन! तेरे सामने मैं जलती हूं तू जाज्वल हो। प्रेम (इश्क़) सूफ़ीमत का सहारा है। इस विचित्र छोह के कारण पारस पत्थर ने बहुत से अधम आत्मारूपी निकृष्ट धातुओं को दैविक सुवर्ण में परिवर्तित किया है।

(२)
पा गया बस चेहरए मक़सूद को लैली के वह।
(३) (४)
जो हुआ है मिस्ल मजनू बुलबुले गुलजारे इश्क़।
सुराज।

(५)
सूफ़ी कवि, सादी की भाँति, प्रत्येक स्थान में प्रेमका ही चुम्बन करता है। कवि निशात कहते हैं।

ब हक़ीक़त नबुअद दर हमः आलम जुज़ इश्क़।
ज़ोहदो रिन्दी ओ ग़मो शादी अज़ो नामे चन्द॥

(१) मनोरथ। (२) अरब की एक विख्यात स्त्री जिसके ऊपर मजनू का अधिक प्रेम हो गया था (३) अरब का एक राज कुमार। (४) स्नेह बाटिका। (५) फ़ारस के विख्यात कवि साद स्त्री पुरुष बाल वृद्ध पशु पक्षी पुष्पलता ईंट पत्थर जिसको देखते थे उसका चुम्बन क लेते थे। एक दुष्टात्मा ने उनको एक स्त्री को चुम्बन करते देख उनके पीछे हो उनका अनुकरण किया, कहते हैं कि कबिने लोहार को जलती अंगीठो से एक लाल लोहे का टुकड़ा उठालिया। दुष्ट अब चकबकाया और गिड़गिड़ा कर उनके पैरों में गिरगया और फिर ऐसा करने से इनकार किया।

अर्थात् वास्तव में सारे जगत में प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। ईश्वर भक्ति, मस्ती शौक, आनन्द उसके कुछ नामों में से हैं। सूफ़ियों का मत है कि आत्मा की धारा उस परम पवित्र महान् आत्मारूपी समुद्र से निकली है। उनकी शिक्षाओं का अभिप्राय आत्मा को काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दुर्वासनाओं की बेड़ियों से मुक्त करना है, मनुष्य प्रकृति का दमन और शारीरिक निर्बलताओं को दूर करना तथा भौतिक पदार्थों से दुःख वर्द्धक आंखों को मूदना है।

जब तलक आँखें खुली है दुःख में दुःख देखेंगे हम।
(१)
मुदगईं जब अँखड़िया तब सोज़ सब आनन्द हैं॥

ताकि जीव केवल आत्मिक हो जाय और पवित्र प्रेम द्वारा उस परमब्रह्म में लय हो जाय जिससे कि वह सूर्य की किरण की भाँति उत्पन्न है। ईश्वर में लय होना ही वस्ल अर्थात् परमानन्द है और महा दुःख हिज्र अर्थात् विछोह है।
(२)

"कौनसी है वह जुदाई की घड़ी जो उम्रभर।
आरज़ूए वस्ल में यह दिल भटकताही रहा"॥

पाठक वृन्द देखते होंगे किस तरह सूफ़ी सोज़ मत ने "लाय इलाहे इल्लिल्लाह" अर्थात् कोई ईश्वर नहीं है अतिरिक्त ईश्वर के कहने वाले शरा के पाबन्द कट्टर मुसलमान के विचारों को पलटा देकर उसको "एको ब्रह्म द्वितिया नास्ति" उपदेश का अनुयाई बना दिया। सूफ़ी अब ईश्वर को स्वेच्छी, स्वतन्त्र, आत्मा, एकान्त सेवी, संसार से पृथक्, और अपने को केवल भविष्यवक्ताओं के वाक्य द्वारा प्रगट करने वाला नहीं समझता है। वह नहीं सोचता है कि उस महाशक्ति के सन्मुख मनुष्य केवल एक राख का पुतला और भय, अन्ध विश्वास और ज़ाहिरी इबादत उसके परम भक्त होने के लिये आवश्यक हैं। उसके विचारों ने जामा बदला है उसकी दृष्टि में

हर लहज़ा बशक्लआं बुते ऐयार बरामद।
दिलबुर्दो निहां शुद॥
हर दम बलिबासे दिगरां यार बरामद।
गह पीरो जवां शुद॥

"हर पल में वह उस छली प्रेमा के भेष में आया मन छीन लेगया और छिप गया। हर घड़ी वह दूसरों के वस्त्रों में कभी युवा और कभी वृद्ध बन कर आया।

सूफ़ी गद गद स्वर से कह उठता है।

यार को हमने जा बजा देखा।
कहीं ज़ाहिर कहीं छिपा देखा॥

उस के विचार में

शराबे लुत्फ़े खुदावन्द रा किनारे नेस्त।
वगर किनार तुमायद कूसूरे जाम बुअद॥

"उस प्रभु की मिहर के मद का किनारा नहीं है, और यदि किनारा दिखाई पड़ता है, तो यह प्याले का दोष है।

ईश्वर को जानने के लिये अपनी आत्मा को पहिचानना उचित है। आत्मा का ज्ञानही ईश्वर प्राप्ति है।

सूफ़ी उस महान् आत्मा का एक अंश है। वह आत्मा चर और अचर में व्याप्त है। जिस की शक्ति ने सब पदार्थों को प्रकाशमय बना दिया है। ईश्वर प्रेम है। प्रेम, प्रेम की धुनि से सारा भूमंडल गूंज उठा है।

"दरियाय इश्क़ बह रहा है लहरों से बेशुमार"।

इस पवित्र प्रेम से कलियां खिल गईं, सन्ध्या का मुंह लज्जा से लाल हो गया, गुलाब पसीना होगया, लाला ने सर झुका दिया, नर्गिस की आँखें डबडबा आई, शमा (१) जलगई परवाना (२) भुन गया, ज़ुल्फ ने कालीनाग बन कर डंस लिया, काकुल (३) के बोझ से कमर लच गई, वादये

(१) उर्दू का एक विख्यात कवि (२) अभिलाषा।

(१) बत्ती (२) पतंग (३) सिर के पीछे के बाल।

(१) (२)
गुल रंग का दौर चल पड़ा, शीरी लबों की गालियों की बौछार छूटी। आहा?

"इश्क का आलम भी क्या आलम हैं वाह"।
इनका समा सूफ़ी के आखों में बसगया॥

वह फूला नहीं समाता। उसका आह्लाद सीमा का उलंघन कर गया। प्रेम और आनन्द ही में मग्न होना तो सूफ़ी की परम आराधना है। सौंदर्य और सदाचार की मदिरा में मस्त होकर झूमना ही तो उसकी उच्चोपासना है तभी तो कवि सोज़ कहते हैं।

(३)
साक़ी ने अपने हाथ दिया भरके जाम सोज़।
(४) (५)
इस ज़िन्दगी के कैफ का टूटा खुमार आज॥

सूफ़ी मत के यम नियम।

अब हम संक्षेपतः उन यम नियमों का उल्लेख करेंगे जिनके द्वारा सूफ़ी अपने उद्देश्य की प्राप्ति समझता है। इनसे उसकी शिक्षाओं का ज्ञान भी अच्छी तरह हो जायगा।

सूफ़ी मुक्ति के लिये कोई ज़रिया नहीं ढूंढता और न वह किसी वकील, नबी, पुरोहित का कायल है। उस को केवल इतना ही आवश्यकीय है कि कुछ काल तक वह किसी गुरू वा मुर्शिद से शिक्षा दीक्षा ले, और सत्संग के अमूल्य रत्नों को बटोरे।

पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के अर्थ सूफ़ी को शनैः २ कुछ आश्रमों को तै करना पड़ता है। पहला सोपान 'शरीअत' का है यहां पर सूफ़ी को कट्टर मुसलमान समझिये। शरा की आज्ञायें और सदाचार के नियमों के नुक्ते २ को पालन करने वह [illegible]। वह [illegible] कर्मी नहीं है। उसकी परसतिश व इबादत दण्ड से बचने अथवा पारितोषक पाने की आशा से है। वह कर्म के फल की ओर टकटकी लगाये हुए है। वह शास्त्र के शाब्दिक अर्थों पर विशेष ध्यान देता है। और 'होती आई' कहने वालों के साथ एक तोता आप भी बन जाता है। इस पद को "अलख में प्रतीति" कहते हैं।

दूसरा मुकाम 'तरीकत' का है यह अवस्था तपस्या की है। एकान्त सेवी हो, सूफ़ी शास्त्रों का अध्ययन करना, मौन धारण करना इन्द्रिय निग्रह और आत्मसंयम उसके नित्य कर्मों में से हैं। मुराक़िवा अर्थात् ध्यान के अभ्यास में सूफ़ी ज़ोर देता है। इस अवस्था में उसकी उपासना फल की प्रतीक्षा नहीं करती वरन प्रेम को लक्ष्य बनाती है इस पद को 'अलख की खोज' कहते हैं।

तीसरा आश्रम 'मार्फत' अर्थात् ज्ञान का है। इसकी प्राप्ति पहुंचे हुए साधु, महात्माओं और मुर्शिदों के सत्संग से है। बाहरी कर्म धर्म को बिदा करके वह अन्तःकरण के झाड़ पोछ के पीछे पड़ता है।

"ध्यान में उस सर्व बाला के सुमरिनी छोड़दी।
साग़िरे मै का पियासा वर्ण माला हो गया"॥

सूफ़ी कहता है कि उस प्रभु के ध्यान में मैं ने इस बाहरी कर्म रूपी माला का त्याग कर दिया है। उस स्वामी की खोज में प्रेम के मद का प्याला मेरे लिये अ, आ, क. ख, अर्थात आरम्भिक शिक्षा हो गयी। अब वह शास्त्रों के शब्दों की बाल की खाल नहीं निकालता वरन उसके भावार्थ पर ही चिन्तन मनन करता है। दोनों संसार उसको अनोखा दीख पड़ता है। अब उसके एक दूसरे को दीवाने दीखते हैं। अब उसके हृदय में अहंतत्व का लेश मात्र भी नहीं रहता है। उसके मन का क्षितिज़ उत्तरोत्तर फैलता जाता है। असीम आह्लाद में डूबा हुआ सूफ़ी संसार को भूल जाता है।

---

(१) गुलाबी शराब (२) ओठ (३) प्याला (४) क्यों कर अर्थात् सुरूर (५) नशा।

वह बेखबर है महफ़िले कोनैन[1] से मिसले सराज[2]।
जो हुआ है बेखुदी के जाम[3] से सर शारे[4] इश्क़॥

इस तृतीय पद को "अलख का ज्ञान" कहते हैं। अन्तेष्टि अवस्था हक़ीकत अर्थात् निश्चय की है। "एको ब्रह्म द्वितियो नास्ती" को उसने अनुभव कर लिया है।

"चल गया दौरे चहारम मिट गया परदा दोई"।

इसको पहुंचा हुआ सिद्ध और यथार्थ बोधी कहते हैं। सूफ़ी को भगवतमूति के दर्शन हो गये। निश्चय हो गया कलमा कलाम आदि वाह्य नोमधर्म रस्मो रिवाज आदि की शृङ्खलाएं स्वतः टूक २ हो गईं।

देखते ही यार के शिकवे[5] सारे भूल गये।
बस गूंगे बन के बैठ गये कलमा कलाम भूल गये॥

प्रभु से आलिङ्गन होगया। जगजोत लिया। मुराद पालो। वस्ल हो गया। इस अन्तिम पद को अलख का दर्शन कहते हैं।

सूफ़ीमतावलम्बी सब धर्मों को समान दृष्टि से देखते हैं। उनका मत है कि सब धर्मों में कुछ न कुछ सत्य का प्रकाश है। सब धारायें समुद्र की ओर गई हैं। सूफ़ी अपनी एक अलग जमात बना कर अन्य धर्मों का विरोध नहीं करता है उसकी कसौटी में सब सत्रह आना है।

सूफ़ी कविता।

शम्सतबरेज़, सादी, निज़ामी, रूमी, हाफ़िज, जैसे बड़े बड़े पहुंचे कवियों के दावानों को भी लैला मजनू, अब्र[6] मिजगाँ[7], चाहे ज़कन मुखाले[8] सियाह, चश्मे पुरफ़न[9], ज़ुल्फ काकुल शराबोसाकी[1], हिज्रो विशाल आदि से तरबतर और कई स्थानों में अश्लील शब्दों के छींटों को देख कर बहुत विद्वान् घबड़ाये हैं। हां मूर्ख लोगों में इस का प्रभाव भी उलटा पड़ा है। दुनिया भलेही उनको कामातुर कहे पर वे तो सुरूपा सुन्दरी की छवि में भगवान की प्रतिमूर्ति के दर्शन करते हैं। उनका ईश्वर तो सौंदर्य्य मय है।

उसे अहंतत्व को जड़ पेड़ से उखाड़ना है। खुदी को मटियामेट करना है।

"गुमकर खुदी को तो तुझे हासिल कमाल हो"

वास्तव में प्रेमही एक ऐसी वस्तु है जो खुदी का नाश कर सकती है। सूफ़ी का विचार है कि सांसारिक प्रेम (इश्क मजाज़ी) भी कई दर्जे तक आत्मा को स्वार्थ से मुक्त कर सकता है और वह इस प्रेम को एक पालने व हिंडोले के समान समझता है, जो दूध पीते बच्चों के लिये तो श्रेयस्कर है परन्तु आत्मिक युवाओं के लिये व्यर्थ तथा दोष युक्त है।

सूफ़ी साहित्य के इस निराली चाल धारण करने के कई कारण हैं।

एक तो मियां बावरे तापर खाई-भांग।

एक तो फारस निवासी रसिक और जौलां तबियत के थे ही, दूसरे उनकी कविता पर उनके मनोहर देश ने भी अपनी मुहर लगा ही तो दी। वह देश जहां

शाखे गुल रक्स में हैं वजद में आई है नसीम।
कफ़ज़ना बर्ग हैं सुन बुल बुले बुस्तां को तांन॥

फूल की टहनियां इस्दाद नाच रही हैं, पवन परम आह्लाद से झोंखे खारहा है, पल्लव बाटिका के बुलबुल की तान सुनकर तालियां बजा रहे हैं" मधुर मनोहर सुगन्धित पवन कुम्हलाये हुए हृदयों को खिलाती है, कोमल गुलाब अपनी मसकती हुई चोलियों के दामनों

(१) दोनों दुनियां (२) चिराग़, एक कवि का नाम (३) प्याला (४) पूरा भरा, लबरेज, लबालब। (५) उलहने। (६) भौं० भृकुटि। (७) ठुड्डी के बीच की गहरी जगह। (८) तिल्ली। (९) जादू भरी।

(१) शराब बांटने वाला।

को चाककर सर निकालते हैं झरने की धारायें अपनी भीनी भीनी आवाज को कोयलों के कण्ठ से मिलाती हैं। कवि अपनी प्रेमिका के ध्यान में बागों और वावलियों में झूमते फिरते हैं।

आप इस रसिक को मिस्टर डेविस के शब्दों में "कामी, विषयी पुरुषों की पुकार न समझिये वल्कि यह एक शुद्ध आत्मा के उबले हुए दिलका जोश है।" आपने इस की स्पिरिट को ताड़लिया सूफ़ी मत को समझ गये।

सूफ़ी मत का असर

हजरत अलीने ३६०० मैदान लड़ाई के जीते, एक हाथ में कुरान और दूसरे हाथ में खड्ग ले कर विधर्मीयों के गलों में बलात मुहम्मदी मत ठूसा। स्पेन से चीन तक एक तहलका मचा दिया। ग़ाज़ियों की शुमार गिन्ती से बाहर हो गयी पर तासौव्वुफ़ने धीरे २ ऐसे हाथ फेरे कि इस्लाम का विलकुल ढाचाही बदल गया न वह बल पराक्रम रहा न वह जोशो खरोश। यद्यपि सूफियों का प्रेम पवित्र और महान था, किन्तु साधारण पुरुषों में उसका असर अच्छा नहीं पड़ा। परलोक में हूरो परियों की लालसा से कर्म करने वाले मुसलमानों की आखोंमें उन्होंने यही पर अशिक माशूकों के चोचले दिखला दिये। शराव के मटके और साकियें की पलटन गिनवादी। जब आशा गई तो अकर्मण्यता के पग जमे इधर कविता ने भी आग में तेल का काम किया। उसके तत्व और महत्व से अनविज्ञ साधारण पुरुष, उसमें अमन चेन ढूढ़ने लगे. अब घर २ में कुरान का पाठ होनेके बदलें भली बुरी सब प्रकार की कविता पढ़ी जाने लगीं। मुनाज़रह (शास्त्रार्थ) के स्थान मुशायरा (कवियें की सभा) होने लगी सतसंग और सभा के वदले गम्मेंद और मैफिलें होने लगीं। ज्यारतों में वेश्याएं मंगलाचरण के लिये आवश्यक समझी गई। सारांश यह है कि सधारण मुसलमानों में जो कुछ भी पहिला जीवन और धर्म पिपासा थी मटियामेट होगई। सूफ़ी सब मतों को अच्छा समझता है। इस विचार ने मुसलमानों के हृदय में कलमा पढ़ाने की प्रज्वलित अग्नि को बुझा दिया और मन्द कर दिया। काज़ी मुल्लावों की व्यवस्थायें पाकिटो के हवाले हुई। उमर खय्याम जैसे सूफी साधुओंके वाक्य 'मन्दिर (बुतखाना) और कावा दानों प्रभुकी आराधना के स्थान है गिर्जे की घन्टीं आत्मा का भगवान की ओर खीचती है" प्रमाणित हुए। तङ्ग दिल मुसलमान उदारतो हुए किन्तु मुर्दा दिली उन पर छा गई राज्य विस्तार तो दूर रहा उन्हें घर में ही मार बचानी दुषकर होने लगी रहे सहे पर भी हाथ सफा होने लगे, उल्टे लेने के देने पड़े।

सूफ़ियों पर अत्याचार

वेदान्त वखतर पहिने हुए सूफ़ी से इस्लाम भिड़ पड़ा। मौक़े २ उसने इसे ख़ूब आड़े हाथ लिया। इसीसे सूफ़ियेंको गिन २ कर पांव रखने पड़ते थे। सब आगा पिछा सोच लेखनी उठाते थे। टुक चाल चूके दोहत्थियां खाईं जिन्होने बचबचा के लिखा बलो अल्लाह कहलाये जिनके दिलका बुखार उमड़ आया काफिर मरदूद बने। प्रेमको बाढ़ को कोई नहीं रोक सकता, अंगुली से सूर्य नहीं छिपता। सच कहा है

क़दम दरेग़ मदारज़ ज़नाज़ये हाफ़िज़।
कि गर्चे ग़र्क़ गुनाहस्त मोर वद बवहिश्त॥

आशय यह है कि हाफिज़ की अर्थी का उठाने से इंकार मत कर यदि वह पाप में डूबा हुआ है तथापि स्वर्ग को जावेगा। बेचारा मनसूर हल्लाज़ प्रेम रस में भिगा टपकते आंसू "अहं ब्रह्मस्मि २" (अनलहक) की ध्वनि से गली कूचों को गुंजाने लगा। कहां ला इलाहे इल्लिल्ला, कहां अनलहक! इस कारण से वह मरदूद हुआ सूली पर कसा गया।

किया दावा अनलहक़का हुआ सरदार आलम का।
अगर सूली पै न चढ़ता तो वह मनसूर क्यों होता॥

नहीं कर सका था ! यह सामान्य मेघखण्ड ऐसे तेजस्वी आर्यधर्म के उच्छेद का हेतु होगा, इसका किसी को स्वप्न में भी सन्देह नहीं हुआ था। देखते २ इस तुच्छ मेघ ने नीलाम्बर पहन कर भयङ्कर रूप धारण किया, और प्रचण्ड वेग से भीषण गर्जन तर्जन के साथ चारो दिशा में अपना क्षमता फैलाई। अभी तक जो आर्य-सनातन धर्म विघ्नों का नाश करता हुआ भारत में अपनी विजय वैजयन्ती उड़ा रहा था, इस प्रचण्ड मेघ के प्रबल वेग से वह पताका कम्पित हाने लगी। उस समय कितने ही धर्म वीरों ने सनातन धर्म पताका की मर्यादा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए बाहुबल से इस मेघ को दूर करने का उद्योग किया, धर्म में सहानुभूति के कारण प्रबल वायु बही, किन्तु इस से मेघ का एक अंश भी दूर नहीं हुआ, प्रत्युत एक के स्थान में अनेक काले, उजले, लाल मेघों ने आकर भारत को अन्धकाराच्छन्न कर दिया ! सुतराम् जिस दिन से इस पवित्र प्रकाशमान भारताकाश में विदेशी बादलों का आविर्भाव हुआ, उसी दिन से परम पवित्र सनातन धर्म और भारतीय विद्या, बल, लुप्तप्राय हो रहा है और उसी दिन से हिन्दू धर्म दिन २ क्षीण हो रहा है, भारतीय साहित्य, विज्ञान, मटियामेट हो रहा है, बाहुबल विलुप्त हो रहा है धन, रत्न क्रमशः निकला जा रहा है, आर्यों का प्राण प्रिय भारत दिन २ दीन हीन दशा को पहुंच रहा है ! जो कुछ हो, अब भी समय है, यदि अभी से भी सावधान हुआ जाय, तो भी इस बूढ़े भारत की बहुत कुछ उन्नति हो सकती है, आर्यों के धर्मबल और विद्याबल का अवश्यमेव अभ्युदय हो सकता है।

प्यारे आर्यसन्तानों ! आओ, उन धर्म और अविद्या का नाश कर धर्म और विद्या की उन्नति करें। सब लोग मिल कर अपनी अपनी अवस्था की समुन्नति करें। आपस में सहानुभूति और प्रीति को बढ़ावें। अपने और अपने भारत के हित के लिए अपना २ जीवन उत्सर्ग करें। एक बार भारत भूमि को अपनी जननी जन्मभूमि समझ कर प्रेम प्रगट करें। इस अधः पतित भारत के लिए हार्दिक अनुताप करें। आज भारत के नगर २ ग्राम २ में जैसा अधर्म का प्रबल स्रोत बह रहा है, अविद्यान्धकार फैल रहा है, पाप पुञ्ज का घृणित दृश्य बढ़ रहा है, इन सब को देख कर भी हम लोग नहीं देख रहे हैं ! एक बार विचार कर देखें हम लोग किस पुण्यभूमि में पैदा हुए हैं ? किस पवित्र कुल में उत्पन्न हुए हैं ? हाय ! विचारने ही से हृदय स्तम्भित चित्त चञ्चल, और शरीर कम्पित हो उठता है ! जिस समय हृदय में यह भाव उदित होता है कि हम लोग क्या थे, क्या हुए, और क्या कर रहे हैं ? उसी समय हृदय निराशा के भयङ्कर सिन्धु में समा जाता है मन उत्साह हीन हो जाता है, शरीर निर्बल हो पड़ता है जब देखा जाता है कि मद्य से व्यभिचार अनाचार और अत्याचार से देश उच्छिन्न हो रहा है, अविद्या के कारण भारत रसातल को जा रहा है, तब यह आशा नहीं होती कि यह अधः पतित देश फिर भी उन्नति की सीढ़ी पर चढ़ सकेगा, और आर्यसन्तान फिर पूर्वावस्था को पहुंच सकेंगे, और अपने प्राण प्रिय भारत का अभ्युदय कर सकेंगे। हम अकर्मण्य-आर्यों को धिक्कार है हमारे जीवन को धिक्कार है, हाय ! हम अकर्मण्यों का भारत में जन्म क्यों हुआ ? यदि हम लोगों का भारत में जन्म न होता, तो हम लोगों के द्वारा जननी जन्म भूमि के दुर्भाग्य का एक शेष न होता ! क्यों हम लोग पवित्र चरित्र, विद्या विनय सम्पन्न आर्यों के सन्तान हैं ? क्या हम लोगों की प्रत्येक शिराओं में प्रत्येक धमनियों में आर्यों के पवित्र रक्त की धारा बह रही है ? यदि बह रही है तो हम लोग धर्म से विमुख, विद्या से बहिर्मुख, सुखाभास में मग्न, कुकर्मों में संलग्न, आलसी, भीरु और स्वदेश विमुख क्यों हो रहे हैं ? यदि हम हिन्दू लोग

स्वधर्म और स्वदेश की उन्नति के लिए कमर कस कर खड़े हो जाँय, तो अब भी यह दीन देश समुन्नत समृद्धिशाली, हो सक्ता है।

प्यारे हिन्दू भाइयो! यदि आप लोग स्वदेश का अभ्युदय चाहते हैं, अपने भारतवर्ष के कल्याण की कामना करते हैं, पूर्व भारत का दृश्य देखना चाहते हैं, इस का पुनरुद्धार चाहते हैं, अपने देश बन्धुओं को धर्मचेता उदार और विद्या सम्पन्न बनाना चाहते हैं, तो ईर्ष्या द्वेष छोड़ कर निःस्वार्थ भाव से स्वदेश की सेवा करो, आर्य धर्म की उन्नति करो, दृढ़ अध्यवसाय दिखाओ, मनोरथ, सफल होगा।

हम लोग घर में अपना कर्तव्य पालन नहीं करते, पीड़ित पड़ोसी की ओर दृष्टि नहीं देते, देशभाइयों के सुख के लिए उनके दुःखों के दूर करने के लिए, अपने सुख सम्भोग को तुच्छ नहीं समझते स्वार्थ को कुछ भी परित्याग करना नहीं चाहते। नाम मात्र के हिन्दू होने से काम नहीं चलेगा, जिसका जीवन धर्ममय और सत्कार्य मय है, जिसके जीवन में न्याय परायणता परोपकार सत्यनिष्ठा, आत्म संयम, और स्वदेश के हित के लिए आत्मोत्सर्ग है, वही सच्चा धार्मिक है, उसी की चरणरज को भारतवासी अपने मस्तक में लगावेंगे, किन्तु बड़े दुःख का विषय है—बड़े लज्जा की बात है कि ऐसे देशभक्त-धर्मात्मा देश में कितने हैं? ऐसे कितने देशभक्त हैं जिनका जीवन स्वदेश के लिए उत्सर्ग हुआ है, जो दीन हीन भाइयों को अपने सहोदर भाई की तरह मानते हैं, और अपने धन, विद्या और शरीर से उनके दुःखों के दूर करने का उद्योग करते हैं? भाइयो! यदि स्वदेश को धर्म बल और विद्या से अलंकृत करना चाहते हो, स्वदेशभक्त होना चाहते हो तो सदाचार सद्व्यवहार और सत्यनिष्ठा में दीक्षित हो। इस दुःखमय समय में भारत में सच्चे धर्म का कौन प्रचार करेगा,? विद्यारूपी सूर्य का प्रकाश कर अविद्या और कुनीतिरूपी अन्धकार को कौन दूर करेगा? सुनीति, प्रीति, पवित्रता और मान मर्यादा को कौन स्थापित करेगा? उत्तर मिलेगा, एक धार्मिक देशभक्त। किन्तु जब तक हम लोग अपनी और समाज की नीति और चरित्र विषयक उन्नति न करेंगे, जब तक धर्म के लिए सत्य के लिए और स्वदेश के लिए स्वार्थ-त्याग न करेंगे, विद्या और विज्ञान की उन्नति के लिए धन दान न करेंगे, "उद्धरेदात्मनात्मानम" को मूलमन्त्र न बनावेंगे, तब तक अपनी और अपने देश की उन्नति की आशा करना व्यर्थ है। इसीसे विनीतभाव से प्रार्थना करते हैं भाइयो! यदि आप लोग अपनी और अपने प्यारे देश की मङ्गलकामना चाहते हैं तो धर्मबल और विद्याबल की वृद्धि करो, हिन्दूमहासभा में योग देकर उसे समुन्नत और बलिष्ट बनाओ, हिन्दू विश्वविद्यालय की तन मन धन से प्रतिष्ठा करो, विद्या वृद्धि के साथ २ धर्म समाज और देश की अवश्य उन्नति होगी, इसीसे फिर यह प्रार्थना करते हैं-प्रेम के साथ हिन्दू महासभा और हिन्दू विश्वविद्यालय की तन मन धन से सहायता करो, एक दिन अवश्य आर्य जाति की विजय वैजयन्ती भारताकाश में फहराएगी और दीन भारत स्वर्ण भारत होगा।

आपका
एक भाई (फ्रान्स प्रवासी)

राम वन-गमन।

[लेखक—लाला भगवान दीन।]

(१)

देखो तो इस चित्र पटल पर
क्या क्या भाव झलकते हैं।
ईर्षा, कपट, भक्ति, श्रद्धा के
प्याले भरे छलकते हैं॥
अबलाओं का प्रबल पराक्रम,
लख के हृदय दलकते हैं।
चित्र-भाव भासित करने को
कवि के वचन ललकते हैं॥

(२)

चित्रकार ने निपुण तूलिका
द्वारा जो दर्शाया है ।
उसे देख कर मेरे मन में
यही विचार समाया है ॥
मर्य्यादा पुरुषोत्तम जी की
बड़ी विलक्षण माया है ।
समझ सकै ऐसा नर कोई
विधि ने नहीं बनाया है ॥

(३)

युवती-प्रीति, प्रतिज्ञा-पालन,
पुत्र-प्रेम चितधारे ये ।
नृप दशरथ चैतन्य रहित हैं
ज्यों त्रिदोष के मारे ये ॥
त्रिमुहानी में पड़ कर देखो
कैसे लगैं किनारे ये ।
देखो नृप दशरथ कहाय अब
हैं त्रिचक्र रथ वारे ये ॥

(४)

हठ समेत ईर्षा की प्रतिमा
लखो केकयी रानी ये ।
पति प्राणा कहाय करती है
अपनी मनमानी ही ये ॥
रामचन्द्र को सुना सुना के
निशि की सकल कहानी ये ।
मुनि-पट दे दे छुड़ा रही हैं
घर का दाना पानी ये ॥

(५)

वह देखो सुदूर कोने में
खड़ा मंथरा दासी है ।
जिसके कपट-पूर्ण वचनों से
फैली अवध उदासी है ॥
कपट कुटिलता कुटुम्ब-कलह की
यह दासी जड़ खासी है ।
रघुकुल कमल विपिन में आई
मानो सत्यानासी है ॥

(६)

वे देखो सुमन्त मन्त्रीवर
जो देते थे मन्त्र बड़े ।
रानी की करतूत देखते
किं कर्तव्य-विमूढ़ खड़े ॥
नये निपुण नैतिक विचार
सब दिल ही में रह गये अड़े ।
रोक न सके प्रबल रानी के
नोखे निठुर विचार कड़े ॥

(७)

जननी जनक भक्ति के सागर
देखो श्री रघुराई ये ।
मातु-प्रदत्त धारि मुनि-पटतन
करते उनकी भाई ये ॥
पिता वचन पालन को शिक्षा
जग को रहे सिखाई ये ।
भाई के हित स्वार्थ त्याग की
सीमा रहे दिखाई ये ॥

(८)

लज्जा युक्त नमित मुख देखो
खड़ी जनक की जाई ये ।
पति के संग बिपिन जाने हित
देती प्रेम-दोहाई ये ॥
पतिप्राणा पत्नी समूह को
शिक्षा रहीं सिखाई ये ।
पति के हित सुख भोग त्याग की
सीमा रहीं लखाई ये ॥

(९)

एक ओर चुपचाप खड़े हैं
देखो लक्ष्मण भाई ये ।
भ्रातृ-भक्ति के महावेग में
त्यागे सब चतुराई ये ॥
भाई प्रति भाई का कर्तब
जग को रहे सिखाई ये ।
भाई के दुर्धर्ष विपति की
ढेरी रहे बँटाई ये ॥

(१०)

(चित्र दर्शनोत्थित भाव)

नृप दशरथ की दशा देख कर
यह विचार मन आता है।
युवती-प्रेम-फन्द में फँस कर
नर विमूढ़ हो जाता है॥
वृद्ध बयस में विषय बासना
जो नर अधिक बढ़ाता है।
चक्रवर्ति राजा भी होकर
वह महान दुःख पाता है॥

(११)

रानी की करतूत सोच कर
लेता हूं मैं यह उपदेश।
नीच जनों को सम्मति में पड़
सहना पड़ता कष्ट विशेष॥
अपयश का चढ़ता सिर बोझा
तन भी होता महा कुबेश।
इच्छित फल मिलना दुर्लभ है
रहता पश्चात्ताप हमेश॥

(१२)

चेरी का कर्तव्य समझ कर
आता मन में यही बिचार।
जिसके जैसे मनोभाव हैं
वैसा तन देता कर्तार॥
कपट कला कुशला दासी का
कटि पँ कूबर कुंभाकार।
बजा बजा हर ओर डुग डुगी
कहता यही पुकार पुकार॥

(१३)

काने, कंजे, कैंचे, कुबरे
कुटिल कुचाली होते हैं।
शान्तिपूर्ण चित्तों में भी
बीज कलह का बोते हैं॥
तिस पर बामा पुनि चेरी के
बचन कपट के सोते हैं।
बड़े विचारवान भी उनमें
पड़ कर जीवन खोते हैं॥

(१४)

बड़े विवेकी ने नारी का
'बामा' नाम रखाया है।
बचे रहो इनकी बातों से
मानों यही सिखाया है॥
'अबला' नामकरण कर्ता ने
भारी धोखा खाया है।
अथवा नारिसमाज ओर से
रिशवत में कुछ पाया है॥

(१५)

रघुकुलमणि, विद्वान, विवेकी
दृढ़प्रतिज्ञ अतिशय गुणवान।
नीति निपुण मंत्रीगण सेवित,
देश काल गति परम सुजान॥
शब्द सुनत ही वेध गिराते
जिनके निपुण प्रखरतर बान।
देवमित्र, बरबीर, शत्रुजित,
जिनके पुत्र हुए भगवान॥

(१६)

ऐसे नृप दशरथ को देखो
चेरी एक छकाती है।
राजा को सुरलोक भेज कर
रानी रांड़ बनाती है॥
मंत्रीगण के निपुण मंत्र को
झट चुटकियों उड़ाती है।
रंग भंग कर राज कुंवर को
क्षण में बिपिन पठाती है॥

(१७)

ऐसे प्रबल कर्म करने में
जिसका बस चल जाता है।
उसका 'अबला' नाम रखाना
प्रबल दंभ दर्शाता है॥
निज महत्व आकांक्षी सारा
नर समाज दिखलाता है।
कुफल भोग कर भी नारी का
'अबला' नाम बताता है॥
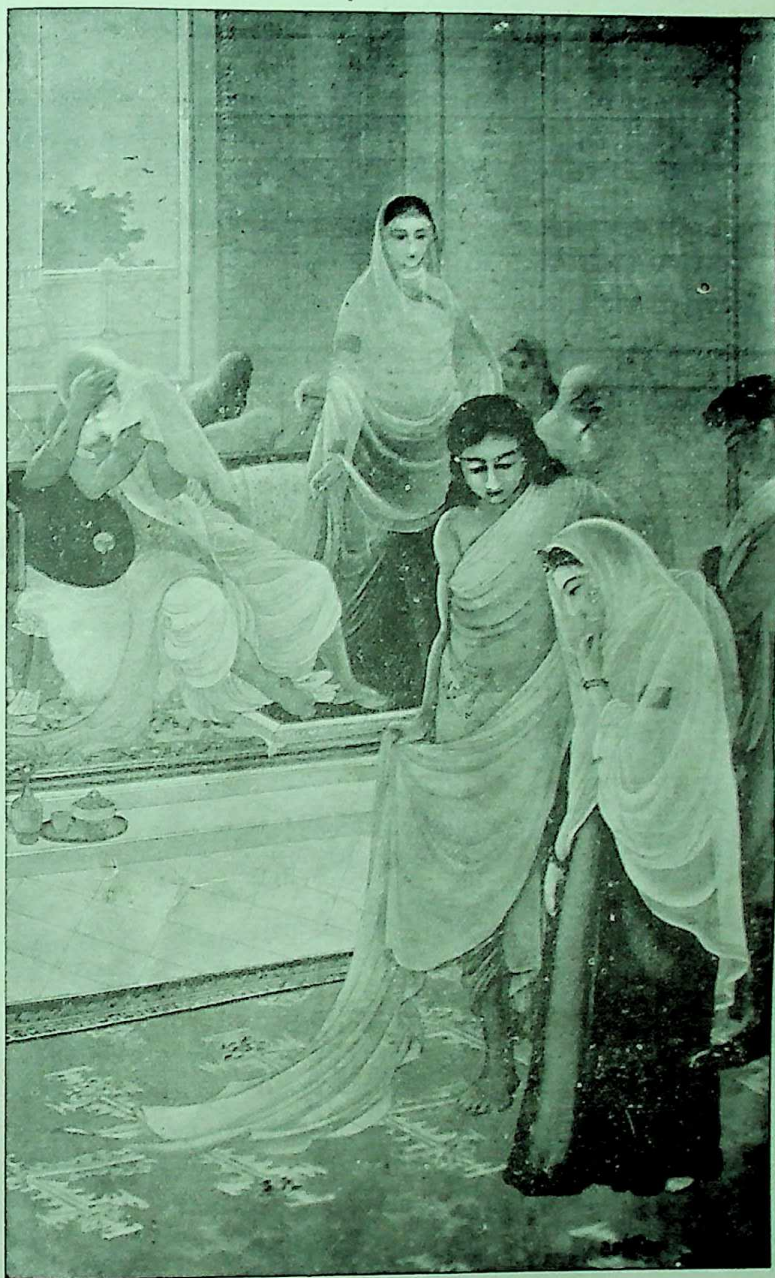
कैकेयी प्रदत्त मुनि पट धर राम विपिन को जाते हैं।
वनवासोचित वस्त्र पहिनलो सीता को समझाते हैं।

डा० कुमार स्वामी के अनुग्रह से प्राप्त।

(१८)

मंत्री प्रवर सुमंत दशा लख
मन में होता है अनुमान।
नारि-दास स्वामी का सेवक
बुद्धि खोय होता हैरान॥
राजा रानी के झगड़े में
पड़ना है देना निज प्रान।
ऐसे समय चुप्पही रहना
भला समझते हैं मतिमान॥

(१९)

इस चरित्र से रामचन्द्र ने
जो कुछ भाव लखाया है।
माता-पिता-भक्त पुत्रों को
जो उपदेश सिखाया है॥
वह उपदेश जगत में जिसको
अभ्यन्तर से भाया है।
सज्जन लोग शपथ कर कहते
धन्य उसी की काया है॥

(२०)

जनकलली का भाव समझ कर
चित्त न मोद समाता है।
पातिव्रत लज्जा विनम्रता
का सागर लहराता है॥
पति-सेवा दर्शन बिन इनको
राज्य भोग नहिं भाता है।
भूषण वसन भवन पुर परिजन
सब समाज दुख दाता है॥

(२१)

फर्श मखमली छोड़ जिन्होंने
भू पर रक्खा पैर नहीं।
नभमंडल के तारों ने की
जिनके मुख की सैर नहीं॥
किया जिन्होंने जीव मात्र से
कभी भूल कर बैर नहीं।
वे सीता पति संग फिरेंगी
बिजन बनों में जहीं तहीं॥

(२२)

सुन्दर नव रसाल कानन में
जो कोकिला बिचरती है।
अपने मृदुल मधुर भाषण से
जन मन में सुख भरती है॥
नवल मंजरी जनित मधुर मधु
जो आस्वादन करती है।
वही आज देखो स्वधर्म हित
बन करील पग धरती है॥

(२३)

सुमधुर जल पूरित तड़ाग में
जो हंसिनी विहरती है।
जलजांकुर मुक्ता सुभोग से
जो प्रमोद मन भरती है॥
निज विवेक से छीर नीर का
प्रथक्करण नित करती है।
वही आज देखो स्वधर्म हित
क्षार सिंधु पग धरती है॥

(२४)

नव पुष्पित गुलाब कानन में
जो बुलबुल सुख पाती है।
ऋतु बसंत अनुकूल जान कर
सुमधुर तान उड़ाती है॥
रक्षक बाग़बान का दिल जो
चहक चहक लहराती है।
वही आज देखो स्वधर्म हित
चिड़ीमार घर जाती है॥

(२५)

जो तूती हक़ तू हक़ तू है
मन हर गान सुनाती है।
नवल पल्लवित लता-भवन में
बैठी तान उड़ाती है॥
रुचिकर अन्न मधुर शीतल जल
जी भर पीती खाती है।
वही आज देखो स्वधर्म हित
ब्याधा के घर जाती है॥

(२६)

लखन लाल के मनो भाव को
लिख कर व्यक्त करे भरपूर ।
ऐसी काव्य शक्ति इस जग में
कवि समूह से है अति दूर ॥
ऐसी महाधृष्टता करना
चाहै यदि कोई कवि कूर ।
सज्जन लोग समझ ही लें
उसकी मति में पड़ा फ़ितूर ॥

(२७)

लखन लाल के भावाङ्कण में
कागद ही घट जाता है ।
लोह काष्ठमय कूर क़लम का
मुखड़ा ही फट जाता है ॥
मसि पूरण दवात का हियरा
खुश्की से पट जाता है ।
लेखक के अंगुष्ठ अँगुलियें
का समूह सट जाता है ॥

(२८)

जननी जनक सहोदर भाई
रमणी रत्न बिबाही बाल ।
जेष्ठ बिमात्र बन्धु के कारण
तज देना है महा कराल ॥
सो कराल व्रत धारणकर्ता
हे वर वीर ! सुमित्रालाल ।
अपनी ही सी भ्रातृ-भक्ति दे
हम सब को भी करो निहाल ॥

लन्दनमें होने वाली सर्व-जातीय महासभा ।

संसार युद्धक्षेत्र है। इसक्षेत्रमें अनादिकालसे युद्ध होता आया है, यह वर्त्तमानमें हो रहा है और भविष्य में भी होगा । सृष्टि की रचना और स्थिति तत्वों के चढ़ा उतार पर अवलम्बित है। जब तक प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियों और मात्राओं में क्षोभ नहीं होता सृष्टि में कोई नया पदार्थ उत्पन्न नहीं हो सकता । इस क्षोभ के इस युद्ध के अंत ही को प्रकृति की साम्यावस्था कहते हैं और इस साम्यावस्था का नाम ही प्रलयावस्था है। अतः सृष्टि की स्थिति के लिये यह सरल नियम है कि इस में युद्ध होता रहे । अणु और परिमाण में, अग्नि और जल में, नभमंडल के ग्रह और सौर उपग्रहों में, प्रकाश और अन्धकार में, समुद्रों की लहरों में, प्रत्येक जड पदार्थ में, परस्पर युद्ध हो रहा है। हम जड़ जगत में हो नहीं किन्तु जीव जगत् में भी यही बात पाते हैं। एक कीट दूसरे कीट को निगलकर जीता है। पक्षी भी आपुस में लड़ते भिड़ते और झगड़ते रहते हैं और पशु वर्ग की भी यही अवस्था है; जब तक इन प्राणधारियों को अपने जीने और रहने की सामग्री स्वभावतः मिलती रहती है या मनुष्य उनके पालन पोषण का प्रबन्ध करते रहते हैं तब तक प्रगट में हमें कोई युद्ध होता नहीं दिखाई देता परन्तु यदि दार्शनिक दृष्टि से देखा जावे तो यह भली प्रकार विदित हो जावेगा कि सृष्टि में प्रत्येक वस्तु की स्थिति उसकी योग्यता शक्ति और देशकाल की अवस्था पर निर्भर है। जो अधिकतर योग्य और शक्तिवान् होंगे, या जिन के अनुकूल देश और काल होंगे वही सृष्टि के प्राकृतिक युद्ध में जीवित रह सकते हैं।

इन साधारण प्राणधारियों और जड़ पदार्थों के अतिरिक्त, युद्ध और विजय के इस नियम को हम भाषाओं, व्यवसायों, धर्मों और रस्म रेवाजों की जिन्दगी और मौत में भी चरितार्थ होते देखते हैं । मनुष्य समाज में भी जड़ जगत् के नियम अपना काम करते हैं; और मनुष्यों की उत्पत्ति स्थिति और नाश में भी वे सामान्यतया प्रभाव डालते हैं। परन्तु मनुष्य में कुछ स्वाभाविक अधिकता और भिन्नता है इसी कारण मनुष्यों के व्यक्तिगत और समष्टिगत दशाओं में मनुष्य स्वयम् भी बहुत कुछ परिवर्तन कर सकते हैं।

मनुष्य ज्ञान और बुद्धि, अनुभव और विचार, दूरदर्शिता और परमार्थता के द्वारा ऐसे कृत्रिम नियम और उपाय निकाल सकता है जो प्रकृति में स्वयम् विद्यमान नहीं हैं।

दो तीन सौ वर्ष पूर्व किसे मालूम था कि रेल तार और जहाज़ पृथ्वी को इतना छोटा कर देंगे कि मिनटों और दिनों में घर बैठे हजारों कोस की खबरें आ जाया करेंगी। कौन कह सकता था कि अंगरेज़ जाति दश हजार मील से आकर भारतवर्ष में शासन करेगी और कौन अब कह सकता है कि दो शताब्दि के पश्चात् दुनियां की आयन्दा हालत क्या होगी? हर ज़माने की आवश्यकताएं भिन्न हुआ करती हैं। समय के साथ साथ लोगों की कठिनाइयां और सुविधाएं बदलती रहती हैं सभ्य जातियों के सामने जो प्रश्न आज से सौ वर्ष पूर्व उपस्थित थे, उन में बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका है। कई प्रश्न हल हो गये और कई अभी बाकी हैं। जहां एक ओर पुरानी कठनाईयां दूर होती जाती हैं वहां नई कठनाईयां उत्पन्न भी हो रही हैं। नवीन प्रश्न और नवीन शंकाओं के लिये नवीन उत्तर और नवीन समाधानों की ज़रूरत होती है। जो लोग इन को पुराने साधनों द्वारा दूर करना चाहते हैं उनका ऐसा करना साहस मात्र है। आज कल सभ्य जगत् में विशेष कर पाश्चात्य देशों में बड़ा असंतोष फैला हुआ है। सब जातियां अपने अपने फेर में पड़ी हैं। चारों तरफ प्रतिद्वन्द्वता की अग्नि प्रज्वलित है। प्रत्येक देश और जाति के सामने अपनी खास कठिनाईयां ता हैं हीं, परन्तु कुछ ऐसी भी हैं जो सब को परेशान कर रही हैं। यदि इङ्गलैण्ड को जरमनी का भय है तो जरमनी को दूसरे का है। एक दूसरे का भय सब को समाया हुआ है। आपुस की मुड़भेड़ टालने के लिये नित्य संधियां होती हैं किन्तु करोड़ों रुपयों का फौजी खर्च बढ़ता ही चला जाता है। नये नये ड्रेडनाट निर्माण होते ही रहते हैं। इस से तो यह विदित होता है कि यह संधियां और जातिय-मैत्री की उद्घोषणायें आडम्बर मात्र हैं। तुर्की और फारस सम्बन्धी प्रश्न यूरुप की प्रधान शक्तियों में कभी कभी हलचल मचा देते हैं। काले और गोरों का सवाल अमेरिका और आफ्रिका में ज़ोर पकड़ता जाता है, मालिकों और श्रमजीवियों को एक दूसरे का विश्वास नहीं है। जहां देखो वहां हड़ताल होती रहती हैं। हर जगह असंतोष, क्षोभ, अशान्ति और द्वेष का राज्य है। राज्य राज्य और जाति जाति के सम्बन्ध शोचनीय हैं।

परन्तु प्रश्न यह है कि इस शोचनीय और असन्तोषजनक अवस्था का सुधार कैसे किया जावे, इसके दूर करने के उपाय कैसे निकाले जावें। इसी प्रश्न का उत्तर देने के लिये-इस पर ही विचार और मीमांसा करने के लिये कुछ मनुष्यमात्र के शुभचिन्तक सज्जन महानुभावों के पुरुषार्थ से आगामी जुलाई के अन्त में लन्दन शहर में सार्वभौम सर्व-जातीय महासभा का प्रथम अधिवेशन होगा, जिसमें विद्वान प्रोफेसर, डाक्टर, विशप, राजनीतिज्ञ, कानूनदां, समाज-शास्त्री मस्तिष्क तत्व-वेत्ता, शासन-नीति-विशारद, सम्पत्ति-शास्त्री, सन्धिसभा-प्रणेता, मन्त्री, महामन्त्री, पारलीमेण्ट के सदस्य, मनोविज्ञानी, चीनी, रूसी, जापानी, जरमन, फ्रेंच, अङ्गरेज़, हिन्दोस्तानी, एमेरिका, मिश्री, फारसी, तुरकी, सब देशों जातियों और विधानों के प्रतिनिधि एकत्र होकर वर्तमान समय के प्रश्नों को नवीन रीति से सोचें और विचारेंगे।

विषय बड़े गंभीर और सूक्ष्म हैं और इसी लिये इनके लेखक भी संसार के चुने हुए विद्वान हैं।

पाठकों को यह जान करके खुशी होगी कि माननीय मिस्टर गोखले और कूंचबिहार कालिज के प्रोफेसर बृजेन्द्रनाथ सील से भी इस महा-सभा के लिये लेख लिखवाये गये हैं। विचारणीय लेख समय की न्यूनता से सभा में पढ़े न जा सकेंगे।

सब लेख, पुस्तकाकार छपवा कर, पहले से नियत वक्ताओं के पास भेज दिये जाएंगे, जिसमें वे उनपर मनन करके अपने विचारों को सभा के अधिवेशन में प्रगट कर सकें। इन लेखों पर धुरंधर पंडितों और विद्वानों का जो शास्त्रार्थ होगा उसकी गंभीरता, विद्वता, कुशलता और शान्तता को विद्यानुरागी सज्जन ही अनुभव कर सकते हैं।

विषयों के मुख्य विभाग निम्नलिखित होंगे।

(१) जाति और राष्ट्र का निरूपण, (२) उन्नति के सामान्य नियम और प्रतिवेध, (३) सभ्यताओं में शान्तिपूर्ण संसर्ग, (४) सब जातियों से समान सम्बन्ध रखने वाले सम्पत्ति-शास्त्र-विषयक सिद्धान्त, (५) वर्तमान सभ्य संसार की Interracial प्रश्नों के प्रति क्या प्रवृत्ति है?, (६) संसार की सब जातियों में परस्पर मैत्री किस प्रकार बढ़ाई जा सकती है।

प्रथम विभाग के अन्तर्गत निम्न लिखित चार विषय होंगे।

(१) जाति, अन्तरजाति और राष्ट्र की परिभाषा।
(२) मानवी स्वभाव और मानुष शरीर-रचना की दृष्टि से जाति की मीमांसा।
(३) समाज-शास्त्र की रीति से जाति की मीमांसा।
(४) जाति-समानता।

द्वितीय विभाग के अन्तर्गत निम्नलिखित विषय होंगे।

(१) स्वराज्य और मुल्की (Civil) ज़िम्मेवारी।
(२) जाति के संगठन या विगठन में भाषा का क्या प्रभाव पड़ता है।
(४) जाति के संगठन या विगठन में धर्म (विशेष मत या सम्प्रदायों) का क्या प्रभाव पड़ता है।
(४) स्त्रियों की वर्तमान अवस्था।
(५) भूगोलिक, आर्थिक और राजनैतिक अवस्था का जाति पर प्रभाव।
(६) रस्म रिवाज और आचार विचार के भेद जातीय अवस्था के शीघ्र परिवर्तन के कहां तक प्रतिरोधक होते हैं।
(७) विविध जातियों की वर्तमान मानसिक अवस्था और उनके शिक्षण और संस्करण के लिये सुविधाएं और साधन।
(८) शारीरिक रूप रंग और आकृति की अस्थिरता।
(९) सब जातियों में परस्पर विवाह।
(१०) पारलीमेन्टरी शासन की ओर प्रवृत्ति।
(११) उपनिवेशों और आधीन देशों की शासन-नीति।

तीसरे विभाग में निम्नलिखित विषय होंगे।

वाणिज्य, बैंक, बारबरदारी के साधन, साइंस कला और साहित्य, राष्ट्रीय सम्मेलन और प्रदर्शनी, सन्धियां और पञ्चायत, धन-विनियोग और ऋण, मज़दूरी और परदेशवास।

चतुर्थ विभाग में निम्नलिखित मुख्य विषय होंगे।

(१) सर्व-जातीय नीति-शास्त्र के मुख्य सिद्धान्त (२) यहूदी लोग (३) मिशन (४) परतंत्र छोटी छोटी जातियों के साथ कैसा बर्ताव होना चाहिये (४) अफीम और मादक द्रव्यों का व्यापार (६) हबशियों की आज कल दुनियां में क्या परस्थिति है (७) अमेरिका में हबशियों की अवस्था।

पांचवां विभाग बड़े महत्व का है, क्योंकि उसमें ऐसे लेख हैं जिसमें संसार की जातियों में विरोध और द्वेष के कम करने और मैत्रीभाव के बढ़ाने के उपाय और साधन बतलाए जायंगे।

(१) सर्व-राष्ट्रीय पंचायत (२) हेग शान्ति-सभा का विस्तार (३) संसार की सब जातियों में मैत्री बढ़ाने में यन्त्रालय की शक्ति (४) सर्व-जातीय भाषा (५) विद्यालयों में सर्व-जातीय नीति शास्त्र की शिक्षा दिये जाने की सम्भावना (६) एक ऐसी संस्था स्थापित करना जो समस्त जातियों में पारस्परिक शुभ-चिन्तना को उत्तेजित करे।

इन विषयों की नामावली को पढ़ कर ऐसा कौन मनुष्य और जातिहितैषी होगा जिसे

आनन्द न हो। संसार की बड़ी बड़ी संस्थाओं और राष्ट्रीय आन्दोलनों का इतिहास हमें बतलाता है कि प्रथम उक्त संस्थाओं और आन्दोलनों का केवल विचार मात्र किसी महान आत्मा के विशाल हृदय में आया था और बाद में क्रमशः उस बीज रूप काल्पनिक सूक्ष्म विचार ने एक बृहत् इन्द्रियगोचर स्थूल रूप धारण कर लिया। विकाश-सिद्धान्त के अनुयायी समाज शास्त्र के ज्ञाता मानव-जीवन की अव्यक्त शक्तियों के अन्वेषक और वर्तमान सभ्य जगत् की प्रवृत्तियों और आवश्यकताओं के निरीक्षकगण ही इस सर्व-जातीय महासभा की उपयोगिता और सफलता के रहस्य को यथार्थ रूप से समझ सकते हैं। सृष्टि-विकाश और समाज-विकाश के इतिहास में सहस्रों वर्ष शून्य के बराबर होते हैं अतः उक्त महासभा का शीघ्र ही कोई विशेष परिणाम न निकले तो कोई निराशा और आश्चर्य की बात न होगी।

जुलाई में ही राजराजेश्वर महाराज जार्ज का राज्याभिषेक भी होगा और इस लिये इस महासभा में देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर के विद्वान अधिक संख्या में सम्मिलित हो सकेंगे। महासभा के अधिवेशन में सर्वसाधारण के लिये कोई रोकटोक न होगी। इस के मेम्बर होने की फीस एक गिनी है। मेम्बरों को रिपोर्ट मुफ़्त में भेजी जावेगी। इस मौक़े पर एक प्रदर्शिनी भी होगी जिस में ऐसे नकशे, तसवीरें फोटो और किताबें दिखाई जाएंगी जिनके निरीक्षण द्वारा दर्शकगण मनुष्य की प्रकृति, आकृति और रंगरूप आदि का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

"प्रकाश"

भाग्यवती।

[लेखक—श्रीयुत जोगेन्द्रपाल सिंह।]

सुन्दरसिंह एक दीन पर सज्जन किसान हैं। ग्रामीण होते भी वे विद्यानुरागी हैं, और खेती से जो समय बचता है उसे पढ़ने पढ़ाने में ही बिताते हैं। गांव के भोलेभाले मनुष्य उन्हें देख कर आश्चर्य करते हैं कि एक छोटे से शिर में इतनी विद्या कैसे समा सकती है। दीन होने पर भी वे बड़े उदार हैं। कोई भी भिक्षुक उन के द्वार से निराश नहीं लौटता, कारण यह है कि दीन होते भी उनका मन दीन नहीं है। सिवाय एक कन्या रत्न के उनके और कोई नहीं है। उनकी स्त्री को मरे कोई दस बरस हो गये हैं। कन्या जिसका नाम भाग्यवती है अनुमान से कोई पन्द्रह बरस की है-पिता कीसेवा सुश्रूषा से बचे कुचे समय को वह पुस्तकावलोकन में बिताती है। सुन्दरसिंह ने दीन होकर भी भाग्यवती को बड़ी उच्चशिक्षा दी है, वह हिन्दी और संस्कृत तो भली प्रकार जानती ही है पर इसके सिवाय गणित, गृहप्रबंध शास्त्र, इतिहास, भूगोल, चित्रकारी आदि में भी वह निपुण है। बाल्यकाल ही में माता का स्वर्गवास होने से उसे सूप शास्त्र की शिक्षा देने वाला कोई नहीं मिला तब भी वह सूप शास्त्र संबन्धी पुस्तकें पढ़ कर उस कार्य में भी अत्यन्त कुशल होगई है। सुन्दरसिंह की आयु अब अस्सी वर्ष की होगई है इससे उनसे खेती का काम अच्छी तरह से नहीं होता। अतः उनकी इच्छा थी कि कोई साझी मिल जावे तो खेती कर लिया करें और जो कुछ आय हो उसमें से अपना भाग ले कर शेष उसे दे दिया करें। ईश्वर की कृपा से शीघ्र ही उन्हें एक परदेशी स्वजातीय युवा इस कार्य के लिये मिल गया। इनकी भांति वह भी अत्यन्त दीन था। परदेशी होने के कारण वह

उन्हीं के यहाँ रहने लगा-वह इतना सुशील व सज्जन था कि थोड़े ही दिनों में सुन्दरसिंह उसे पुत्र की भांति प्यार करने लगे और वह भी उन की सेवा में दत्तचित्त होकर तत्पर हो गया-इस परदेशी युवा का नाम भी यथा नामः तथा गुणः की कहावत को चरितार्थ करने के लिये सज्जनसिंह था।

(२)

सज्जन-भाग्यवती! यहां रहते बहुत दिन हो गये अब हम अपने देश को जाना चाहते हैं।

भाग्यवती-पिता जी तो कहते थे आप उन्हें बड़ी सहायता देते हैं और वे आपको कदापि नहीं जाने देंगे।

सज्जन-हमारे यहां रहने से किसी को कुछ लाभ तो है ही नहीं-आपको और आपके पिता को वृथा ही कष्ट होता है-मैं इतना काम नहीं करता जितना खा जाता हूं-फिर आप लोग मुझे क्यों रखना चाहते हैं?

भाग्यवती-पिता जी आप को बहुत चाहते हैं उनकी तो यहां तक इच्छा है कि सब धन सम्पत्ति आपही को छोड़ जावें।

सज्जन-सो कैसे हो सकता है जब तक आप भी मुझ पर अपनी कृपा न करें।

भाग्यवती-यदि पिताजी आपको कुछ देंगे तो मैं कदापि भी आपत्ति न करूंगी।

सज्जन-मेरा यह अभिप्राय न था कि आप कुछ न करें मेरे कहने का आशय यह था कि आप मुझे अपना दास बनालें तो मैं अपने को धन्य मानूंगा।

भाग्यवती-आप तो हमारे खेत में साझी हैं अतः आप बराबर वाले हैं दास बनने की क्या आवश्यकता है।

सज्जन-मैं खेत के स्वामी की बात नहीं कहता-मैं चाहता हूं कि तुम्हारा मेरे ऊपर अधिकार हो-अर्थात् तुम मेरी प्राणेश्वरी बन जाओ।

भाग्यवती-(शरमा कर चुप हो रही।)

सज्जन-क्यों मुझ से कुपित हो क्या? मेरी प्रार्थना स्वीकार न करोगी? क्या मुझे निराश करोगी-क्या मैं तुम्हारी प्रीति के योग्य पात्र नहीं हूं कुछ उत्तर तो दो?

भाग्यवती-मैं क्या कह सकती हूं-मैं स्वतंत्र नहीं हूं-यदि आपकी यही इच्छा है तो पिताजी से कहिये।

सज्जन-उनसे कहने के पूर्व मैं तुम्हारे मुखारविन्द से यह सुना चाहता हूं कि तुम भी मुझे उतना ही चाहती हो जितना कि मैं तुम्हें चाहता हूं और कि तुम मुझे अपनी प्रीति के योग्यपात्र समझती हो।

भाग्यवती-मैं इसका उत्तर नहीं दे सकती। भला आपकी योग्यता में किस को संशय हो सकता है-यह आप की बड़ी कृपा है जो आप मुझे इस प्रकार सनाथ व सत्कृत करना चाहते हैं पर मैं तो स्वतन्त्र नहीं हूं पिता जी की आज्ञा में हूं। इससे अधिक मैं नहीं कह सकती।

सज्जन-तुम मेरी बात का ठीक ठीक उत्तर न देकर मेरे चित्त को अधीर बना रही हो-मैं यह जानना चाहता हूं कि तुम मुझ से प्रेम करती हो या नहीं?

भाग्यवती-आपने मेरे वृद्ध पिता को इतनी सहायता दी है कि मैं किस मुंह से आप की आज्ञा का उलङ्घन कर सकती हूं-आपकी दासी बनने से मैं अपने आपको सन्मानित समझूंगी।

सज्जन-फिर वही बात-मेरी बात का उत्तर दो।

भाग्यवती चुप रह गई और सज्जन के फिर फिर पूछने पर उसने धीरे से यह उत्तर दिया।

"आप बड़े चतुर हैं-पहले चोरी करते हैं फिर पूछते हैं कि तुम्हारी कुछ वस्तु तो नहीं खोगई-पहले मेरे मन को मोह कर फिर पूछते हैं कि मुझे चाहती हो या नहीं मैं क्या उत्तर दूं। मैं आप को अपना मन दे चुकी हूं और आप क्या चाहते हैं?

सज्जन–बस यही पूछता था–तुम्हारे पिता जी से मैं पहले ही प्रार्थना कर चुका था। उन्होंने यह कहा था कि भाग्यवती से पूछो यदि वह मानले तो उनको कुछ आपत्ति नहीं है।

इन प्रेमियों में इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि इतने में सुन्दर सिंह आगये, उन्हें देख कर भाग्यवती भीतर भाग गई–इस पर सुन्दर सिंह बोले कि आज यह नई बात क्या कि बेटी हमें देखकर भाग गई, सज्जन ने उत्तर दिया कि उसने मेरी प्रार्थना स्वीकार करली है और आप की अनुमति का समाचार मैंने उस से कहदिया है इसी से वह भाग गई है–यह सुन कर सुन्दर सिंह को बड़ा हर्ष हुआ और वे बोले कि बेटा मेरी इच्छा है कि हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये यह गांव भी कुछ धन भेजे–इस से आज संध्या को मेरी चौपार में गांव के कुल पुरुष एकत्रित होंगे उनके सत्कार का प्रबन्ध करलो।

....

(३)

आज कल हिन्दू विश्वविद्यालय की धूम है–जिधर देखो उसी की चर्चा है, क्या नगरों में क्या गांवों में सब ही जगह हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये धन एकत्रित हो रहा है।

दिल्ली के पास रामपुर गांव में भी सुन्दर सिंह की चौपार में आज बड़ी भीड़ है–गांव के सभी मनुष्य एकत्रित हैं, सज्जनसिंह हर एक का सत्कार कर के बिठा रहे हैं, इस छोटे से गांव में भी ५००) रुपया एकत्रित हो गया है, सुन्दरसिंह ने भी अपनी ओर से १००) दिये हैं. सज्जन के पास कुछ था ही नहीं उसने दस रुपये ही देकर अपने मन को संतुष्ट कर लिया–भाग्यवती ने भी पांच रुपये दिये और कहा कि यह रुपया मैं ने अपनी माता के समय से अब तक मैं जोड़ पाया है, मैं समझती हूं कि इससे अच्छा अवसर इस रुपये के उपयोग करने का नहीं मिल सकता आशा है कि देश के नेता गण मेरे क्षुद्र दान का निरादर न करेंगे।

कुल रुपया मनीआरडर द्वारा मालवीय जी की सेवा में भेज दिया गया।

(४)

सज्जन और भाग्यवती का विवाह हुए आज एक मास हो गया है–आज के अभ्युदय में निम्न लिखित समाचार पढ़ कर भाग्यवती सज्जन को सुना रही हैं "अत्यन्त हर्ष का विषय है कि ईश्वर की असीम कृपा से हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये एक करोड़ रुपया एकत्रित हो गया–इस सप्ताह में निम्न लिखित महानुभावों ने दान दिया है।

एक महाराज राजपूताने के–५०००००)

कलकत्ते का मारवाड़ी समुदाय–२५०००००)

संयुक्त प्रदेश के एक महाशय ने १००००००) अपने विवाह के उपलक्ष में दिया है।

दिल्ली के पास रामपुर गांव से ५००) आया है उस में पांच रुपये भाग्यवती नाम की एक दीन कन्या के भेजे हुए हैं–यह पांच रुपये बड़ी प्रीति व भक्ति के साथ दिये गये हैं–इस लिये ये पांच रुपये पांचलाख के बराबर है–आशा है कि हमारे देश की अधिक धनवती कन्यायें हमारी भाग्यवती से पाठ सीखेंगीं"

सज्जन–हैं यह क्या–अभ्युदय वाले मेरी भाग्यवती को "हमारी" कह कर अपनी बनाने वाले कौन हैं? मेरी उनसे लड़ाई होगी।

भाग्यवती–मैं तो आप ही की हूं पर यह तो कहिये कि एक महाशय ने तो अपने विवाह के उपलक्ष में दस लाख रुपया दिया है और हम ने कुछ भी नहीं दिया–

सज्जन–हम दीन पुरुष हैं कहां से दें? तुम्हारी क्या है तुम्हारे तो पांच रुपये पांच लाख के समान हो गये और हमने दस रुपये दिये थे सो कुछ नहीं–हमारे दस के बीस भी न हुए ठीक है तुम्हारे पास ऐसाही वशीकरण मंत्र है, किसी ने ठीक कहा है कि सौंदर्य में बड़ी शक्ति है।

भाग्यवती-जाने दो ऐसी बातों में क्या धरा है आप के दस रुपये दस करोड़ की बराबर सही, अब प्रसन्न हो ?

सज्जन-कहने ही की क्या आवश्यक्ता थी-तुम्हारे तो दर्शनों से ही हम प्रसन्न हैं-पर अधिक प्रसन्नता अधिक कृपा पर निर्भर हैं-

भाग्यवती-चलो रहने दो-तुम्हें ऐसी ही सूझा करती है-

(५)

आज सज्जनसिंह को रामपुर में आये पूरे पूरे छै मास हो गये हैं-अतः वे सपत्नीक कुछ दिवस के लिये घर जाने वाले हैं-सुन्दर सिंह ने भी आज्ञा देदी है, दोनों रामपुर से दिल्ली को स्टेशन को जा रहे हैं, सज्जनसिंह तो पैदल चल रहे हैं भाग्यवती बहुत आग्रह करने पर एक छोटे से घोड़े पर साथ साथ चल रही है। वे दो तीन घंटे में स्टेशन पर पहुंचे और तीसरे दरजे का टिकट लेकर गाड़ी में पहुंचे पर सज्जनसिंह भाग्यवती को लेकर रेल में सब गाड़ियों से पीछे लगी हुई एक अत्यन्त सुसज्जित गाड़ी में जा बैठे। भाग्यवती ने कहा कि हम तीसरे दरजे के टिकट वाले पहले दरजे में बैठ गये हैं कोई निकाल न दे, सज्जनसिंह ने कहा कि नीचे दरजों में भीड़ के कारण स्थान न मिले तो ऊंचे दरजों में बैठ जाने में हानि नहीं है।

(६)

रेल कानपुर की स्टेशन पर पहुंची, गाड़ी खड़ी होते ही बहुत से पुरुषों ने सज्जन और भाग्यवती की गाड़ी को घेर लिया और सब पुरुष झुक झुक कर सज्जन सिंह को नज़रें भेंट देने लगे-सज्जन भी सब से हंस हंस कर मिल रहे थे, भाग्यवती की दशा पाठक जान सकते हैं। उस बिचारी की समझ में कुछ न आया-कभी वह आंखों को दोष देती थी कभी सपना समझती थी-पर सज्जनसिंह ने उसके कुल विचारों को यह कह कर शान्त कर दिया कि यह विजय नगर राज्य के कर्मचारी हैं और उस का दास सज्जनसिंह वहां का राजा है। यह कह कर भाग्यवती को पालकी में बिठाल कर, वहां से चल कर सब लोग विजय नगर पहुंचे-भाग्यवती ने अपना घर संभाला-और ऐसी योग्यता से कार्य किया कि सब नर नारी राजा रानी को आशीर्वाद देने लगे-उन लोगों ने सुन्दरसिंह को भी वहीं बुलालिया और रामपुर में उन के घर व खेत की आय से एक भाग्यवती कन्या पाठशाला बन गया।

(७)

रानी भाग्यवती-मैं यह जानने को बड़ी उत्सुक हूं कि आप मेरे पिता के घर इस प्रकार क्यों रहे और अपने समान विभव वालों को छोड़ कर एक दीन कृषक से क्यों संबंध किया-

सज्जन-दीन धनी की क्या बात है-जिस का मन-अदीन है वही सच्चा धनी है नहीं तो बड़े २ करोड़पतियों के यहां भी रुपया मट्टी की तरह पड़ा रहता है। मैंने ऐसा इस लिये किया कि मेरी सदा से यही इच्छा थी कि स्त्री देख कर विवाहूं और बिवाह से पहले अपनी भावी प्रियतमा की अनुमति ले लूं-मेरे समान विभव वाले मेरी यह बात नहीं मानते थे-अपनी कन्या विवाह से पहले दिखाते भी न थे इसी लिये मैं घर छोड़ कर स्त्री ढूंढ़ने निकला बहुत से नगर और ग्रामों में गया। बहुत सी बालिकायें देखीं पर मेरे चित्त में एक भी न आई। जब तुम्हारे गांव में पहुंचा तो तुम्हें देख कर चित्त को शान्ति हुई। तुम्हारे पिता जी से मिलने के पूर्व मैं तुम्हारे गांव में एक मास तक तुम्हें देखा करता था जब सब प्रकार विचार कर चुका तब तुम्हारे पिता जी से परिचय किया। मैं जानता था कि अपना सच्चा सच्चा परिचय देने पर तुम्हारे पिता जी मेरी प्रार्थना कभी भी स्वीकार न करेंगे इसी से ऐसा किया गया था।

इसी प्रकार बातें हो रही थी कि दासो ने लाकर डाक दी। सज्जन और सब डाक देखने लगे और भाग्यवती, अभ्युदय पढ़ने लगी यह आवश्यक है कि अभ्युदय में जो लिखा था उसे पाठक भी जान लें क्योंकि यह बातें इस कथा की कई बातों को स्पष्ट करने वाली हैं। भाग्यवती हँसती जाती है और सज्जनसिंह को सुना रही है। चलो हम भी सुनलें वह पढ़ रही है कि–

"हम बड़े हर्ष के साथ सूचित करते हैं कि अपने विवाह के उपलक्ष में हिन्दू विश्वविद्यालय को दस लाख रुपये देने वाले विजयनगर के राजा सज्जनसिंह थे। आपने पांच लाख अपनी ओर से दिया था और पांच लाख अपनी नव विवाहिता पत्नी रानी भाग्यवती की ओर से दिया था। परमेश्वर राजा रानी दोनों को चिरायु करे। हमारे देश में विवाह तो प्रतिदिन हुआ करते हैं पर यह विरलों ही को सूझता है कि वे विवाह के आनन्द में अपने विश्वविद्यालय को न भूलें जहां पर कि विवाह से उत्पन्न हाने वाली सन्तान विद्यालाभ करके जगत में यश व धन व पुण्य कमाने योग्य बनेगी–हम अनुरोध करते हैं कि पाठक हमारे राजा सज्जनसिंह व रानी भाग्यवती से पाठ सीखें"।

सज्जनसिंह–लो मैंने कहा था कि नहीं तुम में विचित्र शक्ति है। तुमने तो अपने पांच रुपये के पांच लाख सच्चे कर दिये और मेरे दस रुपये के पांच लाख ही हुए–

मानसिक स्वाधीनता।

हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापि हतं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नयावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥

ईशोपनिषद्।

श्रीमान् महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने साल भर की छुट्टी के बाद, जब से सरस्वती का सम्पादन-बागडोर को अपने हाथों में फिर से लिया है, तब से साहित्य संसार में एक प्रकार का कुतूहल मच गया है;–मृत्यु की अखिल शान्ति में मग्न पड़े हुए लेखक गण एकाएक चौंक उठे हैं। जनवरी की सरस्वती में सम्पादक की अपूर्व लेखनी से निकली हुई एक विद्वतापूर्ण लेख माला का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ था, और मार्च की संख्या में वह समाप्त हुई। लेख माला का नाम "कालिदास की निरङ्कुशता" है और इस ही निरङ्कुशता के कारण विचारे लेख माला के लेखक के ऊपर आज चारों तरफ से समालोचना के कठिन कुठारों की वर्षा हो रही है। इस लेख माला ने शान्ति को भंग कर दिया है; सारे हिन्दी संसार में खलबली मचा दी है। लेख माला के समालोचक गरम अपने आपको और साधु-शिष्टाचार को ऐसा भूले कि उन्होंने समालोचना के मोटे २ सिद्धान्तों को एक तरफ छोड़ कर वादविवाद–शास्त्रार्थ–की साधु प्रथा को पददलित करते हुए, अनुपयुक्त शब्दों और वाक्यों का प्रयोग किया। हम इस वर्जनीय झगड़े के गुण दोषों पर कुछ भी न लिखेंगे क्योंकि वह हमारी शक्ति के बाहर है। इतना हम अवश्य कहेंगे कि लेख माला यदि किसी संस्कृत पत्रिका में प्रकाशित होती तो यह अधिक उचित होता हिन्दी के पाठक जो कालिदास की कविता के गौरव और गुण को नहीं जानते उन्हें केवल दोष दिखाना उचित नहीं है न इससे हिन्दी साहित्य की वृद्धि ही हो सकती है। हमारा उद्देश्य इस लेख में इस प्रकार के वादविवाद की मानसिक प्रवृत्ति की मीमांसा करना है; और यह दिखाना है कि इस प्रवृत्ति का राष्ट्रीय अथवा सामाजिक सुधार से क्या सम्बन्ध है, और इस से हम को क्या लाभ या हानि होने की सम्भावना है।

कालिदासकी समालोचना से लोग क्यों भड़के क्यों इतना ज्यादा कोहराम मचा? यदि विचार की दृष्टि से देखा जाय, तो फ़ौरन यह मालूम होगा कि इस अनावश्यकीय कोपाग्नि के भभक उठने का कारण केवल मात्र अन्ध पुरातन-पूजा

है। हम लोगों के लिए जो कुछ प्राचीन है वह सर्वथा आदरणीय और दोषरहित है; जो कुछ नवीन है, उसमें केवल दोषों के सिवाय गुण का नामोनिशान नहीं है जिन संस्थाओं की नींव को हमारे पूर्वजों के अलौकिक पराक्रम और अपूर्व प्रतिभा ने समय के अज्ञेय आदि में डाली थी, उनसे आज हमको अनन्त प्रेम है—विचार-हीन अन्धतम प्रेम है। धर्म्म से, सामाजिक रीति रिवाजों से, साहित्य से और जो कुछ भी हमको अपने बाप-दादों से मिला है, उस सब से हमको असाधारण लगन है, उस में आश्चर्य-जनक भक्ति है। पुरातन की प्राणघातक छटा की चकाचौंध से चकित और संमोहित विवश और आतुर, प्राचीनता के चरणों पर हमने अपने को आत्म-समर्पण करदिया है, अपनी बुद्धि, अपना विचार, अपना पुरुषत्व, सब पुरातन की भेंट कर आज हम उसके ही द्वार के भिक्षुक बन बैठे हैं। प्राचीनता का प्रभाव हमारे ऊपर जादू से अधिक है, अटल है, अभेद्य है। उसका महात्म्य हमारे रग रग रोम रोम में व्याप्त है। भूत की संमोहनी पर नाशकारिणी, वीना ने हमको इतना आशक्त इतना उनमत्त इतना अधीर और निस्सहाय कर दिया है कि हम भविष्य भवितव्यता देवी की पवित्र प्राण प्रदायिनी, मङ्गलमयी, परम सुन्दरी मूर्ति को देख अपने आंखों को फेर लेते हैं, उसके आशा और उत्साह के वचनों को सुनते हुए भी नहीं सुनते उसके निर्धारित उच्च आदर्शों का परिहास करते हैं, उसके वरदानों को तिरस्कृत करते हुए उसके शापों को प्राणौषधि समझ कर अंगीकार करने के लिए तय्यार हैं। प्राचीनता के रंग में रँगे हुए जो वह नाच नचावे, वही नाच हम नाचने को तैयार हैं। सचमुच हमारे हृदय पर, हमारे बुद्धि विचार पर तेरा पूरा दौर दौरा है, तेरा अटल राज्य है, तेरी अनियंत्रित सत्ता है और अपने मनुष्यत्व को तेरे ऊपर निछावर करने वाले हम तेरे विना कौड़ी पैसे के दास हैं।

हम पुरातन प्रतिष्ठा के विरोधी कदापि नहीं हैं यदि प्रतिष्ठा का भाव विचार और समझ पर स्थिर हो। पर, हां, जहां अन्ध परम्परा के सामने लोग, मौक़े बमौक़े, सदैव सिर झुकाने के लिए तय्यार खड़े हैं, वहां पर उन्नति का होना असम्भव है। जहां यह प्रवृत्ति होती है, वहां पर संकोच, अविचारमति, पक्षपात, दुराग्रह, मानसिक पराधीनता और आत्मिक नपुंसकता, सहवर्तिनी बन कर अवश्यमेव रहती हैं। स्वतंत्र विचार की तो यह प्रबल स्वाभाविक शत्रु है। मतभेद किसी प्रकार का भी इसको असह्य है। पुरानी बातों की आलोचना चाहे जितनी उचित हो, सत्य हो, और शिष्ट शब्दों में की गई हो, वह सर्वथा ऐसे लोगों के हृदयों में कांटों की तरह चुभती हैं और समालोचक विचारे की जो दुर्दशा होती है, उसका ठीक २ वर्णन करना असम्भव है। उसके ऊपर अज्ञानी कुत्सित हृदय वाले कायर भूखे भेड़ियों की तरह टूट पड़ते हैं उसको जाति का शत्रु, पाश्चात्य की चमक दमक से बहका हुआ बावला; धर्म्म का द्रोही, समाज का विध्वंसक, मूर्खशिरोमणि इत्यादि टाईटिल मिलते हैं। कहा जाता है कि उसमें देशभक्ति है ही नहीं, तब तो वह पाश्चात्य को प्रशंसा और अपने देश के धर्म्म और साहित्य की और अपने जाति के शूरवीरों की निन्दा करना ही अपना परम सौभाग्य समझता है। समालोचक को ऐसे लोग घृणा से देखते हैं, उसके ऊपर कोप करते हैं, उसका अपमान और उपहास करते हैं। उसको 'घर का भेदी' समझकर उसको त्याज्य प्रसिद्ध करते हैं।

यह प्रवृत्ति बहुत से मानसिक दोषों को फलाती है जिस समाज के लोग अन्ध-परम्परा के सामने घुंटने टेंकते हैं, जहाँ पर "लकीर के फकीर" ही प्रशंसनीय और आदर्शनीय माने जाते हैं जहां पर प्रचलित रूढ़ि—रस्म रिवाज—की सत्ता अनियंत्रित है, वहां प्रतिभा का प्रादुर्भाव होता ही नहीं, क्योंकि प्रतिभा के विकाश के लिए

विचार की स्वाधीनता की आवश्यकता है। अतएव इस प्रवृत्ति के द्वारा समाज को प्रतिभा के नाश होने से जो हानि पहुंचती है, वह अनिर्वचनीय है। दूसरी हानि विचार-शक्ति का लोप हो जाना है, क्योंकि विचार करने का साहस करना मरना स्वीकार करने के तुल्य है और प्रयोग के न होने से शक्ति में मुर्चा लग जाता है, बुद्धि की कुशाग्रता जाती रहती है; उसकी धार मन्द पड़जाती है। इसीलिए पूर्वजों के संचित विद्या-भण्डार की वृद्धि रुक जाती है; हममें उनके ही विचारों के घोखने और तोतों की तरह दुहराने की केवल मात्र शक्ति रह जाती है। उन्हीं के ग्रन्थों की टीका-व्याख्या में हमारा सारा पाण्डित्य खप जाता है, उनके ही विचारों की रङ्गामेज़ी में हमारा सारा मस्तिष्क ख़तम हो जाता है। जहां तक वह मानसिक मार्ग पर चले गये हैं, वहीं तक हम भी दौड़ लगाते हैं, पर आगे बढ़ने की शक्ति नहीं है। इसकी वजह से सत्य से निष्ठा उठ जाती है, सत्य-प्रियता का अनादर होने लगता है, सत्य के खोज की महिमा उठ जाती है। मानसिक ईमानदारी (honesty और न्याय-परता (fariness) तो ऐसे समाज में रही नहीं सकती; लोग हठी और दुराग्रही हो जाते हैं। पक्षपात से वे अन्धे हो जाते हैं, और भूल जाते हैं कि सत्य के सामने और दूसरी चीज़ें क्षुद्र हैं; और सत्य ही विश्व है, सत्य ही ईश्वर है। पर इन को तो पुरातन सब कुछ है; सत्य चाहे भाड़ में जाय तो जाय। बाप दादों की भूल को भूल न मानना ही इनका कर्त्तव्य है, और उस भूल को सत्य से भी ज्यादा सत्य साबित करके ये लोग पितृ ऋण से उऋण होना समझते हैं। जिस समाज की ऐसी अवस्था हो, उसका भविष्य तो अवश्यमेव घोरतम अंधकार से आच्छादित होगा। जहां मानसिक सरित् का प्रवाह रुक जाता है, वहां पर शीघ्र ही काई दौड़ जाती है, और थोड़े ही समय में सारा जल मलिन और दुर्गन्धित हो जाता है। मानसिक तमस्मय निश्चलता (Intellectal stagnation) आत्मीय भ्रष्टता moral Corruption को पैदा करता है। और जब मस्तिष्क और हृदय दोनों ही सड़ने लगते हैं, तब शरीर-पात का समय बहुत समीप आ जाता है। ऐसी अवस्था में कोई भी सामाजिक अवनति और राष्ट्रीय (National) अधःपतन को रोक नहीं सकता है।

ऐसी अवस्था में प्रत्येक जातिहितैषी का धर्म्म है कि विचार की स्वाधीनता की वृद्धि जहां तक हो सके वह फैलावे। क्योंकि जैसा ऊपर कहा गया है जातीय उन्नति और मानसिक स्वतंत्रता का घनिष्ट संबन्ध है। इस लिए मानसिक बग़ावत के हम विरोधी कदापि नहीं हैं यद्यपि इससे कुछ थोड़ी बहुत हानि होने की सम्भावना अवश्य है।

विचारों को स्वतंत्र रूप से प्रगट करने से समाज को दो फायदे हैं: एक तो सत्य की वृद्धि और अज्ञान के अन्धकार में जो आज जाति पड़ी हुई है, उससे उसकी मुक्ति। अन्धकार की सत्ता दिनों दिन कम होती जायगी और सत्य का साम्राज्य बढ़ता जायगा। दूसरे व्यक्तित्व का विकास होगा प्रकृति के नियमों के अनुसार उन्नति असमान (Dissimilar) वस्तुओं की रगड़ के द्वारा होती है। विभिन्नता ही उत्सर्ग और विकास की माता है यदि व्यक्ति-विशेषता आज संसार से उठ जाय, तो संसार तामसिक स्थिरता, और प्रलयकालीन शून्यता में डूब जाय। गति का ही नाम उन्नति है। और विरोध के बिना गति का होना असम्भव है। गति के होने के लिए प्रतिरोध की आवश्यकता है; और यही एक उन्नत्ति का मार्ग है। समानता में विरोध का अभाव है। अतएव व्यक्तित्व की अनुपस्थिति में समाज एक स्थावर पदार्थ के सदृश हो जायगा. और जहां पर लोग अन्ध परम्परा के ऐसे अन्धे भक्त हैं, वहां पर व्यक्ति विशेषता का आदर कैसे हो सकता है? व्यक्ति-विशेषता सत्य की खोज और

ज्ञान वृद्धि के लिए अत्यावश्यक है क्योंकि सत्य का स्वरूप अनन्त है, और मनुष्य को उसके रूप का सम्पूर्ण दर्शन होना असम्भव है—मनुष्यत्व का परिमितता और अल्पज्ञता मुख्य लक्षण है। बड़े भाग्य से किसी किसी को सत्य के किसी के विशेष स्वरूप की झलक मात्र मिल जाती है। अतः सत्य के ज्ञान को बढ़ाने के लिए चरित्र-वैचित्र्य की ज़रूरत; और चरित्र-वैचित्र्य के लिए मानसिक स्वातंत्र्य की आवश्यकता है।

केवल मानसिक स्वाधीनता से समाज को कोई भी विशेष हानि नहीं पहुंच सकती है।

आचरण में विस्तृत परिवर्तन तब होता है, जब समाज में उस परिवर्तन की आवश्यकता बहुमान्य हो जाती है। प्राचीनता का, प्रचलित प्रणाली का, इतना प्रबल प्रभाव हमारे जीवन तथा व्यवहार पर है, कि एकाएक उनको बदलने में हम को अत्यन्त क्लेश होता है, हम को भय मालूम होता है जब बहु सम्मति से कोई भी रीति छोड़ दी जाय अथवा परिवर्तित हो जाय, तब यह समझना चाहिए कि समाज का हित इसी में है, नहीं तो समाज की मृत्यु की सम्भावना हो सकती है।

इन कारणों से हम मानसिक स्वाधीनता, के पक्षपाती हैं। हमारा मत है कि मानसिक निर्जीवन से मानसिक निरंकुशता कहीं देश-हित कारिणी है।

यदि जाति को शताब्दियों की मृत्यु-निद्रा से जगाना है, यदि भारत को, संसार के अन्य देशों के साथ, सभ्यता के शिखर पर उचित आसन देना है, यदि भारतवासियों को अपनी ईश्वर-दत्त भवितव्यता के उपलब्धि की लालसा है तो जिन कृत्रिम शृङ्खलाओं में आज जातीय मस्तिष्क फँसा पड़ा है उन्हें तोड़ने का प्रयत्न करना हमारा परमधर्म, सब से पुनीत काम है। भूत के जटिल पाशों से निर्मुक्ति में ही जातीय पुरुषत्व का विकाश है, और जातीय जीवन की आशा है।

"जन्मभूमि का सेवक"।

सनफ्रांसिस्को में हिन्दू मन्दिर।

[लेखक-श्रीयुत् सत्यदेव अमेरिका।]

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानीं जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्यायच स्वापचारणाय॥
यजु०।

सन् १९०५ की इक्कीसवीं अगस्त की नई दुनियां के प्रसिद्ध नगर सनफ्रांसिस्को में हिन्दू मन्दिर की बुनियाद डाली गई, और पाश्चात्य संसार को इस बात का ज्वलन्त उदाहरण मिला कि हिन्दू जाति एक जीती जागती महान शक्ति है।

आज मैं 'मर्यादा' के पाठकों को उस देव-मन्दिर का चित्र भेंट कर उसकी कुछ कथा सुनाता हूं ताकि भारत सन्तान के हृदयों पर अपने प्राचीन वैदिक धर्म का गौरव खचित हो और उन को पता लगे कि उनके ऋषियों का धर्म कैसा महान है। ऋषि सन्तान आज हीन अवस्था में हैं-हज़ारों हम में से हर वर्ष दूसरे मतों की ओर जा रहे हैं-यह इस लिये नहीं कि उनके अपने धर्म में कुछ त्रुटि है, नहीं, नहीं, यह केवल अविद्या अन्धकार वश हो रहा है। देश के बच्चों को अपने धर्म की शिक्षा नहीं मिलती; उनको अपने साहित्य का ज्ञान नहीं कराया जाता उनके साथ जाति अभिमान में फँसे नेतागण न्याय अनुकूल व्यवहार नहीं करते; इस सब से बढ़ कर देश की आर्थिक दशा ऐसी गिरी हुई है कि हमारे अनाथ बालक दूसरे धनिक मतावलम्बियों को दे दिये जाते हैं और इस प्रकार उन निरपराध बच्चों को विरुद्ध मतों की शिक्षायें मिलती हैं। पाठक, आपने कभी समाज के इस घोर पाप पर विचार किया है?

यह भाव मैं क्यों प्रगट कर रहा हूं? इस लेख का इनके साथ क्या सम्बन्ध है?

यही भाव मेरे हृदय में उत्पन्न हुए थे जब मैंने पिछले सेपटेम्बर में इस मन्दिर के दर्शन

किये थे। क्यों न होते? अमेरिका से करोड़ों रुपया भारत को जाता है जिससे भारत संतान ईसाई बनाई जाती है। क्या भारत सन्तान ईसाई हो सक्ती है यदि देश अकाल पीड़ित न हो? क्या हमारे बच्चे ईसाई बन सकते हैं यदि हम उनके साथ न्याय अनुकूल वेद विहित बर्ताव करें? कदापि नहीं। भला सुन्दर पवित्र अमृतरूपी स्रोत को छोड़ कर गंदले तालाब का पानी कोई क्यों पीयेगा। यह तभी हो सकता है जब स्रोत का ज्ञान पुरुष को न हो अथवा उस तक पहुंचने का रास्ता बन्द हो। प्यासे मरने से तो गन्दला पानी पीकर जीना ही अच्छा है।

कुछ ही हो भारत की दशा पलट रही है। श्रीस्वामी विवेकानन्द जीके प्रताप से नई दुनियां को हिंदूधर्म की महानता मालूम हुई। १९०० सन् में सनफ्रांसिस्को के वेदान्त सोसाइटी का जन्म हुआ और आज उस सोसाइटी का हिन्दू मंदिर सभ्य संसार को हिन्दूधर्म का महत्व जता रहा है। अमरीकन लोग इस बात को अनुभव करने लगे हैं कि हिंदूधर्म सबसे श्रेष्ठ है। हिन्दू साहित्य का प्रचार होने से नई दुनियां को हमारे आदर्शों का पता लगा है और लगेगा, आज कल ईसाई पादरियों की आमदनी प्रतिदिन घट रही है।

इस मन्दिर में दो भारतीय स्वामी रहते हैं। स्वामी त्रिगुणातीत जी महन्त हैं और स्वामी प्रकाशानन्द जी उनके सहायक हैं। प्रत्येक रविवार को मन्दिर में व्याख्यान, ज्ञान चर्चा, भजन कीर्तन होता है अन्य दिनों में गीता, उपनिषदों की कथायें होती हैं जिसमें सभासद शरीक होते हैं। सभासदों से ५४) रुपये वार्षिक चन्दा लिया जाता है।

मन्दिर के सम्बन्ध में एक शान्ति आश्रम है जहां सभासद प्राणायाम आदि करने तथा योगाभ्यास के लिये जाते हैं। उनसे इसके लिये कोई अधिक फीस नहीं ली जाती। जो लोग पत्र व्यवहार द्वारा पठन पाठन का सिलसिला जारी रखना चाहते हैं उनसे ७२) रुपये सालाना फीस ली जाती है।

सोसाइटी की ओर से Voice of Freedom नामी एक छोटी सी पत्रिका निकलती है जिसका चन्दा ४॥) रुपये सालाना है। इसमें भिन्न भिन्न विषयों पर लेख रहते हैं। स्वामी लोग इसका सम्पादन करते हैं।

"हिन्दी में अन्यभाषाओं के शब्द"॥

[लेखक—पं० कृष्ण विहारी मिश्र]

जिसमें मनुष्य भाषण द्वारा अपने मनोगत विचारों को प्रगट कर सकै वही भाषा है। भाषा से अधिक समाज का उपकारी कोई नहीं है। नहीं जानते कि बिना भाषा के लोगों का काम कैसे चलता। भारतवर्ष को अनेक लोग महाद्वीप के नाम से पुकारते हैं तथा उसमें स्थित महाराष्ट्र, पाञ्चाल, मद्राज, बङ्गादि प्रान्तों को स्वतंत्र देश मानते हैं उनके कथन की पुष्टि इस बात से होती है कि प्रत्येक प्रान्त की भाषा जुदी जुदी है; रहन सहन तथा रीति व्यवहारों में भी अन्तर है। युक्त प्रदेश तथा उसके इर्द गिर्द प्रदेशों की भाषा हिन्दी या उसी का कोई रूपान्तर है। जिस प्रकार समग्र योरोप की राष्ट्रभाषा (Lingur Franca) फ्रेञ्च राष्ट्र लिपि रोमन है उसी प्रकार भारत की राष्ट्रभाषा 'हिन्दी' तथा राष्ट्र लिपि 'नागरी' के बनाये जाने का देशहितैषी सज्जन उद्योग कर रहे हैं। वास्तव में भारत के राष्ट्रभाषा के सिंहासन को हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषा नहीं सुशोभित कर सकती। क्योंकि समग्र भारत वर्ष का अधिकांश जनसमुदाय गत वर्षों की मनुष्यगणना के अनुसार इसी से विशेषतया परिचित है। सब भाषाओं के अनुसार नागरिक तथा ग्रामीण ऐसे दो भेद इसमें भी पाये जाते हैं। भारत की प्राचीन नागरिक जन संख्या प्रायः तीर्थों या राजधानियों में निवास करती थीं। युक्त प्रान्त के समस्त नगरों में दो एक

लखनऊ आदि को छोड़कर प्रायः हिन्दी ही बोली जाती है। हिन्दी भाषा का पूर्व साहित्य प्रायः सब ही पद्यबद्ध है। ये पद्य नागरिक भाषा में ही लिखे गये हैं और इनमें विशेषतया संस्कृत शब्द पाये जाते हैं पर कहीं कहीं पर ग्राम्य शब्दों का भी स्वच्छन्दता पूर्वक प्रयोग किया गया है यथाः—

रहिमन 'रहिला' की भली।
जो परसै चित लाय ॥ १ ॥

*   *   *   *   *

प्राननाथ पहलदवा के कारन।
रघवा होइगा बघवारे ॥ १ ॥

*   *   *   *   *

या घरते कबहूँ न गयो पिय।
टूटो तवा अरु फूटी 'कठौती'॥१॥

किसी २ कवि ने यावनी भाषा के शब्दों के व्यवहार को मुक्तहस्त होकर किया है जैसे सीतल कवि के 'गुलज़ार चमन' की भाषा जिसमें प्रायः दो तिहाई यावनी ही है। गद्य के जन्म दाता 'लल्लूलाल' जी माने जाते हैं। इन्होंने संस्कृत शब्दों हो का अधिक प्रयोग किया है। इस समय हिन्दी गद्य की भाषा लिखने में साहित्य सेवियों में मतभेद है कुछ उर्दू मिश्रित तथा कुछ निरी संस्कृत शब्दावली ही को हिन्दी में स्थान देने का हठ करते हैं। व्रज भाषा में काव्य को निरुत्साहित करते हुये कुछ लोग खड़ी बोली में काव्य करते तथा दूसरों को भी ऐसा करने का परामर्श देते हैं। जो हो किसी भाषा का अभ्युदय केवल इन तीन बातों से जाना जाता है। १) उत्तम साहित्य (२) प्रचार (३) शब्द बाहुल्यता।

जिस भाषा में प्रत्येक विषय के ग्रन्थ वर्तमान हैं, नाना आभूषणों से भाषा अलंकृत है अन्य भाषा के ग्रन्थों से साहित्य के अङ्ग पुष्ट किये गये हैं तथा ऐसे भी ग्रन्थ वर्तमान हैं जिन को पढ़ने के लिये अन्य भाषा भाषी लालायित होरहे हैं उस साहित्य की अवनति शीघ्र नहीं हो सकती है। साहित्य से भी अधिक भाषा के प्रचार की आवश्यकता है जिस भाषा के बोलने और समझने वालों की संख्या बहुत थोड़ी है उसका अभ्युदय कैसे माना जावे। संस्कृत का साहित्य किस विषय में न्यून है परन्तु क्या संस्कृत को कोई अभ्युदयावस्था में कह सकता है? अस्तु भाषा का अभ्युदय उसके प्रचार में है। तृतीय और सब से महत्व की बात जिसके कारण यह लेख लिखा गया शब्द बाहुल्यता की है। जिस भाषा का शब्द भाण्डार जैसा परिपूर्ण है वह भाषा भी वैसी ही परिपूर्ण है। जिस मनुष्य के कोष में अधिक धन होता है वही धनी कहलाता है उसी प्रकार जिस भाषा का शब्द भाण्डार परिपूर्ण है वही भाषा उन्नत अवस्था में है। यदि देश में अन्य देश के मुद्राओं से काम चल जाता है ऐसी अवस्था में यदि किसी धनी के कोष में कुछ ऐसे मुद्रा उपस्थित हों तो ऐसी दशा में वे केवल उसके कोष की शोभा बढ़ावेंगे हानि कुछ भी न होगी। हां! यदि ऐसे मुद्राओं का देश में प्रचार न हो तो अवश्य उनका रखना व्यर्थ होगा उसी प्रकार कुछ अन्य भाषा के शब्दों का यदि वे हमारी भाषा में प्रचलित हैं प्रयोग करना कुछ अनुचित नहीं जान पड़ता है। यदि हमारी भाषा के जानने वाले कठिन संस्कृत शब्दों की अपेक्षा उन शब्दों से विशेष परिचित हैं तो अपनो भाषा में उन शब्दों के व्यवहार करने में क्या आपत्ति है। फिर हमारे साहित्य के पूर्वजों ने इसका उपयोग किया ही है। जो लोग कहते हैं कि ऐसे शब्दों के व्यवहार से भाषा के रूप में बिगाड़ उत्पन्न होगा वे भूल करते हैं। कारण बिगाड़ तो बुरे वाक्य रचना तथा कुत्सित भावों के प्रयोग से उत्पन्न होता है शब्द रचना से नहीं। उदाहरणार्थ अङ्गरेज़ी को लीजिये। इसका जैसा शब्द भाण्डार इस समय किसी भाषा का नहीं है। समग्र संसार के कुछ न कुछ शब्दों का इसमें समावेश अवश्य है परन्तु क्या इससे यह सिद्ध हो सकता है कि

अङ्गरेज़ी को किसी अंश में क्षति पहुंची। हिंदी भाषा ही के अनेक शब्दों का प्रयोग अङ्गरेज़ी में इस प्रकार से होता है मानो वे उसी भाषा के हों-जंगल, लूटेड, गँजेज़, दरबार आदि उसके उदाहरण मात्र हैं। भाषा के शब्दों में किन कारणों से परिवर्तन उपस्थित होता है इस विषय पर भी कुछ लिखना आवश्यक जान पड़ता है। (१) स्थान (२) सरलता (३) संसर्ग (४) पद्य इन्हीं चार कारणों को लेकर शब्दों में परिवर्तन होता रहता है। कुछ अक्षरों को कुछ प्रान्तों में अन्य रीति से तथा दूसरे में अन्य रीति से जैसे चना को पञ्जाब वाले चणा कहते हैं, वङ्गदेश वाले साहेब को शावही कहते हैं। महाराष्ट्र ज्ञ को द्न सा पढ़ते हैं। इसप्रकार देश भाषा के अनुसार शब्दों में परिवर्तन हो हो जाता है। संस्कृत शब्द लक्ष्मण को सरलता के कारण लखन या लछिमन कहते हैं परन्तु इसी को बङ्गवासी लक्खन कहेंगे इसी प्रकार अक्षि, जिह्वा, मस्तिष्क, अङ्गरक्षा आदि कठिन उच्चारण वाले शब्दों को सरलता के कारण भाषा में आंख, जोभ, माथा, अँगरखा आदि रूप दिये गये हैं। पद्य में-तुकान्त, रुचिकर बनाने के हेतु या अन्य कई कारणों से शब्द के रूप में परिवर्तन हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी चौपाइयों के अन्तिम अक्षर दीर्घ ही रक्खा है। तुकान्त के कारण भी शब्द परिवर्तन करना पड़ता है। जैसे:-

शक्ति शूल तरवारि कृपाना,
अस्त्र शस्त्र कुलिशायुध नाना।

यहां पर नाना के कारण गोस्वामी जी ने कृपान को दीर्घ अकारान्त कर दिया ऐसे ही अन्य स्थलों पर भी हुआ। अङ्गरेज़ी, उर्दू, फारसी आदि का संसर्ग अपनी भाषा में बहुत दिनों से चल रहा है अङ्गरेज़ी को छोड़ कर उर्दू और फारसी का संपर्क तो शताब्दियों से है। अस्तु हमारी भाषा के अनेक शब्द उनकी भाषा में जा घुसे हैं हमारे यहां के इन्द्र, हरिश्चन्द्र, वनवास, धर्म, यज्ञ, बृहस्पति आदि शब्द उनकी भाषा में इन्दर, हरीचन्द, वनोवास, धरम, जग, बिहफै आदि रूपों में व्यवहृत होते हैं उसी प्रकार उनकी भाषा के शब्द हमारी भाषा में कभी परिवर्तित और कभी अपने शुद्ध रूप में देख पड़ते हैं। पूर्व भाषा के साहित्य के आचार्य सूर, तुलसी तथा केशवदास जी माने जाते हैं। इनके काव्यों में आई हुई भाषा एक प्रकार से आदर्श मानी जाती है परन्तु इन्होंने भी प्रचलित उर्दू, फारसी शब्दों का व्यवहार किया है किसी का वचन है:-

तुलसी केशव सूर भे सुकविन के सरदार।
इनकी भाषा में मिलीं भाषा विविध प्रकार॥

कदाचित् इन्हीं के काव्यों को आदर्श मान कर भाषा का यह लक्षण ठहराया गया हो:-

भाषा वृज भाषा मिले भाषा कहियत सोय।
मिली संस्कृत पारसी पै अति प्रगट जु होय॥

इससे स्पष्ट प्रगट है कि भाषा साहित्य में प्रचलित अन्य भाषाओं के शब्द क्षन्तव्य हैं अब उन कवियों के काव्यों में आये हुए अन्य भाषाओं के शब्दों को दृष्टिगत करने के अर्थ कुछ पंक्तियां उदाहरण स्वरूप उद्धृत की जाती हैं।

गई बहोरि गरीब* नेवाजू*।
सरल सबल साहेब* रघुराजू॥
* * * * *
कहहु बनावन बेगि बजारू*।
* * * * *
सो जानै जनु गरदन* मारी।
* * * * *
पुर पैठत रावन कर बेटा*।
* * * * *
कह दशकण्ठ कौन तैं बन्दर*।
बैठे सराफ* बजाज* बनिक अनेक मनहु कुबेरते।

ऊपर के चिन्ह के शब्द उर्दू ही के हैं और भी देखिये:—

बूझिबे की जक* लगी है कान्हहि।
सतरञ्ज* कैसी बाजी*॥
* * * * *

दिवान* कुम्भकर्ण आइयो।
तुम्हहीं विरचो मरजाद दुनीं* में।

आदि में केशवदास जो ने भी चिन्ह के उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है।

इन कवियों के काव्य में संस्कृत शब्द कूट कूट कर भरे गये हैं लेख के कलेवर के बढ़ जाने के भय से सूरदास जो के पदों को यहां नहीं उद्धृत करते हैं तथापि, वासिल बाक़ी, स्याहा, शोर फौज, माफ़, दस्तक, निशान आदि अनेक शब्द उनके काव्यों में ठौर ठौर पर पाये जाते हैं। महात्मा तुलसीदास ने साहबनेवाज, रुष, निशान आदि शब्दों का प्रयोग तो स्थल स्थल पर किया है। आधुनिक हिन्दी में राजा शिवप्रसाद आदि उर्दू मिश्रित हिन्दी गद्य लिखने के पक्षपाती थे और इस समय में प्रसिद्ध उपन्यास लेखक बा० देवकीनन्दन पं० किशोरीलाल गोस्वामी आदि वर्तमान हैं। उक्त लेखक उपन्यासों में उर्दू शब्दों के प्रयोग के कारण बहुत से हिन्दी हितैषियों के कोप भाजन बने हैं तथापि आप लोगों के उपन्यासों के समान अन्य किसी के उपन्यासों की विक्री नहीं होती है इसका एक मात्र कारण भाषा की सरलता जान पड़ती है। तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि कहीं कहीं पर चन्द्रकान्ता तथा सन्तति में अप्रचलित उर्दू शब्द भी लाये गये हैं। परन्तु मेज़, कुर्सी, डाकखाना, बाज़ार, चारपाई, सन्दूक़, तहसीलदार, तख्त आदि उर्दू शब्दों का तो हमें निरन्तर व्यवहार करना पड़ता है। अब कुछ अंगरेज़ी शब्दों ने भी हमारी हिन्दी वाटिका में विचरना आरम्भ कर दिया है स्टेशन, निब, रेल, स्टूल, स्लेट, सिगरेट, पोस्टकार्ड, टिकट, बूट, कोट, पतलून, थियेटर, सर्कस आदि अनेकों शब्द ऐसी स्वच्छन्दता से व्यवहार किये जाते हैं मानो हमारी ही भाषा के हों। सारांश यह कि हिन्दी का शब्द कोष धीरे २ इन अनिवार्य कारणों से बढ़ रहा है रेल आदि के कारण भिन्न २ प्रान्त के लोगों को आपस में मिलने का अच्छा सुभीता हो गया है और इसी कारण से भिन्न २ भाषाओं के शब्दों की वृद्धि हमारी भाषा में शीघ्रता से हो रही है। अभी भाषा में अनेकों नवीन शब्द बनेंगे और समाचारपत्रों द्वारा यह कार्य सन्तोषजनक रीति पर सम्पादित हो रहा है पर कुछ हिन्दी हितैषी सज्जनों को यावनी भाषा के रूपान्तरों का भी अपनी भाषा में देखना बुरा जान पड़ता है वे अपनी भाषा में संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भाषा के शब्दों का आना नहीं पसन्द करते हैं। अपनी देव भाषा के शब्दों का सब ओर प्रचार देख कर भला कौन हिन्दू ऐसा होगा जो आनन्द को नहीं प्राप्त होगा? परन्तु जब हमें हिन्दी को राष्ट्र भाषा के योग्य बनाना है तब उसके वाह्य स्वरूप को ऐसा सजाना होगा जिसमें उसे सब अपना सकें। हमारे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि संस्कृत शब्दों का व्यवहार कम दिया जावे। जब कि हिन्दी संस्कृत ही की बेटी है तब भला वह उसके शब्दों को व्यवहार में क्यों न लावे अपने मातृ कोष की तो वह उत्तराधिकारिणी है ही परन्तु यदि इस कोष के अतिरिक्त वह कुछ और प्राप्त कर सके तो क्या कोई हानि होगी? अपने पैतृक अंश का सभी कोई भोग करते हैं, इसके अतिरिक्त जो कुछ मनुष्य पैदा करे वही उसकी सच्ची कमाई है निस्सन्देह ऐसी कमाई में चोरी, जुआ की कमाई सम्मिलित नहीं है वरन् सदाचार तथा परिश्रम से प्राप्त सम्पत्ति से अभिप्राय है, उसी प्रकार यदि हमारी मातृभाषा अपने शरीर व गौरव की रक्षा करती हुई प्रचलित किन्तु वास्तविक अन्य भाषा के शब्दों द्वारा अपने कोष की वृद्धि करे तो आपत्ति की कोई बात ज्ञात नहीं पड़ती है। अस्तु उर्दू अंगरेज़ी के ऐसे शब्द अथवा उनका रूपान्तर जिनका कि उपयोग हमारी दैनिक बात चीत में पड़ता है हिन्दी में लिखा जाना उचित जान पड़ता है और इससे भाषा को किसी प्रकार से क्षति न पहुंचते हुए लाभ पहुंचने की पूर्ण सम्भावना है।

प्राचीन भारत में मनुष्यगणना ।

[लेखक—कुं० महेन्द्रपाल सिंह]

पाठकों को यह जानकर आश्चर्य्य होगा कि भारत वर्ष में दो सहस्र वर्ष से प्रथम भी मनुष्य गणना की प्रथा प्रचलित थी। उससमय के प्रसिद्ध इतिहास लेखक मैगेस्थनीज ने लिखा है "तीसरे प्रकार के निरीक्षकों (Superintendants) का यह कर्त्तव्य था कि वे मनुष्यों के जन्म मृत्यु सम्बन्धी अन्वेषण किया करें और हिसाब रक्खें कि कितने मनुष्य जन्म लेते हैं और कितनी मृत्यु कब और किन २ कारणों से होती हैं। यह कार्य केवल कर लगाने के अभिप्राय से ही नहीं किया जाता था किन्तु इस का मुख्य उद्देश्य यह था कि सब श्रेणी के मनुष्यों के जन्म मृत्यु सम्बन्धी समाचारों से राज्य परिचित रहे।"

कौटिल्य के विख्यात अर्थ शास्त्र से मैगेस्थनीज के कथन की पूर्णतया पुष्टि होती है। 'राजा को प्रजा सम्बन्धी सम्पूर्ण बातों के जानने की बड़ी भारी आवश्यकता होती है इस बात को समझकर" हमें आश्चर्य नहीं होता है कि चन्द्र गुप्त की प्रसिद्ध राज्य शासन प्रणाली में मनुष्य गणना को स्थान मिला हुआ था, चाहे अर्वाचीन और प्राचीन काल की मनुष्यगणना के अभिप्रायों में भले ही अन्तर हो।

चन्द्रगुप्त के राज्य में मनुष्यगणना की कार्य प्रणाली में यह विशेषता थी कि वह किसी नियत समय पर नहीं होती थी। राज्य का एकस्थाई विभाग था जिसमें बहुत से कर्मचारी थे। इनका सब से बड़ा कर्मचारी समाहर्त्ता कहलाता था, उसको और भी बहुत से काम करने पड़ते थे समाहर्त्ता का अधिकृत प्रान्त चार भागों में विभक्त रहता था प्रत्येक भाग (जिस में बहुत से गांव होते थे) का स्वामी स्थानिक कहलाता था स्थानिक के नीचे बहुत से गोप काम करते थे जिनमें से प्रत्येक १० या ५ गांव का प्रबन्ध करता था।

इनके अतिरिक्त प्रदेष्टार हुआ करते थे जिन का कर्त्तव्य स्थानिक गोपों के काम की जांच करना था, परन्तु यह जांच पर्याप्त नहीं थी इस कारण एक और प्रकार के कर्मचारियों को समाहर्त्ता नियुक्त करता था। इन निरीक्षकों का कर्त्तव्य गुप्त रूप से—स्थानिक गोपों और प्रदेष्टारों के काम की जांच करना था जो वृत्तान्त इन्हें ज्ञात होता था उसे यह सीधे समाहर्त्ता के पास पहुंचा देते थे।

"समाहर्त्ता चतुर्धा जनपदं विभज्य, जेष्ठ मध्यम-कनिष्ठ विभागेन ग्रामाग्रं परिहारकमायुधीयं धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टिकर प्रतिकरमिदमेतावदिति निबन्धयेत्। एवं च जनपद चतुर्भागं स्थानिकश्चिन्तयेत्। गोप स्थानिक स्थानेषु प्रदेष्टारः कार्य्यकरणं बलिप्रग्रहं च कुर्य्युः।" (समाहर्तृ प्रचारः)

गोपों का यह काम था।

(१) प्रत्येक गांव के चारों वर्णों के मनुष्यों की गणना करना।

(२) कृषक-गोपाल-व्यापारी-शिल्पकार तथा दासों की गिनती करना।

(३) प्रत्येक घर के युवा-वृद्ध-स्त्री-पुरुष की गणना करना उनके चरित्र आजीविका-कर्म और व्यय का जानना।

(४) प्रत्येक पालतू जानवरकी गणनाकरना

(५) कर प्रदत्तक तथा कर मुक्त जनों की संख्या जानना और जानना कि कोई मनुष्य किस रूप में कर देता है आर्थिक रूप में या शारीरिक परिश्रम द्वारा।

गुप्त निरीक्षकों का यह कर्त्तव्य था।

(१) प्रत्येक गांव के कुल मनुष्यों की संख्या करना।

(२) प्रत्येक गांव के घर तथा कुटुम्बों की संख्या करना।

(३) हर एक कुटुम्ब के जाति तथा कार का निश्चय करना।

(४) कर मुक्त घरों की जांच करना।

(५) घर के स्वामी का निश्चय करना।

(६) प्रति घर की आय व्यय जानना।

(७) घरेलू जानवरों (जङ्गाग्र) को संख्या जानना।

इन का यह काम तो प्रायः गोपों के काम से मिलता है इसके अतिरिक्त इनका मुख्य काम यह था।

(१) गांव में नवीन निवासियों के आने तथा प्राचीन अधिवासियों के गांव छोड़ने के कारणों की जांच करना।

(१) गांवों में आने जाने वाले जनों का लेखा रखना तथा संदिग्ध चरित्रों का पता रखना।

यह चर इस काम को गृहस्थों तथा सन्यासियों के कृत्रिम रूप में रहकर किया करते थे। कभी २ चोरों के भेष में पर्वतों-घाटों तथा निर्जन स्थानों में जाकर चोरों-शत्रुओं तथा अत्याचारियों का पता लगाया करते थे।

राजधानी की मनुष्यगणना का कर्मचारी नागरिक कहलाता था यह भी नगर के चार विभाग करके स्थानिक-गोपों तथा प्रदेष्टारों की सहायता से पूर्ववत् काम करता था।

पथिकों तथा आगन्तुकों की गणना सम्बन्धी कठिनाई को कम करने के लिये धर्मशालादि के अधिकारियों को आने जाने वालों की सूचना स्थानिक को देनी पड़ती थी। प्रत्येक घर के स्वामी का भी यही कर्तव्य था। नियमोल्लङ्घन करने वालों को दंड दिया जाता था"-व्यापारी-शिल्पी तथा वैद्यादि को नियम विरुद्ध काम करने वालों की सूचना देनी पड़ती थी॥

वन-उपवन-देवालय-तीर्थ स्थान—धर्मार्थ भोजनगृह आबपाशी के काम-सड़क तथा समशानों और पशुओं के चरने की भूमि का लेखा भी इस विभाग को रखना पड़ता था। प्रायः मनुष्यों का विचार है कि साम्प्रतीय सभ्य गवर्मेन्टों ने ही इस उपयोगी कार्य का आविर्भाव किया है परन्तु आर्य साहित्य खोज करने से वृद्धि भारत की गौरव गरिमा का पूरा पता चल जाता है। उस समय की गवर्मेन्ट को इस स्थाई विभाग से शासन कार्य में बड़ी सहायता मिलती थी अराजक तथा विप्लवकारी-जनों का पता बड़ी सुगमता से लगता था प्रजा के दुख सुख तथा हानि लाभ का पूरा परिचय राजा को मिल जाता था सैनिक संगठन तो मानों इस विभाग पर ही निर्भर था इस कार्य पद्धति से ज्ञात हो जाता था कि किस गांव के कौन मनुष्य सेना में प्रविष्ट होने की इच्छा तथा योग्यता रखते हैं। *

देशभक्त होरेशस ।

[लेखक—श्रीयुत पं० सत्यनारायण जी]

(गताङ्क से आगे)

सरित द्वार पै तुरत फुरत पहुंचे जब जाई।
ठाड़े २ सम्मति करि इक युक्ति उपाई॥
समय अल्प अत्यन्त समस्या परी कठिन की।
चलै कहा तब कहो विचार विवाद करन की?
खोलि कही सब सों कौन्सल ने तबै सुनाई।
"उचिततोरिबो अवसि पुलहिं सबविधि अब भाई।
लग्यो हाथ रिपु के जेनीकूलम तुम जानौ।
अब न नगर-रक्षा को दीखत कोउ ठिकानौ"॥
एक दूत तत्काल लोटि तहँ भाजत आयो।
भयपूरित चित चकित शीघ्रता बस बौरायो॥
"शस्त्र गहौ महाराज! कसौ कटि करन लराई।
लार पोरसेना सेना सँग करो चढ़ाई॥
सुनत दूत के बैन कौन्सल ननहि फेरी।
पच्छिम लघु गिरि-माल हीय उत्कंठित हेरी॥
उमड़ि रही रजघटा घुमड़ि घनघोर मचावत।
विकट बवन्डर की बादर लों चुटिया धावत॥
ज्यों २ नियरा झुकति घनी रिपु-आंधी आई।
रज, धूल गरभगत घोर रोर त्यों परी सुनाई॥

* एक अंगरेजी लेख के आधार पर लिखित।

रनसींगा रनगीत दरप सों भरे अलापत।
हय ह्रापनु सों मिश्र कहूं कोलाहल व्यापत॥
विषदभाव सा अब दल बादल दीखत आमें।
चहुंओरनि सों छई रजमई श्याम घटा में॥
झिलमटोप-दुति झिलमिलाति पल२ चखचौंधति।
दामिनिसी असिमाल भयामिनि चहुंघाकौंधति॥
सुठिप्रकार सों दीखत सेना, ऊपर ताके।
वरन वरन के द्वादस गढ़ के लसत पताके॥
उड़त उच्चतम सुभग क्लूजियम-झन्डा भारी।
बड़े ठाठ सों, गौल अम्ब्रियन हिय भयकारी॥
लगे नागरिक अब जानन अति स्वच्छ भांति सों।
प्रति रनधीरहिं हयपट कलँगी चालि ढालि सों॥
एरीशियम नरेस सिलनियस दीस्यो आवत।
चंचल चारु सुरंग तुरंगहिं चतुर नचावत॥
ढाल चोपुटी वारो अस्टर रन-मतवारो।
कोउ न सके सँभारि जासु कटि-तेगा भारो॥
बांधे सुठि मंडील डील को पूरो ज्वाना।
आवत सब की दृष्टि परयो दुर्धर बलवाना॥
सबनि जनावत सुवरन पेटी सों निज आवनि।
दीस्यो टोलमनियस धारि सजधज मनभावनि॥
स्याह कवच तन प्रमुदितमन हरसावत सोना।
परयो लखाई वदत बैन वर नृप वरवेना॥
राजकीय फरहरा जहाँ लहकत लहरावै।
तहाँ द्विरद-रद-स्यन्दन अनुपम एक सुहावै॥
बढ़यो पोरसेना तापै नृप छत्तरधारी।
दीस्यो निरखत सारी सेना बढ़त अगारी॥
रथ दाहिनि दिसि बाजि नचावत सुभग अपारा।
लखियत चारु चिकनियाँ मेमीलियस कुमारा॥
वाम ओर लखि मूर्ति सेक्सटस अधम कुटिल की।
गगनभेदिनी उठी नगर सों ध्वनि धिक २ की॥
कोसि २ सब बाहि घृणा करि भारी मन में।
अटा चढ़ीं तिय थूकन लागीं तासु जनम में॥
देदे गारी बाल युगल कर मूठि उठावै।
लात दिखावैं तिहि दिसि दांतनि कारि बिरावैं॥
किन्तु कौन्सल के ललाट पै चिन्ता छाई।
भीमी बोली परी, गयो मुख कमल सुखाई॥
चिन्तातुर घबराय कबहु गढ-कोट निहारत।
कहत सभय कबहूं रिपु दल पै दृष्टि पसारत॥
"अरिदल अग्रिम भाग हमनु पै यदि चढ़ि धावै।
सुदृढ़ कदाचित तब लौं पुल टूटन नहिं पावै॥
जीत लेइ जो पुलहिं शत्रु दल सबल महा है।
नगर बचावन की बोलहु फिर आस कहा है॥"

क्रमशः।

वसन्त का अन्त।

(रोला छन्द)

(१)

बीत गये वासर वसन्त के, गर्मी आई।
चला गया उत्साह, उदासी कैसी छाई॥
वे सुन्दर सब दृश्य हुए हैं सपना जैसे।
प्रकृति बताती हमें "सभी है नश्वर ऐसे"॥

(२)

बनस्थली में कहीं नहीं कल कोकिल बोले।
नहिं मारुत वह मन्द सुगन्ध सुशीतल डोले॥
वे नव-पल्लव-पुष्प-गुच्छयुत कुञ्ज कहाँ हैं?
वे रसाल के मञ्जु मञ्जरी पुञ्ज कहाँ हैं?

(३)

नहिं मधुकर मधु मधुर छके मन-मौज मनाते।
नहिं ऋतुपति के आज अमितगुन गुनगुन गाते॥
'वासन्ती' यह लता सुमन बिन जानि परै यों।
अलङ्कार-शृङ्गार-हीन विधवा नारी ज्यों॥

(४)

यह 'अशोक' तो आज शोक से भरा हुआ है।
यह 'किंशुक' भी रक्त उगल अधमरा हुआ है॥
देखो, व्याकुल 'वकुल' फूल मिस अश्रु गिराता।
पीला पड़कर 'आम' हृदय को व्यथा बताता॥

(५)

'कुमुदकली' मुख मलिन किये वेकली दिखाती।
'सरसों' की दुर्दशा देखकर फटती छाती॥
सूख रहे ये 'रूख' सरसता सकल गंवाये।
ज्यों वसन्त-विरहाग्नि-ताप में हैं मुरझाये॥

(६)

यह मारुत हो विकल बिरह से धूल उड़ाता ।
लेता लंबी साँस गर्म, या लूक चलाता ॥
सहृदय 'सरसों' हृदय ताप से फटे हुए हैं ।
'जीवन' से होकर निराश जल जीव मुए हैं ॥

(७)

हाहाकार अपार यार यह मचा हुआ है ।
विश्व चराचर तीक्ष्ण ताप से तचा हुआ है ॥
क्या ईश्वर ने कोप प्रकृति पर प्रकट किया है !
या शङ्कर ने नैन तीसरा खोल दिया है !

कमलाकर

सुखमय जीवन * ।

[लेखक पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी]

(१)

है विद्या औ जन्म धन्य धरती पै तिनको ।
पराधीनता मांहि कटत नहिं जीवन जिनको ॥
कर्म, पवित्र विचारन के जिनके अति सुन्दर ।
सरल-सत्य सों मिलीं निपुनता के जा आकर ॥

(२)

बुरी वासना मन में जिनके कबहुं न आवत ।
रूप भयङ्कर धारि मृत्यु नहिं जिनहिं डरावत ॥
जगजाल में बँधे करत नहिं यत्न हजारन ।
गुप्त प्रगट निज नाम सदा विस्तारन कारण ॥

(३)

जिनहिं ईरषा होति नाहिं पर उन्नति देखे ।
चाटुकारि अनजान वस्तु है जिनके लेखे ॥
राजनीति को तत्व करत नहिं चित आकरसन ।
धर्म्म नीति के ऊपर जो वारत तन मन धन ॥

(४)

भयौ कलंकित नांहि कबहुं जिनको यह जीवन ।
विमल-विवेचन-बुद्धि विपत में बनति निकेतन ॥
खुशामदी नहिं खांय उड़ावें जिनकी सम्पति ।
औ शत्रुन कहँ प्रबल करत नहिं जिनकी अवनति ॥

(५)

परमेश्वर को भजन करत जो सांझ सबेरे ।
हरि-सेवा कों छांड़ि चहैं नहिं सुख बहुतेरे ॥
धर्म्मग्रन्थ अवलोकन में हो समय बितावत ।
साधुन के सतसंग बैठि हरि कथा चलावत ॥

(६)

नहिं उन्नति की इच्छा अरु नहिं अवनति को डर ।
आशा-बन्धन काटि भये निरद्धन्दो सो नर ॥
वसुधा-शासन भूलि करत निज मन को शासन ।
यद्यपि सो अति सुखी कहावत तऊ "अकिंचन" ॥

* (Sir Henry Walton कृत The Happy Life की छाया पर)

औक्सफ़र्ड और कैम्ब्रिज की नाविक दौड़ ।

[लेखक—श्रीयुत ओम प्रकाश-लंडन]

हिन्दुस्तानी आंखों से यदि विलायत के खेल तमाशे देखे जायें तो आनन्द से कई गुना अधिक आश्चर्य प्राप्त हो, जिस कसौटी से हमारे यहां बालक और बड़े आदमी में पहचान की जाती है यदि उसको यहां बर्ता जावे तो सारे इंगलिस्तान में गिने चुने बूढ़े निकलेंगे।

होली का तेवहार इस लिये बदनाम है कि लोगों की 'संजीदगी' टेसू के रंग में बहजाती है। परन्तु सच पूछो तो बड़े से बड़े तीज तहवार या मेलेठेले के अवसर पर भी हिन्दुस्तानी जीवन में वह 'अल्हड़ पन' और 'ज़िन्दा दिली' नज़र नहीं आती जो यहां रोज़ ही फुट बाल के मामूली मैचों में दिखाई देती है।

औक्सफ़र्ड और कैम्ब्रिज की नाविक दौड़ अब यहांके साधारण खेलों में नहीं गिनी जाती लोगों के जोश, और दिलचस्पी ने इसको एक जातीय संस्था (National institution) बना दिया है।

अप्रेल की पहली तारीख़ इसके लिये नियत थी कई महीने पहले से लोग उंगलियों पर दिन गिना करते थे।
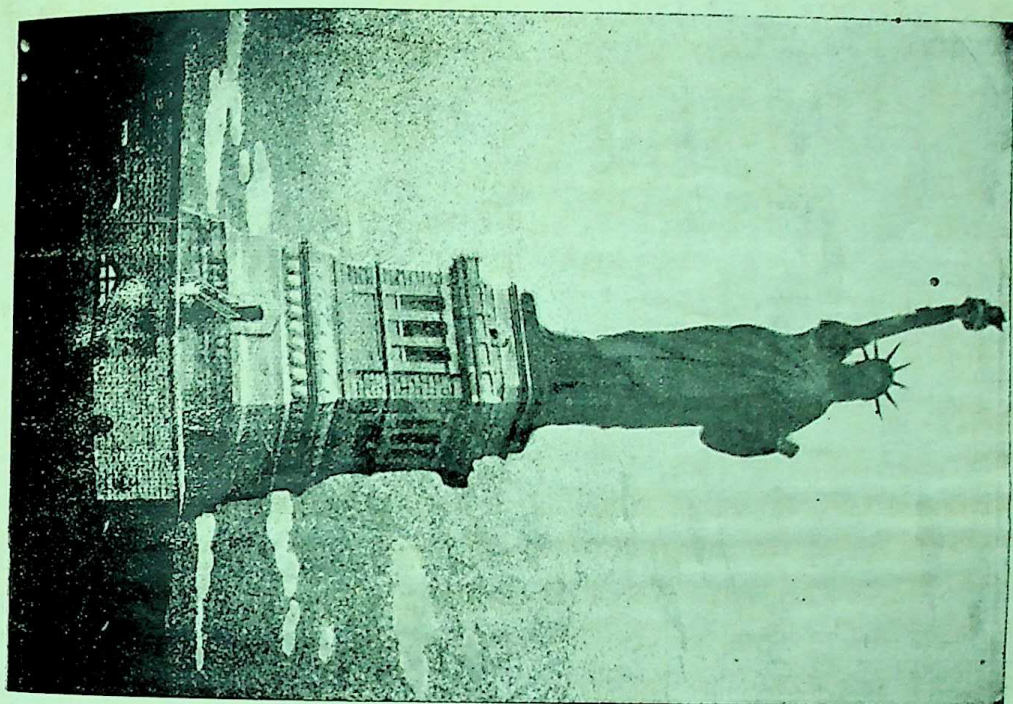
स्वतंत्रता देवी की मूर्ति न्यूयार्क।
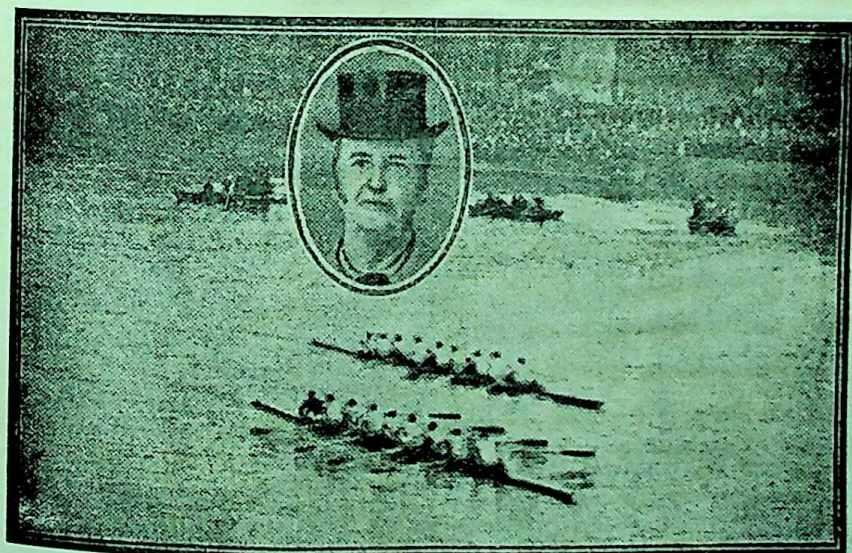
मि० डब्ल्यू० बी० उडगेट।
जिन्होंने १८६२ और ६३ में आक्सफर्ड की तरफ से नाव खेया था।

अभ्युदय प्रेस-प्रयाग।

मैं भी १ अप्रेल को जल्द खाना खाकर स्टेशन पर गया । जब मैं प्लेटफ़ार्म पर पहुंचा उस समय वहां तिल धरने तक की जगह नहीं थी, रेल आने पर तो मैं भी किसी तरह सवार हो गया, हालां कि उस कम्पार्टमेंट में सिर्फ़ १० आदमियों की गुंजायश थी परन्तु उस समय उसमें १८ से कम मनुष्य न थे । गंगा स्नान के यात्रियों की धक्कम धक्का का मज़ा कुछ २ उस दिन रेल में आगया, राम २ करके रेल चली और मुसाफ़िरों ने गीत गाने शुरू किये—१५-२० मिनट में ही सफ़र समाप्त हो गया। स्टेशन से बाहर निकलते ही यह चिन्ता हुई कि किसी अच्छी जगह से तमाशा देखना चाहिये, टेम्स के किनारे पर तो मीलों तक तमाशबीनों की दीवार खड़ी थी, उसके पीछे किनारे पर जो मकान और दूकानें थीं वह भी थोड़ी देर के लिये बैठने वालों का किराये पर दी जा रही थीं, लेकिन परले किनारे पर कम भीड़ थी । इस लिये नाव में बैठ कर मैं तो परले पार चला गया—६ आने मल्लाह को दिये, और १२ आने किनारे पर खड़े होने के । स्त्री पुरुष धीरे २ जमा होते रहे और थोड़ी ही देर में दरिया के दोनों किनारे भर गए । बहुत देर तक खड़े रहने से जी अलकसा गया था कि एकाएक लोगों ने Aeroplanes, Aroplanes (एरोप्लेन) चिल्लाना शुरू किया । ऊपर निगाह डालने से मालूम हुआ कि ५ विमान आकाश में उड़ रहे हैं। उनमें लोग ऊपर से Boat race देखने आये थे, और वे अन्त समय तक वायू मंडल में टेम्स के ऊपर इधर उधर डलाते रहे ।

कैम्ब्रिज और औक्सफ़ार्ड की किश्तियां दो बज कर बीस मिनट पर एक नियत स्थान से चलीं और आध घंटे तक पानी में बड़ी दौड़ धूप रही, जिस समय दोनों किश्तियां ठीक हमारे सामने से गुज़र रहीं थी वह भी एक विचित्र दृश्य था । उस का हाल लिखना बड़ा कठिन है । दोनों तरफ किनारों पर आदमी दरिया में झुके जाते थे, कैम्ब्रिज के भक्त कैम्ब्रिज की जय मना रहे थे और औक्सफ़ार्ड के उपासक औक्सफ़ार्ड वालों को उत्तेजित कर रहे थे, जो विद्यार्थी किश्तियां खे रहे थे उनके मन की अवस्था का अन्दाज़ा लगाना कठिन है । औक्सफ़ार्ड और कैम्ब्रिज की यूनिवर्सिटियां इंगलिश जाति की सब से बड़ी पूंजी हैं, इन्हीं यूनिवर्सिटीज़ में इस जाति के लाल शिक्षा पाते हैं, ग्लैडस्टोन, मैकाले, बर्क और एस्किथ इन्हीं कानों से निकले हुए रत्न हैं । क्या आश्चर्य है यदि वही नवयुवक जो आज किश्तियां खे रहे हैं भविष्यत में अपने देश की नाव के मल्लाह बनें । आज इनके पास लकड़ी के चक्कू हैं कल उनके पास विद्या और सदाचार का बल होगा जिसके सहारे से ये अपने जाति का बेड़ा पार लगाएंगे ।

बोट रेस (Boat race) समाप्त होनेपर औक्सफ़ार्ड के जीतने की ख़बर सारे शहर में फैल गई । कई दिन इसी का चर्चा रहा । उसी रात्रि को केम्ब्रिज और औक्सफ़ार्ड वालों ने इकट्ठे बैठ कर खाना खाया और थेटर देखा। जस्टिस इल्डन बैंक्स (Justice Eldon Bankes) जो उस जलसे के सभापति थे वह भी अपने तालिब इल्मी के ज़माने में औक्सफ़ार्ड की तरफ से Boat race में भाग ले चुके हैं। आज कल भी पार्लिमेंट के मेम्बरों में कई महापुरुष ऐसे हैं जो एक समय में औक्सफ़ार्ड अथवा कैम्ब्रिज की तरफ़ से किश्ती खे चुके हैं जैसे कि Lord Ampthil, Lord Desborough, Lord Lucas the Right Hon. R. Mckenna और Hon. Dudby Wand इत्यादि ।

सन् १८२९ में सब से पहली बोट रेस (Boat race) हुई थी । उस समय से अब तक कुल ६७ Boat race हुई हैं जिनमें ३७ बार औक्सफ़ार्ड और ३० बार कैम्ब्रिज को विजय प्राप्त हुई है ।

हर साल ज्यादः रौनक और ज्यादः शान के साथ लन्दन में यह Boat race होती है। यहां के स्त्री पुरुष ऐसे खेल तमाशों में बहुत दिलचस्पी लेते हैं। जिस रोज़ यह बोट रेस हो रही थी उसी दिन का ज़िक्र है कि यहां एक मजिस्ट्रेट साहब कचहरी में बैठे हुए थे। चपरासी मुद्दालह को बुलाने गया तो ज़रा देर हो गई। मजिस्ट्रेट साहब कहने लगे कि, "इससे अच्छा तो यह होता कि हम इतनी देर में बोट रेस (Boat Race) देख आते और आकर मुक़दमा करते" बात यह है कि जब किसी जाति में जागृति होती है तो जीवन के प्रत्येक विभाग में उसके चिन्ह दिखाई देते हैं। यह सच है कि खेल और आराम के समय में यहां के बूढ़े भी बालक बन जाते हैं परन्तु काम के वक्त बच्चों के मस्तक पर भी वह संजीदगी बरसती है कि देखने वाला दंग रह जाय।

नौलखाहार।

[लेखक-पंडित किशोरी लाल गोस्वामी]

(गतांक से आगे)

छठवां परिच्छेद।

विधि-विडम्बना!

"प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ,
विफलत्त्वमेति बहु साधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्त्तुरभू-
न्न पतिष्यतः करसहस्र मपि॥"
(शिशुपाल वध)

सेठ यमुनादास की बात सुनकर उस समय वहां पर जितने स्त्री-पुरुष एकत्र थे, उन सभों की ज़बान मानों ऐंठ सी गई और सब के सब चुपचाप टकटकी बांध कर एक दूसरे का मुंह निहारने लगे।

थोड़ी ही देर में अपना जी कुछ ठिकाने करके यमुनादास ने द्वारकादास का हाथ पकड़ लिया और बड़ी बेचैनी के साथ यों कहा,- "क्या, आप यह बतला सकते हैं कि इस भयानक रहस्य का असली मतलब क्या है?"

द्वारकादास ने अपना हाथ खैंच और कुछ रूखेपन के साथ कहा,-"क्या, आप यह बात ख़ुद नहीं समझ सकते कि यह रहस्य उस असली नौलखेहार के पचा जाने के लिये बड़ी धूर्त्तता से रचा गया है और इसके रचनेवाले धूर्त्त ने बड़ी चतुराई से उस असली हार की हूबहू नकल तयार कराई है!"

यमुनादास,-"हां, इतना तो अब मैं भी समझ रहा हूं, लेकिन यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि यह अनोखा काम किसने किया है!"

द्वारकादास,-"यह तो एक सहज बात है।"

यमुनादास,-"क्योंकर?"

द्वारकादास,-यों कि जिसने यह हार बनाया है, वही इसकी हूबहू नकल भी तयार कर सकता है।"

यमुनादास,-"हां, यह आप का कहना ठीक है, (रनछोरलाल से) क्यों, साहब! उस असली नौलखेहार को तो आपही ने बनवाया है न?"

रनछोरलाल का चेहरा इस समय बिलकुल झांवला पड़ गया था, पर फिर भी उसने अपने चेहरे की बिगड़ी हुई रंगत को बड़ी बड़ी कठिनाइयों से कुछ कुछ ठीक किया और यमुनादास के प्रश्न का यों उत्तर दिया,-"जी हां, वह हार आप के दिये हुए नक़शे के नमूने से मैंने ही तयार कराया है।"

यमुनादास,-"तो, अब यह बात भी आपको माननी पड़ेगी कि जिस कारीगर ने उस असली हार को बनाया, उसी ने किसी चोट्टे से भरपूर मज़दूरी पाकर उसी हार के जोड़ का यह नकली हार भी तयार कर दिया है!"

रनछोरलाल,-"अवश्य, यह बात हो सकती है,-और किसी तरह उस असली हार के बनाने वाले का पता पाकर घनश्याम ने ही उस हार की नकल का यह हार तयार करा लिया होगा!"

यमुनादास,-"तो अब पहिले उस हार के बनाने वाले कारीगर को आप गिरफ्तार करिए, इसके बाद फिर सारा रहस्य आपही आप खुल जायगा।"

रनछोरलाल,-"लेकिन बड़े अफ़सोस की बात है कि अब वह कारीगर यहां है नहीं। मैं ने कल ही उसे किसी काम के लिये तलाश कराया था तो मालूम हुआ कि वह कहीं बाहर चला गया है।"

यमुनादास,-"मैं समझता हूं कि अब वह यहां से भाग गया है—"

रनछोरलाल, (जल्दी से) "जी हां, यही बात मुझे भी जंचती है। क्योंकि उसने रुपये के लोभ में पड़कर बनाने को तो नकली हार बना दिया, होगा पर पीछे से यह सोचकर वह यहां से भाग गया होगा कि इन नकली और असली हारों का कहीं झमेला न खड़ा हो जाय और उसमें मुझे फँसना न पड़े।"

यमुनादास,-"मैं समझता हूं कि ऐसी हालत में घनश्याम को फिर पकड़ना होगा; क्योंकि पहिले तो उसके भाग जाने से मैं इस लिए चुप हो गया था कि जब कि मेरी चीज़ ही मिल गई, तो फिर उसके पीछे क्यों पड़ा जाय, लेकिन नहीं, अब उसे फिर पकड़ना चाहिये और साथ ही उस कारीगर की गिरफ़ारी के लिये भी कोशिश करनी चाहिये।"

रनछोर,-"ज़रूर करनी चाहिये।"

द्वारकादास,-"और साथ ही इसके उस शख्स पर भी कड़ी नज़र रखनी चाहिये, जिस की मार्फ़त वह असली हार तयार कराया गयाहै!"

यह एक ऐसी बेढब बात द्वारकादास ने कहा कि जिसे सुनते ही रनछोरलाल एक बेर तो बेत की तरह कांप उठा, पर बहुत जल्द उसने अपनी बिगड़ी हुई रङ्गत को ठीकठाक कर के झुंझलाहट के साथ द्वारकादास से कहा,-"खबरदार, ज़रा ज़बान सम्हाल कर बातें करना"।

द्वारकादास,-"मेरी ज़बान ख़ूब सम्हली हुई है।"

रनछोरलाल,-"तुम यह जानते हो कि यह हार किसने बनवाया है?"

द्वारकादास,-(मुस्कुराकर) "यह हार तो आप घनश्याम का बनवाया हुआ बतलाते हैं!"

रनछोरलाल,-(शर्मा कर) "नहीं जी, मैं इस नकली हार के निस्बत नहीं कहता; मेरा कहना उस असली हार के विषय में है।"

द्वारकादास "वह तो कदाचित् आपही का बनवाया हुआ है न!"

रनछोरलाल,-"'कदाचित्' नहीं, 'निश्चय' हो उसे मैं ने बनवाया है।"

द्वारकादास,-"जी हां, इसीलिए तो मैं ने सेठ यमुनादास जी से यों कहा ही है कि उस हार के बनवाने वाले पर भी निगाह रक्खो जाय।"

रनछोरलाल,-(गुस्से से लाल होकर) "तो तो-तो वह शख्स तो मैं ही हूं!"

द्वारकादास,-"हां, यह मैं जानता हूं।"

रनछोरलाल,-"तो, क्या मुझ पर नज़र रक्खी जायगी!"

द्वारकादास,-"क्यों न रक्खी जायगी? क्या आप अपने को केसरेहिन्द समझ रहे हैं?"

रनछोरलाल इतना सुन और घूंसातान कर द्वारकादास की ओर झपटा और उसने "पाजी, बदमाश, लुच्चा" कह कर घूंसा चला ही तो दिया, पर द्वारकादास ने उसे एक ओर ढकेल दिया और कहा,-"वे ही अश्लील शब्द मैं तुम्हारे लिये भी कह सकता हूं, पर नहीं,-तुम्हारी नीचता तुम्हें हीं मुबारक हो!"

यमुनादास,-(बीच बचाव करके द्वारकादास से) "अब बात बहुत बढ़ा चाहती है इसलिये आप कृपा कर यहां से चले जांय और इतना याद रक्खें कि उस नौलखेहार के लिये मैं नौ लाख और भी खर्च कर डालूँगा।"

द्वारकादास,-"यह बात आप रनछोरलाल से कह सकते या उन्हें धमका सकते हैं। अस्तु, अब एक दो बात और आप से कह कर मैं खुद ही यहां से चला जाऊँगा।"

यमुनादास,-"और आप को क्या कहना-सुनना है?"

द्वारकादास,-"बतलाता हूं।"

यों कहकर उसने अपने ज़ेब में से वे दोनों कागज़ के टुकड़े निकाले जो यथाक्रम से रनछोरलाल और गोकुलदास को किसी ने दिये थे; फिर उन दोनों परचों को यमुनादास के हाथ में देकर उसने कहा,-"इन दोनों परचों में से एक तो रनछोरलाल ने घनश्याम को दिखाया था और दूसरा सेठ गोकुलदास के हाथ में किसी ने दे दिया था।"

इतना कह कर उसने उन पुर्जों के पाने का सारा हाल कह सुनाया और गोकुलदास ने उनमें से एक पुरजे के पाने की बात सब के सामने स्वीकार की।

रनछोरलाल ने भी यह कहा कि,-"हां, भीड़ में मुझे भी किसी ने इन दोनों में से एक परचा दिया था।"

इसके बाद द्वारकादास ने घनश्याम के ज़ेब से एक नकली हार के गिरने और उसे ललिता के उठा लेने की बात कही, जिसे ललिता ने आगे बढ़ कर सब के सामने सकारा। इसके बाद द्वारकादास ने अपने ज़ेब से निकाल कर वह नकली हार यमुनादास के हाथ में दे दिया और यों कहा,-"महाशय, अब आप लोग इस बात पर स्वयं विचार करें कि यह कैसा षड्यंत्र है और इसमें वास्तविक दोषी कौन है?"

यमुनादास ने जब उन दोनों हारों को मिलाया, तब वे आपस में बिलकुल मिल गये। इतने में रनछोरलाल ने क्या किया कि वे दोनों परचे, जो यमुनादास को द्वारकादास ने दिये थे, उनके हाथ से लेकर फाड़ डाले। यह देख द्वारकादास ने तेवर बदल कर कहा,-

"इन रुक्कों के फाड़ डालने से होता ही क्या है? क्योंकि यहां पर जितने भले आदमी इस समय इकट्ठे हैं, वे सब इन रुक्कों के बारे में काम पड़ने पर अवश्य गवाही देंगे कि उन रुक्कों को इतने लोगों के सामने रनछोरलाल ने फाड़ डाला।

रनछोरलाल की यह हर्कत यमुनादास को भी बुरी लगी, पर उस विषय में उन्होंने रनछोरलाल से कुछ न कह कर द्वारकादास से यों कहा,-"एक दम से दो-दो नकली हारों के यों पाये जाने से मेरी बुद्धि इस समय बिलकुल जाती रही है, ऐसी अवस्था में मैं यह नहीं निश्चय कर सकता कि अब क्या किया जाय!"

इस पर द्वारकादास कुछ कहा ही चाहता था कि बीच में रनछोरलाल बोल उठा और उसने यमुनादास से यों कहा,-"जहाँ तक मैंने इस मामले में ग़ौर किया है, मुझे यही जान पड़ता है कि उस असली हार के बनाने वाले का पता पाकर और उसे भरपूर दक्षिणा देकर घनश्याम और द्वारकादास ने उसी के जोड़ के दो नकली हार तयार कराये और उन्हें अपने २ पाकेट में रख कर ये दोनों यहां पर आये और मौका देख कर इन दोनों ने या इन दोनों में से किसी एक ने उस असली हार को तो उड़ा लिया और उस के बदले में नकली हार रख दिया!"

रनछोरलाल की इस बेतुकी बात का जवाब द्वारकादास कुछ दिया ही चाहता था कि यमुनादास ने स्वयं रनछोरलाल को यों फटकारना शुरू किया,-"इस समय आप को बातें बहुत ही बेढङ्गी और बेतुकी हो रही हैं! आपके मुँह में जो कुछ इस समय आ रहा है, उसे आप बिना

आगा पीछा सोचे, बेखटके बकते चले जारहे हैं, किन्तु आपके लिए यह ठीक नहीं, क्योंकि कोई भी सभ्य व्यक्ति सभ्य समाज में इस ढङ्ग का सम्भाषण कभी भी न करेगा। ज़रा आप सोचें तो सही कि-जब उस असली हार के गायब होने का शोर मच रहा था, ठीक उसी समय घनश्याम के ज़ेब से एक नकली हार गिर गया, जिसे ललिता ने चुपचाप बगैर घनश्याम से कुछ कहे सुने, उठा लिया और उसे द्वारकादास के हवाले किया, जैसा कि अभी द्वारकादास और ललिता ने कहा है। इसके बाद ही आप को और सेठ गोकुलदास को गुमनाम पर्चे मिले, जिन पर गोकुलदास जी ने तो कुछ भी विश्वास न किया, पर आपने उसपर विश्वास करके मेरे सामने ऊपर वाले कमरे में, घनश्याम के अङ्ग प्रत्यङ्ग की तलाशी ली, पर वह असली हार उसके पास न मिला। इसके बाद ही एक चोगे के ज़ेब में से आपने एक हार बरामद कर के मुझे दिया और चोगे को घनश्याम का चोगा बताया, जिससे वह इन्कार करता था। निदान, वह हार मुझे आपने देकर यों कहा था कि,–अब इसे किसी को दिखलाने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि शायद कहीं कोई फिर इसे न चुरा ले; इस लिये इसे अपनी लड़की गङ्गाबाई के गले में पहना दीजिये।' बस, आप की बातों में आकर और उस समय स्वयं अन्धे बन कर मैंने उस हार को गङ्गाबाई के गले में डाल दिया था, जो अब तक बराबर इसके गले में ही था; और द्वारकादास के बहुत आग्रह करने पर भी फिर मैं ने उस हार को गङ्गा के गले से नहीं उतारा था; क्योंकि ऐसा करने में आप बड़ी २ बाधाएँ उपस्थित करते थे। सो, जिस हार को आपने घनश्याम के चोगे में से खुद बरामद करके मुझे दिया था, वह अब बिल्कुल नकली साबित हो गया, और उसी के जोड़ का एक दूसरा नकली हार द्वारकादास जी ने अब दिया है, जो घनश्याम के ज़ेब में से गिरा था और जिसे ललिता ने उठाकर द्वारकादास को दिया था। ऐसी अवस्था में यह बात सोचने की है कि जब कि आप घनश्याम के अङ्ग प्रत्यङ्ग की तलाशी ले ही चुके थे तो फिर वह असली हार गया किधर! क्योंकि घनश्याम के पास तो वह नहीं था! फिर जिस चोगे को आपने घनश्याम का बताया था और जिसके ज़ेब में से आप ने उस हार को खुद बरामद करके मुझे दिया था और उसे किसी को न दिखलाने की सम्मति भी दी थी, वही हार अब बिलकुल नकली हो गया! अब आप ही बतलाइये कि इसमें घनश्याम और द्वारकादास कहां तक दोषी ठहराये जा सकते हैं और आप कहां तक निर्दोष साबित हो सकते हैं! क्योंकि इस हार के मामले में जैसी सरगरमी आपने दिखलाई, वैसी और किसी ने नहीं; और पहिले तो आप हर तरह से घनश्याम ही को कसूरवार ठहराते थे, पर अब द्वारकादास को भी लपेटना चाहते हैं! क्या फरियादी और जज दोनों आप ही बनना चाहते हैं! ख़ैर, जो कुछ हो, पर मैं तो अब आप पर भी ज़रूर शक करूँगा और इस मामले में आप को भी लपेटूँगा।"

इतना कहते कहते मारे गुस्से के उनका चेहरा लाल हो आया और फिर उन्होंने किसी की ओर मुख़ातिब न होकर विवाह का कृत्य पूरा करना प्रारंभ किया। हां, यह बात ज़रूर थी कि उन्होंने उन दोनों नकली हारों को हिफ़ाज़त के साथ अपने आयरनसेफ़ में बंद कर दिया था और विवाह हो जाने के बाद अपनी बेटी गंगाबाई को बिना नौलखाहार पहिराए ही विदा किया था, क्योंकि इस समय उस हार का पता ही कहां था।

वास्तव में, जैसे आनन्द के साथ इस विवाह का प्रारंभ हुआ था, उससे कहीं बढ़कर निरानन्द के साथ वह किसी किसी तरह पूरा किया गया; और जितने सज्जन इस विवाह में निमंत्रित होकर आए थे, वे सभी बहुत ही

मर्माहत, क्षुभित, दुःखित और पश्चात्ताप-पीड़ित होकर अपने अपने घर गए थे। उनमें से अधिकांश लोग दो दो बार विवाह मंडप में आग लगने को ही इस निरानन्द का कारण बतलाते थे और सभी लोग रनछोरलाल की पेचीदी चालों की भी समालोचना करने लग गए थे।

क्रमशः।

राजा चेतसिंह।

[गताङ्क से आगे]

[लेखक—चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्म]

सन् १७८० ई० में राजा चेतसिंह से फिर पांच लाख रुपये तलब किये गये। साथ ही सीन्धिया की सेना का सामना करने के लिये उनसे अश्वारोही सेना भी माँगी गई। बङ्गाल की सरकार की इन कार्रवाइयों से स्पष्ट विदित होता है कि वह भीतर राजा साहब से अप्रसन्न थी और उनके सर्वनाश का बहाना ढूंढ़ रही थी। सो ज्योंही वार्षिक राजस्व चुकाने का समय आया त्योंही "समय पर राजस्व न देने" का अपराध चेतसिंह पर लगा हेसटिङ्गज़ साहब ने चौबीस घण्टे के भीतर कम्पनी का सब रुपया चुकाने की उन्हें आज्ञा दी। रुपये की निरन्तर माँग से काशी राज्य डाँवाडोल हो ही रहा था। अतः कौंसिल ने हेसटिङ्गज़ साहब ही को वहाँ की सुव्यवस्था के लिये काशी भेजा। राजा चेतसिंह के मामले को तै करने का हेसटिङ्गज़ साहब को सोलहों आना अधिकार दिया गया। राजा के साथ समझौता करने को नहीं बल्कि उनका सर्वनाश करने की बात हेसटिङ्गज़ साहब ने अपने मन में पहले ही ठान ली थी। आपने अपने एक पत्र में लिखा है :—

I resolved to draw from this guilt the means of relief of the Company's distresses, to make him pay largely for his pardon, or to exact a severe vengeance for past delinquency.

अर्थात् हेसटिङ्गज़ साहब ने अपने मन में यह बात ठान ली थी कि या तो राजा चेतसिंह को उसके अपराध के लिये दण्ड देकर और दण्ड स्वरूप उससे विपुल धनराशि लेकर कम्पनी का आर्थिक कष्ट दूर करेंगे अथवा धन न मिलने पर राजा चेतसिंह से उसके अपराधों का चुपके चुपके कठोर बदला लेंगे। या यों भी कह सकते हैं कि हेसटिङ्गज़ साहब ने कलकत्ते से रवाना होने के समय स्थिर कर लिया था कि राजा चेतसिंह से पहले रुपये माँगेंगे। रुपये यह देही न सकेगा। अन्त में आज्ञाभङ्ग का दोष उसके मत्थे मढ़ कर उसकी सारी स्थावर जङ्गम सम्पत्ति अपहृत कर लेंगे। साराँश यह है कि हेसटिङ्गज़ साहब ने कलकत्ते से रवाना होने के पूर्व राजा चेतसिंह के सर्वनाश का बीड़ा उठाया था। राजा चेतसिंह हेसटिङ्गज़ साहब की प्रकृति से भली भाँति परिचित थे। अतः उनके काशी आने का समाचार सुन कर, राजा चेतसिंह की चिन्ता और व्याकुलता की सीमा नहीं रही। वे फौजफाँटा सहित नावों का बेड़ा साथ ले हेसटिङ्गज़ साहब की अगवानी के लिये निज राजधानी काशी से साठ मील आगे बक्सर पहुंचे। वहाँ पहुंच कर उन्होंने गवर्नर-जनरल का यथोचित आगत स्वागत किया और अपराधी न होने पर भी, अङ्गरेज़ों की अपने ऊपर अप्रसन्नता के लिये दुःख प्रकाशित किया। हेसटिङ्गज़ साहब को प्रसन्न करने और उनके हृदय में दया उत्पन्न करने के अभिप्राय से, निज मान मर्य्यादा को जलाञ्जलि दे—चेतसिंह ने अपने सिर की पगड़ी उतार कर हेसटिङ्गज़ साहब के सबूट चरणों* पर रख दी और बार बार प्रार्थना की कि आप ऐसी कोई कार्रवाई न करें जिससे मेरी प्रजा की दृष्टि में, मेरी पद मर्य्यादा नष्ट हो और मेरी इज़्ज़त आबरू में टाँका लगे।

---

* अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक पगड़ी का गोदी (lap) में रखा जाना लिखते हैं, पर इस देश की प्रथा पगड़ी को चरण पर रखने की है।

लोग कहा करते हैं कि "कुत्ते की दुम भले ही बीस बरस लों ज़मीन में गाड़ दो-पर जब निकालोगे तब टेढ़ी ही निकलेगी। सो कहना न होगा कि राजा चेतसिंह के लाख अनुनय विनय करने पर भी हेसटिङ्गज़् साहब के मन का टेढ़ापन सीधा न हो सका। बल्कि हेसटिङ्गज़् साहब ने कड़ाई और रुखाई के साथ राजा चेतसिंह के साथ बात चीत करनी आरम्भ की। "तरुणीकच इव नीचः कौटिल्यं नैव विजहाति"।

राजा चेतसिंह को साथ लिये हुए हेसटिङ्गज़् साहब ने १५ अगस्त सन् १७८१ ई० को काशी पहुंचकर माधवबाग़ में आपने डेरा डाला। अनन्तर उन्होंने राजा चेतसिंह को एक पत्र लिखा। पत्र में राजा चेतसिंह पर कई एक दोष लगाये और रुपये अदा करने का उन्हें अन्तिम अवसर दिया। पत्र पा कर राजा साहब ने सफ़ाई पेश की। पर हेसटिङ्गज़् साहब रुपये चाहते थे; सफ़ाई नहीं। अतः आपने चेतसिंह को हिरासत में कर लेने का उसी दम हुक्म दिया; उन्हें नज़र बन्द रखने के लिये दो कम्पनी सेना को हुक्म दिया गया।

क्रमशः।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

प्राचीन समय में मनुष्यगणना।

इस संख्या में छपे हुए एक लेख से पाठकों को विदित होगा कि हमारे पूर्वजों को यह मालूम था कि मुल्की इन्तज़ाम के लिये मनुष्य गणना आवश्यक है। पश्चिमीय शिक्षा में दीक्षित बहुत से हमारे भाई तथा विध्यान्धकार से ग्रसित हमारे अधिकांश भारतवासी जिन्हें अपने पुराने ग्रन्थों को देखने का कभी सौभाग्य नहीं हुआ है यह समझते हैं कि मनुष्य गणना प्राचीन समय में नहीं की जाती थी। केवल भारतवर्ष ही में नहीं किन्तु अन्यान्य देशों में भी जैसे चीन, इजिप्ट, आदि में मनुष्य गणना का क्रम वर्तमान था यद्यपि इसके लिये कोई नियमित समय न था न केवल राजनैतिक उद्देश्य ही से वह गणना की जाती थी। रोम में पहिले पहल हर पांचवें वर्ष इसका होना स्थिर हुआ था।

साहित्य सम्मेलन।

पाठकों को विदित होगा कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन प्रयाग में होने वाला है। साहित्य सम्मेलन का होना कितना आवश्यक है इसे सब पाठक स्वयम ही समझते हैं। सम्मेलन के होने से ही साहित्य की उन्नति हो सकती है और साहित्य के उन्नति ही पर और सब उन्नति निर्भर हैं। सम्मेलन का ईद के छुट्टियों में ही होना अच्छा है। सभापति पं० बदरी नारायण चौधरी या पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी को चुनना चाहिये।

साहित्य सम्मेलन को यह भी उचित है कि वह कोई ऐसी संस्था निर्माण करे जिस की आज्ञा सम्पादक समाज को मान्य हो नहीं तो ये आपुस में व्यक्तिगत झगड़े लड़ लड़ कर तथा गाली गलौज से अपने पत्रों को कलुषित कर हिन्दी को रसातल में पहुंचा देंगे उस अवस्था में साहित्य सम्मेलन ही हिन्दी का क्या उद्धार कर सकैगा।

भारत की आवश्यकताएं।

स्टेटिस्ट नाम के अङ्गरेजी मासिक पत्र में प्रायः भारत के हित की बातों का उल्लेख रहता है। अबकी बार उसमें एक लेख है जिसमें यह बतलाया गया है कि भारत को सब से अधिक किन बातों की आवश्यकता है। उसने बतलाया है कि (१) वर्नाक्यूलर्स द्वारा विद्या प्रचार (२)

आबपाशी (३) और आसानी के साथ और सस्ते से सस्ते दामों में चीज़ों के भेजने और मंगाने आदि का प्रबन्ध, यही भारत की सबसे अधिक आवश्यक वस्तु हैं । निस्सन्देह वृद्ध वयस में विद्या नीति, जल और उठाने धरने में जिस से कष्ट न हों ऐसे ही साधनों की आवश्यकता होती है ।

आइरिश पार्टी और राजतिलकोत्सव ।

आइरिश पार्टी ने तय कर लिया है कि वे सब राजतिलकोत्सव में सम्मिलित न होंगे । इस बात को निर्णय करने के लिये हाउस आफ कामन्स के १६ नंबर के कमेटी रूम में मि० जान रेडमंड के सभापतित्व में एक सभा हुई थी और यह बात सर्व सम्मति से तय पाई गई ।

"Ever since the foundation of the united Irish party, under Mr. Parnell's leadership, in 1880, it has been the settled practice and rule of the party to stand aloof from all Royal or Imperial festivities or ceremonies, participation in which might be taken as a proof that Ireland was satisfied with, or acquiesced willingly in the system of Govt. under which, since the union, she has been compelled to live. In accordance with this policy members of the Irish party took no part in the Jubilee of Queen Victoria or in the Coronation of Edward VII. Since the date of these ceremonies circumstances have vastly changed and cause of the Irish party, to fight for which the Irish party was created, is now on the eve of Victory. A great majority of the people of great Bretain and the parliaments and peoples of the self governing colonies are friendly to the cause for which the Irish party stands.

In vew of these facts, it would be a great source of satisfaction to us if we could as the representatives of the Irish nation took our place side by side with representatives of the other great component parts of the Empire on the Coronation of King George.

But with deep regret we are compelled to say that the time has not yet come when we feel free to join with the representative of the King's subjects on this great occasion.

We are the representatives of a country still deprived of its constitutional rights and liberties, and in a condition of protest against the System of Govt. under which it is compelled to live and as such we feel we have no proper place at the Coronation of King George, and would lay ourselves open to the gravest misunderstanding by departing on this occasion, from the settled policy of our party. Entertaining as we do the heartiest good wishes for the King, and joining with the rest of his subjects in the hope that he may have a long glorious reign, and ardently desiring to dwell in amity and unity with the people of Great Bretain and the empire, who living under happier conditions then existed in our country, will stand round him at the ceremony of his coronation, we feel bound, as representatives of a people who are still denied the blessings of self Govt. and freedom, to stand apart and await with confident hope the happier day of Irish self Govt. now close at hand.

We are sure our people will receive the King on his coming visit to Ireland with the generosity and hospitality which

are traditional with the Irish race. And when the day comes that the King will enter the Irish capital to reopen the ancient Parliament of Ireland we believe he will obtain from the Irish people a reception as enthusiastic as ever welcomed a British monarch in any part of his dominion."

"जब से स० १८८० ई० में मि० पारनेल की अध्यक्षता में 'यूनाइटेड आइरिश पार्टी' स्थापित हुई तब से इसका यह निश्चित नियम चला आया है कि यह पार्टी समस्त राजकीय और अधिराजिक उत्सवों तथा रीति रस्मों से अलग रहे जिन में भाग लेने से यह समझा जा सकता है कि आयरलैंड उस राज्यप्रणाली-से प्रसन्न है अथवा उसे जो से चाहता है जिसके अनुसार, राज्यों के संयुक्त होने के समय से उसे ज़बरदस्ती रहना पड़ता है। इसी नियम के अनुसार 'आइरिश पार्टी' के सदस्य गणों ने न महाराणी क्वीन विक्टोरिया की जुबिली में और न महाराजा एडवर्ड सप्तम ही के राजतिलकोत्सव में कोई भाग लिया था। परंतु तब से अब समय बहुत बदल गया है और 'आइरिश पार्टी' का वह उद्देश्य जिस के लिये वह स्थापित की गई थी तथा जिस के लिये वह लड़ रही है, फलीभूत होने के बहुत समीप पहुंच गया है। समस्त ग्रेट ब्रिटेन की अधिकांश प्रजा, पार्लिआमेन्ट तथा स्वाधीन उपनिवशों के लोग 'आइरिश पार्टी' के उद्देश्य से सहानुभूति रखते हैं।

ऐसी दशा में यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात होती यदि महाराजा पंचम जार्ज के राजतिलकोत्सव के अवसर पर ब्रिटिश राज्यान्तरगत और देशों के प्रतिनिधियों के समान हम लोग भी आइरिश जाति के प्रतिनिधि स्वरूप उनके साथ २ सम्मिलित होते परन्तु हमें अत्यन्त शोक के साथ कहना पड़ता है कि अभी वह समय नहीं आया है कि जब हम स्वतंत्रता के साथ महाराजा की प्रजा के प्रतिनिधि होकर ऐसे महान अवसर पर सम्मिलित हो सकें।

हम लोग एक ऐसे देश के प्रतिनिधि हैं जिसे अब तक अपने स्वाभाविक स्वत्व और स्वतन्त्रता नहीं मिली है और इस राज्य प्रणाली की विरुद्धता की दशा में जिस के आधीन उसे रहना पड़ता है हमें ऐसा मालूम होता है कि महाराज पंचम जार्ज के राजतिलकोत्सव' में हमारे लिये कोई उपयुक्त स्थान नहीं है और इस लिये हम लोग अपनी पार्टी के नियमानुसार ऐसे अवसर पर अलग रहेंगे। महाराजा के लिये हमारी हार्दिक और उत्तम कामनाएं हैं तथा उनकी और प्रजा के साथ हम भी चाहते हैं कि वे बहुत दिनों तक प्रतापवान राज्य भोगते रहें तथा इसके साथ ही हम उत्ताप पूर्वक यह चाहते हैं कि ग्रेट ब्रिटेन तथा अन्य अधिराज्यों के लोगों के साथ हमारी मैत्री और एकता बनी रहे जो अधिक उत्तम दशा में हैं (जो हमारे देश में भी थी) और महाराज के तिलकोत्सव में सम्मिलित होंगे। क्योंकि हम एक ऐसी प्रजा के प्रतिनिधि हैं जिसे अब तक स्वराज्य शासन और स्वाधीनता का अधिकार नहीं दिया गया है इस लिये हम को इस सुनिश्चित आशा के सहित इससे अलग रहना पड़ता है कि आयरलैन्ड में स्वराज्यशासन का सुखमय दिन अब बिलकुल नज़दीक है।

हमें निश्चय है कि महाराज के आयरलैंड में आगामी आगमन के समय हम लोग उदारता और सत्कार के साथ (जो गुण हमारी जाति में परम्परा से विद्यमान हैं) उनका स्वागत करेंगे और जब वह दिन आवेगा जब महाराज आयरिश राजधानी में उसकी पुरानी पार्लिआमेन्ट खोलने के लिये आवेंगे तब तो हमें विश्वास है कि आयरलैन्ड की प्रजा उनका इतनी उत्साह से सत्कार करेगी कि जितना कि ब्रिटिश महाराज का उनके राज्यान्तर्गत किसी देश के निवासियों ने कभी भी किया हो।

मर्यादानुकूल आन्दोलन की शक्ति और महत्व भी इससे प्रकाशित होता है। हमको विश्वास है कि आयरिश दल के नेताओं के इस प्रस्ताव को पढ़ कर सब से अधिक प्रभाव राजराजेश्वर जार्ज पञ्चम पर पड़ेगा, आयरलैण्डनिवासियों की राजकुल में प्रीति राजभक्ति और देशभक्ति की मिली हुई धारा को बहते देख उनकी राजभक्ति से सन्तोष होगा और इस बात का खेद होगा कि कारोनेशनके पहिले ही उन्हें पार्लीमेण्ट न देसके। दृढ़ राजभक्ति के साथ अपने स्वत्वों का पूरा ज्ञान और उनके साधव का पूरा संकल्प रखने का आयरिश दल के नेताओं का यह प्रस्ताव एक स्मरणीय उदाहरण है। जिन शब्दों में आयरिश दल के नेताओं ने अपने ऊंचे और गम्भीर भावों को प्रकाश किया है उनसे उनकी राजनीतिज्ञता का पूरा प्रकाश होता है।

केनाडीयन गवर्मेंट और भारतवासी।

जिसमें स्वयं कुछ शक्ति नहीं है, जिसमें स्वाभिमान नहीं है, जिसको जाति स्वतन्त्र नहीं है, और जो परतन्त्र है उसका आदर संसार में कहीं भी नहीं होता। भारतवासियों को जो दक्षिण अफ्रिका में दुःख भोगना पड़ रहा है उसे तो पाठक जानते ही हैं। उसी प्रकार से भारतवासियों को केनाडा में भी दुःख भोगना पड़ रहा है। केनाडा का कानून है कि जो हिन्दुस्तानी भारत से सीधा केनाडा न जाय वह वहां नहीं जाने पाता। साफ २ शब्दों में इसका यह तात्पर्य है कि केनाडा में हिन्दुस्तानी न जावें क्योंकि भारत से केनाडा जाने का कोई सीधा रास्ता है ही नहीं। केवल यही नहीं यदि किसी जापानी के पास ५० डालर हों तो वह केनाडा में पैर रख सकता है किन्तु किसी हिन्दुस्तानी के पास जब तक २०० डालर न हों वह केनाडा में नहीं जा सकता। जापानियों और हिन्दुस्तानियों में इतना अन्तर क्यों है? क्योंकि जापानी स्वतन्त्र हैं यदि उनका अपमान किया जाय, यदि उनके साथ अन्याय हो तो जापान साम्राज्य उनके मदद के लिये खड़ा होजाय, और पाठक जानते ही हैं "टेढ़ जान शङ्का सब काहू" किन्तु भारतवासी स्वतन्त्र नहीं हैं, उनको कहीं तीन तेरह में गिनती नहीं है। अङ्गरेज़ी गवर्मेण्ट न दक्षिण अफ्रिका की गवर्मेंट को न कनेडियन गवर्मेंट ही को भारतवासियों के लिये नाराज कर सकती है। ऐसी अवस्था में सिवाय इसके कि हम इन स्थानों में न जांय कोई चारा नहीं है या यदि जाना ही हमे अभीष्ट है तो भारतवर्ष में पहिले हम कनजोनियल गवर्मेंट प्राप्त करलें और जब हमारी भी संसार में कुछ सत्ता हो जायगी तब हम जहां चाहें जा सकेंगे।

भारत और इम्पीरियल कान्फरेन्स।

भारतवर्ष को इम्पीरियल कान्फरेन्स में कोई स्थान नहीं मिला। क्यों? क्योंकि आज भारतवर्ष ही के कारण इङ्गलैण्ड साम्राज्य हो रहा है, क्योंकि भारतवर्ष ही के कारण महाराज पञ्चम जार्ज किङ्ग (King) से इम्परर (Emperor) हैं, क्योंकि इङ्गलैंड प्रभु है और भारत दास है और प्रभु और दास का एक साथ बराबर बैठना ठीक नहीं खास कर जब कि अन्देशा इस बात का हो कि दास अपने हित की बातों के कहने में अपने प्रभु के अहित की बात न कह बैठे। कालस्य कुटिलागतिः हमारे प्रतिनिधि बन कर भारत सचिव कान्फरेन्स में बैठेंगे। भारत सचिव हमारे शासक हैं, हमारे प्रभु हैं वे हमारे प्रतिनिधि नहीं कहे जा सकते हमारा प्रतिनिधि हमी में से कोई हो सकता है वह चाहे हिन्दू हो मुसलमान या ईसाई किन्तु उस में इतना होना बहुत आवश्यक है कि उसने भारतवर्ष में जन्म लिया हो, भारत के मिट्टी और वायु से पला हो, हमारे सुख दुख को हमारी भांति समझ सकता हो और जिसे भारत के हित के सामने किसी के हित की चिन्ता न हो। १९०७ में इसी कान्फरेन्स में भारत की क्या

दशा हुई थी। भारत सचिव तो कान्फरेन्स में गये ही नहीं। इण्डिया आफिस के एक सभ्य सर जेम्स मेके गये थे। इनके लिये यह कहना अत्युक्ति न होगा कि इण्डिया आफिस के सभ्यों में आप सब से अयोग्य थे। आप न तो भारत गवर्मेंट ही के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं, न उन अङ्गरेज़ों के ही जो भारतवर्ष में रहते हैं। भारतवर्ष के प्रतिनिधि होने की बात तो दूर रही यह कहना कठिन प्रतीत होता है कि सर जेम्स मेके किस के प्रतिनिधि थे। आपने भारतवर्ष में निःशुल्क व्यापार के समर्थन में कुछ कहा था। इससे हम तो यही समझते हैं कि वे लंकाशीयर या मन्चेस्टर के प्रतिनिधि थे। अब देखना है कि अब की बार क्या होता है?

स्कूलों में फीस।

यद्यपि युक्त प्रान्त सब प्रान्तों से बहुत सी बातों में बहुत ही पिछड़ा हुआ है तथापि हमारी युक्त प्रान्त की गवर्मेण्ट अपनी कार्रवाइयों से बहुत से कामों में इस प्रान्त को अगुआ किये रहती है। हम अङ्गरेज़ जाति में लार्ड कर्ज़न को सदा धन्यवाद देते हैं क्योंकि यदि वे भारतवर्ष में न आये होते तो हमें सन्देह है कि देश में जो जागृति फैली हुई है वह होती या न होती। इसी प्रकार से हम युक्त प्रान्त की गवर्मेण्ट के भी ऋणी हैं जो कभी २ खस की टट्टियों और आरामगाहों में सोते हुये युक्त प्रान्त निवासियों के शरीर में भी अपने कामों की लू बहाकर गर्मी पैदा कर देता है। इस समय जब कि देश में मि० गोखले के अनिवार्य शिक्षा बिल का ज़ोर शोर से समर्थन हो रहा है और मुफ्त शिक्षा के लिये चारो तरफ से पुकार हो रही है हमारी गवर्मेंट ने मि० स्टूअर्ट के सभापतित्व में एक सभा बैठाई है जो स्कूलों में फीस बढ़ाने का विचार करेगी। भारतवर्ष में ३० फी सदी ऐसे लड़के हैं जो फीस देकर नहीं पढ़ सकते हैं, ५० फी सदी ऐसे हैं जिनके माता पिता बहुत सी कठिनाइयों को सह कर किसी प्रकार से फीस देते हैं २० फी सदी ऐसे हैं जो सहल में फीस दे सकते हैं। यदि फीस बढ़ा दी गई तो ३० फी सदी का तो कहीं ठिकाना ही न रहेगा, ५० फी सदी जो हैं उनमें से कम से कम आधे निकल जायंगे, बाकी २० फी सदी जो बचे उन्हें फीस देने में यद्यपि कोई कठिनाई न होगी किन्तु इनसे देश को बहुत कम लाभ होता है। बहुतेरे तो केवल स्कूल जाने के लिये पढ़ते हैं और थोड़ा बहुत पढ़ कर घर बैठ निज का काम देखते हैं इनमें से बहुत कम ऐसे होते हैं जो वास्तव में विद्या प्राप्त कर देश का या समाज ही का कुछ हित कर सकें। समाज का हित करने वाले तथा वास्तव में विद्या प्राप्त करने वाले जो ३० फी सदी और ५० फी सदी लड़के हैं उनमें से प्रायः निकलते हैं किन्तु फीस बढ़ जाने से ये पढ़ न सकेंगे। इससे प्रजा में यह भाव फैलेगा कि गवर्मेण्ट विद्या प्रचार नहीं चाहती और यह राजा और प्रजा दोनों के लिये अहितकारी होगा।

म्युनिसिपैलिटियों में मुसलमान प्रतिनिधि।

वज़ीराबाद पञ्जाव की म्यूनिसिपैलिटी में मुसलमान मेम्बर बहुत हैं। वहां के हिन्दुओं और सिक्खों ने वहां के लाट सर लुई डन के पास मेमोरियल भेज कर प्रार्थना की हिन्दुओं का नम्बर बढ़ा दिया जाय। लाट साहेब ने उन की प्रार्थना को यह कह अस्वीकार किया कि वज़ीराबाद में मुसलमानों की संख्या अधिक है और इस कारण उनके प्रतिनिधियों का भी अधिक संख्या में रहना उचित है। अङ्गरेज़ी में एक कहावत है "Where there is a will there is a way" जब मनुष्य कुछ करना चाहता है तो उस कार्य के करने के लिये मार्ग ढूढ़ने में कठिनाई नहीं होती। आज कल मुसलमानों के साथ तरफदारी करने का मर्ज़ बढ़ रहा है और जब तक यह रहेगा न्याय नहीं हो सकता। वज़ीराबाद में मुसलमान अधिक

हैं इस कारण से उनके प्रतिनिधि भी अधिक संख्या में होना चाहिये। भारतवर्ष में मुसलमानों की संख्या कम है इस कारण से उनके स्वत्वों की रक्षा करने के लिये मुसलमानों के प्रतिनिधियों का अधिक संख्या में रहना आवश्यक है। हा हिन्दू और मुसलमान जाति। क्यों तुम लोग इन छोटी २ बातों के लिये यों लड़ते हो। म्युनिसिपैलिटी के मेम्बरी में क्या रक्खा है। जितना समय तुम लोग इस में खोते हो यदि उतनाही समय तुम अपने स्कूल में जाकर पढ़ाओ तो तुम्हारे समय का भी सदुपयोग हो और तुम्हारे कितने ही गरीब भाइयों का उपकार हो जाय। यह सत्य है कि मेम्बरी से कभी २ तुम रायबहादुर और खान बहादुर हो जाते हो इन निस्सार अक्षरों का तुम्हारे नाम के साथ समावेश हो जाता है और मेम्बर न होने से यह सौभाग्य तुम्हें न प्राप्त होगा किन्तु तुम्हारा नाम भारतवासियों और तुम्हारे गरीब भाइयों के हृदयों में अमिट अक्षरों में लिख जायगा और भारत इतिहास में तुम्हारा नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा रहैगा—यदि बिना आपस में वैमनस्य पैदा किये तुम मेम्बरी कर कुछ देश का उपकार कर सको तो करो किन्तु मेम्बरी के लिये लड़ने से आपस की फूट बढ़गी वैर बढ़ेगा, एकता भागेगी और एक राष्ट्र का निर्माण करना असंभव हो जायगा।

भारतवर्ष का व्यापार।

पिछले अप्रेल से पिछली २८ फरवरी तक में यहां के व्यापर का यह व्योरा है:-

माल बाहर गया।

हिन्दुस्तान की पैदावर तथा बनाई हुई चीज़ें	...	१८९,३२६६,०३१
बुलियन	...	६७४,८६,८०८
गवर्मेन्ट पेपर	...	१,११,१६,३००
	पाउन्ड	१६५,१८,६,१३६

माल आया।

बनी हुई चीज़ें	...	११६,६३,२०,७०५
बुलियन	...	३४,३७,३३,८५८
काउन्सिल बिल और	...	३२,६०,३६,०००
गवर्मेन्ट पेपर	...	२२,८३,६०,३००
इजिप्त और अस्ट्रेलियासे गिनी आई		२,१३,५०,०००
	पाउन्ड	१८८,८७,६६,८६३

शुद्धाशुद्ध पत्र।

पृष्ठ		पंक्ति		अशुद्ध		शुद्ध
६४	...	२७	...	जसो	...	जैसी
”	...	८	...	आय धर्म	...	आर्य धर्म
”	...	३०	...	१६	...	१७
”	...	३१	...	मग्न	...	भग्न
”	...	३३	...	सुल्तान का मुहम्मद	...	सुल्तान मुहम्मद
६५	...	११	...	हाने	...	होने
”	...	१५	...	क	...	के
७०	...	२८	...	लन्दन	...	लंडन
७८	...	१७	...	भिक्षक	...	भिक्षुक
”	...	१६	...	महात्म्य	...	महात्म
७६	...	२३	...	होगा	...	होगा।
८०	...	२५	...	निर्जीवन	...	निर्जीविता

अभ्युदय प्रेस प्रयाग में ब्रजी प्रसाद पांडे द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशित।

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग २] आषाढ़–जुलाई सन् १९११ [संख्या ३

शासन सम्बन्धी वार्तालाप।

[लेखक-श्रीयुत् सत्यदेव एमरिका।]

आज रविवार था। सब मिलें बन्द थीं। भारतीय बन्धुओं को भी आज छुट्टी थी। नियत समय पर मैं उन लोगों से मिलने गया, क्योंकि पिछले रविवार को सब भाइयों ने आने का वायदा किया था।

ज़ब मैं पहुंचा तो बहुत से लोग आ चुके थे। हालां कि आने का समय दोपहर तीन बजे रक्खा गया था और अभी दस बारह मिनट तीन बजने में बाकी थे मगर तो भी बहुत से लोग आगये थे। ठीक तीन बजे करीब करीब सभी लोग आगये और काम आरम्भ हुआ।

यह सब लोग आज क्यों इकट्ठे हुये थे। कारण यह था कि पिछले सप्ताह मैं ने इन लोगों से 'शासन विज्ञान' पर बातचीत करने की इच्छा प्रगट की थी। इन लोगों को शासन विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं था और होता भी कैसे जब निन्यानबे फी सदी क, ख, ग भी नहीं जानते। मेरा विचार था कि इन मज़दूर भाइयों को 'प्रतिनिधि सत्ताक राज्य' की महिमा का रहस्य बताया जावे ताकि ये लोग शासन संबन्धी विषयों में मन लगावें। क्योंकि जब तक मजदूर लोग और सर्वसाधारण व्यक्ति इन बातों पर विचार नहीं करते, तबतक हम शिक्षित लोगों का पढ़ना कुछ ऐसा लाभकारी नहीं हो सकता। इसी बात को सामने रख कर आज की सभा की गई थी।

सब से पहिले खड़े होकर मैंने सब भाइयों से निवेदन किया कि "आज कोई व्याख्यान आदि नहीं होगा। केवल वार्तालाप द्वारा शासन संबन्धी विषयों पर विचार प्रगट किया जावेगा। जिस जिस भाई को शंका हो, या कोई प्रश्न पूछना हो वह अपना दहिना हाथ ऊँचा कर दे, मैं उसके प्रश्न तथा शंका का समाधान करूंगा। आप लोग निर्भय होकर पूछा ताछी करें क्योंकि इसी लिये यह मीटिङ्ग की गई है।"

इतना कहने के बाद मैंने कुरसी पर बैठ कर सबसे पहिले 'शासन की आवश्यकता' इस पर विचार करना आरंभ कियाः—

"शासन किसे कहते हैं ? और उसकी आवश्यकता क्यों है ? यह दो प्रश्न हैं जिनके विषय में सब से पहिले जान लेना ज़रूरी है।

"शासन उस शक्ति अथवा व्यवस्था का नाम है जो समाज के किसी रूप को वश में

रख कर चलाती है इसका सब से अच्छा उदाहरण घर गृहस्थी को ले लीजिये।

"एक घर में पांच बालक बालिकायें हैं, उनके माता और पिता हैं। इन सात प्राणियों को समाज का एक रूप समझिये। इसको चलाने वाला घर का स्वामी या उसकी स्त्री हैं। यह शासन का आदि और सादा उदाहरण है। पिता की आज्ञा से घर का सब काम होता है। उसकी शक्ति से घर का काम चलता है।

"अब दूसरे प्रश्न को लीजिये। शासन की आवश्यकता क्यों है? शासन की आवश्यकता इसलिये है कि इसके बिना मनुष्य समाज संगठित होकर चल नहीं सकती। यदि घर में पिता अथवा माता का कोई कहा न माने तो फल क्या होगा—लड़ाई, दङ्गा, फसाद, कलह।

"जहाँ दस, बीस पचास आदमी मिल कर काम करना चाहें वहीं पर 'शासन' की आवश्यकता पड़ जाती है। क्योंकि इसके बिना मनुष्य समाज का काम कभी भी चल नहीं सकता। एक अकेले आदमी को 'शासन' के विषय में ज्ञान करना निरर्थक है। जहाँ दो से अधिक मनुष्य हुये, वहीं इसकी उपस्थिति हो जाती है, और ज्यों ज्यों अधिक मनुष्य संगठित होते हैं त्यों त्यों शासन का ज्ञान और उसका महत्व बढ़ता जाता है। मनुष्य समाज बड़ी होने पर इस के सभ्यों को 'शासन' विषय में जितना ज्ञान कम होगा, उतना ही भयानक परिणाम उन के लिये होगा। भारतवर्ष की मनुष्य समाज तीस करोड़ तक पहुंच गई है और उसमें शासन का ज्ञान एक फी सदी को भी शायद ही हो। इस अज्ञानता का भयानक परिणाम आप लोगों के सामने है, और पिछले हज़ार वर्ष का इतिहास भी इसकी पुष्टि करता है।

अच्छा, अब मैं आप भाइयों को ज़रा बड़े २ उदाहरण देकर शासन के करतब दिखाता हूं।

"एक घर गृहस्थी का उदाहरण तो आप लोगों ने समझ लिया। आप लोगों को मालूम होगया कि घर बिना 'शासन' के नहीं चल सकता। 'बाप' घर में 'शासनकर्ता' राजा है और उसके बाल बच्चे स्त्री उसकी प्रजा हैं। ऐसे दस बीस घर यदि एक जगह बसे हों तो उनको हम एक नया नाम देते हैं। वह नाम 'ग्राम' है। 'ग्राम उस बस्ती को कहते हैं जहाँ बीस, पचास, घर हों। यह बीस पचास घर एक जगह आराम से नहीं रह सकते यदि इनमें कोई सिलसिला शासन का न हो। यह शासन अपने गांवों में पंचायत द्वारा होता है। इस पञ्चायत को अङ्गरेज़ी में Represautative Government प्रतिनिधि शासन प्रणाली कहते हैं। मगर इसका ठीक ठीक अर्थ में आप भाइयों को आगे चल कर समझाऊँगा। यहाँ इतना ही जान लेना चाहिये कि ग्राम के लोग बिना 'शासन' के आराम से नहीं रह सकते। कोई बदमाश रात को लूट ले, या और कोई धूर्तता करे इन सब बुराइयों को रोकने के लिये गांवों में शासन की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि यह बात आप लोग अच्छी प्रकार याद रक्खें कि 'शासन' मनुष्यों की बुराइयों को दूर करने के लिये है। यदि गांवों के सब लोग भलेमानस हों, इंसाफ पसन्द हों तो किसी 'शासन' या 'पंचायत' आदि की आवश्यकता नहीं। मगर ऐसा होना असम्भव सा है।

"अब ज़रा और आगे बढ़ें और इतिहास में इसकी छाया देखें। हम सब भाई पंजाब से आते हैं और अपने सिक्ख इतिहास से थोड़ा बहुत परिचित हैं। हम लोग अपनी सिक्ख मिसलों को वश में करके सारे पंजाब के अधिकारी होगये थे। यह मिसलें क्या थी? सुनिये।

औरङ्गज़ेब की मृत्यु के बाद जब मुसलमानों का बल घटा, तो हमारे सिक्ख वीरों ने पैर फैलाने आरंभ किये। जैसे किसी घोड़े या बैल की लाश पर गिद्ध eagles झपटा करते हैं वैसे

ही मुसलमानी बादशाहत की मृत्यु पर सिक्ख सरदार लपके, और जो टुकड़ा पंजाब का जिसके हाथ लगा उसको दबाकर सरदार बन कर बैठ गये। किसी के हाथ पचास गांव आये किसी के सौ किसी के इस से भी अधिक। यह सरदार क्या थे ? लुटेरे। 'ज़बरदस्त का ठेंगा सिरपर' जो सब से ज़बरदस्त था, जिसके साथ अधिक आदमी थे वही आस पास के गांवों को दबाकर सरदार बन बैठा था, और अपने अपने क़िले बना लिये थे। ऐसी ऐसी छोटी स्वतंत्र रियासतों का नाम 'मिसलें' था। इन मिसलों के सरदार स्वतंत्र थे। जो चाहें वे अपनी प्रजा के साथ कर सकते थे। उनके ऊपर कोई पूछने वाला नहीं था "इन मिसलों को बाद में धीरे धीरे सरदार रंजीतसिंह ने वश में किया और उनको महाराजा की उपाधि मिली।

"महाराजा रंजीतसिंह क्या थे ? वे पंजाब के शासनकर्ता थे। पंजाब के दो करोड़ आदमियों पर उनका अधिकार था। यहां पर यह प्रश्न होता है कि क्या उन दो करोड़ लोगों ने महाराजा रंजीतसिंह को अधिकार दिया था ?

"नहीं। महाराजा रंजीतसिंह अपनी भुजा के बल से पंजाब के शासनकर्ता बने। लोगों का जान माल सब कुछ उनके हाथ में था। जिसको चाहे फांसी देते, जिसको चाहे लूटते। यह Absloute monarchy (निरंकुश राज्य) का जीता जागता उदाहरण है।

Absolute monarchy, शासन के उस ढंग का नाम है जिसमें सारी ताकत एक व्यक्ति विशेष के हाथ में दी जाती है। वह ताकत चाहे बल के आधार पर हो, या धर्म का सहारा लेकर काम में लाई जावे।

"अब यहां पर यह विचार उत्पन्न होता है कि दो करोड़ हट्टे कट्टे पंजाबियों को एक अकेले रंजीतसिंह ने कैसे वश में कर लिया ?

"इसका उत्तर सहज है। उन दो करोड़ पंजाबियों में अधिकांश भेड़ों की भाँति पीछे चलने वाले थे। जिस ज़बरदस्त ने पीछे लगाया उसके पीछे लग पड़े। इनमें आपस में फूट थी; मज़हबी झगड़े थे। हिन्दू, मुसलमानों में द्वेष था। अपनी स्वत्व रक्षा का ज्ञान हिन्दुओं को नहीं था। जहां जहां Absolute monarchy है, जहां जहां एक अकेले आदमी ने राज्य किया है वहां वहां अज्ञान, अन्धविश्वास, अन्ध परम्परा के कारण हुआ है। और इसका भयङ्कर परिणाम वे अधिक भुगतते हैं जो अधिक अज्ञानी हैं।

'वह भयङ्कर परिणाम क्या है ?' इसका दृश्य भी देखिये। सिक्ख सरदारों की मिसलों में 'सिक्खाशाही' प्रसिद्ध थी। मुसलमानों के राज्य में भयङ्कर लूट घसूट की कथायें सर्व प्रसिद्ध हैं। मतों के अन्ध पक्षपात में ग्रसित मुसलमान हाकिमों के ज़ुल्म की साक्षी मथुरा, काशी, प्रयाग आदि के भग्न मंदिर बतला रहे हैं। यह सब Absolute monarchy के ज़हरीले फल हैं। शासन का मतलब मनुष्य समाज में बुराइयां दूर करने, उनको न्याय पर चलाने, उनकी रक्षा करने के लिये है उलटा निरंकुश शासन से इन सब बुराइयों की वृद्धि होती है। आज कल भी कहीं २ हमारे यहां देशी रियासतों में 'अन्धेर नगरी चौपट राजा—टके सेर भाजी टके सेर खाजा' वाली कहावत चरितार्थ होती है। प्रजा भूखी मर रही है और इन नव्वाब बहादुरों, राजे, महाराजों को वेश्यागान के चोंचले सूझते हैं। हज़ारों, लाखों रुपया झूठी खुशामदों में फूंक देते हैं। ऐसी ऐसी झूठी यादगारें बनाने में धन खर्च करते हैं जिनका हाल पढ़ कर लज्जा आती है। हम लोगों को लज्जा आती है, मगर उन 'कठपुतलियों' को कुछ भी नहीं दीखता।

"यह सब क्यों है ? इसलिये कि लोग मूर्ख हैं। प्रजा मूर्ख, जाहिल है। किसान, जो असल में धन के पैदा करने वाले हैं, उनको विद्या नहीं है। वे अपने अधिकारों को जानते नहीं।"

एक भाई ने हाथ उठाया और मेरे कहने पर उठ कर बोलाः—

"बाबू जी, हम लोग क्या कर सकते हैं। यदि हम लोग ज़रा बोलें, न्याव की बात भी कहें तो चपड़ासी लोग हमें मारें।"

मे-"आप को मैं धीरे धीरे सब समझा देता हूं। आप भी समझ जायंगे। आप लोग सब कुछ कर सकते हैं परन्तु जानते नहीं कि कैसे! केवल अविद्या है। ध्यान से सुनते जाइये, मैं एक २ बात जुदा २ करके समझाऊँगा।"

फिर मैंने कहना आरम्भ कियाः-

"मैंने आप लोगों को बतलाया कि कोई शासन शासन नहीं कहला सकता यदि उसमें न्याय, सर्व अधिकार रक्षा, दुष्टों को दण्ड, और सब के हित साधन कार्य न हो। Absolute monarchy (निरंकुश राज्य) की परीक्षा हो गई, इसके द्वारा मनुष्य समाज का शासन ठीक नहीं हो सकता। भारत में सभी मुसलमान बादशाह ऐसे हुये हैं। सिक्खों का राज्य भी ऐसा ही था। मरहट्टों का राज्य भी इसी सिद्धांत पर था। Absolute monarchy का सिद्धान्त ग़लत है। यह न केवल राज्य सम्बन्ध में ग़लत है, बल्कि धर्म सम्बन्ध में भी ग़लत है। यह सिद्धान्त मनुष्य समाज को स्वतन्त्रता में बाधा डालता है। निरंकुश राजा कहता है "मेरा कहा मानो नहीं तो फांसी पावोगे"। उसका कहना चाहे कैसा ही पाप कर्म युक्त क्यों न हो, वह धींगा धींगी करना पड़ता है। इस के लाखों उदाहरण इतिहास में हैं।

निरंकुश राज्य के धर्म सम्बन्धी उदाहरण अपने देश में देखिये हमारे पण्डित लोग 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' के सिद्धान्त पर चलते रहे। फल क्या हुआ? अन्याय! अन्याय! अन्याय! आज उसी का भयङ्कर परिणाम देश में हम देख रहे हैं। शूद्रों, पादरियों के साथ घोरतर अन्याय किया गया। वे विचारे ईसाई, मुसलमान हो गये और होते जाते हैं। पण्डे लोग करोड़ों रुपया धर्म के गुरु बन कर मूर्खों से लूट रहे हैं और आप व्यभिचार करते हैं।

"निरंकुश राज्य का बुद्धि संबन्धी अत्याचार देखिये। एक पुरुष अच्छी संस्कृत पढ़ता है, अङ्गरेज़ी भी जानता है। वह अपने किसी एक लेख में यह लिख देता है कि बाल्मीकि जी ने अमुक अमुक श्लोक में जो अलङ्कार बांधा है वह ठीक नहीं जंचता। बस फिर क्या था। सब पण्डित मण्डली उसके पीछे पड़ गई, "हैं! हैं! तुमने ऐसा लिखा क्यों!" लकीर के फ़कीर लोग गुरुड़म के जाल में फंसे हैं। स्वामी दयानन्द बहुत विद्वान् पुरुष थे, इस बात से कौन इन्कार कर सकता है। एक बार मैंने अपने कुछ मित्रों को लिखा कि स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में फलानी जगह ठीक बात नहीं लिखी। बस सभी गुस्से हो गये, मानो मैंने कोई बड़ा भारी पाप कर दिया। यह क्या है? यह बुद्धि की गुलामी है। गुलामी भारत सन्तान की नस नस में भरी है। शासन की गुलामी का पिछले हज़ार वर्षों से ऐसा बुरा असर हुआ है कि तन, मन, धन सब कुछ 'गुलामी' के अर्पण कर दिया है। स्वतन्त्र कर नहीं सकते। फलाने फलाने ऋषि ने ऐसा लिखा है, बस प्रमाण है। इसके आगे मत बढ़ो, पीछे भले ही हट जाओ। बाहरी गुलामी, तेरा सत्यानाश! तैंने भारत सन्तान को कठपुतली बना दिया है, जो दूसरों के नचाये नाचते हैं। अपना दिमाग ही नहीं है। इसलिये इतने पन्थ, इतने मत, इतने फिरके, इतने धड़े बन्दियां, इतने झगड़े दिन रात हम लोगों को चिमटे हैं। स्वतन्त्र विचार करना सीखते ही नहीं। पीछे पीछे, 'जी हां हज़ूर जी हां हज़ूर' की माला जपते जाते हैं।

"अब आप लोगों ने निरंकुश राज्य की महिमा को समझ लिया होगा। इसके भयङ्कर रूप भी देख लिये। इसमें सारी शक्ति एक व्यक्ति के हाथ में रहती है सारी समाज की क़िस्मत का फैसला एक व्यक्ति के हाथ में रहता है। यह कुरुड़म का सिंहासन है। तन, मन, धन गुरु जी के

अर्पण कर दो। इससे समाज को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों में घुन लग जाता है और उससे कोड़े उत्पन्न होते हैं जो केवल पैरों तले रौंदने के लायक़ हैं।

'चलिये ज़रा आगे बढ़ें और देखें कि इसके आगे क्या है। याद रखिये शासन का प्रश्न ऐसे महत्व का है कि इस पर मनुष्य समाज की सारी उन्नति निर्भर है। इसी लिये मैं चाहता हूं कि एक एक बात आप भाइयों के दिलों पर खचित हो जावे और आप लोगों में इस विषय पर विचार करने की शक्ति पैदा हो।

"मैंने आप लोगों को बतलाया है कि निरंकुश राज्य में एक व्यक्ति के हाथ में सब कुछ रहता है। एक ख़ान्दान में सारे शासन की जड़ें बांध दी जाती हैं। अब ऐसे भी कई एक मनुष्य होते हैं जो एक बादशाह की हुकूमत बरदाश्त नहीं कर सकते। बहुत ही ज़बरदस्त बादशाह हो, तो लाचारी है नहीं तो वे कुछ न कुछ बखेड़ा ज़रूरही खड़ा करते हैं। महाराजा रंजीतसिंह बहुत ज़बरदस्त थे, इस लिये मिसलों के सरदारों को उनका हुक्म मानना पड़ा। महाराजा रंजीतसिंह के जीते जी तो ये लोग कुछ न कर सके मगर उनके मरते ही इन्होंने बखेड़ा कर दिया और सिक्ख राज्य नष्ट हो गया।

यदि महाराजा रंजीतसिंह ज़रा समझदार होते, या उनको शासन विषय का ज्ञान होता तो वे इन बारह मिसलों में से एक पार्लमेण्ट अङ्गरेज़ो हाउस आफ लार्डस् के ढङ्ग की खड़ी कर लेते जिन को राजा चुनने का अधिकार दिया जाता। इस तरीके से सिक्ख राज्य एक व्यक्ति विशेष के ऊपर निर्भर न रह कर बहुत से लोगों के आश्रित हो जाता और महाराज के मरने पर उसकी रक्षा भी सम्भव हो सकती। यह सभी बुद्धिमान् जानते हैं कि एक खम्भे पर खड़ी रहने वाली इमारत उस खम्भे को हटा देने से गिर पड़ेगी, इसी लिये महाराजा रंजीतसिंह रूपी खंभे के गिर जाने से सारी 'सिक्ख' इमारत का विध्वंस होगया। मान लीजिये कि महाराजा रंजीतसिंह ने बारह मिसलों के सरदारों में से बीस आदमी ऐसे चुन लिये थे कि जिन को राजा नियत करने का अधिकार था और यह भी कि महाराजा रंजीतसिंह इनकी सलाह के बिना टैक्स न लगा सकते थे। इस अवस्था में महाराजा रंजीतसिंह निरंकुश राजा न रह जाते, क्योंकि उनकी शक्ति अब एक व्यक्ति में से हट कर इक्कीस व्यक्तियों के हाथ में आ जाती और जैसे इक्कीस खंभों पर खड़ी रहने वाली इमारत एक खंभे के गिर जाने से गिर नहीं सकती, इसी प्रकार से महाराजा के मरने पर सिक्ख राज्य रूपी इमारत खड़ी रह जाती।

"सोचने का विषय है कि क्या महाराजा रंजीतसिंह को इतनी बुद्धि न थी कि वे इस साधारण सी बात को समझ सकते। इसका उत्तर हम लोगों को इतिहास में मिलता है। जिस जिस ने अपने बाज़ू के ज़ोर से राज्य लिया है वह उसको वैसे ही रखना चाहता है जब तक कि कोई ज़बरदस्त शक्ति उससे टक्कर न मारे। इङ्गलिस्तान में जब जब राजा लोगों ने धींगाशाही इख़्त्यार की, तब तब अमीर सरदारों ने उनसे युद्ध किया, और युद्ध करके अपने स्वत्व लिये। जब शासन एक व्यक्ति के हाथ से निकल कर कई एक सरदारों के आश्रित हो जाता है तो उसको aristocracy* कहते हैं। इस से राजा का बल बट जाता है और शासन की डोर अमीर सरदारों के आश्रित हो जाती है।

"लेकिन शासन का अभिप्राय इतने से पूरा नहीं होता। इस से केवल एक राजा की जगह अधिक हाकिम हो जाते हैं। पहिले एक राजा के फैसला करने से सब कुछ हो जाता था, अब उस को पार्लमेण्ट की आज्ञा लेनी पड़ती है। इससे सर्वसाधारण को कुछ फायदा नहीं होता।

---

* एरिस्टोक्रेसी—अमीरों (अच्छे पुरुषों) का राज्य।

केवल सरदारों, अमीर लोगों को लाभ हो जाता है। वे अपनी रक्षा के उपाय करते रहते हैं लेकिन जो धन के पैदा करने वाले मज़दूर और किसान लोग हैं वे उनकी रक्षा का कुछ उपाय नहीं करते। वे क्यों करें? मैंने आप लोगों को पहिले बतलाया है कि जिसके हाथ में एक बार शक्ति आजाती है वह उसे देना नहीं चाहता जब तक कि कोई ज़बरदस्त शक्ति आकर न छीने। अंगरेज़ी राजा के हाथ में पहिले कुल शक्ति थी। वह उसको अपने हाथ में रखना चाहता था। मगर अमीर सरदारों ने एका किया और अपनी अपनी फौज़ें लेकर बादशाह जान पर चढ़ गये और उससे शरतें लिखवाई जिसका अंगरेज़ी में मैगनाकारटा कहते हैं। उस विचार का लिखनी पड़ी। अब इन अमीर सरदारों के हाथ से शक्ति कौन छीने? उनके हाथ से शक्ति तभी छीनी जा सकती है यदि सर्वसाधारण में जागृति हो। सोया हुआ अज्ञानी मनुष्य क्या कर सक्ता है। इसी लिये हाउस आफ लार्डस् के हाथ में बहुत देर तक अंगरेज़ लोगों का शासन रहा। धीरे धीरे जब लोग समझे तो उन्होंने भी ज़ोर दिखाना शुरू किया तब से हाउस आफ कामन्स की शक्ति बढ़ी।

"फिर समझ लीजिये। पहिले बादशाह जिसके हाथ में सारी ताकत। उसकी ताकत को रोकने वाले ज़बरदस्त सरदार लोग, और उनके जदो जहद का परिणाम हाउस आफ लार्डस् समझिये। इससे बादशाह की शक्ति कुछ घटी। इसके बाद जब अधिक लोग जागे और उन्होंने अपने स्वत्व मांगना शुरू किया तो उनकी भी गुहार सुनी गई और हाउस आफ कामन्स सर्वसाधारण-पंचायत की बुनियाद पड़ी। इससे बादशाह का अधिकार नियमित हो गया। उसकी शक्ति परिमित हो गई। पहिले निरंकुश थी, अब इन दो पंचायतों के हो जाने से उसकी शक्ति बांध दी गई। उसके पांव कट गये। शासन की यह प्रणाली राजा की ताकत को बांट देती है। जैसे पहिले उसको जो चाहै करने की शक्ति रहती है वैसी फिर नहीं रहती। उसकी अपनी मरज़ी से कुछ नहीं हो सकता। उसको यदि किसी चीज़ की आवश्यकता हो, उसको यदि कुछ खर्च करना हो तो उसको दोनों पंचायतों की सलाह लेनी पड़ती है। निरंकुश राज्य में सारी ताक़त उसके हाथ में थी। वह जो चाहे कर सकता था। जितना टेक्स लगावे, जितनी फौजें रक्खे, जैसे कानून पास कर दे, सभी कुछ उसके हाथ में था। वे ग़रीब लोगों के वास्ते नहीं लड़ते थे बल्कि अपने लाभ के लिये। यदि उनकी शक्ति बलवान हुई तो राजा को मजबूरी उनका कहा मानना पड़ा। उसने इनकी पंचायत बनाई। इसका नाम हाउस आफ लार्डस् अमीरी पंचायत पड़ा। यह अमीरी पंचायत ग़रीबों का भला नहीं करती बल्कि अपने फायदे के लिये कानून पास करा लेती है। जब जब धीरे २ सर्व साधारण की आंख खुली और उनको होश आई, उन्होंने मिल कर इत्तफाक किया और अपने किसी नेता के साथ होकर अपने अधिकार पाने के लिये आन्दोलन शुरू किया तो उनकी भी बातें सुनी गईं। अंग्रेजों में ऐसे नेता हुये थे जो प्रजा के अधिकारों के लिये निडर होकर न्याययुक्त आन्दोलन किया था। इसी लिये वहां सर्वसाधारण को अधिकार मिले और हाउस आफ कामन्स सर्वसाधारण की पंचायत की बुनियाद पड़ी। इस से राज्य बल के तीन भाग हो गये—राजा, अमीरी पंचायत, और सर्वसाधारण की पंचायत। जो बात तै होनी हो इन तीनों की सलाह से हो। पहिले सर्वसाधारण की पंचायत उस पर विचार करे फिर अमीरी पंचायत उस पर बहस करे और सब से आखिर में राजा उसका फैसला करे। इस शासन प्रणाली को परिमित राज्य अधिकार प्रणाली कहते हैं और इङ्गलिस्तान में शासन की ऐसी ही प्रथा है।

"अब यहां पर यह प्रश्न होता है कि क्या शासन का यह ढंग सब से उत्तम है? क्या इस से सब बुराइयां दूर हो जाती हैं? क्या इससे न्याय पूरा पूरा होता है? इन प्रश्नों का उत्तर जानने के लिये हमें इङ्गलिस्तान की वर्तमान दशा देखनी चाहिये, और लोगों की हालत जान कर इन प्रश्नों का उत्तर समझना चाहिये। यदि किसी दवाई से किसी खास बीमारी को फायदा होता है तो हम यह समझ लेते हैं कि अमुक बीमारी के लिये अमुक औषधि ठीक है। यदि वह फायदा न करे या थोड़ा फायदा करे तो हम समझ लेते हैं कि इससे पूरा फायदा नहीं होता। कोई दूसरी औषधि मालूम करनी चाहिये जिससे सारी बीमारी दूर हो जावे। मनुष्य में जो स्वार्थ रूपी बीमारी है, मनुष्य समाज में जो अन्याय रूपी घुन लग जाता है हमें उसको दूर करना है। शासन इस लिये चाहिये कि मनुष्य में पूरी सभ्यता नहीं आई। मनुष्य के दुर्गुणों को दूर करने के लिये ही शासन की आवश्यकता है अन्यथा इसकी कोई ज़रूरत नहीं होती। जिस समाज में लड़ाई झगड़े न हों, जिस समाज में चोरी चंडाली न हो, जिस समाज में व्यभिचार आदि का नाम न हो, वहां के मेम्बर पूरे सभ्य हैं और उनको किसी शासन प्रणाली की आवश्यकता नहीं किन्तु ऐसी दशा होती नहीं और हमारे सामने बुराइयां होती हैं इस लिये हम आंख मीच नहीं सकते। हम लोगों को ऐसा उपाय ढूंढ़ना चाहिये जिससे इन सब बुराइयों को हम रोक सकें और समाज के सभ्य न्याय पूर्वक जीवन व्यतीत करें। हमने Absolute monarchy देख ली उसके ज़हरीले फल चख लिये। मुसलमानी ज़ुल्म, सिक्खाशाही लूट, मरहट्टों के चमत्कार सब हो चुके, हमको उनके परिणाम से तसल्ली नहीं हुई। भारत में अब तक प्रतिनिधि शासन प्रणाली नहीं है उसका परिणाम सामने है। हमारे देश की वर्तमान दशा इसकी साक्षी है।

"क्या इङ्गलिस्तान का परिमित राज्याधिकार सर्वथा निर्दोष है? मैं कहता हूँ कि नहीं। उस में भी सुधार की आवश्यकता है, यदि ऐसा न होता तो कभी भी इङ्गलिस्तान में समाज के दो भयङ्कर रूप अधिक धनी, और अधिक दरिद्री—दिखाई न देते। समाज में अशान्ति है। धन के बल से अत्याचार होते हैं। इङ्गलिस्तान की वर्तमान दशा इस बात का प्रमाण है कि समाज ने न्याय प्रथा क़ायम रखने के लिये जिस शासन प्रणाली को जारी किया है उससे समाज के सभ्य सन्तुष्ट नहीं हैं। यदि इङ्गलिस्तान के हांथ में अपनी निर्धन सन्तान को रक्षा के लिये आस्ट्रेलिया, केनेडा, अफ्रीका, भारत जैसे विशाल धन धान्य पूरित देश न होते, तो न जाने इङ्गलिस्तान की शासन प्रणाली क्या होती। इन सब महान देशों के होते हुए भी इङ्गलिस्तान में अशान्ति है, भारी अशान्ति है।" किन्तु और सब देशों के शासन के क्रम से इङ्गलिस्तान का परिमित शासन बहुत अंश में उत्तम है, इस बात को-मैं विस्तार के साथ दूसरे लेख में दिखाऊंगा।

इतना कहने के बाद मैंने लोगों से विनती की कि आप लोग जो कुछ पूछना चाहें, पूछें। कई एक भाइयों ने प्रश्न किये जिनका समाधान किया गया। इस प्रकार वार्तालाप करते करते साढ़े चार बज गये और सभा विसर्जन होगई। अगले सप्ताह में इङ्गलिस्तान और एमेरिकन शासन प्रणाली पर विचार करने का प्रस्ताव ठहरा।

———

चेतावनी।

[लेखक—पं० श्रीकृष्ण जोशी]

बहु कृत्ये निरुद्योगो जागर्तव्ये प्रसुप्तकः।
विश्वस्तस्त्वं भयस्थाने हा पुत्रक विहन्यसे ॥

अर्थ—काम करना बहुत है तुम कुछ उद्योग नहीं कर रहे हो। जागने का समय है तुम सोते हो। भय का स्थान है और तुम विश्वास किये बैठे हो कि कुछ भय नहीं है। हाय! बेटा तुम मारे जाते हो।

श्रीव्यासदेव जी का यह वचन भारतवर्ष की वर्त्तमान दशा में पूर्ण रूप से घटित होता है। एक समय था कि भारतवर्ष भूलोक का भूषण था। विद्याओं की उत्पत्ति यहां हुई; धर्म्मों का जन्म यहां हुआ, कलाओं की कल्पना यहां हुई. इन बातों को विदेशी लोग भी अब मानने लगे हैं।

विद्याओं की जन्मभूमि।

जर्मनी के बड़े विद्वान् डाकूर टीबो जो कई वर्षों तक प्रयाग में म्युअर कालेज के अधिष्ठाता थे और योरप की विद्याओं में निपुण हैं और संस्कृत के भी बड़े विद्वान् हैं उन्होंने सन् १८७५ के एशियाटिक सोसाइटी के पत्र में सिद्ध किया है कि रेखागणित का शास्त्र जिस की जन्मभूमि योरप के लोग यूनान देश को मानते थे वह भारतवर्ष में वैदिक यज्ञों की वेदियों की रचना से उत्पन्न हुआ था और इसके प्रमाण में उन्होंने शुल्व सूत्र का निर्देश किया है जिस को योरप के विद्वान् भी यूनान के शास्त्रों से बहुत प्राचीन मानते हैं। इसमें कोई विवाद नहीं है कि यूनान के शास्त्रकारों का जन्म होने से सैकड़ों वर्ष पहिले वह सूत्र विद्यमान थे और उन से भारत वर्ष के लोग रेखागणित की शिक्षा और व्योहार करते थे। ज्योतिष शास्त्र की जन्मभूमि भी डाकूर टीबो प्रमुख योरप के विद्वान भारतवर्ष ही को मानते हैं और उनका सिद्धान्त है कि वैदिक यज्ञों के समय का निश्चय करने के लिये तारा मंडल के ज्ञान की आवश्यकता हुई, इससे इस शास्त्र की उत्पत्ति हुई। इस बात को भी अब सब विद्वान् मानते हैं कि जो गणित की रीति और अंक योरप में प्रचलित हैं उनका प्रचार वहां मुसलमान लोगों ने किया और मुसलमान मानते हैं कि उन्होंने अंकों को हिन्दुस्तान से सीखा, अंकों का नाम ही मुसलमानों के यहां हिन्दसा है। इस बात के प्रमाण भी मिल गये हैं कि आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक और सुश्रुत संहिताओं का अरबी में उल्था हुआ और मुसलमानों का जिस समय योरप में राज्य था उस समय उन्होंने इन संहिताओं के सिद्धान्तों का और क्रियाओं का वहां प्रचार किया। सांख्य, न्याय, मीमांसा, व्याकरण इत्यादिक शास्त्रों का जन्म इस देश में होने के विषय में तो किसी को भी सन्देह नहीं हो सक्ता। इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि रामायण महाभारत भागवत के समान अद्भुत ग्रन्थ किसी दूसरे देश में नहीं रचे गये।

धर्मों की जन्मभूमि।

धर्म्मों में भारतवर्ष के सनातनधर्म के अतिरिक्त मुख्य धर्म बौद्ध, जैन, ईसाई और मुहम्मदी ही हैं। इनमें से बौद्ध और जैन धर्म तो भारतवर्ष में ही उत्पन्न हुए और ईसाई धर्म के विषय में अब इस बात के प्रमाण मिलते जाते हैं कि ईसामसीह के समय में बौद्ध भिक्षु ईसामसीह के देश में विद्यमान थे और ईसामसीह को उनके धर्म के सिद्धान्त और आचार पहुंचे थे। इस विषय का प्रतिपादन श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त ने भारत के प्राचीन इतिहास में ऐसे प्रमाण से किया है जिनको योरप के विद्वानों को भी मानना पड़ता है। जिन लोगों ने ईसाई और बौद्ध दोनों धर्मों के ग्रन्थ पढ़े हैं वे कह सकते हैं कि ईसाई धर्म में कोई उत्तम बात ऐसी नहीं है जो बौद्ध धर्म के ग्रन्थों में नहीं मिलती। मुहम्मदी धर्म की उत्पत्ति के समय में ईसाई धर्म भली भांति प्रचलित था और मु-

सलमान लोग ईसाइयों के धर्म की तौरेत नामक संहिता को मानते हैं और ईसा, मूसा इत्यादिक नबियों को मानते हैं।

कलाओं की जन्मभूमि।

योरप के विद्वान यह भी अब मानते हैं कि चित्र कर्म, मूर्ति निर्माण, वस्त्र निर्माण, आभूषण रचना, सङ्गीत, नाट्य इत्यादिक शिल्प और कला भारतवर्ष में उन समयों में उच्चकोटि को पहुंचे हुये थे जब योरप में विद्या और कलाओं का आरम्भ भी नहीं हुआ था। बम्बई हाईकोर्ट के भूतपूर्व न्यायाधीश सर जार्ज बर्डवुड ने एक पत्र में लिखा है कि लोहा तांबा इत्यादिक धातु बहुत प्राचीन समयों में कहीं नहीं थीं उन को बनाने की विधि का आविष्कार उन आर्य लोगों ने किया जिनकी कुल परम्परा में भारत के ऋषि और आचार्य हुये।

क्या थे क्या हो गये ?

विचार करने की बात है कि जब गणित विद्या अर्थात् पाटी गणित बीज गणित रेखागणित और लोहा तांबा इत्यादिक धातुओं की प्रक्रिया विदित न होती तो लोक की क्या अवस्था होती। कहां रेल होती, कहां तार होता, कहाँ और यन्त्र होते और कहाँ योरप अमेरिका की सभ्यता होती। इतिहास, काव्य, नाटकादिक इस देश के ग्रन्थों से और यूनान, चीन, आदि देशों के विद्वान् जो इस देश को प्राचीन काल में देखे गये थे उनके लेखों के पढ़ने से कोई सन्देह नहीं रहता कि भारतवर्ष में अतुल सम्पत्ति थी। यहां बड़े समृद्ध नगर और जनपद थे, बड़े २ प्रासाद, दुर्ग, देवालय, उद्यान, बिहार, विद्या पीठ, कलाभवन थे, बड़े २ विद्वान्, तपस्वी और तेजस्वी ब्राह्मण थे, बड़े २ शूरवीर प्रतापी क्षत्रिय थे, बड़े २ व्यवसायी आढ्य और उदार वैश्य थे, बड़े २ प्रवीण शिल्पी और परिश्रमी कृषक थे। जिस देश में यह सब सामग्री हो वहाँ विभव और ऐश्वर्य क्यों न हो ? परन्तु अब एक समय ऐसा आया है कि जिन ब्राह्मणों ने संसार को धर्म और विद्या दी उनके संतानों को रोटी दुर्लभ है। जो क्षत्रिय राज्यों का शासन करते थे उनकी सन्तानों को जोतने को खेत दुर्लभ हैं। जो वश्य राजा, महाराजाओं को ऋण देते थे उनकी सन्तानों को जीविका दुर्लभ होगई है। कहार पांच रुपये महीने में ढूंढने से मिलता है। ब्राह्मण क्षत्रिय चार रुपये की जीविका के लिये मारे २ फिरते हैं। ब्राह्मणों को पंखा कुली का और ठाकुरों को डयोढ़ीवान का काम ढूंढ़ने से कभी मिलता है कभी नहीं मिलता। भारतवर्ष दुर्भिक्ष पीड़ित और व्याधिग्रस्त है। जितने मनुष्यों के प्राण देकर जापान ने रूस ऐसे विशाल राज्य को परास्त कर के जगत को चकित कर दिया उनसे अधिक मनुष्यों के प्राण भारतवर्ष में एक वर्ष के दुर्भिक्ष या प्लेग में जाते हैं।

तीस करोड़ प्रजा में से करोड़ों को पटभर रूखा अन्न भी नहीं मिलता। सो क्यों ? क्या भारतवर्ष में इतना अन्न नहीं उपजता कि भारतवासी पेट भर खायं ? उपजता ता है पर बहुत सा देशान्तरों को चला जाता है। यह क्यों चला जाता है ? न जाय तो देशान्तरों से जो कपड़ा, चीनी लोहा, तांबा, पीतल, कांच छतरी, जूते, टोपी औषध इत्यादिक अनेक वस्तु आती हैं वे कैसे आवें। ये वस्तु क्या भारतवर्ष में नहीं बन सकतीं ? बन सकती हैं और बना करती थीं, कौन सी वस्तु है जो भारतवर्ष में नहीं बन सकती ? पर भारतवासी तो सोते हैं जागें तो बनावें।

क्या हो सकते हैं।

जो जो वस्तु विदेश से यहाँ आती हैं वह सब यहां बनने लगें तो भारतवर्ष का दुःख दारिद्र दूर हो जाय। इस देश में रुई प्रशस्त होती है, लोहा, तांबा इत्यादिक धातुओं की खानें भी बहुत हैं। लोग भी यहां के बुद्धिशाली क्रिया-

कुशल और शान्तिशील हैं। जो जो पदार्थ योरप, अमेरिका में बनते हैं सब यहां बन सकते हैं। जापान में अब प्रायः सभी पदार्थ बनते हैं। यह सच है कि जापान और भारतवर्ष में एक बड़ा अन्तर है अर्थात् राज्य का प्रबंध वहां जापानियों के आधीन ही है भारतवर्ष में पराधीन है। जापानी जो राजा को कर देते हैं उसका यहां की अपेक्षा एक बहुत बड़ा भाग प्रजा को विद्या और कला सिखाने में लगाया जाता है और प्रजा प्रायः सब शिक्षित हैं। भारतवर्ष में सब से अधिक व्यय सेना के ऊपर होता है और प्रजा में शिक्षा सौ में चार को भी अच्छी नहीं मिलती। उद्यम, व्यापार शिल्प, कला इत्यादिक सीखने के लिये देशान्तरों में जाना पड़ता है। पर हमारी बुरी दशा के बहुत बड़े कारण हमीं हैं। हम अपने देश के शासन के विषय में बहुत उदासीन रहते हैं। जब प्रजा राज्य के कामों में चित्त देने लगे तो राज्य का काम प्रजा की इच्छा से अधिक अनुकूल और प्रजा के अधिक हित का होने लगे।

राजा प्रजा के उपकार में प्रवृत्त भी हो तो बिना प्रजा के अपना दुख निवेदन किये राजा भी सब दुख दूर नहीं कर सकता। विशेष कर जब शासनकर्ता विदेशी हैं तब तो प्रजा को राज्य के कार्य्य में बहुत सावधान होने और सदा उनको अपने हित के कामों में अधिक से अधिक प्रवृत्त करने के लिये लगातार यत्न करने की आवश्यकता है। जब प्रजा चौकस रहती है तो आय का अधिकतर भाग प्रजा के हित में व्यय होता है, नहीं तो बहुत अपव्यय होता है। भारतवर्ष में राज्य का आय एक अरब रुपये के लगभग है। इसी आय का यथोचित अंश प्रजा को विद्या, कला, व्यापार, उद्यम आदि सिखाने में लगाया जाय तो जो पदार्थ जापान में बनते हैं वे सब यहां बनने लगें और प्रजा में आरोग्य, सुख सम्पत्ति, बल वीर्य, पराक्रम की वृद्धि होकर भारतवर्ष से दारिद्र, दुर्भिक्ष, व्याधि, अकालमृत्यु सब दूर हो जांय। भारतवासी फिर राज्य कार्यों को करनेकी और देश की रक्षा करने की योग्यता प्राप्त कर लें और फिर विद्याओं के प्रवर्तक धर्म के पालक, और कलाओं के आविष्कर्ता हो जांय। हमारा भारतवर्ष जैसे प्राचीन काल में था उससे भी अधिक समृद्धशाली और विद्या विभवसम्पन्न हो जाय। राज्य की आय का देश के कल्याण में व्यय करना और देश के हित के उपायों का चिन्तन और प्रयोग करना शिक्षित लोगों का कर्तव्य है।

हमारे ऊपर उठने का उपाय।

फ्रांस के प्रसिद्ध सम्राट नेपोलियन ने कहा है कि जिस पुरुष में जितनी योग्यता है उससे जो कोई पूरा काम लिया चाहै तो उसके उत्साह को भङ्ग न करे, वरन वह जितने योग्य हो उससे अधिक योग्यता बतलावे। सेना में कायरों से बीर का काम लेना चाहे तो बार २ उनसे कहे कि तुम बड़े बीर हो। जिन गुणों को किसी के चित्त में उत्पन्न करना चाहे तो उससे कहे कि यह गुण तुम में भरे हैं।

भारतवर्ष की वर्तमान शोचनीय अवस्था के मुख्य कारणों में से एक यह भी कारण है कि सैकड़ों वर्षों तक विदेशी राज्यों के आधीन रह कर हम लोग शक्तिहीन हो गये हैं और हम लोगों को एक प्रकार का विश्वास सा हो गया है कि हम बड़े काम करने के योग्य नहीं रह गये। बार बार हम लोगों से कहा जाता है कि हम लोगों में शासन करने की शक्ति नहीं है। शक्ति यदि नहीं है तो हो कहां से कहा है कि 'बुद्धिः कर्मानुसारिणी' अर्थात् जैसे हम कार्य करेंगे वैसी ही हमारी बुद्धि भी होगी। यदि एक भाई डाकृर या वकील हो और दूसरा किसी दफ्तर में एक छोटा क्लार्क हो तो दोनों की बुद्धि और विचारों में कितना अन्तर होगा। एक की विद्या की तो दिन दिन उन्नति होगी, उसका उत्साह दिन दिन बढ़ता जायगा, और दूसरे की केवल इतनी ही इच्छा

रह जायगी कि मेरे ५० रुपये के ८० रुपये हो जांय। आवश्यकता पड़ने पर आदमी ऐसे काम कर दिखाता है जैसे कामों का उससे होना सम्भव नहीं देख पड़ता था। कई युवा पुरुषों का दृष्टान्त देखने में आया है कि जो अपने पिता के जीवन तक घर का कार्य कुछ नहीं कर सकते थे। न तो वे एक पसे का सौदा लाते थे और न लाना जानते थे। किन्तु जब उनके पिता का देहान्त हो गया और सब गृहस्थी का भार उनके सिर पर पड़ा तो उन्होंने बड़ी उत्तमता के साथ घर का काम चलाया। एक दो वर्ष पहिले तक हमको मालूम न था कि भारतवर्ष में बिजली की कलें, कांच के बर्तन, फोनोग्राफ की चूड़ियां, टेलिस्कोप बन सकेंगे। किन्तु अब यह सब चीजें देखने में आने लगी हैं और नित्य नई चीजें प्रगट हो रही हैं। कारण यह है कि लोगों को स्वदेशी चीजों के लेने की इच्छा बढ़ी और उसको आवश्यकता पड़ी और जब किसी चीज की आवश्यकता पड़ती है तो उसको उत्पन्न करने की इच्छा और शक्ति भी उत्पन्न हो जाती है।

आजकल जो हम संसार में सब देशों से सब बातों में पीछे हैं उसका यह कारण नहीं है कि हम किसी काम के योग्य नहीं हैं। कारण यह है कि हमें बड़े काम करने के अवसर नहीं मिलते। जिस जाति के पूर्वजों ने ऐसे दर्शन लिखे हैं कि जिसको देख मैक्सम्युलर इत्यादि जर्मनी के भारी विद्वान कहते हैं कि बुद्धि में चक्कर आने लगता है, जिस जाति में भीम अर्जुन आदि ऐसे महारथी वीर हो गये हैं, जिसने इतना धन एकत्र किया कि दूर २ देशों से लोग धन के लालच से यहां आए, वह जाति क्या नहीं कर सकती। आवश्यक यह है कि पहिले तो हम लोग इस नपुन्सक विचार को दूर करें कि हम लोग किसी योग्य नहीं हैं। इसके स्थान में यह पुरुष के योग्य विश्वास अपने हृदय में दृढ़ करें कि हम भी एक ऊंचे कुल के सन्तान हैं। जो कोई अच्छा काम कोई किसी दूसरे जाति का पुरुष कर सकता है वह हम भी कर सकते हैं। इस विश्वास से सच्चे हृदय से अपने पौरुष पर भरोसा कर काम करना आरम्भ करें। यदि तुरन्त सफलता न हो तो अपना धीरज न छोड़ें और अपना निरादर न करें। मनु भगवान ने कहा है-

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः।
आमृत्योःश्रियमन्विच्छेन्नैनांमन्येतदुर्लभाम्॥

अर्थात् समृद्धि-सुख सम्पत्ति के लिये यत्न करता ही जाय, और यदि यत्न सफल न हो तो यह न मान बैठे कि हमको समृद्धि हो ही नहीं सकती। मरने तक समृद्धि के लिये यत्न करता जाय और उसको दुर्लभ न समझे।

इस दृढ़ विश्वास से जब हम अच्छे कामों में उद्योग करेंगे तब फिर हमारे दिन फिरेंगे और हमारे देश का विभव और गौरव बढ़ेगा।

जातीय गीत।

[लेखक-पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी]

"भारत वन्दना"

(१)

(विहाग)

धन धन भारत भूमि पुनीत
पूरन ब्रह्म प्रगटि जहँ खायो,
मांगि मांगि नवनीत।
जन्म भयो जहँ शिल्प कला को,
अरु साहित सङ्गीत।
सभ्य बने भूमण्डलवासी,
सीख यहां की रीत।
होत जहां बहुरङ्गी ऋतु है,
गर्मी वर्षा शीत।
फूट बैर को बान त्यागि कै,
बनहु परस्पर मीत॥

राष्ट्र और व्यक्ति का सम्बन्ध ।

[लेखक पं० जनार्दन भट्ट ।]

इस बात को तो सब कोई स्वीकार करेंगे कि किसी देश व जाति की उन्नति और सुख और शान्ति की रक्षा के लिये एक नियमबद्ध राष्ट्र (state) की बहुत आवश्यकता है। यहां पर यह प्रश्न उठता है कि राष्ट्र प्रजा के हित के लिये है अथवा प्रजा राष्ट्र के लिये–राष्ट्र व्यक्तियों के जीवन के उच्च से उच्च उद्देश्य को पूरा करने में निमित्त मात्र है अथवा राष्ट्र स्वयं ही एक उद्देश्य है जिसके एक एक व्यक्ति जिनसे कि राष्ट्र बना हुआ है निमित्त हैं।

प्राचीनों का मत ।

प्राचीन समय में, विशेषतः प्राचीन ग्रीस में राष्ट्र ही को जीवन का एक बड़ा भारी उद्देश्य समझते थे। प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का अङ्ग समझा जाता था। राष्ट्र व्यक्तियों का सेवक नहीं वरन व्यक्ति राष्ट्र के सेवक थे, जिस तरह से शरीर के अङ्ग शरीर के सेवक हैं। किसी एक व्यक्ति की भलाई बिना किसी विचार के राष्ट्र के हित के लिये बलिदान कर दी जाती थी, यहां तक कि किसी व्यक्ति की भलाई तभी तक उचित और न्याय युक्त समझी जाती थी जब तक कि राष्ट्र की उससे भलाई है। इसी तरह से व्यक्तिगत स्वतंत्रता तभी तक उचित और न्यायानुकूल समझी जाती थी जब तक कि उससे राष्ट्र की स्वतंत्रता में कोई हानि नहीं पहुंचती थी।

नवीनों का मत ।

इस ऊपर कहे गये विचार के बिलकुल विपरीत आज कल अंगरेज़ अमेरिकन तथा अन्य योरोपीय लेखकों तथा राजनीतिज्ञों का यह मत है कि राष्ट्र स्वयं उद्देश्य नहीं वरन किसी दूसरे उद्देश्य का साधन मात्र है। वह उद्देश्य, जिसका राष्ट्र साधन है, व्यक्तियों की धार्मिक सामाजिक नैतिक तथा हर प्रकार की उन्नति करना है। आज कल के योरप के राजनीतिज्ञों का यह मत है कि समाज के गठन का और कानून के बनाने का यह उद्देश्य है कि उनसे व्यक्तियों के सुख की वृद्धि हो। इस नवीन विचार के लोग राष्ट्र को केवल एक Machine यन्त्र के समान समझते हैं जो व्यक्तियों के जान माल और उन की स्वतन्त्रता की रक्षा करती है या राष्ट्र केवल एक व्यवस्था है जिसको व्यक्तियों ने अपने सुख और अभ्युदय के लिये स्थापित कर लिया है।

दोनों मत में पक्षपात ।

हमारी समझ में प्राचीन और नवीन दोनों विचारों में कुछ न कुछ सच्चाई का बीज है, किन्तु दोनों ही में पक्षपात की गन्ध निकल रही है। दोनों अपने २ पक्ष को देखते हैं और दूसरे पथ की तरफ बिलकुल ध्यान नहीं देते। दोनों पक्ष में सत्य और असत्य है, न पहिला ही बिलकुल सत्य है और न दूसरा ही। राष्ट्र स्वयं एक उद्देश्य भी है और व्यक्तियों के सुख की वृद्धि और उनके स्वतन्त्रता की रक्षा किस प्रकार से हो इस उद्देश्य का साधक भी है। एक विचार से कोई वस्तु स्वयं एक उद्देश्य भी है और दूसरे विचार से वही वस्तु किसी दूसरे उद्देश्य के सिद्ध करने के लिये साधन भी है। बहुधा चित्रकार जीविका बनाने और धन उपर्जन करने के उद्देश्य से चित्र खींचते हैं, किन्तु एक सच्चे चित्रकार के लिये चित्र ही स्वयम् एक बड़ा उद्देश्य है। वह अपने खींचे हुए चित्र में अपने ही विचारों और भावों को देखता है। वह चित्र मानों मूर्तिमान उसका उद्देश्य है। यहाँ पर चित्र ही स्वयं एक उद्देश्य है। यही विचार राष्ट्र और व्यक्ति के सम्बन्ध में भी लग सकते हैं। एक तरह से राष्ट्र व्यक्तियों के जीवन के उद्देश्य को पूरा करने के लिये साधन मात्र है और दूसरी तरह से राष्ट्र स्वयं एक उद्देश्य है और इसकी भलाई के लिये व्यक्तियों को अपनी

भलाई बलिदान करना पड़ता है और उसकी हर प्रकार से सेवा करना पड़ता है।

प्राचीन विचार से हानि ।

राष्ट्र और व्यक्तियों के सम्बन्ध में प्राचीनों के एक तरफा विचार ने, राष्ट्र में व्यक्तियों को कोई स्थान नहीं दिया और उनके स्वाधीन स्वत्वों का बिलकुल ख्याल नहीं किया। इस कारण से व्यक्तियों की Individuality स्वतंत्र सत्ता को बड़ा धक्का पहुंचा और धीरे २ लोग राष्ट्र को सर्व शक्तिमान समझने लगे जिससे कि राष्ट्र अत्याचारी और स्वेच्छाचारी होता गया।

नवीन विचार से हानि ।

इसी तरह से नवीन श्रेणी के लोगों ने भी जो व्यक्तिवादी हैं, बहुत हानि पहुंचाया। इन लोगों ने राष्ट्र के महत्व और राजा के गौरव का बिलकुल ख्याल न कर सिर्फ इसे व्यक्तियों का एक समूह समझ लिया जिसका फल यह हुआ कि अराजकता और राज्य-विप्लव ने ज़ोर पकड़ा।

व्यक्ति सम्बन्धी नवीनों का मत ।

प्राचीनों ने राष्ट्र के एक बहुत ही आवश्यक कर्तव्य की ओर उचित ध्यान नहीं दिया था। उन लोगों ने राष्ट्र के एक एक मनुष्य के स्वत्वों की रक्षा और उसकी स्वतंत्रता का बिलकुल ख्याल नहीं किया था। नवीन विचार के राजनीतिज्ञों ने राष्ट्र के इस परमावश्यक कर्तव्य की ओर समुचित ध्यान दिया और इस कर्तव्य पालन में लग गये। वर्तमान समय में वह नीति हानिकारक और घृणास्पद समझी जाती है जो प्रजा के हित और कल्याण की कुछ परवाह नहीं करती और जिस नीति का अवलम्बन कर अत्याचारी शासक प्रजा के हित को अपने चंचल और अस्थिर स्वभाव के वश में होकर जहां चाहें तहां गेंद के समान फेंक सकते हैं। अब इस बात को प्रायः सब लोग मानने लगे हैं कि राष्ट्र के शासकगण व्यक्तियों के प्रभु नहीं वरन उनके सेवक हैं और प्रजा के हित और रक्षा के लिये बड़े आवश्यक हैं। बहुत से आज कल के हितकर और लोकोपकारी कार्य और संस्थाएं इन्हीं विचारों के फल हैं। इन्हीं विचारों के कारण संसार में आज कल एक स्वतंत्रता की हवा बह रही है और चीन टर्की, रूस, पर्सिया तथा भारत में अशान्ति और असन्तोष दिखलाई पड़ रहा है।

राष्ट्र वास्तव में व्यक्ति से एक स्वतंत्र वस्तु है।

वे लोग बड़ी भारी गलती करते हैं जो इस बात पर आग्रह करते हैं कि राष्ट्र केवल व्यक्तियों के लिये है और शासन का उद्देश केवल व्यक्तियों के हित और सुख की रक्षा करने के सिवाय कुछ नहीं है। इस बात पर आग्रह करने का फल यह होगा कि राष्ट्र का असली तत्व नाश हो जायगा और जाति के नियम और व्यवस्था व्यक्तियों के नियम हो जाँयगे। हर एक वीर और आत्माभिमानी जातियों में हज़ारों ऐसे मनुष्य निकलेंगे जो राष्ट्र के ऊपर विपत्ति पड़ने पर या ऐसी आवश्यकता पड़ने पर, बड़े २ दुःख और क्लेश सहने को तैयार रहते हैं तथा अपने जीवन को भी अपने देश के लिये बलिदान करने को तैयार रहते हैं। इस बड़े स्वार्थत्याग का कारण यही है कि वे राष्ट्र को एक ऐसी आवश्यक वस्तु समझते हैं जिसकी रक्षा और भलाई करना वे अपना परम कर्तव्य समझते हैं। यदि राष्ट्र का उद्देश सिर्फ व्यक्तियों के स्वार्थ को पूरा करना ही समझा जाय और यदि राष्ट्र और कुछ नहीं सिर्फ व्यक्तियों का एक समूह समझ लिया जाय तो संसार के बड़े २ वीरों का इतिहास जिन्होंने स्वराष्ट्र और स्वजाति के लिये तरह तरह के क्लेश सहे और अपने जान तक को न्योछावर कर दिया सिर्फ मूर्ख और पागल मनुष्यों की कहानी समझी जायगी। किसी वीर और जीती जागती जाति के जीवन में बड़े विपत्ति और संकट के समयों में यह साफ २ मालूम हो जाता है कि राष्ट्र थोड़े

से मनुष्यों की समाज से अतिरिक्त कोई बड़ी भारी उच्चतर वस्तु है। जब स्वदेशानुराग की अग्नि हृदय में प्रज्वलित होती है तो व्यक्तियों के हृदय से स्वार्थ तथा नीची और तुच्छ अभिलाषाएं एक २ कर स्वराष्ट्र प्रेम की आग में पिघल कर बह जातीं हैं और यदि एक वार भी कर्तव्य पालन की बुद्धि सर्वसाधारण में उत्पन्न हो जाती है तो यह उनके हृदय को उच्चतर और निःस्वार्थ बना देती हैं।

दोनों की भलाई कहां तक एक है।

जिस तरह से कि राष्ट्र सिर्फ व्यक्तियों का जिनसे जाति बनी है, समूह ही नहीं हैं उसी तरह से राष्ट्र की भलाई और अभ्युदय सिर्फ व्यक्तियों ही की भलाई नहीं है। निःसन्देह राष्ट्र और व्यक्ति दोनों में एक बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है और प्रायः दोनों का उत्थान और अधःपतन साथ ही साथ होता है। यदि व्यक्तियों की भलाई में कुछ भी कमी पड़ती है तो साधारणतः राष्ट्र भी किसी भारी संकट में पड़ा रहता है। परन्तु दोनों की भलाई हमेशा एक ही पथ का अनुसरण नहीं करती। कभी कभी दोनों की भलाई भिन्न २ पथ का अनुसरण करती हैं। यदि किसी बात से एक की भलाई है तो उसी से दूसरे का कभी २ अहित भी होता है। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि राष्ट्र अपनी रक्षा के लिये अथवा अपने Future generations भावी सन्तानके हित के लिये अपने वर्त्तमान सन्तानों पर बड़े भारी बोझ डालता है और बड़ी हानियां सहने को मजबूर करता है। बहुधा ऐसा भी होता है कि व्यक्तियों की भलाई और अभ्युदय के लिये राष्ट्र की सहायता और रक्षा की आवश्यकता पड़ती है जिससे राष्ट्र को बड़े २ क्लेश और हानियां सहनी पड़ती हैं।

अस्तु अब हमें यह देखना चाहिये कि किस अवस्था में, कब और कहां तक राष्ट्र व्यक्तियों की भलाई के लिये है और किस अवस्था में, कब और कहां तक राष्ट्र ही स्वयं उद्देश्य है और व्यक्ति राष्ट्र के आधीन है।

क्रमशः।

हिन्दी-गीत।

[लेखक—श्रीयुत् गंगाप्रसाद गुप्त।]

(रागिनी काफी।)

करु, मन! हिन्दी को गुन गान।
जाकी धुनि सुनि, औ महिमा गुनि,
मोहत, छोहत, प्रान॥ करु०॥
सूरदास, तुलसी, बिहारि अरु,
हरीचन्द सज्ञान।
निज कविता-पुहुपाञ्जलि दै जेहिं,
लहे सुखद सन्मान॥ करु०॥
भारत-भुवि-वासी जनरासी,
राजा, रङ्क, किसान।
जेहिं अपनावतु हैं, क्रम क्रम ते,
जेते छुद्र महान॥ करु०॥
तू, मन! होइ निछावर वापै,
धरु वाही को ध्यान।
सेवा वाही की बहु भाँतिन,
करु अबिरत अमलान॥ करु०॥
आलस तजि, उठु, ह्वै सजीव अरु,
चिन्ता सील समान।
बहुत काल बीतो निद्रा महँ,
अब निजता पहिचान॥ करु०॥
इत उत भटकत फिरत देश महँ,
केते मूढ़ अजान।
अस प्रवन्ध रचु जाते पावैं,
वे हिन्दी को ज्ञान॥ करु०॥
अङ्गरेजी, फारसी, संस्कृत,
को बहु रस करि पान।
करु सञ्चय विचार-मधु, बाढ़ै,
निज-भाषा-अभिमान॥ करु०॥

तत्पर ह्वै, सँवारु बहु बिधि सों;
हिन्दी सब-गुन-खान ।
राज काज, दरबार, देश महँ,
जाते पावै मान ॥ करु० ॥
एती सरल, सुबोध, भावमयि,
औ पूरित कल्यान ।
आर्य जाति की सिच्छादायिनि,
भाषा नाहीं आन ॥ करु० ॥
याहो भारत को सुख दै है,
अरु करि है उत्थान ।
निहचय राखु, राष्ट्र भाषावत,
गहि है याहि जहान ॥ करु० ॥

राजनीति का श्री गणेश ।

राष्ट्र और उसकी उत्पत्ति ।

हमें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि हर पुरुष को राजनीति का ज्ञान कितना आवश्यक है। हम इतना ही कह देना अलम समझते हैं कि जैसे जीवन के लिये अन्न और भोजन आवश्यक है उसी प्रकार से किसी जाति के जीवित रहने के लिये यह आवश्यक है कि उस जाति के प्रत्येक मनुष्य को राजनैतिक विषयों का ज्ञान हो, वह जानता हो कि उसके शासन-कर्त्ता का क्या कर्तव्य है और उसके स्वयं स्वत्व और कर्तव्य क्या हैं ? जब तक किसी समाज के मनुष्यों में स्वयम् राजनैतिक प्रश्नों पर विचार करने की या उन प्रश्नों को समझने की शक्ति नहीं रहती तब तक वह समाज या जाति उन्नति के शिखर पर नहीं चढ़ सकती।

इस लिये प्रत्येक भारतवासी का यह कर्त्तव्य है कि वह राजनैतिक विषयों को समझे, उस पर मनन करै और उन विषयों पर कुछ सम्मति भी रक्खा करै। यद्यपि हमारे भारतवर्ष में प्रत्येक भारतवासी को वोट देने का तथा अपने प्रतिनिधि को भेजने का अधिकार नहीं है किन्तु वह समय शीघ्र ही आने वाला है जब कि राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को भारतीय राजनैतिक विषयों में भाग लेना होगा।

हरएक राजनैतिक विषयों को मनन करने से यह मालूम होगा कि उसका संबन्ध किसी साधारण सिद्धान्त से है। उदाहरणार्थ इसी प्रश्न को लीजिये कि मादक वस्तुओं पर कहां तक कर लगाने की आयश्यकता है जिसमें वे महँगी पड़ें और उनका व्यवहार कम हो। इस प्रश्न पर यह विचार स्वाभाविक ही उठता है कि किनके हित के लिये मादक वस्तुओं पर कर लगाने की आवश्यकता है। जो मादक वस्तुओं का अधिक व्यवहार करते हैं उनके हित के लिये या उनके हित के लिये (२) जो मादक वस्तुओं का व्यवहार नहीं करते और जिन्हें मादक वस्तुओं का व्यवहार बढ़ने से हज़ारों किस्म के कष्ट उठाने पड़ते हैं। यदि पूर्व कथित पुरुषों के हित के लिये कर लगाना आवश्यक है तो यह प्रश्न उठता है कि क्या यह किसी गवर्मेंट का कर्त्तव्य है कि वह वयस्क पुरुषों को जिन्हें स्वयं अपने हित की बातें सोचना चाहिये दुष्कर्मों से बचाने की चेष्टा करै ? यदि दूसरों के हित के लिये कर लगाना आवश्यक है तो यह प्रश्न उठता है कि वास्तव में अन्य पुरुषों को कितना कष्ट उठाना पड़ता है कि उनकी रक्षा के लिये कर लगाना आवश्यक है।

इन दोनों ही प्रश्नों का उत्तर बिना इस बात को अच्छी प्रकार से निर्णय किये कि गवर्मेन्ट का मनुष्य और उनके स्वत्व से क्या सम्बन्ध है, नहीं दिया जा सकता।

बहुत से राजनीतिज्ञों का यह मन्तव्य है कि सब जमीन आदि गवर्मेन्ट की है और इस कारण प्रति अधिकारी के मृत्य पर उसपर कर बराबर बढ़ता जाना चाहिये अन्ततोगत्वा जिसमें एक दिन सब ज़मीन सरकार की हो जाय। इस पर विरोध भी प्रगट किया जाता है क्योंकि यह अपने पैदा किये हुए धन को किसी को दे

देना का जो मनुष्य को अधिकार है उसमें अड़चन डालैगा। धन पैदा करने वाले का यह स्वत्व भी है और निस्सन्देह उचित भी है कि जो धन पदा करे वह उसे अपने लड़के वालों को दे। इन सब प्रश्नों पर वादविवाद बढ़ सकता है किन्तु इनको भली प्रकार से समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम लोग इस बात को जानलें कि State राष्ट्र किसे कहते हैं और हम लोग इसे क्या समझते हैं। इसको समझने के लिये हम लोगों को यह देखना चाहिये कि इतिहास क्या कहता है कि राष्ट्र कैसे बने

राष्ट्र का आविर्भाव।

कोई ऐसा प्राचीन इतिहास नहीं है जिससे हमें यह मालूम हो सके कि भारतवर्ष में आने के पहिले आर्यों के समाज या राष्ट्र की स्थिति कैसी थी किन्तु इसमें कोई सन्देह भी नहीं है कि भारतवर्ष में पदार्पण के पहिले आर्यों में राष्ट्र सदृश कोई संस्था अवश्य थी क्योंकि यदि यह न होती तो आर्यों का आकर यहां के जंगलियों को जीत कर बसना असम्भव था। आर्यों में कोई नेता अवश्य था जिसके नेतृत्व में उन लोगों ने भारतवष के पूर्व निवासियों को जीता।

भारतवर्ष में बस जाने पर उनका अभ्युदय शीघ्र होना आरम्भ हो गया, उनमें सभ्यता, बुद्धि का विकाश आदि फैलने लगा क्योंकि गर्म मुल्कों में सर्द मुल्कों की अपेक्षा यह सब बातें शीघ्र होती हैं। अभी भारतवर्ष के लिये इतना ही कहना हम अलम समझते हैं, यहां पर राष्ट्रों का आविर्भाव कैसे हुआ यह हम आगे चलकर कहेंगे अभी हम केवल यह दिखलावेंगे कि पश्चिमीय देशों में राष्ट्र (States) कैसे उत्पन्न हुए।

राष्ट्रों का आविर्भाव।

राष्ट्रों का आविर्भाव कैसे हुआ इसके लिये बहुत सी सम्मतियां है। बहुतों का मत है कि मान लीजिये एक स्थान पर एक गृहस्थी का निवास है। स्वभावही से पिता उस छोटे से राष्ट्र का राजा है, घर के प्रत्येक व्यक्ति उसको आज्ञानुसार चलते हैं, इसी पिता की तरह वहां पर और भी पिता हैं जिनको आज्ञा उनके घरवालों को शिरोधार्य हैं। जब तक किसी प्रकार का व्याघात या उपद्रव नहीं होता सब का जीवन यों ही बना रहता है किन्तु ज्यों ज्यों समाज बढ़ती जाती है समाज को आवश्यकता बढ़ती जाती है। आपत्तियों को दूर करने के लिये या कोई कार्य विशेष के आ पड़ने पर उन घरों के पिता या अगुआ सब मिल कर सलाह करते हैं और इस प्रकार से गांव में पंचायत की नींव पड़ती है। और यही राष्ट्र का आदि स्वरूप है। आरंभ में यह पंचायत सिवाय इस के कि इस समय पर बोना चाहिये, इस समय पर काटना चाहिये, या अपराधियों को दंड देने के सिवाय कुछ नहीं करती क्योंकि मनुष्यों का जीवन पुरानी रस्म रेवाज़ों के अनुकूल व्यतीत होता है। डाका आदि से अपनी रक्षा करने के लिये या किसी समीपवर्ती जाति वालों का किसी अपराध के लिये दंड आदि देने की आवश्यकता पड़ने पर वे लोग आपस में ही से एक मनुष्य को नेता चुन लेते थे। लड़ाई होने से इस नेता का प्रभाव तथा अधिकार धीरे २ बढ़ता जाता था। लूट मार की चीज़ों में इसे हिस्सा अधिक मिलता था और इस के सिपाही इसकी सहायता पर उद्यत रहते थे। क्रमशः सत्ता के बढ़ने से फ़ौजी राज्य (Military Kingdoms) उत्पन्न हो गये, इन्हें फौजी इस कारण से कहते हैं कि इनका होना न होना सेना के बल पर निर्भर रहता था। ये राष्ट्र के नाम से नहीं पुकारे जाते क्योंकि इन में कानून आदि बनाने के लिये कोई नियंत्रित संस्था नहीं रहती थी। नेता कानून नहीं बनाता था, वह अपनी प्रजा को अपनी आज्ञा सुना देता था और लड़ाई करने के लिये उन से मनुष्य की और धन की सहायता लेता था। इस तरह के राज्य "कर लेने वाले राज्य" (Tax-taking empires) कहे जाते हैं। ग्रीक आदि

पहाड़ी देशों में राष्ट्रों की उत्पत्ति और ही तरह से हुई थी। ये लोग पहाड़ों के बीच में रहते थे जो उन्हें किले का काम देता था। ग्रीक निवासी मूर्ति पूजते थे जिन के लिये मंदिर आदि भी होते थे। उन लोगों का यह विश्वास था कि यदि कोई उनके देवता को उठा ले जाय और प्रसन्न करले तो फिर वह देवता उन लोगों पर कृपा करने लगेगा और उन लोगों को कष्ट होगा इस कारण से मूर्ति और मंदिर की रक्षा के निमित्त वे सब अधिकतर मंदिर के पासही रहते थे जो प्रायः पहाड़ों में होता था। पहाड़ी मुल्कों में शत्रुओं का धावा कम होता था, वहां शान्ति में जीवन व्यतीत होता था। और भी अन्य लोग वहां पर जा जा कर बसने लगे और धीरे २ सभ्यता का विकाश फैलने लगा-लड़ाई आदि की अधिक आवश्यकता न पड़ने से इन देशों में नेता (जो कि राजा समझा जा सकता है) की शक्ति घटने लगी। नेता इतना धनी न होता था कि उसके साथ कुछ अधिक मनुष्य होते, राज्य भी इतना बड़ा न होता था कि उसका प्रभाव बढ़ता-इस कारण धीरे २ राजा (नेता) के अधिकार के स्थान पर क्रमशः बड़े आदमियों (nobles) का अधिकार बढ़ा। नये २ निवासी आकर बसने लगे और इन लोगों के लड़के भी पुराने निवासियों की भांति उनके बराबर अधिकार चाहने लगे। ये कृतकार्य हुये और एक नेता (राजा) के स्थान पर बड़े आदमियों का हुक्म (Rule of the aristocracy) जारी हुआ। ज्यों २ निवासी और धनी होते गये और उनमें सभ्यता फैली, उन्हें उदर पालन के कामों से अवकाश मिला उन लोगों ने भी "सम अधिकार की दुन्दुभी बजाई। इस तरह से राजनैतिक विषयों में सभी लोग भाग लेने लगे और प्रजातंत्र राष्ट्र स्थापित हुये-इन राष्ट्रों में २,००० से ४०,००० हर तक पुरुष रहते थे। इन लोगों में देशभक्ति बहुत थी किन्तु अभाग्यवश ईर्षा, द्वेष की मात्रा देशभक्ति से भी अधिक थी। यह एक दूसरे का बड़प्पन नहीं देख सकते थे। लड़ाई झगड़े बहुत हुये अन्त में ये सब आपस में लड़ते २ कमज़ोर हो गये और उस समय फिलिप आफ मेसीडन और उसके वंशधरों ने अपनी फौज के बल से उन छोटे छोटे राष्ट्रों को परास्त किया और फिर एक मनुष्य (राजा) का अधिकार शुरू हुआ। क्रमशः।

श्रीमहात्मा बुद्धदेव और उनका भारत पर प्रभाव।

[पं० शुकदेव विहारी मिश्र द्वारा प्राप्त]

बड़े शोक का विषय है कि बुद्धदेव ऐसे परम आदर्श मनुष्य, जिनको तीन चौथाई से अधिक दुनिया मान करती है, जिनके धर्म को कई बातों में अब संसार सर्वोच्च स्थान देने लगा है, जिनके उपदेशों से कोटिशः स्त्री पुरुषों को आज दिन शान्ति, और आनन्द प्राप्त हो रहा है, और जिनका जीवन परम पावन था, उनके देशवासी ही उनके समदर्शी धर्म, दुःख हरण, पापमोचन और आनन्ददायक उपदेशों से बञ्चित रहें। जो सारे संसार में आदर पाता है, वह अपने ही देश में भुलाया हुआ और आदर रहित पड़ा है। भवतु। बौद्धधर्म पर हमारे द्वारा अत्याचार होने से और हमारी मूर्खता और कृतघ्नता ही के कारण भारत माता को जिसकी गोद में महात्मा कृष्ण ऐसे तत्वज्ञानी, युधिष्ठिर ऐसे सत्यव्रती, हरिश्चन्द्र ऐसे दानी, कालीदास ऐसे महाकवि और चाणक्य ऐसे नीतिज्ञ खेल चुके हैं, असह्य दुःख भोगने पड़े हैं और पड़ते हैं। प्रायः ऐसेही पापों के कारण भारत सभ्यता के शिखर से लात खा कर पृथ्वी पर औंधे मुंह गिर पड़ा है। हमारे भारतवर्ष में ऐसे अनेक महात्मा जन्म ले चुके हैं जैसे हमारे निबन्ध के नायक श्रीभगवान बुद्धदेव थे। आप का जन्म काल ईसा के प्रायः ५५७ वर्ष पहिले माना जाता है। आप के पूज्य

पिता का नाम शुद्धोदन और माता का महामाया था। आप के पिता स्वयं कपिलवस्तु की राज्य पर जो बनारस से १०० (सौ) मील उत्तर की ओर हिमालय की तराई के निकट था शासन करते थे। यही महात्मा जिनको हम आज बुद्ध देव के नाम से पुकारते हैं पहिले सिद्धार्थ के नाम से इस जगत् में प्रसिद्ध थे। उस समय इस देश के मनुष्य अत्यन्त अधर्मी और अत्याचारी हो रहे थे, जिनके बोझ से पृथ्वी थरथरा रही थी। महात्मा श्रीकृष्णजी ने ऐसे ही समय की ओर इङ्गित कर कहा है-

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थान मधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

उपर्युक्त श्लोक के समर्थन में महाकवि तुलसीदास जी भी कहते हैं :-

जब जब होइ धरम की हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब प्रभु धरि विविधि शरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

बालकपन से ही आप दृढ़प्रतिज्ञ दयालुचित्त और सुशील थे। आप सब पर हार्दिक प्रेम और दाक्षिण्य भाव रखते थे। आप बाल्यावस्थाही से अधिकतर एकान्त में बैठ गूढ़ विषयों पर भली भाँति मनन किया करते थे। ऐसा करते करते आप सब सांसारिक वस्तुओं से विरक्त होने लगे, यहाँ तक कि आप को सर्वलौकिक वस्तुवें केवल बन्धन मात्र प्रतीत होने लगीं। इनकी ऐसी दशा देख इनके पिता को बड़ा खेद हुआ, अतः इससे इनका चित्त विरक्त करने के हेतु वे उपाय करने लगे, परन्तु फिर भी इससे आप का चित्त किञ्चित मात्र भी न डिगा। तब इनके पिता ने और सब उपाय निष्फल जान इनको गृहस्थ बन्धन में फाँसने के हेतु स्त्री रूपी रस्सी से जकड़ दिया। इनको सौभाग्यवती अर्धाङ्गिनी यशोधरा से एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ, परन्तु जिस का मन एक ओर रमा होता है उसे दूसरी ओर झुकाना दुस्तर है। इसपर शुद्धोदन के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुवा कि यह सन्यास व्रत धारण कर कहीं किसी बन की ओर पर्यान न करें अतः उन्होंने पहरेदारों को इनकी चौकसी पर नियुक्त कर दिया। इतना किये जाने पर भी आप के वैराग्य ने ऐसा प्रबल प्रभाव पैदा किया कि एक अंधेरी रात को आप ने घर छोड़ विस्तृत जगत में पदार्पण किया। कुछ दूर चलने पर इस महात्मा ने अपने राजसी वस्त्र उतार डाले, काक पक्ष कटवा डाले और गेरुवे वस्त्र धारण कर बन की राह ली। पहिले इन्हों ने बनारस के पण्डितों से पढ़ा, परन्तु! उन को शिक्षा में कुछ तत्व न जान आपने सीधे हिमालय पर्वत की ओर एकान्त में मनन करने के हेतु गमन किया।

प्रिय पाठक! ऐसे ही पक्के पुरुषों से देशोन्नति की आशा की जा सकती है। आप ने यहां ७ वर्ष घोर तप किया। कभी आप कन्द मूल फल खा कर निर्वाह करते और कभी भूखे पेट हो एक झपकी ले लेते। ऐसे कठिन व्रतों से ये इतने कृषतनु हो गये कि एकबार मूर्छा खा पृथ्वी पर अचेत गिर पड़े। इस दशा से उद्धार होते ही आप को ज्ञान उत्पन्न हुवा और तप की निःसारता पर आप को दृढ़ बिश्वास हो गया मानो तभी से पुनर्जन्म ले आप मोहापहारी परमेश्वर के अवतार बने। इसी अवसर पर जब आप बन में उपस्थित थे अयोध्या के राजस्थानीय परिवर्तन से ब्राह्मणों की प्रवल कीर्ति की क्षति हुई। तभी इस महात्मा ने उस पाप से जो उस समय भारत मंडल पर छाया हुवा था उद्धार करने के लिये इस असार संसार में फिर पैर रक्खा और काशी आदि स्थानों में अपने उपदेश दिये। इन व्याख्यानों ने लोगों का चित्त अपनी ओर इतना आकर्षित कर लिया था कि उन्होंने इन के चरणों पर गिर २ कर शिष्य होने की प्रार्थना की। इन की इतनी विमल कीर्ति सुन, इन के बृद्ध माता पिता अपने कुटुम्ब सहित

इन के चेले हो गये। क्या आज भी किसी में इतनी शक्ति देख पड़ती है कि स्वयं किसी का पिता उस का शिष्य बनने को प्रस्तुत हो जावै? कदापि नहीं। महाशय! बुद्ध देव कोई सामान्य पुरुष न थे वरन सर्वव्यापक, जन्म रहित, वेद-मूर्ति, अदृश्य, अनादि जिन को वेदों ने नेति २ कह कर गाया है उसी ही परमात्मा सच्चिदानन्द, आनन्दकन्द, पाप हरण ईश्वर के साक्षात् अवतार थे। आप ने लोगों को यह मंत्र दिया, कि मनुष्य अपनी मुक्ति का मार्ग स्वयं ही ढूंढ़ सकता है और अपने कृत कर्मों ही का फल भोगता है; आर्य्य हो या अनार्य, परमेश्वर की दृष्टि में सब बराबर हैं और मुक्ति के मार्ग समान हैं। किसी की भी आत्मा को कष्ट न पहुंचाना और सत्यभाषण करना ही मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है। उस मनुष्य को जिसका हृदय निर्मल है, जो मनुष्य जाति की सहायता पर सदैव तत्पर है, बलिदान द्वारा ईश्वर को तुष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं। मनुष्य मात्र का अभीष्ट इस संसार के झंझटों से छुटकारा पाना ही है।

आपने यह शिक्षा उस समय की देश भाषा प्राकृत ही में दी थी। इस भाषा के कारण भी लोगों पर इन के मत का बड़ा प्रभाव पड़ा।

आपका धर्म किसी भाँति से सनातनधर्म से भिन्न न था। ब्राह्मणों ने इनको अपना ही सुधारक जान इनका विरोध न किया। इसलिये इन का मत दिन दूना रात चौगुना फैलता गया। पहिले तो बौद्ध मतावलम्बी ईसाई धर्म ग्रहण करने वालों की भाँति नीच कुल ही के थे परंतु कुछ काल बीतने पर अशोकादि ऐसे वीर, प्रतापी, और आदर्श महाराजाओं ने भी इनके मत की शरण ली। फिर क्या पूछना था ऐसे परम आदर्श राजा की इच्छा बौद्धमत की ओर झुकी हुई देख उनकी प्रायः समस्त प्रजा ने इस मत को ग्रहण कर लिया। इस के उपरान्त इस सर्वोच्च सम्राट ने बौद्ध मतावलम्बी विद्वद्जनों को इस मत को फैलाने के लिये देश देशान्तर भेजा। कुछ समय व्यतीत होने पर सारा चीन, मङ्गोलियां, तिब्बत, बर्मा, सीलोन, स्याम और आसाम और आधे से अधिक भारत खण्ड इस धर्म को मानने लगा। संक्षेपतया इस मत की इतनी वृद्धि हुई कि एमरीका आदि देशों में भी लोगों ने इसका मान किया, और प्रतीत होता है कि किसी समय में यह मत एमरिका में भी प्रचलित रहा हो। उपर्युक्त कथन के समर्थन में यह कहा जा सकता है कि बौद्ध शिला लेख और बौद्ध मूर्तियां अब भी Maxico आदि में पाई जातीं हैं। इस सम्राट के लिये केवल यह कहना अनुचित न होगा कि इसने इस मत को उन्नति के शिखर पर पहुंचा दिया और इसकी सहायता करने में वही प्रयत्न किया जो यूरोप महाद्वीप के राजा कोन्सटैनटाइन (Constantine) ने ईसाई मत के हेतु किया था। चीन ने जापान में इस धर्म की उन्नति की, जिसकी ध्वजा आज विश्वमण्डल में फहरा रही है।

वह स्थान जहाँ श्रीबुद्ध भगवान् को ज्ञान उत्पन्न हुआ था आज गया के नाम से प्रसिद्ध है। अस्सी (८०) वर्ष की अवस्था में इनका देहान्त किशनगढ़ में हुआ।

परन्तु महाशय! जो चीज़ कि उन्नति के शिखर पर पहुंच जाती है उसका अधःपतन होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। कुछ दिन तक इस धर्म की उन्नति दिनोंदिन परम संतोष दायक होती गई; परन्तु समय पाकर उच्च बौद्ध सिद्धान्तों को लोगों ने भुला दिया और भारत निरीश्वरता एवं प्रतिमा पूजन के झंझटों में ऐसा उलझा, और बौद्ध पण्डितों में ऐसी धार्म्मिक जड़ता तथा कट्टरपन आ गया कि अत्यन्त उच्चाशय बौद्ध मत भी गिरने को अब तब करने लगा। इस समय, धर्म का सार बौद्धमत से निकल गया था और उन लोगों के हाथ मानों भूसी मात्र रह गई थी।

इस अवसर में वैदिक मतावलम्बी ब्राह्मण लोग केवल हाथ पर हाथ ही धरे न बैठे रहे किन्तु यही विचार करते रहे कि हमारे धर्म की अवनति क्यों हुई और उसके पुनर उत्थान का मार्ग क्या है।

आठवीं शताब्दी में कुमारिल भट्ट ने वैदिकमत को पुनर्स्थापन करने के हेतु बौद्धधर्म को भली भांति पढ़कर उन लोगों से शास्त्रार्थ किया, यहां तक कि इन्होंने सारे बौद्ध मत के विज्ञ पुरुषों को परास्त कर सनातन धर्म की ध्वजा इस देश में फिर से फहराई। यह महात्मा अपने गुरु का इतना आदर करते थे कि आपने अपने गुरु को परास्त करने के पश्चात प्रायश्चित्तार्थ अपने को तुषा अग्नि में सुख से भस्म कर दिया। उपर्युक्त कथन के समर्थन में नीचे लिखी हुई कविता अविकल उद्धृत की जाती है:—

"सब बुद्धधर्म के विज्ञजनों
ने बाद कुमारिल से ठाना।
प्रबल युक्तियों से परास्त हो
उसे परम पंडित माना॥
पुनि सकल देस के बौद्ध
पंडितों ने मिलि करी पुकार।"
तो भी कर बाद कुमारिल
ऋषि से पाई केवल हार॥
इम बाद कुमारिल ने करके
वैदिकमत को फिर पुष्ट किया।
पर बौद्ध गुरु का मत खंडित कर
प्रायश्चित में चित्त दिया॥
सो तृष्णा अग्नि में जल कर
सुख से हुआ कुमारिल छार।
नहिं ऐसा धार्मिक दृढ़ प्रतिज्ञ
नर देखा गया उदार॥ १॥

इसी काल में शङ्कर के अवतार श्रीशङ्कराचार्य जी और कई अन्य आचार्यों ने मिल कर ऐसा ज़ोर मारा कि बौद्धधर्म भारत से निर्मूल होगया। परन्तु इन्हीं लोगों ने बौद्धमत से उस की कई प्रधान और लाभदायक रीतियों को हिन्दू धर्म में मिश्रित कर हिन्दू मत की त्रुटियों को पूरा किया। इस प्रकार यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बौद्ध और प्रचलित हिन्दू मत कोई नवीन धर्म नहीं है वरन उसी पुराने हिन्दू मत की शाखायें हैं। अतः बुद्ध धर्म और प्रचलित हिन्दू धर्म में बहुत ही थोड़ा अन्तर जान पड़ता है क्योंकि इन दोनों की मुख्य २ रीतियाँ एक दूसरे से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं। पुनर्जन्म का सिद्धान्त महात्मा बुद्धदेव ने कपिल तत्व-विज्ञान से जो कि उपनिषदों से लिया गया था, पाया। और कई एक अन्य बातें भी इसी महामुनि से पाई थीं। हिन्दुओं ने मूर्तिपूजन और जीवों पर दया करना बुद्ध मत ही से लिया। इसी कारण यह प्रतीत होता है कि बुद्धधर्म का नाम मात्र ही बदला है न कि सारा मत ही भारतवर्ष से लोपायमान हो गया। इन दोनों धर्मों के झगड़ों ने देश का बल इतना हीन कर दिया कि दिन दिन भारत सौभाग्य का सूर्य्य अस्त होता गया यहां तक कि आज वह इस दशा को प्राप्त हो गया है। हमें भगवान बुद्धदेव को कोटिशः धन्यवाद देना चाहिये कि जिनकी कृपा से आज हम दूध और घृत से परिपूर्ण हैं। प्राचीन काल में (बौद्धधर्म के पहिले) हम लोग पशुओं के प्रति इतनी दया कदापि नहीं करते थे जिसके कारण पशुओं का अभाव रहता था, यहाँ तक गऊ ऐसे उपयोगी जीव की रक्षा करना हम नहीं जानते थे। परन्तु आज ऐसा दिन भगवान बुद्धदेव ही के कारण आ उपस्थित हुआ है, कि हम उसी उपयोगी गऊ माता के बदले प्राण भी संकल्प करने को उद्यत हैं। हमें दुग्धादि का सुभीता एवं कृषि व्यापार की सुगमता आज गऊ गण के आधिक्य से ही प्राप्त है। जीव दया के अतिरिक्त हिन्दू मत ने मठों की संस्था भी बौद्ध मत से ही पाई है। जहां दया और मठ हमें बौद्धों से मिले वहां स्त्री जाति की अवनति भी इसी मत के समय से आरम्भ हुई। बहुत लोगों का मत है कि भारत में प्रतिमा पूजन का गौरव भी

स्वर्गवासी पण्डित सरयूप्रसाद मिश्र।

बौद्ध काल ही से हुवा। अब हमारा पवित्र कर्तव्य है कि जैसे शंकर स्वामी ने बौद्ध मत को ध्वस्त कर के भी उस के सद्गुणों को नहीं छोड़ा, वैसेही हम भी अपने समय के अनुचित आचरणों का सुधार कर प्राचीन हिन्दू और बौद्ध मतों के मिश्रण को अपने लिये पूर्ण उन्नति-कारी बनावें।

लेखक—पं० अनन्तराम वाजपेयी
तथा लक्ष्मी शंकर मिश्र।

———

स्वर्गीय पण्डित सरयूप्रसाद जी मिश्र।

संस्कृत के धुरन्धर पण्डित होने पर भी साधारण लोगों के उपकारार्थ हिन्दी भाषा में अनेक ग्रन्थों के रचने वाले स्वर्गीय पंडित सरयू प्रसाद जी मिश्र का नाम तो बहुत लोगों ने सुना होगा।

इन पण्डित जी का जन्म प्रतिष्ठित सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में काशी जी के मुहल्ले बांस के फाटक में संवत् १९०९ कार्तिक कृष्णा ११ रविवार (ता० ७ नवम्बर सन् १८५२ ई०) को हुआ था। इनके पिता का नाम पण्डित माता दयालु मिश्र था जो अपने समय में काशी के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी हो गये हैं।

बचपन में पं०जी एक बार ऐसे रुग्ण हुए कि माता पिता ने औषधि आदि से लाभ की आशा छोड़ दी और बालक को गणेश जी पर अर्पण कर आये। गणेश जी की कृपा से बालक स्वस्थ हुआ और पुनः माता पिता की रक्षा में आया। पण्डित जी की माता विदुषी थीं बचपन ही से वे अपने पुत्र को अनेक प्रकार की शिक्षा दे चलीं। तुलसीकृत रामायण के पद्य और धर्म सम्बन्धी अनेक पौराणिक इतिहास पं० जी ने अपनी माता से सुन रक्खे थे। माता पिता का प्रेम भी पुत्र पर अतुल था। एक वार तीर्थयात्रा में कहीं रेल छूट गई और स्टेशन पर के लोगों ने यात्रियों को शरण नहीं दी। शीत ऋतु का समय था। खुले मैदान में रात्रि के समय माता पिता को पुत्र समेत रहना पड़ा। पण्डित जी को अपने जीवन में बारम्बार वह अवस्था स्मरण आती थी कि माता पिता ने उन्हें शीत से बचाने हेतु अपने सब कपड़े उन पर डाल दिये और दोनों प्राणी केवल एक धोती ओढ़े शीत सहते रात भर जागते रह गये।

केवल घर में माता ही से शिक्षा प्राप्त की हो सो नहीं कुछ अवस्था बढ़ने पर माता पिता ने इन्हें बनारस जयनारायण कालिज में पढ़ने को बिठला दिया। शब्दरूपावली का आरम्भ पण्डित जी को पादरी ह्यूपर ने कराया था जिन्हें पण्डित जी जन्म भर 'गुरो!' ऐसा सम्बोधन करके पत्र लिखा करते थे। आश्चर्य की बात यह है कि पीछे से संस्कृत विद्या में व्युत्पत्ति पाके स्वयं पं० जी ने फिर उन्हीं ह्यूपर साहिब को संस्कृत के अनेक ग्रंथ पढ़ाये थे। ह्यूपर साहिब भी पण्डित जी का बड़ा आदर करते थे।

जयनारायण पाठशाला में पण्डित जी को वहाँ के प्रधान संस्कृताध्यापक पण्डित गोपाल उपासनी जी के शिष्य होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्कूल में पढ़ने के लिये पर्याप्त समय न मिल सकने के कारण पण्डित जी ने गुरु जी के घर पर उपस्थित हो, पढ़ना आरम्भ किया। गुरु जी ने भी मन लगा के शिक्षा दी। पण्डित जी अपने गुरू की सेवा भी बड़ी भक्ति और श्रद्धा समेत करते थे यहाँ तक कि गुरू ने प्रसन्न होके इन्हें आशीर्वाद दिया था कि तुम्हें थोड़े ही परिश्रम में बहुत विद्या आ जायेगी। काल पाके गुरू जी का यह आशीर्वाद फला पण्डित जी अपने समय के विद्वज्जनों में एक ही थे। गुरू जी के पास पण्डित जी को केवल सिद्धान्त कौमुदी का थोड़ासा भाग और रघुवंश काव्य के कुछ सर्ग पढ़ने का अवसर मिला था पर पीछे से स्वयं अभ्यास करके पण्डित जी बड़े व्युत्पन्न, दार्शनिक और कवि हुए। पं० जी की

गुरू जी पर अटल भक्ति जन्मभर बनी रही उन की मृत्यु का समाचार सुनके पं० जी ने दिनभर उपवास किया और विधवा गुरुआइन जी की अर्थ द्वारा सहायता उनके मरण पर्यन्त करते रहे।

अठारह वर्ष की अवस्था में पं० जी को काशी छोड़ के विदेश जाना पड़ा। बारह वर्ष के लगभग पण्डित जी ने जबलपुर में निवास किया और धनी लोगों तथा पाठशाला आदि में पढ़ा के पण्डित जी ने अपनी जीविका का निर्वाह किया। पं० जी को विदित हो गया था कि शिक्षा के अभाव से इस देश के लोगों की बड़ी दुर्दशा थी और संस्कृत समझने वाले लोग बहुत अल्प थे अतएव भाषा में ग्रन्थ लिख के मैं देश का उपकार करूँ यह विचार उनके चित्त में समाया। पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कृत आख्यान मञ्जरी का भाषानुवाद पं० जी का पहिला परिश्रम भाषा की उन्नति के लिये हुआ पर धनाभाव के कारण वह छप न सकता था। मिस ब्राश्च महाशया की सहायता से इस ग्रन्थ का प्रथम भाग पहिले छपाया गया प्रथम भाग को द्वितीय बार और शेष भागों को पीछे से बाँकीपुर खड्गविलास प्रेस के स्वामी बाबू रामदीन सिंह जी ने छपा दिया था।

जबलपुर में पण्डित जी को बाबू कैलास चन्द्र दत्त एम्० ए० (प्रोफेसर संस्कृत कालेज जबलपुर) एक बड़े सुहृत मिले उन के उत्साह दिलाने से पं० जी ने बंगला, मरहठी, उड़िया, गुजराती आदि अनेक भाषायें सीखीं और अंगरेज़ी पढ़ने की भी चेष्टा की। पण्डित जी ने कालिदास कृत रघुवंश का पद्यबद्ध भाषानुवाद भी किया। इस में प्रत्येक श्लोक का अनुवाद भाषा में प्रायः संस्कृत के छन्दोंही में किया गया है और इस बात पर ध्यान रक्खा गया है कि मूल का भाव अनुवाद में छूटने न पावे। शब्द प्रायः ऐसे रक्खे गये हैं जिन्हें प्राचीन हिन्दी के कवियों ने अपने ग्रन्थ में लिखा है। संस्कृत के जो शब्द अपभ्रंश रूप में अब भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों में प्रचलित हैं उनका भी बहुतायत से प्रयोग किया गया है। यद्यपि यह ग्रन्थ अनुवादात्मक है तथापि स्वतन्त्र पढ़ने वालों के लिये हिन्दी भाषा में यह विशेष व्युत्पत्ति प्राप्त कराने में लोगों का बड़ा सहायक होगा। संस्कृत में जैसे वाल्मीकीय रामायण के रहते हुए भी कालिदास कृत रघुवंश काव्य का प्रचार विरल नहीं है वैसेही भाषा में तुलसीकृत रामायण के होते हुए भी हिन्दी रसिकों के बीच में रघुवंश के इस पद्यबद्ध भाषानुवाद का प्रचार विरल न होगा।

स्त्री शिक्षा के अभाव से माताओं को जन्मतुए बच्चे की रक्षा करते न देख पं० जी के चित्त में यह विचार हुआ कि लोगों को इस विषय में सावधान करना उचित है अतएव उन्होंने वङ्गभाषा से मातृशिक्षा का भाषानुवाद करके मित्रों की सहायता से उसे छपवा डाला। यह ग्रन्थ नवप्रसूत बालकों की रक्षा किस रीति से की जावे इस के नियम बतलाता है। इस ग्रन्थ के यथेष्ट प्रचार से मूर्ख माताओं की असावधानता से मरने वाले छोटे २ बच्चों की संख्या बहुत घट जा सकती है। न केवल ग्रन्थ रचना ही के द्वारा किन्तु समय २ पर समाचार पत्रों में लेख आदि देके भी हिन्दी भाषा तथा उसके रसिकों का पण्डित जी ने बड़ा उपकार किया। कवि वचन सुधा, शुभचिन्तक, क्षत्रिय पत्रिका और हिन्दी प्रदीप आदि समाचार पत्रों में समय २ पर पण्डित जी के अनेकों बहुमूल्य लेख छपे हैं।

पाठशालाओं के लिये जो भाषा की पाठ्य पुस्तकें मध्य प्रदेश में प्रस्तुत हुई उनमें भी पंडित जी ने ग्रन्थ सङ्कलन करने वालों को भांति भांति की सहायता दी थी।

न केवल भाषानुवाद ही किन्तु संस्कृत के काव्य भी पं० जी ने रचे। अठारह वर्ष की अवस्था में रोग से मुक्त होने पर अनेक छन्दों में अनुप्रास युक्त सौ श्लोकों का एक सूर्य शतक पण्डित जी ने रचा था। श्रीगणेश जी पं० जी

के इष्टदेव थे अतएव उनके माहात्म्य के वर्णन में 'हेरम्बचरित' नामक एक द्वादश सर्गात्मक महाकाव्य भी पं० जी ने प्रणयन किया। सूर्य शतक तो छपगया पर अर्थाभाव से हेरम्बचरित अभी तक नहीं छपाया जा सका है।

पं० जी भाषा तथा संस्कृत की स्फुट कविता तथा समस्या पूर्त्ति आदि भी किया करते थे जो सामयिक समाचार पत्रों में प्रगट हुआ करती थी।

प० बालकृष्ण थत्ते से पं० जी ने न्यायशास्त्र पढ़ा था और वैशेषिकदर्शन का भाषानुवाद भी कर डाला था। पुनः दुहरा के इस अनुवाद का अधिकांश पं० जी शुद्ध भी कर चुके थे और लोगों की समझ में आने के लिये उसे ग्रन्थाकार लिख के प्रस्तुत भी कराया है। यह ग्रन्थ बहुत बड़ा हो गया है पर वैशेषिक सूत्र का अर्थ विशद करने के लिये कोई उपायान्तर था भी नहीं। छओं दर्शनों के पढ़ने में भी पं० जी ने बहुत श्रम किया और अन्त में वेदान्त के सिद्धान्त उनके चित्त में दृढ़ता पूर्वक जमे। उपनिषद्, भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र आदि के पठन पाठन से पं० जी को इतनी व्युत्पत्ति हो गई कि उनके सामने बड़े २ विद्वान् युक्ति द्वारा विवाद में ठहर नहीं सकते थे। वेदान्त के सिद्धान्त को भली भांति समझ के पं० जी को भगवद्भक्ति का बड़ा पक्षपात था तथा उनके मत में ज्ञान और भक्ति दोनों मनुष्य को परम पुरुषार्थ प्राप्त कराने वाली थी। नारद के भक्तिसूत्र की टीका भी पं० जी ने संस्कृत में लिखी थी और ग्रन्थान्तरों से भक्ति के श्लोकों का संग्रह भी किया था।

अनेकों पुराण तथा धर्मशास्त्र आदि पढ़ के पं० जी ने चुने हुए श्लोकों का एक संग्रह भी अपने पास लिख रक्खा था जिससे समय २ पर उनका बड़ा काम निकला करता था। वासुदेव रसानन्द, सुसिद्धान्तोत्तम और सिद्धान्त-दर्पण आदि ग्रन्थों को उनके प्रकाशित होने से पूर्व पं० जी ने शोधन किया था।

पं० जी की विद्या में बड़ी रुचि थी और वे रात दिन में जब अवसर पाते विद्याध्ययन ही में लगे रहा करते थे। यद्यपि जीविका निर्वाह के लिये उन्हें पाठशाला में वा महाजनों के घर पर पढ़ाने जाना पड़ता था तथापि उन्हें भृतकाध्यापन अर्थात् वेतन लेके पढ़ाना प्रिय न था। उन्होंने धनार्थ विद्याध्ययन नहीं किया था किन्तु ज्ञान में रुचि होने के कारण उन्होंने दर्शनशास्त्रादि में अधिक समय व्यय किया था। अंगरेज़ी पढ़ने में ऐहिक सुख के अतिरिक्त आध्यात्मिक उन्नति का सहारा न पाके उन्होंने उपेक्षा की। सुभीते अनुसार बँगला, मरहठी आदि पुस्तकों को पढ़ के इतिहास, भूगोल, विज्ञानशास्त्र आदि का भी ज्ञान पण्डित जी ने भलीभाँति प्राप्त किया था। उपयुक्त विद्यार्थी को घर पर बिना वेतन पढ़ाने में भी पं० जी की बड़ी रुचि थी। पं० जी के विद्यार्थी भी उनका बड़ा आदर करते और उन पर भक्ति रखते थे।

सं० १९४० में डिविनिटी स्कूल प्रयाग के प्रिन्सपल डाक्टर हूपर साहब ने पं० जी को जबलपुर से प्रयाग में बुला लिया। यहां भी पं० जी का मन विद्याध्ययन ही में लगा रहा। पं० जी समय २ पर लोगों के कहने से हिन्दू समाज वा धर्म सभा आदि में जब तब व्याख्यान भी दिया करते थे। प्रयाग में आने पर पं० जी की मित्रता पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० मदनमोहन मालवीय, पं० आदित्यराम भट्टाचार्य, पं० शिवराम जी पांड़े वैद्य आदिकों से हुई। बांकीपुर के महाराज बाबू रामदीनसिंह जी भी पं० जी पर बड़ी कृपा रखते थे। बाबू रामदीनसिंह जी ही के अनुरोध से पं० जी ने 'हैहय कथा संग्रह' नाम का एक बड़ा ग्रन्थ लिखा जिसमें पुराणों, इतिहासों, शिला लेखों और वैदिक मन्त्रों तक से हैहय वंश विषयक बातें खोज खोज के लिखी हैं। बाबू रामदीनसिंह जी स्वयं हैहय वंशी राजकुमार हैं अतएव उन्होंने पं० जीसे यह श्रम कराया था। उक्त बाबू साहब के

अनुरोध से पं० जी ने और भी कई एक छोटे बड़े ग्रन्थ रचे थे और बाबू साहब ने बहुत दिनों तक धन द्वारा पं० जी की सहायता की थी। पं० आदित्यराम भट्टाचार्य ने भी स्वसङ्कलित, संस्कृत शिक्षा, गद्यपद्य संग्रह और ऋजु व्याकरण आदि ग्रन्थ में पं० जी से सहायता ली थी और समय २ पर धन द्वारा वे पं० जी की अनेक प्रकार से सहायता भी करते थे।

पं० मदनमोहन जी मालवीय ने पं० जी से संस्कृत एम्० ए० कोर्स कुछ दिन लों पढ़ा था। ये महाशय पं० जी पर बड़ी भक्ति रखते थे। पण्डित जी के पुत्रों को कालिज में फीस देने का प्रयोजन पड़ने पर मालवीय जी ने बहुत कुछ सहायता दी थी। पं० बालकृष्ण जी भट्ट ने भी कई अवसरों पर पं० जी का बड़ा उपकार किया और पं० जी भी श्रम पूर्वक लाभदायक लेखों को प्रस्तुत कर छापने अर्थ भट्ट जी को दिया करते थे। पं० शिवराम जी ने भी अपने स्वाभाविक औदार्य से बिना मूल्य अपनी बहुमूल्य औषधि दे के पं० जी की बहुत भलाई की थी इस विषय में पं० जी जन्मभर उनके कृतज्ञ बने रहे। पं० जी की शिक्षा और संमत्यनुसार चलन से शिवराम जी ने संसार में अपनी बड़ी उन्नति की। प्रयाग वासी मित्रों की सम्मति से पं० जी ने 'दिव्य दम्पति' नाम एक वृहद् ग्रन्थ रचा जिस में धर्मशास्त्रों और वैद्यक शास्त्रों द्वारा सिद्ध किया है कि हिन्दुओं के बीच प्रचलित बाल्य विवाह की रीति शास्त्रानुमोदित नहीं है और इसके न रोकने से जाति तथा देश के शीघ्र अधःपात का भय है।

पिता, माता और ज्येष्ठ भ्राता के मरने पर पं० जी को अपनी विधवा, भगिनी, भौजाई और अनाथ भतीजों तथा भाञ्जों का संरक्षण करना पड़ा। एक तो आय अल्प दूसरे व्ययाधिक्य पर अनेक प्रयत्नों से पं० जी ने सब का पालन पोषण यथोचित रीति से किया। पं० जी के एक कन्या थी जिसके विवाह की चिन्ता कभी २ पं० जी को व्याकुल करती थी पर ईश्वर की कृपा से पं० जी के शिष्य पं० मथुराप्रसाद जी त्रिपाठी और पं० भगवद्दत्त मिश्र की सहायता से यह कार्य भी भली भाँति निपट गया।

पं० जी ने अपने पुत्रों को संस्कृत और अङ्गरेज़ी में अच्छी शिक्षा दी उनके पुत्रों में से तीन जेठे ग्रैजुएट हो चुके हैं और कनिष्ठ पुत्र बी० ए० क्लास में पढ़ रहा है अपने पुत्रों को पं० जी ने स्वयं भी परिश्रम करके संस्कृत पढ़ाया था और उनके द्वितीय पुत्र हरिमङ्गल मिश्र ने संस्कृत में एम० ए० पास किया।

पं० जी को अपने पुत्रों पर बड़ी ममता थी। इन्हीं पुत्रों का क्लेश बचाने के लिये पं० जी ने अपनी स्त्री के मरने पर पुनर्विवाह न किया और पुत्रों के विषय में माता पिता दोनों का कर्त्तव्य अकेले ही निवाहा।

पं० जी के वेदान्त सम्बन्धी विचारों और युक्तियों को उनका मध्यम पुत्र बड़े ध्यान से सुनता था। संवत् १९६४ में अकस्मात् उसका देहान्त हो जाने से पं० जी को बड़ा शोक हुआ यहाँ तक कि निद्रा नाश होगया अन्त में संवत् १९६४ को मार्ग शीर्ष शुक्ल पञ्चमी को पण्डित जी पुत्र शोक से परलोक सिधारे।

पण्डित सरयूप्रसाद जी मिश्र ने संसार में अपना जीवन एक महर्षि की नाईं व्यतीत किया उनका आचरण सर्वथा निर्दोष और अनुकरणीय था। उनका अधिकांश समय विद्याभ्यास ही में बीतता था। वे प्रतिदिन प्रातःकाल उठते, वायु सेवन के लिये जाते और समय पर नियमपूर्वक सन्ध्या बन्दन इत्यादि किया करते थे। वे विद्यार्थियों और अतिथियों का बड़ा सत्कार करते थे। उनकी चाल सीधी सादी थी। बहुमूल्य वस्त्र जैसे रेशमी वस्त्र, दुशाला अथवा और किसी प्रकार के दिखाऊ कपड़े उन्होंने कभी धारण न किया। अपने सब पुत्रों पर वे सदा समभाव रखते थे। पुत्रों के आचरण की ओर इनका बड़ा ध्यान रहा करता था और वे

वीराङ्गना।

डा० कुमार स्वामी के अनुग्रह से प्राप्त।

अभ्युदय प्रेस-प्रयाग।

सदा उनको देख रेख रखते थे । पुत्रों के लिये आचरण में स्वयं वे उदाहरण स्वरूप थे उनका सिद्धान्त था कि यदि मेरा आचरण शुद्ध है तो देखादेखी मेरे बालकों का आचरण वैसा ही होगा। वे जितेन्द्रिय ऐसे थे कि ठीक युवावस्था में स्त्री के देहान्तानन्तर उन्होंने पुनर्विवाह न किया। गुरुभक्त वे ऐसे थे कि उन्होंने अनेक कष्ट सह के विधवा गुरुआइन जी के लिये धनोपार्जन कर के मरनेके समयलों उनकी सहायता की। सत्य बोलने का उनका ऐसा नियम था कि धनी, महाजन आदिकों की चापलूसी करना तो दूर रहा यथार्थ दोष कह देने में भी भय वा सङ्कोच नहीं करते थे और चित्तगत भाव तथा बाह्य-व्यवहार सदा एक सा रखते। मितव्ययी थे और धनादि के विषय में वे सदा शुचि रखते थे। वे सदा पथ्य से रहा करते किसी की अनुचित निन्दा न करते और भगवद्विषयक कथावार्त्ता में विशेष प्रसन्न रहते थे वे कोई कार्य दिखाऊ न करते थे। विद्या में सविशेष रुचि रखने के कारण उन्होंने बहुतसी पुस्तकें बटोर के घर में एक पुस्तकालय प्रस्तुत कर रक्खा था ।

पुत्रों को शक्त्यानुसार शिक्षा दिला के उन्होंने संसार यात्रार्थ उनको नौकरी भी यथोचित उद्योग करके लगवा दी। उन्होंने पुत्रों से धनादि लेने का विचार कभी न किया वरन् जब और कोई नौकरी आदि का आश्रय न था तब शिष्यों से सहायता ले के अपना निर्वाह पिछले दिनों में करने लगे थे। पहले दिनों में राय साहब बाबू ईश्वरी प्रसाद जी ने धन दान द्वारा पं० जी की बड़ी सहायता की। पं० जी हिन्दू कालिज बनारस में अवैतनिक भाव से सन्ध्यावन्दन आदि कृत्य सिखाना तथा बालकों को धर्म शिक्षा आदि देने का कार्य पं० आदित्यराम भट्टाचार्य के अनुरोध से स्वीकार किया था ।

वे बाल्यविवाह के परम विरोधी थे। यद्यपि समाज के लोगों को यह प्रिय न था तथापि अपने पुत्रों का अल्प अवस्था में विवाह न कराने के वे आदर्श बने। कुछ लोगों ने समझा था कि अवस्था बढ़ने पर इनके पुत्रों का विवाह न हो सकेगा पर पं० जी ने अपने सामने उच्च प्रतिष्ठित कुल में अपने पाँचों पुत्रों का विवाह उनकी युवावस्था में अनायास ही कर दिखलाया । विवाह में सरयूपारियों के बीच में जो यौतुक के ठहराव की रीति प्रचलित हो गई है उसकी उन्होंने यथेष्ट उपेक्षा की और इन्हीं की देखादेखी प्रयागवासी पं० मथुराप्रसाद त्रिपाठी और पं० शिवराम पाँडे वैद्य ने भी बिबाह में यौतुक का ठहराव नहीं किया ।

आरा नागरी प्रचारिणी सभा की प्रेरणा से हिन्दी भाषा का एक व्याकरण लिखने के प्रयत्न में लगे हुए थे बहुत कुछ सामग्री इकट्ठा भी कर चुके थे पर असमय में पुत्र शोक के कारण प्राणान्त हो जाने से वे उसे लिख न सके। निदान इस अनमोल व्याकरण द्वारा लाभ उठाने से संसार वञ्चित रह गया ।

"हितैषी"

वीरांगना ।

[लेखक-लाला भगवानदीन ।]

१

बता दो पाठको ! इस चित्र-पट,
की छवि को क्या समझें ।
नज़ाकत की छटा या बांकपन,
की इक अदा समझें ॥

२

भरी उत्साह से रसबीर,
की इसको घटा समझें ।
उमंगों की तरंगों से कि
लोलित आयगा समझें ॥

३

रजोगुण से प्रफुल्लित इसको
या कंचन लता समझें ।
महाकाली कि दुर्गा या कि
अबला या बला समझें ॥

४

दुराचारी अभद्रों के
लिये इसको कशा समझैं।
किसी कायर की या इसको
बिवाही कर्कशा समझैं॥

५

तनी भौहों के नीचे
लोचनों मे लालिमा छाई।
इसे घनघोर में हम क्यों न
मंगल की प्रभा समझैं॥

६

दमकता क्रोध से चेहरा
फुरकते नासिकापुट हैं।
इसे हम लाल सागर में
न क्यों तूफान सा समझैं॥

७

अधर है फरफराता
दांत भी कुछ कटकटाते हैं।
इसे हम रौद्र रस का
क्यों न उत्तेजित दशा समझैं॥

८

उमँगता है हृदय इसका
दुराचारो के बधने को।
इसे हम क्यों न सतियों के
लिये धर्म ध्वजा समझैं॥

९

फड़कते हैं युगुल भुजदंड
पंजे कसमसाते हैं।
इसे बीरत्व की हम
क्यों न सच्ची आत्मा समझें॥

१०

कमर बांधे हुए तलवार
हाथों में लपकती है।
इसे मरदानगी की
क्यों न हम इक-तारका समझें॥

११

निकलती म्यान से
तलवार है इसको झपाटे से
सुता कर में लिये इसको
न क्यों हम चंचला समझैं॥

१२

दया के धाम अबला–
चित्त में यह निर्दयीपन क्यों।
इसे हम क्यों न बुड्ढे
बिधि की पूरी दक्षता समझें॥

१३

बता दो 'दीन' को
ऐ हिन्द के कवि चित्रकारो तुम।
इसे प्रत्यक्ष समझें?
चित्र समझें? या कथा समझें॥

(१)

बता देते हैं हम
इसचित्र-पट की छबि को क्या समझें।
मनोहर रूप धारे
क्रोध संयुत कालिका समझें॥

(२)

कहो यदि क्रोध में हरगिज़
मनोहरता नहीं रहती।
तो सुनलो, बीर रस की
इसको हम सुन्दर छटा समझें॥

(३)

कहैं यदि आप, दृढ़ता कुछ
छटा में हो नहीं सकती॥
तो सुन लो, सुस्थिरा
गंभोर पूरी चंचला समझें॥

(४)

कहोगे चंचला तो
विष्णु के चरणों की दासी है।
तो सुन लो बीर रस की
सब से तेजोमय कला समझें॥

(५)

कला कैसी ही हो पर
पूर्णता उसमें नहीं होती।
इसी से रौद्र रस को
इसको पूरी मात्रा समझें॥

(६)

कहोगे मात्रा रस की
तो दी जाती है रोगी को।
तो सुन लो हम इसे
कायरपने की हैं दवा समझें॥

(७)

दवा दारू से क्या मतलब
यहां कोई नहीं रोगी॥
तो सुन लो यह कि
कायर के लिये काली बला समझें॥

(८)

भला काली बला से
वीरता से कोई निस्बत है?
तो सुनलो हिन्द की
छत्रानियों का इक अदा समझें॥

(९)

अदा अंदाज तो शृङ्गार
के कमजार आयुध हैं।
तो सुन लो मित्रवर! हम
इसको कवि का कल्पना समझें॥

(१०)

कहैं यदि आप कवि की
कल्पना अव्यक्त होती है।
तो सुनलो हैं इसे हम
चित्र विद्या की दया समझें॥

(११)

दया से वीरता से
भेद है आकाश धरती का।
तो सुनलो इसको हम सब
वीर भावों की घटा समझें॥

(१२)

घटा कह कर घटाना
मान वारों का नहीं मतलब।
रजोगुण से भरी पूरी
इसे वीराङ्गना समझें॥

(१३)

कहेंगे आप सबही
अङ्गना अबला कहाती हैं।
तो सुनलो इस को हम मालिक
की इक अद्भुत रजा समझें॥

भारतवासी और वर्णपरिचय।

[लेखक—पं० चन्द्रशेखर शर्मा।]

सर्वाङ्ग पूर्ण भारत के इतिहास के न होने के कारण बहुत से पश्चिमी और उनके अनुयायी पूर्वीय विद्वान् इस की पुरानी ऋषि समय की रीतियों को जानने के लिये अनुमान को काम में लाते हैं। यह ठीक भी है परंतु उस अनुमान को शुद्ध होना चाहिये अभ्रांत होना चाहिये और जिन युक्तियों के सहारे अनुमान खड़ा किया जाय उन्हें दृढ़ तथा भारतीय शास्त्र सम्मत होना चाहिये तभी उस अनुमान से सफलता की आशा की जा सक्ती है। यद्यपि हम बेखटके इस बात को मानते हैं कि भारत का पूर्ण इतिहास नहीं है, परन्तु इतिहास की सामग्री भी नहीं है इस बात को मानने के लिये बुद्धिमान् उद्यत नहीं हैं, विचारशील इस बात का बिना बिचारे नहीं मान सक्ते हैं। अभी भी यहां के विद्या भाण्डार से उचित सामग्री मिल सकती हैं जो भारत की रीतियों के पता लगाने में अधिक उपयोगी हैं, किन किन विषयों में भारत की अभिज्ञता थी यह बात साफ साफ जानी जा सकती है। पुरातन तत्व का अनुसन्धान करने वालों को यह सदा ध्यान में रखना चाहिये।

मनमानी युक्तियों पर निर्भर होकर एक अप्रत्यक्ष बात के पता लगाने की चेष्टा केवल साहस ही नहीं है किन्तु आर्य जाति को अपमानित करना और इतिहास का खून करने के बराबर है।

पुरातन तत्त्व के अनुसन्धान करने वालों के जी में—भारत को वर्णपरिचय कहां से हुआ—यह प्रश्न खटक रहा है, उनमें कनिंहम और जर्मनी के वेदपाठी मैक्समूलर भट्ट हैं, इनका परस्पर विरुद्ध मत है। कनिंहम साहब का कहना है कि आर्यों को वर्णपरिचय बहुत पहले से था और वर्णमाला स्वतन्त्र रूप से (भाषा-तत्त्व के आधार पर) उत्पन्न हुई थी। परन्तु मैक्समूलर साहब इसके विरुद्ध हैं, आप कहते हैं कि वैदिक काल से लेकर सूत्र काल पर्यन्त आर्यों को वर्णपरिचय नहीं था, ये शब्द समूह वेद को केवल गुरू मुख से सुन कर याद कर लिया करते थे उन्होंने वेदों को देखा नहीं केवल सुना, देखते कैसे लिखा तो थाही नहीं अतएव उस का श्रुति नाम पड़ा, यदि वेद लिखे होते तो अवश्य देखे जाते और उनको श्रुति भी नहीं कह सकते थे। जिन्हें वर्ण ज्ञान है उन की पुस्तकों में इच्छा न रहने पर भी प्रसङ्गवश लेख सूचक शब्द अवश्य मिलते हैं, परन्तु वेदों में-गाता है, कहा था, पढ़ता है, बोलता है-इत्यादि शब्द मिलते हैं जो लेख सूचक नहीं हैं, इस से इसी सिद्धान्त को ग्रहण करना पड़ता है कि आर्यों को वर्णपरिचय नहीं था। मर्यादा के दूसरे भाग की प्रथम संख्या में इसी प्रकार का एक लेख प्रकाशित हुआ है, उसका सारांश यह है कि भारतीय वर्णमाला आर्यावर्त के ऋषियों की निर्माण की हुई नहीं है, किन्तु यह भारतवर्ष में द्राविड व्यापारियों से ईसामसीह के जन्म काल के सातवीं शताब्दी के पूर्व लाई गई थी इत्यादि इस बात को पुष्ट करने के लिये बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर कुछ युक्तियां भी दिखलाई गई हैं मैं इस विषय का विवेचन वैदिक साहित्य के आधार पर कहना चाहता हूं।

भारत के पुरातन ग्रन्थों में ऋग्वेद का स्थान सब से ऊंचा है ऋग्वेद सब से पुरानी पुस्तक है, उस के दशवें मण्डल में लिखा है—

"उत्तत्वः पश्यन्नददर्शवाचम्,
उत्तत्वः शृण्वन्नशृणोत्येनाम,
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे,
जायेव पत्ये उशती सुवासाः"

इस ऋक् के पहले भाग के द्वारा अविद्वान् (अनपढ़) और दूसरे भाग के द्वारा विद्वान् का वर्णन हुआ है इस का अर्थ यह है-कोई कोई मनुष्य इस वाच (शब्द) को देखकर भी नहीं देखते अनपढ़े आदमी यद्यपि पुस्तक रूपसे वाच को देखते हैं परन्तु वे बाँच नहीं सकते इस कारण उनका देखना न देखने के बराबर है, इस मन्त्र के द्वारा यह बात साफ साफ मालुम पड़ती है कि सबसे प्राचीन वैदिक काल में ही ऋषियों को वर्ण ज्ञान था, नहीं तो वे ऐसा कभी नहीं कहते कि वाच् को देखते हुए भी नहीं देखते, क्योंकि बिना लिखे हुए शब्द का देखा जाना असम्भव है। और यहां देखना का अर्थ जान[illegible] नहीं है किन्तु देखना ही है, क्योंकि इसी में [illegible] लिखा है कि सुनते हुए भी नहीं सुनते, यदि वहां जानना अर्थ होता तो इसे कहने की कोई आवश्यकता न थी। इससे स्पष्ट है कि वैदिक काल में लिपि परिचय भारतनिवासियों को था।

जिस देश वाले जिस किसी वस्तु के विषय में अनभिज्ञ होते हैं तो उनकी भाषा में उन सब वस्तु का वाचक शब्द भी नहीं रहता, मैं इसका एक उदाहरण के द्वारा स्पष्टीकरण करता हूं। संस्कृत का एक शब्द है स्रुव या स्रुवा,-यज्ञ में हवन करने के पात्र जो लकड़ी का बना हुआ होता है-इस का वाचक इङ्गलिश में कोई खास शब्द नहीं है आपटे की डिक्शनरी में इसका अर्थ लिखा है "Sacrificial ladle" इससे यह बात साफ साफ मालूम होती है कि यह दो शब्दों को जोड़ कर बनाया गया है, और ठीक

स्रुवा के अर्थ को यह शब्द नहीं कहता है इस शब्द का यदि हिन्दी अनुवाद किया जाय तो यही हो सकता है कि "चढ़ाने के लिये चमच" इसी प्रकार और भी अनेक शब्द संस्कृत में हैं जिनका प्रति शब्द इङ्गलिश में नहीं है। संस्कृत में भी बहुत से इङ्गलिश शब्दों के प्रति शब्द नहीं पाये जाते हैं। सारांश यह है कि यदि भाषा वर्ण परिचय से वञ्चित होते तो वर्ण शब्द भी उन्हें नहीं मालूम होता, परंतु वर्ण अक्षर लिपि आदि शब्द ही इसके प्रमाण हैं कि वे लिखना जानते थे उन्हें वर्ण परिचय था। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है- 'अष्टकपाल अग्नेयो ऽष्टाक्षरा गायत्री, गायत्रमग्नेश्छन्दः" अग्नि का पुरोडाश आठ कपालों (परई) में तैयार किया जाता है गायत्री छन्द के एक पाद के आठ अक्षर होते हैं, और गायत्री छन्द अग्नि का है। जब कि वेद के ब्राह्मण भाग में स्पष्ट रूप से अक्षर शब्द का प्रयोग किया गया है, तब वैदिक काल में ऋषियों को वर्ण ज्ञान नहीं था यह कैसे माना जाय। इस प्रकार शुक्ल यजुर्वेद के तेईसवें अध्याय अश्वमेध प्रकरण में लिखा है-"कत्यस्य विष्ठाः त्यक्षराणि..., षडस्य विष्ठाः शतमक्षराणि," पहला प्रश्न वाक्य है दूसरा उत्तर वाक्य, पूछा गया है इस यज्ञ के कितने अन्न हैं और कितने अक्षर हैं, इसका उत्तर है छ अन्न हैं और सौ अक्षर। क्या ये सब वैदिक काल में वर्णपरिचय के पूरे प्रमाण नहीं हैं, इनको देखकर भी वैदिक काल में ऋषियों को वर्णपरिचय नहीं था यह कह देना क्या न्याय सङ्गत है ?

भारतीय वैदिक साहित्य न जानने वालों के मुंह से यदि ऐसी बातें निकलें तो उसमें कुछ आश्चर्य नहीं है, उसका दुःख किसी को नहीं होगा क्योंकि वह कुछ जानता नहीं, परन्तु मोक्ष-मूलर भट्ट जैसे विद्वान् और वैदिक साहित्यानुशीली के मुंह से ऐसी बातें निकले यह कम आश्चर्य की बात नहीं है, वेद पढ़ने वाले सभी इस बात को जानते हैं, कि वेद का सम्बन्ध छन्दों से बहुत ही गहरा है। छन्द न जान कर वेद पढ़ने वाले पापी होते हैं, बिना छन्द जाने जो वेद पढ़ते हैं उन्हें मन्त्रकण्टक कहना चाहिये, यही हिन्दू शास्त्रों का उपदेश है यही ऋषियों का आदेश है। तैत्तिरीय में लिखा है-

"प्रजापतिरग्निमचिनुत, सक्षुरपविर्भूत्वाऽतिष्ठत् तं देवा बिभ्यतो नोपायन्, ते छन्दोभिरात्मानं छादयित्वोपायन्, तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्"। वै० सं०।

प्रजापति ने अग्नि को एकत्रित किया, वह (अग्नि) क्षुर बज्र बन कर स्थित हुआ, तब देवता भय से उसके पास नहीं जा सके अतः वे अपने को छन्दों से आच्छादित करके उसके पास गये, इसीसे छन्दों को छन्द कहते हैं। इसका भावार्थ यह है कि जब प्रजापति ने यज्ञ के लिये अग्नि को प्रस्तुत किया, उस समय डर गये क्योंकि उस समय उनके पास यज्ञ करने का साधन नहीं था, तब उन लोगों ने मिल कर छन्द बनाये और उसीसे छादित होकर अग्नि के पास गये, अर्थात् उन्होंने यज्ञ किया

त्रिष्टुप् जगती गायत्री आदि छन्दों में अक्षर का नियम है अर्थात् जिस छन्द में इतने अक्षर हों उन्हें अमुक छन्द समझना चाहिये। मैं पूछता हूं जिन्हें वर्णमाला का ज्ञान नहीं, भला वे अक्षर गणना कर सकते हैं और जिस छन्द में जितने अक्षर पर विश्राम करने का नियम है, वहां वे नियमानुसार विश्राम कर सकते हैं। आश्चर्य है कि इन श्रुतियों को देख कर भी वेद के बलवान् विद्वान् का इधर ध्यान नहीं गया जब से उन्होंने कह दिया कि सूत्र काल तक भारतीयों को वर्ण ज्ञान नहीं था कम से कम उन्हें इतना अवश्य सोचना चाहिये था कि बिना वर्णपरिचय के, बिना व्याकरण प्रक्रिया के ज्ञान के ऋषियों को उदात्त अनुदात्त का ज्ञान कैसे होता था, जो वेद मन्त्रों के उच्चारण में सब से श्रेष्ठ साधन है, जिनके न जानने से वृत्र का नाश होगया था। सम्भव है कि इस उक्ति में भी उनकी बड़ी

धारणा हेतु हो कि वेद किसानों के गीत हैं।

हिन्दुओं का सब से पूज्य और पहला वर्ण ओ३म् है, इसीसे अक्षरों की सृष्टि हुई है, यही विद्याओं का मूल है, इस अक्षर के विषय में हमारे दार्शनिकों का सिद्धान्त है कि इस का सम्बन्ध सृष्टि तत्व से है। वे कहते हैं कि जब प्रकृति साम्यावस्था (निष्क्रिय) को छोड़ कर वैषम्यावस्था (सक्रिय) को धारण करने लगती है उस समय अवश्य ही उसमें कम्प होता है, जहाँ कम्प है वहाँ शब्द भी अवश्य है, उसी प्रकृति के प्रथम कम्प का शब्द ओ३म्कार है, इसी प्रकार उन्होंने और वर्णों के भी विज्ञान बतलाये हैं। इस अवस्था में मैं नहीं समझता कि–ईसा के पूर्व सातवीं शताब्दी में द्रविड़ व्यापारियों के द्वारा वर्णमाला भारत में लाई गई है–यह कहना कहाँ तक युक्तियुक्त है।

इस विषय के जितने प्रमाण मैंने उद्धृत किये हैं वे सब वैदिक साहित्य के हैं। पाली भाषा प्राचीन है परन्तु संस्कृत से नहीं, उसमें वैदिक साहित्य के ही आधार पर ही ऋषियों का जीवन गठित हुआ था, अतः पुरानी बातें भी वहीं से ढूंढ़नी चाहिये, और वे ही अभ्रान्त हो सकती हैं। इस समय हम अपने घर की बातें दूसरों की सहायता लेकर जानना चाहते हैं इससे बढ़ कर और भी अधःपात क्या हो सकता है?

जो भाषा बोल चाल के रूप में रहती है, अर्थात् व्याकरण के नियमों से परिष्कृत और नियमित नहीं हुई रहती है, सम्भव है उसके जानने वालों को वर्णज्ञान न हो, परन्तु जिस भाषा के व्याकरण प्रस्तुत हैं, व्याकरण के नियमानुसार जहाँ प्रकृति और प्रत्यय का विभाग हो रहा है वहाँ वर्णमाला नहीं थी यह कहना कितने साहस की बात है। वैदिक व्याकरण भी बहुतही पुराना है, बौद्ध समय के कितनी शताब्दियों के पहले ही से यहां व्याकरण था, जिस का सम्बाद संहिताओं में पाया जाता है।

"वाग्वै पराच्यव्याकृतावदत्ते देवाइन्द्रमब्रुवन्, इमां नो वाचं व्याकुर्विति .... तामिन्द्रोमध्वतोऽवक्रम्पव्याकरोत्तस्मादियंव्याकृता वागुद्यते। (कृष्ण यजुर्वेद संहिता)।

सृष्टि के पहले शब्द अविभाग रूप से वर्तमान था, समुद्र ध्वनि के समान था, प्रकृति प्रत्यय का विभाग नहीं था, देवों ने इन्द्र की प्रार्थना की इन्द्र ने शब्द के प्रकृति प्रत्यय पद वर्ण आदि का विभाग कर दिया तभी से शब्द को व्याकृत शब्द कहते हैं। क्या इन प्रमाणों के द्वारा भारत में बहुत दिनों से वर्णमाला थी, और उसे महर्षियों ने उत्पन्न किया था यह बात प्रमाणित नहीं होती? अस्तु इसका निर्णय हमारे साध्य का नहीं है अतः मैं विचारवानों का आश्रय ग्रहण करता हूं।

शाहजहां का अन्तिम काल।

[लेखक-पं० बद्रीनाथ भट्ट]

गत मास की मर्यादा में शाहजहां के अन्तिम काल का चित्र छपा है इस चित्र को देखते ही बादशाह के समय की अवस्था हृदय पटल पर चित्रित सी होकर बड़े २ विलक्षण भाव उत्पन्न करती है।

जिस मुग़ल सम्राट महाप्रतापी शाहजहाँ ने ताजमहल, जामे मसजिद आदिक प्रसिद्ध इमारतें बनवाईं, जिसकी विजय लक्ष्मी लाखों करोड़ों प्राणियों पर अपनी पताका फहराती फिरती थी, जिस की अरदली में अनगिनती नौकर चाकर, अमीर उमरा, ख़वास इत्यादिक थे, लाखों मनुष्यों के संहार वा उपकार के लिये जिस की उंगली का केवल एक संकेत मात्र काफी होता था, वही शाहजहां अपने ही बनवाये हुए किले में अपने ही पुत्र द्वारा नजरबंद कर लिया गया था, राज्य सुख का स्वप्न उसका जाता रहा था, प्रभुता भी उस का साथ छोड़

गयी और संसार ने भी उसे छोड़ने में जल्दी मचाना प्रारम्भ किया-हा! जिस के इशारे पर राजा रंक और रंक राजा हो सकते थे वही आज अपने राज्य से दूध में पड़ी हुई मक्खी की भांति निकाला जाता है और कोई उस को सहायता को नहीं आता! उसकी शक्ति को देख कर किसी को भी यह सोचने का समय नहीं मिला था कि यह सम्राट भी उसी मिट्टी में मिल जायगा जिस में कि एक मराभुख मिलता है। कुछ भी हो परन्तु अब तो उस की दशा को देख कर हृदय में सहसा करुणा का संचार हो हो जाता है। औरंगज़ेब ने पितृ ऋण चुकाने के लिये उस को ऊंचे राज्य सिंहासन से नीचे ढकेल दिया, इस को चाट वृद्धावस्था के कारण उस का इतनी व्यापी कि अब वह पड़ा सिसक रहा है, न कोई हकीम न कोई वैद्य उसके पास है, अब उस को जीवन लीला का अन्त हुआ चाहता है, उस का मुकुट और जूते भी फ़र्श पर अलग पड़े हैं, जल से निकाली जाकर स्थल पर फेंकी हुई मछली की जो दशा होती है वही इस समय इस राज्यच्युत सम्राट की है। किसी [illegible] ने कहा है कि,

"ऊंचे ऊंचे मकान थे जिन के,
आज वे तंग गोर में हैं पड़े।
कल जहां पर शगूफ़ए गुल थे,
आज देखा तो खार बिलकुल थे॥
जिस चमन में था बुलबुलों का हजूम,
आज उस जा है आशियानए बूम।
बात कल की है नौजवां थे जो,
साहिबे नौबत ओ निशां थे जो॥
आज खुद हैं न हैं मकां बाक़ी,
नाम को भी नहीं निशां बाक़ी।
ग़ैरते हूर महजबी न रहे,
हैं मकां गर तो वो मकीं न रहे॥
जो कि थे बादशाहे हिफ्त अक़लीम,
हुए जा जाके ज़ेर ख़ाक मुक़ीम।
अब न रुस्तम न साम बाक़ी है,
इक फ़क़त नाम ही नाम बाक़ी है॥
गंज रखते थे अपने फ़र्क़ पे ताज,
आज हैं फ़ातहे को वो मुहताज।
थे जो खुद सर जहान में मशहूर,
ख़ाक में मिल गया सब उनका ग़रूर॥
इत्र मट्टी का जो न मलते थे,
न कभी धूप में निकलते थे।
गरदिशे चर्ख़ से हिलाक हुए,
अस्त ख़्वां तक भी उनके ख़ाक हुए॥
ताज में जिनके टकते थे गौहर,
ठोकरें खाते हैं वो क़ासये सर।
हर घड़ी मुनक़लब ज़माना है,
यही दुनिया का कारख़ाना है॥
मौत से किसको रस्तगारी है,
आज वो कल हमारी बारी है।"

और शाहजहां के लिये तो इन दिनों

"ज़िन्दगी बेसबात थी इसमें,
मौत ऐने हयात थी इसमें।"

पाठक म[illegible]दय! यह तो सब आपने सुना, पर यह तो देखिये कि मुग़ल साम्राज्य की भाग्य लक्ष्मी कैसी विलख २ कर रो रही है! क्योंकि उसकी क़दर करने वाला अब उसे छोड़े जाता है! अरी, तू क्यों रोती है? तेरे लिये तो महाराष्ट्र देश में एक नवीन सूर्य चमका चाहता है। पाठक, यह सुन्दरी है कौन? हमें तो भाग्यलक्ष्मी ही जँचती है। अच्छा, शोकातुर होकर आधे छिपे हुए चन्द्रमा की सहायता से मालूम हुआ कि यह जिसको हम मुग़ल साम्राज्य की भाग्य-लक्ष्मी समझे हुए थे शाहजहां की लड़[illegible]ी जहांनारा है। तो भी क्या हुआ, भाग्यलक्ष्मी से भी इसको अधिक भाग्यवान समझना चाहिये क्यों वह अकेली अपने पिता की सेवा में ऐसे समय तत्पर है जब कि सब ने ही उससे मुख मोड़ लिया है। बादशाह को यह क्या इच्छा हुई? उसने कहा, 'बेटी, अल्लाह तुझे बरकत दे मैं ता

अब इस दुनियां से कूच किया चाहता हूं ... हाय, कहां है आज अर्ज ..., बेटी, मेरा पलंग ज़रा ताज वाले बरामदे में सरका ले चल ... अच्छा होता जो मैं भी उसी के साथ ही यहां से चल देता ... जो मैं ताजमहल को भी एक बार मरती वक्त देख लूंगा तो मेरी रूह आराम से निकल जायगा ... जहांनारा, अब देर न लगा, अपने बूढ़े पिता की दुआ ले और यह काम कर।" पिता की आज्ञा का बेटी कब उल्लंघन कर सकती थी, अपनी आंखों से मोती टपकाते हुए उसने आहिस्ता से चारपाई सरका दी। सम्राट ने अपनी अधमिची आंखें खोलीं और ताजमहल को देख कर सदा के लिये बंद कर लीं जिसमें वे किसी और वस्तु पर न पड़ जाँय। दीपक बुझ गया, अब नहीं जल सकता। जहांनारा, तू क्यों रोता है? तेरा पिता तो सम्राट था, सम्राटों का मृत्यु के समय बड़ा कष्ट होता है और बड़ी आकांक्षाएं उत्पन्न होती हैं, उसकी एक मात्र अभिलाषा तो अपनी प्रिय पत्नी अर्ज़मन्दबानू बेगम के लिये बनवाये हुए महल को देख कर अन्त समय में अपनी आत्मा तृप्त करने की थी, सो तेरी बदौलत पूर्ण हो गई। पर तूने तो उसे अद्वितीय तख़्ताऊस पर, और उसपर से ढकेला जाकर एक मामूली चारपाई पर सर्वस्व रहित होकर पानी तक के लिये मुहताज देखा था इस लिये तुझे सचमुच बड़ा शोक है, तुझे क्या प्रकृति देवी को भी है। उसके मरते ही चांदनी ने अंधेरी का रूप धारण करना चाहा, नीचे बहती हुई यमुना के जीवों ने अपने घोर चीत्कार को कुछ मन्द करके रात को और भी भयंकर बनाते हुए अन्य जीवों को भी इस बात की सूचना दी कि आज इस वृहदाकार किले की आत्मा शाहजहां निकला जा रहा है, आकाश ने भी आंसू गिराने की तयारी की, जो चन्द्रमा उसके किले के ऊपर आकर हँसा करता था वह भी आज वहां तक नहीं आना चाहता और देख लीजिये आने के पहिले ही बादलों में छिप जाना चाहता है जिस में यह हृदय द्रावक दृश्य कहीं दीख न जाय, बादलों की ओट से प्रकृति देवी ने झांक कर जो देखा तो यहां के लोग समझे कि बिजली चमकी! श्रीहत और दीन शाहजहां को देख कर जो अद्भुत भाव हृदय में उठते हैं उन पर विचार करना ही सम्राट तथा चित्रकार का पूरा २ सत्कार करना है। कल आगरे में उसके दफ़न करने की धूम होगी, कोई हंसेगा कोई रोवेगा। पर उस को अब किसी बात की चिन्ता नहीं है क्योंकि अब उसे न कोई क़ैद कर सकता है न कष्ट ही पहुंचा सकता है—और हमें तो स्वर्गीय बालमुकुन्द गुप्त जी की 'पुरानी दिल्ली' पर लिखी हुई ये पंक्तियां आगरे पर भी पूर्णतया घटित मालुम होती हैं :—

"धन, वैभव, सुख, मान, बीरगन को अदम्य बल,
सूरन की सूरता, प्रतिज्ञा दृढ़तर निश्चल।
वह अनुपम लावण्य सुन्दरी ललना गन को,
बसीकरन सुध हरन अनिश्चलकारी मन को॥
वह सुहावनी छटा धवल ऊंचे महलन की,
शोभा धन जन से भरपूर ग्राम नगरन की।
रह्यो न कोऊ शेष, काल सब ही कहँ खायो
एक एक करि वा कराल मुख मांहि समायो॥"

———

देशभक्त होरेशस।

[लेखक—श्रीयुत पं० सत्यनारायण जी]

(गताङ्क से आगे)

द्वारपाल पति तब अविचल होरेशस वीरा।
अतुल प्रताप प्रचण्ड वचन बोल्यो रनधीरा॥
ग्रसति मृत्यु सब जीवतु जो भुवि पै तनधारी।
द्वै दिन आगे कबहुं कबहुं द्वै दिना पिछारी॥
पितृ भस्म हित जो पुनीत तिन कीरति सानी।
एक मात्र सन्तोष दैनि पूर्वजनु निसानी॥
पुण्य भूमि गौरव विस्तारक मठ देवन के।
धर्म भाव संचारक उपकारक हित तिनके॥
मृदुल हृदय जननी हित जिनने गोद खिलायो।
पलना में पौढ़ाइ रमकि सुख नींद सुआयो॥

भामिनि हित जो करत सदा सेवा सुखकारी ।
वीर प्रसूता सुतहिं प्याइ पय पालनहारी ॥
अरु कुमारियनु हित पवित्रता जिन चहुं छाई ।
अनल कुण्ड की अनल रखत जो सतत सुहाई ॥
परम पातकी कुटिल क्रूर निर्लज्ज अपावन ।
नीच सेक्सटस सम सठ सों तिन धरम-बचावन ॥
प्रवल शत्रुसन रुपिस्वदेह जिन रन में त्यागी ।
वीर लोग मुसिकात जात वह जन बड़भागी ॥
अब तो श्रोकौंसल पुलकों तुम तुरत तुरावो ।
जहँ तक तुअ बस चले शीघ्रता पूर्ण करावो ॥
यदि केवल द्वै योधन को सहाय मैं पावौं ।
तुम देखत वैरी कों कैसे खेल खिलावौं ॥
वह देखौ लखियत यह सों पुल पथ सकराई ।
कौतुक ही में रोकि सकत सहसनु त्रयभाई ॥
को सहाय हित दांये बांये अब आवेगो ।
मो सँग सेतु रखाइ वीरता दरसावेगो ॥
वीर शिरोमनि रोमन हे जाके अभिमानी ।
कही लारशस तबै वीर रस पुलकित बानी ॥
"लेउ, तिहारी दांयी दिसि अब ही मैं आवौं ।
तुअ सँग सेतु रखाय जन्म भुवि ऋणहिं चुकावौं ॥"
[illegible]र धुरन्धर सुन्दर हरमीनियस सदाहीं ।
[illegible] टिटियन रुधिर जासु नसनस् के माहीं ॥
"यथा शक्ति करि हौं मैं हूं पुलकी रखवारी ।
तुअ बांयी दिसि आइ वीरवर गिरा उचारी" ॥
"प्यारे वीर, तथास्तु यथा तव वचन प्रमानो" ।
चतुर-चारु अनुभवी कही कौन्सल यह बानी ॥
विपुल साहसी निर्भय तानों प्रफुलित मनसों ।
महासेन सँग लरन चले सुनि सिंह ठवनि सों ॥
नित स्वदेश हित साहसमय प्राचीन समय में ।
कियो न रोमन मोह धरा सुत सुवरन तिय में ॥
तिय तन मन धन धाम मुदित सब सरवस वारी ।
जननी जन्मभूमि की सेवा करी पियारी ॥
पहले स्वारथ पक्षपात कों सुन्यो न नामा ।
देशलाभ हित रच्यो सकल नित यत्न ललामा ॥
करी धनी निरधनो बन्धु की सदां सहाई ।
लसी दीन उर धनी हेत नित नेह निकाई ॥
सामिलात भुवि बटति रह्यो सब ठीक २ तब ।
बिक्यो लूटि को माल धर्म सों सकल जहाँ जब ॥
रोमन हे तब सकल मनों माजाये भाई ।
पूर्वकाल की कीर्ति कौमुदी चहुं दिसि छाई ॥
अब उलटा व्यौहार करत रोमन रोमन सों ।
लखत परस्पर अरिहू सों अति घृणा दृष्टि सों ॥
जन प्रतिनिधि सब बड़े बड़ेनु की मोछ उखारैं ।
पंच प्रजा के दीन दुखिन को पीसे डारैं ॥
निज के झगरेनु में कढ़ि बाहिर धुन्द मचावत ।
अरु लरिबे की बेर घुसत घर चुप्पी साधत ॥
क्यों न मनुज अब लरत, लरत ज्यों रहे सदा सों ।
विकसितकरि इतिहास-कमलयसअमलप्रभासों ॥
ठीक ठीक कसि रहे जबै कवचनु वे तीन्हो ।
सब सों पहले निज कुठार कर कौंसल लीन्हो ॥
भेद भाव सब भूलि मिले तब पञ्च प्रजा के ।
पिले सेतु दिसि अस्त्रनि गहि तोरन हित ताके ॥
काटि काटि ऊपर के तखता सकल ढहाये ।
नीचे के अवलम्ब खम्भ दे चोट हलाये ॥
ताहीखन चतुरङ्ग चमू टसकन की भारी ।
निरखंत में चटकीली सज धज सों मतवारी ॥
ठीक दुपहरी दुतिसम दमकति चमकति आई ।
पंक्ति बद्धजनु सुवरन जल निधि लहरि सुहाई ॥
ज्यों रिपु सेना बढ़ी उठावति कदम अगारी ।
करी चारसौ रनसींगनु धुनि गगन विदारी ॥
हाथ सिरोही सब वीरन के चिलकि सुहावैं ।
फरफरात सुठि विविध फरहरा लचि लहरावैं ॥

(क्रमशः) ।

नौलखा हार ।

सातवां परिच्छेद ।

[लेखक—पं० किशोरी लाल गोस्वामी]

शठे शाठ्यम् !

"अनार्यजुष्टेन पथा प्रवृत्तानां शिवं कुतः ।"
(कथा सरित्सागरे)

सेठ यमुनादास की फटकार सुनकर रनछोर लाल की सारी लाली उतर गई और फिर उस

के मुंह से जरा चूं तक न निकली। यद्यपि उस के इस अपमान को देखकर वहां पर उस समय उपस्थित बहुतेरे स्त्री पुरुष मन ही मन बहुतहो प्रसन्न हुए थे, परन्तु उन सभों में विशेष प्रसन्नता अंबालिका को हुई थी! यह क्यों? इस का हाल पाठक वृन्द आगे चलकर स्वयं समझ जायंगे।

निदान, किसी किसी तरह विवाह की विधि साङ्ग सम्पन्न हुई और बर-कन्या के विदा होने के पश्चात् निमन्त्रित सभी स्त्री-पुरुष धीरे धीरे बिदा हुए।

बेचारी ललिता इस आकस्मिक घटना से बहुत ही मर्माहत हुई थी, इस लिए वह अपनी बूआ रुक्मिणी बाई के संग कन्या के बिदा होने के पहिले ही चली गई थी और जाती बार उस ने द्वारकादास, अम्बालिका, अपने पिता, या और किसी से भी कुछ बात चीत नहीं की थी।

निमन्त्रित व्यक्तियों में से जब केवल दो ही चार आदमी रह गए, तब रनछोरलाल भी अपनी गाड़ी पर सवार हुआ और उसके जाते ही अम्बालिका ने एक निराले कमरे में यमुनादास, गोकुलदास, और द्वारकादास को लेजा कर कुछ सलाह की, और फिर वह अपनी फिटन पर सवार होकर रनछोर लाल के बाग की तरफ़ चली। उस समय रात के नौ बजने का समय था और बादलों के हट जाने से चन्द्रमा अपनी चटक चांदनी से आकाश से पृथ्वी तक जगमगाहट का जाल बिछाए हुए था।

रनछोर लाल अपने बाग में जाकर देर तक टहला किया: इस के बाद वह कमरे में चला गया और कपड़े बदल कर फिर बाग में आकर टहलने लगा। देर तक टहलते टहलते जब उस का जी उकता गया तो फिर वह वहां से चलने लगा और अपने कमरे की दालान में पहुंचा ही था कि इतने ही में एक फिटन के आने की आहट पाकर वह लौट पड़ा और फिटन के पास आकर उस ने उस पर से अम्बालिका को उतरते देखा!

अम्बालिका को आज पहिले पहिल रात के समय अपने यहां देखकर एक बेर तो वह सिर से पैर तक कांप उठा, परन्तु फिर अपने को सम्हाल और मुस्कुराकर उसने अम्बालिका से हाथ मिलाया और यों कहा;-"कुमारी अम्बालिका बीबी! इस असमय में आप के एकाएक आजाने से मैं बहुत ही चकित हुआ हूं!"

वास्तव में, वह समय रात के नौ बजे का था, क्योंकि यमुनादास के यहां कन्या की बिदाई में बहुतही देरी हो गई थी।

अस्तु, रनछोरलाल की बातें सुन कर अम्बालिका ने ज़रा मुस्कुराहट के साथ कहा,-"मैं सेठ यमुनादास के यहां से आप को घर लौटते देख कर आप से मिलने और कुछ बात चीत करने की इच्छा से इस समय यहां आई हूं।"

रनछोर लाल,-"यह मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात हुई कि आपने भला मेरा गृह पवित्र तो किया! अस्तु, चलिए, कमरे में चलूं!"

अम्बालिका,-"जी, नहीं! मैं यहीं पर-बाग में ही, टहल कर आपसे दो चार बातें करना चाहती हूं।"

रनछोर लाल,-"अच्छी बात है। अच्छा, अब आप अपनी बातें शुरू करिए!"

अम्बालिका,-"मेरी बातों में से पहिला बात तो यह है कि मैं एक अभियोग करा चाहता हूं।"

रनछोर लाल,-"किस के नाम?"

अम्बालिका,-"आप के नाम!??"

रनछोर लाल,-(ज़रा कांप कर) "वह किस तरह का अभियोग है?"

अम्बालिका,-"इस तरह का कि घनश्यामदास के उस चोगे के पाकेट में उस नकलीहार को आपनेही रक्खा था!!!"

इस बात के सुनते ही रनछोरलाल दो चार पग पीछे की ओर हट गया और उसके सारे बदन में एक बेर बिजली दौड़ गई।! इसके बाद

उसने अम्बालिका के चेहरे की ओर तीखी नज़रों से देखा और ज़रा रुक रुक कर यों कहा,-"कुमारी अम्बालिका बीबी! यह आप क्या कह रही हैं!!!"

यह सुन कर अम्बालिका ने मुस्कुराहट के साथ रनछोर लाल की ओर देखकर कहा,-"महाशय! जो सच है, जो ठीक है और जो अपनी आंखों से देखा, वही कह रही हू!"

रनछोरलाल ने भीतर ही भीतर कलेजा मसोसकर कहा,-"क्या, सचमुच, तुमने अपनी आंखों से देखा है!"

अम्बालिका,-"हां, हां, कहती तो हूं।"

रनछोरलाल,-"ओह! तो तुमने भूल की है।"

अम्बालिका,-"कैसे?"

रनछोरलाल,-"ऐसे कि मैं जब मैं उस चोगे में से वह हार निकाल रहा था, तब तुम ने देखा होगा!"

अम्बालिका,-"इस कैफ़ियत से तुम छूट नहीं सकते; और अगर तुम में कुछ ताकत हो तो तुम अपने को बेकसूर साबित करो!"

रनछोर लाल,-"ऐसा मैं ज़रूर करूंगा, [illegible]कि मेरी इज्ज़त और दौलत ही मुझे इस आ[illegible]द से बचा लेगी।"

अम्बालिका,-"ख़ाली बातों से बाग़ नहीं लगता! क्योंकि अब यह बात सर्वसाधारण में फैल गई है कि ललिता और घनश्याम के प्रणयमार्ग में कांटे बिछाने के ही लिए तुमने षड़यन्त्र रचा है!"

रनछोरलाल,-"तुम्हारे पास इन फ़जूल बातों का सुबूत क्या है?"

अम्बालिका,-"विना पक्के सुबूत का सहारा लिये, मैं ख़ाली हाथ तुम्हारे पास इस समय नहीं आई हूं।"

रनछोरलाल,-अच्छा, उनमें से एक आध सुबूत मैं सुनूं भी!"

अम्बालिका,-"क्या मैं अपने उन सुबूतों में से इसे भी एक सुबूत कह सकती हूं कि उस विवाह-मंडप में पहिली वेर तुम्हीं ने दियासलाई घिस कर आग लगाई थी, और फिर जब उस का हुल्लड़ मचा था, तब तुम ने मौका देखकर वह असली हार उड़ा लिया था।"

रनछोरलाल,-"और फिर दूसरी वेर उस मंडप में किसने आग लगाई थी!"

अम्बालिका,-"दूसरी वेर भी किसी ने अपना कुछ मतलब गांठने के लिये आग लगा दी होगी!"

रनछोरलाल,-"ख़ैर तो, जब कि तुमने इतना अपनी आंखों से देखा ही था, तो फिर मेरे पास से हार बरामद करके तुमने घनश्याम की आबरू क्यों न बचा ली?"

अम्बालिका,-"इसलिए कि अब मैं उसे नहीं चाहती, जिसका सारा भेद तुम पर प्रगट हो जायगा।"

रनछोरलाल,-"किन्तु तुम मेरा कुछ भी नहीं कर सकतीं।"

अम्बालिका,-"यह बात आगे चलकर आप ही तुम्हें मालूम हो जायगी कि मैं कहाँ तक तुम्हारा सत्यानाश कर सकती हूं। तुमने मुझे भी क्या घनश्याम समझ रक्खा है कि जैसे उसे अपने षड्यन्त्र से पीस डाला, वैसेही मुझे भी अपने चंगुल में फँसा कर जो चाहोगे, कर डालोगे!"

रनछोरलाल,-"तो क्या तुम इस समय घनश्याम के बदले मुझसे लड़ने आई हो!"

अम्बालिका,-"यह कैसे?"

रनछोरलाल,-"यों कि, अभी तुमने यह बात कही है कि 'अब मैं घनश्याम को नहीं चाहती'; तो ऐसी अवस्था में क्या तुम यह चाहती हो कि मैं उसके साथ अपनी लड़की व्याह दूं!"

अम्बालिका,-(मुस्कुराकर) "यदि ऐसा ही मेरा इरादा हो, तो?"

रनछोरलाल,-"तुम्हारे इरादे से होता ही क्या है? क्योंकि मेरे पास बेशुमार दौलत है

और घनश्याम निरा दरिद्र है, ऐसी अवस्था में भला मैं अपनी कन्या का व्याह कैसे कर सकता हूं !"

यह सुन और खिलखिला कर अम्बालिका फिर कहने लगी,-"सेठ रनछोरलाल ! मेरे सामने तुम अपनी दौलत या इज्ज़त की बड़ाई न बघारो; क्योंकि तुम्हारे पास अब हुई क्या है, जिस पर तुम इतना घमंड कर रहे हो ! अब केवल तुम्हारे पास तुम्हारा 'नाम' भर बच रहा है; सो वह भी बहुत जल्द मिट्टी में मिल जायगा। क्या मुझ से तुम्हारी कोई बातें छिपी हैं ! क्या जूए, मद्यपान और वेश्या संसर्ग के कारण तुम इस समय बिलकुल 'गजभुक्त कपित्थवत्' अन्तसार-शून्य नहीं हो रहे हो और क्या इस समय तुम कर्ज़ की कीचड़ में गले तक नहीं धँस गए हो !!! हैं, हैं, ! तुम इस तरह आंखें फाड़ फाड़ कर मेरी ओर निहारने क्यों लगे ! क्या मुझे काटोगे तो नहीं !!!

अम्बालिका की बातों से रनछोरलाल के चेहरे पर मुर्दनी छा गई और उससे कुछ भी करते धरते न बना। लाचार, उसने घबराहट के साथ हाथ मलते हुए यों कहा,-'ये सब ख़बरें तुमने पाईं कहाँ ?"

अम्बालिका,-"तुम्हारे आममुख़तार बिट्ठलदास से।"

रनछोरलाल,-"हाय, हाय, वह पाजी तो बड़ा भारी विश्वासघाती निकला !"

अम्बालिका,-"किन्तु उसने बड़ी बड़ी कठिनाइयों से मेरे सामने ये सारी बातें कबूलीं हैं, क्योंकि मैंने उसे अपना आममुख़तार बनाने का चकमा दिया है।"

रनछोरलाल,-वास्तव में, अम्बालिका बीबी ! इस समय मेरी अवस्था बहुत ही गिरी हुई है। ऐसी दशा में मेरी सारी प्रतिष्ठा तुम्हारे हाथ है, क्योंकि तुमने मेरा सब गुप्त रहस्य जान लिया है।"

अम्बालिका,-(मन ही मन प्रसन्न होकर) "सुनो, रनछोरलाल ! तुम्हारी पूरी पूरी कैफ़ियत जान लेने पर भी इस समय मैं तुम्हारी इज्ज़त बिगाड़ने नहीं आई हूं, बल्कि तुम्हारी सहायता करने आई हूं।"

रनछोर लाल -(चकपका कर) "ऐं, ऐं! तुम मेरी सहायता करना चाहती हो !"

अम्बालिका,-"निस्सन्देह।"

रनछोरलाल,-"किस तरह ?"

अम्बालिका,-"सुनो, कहती हूं। क्या, तुम इस बात का भेद मुझे बतला सकते हो कि तुमने उन २ धन कुबेरों को कोरा टकासा जवाब क्यों दे दिया, जो तुम्हारी लड़की से व्याह करना चाहते थे ?"

रनछोरलाल,-"आह, इस बात का रहस्य क्या तुमने अब तक कुछ भी नहीं जाना है !"

अम्बालिका,-"भला, मुझे इसकी क्या ख़बर !"

रनछोरलाला,-तो, यह बात तो तुम्हें ज़रूर याद होगी कि मैंने कई बेर तुमसे अपने साथ व्याह कर लेने का प्रस्ताव किया है !"

अम्बालिका,-"हां, यह बात मुझे भलीभांति याद है और इसी लिए मैं ललिता के व्याह बारे की बात तुमसे पूछ रही हूं।"

रनछोरलाल,-"तो, उस बात का रहस्य यही है कि मैं ललिता का व्याह गोकुलदास के साथ करना चाहता हूं और तुम्हारे साथ अपना।"

अम्बालिका,-"और इसीलिए तुमने घनश्याम की, इस तरह की, बेइज़्ज़ती की है कि जिसमें उसके साथ फिर न तो ललिता ही विवाह कर सके और न मैं ही; क्यों ?"

रनछोरलाल,-बस, बस; अब तुम मेरा दिली मक़सद भलीभांति समझ गईं।"

अम्बालिका,-(मुस्कुरा कर) "बेशक, तुमने यह ऐसी बेढब चाल चली कि सिवा जिच खाने के, इसका कोई जवाब ही नहीं है ! क्योंकि पहिले यद्यपि मैं घनश्याम पर जी जान से मरती थी, पर वह मुझ से जरा नहीं प्रेम करता था,

ऐसी अवस्था में उसकी जो कुछ दुर्दशा तुमने की, उससे मेरा हिया खूब ही ठंढा हुआ; और अब यदि वह मुझसे विवाह करना चाहे भी, तो भी मैं उस बदनाम आदमी के साथ अब कभी भी व्याह न करूंगी और गोकुलदास पर मेरी, न जाने क्यों, बड़ी घृणा है, इस लिए उस उजड्ड के साथ भी मैं व्याह न करूंगी; ऐसी अवस्था में अब तुम अपने भाग्य की सराहना करो कि मेरा जी तुम्हारे ही साथ ब्याह करना चाहता है, अतएव मैं तुम्हारे पहिले के किए हुए प्रस्ताव को अब सहर्ष स्वीकार करती हूं।"

यह एक ऐसी विलक्षण बात अम्बालिका ने कही कि जिसे सुन कर रनछोरलाल का सारा धीरज जाता रहा और उसने चट अम्बालिका का हाथ पकड़ कर यों कहा,-"प्यारी, अम्बालिका! क्या ये बातें तुम सच कह रही हो!!!"

अम्बालिका ने उसके हाथ में से अपना हाथ खींच लिया और हँस कर कहा,—"ज़रा, आप अभी धीरज रखिए; क्योंकि अभी भी पाणिग्रहण में कई घंटे की देर है।"

रनछोरलाल,-"सिर्फ़ कई घंटे की !!!"

अम्बालिका,-"और क्या; क्योंकि कल प्रातः [illegible] पहिले ललिता के साथ गोकुलदास का विवाह होगा और उसके पीछे मेरे साथ तुम्हारा!"

रनछोरलाल,-"किन्तु यदि गोकुलदास इस व्याह से न राज़ी हुए तो? क्योंकि वे मेरे इस प्रस्ताव को बराबर अस्वीकार करते आते हैं।"

अम्बालिका,-"तब, यदि उन्होंने कल भी मेरे और तुम्हारे इस प्रस्ताव को फिर अस्वीकार किया तो मैं तुम्हारे साथ अवश्य ही विवाह कर लूंगी, और इसके बाद किसी धनवान् के साथ ललिता का व्याह कर दिया जायगा। साथ ही इसके मैं दो ही चार दिनों के भीतर तुम्हारा सब देना भी चुका दूंगी, क्योंकि सिर्फ़ बाईस लाख रुपए ही तो तुम्हें देने हैं!"

पाठक! आप सोच सकते हैं कि इस समय अम्बालिका किस ढंग की बातें रनछोरलाल के साथ कर रही है, और इन बातों का कैसा असर बुद्धिसागर या बुद्धि विहीन रनछोरलाल के हृदय पर हो रहा है!!!

निदान, अम्बालिका की बातों ने रनछोरलाल का सारा धीरज हर लिया और उसने गिड़गिड़ा कर और हाथ जोड़ कर यों कहा,-"प्यारी अम्बालिका! यदि तुम मेरे साथ ऐसी भलाई करोगी तो मैं सारे दुर्व्यसनों को छोड़ कर जन्म भर के लिये तुम्हारा ज़रख़रीद गुलाम हो जाऊंगा और कभी भूल कर भी तुम्हारी आज्ञा न टालूंगा।"

अम्बालिका,-(हँस कर) "मैं भी यही चाहती हूं कि मेरा तन, मन और धन तुम्हारे काम आवे और हम दोनों की जिन्दगी मजे में कटे; इस लिए मैं चाहती हूं कि व्याह होने के पहले ही मैं अपना सारा ऐब तो तुम पर ज़ाहिर कर दूं और तुम्हारा मैं जान लूं; जिसमें फिर आगे चल कर हमारे तुम्हारे बीच किसी तरह का मनोमालिन्य न हो और हम तुम दोनों, एक दूसरे के ऐब जान कर सुख से जिन्दगी बितावें।"

रनछोरलाल,-निश्चय; प्यारी! मैं अपने सारे के सारे ऐब तुम्हारे आगे ज़ाहिर कर दूंगा और तुम्हारे ऐब खुद जानूंगा; और..."

अम्बालिका,-(जल्दी से) किन्तु पहिले तुम मुझे वह 'नौलखा हार' दिखलाओ, जिसे तुमने बेदाग हड़प लिया है और जिसकी चोरी का अपवाद घनश्याम पर लगाया है।"

"उसे तुम अभी देख सकती हो।" यों कह कर वह अम्बालिका को कमरे की तरफ़ ले चला और रास्ते में आप ही आप यों बकने लगा कि, "मैंने ही उस असली हार के जोड़ के दो नकली हार भी इस गरज़ से तयार कराए थे कि इन नकली हारों की मदद से असली हार तो मैं खुद उड़ा लूंगा और उसके चुराने का अपराध घनश्याम पर लगा कर उसे सदा के लिए धूल में मिला दूंगा। सो, विवाह की भीड़ में मैंने मंडप में आग लगा, उस असली हार को उड़ा

कर उसे तो अपने आममुखतार के हाथ यहां भेज दिया और उन दोनों नकली हारों में से एक हार बड़ी होशियारी के साथ घनश्याम के पाकेट में डाल दिया ..."

अम्बालिका,-(हँस कर) "तुम्हारी इस हाथ की सफ़ाई की तारीफ़ करनी चाहिए! और हाँ, सुनो तो—इसके बाद वे दोनों रुक्के भी तुम्हीने लिखे होंगे!"

रनछोरलाल,-"हाँ, वे दोनों मेरे ही सुघड़ हाथ के नमूने थे, जिनमें से एक तो मैंने घनश्याम को दिखलाया था और दूसरा खुद मैंने ही गोकुलदास को हाथ में पकड़ा दिया था।"

अम्बालिका,-वास्तव में, मैं तुम्हारे गुणों पर अत्यन्त मोहित हुई! और हां—उस चोगे की सृष्टि भी तुम्हारे ही अनूठे दिमाग ने की होगी!"

रनछोरलाल,-"और क्या! मैंने इन सब बातों के बंधेज पहिले ही से बांध रक्खे थे और कुल तयारियां भी पहिले ही से कर रक्खी थीं। सो, जब घनश्याम के पाकेट में से वह हार नबरामद हुआ तो चट उस चोगे की चाल निकाल कर मैंने उस कंबख़्त का खूब ही मुंह काला किया।"

अम्बालिका,-"तुमने खूब किया, मैं तुमसे और तुम्हारे हुनर से निहायत खुश हुई; क्योंकि जिस घनश्याम ने मेरे सच्चे और अगाध प्रेम की बारंबार यों उपेक्षा की, उसे ऐसा दंड देकर तुमने मेरे हिए की सारी जलन मिटा दी।"

रनछोरलाल,-"अजी, वह तो मैंने बहुत ही होशियारी का काम किया था कि उस असली हार को तुरंत अपने आममुखतार के हाथ घर भेज दिया था, नहीं तो शैतान द्वारकादास ने जैसा उत्पात मचाया था, उससे तो मुझे मिट्टी ही में मिलना पड़ता!"

अम्बालिका,-"और मैं भी तुम पर रीझ गई हूं, इसी लिए तो तुम्हारी सारी विद्या का पूरा पूरा पता पाकर भी मैं उस समय बिलकुल चुप रही।"

यों आपस में धीरे धीरे बात चीत करते हुए वे दोनों कमरे में पहुंच गए और वहां जाकर रनछोरलाल ने एक लोहे की आलमारी खोली और उसके अन्दर से वही असली "नौलखाहार" निकाल कर अम्बालिका के हाथ में दे दिया।

अम्बालिका ने उस अनूठे हार को खूब अच्छी तरह से उलट पलट कर लैम्प के उँजाले में देखा और उसे अपने गले में पहन कर मुस्कुराहट के साथ कहा,—

"देखो तो सही, यह हार मुझे कैसा फबता है!"

रनछोरलाल,-"खूब फ़बता है, और ब्याह के बाद तो यह रात दिन तुम्हारे गले मे पड़ा भूला करेगा।"

अम्बालिका,-"तुम्हारी अकल इस समय घास चरने गई है क्या?"

रनछोरलाल,-"क्यों, क्यों?"

अम्बालिका,—"यों कि, इस चोरी के हार को मुझे पहिना कर क्या तुम मेरी आबरू बिगाड़ोगे?"

रनछोरलाल,—"हां, यह तो तुम ठीक कह रही हो!"

अम्बालिका,-"बल्कि ऐसाही-ठीक ऐसा एक हार तुम मुझे बनवा देना, जिस का खर्च मैं खुद दूंगी।"

रनछोरलाल,—"अच्छी बात है।"

अम्बालिका,-"आहा, कैसा सुन्दर हार है! क्यों जी, इसे किस कारीगर ने बनाया है?"

रनछोरलाल,-"उसे तुम नहीं जान सकतीं, क्योंकि वह यहां का रहने वाला नहीं है और अब यहां है भी नहीं; क्योंकि उसे मैंने यहां से भगा दिया है।"

अम्बालिका,—"लेकिन उस का नाम क्या है और वह कहां का रहने वाला है?"

रनछोर लाल,-"उसका नाम गंगा गोविन्द है और वह मरहटा है।"

अम्बालिका,-"तो फिर जब कि वह फिरार हो रहा है तब मेरा हार कैसे बनेगा?"

रनछोरलाल,—"उसने मुझ से कभी कभी चुपचाप मिलने का वादा किया है; सो, जब वह मुझ से मिलने आवेगा, तब मैं उसे रोक रक्खूंगा और तुम्हारे लिए ऐसा ही एक हार बनवा दूंगा।"

अम्बालिका,—"चलो, ज़रा चांदनी में चल कर इस अनूठे हार की बहार लूं।"

यों कह कर अम्बालिका कमरे से बाहर निकली यह देख रनछोरलाल झटपट आलमारी बंद कर के उसके पीछे झपटा और बाग में आकर उसने अम्बालिका से यों कहा,—"अब इस हार को, लाओ, रखदूं. जिसमें कोई देख न ले।"

अम्बालिका,—"मैं चाहती हूं कि इस हार को घनश्याम के पास से बरामद करा कर उसे जेलखाने भेज दिया जाय!"

रनछोरलाल,—"लेकिन, ऐसा करने से यह नौलाख की अनमोल चिड़िया हाथ से निकल जायगी!"

अम्बालिका.—"इस की मैं कुछ भी पर्वा नहीं करती, क्योंकि मेरे पास कड़ोरों की दौलत है; फिर भी अगर इसे यों देने में तुम्हारा कलेजा दुखता हो तो मुझ से इस के एवज़ में नौलाख रुपए नक़द ले लेना।"

रनछोरलाल,—'अच्छा, जैसा कहोगी, वैसा किया जायगा, लेकिन अब तो इसे रख ही देना चाहिए।"

अम्बालिका.—"तो यह मेरे ही पास क्यों न रहे?"

रनछोरलाल,—"किन्तु विवाह के पहिले ऐसा नहीं हो सकता।"

अम्बालिका,—"क्यों, इस में हर्ज ही क्या है?"

रनछोरलाल,—नहीं, नहीं, ऐसा मैं नहीं किया चाहता।"

पाठकों को समझना चाहिए कि अम्बालिका पहिले भी और अब भी—रनछोरलाल से ऐसे स्वर से बात चीत कर रही थी कि फिटन के कोचवान और साईस भलीभांति वे सारी बातें सुन सकते थे। सो, बात चीत करती हुई वह धीरे धीरे अपनी फिटन की ओर बढ़ने लगी, जोकि पासही खड़ी थी। यह देख रनछोरलाल ने उस का हाथ पकड़ लिया और उसके गले से वह हार उतारना चाहा। इतने ही में फिटन पर से कोचवान और दोनों साईसों ने कूद कर रनछोरलाल को घसीट कर अलग किया और इस के बाद उन तीनों ने अपना अपना परिचय रनछोरलाल को देकर उस के चेहरे पर थूक दिया।

उन तीनों के परिचय में कुछ ऐसा जादू भरा हुआ था कि जिस के पाते ही रनछोरलाल जोर से चिल्ला उठा और धर्ती में गिर कर बेहोश हो गया।

निदान, उसे उसी अवस्था में छोड़ कर अम्बालिका फिटनपर सवार होगई, दोनों साईस पीछे खड़े होगए और कोचवान ने कोचबक्स पर बैठ कर तेज़ी के साथ गाड़ी हांक दी।

क्रमशः।

———

सम्पादकीय टिप्पणियां।

हिन्दू विश्वविद्यालय का फैसला।

जिस समाचार को सुनने के लिये समस्त हिन्दू जाति बहुत दिनों से उत्सुक थी, जिस फैसले पर विश्वविद्यालय का होना न होना निर्भर था और जिसके वादविवाद से पत्रों के कितने ही कालम पर कालम रङ्गे जा चुके हैं, उसी वादविवाद, उसी आन्दोलन, का आज निपटारा हो गया। समुद्र में डूबते हुए जहाज के यात्रियों को जो प्रसन्नता इन शब्दों को सुनने से होती है कि एक रक्षक जहाज पासही आता हुआ दिखाई देता है, नवप्रसूता माता को जो प्रसन्नता पास सोते दुधमुहे बालक के मुखारविन्द के निहारने में होती है, जो प्रसन्नता सहारा के रेगिस्तान में धूप और प्यास से मरते हुये यात्री को 'पानी मिल गया' इन शब्दों के सुनने से होती है उन सब प्रसन्नताओं से बढ़ कर प्रसन्नता आज हमें इस समाचार को सुनाने में होती है कि हिन्दू विश्वविद्यालय के पवित्र काम में जो एक बड़ी बाधा पड़ गई थी, वह दूर होगई और अब नित्य नये उत्साह से इस काम की उन्नति होगी और दिन दिन इसकी सफलता के सामान बढ़ते जांयगे। यह निश्चय हो गया कि मिसेज़ बिसेण्ट के सर्व धर्म समान, विश्वविद्यालय की स्कीम और हिन्दू विश्वविद्यालय की स्कीम की एकामयी नहीं हो सकती।

हिन्दू विश्वविद्यालय सचमुच हिन्दू विश्वविद्यालय होगा और वह हमारा ही विश्वविद्यालय होगा। वह समस्त आर्य सन्तान-सम्पूर्ण हिन्दू जाति का विश्वविद्यालय होगा। उसका प्रबन्ध हिन्दुओं ही के हाथ में रहैगा और उस में हिन्दू धर्म से भिन्न और धर्मों की शिक्षा न दी जायगी इस समाचार को सुन कर कौन ऐसा हिन्दू होगा जिसके चित्त में यह भाव न उठे कि विश्वविद्यालय वास्तव में अब हमारा है और उसकी तन मन धन से सहायता करना हमारा परमधर्म है। इस मङ्गलमय समाचार को सुनते ही कौन ऐसा दीन से दीन हिन्दू होगा जिसके मन में एक बार यह विचार न उठेगा कि हम भी अपने वित्त के अनुसार विश्वविद्यालय की धन से सहायता करेंगे। कौन सा ऐसा हिन्दू होगा जिसने अपने मन में यह दृढ़ सङ्कल्प न किया हो कि विश्वविद्यालय के लिये जहाँ तक हमारी शक्ति है हम सहायता करने से मुंह न मोड़ेंगे और हम अपने लिये, अपने बाल बच्चों के लिये अपने दीन भाई और बहिनों के लिए, अपने पवित्र धर्म और जाति के लिए अपनी जननी जन्मभूमि के हित के लिये हिन्दू विश्वविद्यालय के स्थापित होने में तन मन धन से सहायता करेंगे।

आर्य सन्तान स्मरण रक्खो तुम्हारी परीक्षा होरही है। मित्र जन मिताई के भाव से, वैरी वैर भाव से यह देख रहे हैं कि तुम्हारी जाति में कुछ पुरुषार्थ बाकी है या नहीं, समर वीरों का समय अब नहीं रहा, इस समय जाति और धर्म की रक्षा और उन्नति के लिये दान शूरों की आवश्यकता है। यदि तुम हृदय खोल कर सामर्थ्य के अनुसार दान करोगे, तो हिन्दू विश्वविद्यालय बन जायगा जो तुम्हारी उन्नति और उद्धार का साधन होगा और जो तुम्हारी जाति का मान गौरव और प्रभाव बढ़ावेगा। धर्म और जाति की उन्नति के लिये भिक्षुक का व्रत धारण किये एक ब्राह्मण तुम से भिक्षा मांग रहा है॥ तुम उस आर्य जाति के सन्तान हो जिसमें राजा कर्ण ने लोक के उपकार के लिये अपनी देह का चाम उतारकर इन्द्र को दे दिया था, जिसमें शरण में आये एक दीन कबूतर की जान बचाने के लिये राजा शिवि ने अपना मांस काट कर दे दिया था, जिसमें राजा जीमूतवाहन ने अपना प्राण देदिया था, जिसमें ऋषि दधीचि ने राक्षसों से समर में जीतने के

लिये देवताओं को जीते ही अपने देह का हाड़ सङ्कल्प दिया था, क्या आज तुम अपनी जाति की रक्षा और उन्नति के लिये, अपने दीन भाई और बहिनों को दुख दरिद्र अज्ञान से छुटाने के लिये उनमें सुख सम्पत्ति और धर्म का भाव बढ़ाने के लिये हिन्दू जाति को अनादर से बचाने और हिन्दू नाम की लाज रखने के लिये अपने वित्त के अनुसार हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये दान न करोगे। मालवीयजी की अपील अन्यत्र छापी जाती है; जो जिससे बन पड़े, शीघ्र विश्वविद्यालय के लिये भेजो, भगवन् भूतनाथ, शङ्कर, महादेव, शंभो, लक्ष्मीपति, दामोदर घट घट के वासी, भगवन् विष्णु, सब आर्य सन्तान के हृदय में प्रेरणा करो कि वे विश्वविद्यालय को बना कर उसीके अन्तरात्मा स्वरूप में तुम्हारी स्तुति और पूजा करें तुम्हारी महिमा का गाव और आनन्द और यश को पावें। भगवन् तुम को प्रणाम है।

हिन्दू विश्वविद्यालय।

मि० बिसेन्ट की युनिवर्सिटी आफ इंडिया की स्कीम से हिन्दी युनीवर्सिटी को मिलाने का प्रस्ताव था उस पर अच्छी तरह विचार कर लिया गया है। यह पत्रों के पढ़ने वालों को भली भांति मालूम है कि एक दल मिलाने के बिलकुल विरुद्ध है। दोनों पक्ष के मतों को सूक्ष्म रीति से देखने से यह विदित होता है कि दोनों वस्तुतः यह चाहते हैं कि विश्वविद्यालय वास्तव में "हिन्दू विश्वविद्यालय" हो, इसके प्रबन्धकर्त्ता ट्रस्टी वा सेनेट के मेम्बर आदि हिन्दू ही हों सिवाय उन सज्जनों के जिन को गवर्मेंट अपना प्रतिनिधि करके नियत करे अथवा जिनको ट्रस्टी या सेनेट के मेम्बर किसी विशेष कारण से अपने साथ सम्मिलित होने के लिये आमंत्रित करें, और इस विश्वविद्यालय में धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध केवल उनके हाथ में रहे जो हिन्दू धर्म को मानते हैं। यह निश्चय है कि जब तक ये बातें न होंगी तब तक हिन्दू जाति को विश्वविद्यालय में तथा इसके प्रबन्ध में विश्वास न होगा न वे इसको अपना समझेंगे न इसके साथ विशेष रूप से उनकी सहानुभूति होगी और न इसके लिये वे विशेष कर दान देना अपना धर्म समझेंगे।

मि० बिसेएट ने जो प्रार्थना पत्र चार्टर पाने के हेतु दिया है और विश्वविद्यालय के प्रबन्ध के लिये जो उन्होंने नियम उसके साथ में प्रकाशित किये हैं वे एक ऐसे विद्यालय के लिये बनाये गये थे जिसका कार्य प्रारंभ में केवल परीक्षा लेना होता न कि पढ़ाना, और जिसमें मतभेद का अंतर न मानकर हिन्दू, पारसी मुसलमान, इसाई आदि सब जाति के विद्यालय सम्मिलित किये जा सकते थे। ऐसे विश्वविद्यालय के बोर्ड आफ ट्रस्टीज़ में सब जातियों के प्रतिनिधि थे और यह ठीक भी था। उस प्रार्थनापत्र में और उन नियमों में जो परिवर्तन करने के प्रस्ताव मि० बिसेएट ने अपने ११ अप्रैल के पत्र में प्रकाशित किये थे उनके हो जाने पर भी वह प्राथनापत्र और वे नियम ऐसे हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये उपयुक्त नहीं हैं जो कि केवल परीक्षा ही न लेगा किन्तु विद्या के प्रचार के लिये अनेक कालेजों को भी स्थापित करेगा जो केवल एक ही धर्म अर्थात् हिन्दू धर्म का विश्वविद्यालय होगा। यह परिवर्तन बहुत थोड़े समय की सूचना में और जल्दी में विचारे गये थे और जिन लोगों को दो में से किसी भी विश्वविद्यालय से प्रेम था उन के विचार और सम्मति के लिये प्रकाशित किये गये थे। अब जो इन परिवर्तन के प्रस्तावों पर पूरी तौर से विचार किया गया है तो यह स्पष्ट हो गया है है कि ये प्रस्ताव हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये उपयुक्त नहीं और मि० बिसेएट का भेजा हुआ प्रार्थनापत्र हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रयोजन के लिये स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस लिये

यह आवश्यक हुआ है कि विश्वविद्यालय के लिये चार्टर (राजकीय आज्ञापत्र) पाने के लिये एक नया प्रार्थनापत्र लिखा जाय और उसके लिये नये नियम बनाये जांय।

भारतवर्ष के ऐसे प्रसिद्ध हिन्दू विद्वानों की एक कंमिटी शीघ्र ही इस काम को हाथ में लेगी जो विश्वविद्यालय की आवश्यकताओं को भली भांति समझते हैं और नियम बनाने की विधि में कुशल हैं।

हिन्दू कालेज बनारस में स्थित है जहां हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित होगा। यह सब प्रकार से उचित जान पड़ता है कि हिन्दू विश्वविद्यालय में जो कालेज सम्मिलित किये जांयगे उनमें वह पहिला कालेज हो। उसके नाम ही से स्पष्ट है कि वह हिन्दुओं का कालिज है, इसके ट्रस्टी-प्रबन्धकर्त्ता वस्तुतः दो को छोड़कर सब हिन्दू हैं। हिन्दुओं ही के रुपये से यह बना है, और अधिकांश हिन्दू बालक ही इसमें शिक्षा पाते हैं। इन सब कारणों से यह सर्वथा उचित जान पड़ता है कि हिन्दू कालेज विश्वविद्यालय में सम्मिलित कर लिया जाय और उसका एक अंग हो जाय। इस बने बनाये कालेज के मिलाने से विश्वविद्यालय को थोड़ा लाभ न होगा। कुछ दिनों से इसके प्रबन्ध के विषय में कुछ शिकायत सुनाई देने लगी है। यदि यह मान भी लें कि जो कुछ इसके विरुद्ध कहा जाता है वह सब पूरा पूरा या कुछ अंशों में सत्य है तौ भी यही उचित प्रतीत होता है कि वह कालेज हिन्दू विश्वविद्यालय में सम्मिलित कर लिया जाय जिसमें उसका उचित रीति से सुधार हो जाय और यह नहीं कि वह अलग छोड़ दिया जाय और उससे सहानुभूति और सहायता हटा ली जाय। किन शर्तों पर हिन्दू कालेज मिलाया जायगा यह तब तक नहीं तय हो सकता जब तक कि कालेज के बोर्ड आफ ट्रस्टीज की सभा न होले और हिन्दू विश्वविद्यालय के नियम न बन जांय। किन्तु कोई कारण नहीं कि वे शर्तें सबों का सन्तोषजनक न हों। मुझे दृढ़ आशा और विश्वास है कि ऊपर लिखे निर्णय से सब विचारवान सज्जनों का सन्तोष होगा और यह कि सब हिन्दू हिन्दू विश्वविद्यालय को स्थापित करने में तन मन धन से सहायता करेंगे।

मदन मोहन मालवीय।

यतो धर्मस्ततो जयः॥

हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी।

हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति की रक्षा और उन्नति के अभिप्राय से काशी में गङ्गा के तट पर एक अति विशाल हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करने का विचार स्थिर किया गया है। इस में वेद से लेकर अनेक प्रकार की हिन्दुओं में धन धर्म और सुख के बढ़ाने वाली विद्याएं पढ़ाई जांयगी। इस विश्वविद्यालय के लिये कम से कम एक करोड़ रुपये की आवश्यकता है। हिन्दुस्थान में २४ करोड़ हिन्दू संतान बसते हैं [illegible] पुरुषार्थी और बहिनों को अपने धर्म और जाति की रक्षा और उन्नति की अभिलाषा [illegible] और हिन्दू नाम की लाज है उनसे प्रार्थना [illegible] जो जिससे बन पड़े, इस पवित्र धर्म कार्य में सहायता करें। प्राचीन समय में इस देश में ऐसे विश्वविद्यालय होते थे जिनमें दश २ सहस्र विद्यार्थी पढ़ाये जाते थे। इतना ही नहीं उनको अन्न वस्त्र और रहने का स्थान भी दिया जाता था। महर्षि वशिष्ठ और महर्षि शौनक तथा अन्य महर्षि ऐसे ही विद्यालय के कुलपति थे।

अब हम अंगरेज़ी गवर्मेंट के आधीन हैं। इस गवर्मेंट ने देश में पूरी शांति और सुप्रबन्ध स्थापित कर दिया है। गवर्मेंट ने स्वयं अपनी ओर से विद्या के प्रचार के लिये स्कूल कालिज और विश्वविद्यालय स्थापित किये हैं और जो लोग और विद्यालय स्थापित करना चाहें उन को उत्साह और प्रायः सहायता भी देती है।

ऐसी अनुकूल दशा में हम को उचित है कि हम अपनी जाति और धर्म की रक्षा और उन्नति के लिये वैसाही बड़ा एक विश्वविद्यालय बनावें जैसा पुराने समय में हमारे आर्य पुरुषों के विद्यालय होते थे।

हम को स्मरण रखना चाहिये कि और २ जातियां अपने धर्म के प्रचार के लिये क्या २ यत्न कर रही हैं। ईसाई मत वाले अपने धर्म के प्रचार के यत्न में कितने ही लाख साल खर्च करते और अतुल परिश्रम उठाते हैं, मुसलमान भी अपने धर्म और अपनी जाति की उन्नति के लिये बड़े २ यत्न कर रहे हैं। उन लोगों ने २५ लाख के लगभग चंदा कर लिया है और वे अपना स्वतंत्र मुसलमान विश्वविद्यालय अलीगढ़ में स्थापित करेंगे। इस देश के निवासी यूरोपियन ईसाई लोग भी अपना एक स्वतंत्र विश्वविद्यालय स्थापित करने के लिए विलायत में चंदा कर रहे हैं। जितना ही और २ जातियां अपनी २ उन्नति करेंगी और हम न करेंगे उतना ही हमसे वे आगे बढ़ती जांयगी और हम उनसे पीछे पड़ते जायंगे। राज [illegible] में, सर्कारी मुहकमों में, बनिज व्यापार में [illegible] में हम नीचा देखते जांयगे। और जो लोग विद्या में उन्नति करेंगे वे हम पर दिन २ अधिक अधिकार जमाते जांयगे। ऐसी दशा में हमको यह उचित है कि हम अपनी रक्षा के लिये अपनी उन्नति का यत्न करें। यह हिन्दू विश्वविद्यालय जिसका प्रस्ताव किया गया है हमारी उस उन्नति का साधक होगा और हर एक आर्य सन्तान का धर्म है कि तन मन धन से इसके स्थापित करने में सहायता करे।

एक बात और है। इस वर्ष राजराजेश्वर जार्ज पञ्चम इस देश में कृपा कर पधारेंगे। उन के आने से स्वभावतः देश भर में बहुत उत्सव मनाया जायगा। यह विचार किया गया है कि राजराजेश्वर के आने के पहिले हम हिन्दू लोग पचास लाख रुपया एकट्ठा कर लें और राजराजेश्वर से प्रार्थना करें कि वे ही अपने राजश्री संपन्न हाथ से विश्वविद्यालय की नींव डाल दें। सुना जाता है कि मुसलमान लोग भी ऐसी प्रार्थना करेंगे। यदि हम हिन्दू पचास लाख एकट्ठा न कर सके तो हमारी जाति के लिये बड़ी लज्जा और दुःख की बात होगी। इस लिये प्रत्येक हिन्दू से, पुरुष और नारी से, निवेदन है कि शीघ्र इस विश्वविद्यालय रूपी महा मंदिर के बनाने के लिये जिस से जितना बन पड़े चन्दा आप भेज दे और दूसरे भाई और बहिनों से कह कर भिजवावे। जिन नगरों में विश्वविद्यालय कमिटी स्थापित हो गई हैं उनमें उस कमिटी के मंत्री के द्वारा चन्दा भेज दिया जा सकता है। जहां नहीं है, या भेजने वाले रुपया सीधे बंक में भेजना चाहते हैं, वहां इस पते से रुपया भेजना चाहिये—

चन्दा हिन्दू विश्वविद्यालय काशी,
एजण्ट बंक बंगाल बनारस के पास—बनारस।

मदनमोहन मालवीय।

'बेकन' वा 'शेक्सपियर'।

विलायत से आने वाले अंग्रेज़ी अखबारों के पढ़ने वालों को विदित होगा कि कुछ समय से इङ्गलैण्ड साहित्यमंडल में इस बात की ढूंढ़ हो रही है कि 'शेक्सपीयर' के नाम से बिकने वाले नाटक वास्तव में शेक्सपियर नाम धारी व्यक्ति से ही लिखे गये थे वा अन्य किसी साहित्याचार्य से। कुछ विद्वानों का मत है कि शेक्सपीयर के नाटक विख्यात दार्शनिक लेखक और राजनीतिज्ञ 'बेकन' से लिखे गये थे। यह पुरानी चर्चा है। किन्तु अब Dr. Orville Owen 'ओवेन' साहब ने इस आन्दोलन को केवल पुनर्जीवित ही नहीं किया है वरंच वह अपने मत को सिद्ध करने को कमर कस कर खड़े हो गये हैं। वे इससे भी एक कदम और बढ़ गये हैं। डाक्टर ओवेन ललकार कर कह रहे हैं कि Burton's "Anotomy

of Melancholy" और ग्रोन, Greene, मार्लो Marlowe स्पेन्सर Spencer, पील Peele तथा Sir Philip Sidney सिडनी प्रभृति के नाम से प्रख्यात ग्रन्थ भी बेकन की लेखनी से ही लिखे गये थे। पाठक वृन्द एक बात और भी सुनिये डा० बोवेन यह भी कहते हैं कि 'बेकन' साहब क्वांरी इङ्गलैण्डेश्वरी एलिजेबेथ के पुत्र थे!

डा० 'बोवेन' साहब को अपने वक्तव्य को प्रकाश करने का साहस कैसे हुआ और उन्हें अपने सिद्धान्त की पुष्टता की सामग्री कहां मिलेगी? सर फिलिप सिडनी कृत Arcadia आर्केडिया के पृष्ट पर (Title Page) पर एक चिन्ह विशेष (सूकर की मूर्त्ति) है जो कि बेकन का खान्दानी चिन्ह (Crest) माना जाता है। इसी पुस्तक में 'अंकलिपि' में बेकन का यह लिखा माना गया है कि "मैंने पेड़ काट कर और मिट्टी से वाई Wye नद का प्रवाह कुछ रोका। वहां नदी के तटपर चट्टानों के बीच एक दरार था। उसमें लकड़ी के बक्सों में टार लगा कर फिर उन्हें कम्मलों से लपेट कर वहां रख पत्थरों से दबा दिया।" 'कल्पित बेकन लेख' में यह नहीं लिखा है कि उन बक्सों में रक्खा क्या था।

डा० बोवेन को आशा है कि उनमें बेकन के हाथ की लिखी असली प्रतियां 'इन पुस्तकों' की हैं। बेकन ने इस स्थान का पता भी अंक लिपि Ciphers में लिखा है। यह स्थान 'चेप्स्टो' में है। इस स्थान से बेकन का घना सम्बन्ध है।

डा० बोवेन ने यहां खोदना आरम्भ कर दिया है। आठ सुराख तो अब तक वे कर चुके हैं पर अभी हाथ कुछ नहीं आया। यहां पर २५ घंटे में केवल १५ मिनट काम हो सकता है। बाकी समय में यह स्थान नदी (Wye) की बाढ़ से जल के नीचे हो जाता है और नदी प्रवाह से फिर वहां कीचड़ और मिट्टी भर जाता है।

पाठक वृन्द! शायद आप अब तक मेरा आशय समझ गये होंगे। मैं ने इस घटना का उल्लेख क्यों किया? देखिये उन्नतिशाली जातियां जरा सी बात के लिये कितना परिश्रम उठाती हैं और सैकड़ों रुपया नदी में बहा देते हैं। हमारी दशा देखिये। इन्द्रप्रस्थ यमुना की गोद में सो रहा है। कुरुक्षेत्र रणारण्य पर रसातल में पड़ा है। पाटलीपुत्र रेत और बालू के नीचे दबा है। इसी प्रकार हमारे प्राचीन ऐतिहासिक स्थल तथा हमारी सभ्यता के स्तम्भ स्वरूप पृथिवी माता की गोद में बेहोश पड़े हैं। उनकी कोई सुध लेने वाला नहीं। खैर इनकी खुदाई में तो सहस्रों क्या लाखों रुपये लगेंगे। इसका अभी समय नहीं आया। किन्तु एक छोटी सी बात यह है कि हिन्दू जाति के तिलक-जिनके नाम से हमारा संवत् १९६८ वर्ष की अवस्था का हो गया-उन महाराजा विक्रम का समय अभी भलीभाँति निश्चित नहीं हुआ। हम माने चले जाते हैं कि सम्राट विक्रम को हुए आज प्रायः दो सहस्र वर्ष हो गये। पर इस बात को पाश्चात्य इतिहासवेत्ता नहीं मानते हैं। मानें से कैसे? हम कोई ऐतिहासिक प्रमाण देने का पुरुषार्थ करते ही नहीं! क्या बैतालपचीसी वा सिंहासनबत्तीसी रटने तथा विक्रमीय संवत की माला जपने से हमारा काम बन जायगा? कदापि नहीं! यह प्रश्न 'बेकन' और 'शेक्सपीयर' प्रश्न से एक तर्क वितर्क से करोड़ों गुना अधिक महत्व का है। इस घटना तथा प्रश्न के सिद्ध होने में हमारे इतिहास में बड़ा परिवर्तन होगा। जिस घटना को लोग पांचवीं शदी में घसीट लाते हैं वह इससे ५८ वर्ष पूर्व की मानी जायगी। और भी राष्ट्रीय महत्व तथा गौरव की बातें इससे निकलेंगी। क्या हमारे साहित्याचार्य वा पंडित लोग इस बात का समाधान करने की चेष्टा करेंगे?

पायोनियर और शिक्षा बिल

चारों ओर से शिक्षा बिल का समर्थन होते देख पायोनियर को आज कल नींद नहीं आती और रात्रि में करवटें बदलते बदलते उसने

लोगों को बहकाने की एक अच्छी तरकीब सोच ली है। मन का भाव छिपाते हुए वह कहता है कि शिक्षा बिल है तो बड़ी लाभकारी किन्तु म्युनिसिपेलिटियों को इसका समर्थन करने के पहिले यह भी सोच लेना चाहिये कि वह शिक्षा प्रचार के लिये रुपया कहां से लावेगी। पहिले तो रुपया का मिलना ही कठिन है और यदि मिला भी तो इसके लिये कोई विशेष कर लगाने की आवश्यकता होगी जिसे प्रजा कभी नहीं पसन्द करेगी। और यदि दोनों बातें भी हो जांय प्रजा कर भी प्रसन्नता से दे दे और रुपया भी एकत्र हो जाय तो उसे चाहिये कि प्रजा के धन का वह सदुपयोग करे। आज कल देश में मलेरिया बहुत फैला है इसका नाश करना बहुत आवश्यक है शहर को साफ रखने के लिये बड़ी २ सड़कें आदि होना चाहिये यह शिक्षा से अधिक उपयोगी वस्तु है किन्तु हम पायोनियर से यह कह देना उचित समझते हैं कि भारतवासी अब शि[illegible] के अमृत को चख चुके हैं अब उन पर [illegible] [illegible]तों का असर न होगा और न [illegible] अब पायो-[illegible] ऐसे प[illegible] से बहक सकते हैं [illegible] के प्राय [illegible] पत्रों के सम्पादकों ने उन्हें एक [illegible]च पहना रक्खा है जिस पर इन अस्त्रों का असर ही नहीं होता। वह कवच यह है कि गोरे पत्र के सम्पादक भारत हितैषी नहीं हैं और जिस बात को ये लोग हितकर कहें वह भारत के हित की कभी नहीं हो सकती।

लंडन टाइम्स।

लंडन टाइम्स ने एक लेख "भारत की वर्तमान स्थिति" शीर्षक छापा है। जब तक कोई किसी विषय को अच्छी तरह से जानता और समझता न हो तब तक उस पर लिखना उचित नहीं समझा जाता किन्तु बड़ों की सब बात निराली ही होती है। टाइम्स तो कहता है कि हम भारतवर्ष की दशा पर लेख लिखेंगे यद्यपि उसी लेख से वह यह भी साबित करता है कि उसे यहां की बातों का कुछ भी ज्ञान नहीं है। पहिले ही मक्षिका पात की तरह टाइम्स ने लिखा है "ढाका केस में जो लोग असेसर थे, वेही लोग कलकत्ता ट्रिब्यूनल में भी असेसर थे।" कहिये पाठक आप तो यहां रहते हैं आपने भी कभी यह स्वप्न देखा था। किन्तु खेद तो इस बात का है कि विलायत के पढ़ने वालों पर तो उस लेख का असर पड़ ही जाता है और उन्हीं की राय भारतवर्ष के विरुद्ध रखना टाइम्स का अभीष्ट है। यह कौन पूछता कि तुम सच कहते हो या झूठ और यदि झूंठ ही साबित हो गया तो we are sorry (हमें खेद है) कहने में क्या कठिनाई है। इतना कहने के बाद टाइम्स कहता है "उसी दिन टिनावली के कलेक्टर मि० ऐश की हत्या एक ब्राह्मण वकील ने की" पाठक आपने "उसी दिन" का महत्व समझा या नहीं? टाइम्स का मतलब है कि इस हत्या का असे-[illegible]के यह कहने से कि "अभियुक्त निर्दोष हैं" कुछ संबन्ध है अर्थात् यदि असेसरों ने निर्दोष न कहा होता तो हत्या न होती। यद्यपि टाइम्स साफ २ यही नहीं कहता किन्तु इतना वह अवश्य चाहता है कि हाईकोर्ट के जजों को न्याय अपने घरों पर छोड़ आना चाहिये और इजलास पर सिवाय दंड देने के और उन्हें कुछ न करना चाहिये। आगे चल कर वह लिखता है कि कलकत्ते में जो अभियुक्त निर्दोष कह कर छोड़ दिये गये हैं इससे पुलिस की बड़ी बदनामी हुई और वे अब राजनैतिक मामलों का अनुसन्धान करने में योग न देंगे। तात्पर्य यह है कि मुकद्दमे जो साबित नहीं हो सके उन में पुलिस का कोई दोष नहीं है किन्तु हाईकोर्ट के जजों का क्योंकि उन्हें उचित था कि वे पुलीस की कार्रवाइयों का समर्थन करते और यदि वे ऐसा न करेंगे तो पुलीस वाले अपनी बदनामी होते राजनैतिक षड़यन्त्रों को पकड़ने का कष्ट

न उठावेंगे अर्थात् यदि गवर्मेंट चाहती है कि राजनैतिक षड़यन्त्रों का पता लगाया जाय तो उसे उचित है कि वह जजों को समझा दे कि वे पुलिस वाले जो मुकदमा पेश करें उस में बिना न्याय अन्याय की लकीर खींचे फौरन अभियुक्तों को सज़ा दे दें। धन्य टाइम्स तू और तेरा देश। तू पुलीस का काम जजों से लिया चाहता है और फैसला पुलिस के हाथ में रक्खा चाहता है। ऐसी ही रद्दी बातों से टाइम्स ने अपने कालम को काला किया है।

स्वदेशी व्योपार विदेश में।

ईश्वर तेरी भी लीला अपार है। हमारा तो हाल यह है कि गला फाड़ २ कर चिल्लाने पर तथा अखबारों के द्वारा रोने पीटने पर भी कोई हमारी नहीं सुनता। पराये देश में तो क्या अपने देश में भी हमारे शिल्पविद्या दीक्षित पाश्चात्य देशों से लौटे हुये शिक्षित युवकों को धोबी का कुत्ता बनना पड़ता है। उनका सब विज्ञान [illegible] मिट्टी में मिल जाता है। कोई उनकी सुध नहीं लेता। धनी लोग अपने धन का उचित उपयोग बहीखातों में उलट फेर चढ़ाव उतार करना ही समझते हैं। वे विदेशों से लौटे हुए युवकों पर विश्वास नहीं करते हैं। उन्हें अपनी वैज्ञानिक तथा शिल्प विद्या का उपयोग करने का कुछ अवकाश नहीं मिलता है। किसी प्रकार का कारखाना खोलने के लिये पूंजी तो अलग रही औजार यंत्र तथा अन्य सामान लेने के लिये भी उन्हें पैसे नहीं देते। परिणाम इसका क्या जो रहा है सो स्पष्ट है।

और देशों का यह हाल नहीं है। जापान का हाल सब को मालूम ही है। इधर कोई शिक्षित युवक विदेश को शिल्पविद्या सीखने गया नहीं कि उधर स्वदेश में उस के मित्र फैक्टरी खोलने के लिये रुपया जमा करने लगे। शिक्षित युवक के वापिस आने पर सब सामान तय्यार रहता है वह आते ही अपनी विद्या का उपयोग करने लगता है।

चीन एक कदम और भी आगे बढ़ गया है। एक चीनी युवक 'ली यू विंग' सन् १९०१ में फ्रांस में वैज्ञानिक शिल्पविद्या सीखने गया था। विद्याध्ययन समाप्त करने पर वह दो वर्ष पूर्व चीन को लौटा वहां उसने अपने मित्रों की सहायता से बारह लाख रुपया एकत्रित किया। इस पूंजी के आधे शेयर होल्डर्स (पत्तीदार) सर्कारी नौकर हैं। चीन के कानून के मुताबिक तीन्सतिन नगर में एक कम्पनी बनाई गई। युवक फ्रांस को गया वहां उसने पैरिस के समीप ली बालीस पर ज़मीन मोल ली और २४ चिनी काम करने वालों को अपने साथ ले गया। वहां उसने एक नवीन प्रकार का खाना तय्यार करना आरम्भ किया है जिस का सारा सामान वह चीन से ही मंगवता है और तय्यार कर के स्वदेशी पूंजी, स्वदेशी परिश्रम और स्वदेशी बुद्धि से संपादन कर विदेशियों को पुरुषार्थी खाना खिलाता है। धन्य है इस स्वदेश प्रेम, [illegible] और कार्यकुशलता को। [illegible] यू विंगों की हमारे [illegible] कौम बन जायें पर उन [illegible] विश्वास रखने वाले बारह लाख को [illegible] में वालों का बड़ा अभाव है।

आर्म्स एक्ट।

पाठकों ने पूर्वीय बङ्गाल के छोटे लाट के हथियार सम्बन्धी प्रस्ताव को पढ़ा होगा। उस प्रस्ताव पर बङ्गाल गवर्मेंट की अब राय मांगी गई है। यह भी मालुम हुआ है कि आसाम के नील आदि के व्यवसायी अङ्गरेजों ने भी प्रस्ताव का समर्थन किया है। हम भी प्रस्ताव का समर्थन करते हैं यद्यपि जो कारण बतलाये गये हैं कि हथियारों ही के सहारे हत्याएं और डकैतियां होती हैं और लायसेन्स लग जाने से ये सब न होंगीं हम सहमत नहीं

हैं जब पापी हत्या करने पर उद्यत हो जाता है और जान पर खेल जाता है तो उसे हथियार ढूंढ़ना कोई कठिन बात नहीं है। रही डकैतियों की बात सो उसके रोकने का इससे अच्छा कोई उपाय ही नहीं हो सकता कि लायसन्स बिलकुल न रहै। घर २ हथियार हो जाने से डाकुओं की हिम्मत ही न पड़ेगी कि वे डाका डालैं अस्तु।

जातीय नेशनल कांग्रेस बहुत दिनों से यह कह रही है कि हथियार सम्बन्धी लायसन्स लेने की आवश्यकता न रक्खी जाय और यदि इसका रहना आवश्यक है तो अङ्गरेजों के लिये भी लायसेन्स लेना आवश्यक हो जाय। जो बात कांग्रेस कह रही है उसी बात को अब छोटे लाट चाहते हैं यद्यपि इस चाहने का कारण दूसरा ही है। खैर हमें तो फल से मतलब है हम तो यह चाहते हैं कि कानून में यह हो जाय कि हिन्दुस्तानियों ही के लिये नहीं किन्तु अङ्गरेजों के लिये भी लायसेन्स लेना आवश्यक [illegible] हम तो यही चाहते हैं कि हिन्दुस्तानियों [illegible] [illegible]त्व हों जो अङ्गरेजों के हैं। हिन्दुस्तानियों को [illegible] जो [illegible] पड़ता था यह सूचित [illegible] कि हिन्दुस्तानी दास हैं और अङ्गरेज [illegible]तु अब यह तो न रहैगा।

दान।

कर्णस्त्वचं शिविर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः।
दधौ दधीचि रस्थीनि नास्तदेयं महात्मनाम्।

लोक के उपकार के लिये राजा कर्ण ने अपने शरीर का चाम उतार कर इन्द्र को दे दिया था। एक कबूतर की रक्षा के लिये राजा शिवि ने अपना मांस काट कर दे दिया, परोपकार ही के लिये राजा जोमूतवाहन ने अपना प्राण दे दिया था और देश और अपने भाइयों ही के उपकार के लिये दधीचि ने अपनी हड्डी दान करदी थी जिसकी ढाल बना कर देवताओं ने राक्षसों पर विजय पाई। इन महादानियों के नाम लेने वाले इन्हीं लोगों के पुण्य से पवित्र की हुई भारत भूमि में बसने वाले और अपने को उन्हीं की सन्तान समझने वाले हमारे भाई क्या आज अपने लिये, अपने बाल बच्चों के लिये, अपने गरीब भाइयों के लिये तीन तीन पैसा भी विश्वविद्यालय फंड में देना अंगीकार न करेंगे। माननीय मालवीय जी को इस समय विश्वविद्यालय के लिये एक करोड़ की आवश्यकता है किन्तु हम लोग देने वाले २४ करोड़ हैं यदि हम लोग दो दो आना भी दे दें तो एक की जगह पर दो विश्वविद्यालय बन सकते हैं, क्या हरिश्चन्द्र, कर्ण आदि के वंशधरों से इतनी भी आशा करना उचित नहीं है? आर्य सन्तान, अब कार्यक्षेत्र के रङ्ग मंच पर ही दिखाई देने में तुम्हारी शोभा है, बहुत दिन सो चुके अब उसका प्रायश्चित्त करने के लिये कार्यक्षेत्र में उतर पड़ो अभी समय है, इसे हाथ [illegible] जाने देना उचित नहीं। तुम्हारा Past पूर्व समय ऐसा था जैसा अभी किसी भी जाति का वर्तमान समय नहीं है, भविष्यत तुम्हारा तुम्हारे हाथ में है, तुम उसे चाहो तो अपने पूर्व से श्रेयस्कर बना सकते हो—इसके लिये बहुत आयोजन की आवश्यकता नहीं केवल तुम्हारी दानशीलता से यह हो सकता है क्या आर्य सन्तान को अब दान देने के लिये भी उत्साहित करने का समय आगया?

चित्र-दर्शन।

सम्राट् शाहजहाँ अपने कनिष्ठपुत्र औरङ्गज़ेब के कौशल चातुर्य और सयानपन को देख बहुत भयभीत रहता था और इसी से उसने अपनो अन्तिम अवस्था में उसको दक्षिण में डाल रक्खा था परन्तु वह अपने बड़े लड़के दारा की उदारता, सुशीलता सर्व प्रियता और नीतिज्ञता

से मुग्ध हो उसको अपने से पृथक नहीं होने देता था। हिन्दू शास्त्रों विशेषतया उपनिषदों के ज्ञान और प्रेम ने दारा को उदार और शुद्ध हृदय तो बना दिया परन्तु कतिपय कट्टर मुसलमान इसी से उसके विरोधी हो गये। इसके विपरीत औरङ्गज़ेब सङ्कीर्ण और कुटिल नीतिज्ञ था। वह हमेशा दारा की शुद्धहृदयता का फायदा उठा कर दारा को चने चबवाता था। एक दिन की बात है दारा ने यमुना के समीप जमीन के अन्दर एक अच्छा महल बनवा कर अपने पिता और भाइयों को निमन्त्रित किया। सम्राट और अन्य दरबारी लोग भीतर गये पर औरङ्गज़ेब बाहर ही दरवाज़े पर ढाल तलवार कसे खड़ा रहा जब बादशाह बा[illegible] आये और औरङ्गज़ेब के भीतर न आने का कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया "सम्राट! यदि हम लोगों के सुरङ्ग की राह से भीतर चले जाने पर दारा बाहर से शिला से द्वार बन्द कर देता तो हमारी क्या गति होती? मैं द्वार पर इसी लिये खड़ा रहा कि श्रीमान् पर कोई आपत्ति न आवे"। उदार दा[illegible] की शुद्ध हृदयता और सादेपन ने कुटिल नीतिज्ञ और छली औरङ्गज़ेब के हाथ से इतनी पछाड़ खाई कि आखिर देहली की बाज़ार में दारा कत्ल किया गया और उसका मस्तक एक थाल में बादशाह के नयनों की तृप्ति के लिये उसके सन्मुख पेश किया गया। उसी शोकमय दृश्य को भारतीय चित्रकारी के निपुण चित्रकार ने अपनी अनुपम लेखनी द्वारा खचित किया है चित्रकार ने किस योग्यता से सम्राट औरङ्गज़ेब के मनोभाव को दर्शाया है। जिस दारा की महान शक्ति बार बार औरङ्गज़ेब के दिल में धड़का पैदा करती थी जिस दारा की सर्वप्रियता औरङ्गज़ेब को कम्पायमान करती थी जिसका सुयश उसको रात दिन खटकता था और जिसकी शुद्धहृदयता उसकी कुटिल नीति पर पानी फेरती थी आज वही ज़बरदस्त शक्ति निस्तब्ध हो उसका मुंह ताकती है। जिसने कभी आंख उठा कर भी सामने देखने का साहस नहीं किया आज वह दारा के सर के ऊपर तलवार की टेक देता है पर जौं भी नहीं रेंगती। औरङ्गज़ेब के मन में सहसा संसार की अनित्यता का विचार उत्पन्न होता है और वह अपनी पुरानी चालों पर पछताता है हाय! मैंने इस अनित्य सांसारिक पदार्थों के सुखभोग के लिये अपने सच्चे सहोदर को मार डाला। कुछ देर के लिये वह सब संसार को यहां तक कि अपनी प्यारी पुस्तक कुरान को भी भूल गया। वह कहीं एक दिन अपनी भी गति ऐसी हो न हो सोच कर वैराग्यसागर में डूब गया। चित्र[illegible] की एक खूबी और देखिये वैराग्यभाव को [illegible] पुरुषार्थ[illegible]ते हुये उसने तनिक मुस्कुराहट की झलक [illegible] सम्राट के वास्तविक अवस्था को कैसा खींच दिया [illegible]काम बन जाने [illegible] के साथ ही साथ शाहंशाह के दिल म [illegible] में होने के विचार भी विद्यमान हैं।

विशेष सूचना।

पृष्ठ १११ के बाद ११६ ठीक है।

मैनेजर।

अभ्युदय प्रेस प्रयाग में बद्री प्रसाद पांडे द्वारा छप कर प्रकाशित।

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग २] अगस्त सन् १९११—श्रावण-भादों [संख्या ४

मिस पारकर का स्कूल ।

[लेखक—श्रीयुत सत्यदेव]

(१)

आज बादल घिरे हुए थे । शीत की अधिकता न थी । मिस पारकर से मैंने पि[illegible]त उनका 'किन्डरगा[illegible] स्कूल [illegible]ने का वादा किया था [illegible]र दूसरी दूसरी [illegible] के प्रार्थन से मैं अपना वादा भूल गया। [illegible] में बैठा एक पुस्तक 'India and Her People' पढ़ रहा था कि स्वामी बोधानन्द जीने आकर मुझसे कहा :—

'क्यों, 'किन्डरगारटन' स्कूल देखने नहीं जाओगे ?'

'सचमुच ! मैं तो वहां जाना भूल ही गया था । कहिये क्या वक्त है ?'

'दस से ऊपर हो चुके हैं ।'

क्योंकि वादा नौ बजे जाने का था इस लिये मैं झटपट कपड़े पहिन मिस पारकर का स्कूल देखने चला ।

(२)

मिस पारकर एक बहुत ही शुशिक्षिता देवी हैं, आयु आप की कोई छत्तीस वर्ष की होगी—अच्छा लम्बा कद—चेहरे को देखने से फौरन ही मालूम हो जाता है कि देवी अधिक विद्या-रसिक हैं । अधिक विद्याऽभ्यास से शरीर में कृशता आगई है, मगर बुद्धि के जौहर वार्तालाप से ही खुलते हैं । भारत के प्राचीन धर्म पर आप की बड़ी श्रद्धा है, और जब जब कोई भारतीय [illegible]न नगर में पधारते हैं आप अवश्य ही उनसे परिचय कर धार्मिक विषयों की बातें पूछती हैं।

इसी धार्मिक संलग्न के कारण आप का परिचय मुझसे हुआ और मुझसे आपने अपना स्कूल मुलाहजा करने की इच्छा प्रगट की, जिसको मैंने सहर्ष स्वीकार किया । आज उसी स्कूल को देखने चला था ।

स्कूल-द्वार पर पहुंच मैंने बटन दबाय। और अन्दर वालों को आगन्तुक की खबर लग गई । एक युवा रमणी ने द्वार खोला, मैंने अपना परिचय दिया और देवी ने सप्रेम मुझे अन्दर ले जा कुरसी दी और आप मिस पारकर को बुलाने गई ।

(३)

"अच्छा, आप आगये !" मिस पारकर ने मुसकरा कर अगवानी की ।

"देर से आने की क्षमा मांगता हूं ।" मैंने कुछ लज्जित होकर उत्तर दिया ।

"इसकी कोई बात नहीं, पर आप अधिक देख न सकेंगे। क्योंकि दिलचस्प विषयों के घंटे पूरे हो चुके हैं। अच्छा आइये, कुछ तो देखिये।"

मैं अधिष्ठात्री मिस पारकर के साथ साथ हो लिया।

साथ के कमरे में जा कर हम और मिस पारकर एक ओर कुर्सियों पर बैठ गये। एक अध्यापिका छोटे स्टूल पर बैठी हुई थी और बीस के करीब बालक बालिकायें उसके सामने ज़मीन पर घेरा बांधे बैठी हुई थीं। कमरे का फर्श लकड़ी का था जिस पर गर्द, मट्टी का नाम नहीं था। अध्यापिका इन नन्हे नन्हे बालक बालिकाओं को क्या पढ़ा रही थी? धैर्य कीजिये पाठक, मैं आप को बताये देता हूं।

इन किन्डरगारटन के विद्यार्थियों के सामने की दीवार पर एक रंगीला बड़ा सा चित्र टँगा था। वह चित्र एक देशहितैषी नवयुवक सिपाही का था, जो घोड़े पर सवार हाथ में एमरिका (यूनाइटेड स्टेटज़) का झंडा लिये अपने [illegible] प्यारे देश के लिये स्वाहा होने को युद्ध भूमि में जारहा था। देश की नारियां-मातायें भगिनियां-रूमाल हिला हिला उसका उत्साह बढ़ा रही थीं।

उस चित्र को देख मेरे अश्रुपात होने लगा। राजपुताने की पवित्र भूमि के दृश्य एक एक कर के मेरी आंखों के सामने फिर गये। भारत सन्तान की प्राचीन शिक्षा प्रणाली का गौरव मेरे सामने आगया। फिर आधुनिक शिक्षा प्रणाली का नज़ारा मेरे सामने आया-दिल नदी की भांति उमड़ा, पर मैंने अपने आप को थामा। रूमाल से आंखें पोछ डाली। मेरे चश्मे ने मुझे सहायता दी और दिल के भाव दिल ही में लीन हो गये।

(४)

'यह सामने की दीवर पर किस का चित्र है?' अध्यापिका ने एक बालक से पूछा।

'यह सवार की तस्वीर है'.

अध्यापिका (दूसरे बालक से)-'सवार के हाथ में क्या है?'

बालक-'झंडा है'

अध्यापिका (एक बालिका से)-'किसका झंडा है?'

बालिका-'हमारे देश का?'

अध्यापिका-'वह सवार कौन है?'

बालिका कुछ देर चुप रही। झट एक दूसरा बालक बोल उठा 'यह सिपाही है, जो युद्ध के हेतु जा रहा है।'

अध्यापिका (दूसरी बालिका से)-'चित्र में क्या कुछ और भी है?'

बालिका-बहुत से आदमी औरतें हैं।

अध्यापिका-'वे क्या करते हैं?'

बालिका-रूमाल हिला रहे हैं'

अध्यापिका (अन्य बालक से)-क्यों रूमाल हिलाते हैं?'

बालक चुप रहा। अध्यापिका ने फिर सब बालकों से पूछाः—

'[illegible] बतलाये' क्यों यह नर नारी रूमाल [illegible] हैं?'

उस अध्या[illegible] ने जब अपने नन्हे विद्यार्थि[illegible] को चुप देखा, [illegible] काम बन जा[illegible] देशहित[illegible] उपदेश दिया :— [illegible] में

"प्यारे बच्चो! यह सिपाही देशहितैषी [illegible] युवक है जो अपनी मातृभूमि को सब से श्रेष्ठ समझता है। उसके लिये यह सब कुछ देने को उद्यत है। मातृभूमि की रक्षा के हेतु अपने देश के शत्रुओं से युद्ध करने के लिये रणभूमि में जाने को तय्यार है। इसके हाथ में अपने देश का परमपूज्य झंडा है-यह झंडा सारी एमरीकन जाति का कीर्ति स्तम्भ है। जब तक यह खड़ा लहराता है, एमरीकन जाति आज़ाद है। इसके गिरने से देश का पतन है। इस लिये इस झंडे की रक्षा देश के प्रत्येक सच्चे पुत्र पर लाज़मी है। इस नवयुवक सिपाही ने प्राणपर्य्यन्त इस झंडे की रक्षा करने की शपथ खाई है। देश की रमणियां मातायें, भगनियां, इस को आशीर्वाद देतीं

रुक्मिणी संदेश।

अभ्युदय प्रेस-प्रयाग।

डा० कुमार स्वामी के अनुग्रह से प्राप्त।

हैं और रूमाल हिला हिला उसका उत्साह बढ़ा रही है।"

उन बालक बालिकाओं ने अपनी अध्यापिका के उपदेश को बड़े ध्यान से सुना। कुछ देर सभी चुप रहे। तब अध्यापिका ने विद्यार्थियों को संबोधित कर कहा :—

'आओ, सब लोग युद्ध-नाटक रचें।'

(५)

यह एक देखने योग्य दृश्य था। टाड़ राजस्थान में जिन दृश्यों के वर्णन पढ़ स्वप्न देखा करता था आज वह सामने दिखाई दिया।

सब बालक बालिकायें एक घेरे में खड़े थे। एक बालक उनका अग्रसर आफिसर चुना गया, वह घेरे के मध्य में खड़ा था। उस के हाथ में बहुत सी झंडियां थीं। अपनी इच्छानुसार वह घेरे में से एक बालक, बालिका को बुलाता था। आने वाला पहिले बालक अफसर को प्रणाम करता और बाद में अफसर उस को एक झंडी दे अपनी रजमेन्ट का सिपाही चुनता। [illegible] प्रकार रजमेन्ट बनी, जिस्में दस [illegible] थे [illegible] ग्याहरवां अफसर। [illegible] सब विद्यार्थी द[illegible] उनको घेर कर खड़े हो गये। [illegible]मेन्ट युद्ध हेतु चली।

दर्शक लोग अध्यापिका के साथ रुमालें हिलाते हुये यह गीत गाने लगे :—

प्रश्न

Soldier boy Soldier boy! ....
Where are you going ....
Bearing so proudly ....
The red, white and blue . ...

हिन्दी (कविता)।

कहां चले, ओ? सुभट बालगण वीर हृदय गरवीले।
झंडे लिये हाथ में अपने, श्वेत लाल औ नीले॥*

उत्तर

I go where my country ....
My duty is calling, ...
If you would be a soldier boy,......... .....
You may come too. ....

हिन्दी (कविता)।

हम जाते हैं युद्ध स्थल को देश काज हित भाई
चल सक्ते हो तुम सब भी यदि बनना चहो सिपाही॥

आहा! क्या ही सुन्दर दृश्य था।

....

थोड़ी देर बाद खेल पूरा हो गया। मिस पारकर से छुट्टी ले मैं अपने स्थान पर पधारा।

रुक्मिणी सन्देश।

[लेखक—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय।]

(१)

परम-रम्य था नगर एक कुण्डिनपुर नामक।
उसे राज्य करते थे नृप-कुल-भूषण भीष्मक॥
सकल सम्पदा सुकृति धाम था नगर मनोहर।
जहां उलहती वेलि नीति की थी अति सुन्दर॥

(२)

एक सुता थी परम-दिव्य उनको गुण वाली।
रूप-राशि से ढकी अलौकिक सांचे ढाली॥
थी अपूर्व मुख ज्योति, छलकती थी छवि न्यारी।
नाम रुक्मिणी था वह थी सब की अति प्यारी॥

(३)

जब विवाह के योग्य हुई यह कन्या सुन्दर।
कलह-बीज अंकुरित निकेतन हुआ भयङ्कर॥
नृपति, द्वारकाधीश-कृष्ण को दे कर कन्या।
उसे चाहते थे करना अवनी तल धन्या॥

(४)

रुक्म नाम का एक पुत्र भूपति बर का था।
परम-क्रूर, क्रोधी-महान, वह कुटिल-महा था॥
सहमत वह नहिं हुआ नृपति से पूर्ण रूप से।
उसने निश्चित किया ब्याह शिशुपाल भूप से॥

* यूनाइटेड स्टेटज़ अमरीका के झण्डे का रङ्ग लाल, श्वेत और बैंगनी है।

(५)

यतः रुक्म था, बड़ा उग्र अतिशय हठकारी ।
शक्तिमान-युवराज, राज्य का भी अधिकारी ॥
अतः नृपति ने व्यर्थ वितण्डा नहीं बढ़ाया ।
माना उसका कहा यदपि वह नहिं मन भाया ॥

(६)

निकट भूप शिशुपाल रुक्म ने तिलक पठा कर ।
व्याह कार्य्य के लिये किया लोगों को तत्पर ॥
तिथि निश्चित हो गई, बात यह सब ने जानी ।
आता है व्याहने चेदि भूपति अभिमानी ॥

(७)

विबुध वरों, गायकों, विविध गुणियों, के द्वारा ।
सुयश श्रवण करके विचित्र, अनुपम, अति प्यारा ॥
यतः हृदय दे चुकी 'हाथ में थीं' यदुवर के ।
अतः व्यथित अति हुई रुक्मिणी यह सुन करके ॥

(८)

पर सम्भव था नहीं रुक्म का सीधा होना ।
उससे कुछ कहना था निज गौरव का खो[illegible] ॥
अतः हुईं वह गुप्त भाव से उद्यमशीला ।
वृथा न रोईं औ न बनाया मुखड़ा पीला ॥

(९)

सोचा यदि मैं नीतिनिपुण, गुणनिधि, प्रभुवर को ।
परमविज्ञ, करुणा-निधान, यदुवंश-प्रवर को ॥
सकल हृदय का भाव स्वच्छता से जतलाऊँ ।
औ लिख कर सन्देश यहां का सकल पठाऊँ ॥

(१०)

तो अवश्य वह अखिल आपदा को टालेंगे ।
मर्य्यादा निश्चय अपने कुल की पालेंगे ॥
शमन करेंगे ताप हृदय की पीर हरेंगे ।
सकल हमारी मनोकामना सफल करेंगे ॥

(११)

जी में ऐसा सोच लिखा यक पत्र उन्होंने ।
जिसके अक्षर आंखों पर करते थे टोने ॥
अपना आशय प्रगट किया यों सम्मत हो कर ।
हे करुणा-कर, प्रणत-पाल, यदुवंश-दिवा कर ॥

(१२)

मैं न कहूंगी एक नृपति की कन्या हूं मैं ।
मुझे लाज लगती है जो परिचय यों दूं मैं ॥
वरन कहूंगी हूं चकोरिका चन्द्र बदन की ।
प्रभु मैं हूं चातकी किसी नव-जलधर-तन की ॥

(१३)

पावन पद-पङ्कज-पराग को मैं भ्रमरी हूं ।
परम-अनूपम-रूप-राशि-पानिप सफरी हूं ॥
मैं कुरंगिनी हूं पवित्र कल कंठ नाद की ।
मैं समुत्सुका-रसना हूं प्रभु सुयश स्वाद की ॥

(१४)

जैसे देखे बिना रूप भी सौरभ का जन ।
हो जाता है सानुराग सब काल सुखित बन ॥
वैसे ही प्रभु रूप बिना देखे अति प्यारा ।
हुई हृदय से सानुराग हूं तज भ्रम सारा ॥

(१५)

सुचरित, सद्गुण, सुकृति, आपकी है महि व्यापी ।
इन[illegible] से हो है सुमूर्त्ति प्रभु की हिय थापी ॥
[illegible] पुरुषार्थ[illegible] अनुराग क्षणिक है, अस्थायी है ।
रूप भये औ[illegible] उसे नहिं सुखदायी है[illegible]
[illegible] काम बन जा[illegible]

(१६)

[illegible] मैं
पर सद्गुण-सुचरित्र-जनित अनुराग सदा[illegible]
अचल अटल है, अतः वही है अति हिय ग्राही ॥
सुकर उसी के मैं उमंग के साथ बिकी हूं ।
निश्चल, नीरव, समुद, उसी के द्वार टिकी हूं ॥

(१७)

एक मूढ़ जन इस मेरे अनुराग स्रोत को ।
करके गौरव हीन प्रशंसित प्रथित गोत को ॥
निज इच्छा अनुकूल चाहता है लौटाना ।
पर उसने यह भेद नहीं अब लौं प्रभु जाना ॥

(१८)

कौन फेर सकता प्रवाह है सुर सरिता का ।
रोक कौन सकता है जलनिधि पथ का नाका ॥
कौन प्रवाहित कर सकता है यत्नों द्वारा ।
पश्चिम दिशि में भानुनन्दिनी की खर धारा ॥

(१९)

प्रणय राज्य में बल प्रयोग अति कायरता है।
मंगल मय विवाह में कौशल पामरता है॥
जिस परिणय का हृदय मिलन उद्देश नहीं है।
वह अवैध है विधि का उसमें लेश नहीं है॥

(२०)

जहाँ परस्पर-प्रेम लता है नहिं लहराती।
वहाँ ध्वजा है कलह कपट की नित फहराती॥
प्रणय कुसुम में कीट स्वार्थ का जहाँ समाया।
वहाँ हुई सुख और शान्ति की कलुषित काया॥

(२१)

यह प्रपंच सब अनमिल व्याहों से होते हैं।
जो दम्पति जीवन का अनुपम सुख खोते हैं॥
अहह प्रभो ऐसा प्रण क्यों भ्राता ने ठाना।
जिससे दुख में मुझको जीवन पड़े बिताना॥

(२२)

अब प्रभु तज नहिं अन्य हमारा हैं हितकारी।
निरवलम्बिनी हो, मैं आई शरण [illegible]॥
प्रभु पद नख की ज्योति हरेगी तिमि[illegible]।
[illegible] एक अवलम्बन है [illegible] वही सहारा॥

(२३)

[illegible] बना प्राणी औ मणि बिन फणि जी जावे।
यह संभव है त्राण बिना जल मछली पावे॥
है परन्तु यह नहिं कदापि संभव मैं जीऊं।
जो न प्रभु-कृपा-सुधा यथा रुचि सादर पीऊं॥

(२४)

तरु हरीति मान से, उड़ें बिन पंख पखेरू।
हीरा बन जावे बहु उज्जल हो कर गेरू॥
जल शीतलता तजे, त्याग गति करे प्रभंजन।
तदपि न होगा मम विचार में कुछ परिवर्त्तन॥

(२५)

आप समर्पित हृदय अन्य को कैसे दूंगी।
हूंगी जो सेविका प्रभु कमल पग की हूंगी॥
कभी अन्यथा नहीं करूंगी मैं न टलूंगी।
विष खाऊंगी, प्राण तजूंगी, कर न मलूंगी॥

(२६)

मैं हूं परम अबोध बालिका प्रभु बुध बर हैं।
मैं हूं बहु दुखपगी आप अति करुणा कर हैं॥
मैं हूं कृपा भिखारिणि प्रभु अति ही उदार हैं।
मैं हूं विपत समुद्र पड़ी प्रभु कर्ण धार हैं॥

(२७)

जैसे मेरी लाज रहे मम धर्म्म न जावे।
देव भाग को दनुज न बल पूर्वक अपनावे॥
जिस से कलुषित बने नहीं मम जीवन सारा।
होवे वही, निवेदन है प्रभु यही हमारा॥

(२८)

इस प्रकार चीठी लिख कर वह चिन्ता डूबीं।
भेजूं क्यों कर किसे सोच यह बातें ऊबीं॥
छिपी नहीं यह बात रहेगी अन्त खुलेगी।
उग्र रुक्म से कभी किसी की नहीं चलेगी॥

(२९)

संभव है मम उपकारक को वह दुख देवे।
उसे नाश कर के सरबस उस का हर लेवे॥
अतः उन्हों ने एक योग्य ब्राह्मण के द्वारा।
पत्र द्वारिका नगर भेजना हृदय विचारा॥

(३०)

क्योंकि विप्र ही है अवध्य औ अदंड्य होता।
निज अव्याहत गति में है बहु विघ्न डबोता॥
सखियें द्वारा सब बातें पहले बतलाईं।
फिर बुलवा कर उसे आप कोठे पर आईं॥

(३१)

बातायन में बैठ पत्र को कर में लेकर।
झुकीं विप्र के देने को अति आतुर होकर॥
दोनों कर से बसन इधर द्विज ने फैलाया।
लेने को वह पत्र; शीश हो चकित उठाया॥

(३२)

इसी काल का चित्र हुआ है अंकित सुन्दर।
देखो द्विज का भाव, बदन रुक्मिणी मनोहर॥
यदपि धीर गंभीर मुखाकृति राज सुता की।
स्थिरता लोचन, व्यंजक है उर की दृढ़ता की॥

(३३)

तदपि सामयिक, उत्सुकता, शंका, चंचलता।
अंकित है की गई चित्र में साथ निपुणता॥
शीश अचानक लज्जाशीला का खुल जाना।
परम शीघ्रता वश सम्हालने वस्त्र न पाना॥

(३४)

पत्र दान की तन्मयता को है जतलाता।
अति सशंकता, चंचलता है प्रगट दिखाता॥
जो असावधानता हुई थी आतुरता से।
उसको भी है वही बताता चातुरता से॥

(३५)

कसी हुई कटि, लोटा डोरी कांधे पर की।
पत्र ग्रहण की रीति, भाव भंगी द्विज बर की॥
यात्रा की तत्परता को है सूचित करती।
हृदय अनेकों भाव सरलता का है भरती॥

हमारा पुरातनत्व*।

[लेखक—श्रीयुत जगतविहारी सेठ ।]

हिन्दू सभ्यता का पुरातनत्व अद्भुत है, उसका चेतनत्व लोकोत्तर है! ग्रीक लोगों का मनःकल्पित समय, इजिप्ट के सूफी (Soufi) का समय आधुनिक यूरप विचारकों की "स्टोन एज" हिन्दू सभ्यता के इतिहास के सामने कल की बातें हैं। इस पृथ्वी के वय के काल की संख्या कुछ सहस्र वर्ष ही की नहीं किन्तु अरबों और खरबों वर्ष की है। बड़े २ राष्ट्रों का उत्थान हुआ और उनका अधःपतन हुआ, साम्राज्यों का स्थापन और नाश हो गया, न मालूम कितनी जातियां इस संसार में प्रकट हुईं और फिर लुप्त हो गईं, परन्तु हिन्दू सभ्यता, जिसने उनके उत्थान और अधःपतन, उनके स्थापन और नाश, उनके उदय और लोप का अवलोकन किया आज तक जीवित है।

प्राचीन जातियों के अति पुरातनत्व के अधिकारों का विचार करते हुए काउन्ट वयोर्न्स-जर्ना (Bjornst jerna) कहते हैं :—संसार भर में कोई जाति भी हिन्दू जाति से उनकी सभ्यता और उनके धर्म के पुरातनत्व के विषय में जय नहीं प्राप्त कर सकती।"*

अमरीका के येल (Yale) कालेज के प्रेसीडेण्ट (प्रधान) डाक्टर स्टाइल्स (Dr. Stiles) ने हिन्दू ग्रन्थों के पुरातनत्त्व से ऐसी उन्मत्त आशा की उन्होंने सर डब्ल्यू जोंस को साक्षात् लिख ही दिया कि कृपया हिन्दू ग्रन्थों में आदम के समय की पुस्तकों की खोज करिये†।

हिन्दुओं के चार युगों के बारे में वर्णन करके मिस्टर हैलबड (Halbed) शुचि भक्ति पूर्वक लिखते हैं: "ऐसी पुरातनत्त्व के सामने मूसा के समय की सृष्टि कल के समान है, और ऐसी वयों के सामने मिथुसिला (Methuselah) का वय एक विते ही के सदृश है।"

स[illegible] ज्योतिष के पुरातनत्व के वर्णन की समाप्ति [illegible] काउण्ट वयोर्न्सजर्ना कहते हैं—"परंतु बेली (Bailly) [illegible] के अनुसार, यदि यह बात सत्य हो कि ईसा से [illegible] में भी पहिले हिन्दू लोग ज्योतिषिक और [illegible] गणित सम्बन्धी ज्ञान की इतनी ऊँची कोटि तक पहुंच गये थे, तो उस समय से कितनी शताब्दियाँ पहिले उनकी उन्नति का प्रारम्भ हुआ होगा, क्योंकि मानुषिक मन विज्ञान के मार्ग में केवल क्रम क्रम से ही चल सकता है।"‡ और इस पर भी, किसी देश के साहित्य में जोतिष शास्त्र वह विज्ञान नहीं होता जिसकी बृद्धि प्रथम ही प्रथम की जाती है।

प्लाइनी (Pliny) कहते हैं कि बेकस (Bacchus) के समय से मेकीडोन के अलक्षेन्द्र

---

*. श्रीहरि विलास शारदाकृत "हिन्दू सुपीरियारिटी" के एक अंश का अनुवाद।

* Theogony the Hindus, P. 59.

† Ward's mythology, Vol. I., P. 144.

‡ Theogony Hindus, P. 37.

(Alexander of Macedon) तक भारतवर्ष में १५४ राजाओं ने ६४५१ वर्षों से भी अधिक दिन राज्य किया। वेकस के पहिले कितनों ने शासन किया इसके बारे में इतिहास कुछ नहीं बतलाता।

राजतरङ्गिणी के अनुवाद में अबुल-फ़ज़ल इन पुरावृत्ताख्यानों में आये हुए राजाओं के नाम लिखता है, जिनको क्रमागत शासनकाल ४१०९ वर्ष ११ मास और ९ दिन का बतलाया जाता है। अध्यापक हीरन (Prof. Heeren) कहते हैं कि डियोनीसियस (Dionysius-एक भारतवर्षीय राजा) से सन्द्रकोटस (चन्द्रगुप्त) तक ६७४२ वर्ष व्यतीत हुए। मेगस्थनीज़ (Magesthenes) कहते हैं कि स्पतम्बस (Spatembas) से सन्द्रकोटस तक ६०४२ वर्ष हुए।"*

अध्यापक मैक्स डङ्कर† (Max Dunker) कहते हैं कि "स्पतम्बस ने" जो डियोनीसियस का दूसरा नाम जान पड़ता है," अपना राज्य ईसा से ६७१७ वर्ष पूर्व प्रारम्भ किया।" वे फिर कहते हैं "युधिष्ठिर का समय विक्रमादित्य के समय से ३०४४ वर्ष पूर्व था, और ईसा से ३०११ वर्ष पहिले कल्युग्वि[illegible] प्रारम्भ हुआ था।" ‡

[illegible] के प्रायः वैयोन्स्र्जर्ना लिखते हैं : "गंगा-[illegible]डस (Gangarides) के राजा कन्द्र गुप्सो (चन्द्रगुप्त) के पास आये हुए अलक्षेन्द्र के दूत मेगस्थनीज़ ने, राजा के निवास-स्थान पोलीभोत्रा में एक कालक्रमानुसारी पत्र खोजा था, जिसमें कम से कम १५३ राजाओं के नाम की परम्परा थी। उसमें डिपोनीसियस से कन्द्रगुप्सो तक के सब राजाओं के नाम और प्रत्येक का शासन काल लिखा था। इस शासनकाल का योग होता है ६४५१ वर्ष, अर्थात् डिपोनीसियस के राज्य का समय ईसा से लगभग ७००० वर्ष पूर्व का है। तदनुसार, मैनेथो (Manetho, अर्थात् Tinite Thebaine वंश का अग्रणी) के इजिप्शियन पत्र के प्राचीनतम राजा के समय से उसका समय १००० वर्ष पूर्व का था, जो ५८६७ बी० सी० में राज्य करता था; और गिज़ेह के सूच्यग्रस्तम्भ (Pyramid of Gizet) के निर्माता सूफ़ी (Soufi) से २००० वर्ष पूर्व का।" *

सर डबल्यू जोंस † के मतानुसार मगध में ८१ राजाओं ने राज्य किया। "प्रथम २० राज्य कोला में कालक्रमेण पुरावृत वर्णन के बारे में कुछ भी निरूपण नहीं किया गया है। परन्तु उसके बाद के राजा पांच भिन्न २ वंशों में विभाजित किये गये हैं। इसमें के पहिले वंश का प्रारम्भ राजा प्रादिष्ट (Pradista) से २१०० बी० सी० (B. C.) में हुआ; और इसका अन्त १५०० बी० सी० में राजा नन्द के साथ हुआ। इस वंश में कुल १६ राजाओं ने शासन किया। दूसरे वंश में १० राजा हुए और १३६५ बी० सी० में इसका अन्त हुआ। संग नामक तीसरे वंश में भी १० राजा हुए और १२५३ बी० सी० में उसका भी अन्त हुआ। कण नामक चोथे वंश के चार राजाओं ने ९०८ बी० सी० तक राज्य किया। अन्ध्र नामक पांचवें वंश में २१ राजा हुए। इन्होंने ४५६ बी० सी० और ४०० वर्ष विक्रम से पूर्व तक राज्य किया।"

पुराणों के अनुसार, प्रद्योत वंश के पहिले (जो डबल्यू. जोंस के अनुसार २१०० बी० सी० में राज्य करता था) बृहद्रथ वंश ने, सोमापी से रिपुञ्जय‡ तक १००० वर्ष तक, मगध पर राज्य किया। बृहद्रथ के प्रथम राजाओं के पहिले यह कहा जाता है कि सहदेव, जरासन्ध और बृहद्रथ राज्य करते थे§।

* Histroical researches, Vol. II. P. 218.
† History of aniquity Vol. III, P. 74.
‡ History of aniquity Vol. VI, P. 15.

* Theogony of the Hindus. P. 45.
† Sir W. Jone's works. Vol. I. P. 304.
‡ Made Dunker's History of Aniquity, Vol. IV, P. 76.
§. Made Dunker's History of Aniquity, Vol. IV. P. 77.

स्वयं यही बात कि गणना में वंश का वंश, न कि केवल एक व्यक्ति, एकांक (Unit) माना जाता था, प्राचीन हिन्दू-साम्राज्य के पुरातनत्त्व को सिद्ध करता है।

हिन्दू-ज्योतिष् शास्त्र के पुरातनत्त्व पर विचार कर काउंट वयोर्न्सजर्ना कहते हैं:-"उन प्रमाणों के अतिरिक्त जो कि हिन्दू सभ्यता की अति पुरातनत्त्व के बारे में दिये जा चुके हैं, और भी हैं जो कदाचित् उन से भी अधिक दृढ़ हैं, यथा, एलीफैण्टा, अलोरा, तथा अन्य स्थान के विशाल मन्दिर जो ऊंची २ चट्टानों को काट कर बड़ी मेहनत से बनाये गये हैं और कार्य की विस्तीर्णता के कारण जिनकी तुलना सूच्यग्रस्तम्भों (Pyrameds) से की जा सकती है, और जो शिल्प सम्बन्धी कर्म में तो उन से बढ़ कर हैं।" *

अध्यापक हीरन † कहते हैं; "कदाचित् हम इस बात के कहने में कुछ बढ़ा कर नहीं कहते कि अयोध्या का उत्पत्ति काल १५०० से २००० बी० सी० तक रहा होगा।"

कप्तान त्रोयर (Captain Troyer) कहते हैं; "मैं इस बात का अविश्वास नहीं कर सकता कि सभ्यता की पराकाष्ठा पहुंचे हुए बड़े बड़े राज्य हमारे (ईसाई) सन् से कम से कम तीन हज़ार वर्ष पहिले वर्त्तमान थे। मैं समझता हूं कि रामायण के नायक राम का समय इस से भी पहिले का होगा।" ‡

महाभारत के अनुसार अयोध्या नगरी १५०० वर्ष तक रही, तत्पश्चात् सर्ग वंश के एक राजा ने कन्नौज को प्रतिष्ठित किया। दिल्ली (इन्द्रप्रस्थ) नगर की प्रतिष्ठा का समय उतना ही पुराना है जितना कि मनः कल्पित समय (पोबर-Pober, Vol. I, P. 263) का। उस समय भी वह अपने वैभव के लिये प्रख्यात था (Vol. I, P. 606)।

* Theogony of the Hindus, P. 38.

† Historical researches, Vol. II, P. 227.

‡ Asiatic Journal, 1841.

रेनल * (Renell) कहते हैं कि कन्नौज की प्रतिष्ठा ईसा से एक सहस्र वर्ष पूर्व हुई थी। पर यूरोपियन लेखकों के इन असमीक्ष्य वितर्कों के अतिरिक्त-जो, विल्सन के मतानुसार, "विश्वास शील न विचारे जाने के लिये प्रतिकूल दोष अविश्वासशीलता के भागी हो जाते हैं," एक अन्य गुरुतर प्रमाण है जो भारतीय सभ्यता के पुरातनत्त्व को बतलाता है। काउंट वयोर्न्सजर्ना का कथन है कि, "दैविस्तान† (Dabistan) जो कश्मीर में मिला था और सर जोंस द्वारा यूरोप में ले जाया गया था, में सब राजाओं का, पंथा महा वदनों (Mahabadernes) का उल्लेख है, जिसका पहिला पुरुष अलक्षेन्द्र के भारत में आने से ५६०० वर्ष पहिले राज्य करता था, तदनुसार अलक्ज़ेण्ड्राइन टेक्स्ट में दिये हुए पृथ्वी पर प्रथम मनुष्य के आने के कई सौ वर्ष पहिले का उसका समय है।"

आज दिन सब लोग मानते हैं कि ये वैक्ट्रियन नरेश हिन्दू थे। ‡ इस प्रकार देविस्तान से यह सिद्ध होता है कि ईसा से ६००० वर्ष पूर्व अथवा विक्टोरिया के काल से प्रायः ८०[illegible] वर्ष पहिले हिन्दू लोगों में [illegible] सभ्यता फैली हुई थी।

अकेली यही बात यह सिद्ध करने के लिये समर्थ है कि निःसन्देह भारतवर्षीय पुरुष ही संसार के सब पुरुषों से पहिले सभ्यता की पराकाष्ठा तक पहुंच गये थे। उनके अनतिशीत पुरातनत्व का एक अन्य अखण्ड प्रमाण यह है कि संसार के प्राचीन वृहत् राष्ट्रों ने अपनी सभ्यता भारत ही से पाई थी; कि संसार के सब भागों में भारतवर्ष ने अपने अधिनिवेश स्थापित किये और ये अधिनिवेश पीछे

* Memoirs. P. 54 (2nd Edition)

† Theogony of the Hindus, P.134.

‡ See Mill's History of India, Vol. I, P. 237-33.

से इजिप्ट, ग्रीस, पर्शिया, चीन, अमेरिका आदि नामों से विख्यात हुए; और यह कि स्कारिडनाविया, जर्मनी और प्राचीन ब्रिटेन ने भारतवर्ष ही से सभ्यता और धर्म पाये। संक्षेपतः भारतवर्ष ही ने सारे संसार को ज्ञान, सभ्यता और धर्म से पूरित किया है।

संसार के प्राचीनतम सिक्के हिन्दुओं (आर्यों) के हैं, और प्राचीन भारत के सिक्कों की आधुनिक खोज हिन्दू सभ्यता के पुरातनत्व का निर्णय कर देने वाला प्रमाण है।*

परन्तु भारतवर्ष की प्रत्येक वस्तु यूरोपियन के लिये विस्मयावह है। असभ्य जंगली जनों के उन्माद को क्षय कर उपद्रव होते हुए भी, आज दिन भी इतनी सामग्री विद्यमान है जिससे इस पृथिवी की स्थिति का समय हम निकाल सकते हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" में इस विषय को बहुत श्रमपूर्वक वर्णन किया है और चान्दपुर में बरेली के रेवरेंड मिस्टर स्काट के साथ इस विषय में उनकी बहस भी हुई थी - (देखिये मार्च १८८० के "आर्य दर्पण") पृष्ठाः ६७-६८।

संकल्प-जिसे प्रत्येक लिखा पढ़ा हिन्दू जानता है, और जो प्रत्येक संस्कार के समय-गङ्गा में डुबकी लगाते समय भी कहा जाता है, उस रहस्य के खोलने की मानों कुञ्जी है. जो यह बतलाता है कि पृथ्वी का वर्त्तमान स्वरूप कब से प्रारम्भ हुआ।

ओ३म् तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीय प्रहरार्द्धे वैवस्वते मन्वंतरेऽष्टाविंशति मे कलियुगे कलिप्रथम चरणे आर्यावर्त्तान्तरैकदेशे अमुक नगरे अमुक संवतसरायनर्त्तुमास पक्ष दिन नक्षत्र मुहूर्त्तेऽत्रेदं कार्यं कृतं क्रियते वा।

---

* हिन्दुओं के सिक्के, उनका मूल्य और रूप चाहे कैसा ही हो, निश्चय ही अति प्राचीन काल के हैं। *Elphinstone's India*, P. 176.

यह समझने के लिये कि अन्त में क्या होता है, यह स्मरण रखना चाहिये कि यह संसार यथाक्रम प्राकृत कारणों-परमाणुओं-से बनता है फिर और उसी में लय हो जाता है। यह संसार एक नियत समय तक किसी एक रूप में रहता है और फिर उसी काल के लिये वह अपने प्राकृत कारण में ही रहता है। पहिले वाले काल को कहते हैं "ब्रह्मदिन", और दूसरे को 'ब्रह्मरात्रि"।

अथर्व वेद में लिखा है कि ब्रह्म दिन ४,३२००,००,००० वर्ष का होता है।

शतं तेयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः। अथर्ववेद, अष्टमं काण्डम्, प्रथमोऽनुवाकः, २१ मन्त्रः॥

यह ब्रह्मदिन १००० चतुर्युगियों वा दिव्ययुगों का होता है। मनु महाराज कहते हैं—

दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया।
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती रात्रिरेव च॥

मनु० अ० १ श्लो० ७२।

चतुर्युगी अथवा दिव्य युग से मतलब है इन चार युगों के समय का-सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग। यह काल १२००० दिव्य वर्षों का होता है। इसमें सत्ययुग ४८०० दिव्य वर्षों का होता है, त्रेता ३६०० का, द्वापर २४०० का और कलियुग १२०० का। मनुमहाराज कहते हैं:-

यदेतत्परि संख्यातमादावेव चतुर्युगम्।
एतद्द्वादश साहस्रं देवानां युग मुच्यते॥

मनु०, अ० १, श्लो० ७१।

पुनरपि,

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्।
तस्यतावच्छतीसंध्या संध्यांशश्च तथाविधः।
इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु।
एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च॥

मनु०, अ० १, श्लो० ६९, ७०

एक दिव्य वर्ष ३६० सामान्य वर्षों के बराबर होता है। इस प्रकार—

सत्ययुग = ४८०० × ३६० = १७२८००० वर्ष,
त्रेता = ३६०० × ३६० = १२९६००० वर्ष,
द्वापर = २४०० × ३६० = ८६४००० वर्ष,
कलियुग = १२०० × ३६० = ४३२००० वर्ष,
एक चतुर्युगी = ४३२०००० वर्ष ।

इस प्रकार ब्रह्मदिन = ४३२००००००० वर्ष । इस काल तक पृथ्वी की वर्त्तमान अवस्था रहेगी।

एक ब्रह्मदिन १४ मन्वन्तरों में, और एक मन्वन्तर ७१ चतुर्युगियों में विभाजित है । मनु कहते हैं :—

यत्प्राग्द्वादश साहस्रमुदितं दैविकं युगम् ।
तदेक सप्तति गुणं मन्वन्तर मिहा च्यते ॥
मनु०, अ० १, श्लो० ७९ ।

सूर्य सिद्धान्त में भी लिखा है :—

युगानां सप्ततिः सैका मन्वान्तर मिहा च्यते ।
कृताब्दसंख्या तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्ता जलप्लवः ॥
स सन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश ।
कृत प्रमाणः कल्पादौ सन्धिः पञ्चदशः स्मृतः॥
इत्थं युग सहस्रेण भूत संहार कारकः ।
कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावेता ॥
सूर्य सि०; अ० १; श्लो० १८, १९, २० ।

अर्थः—७१ महायुगों (चतुर्युगियों) की एक मन्वन्तर संज्ञा है और मन्वन्तर के अन्त में सतयुग के वर्ष परिमाण (सौर वर्ष १७२८००० जिन के दिव्य वर्ष ४८०० होते हैं) के बराबर सन्धि का परिमाण है । इस सन्धि समय सारी पृथिवी जल से भर जाती है अर्थात् जलमय हो जाती है ॥ १८ ॥ पूर्वोक्त १४ मन्वन्तरों का एक कल्प होता है । इस में १४ अन्त की सन्धियां होती हैं और एक आदि सन्धि सत्ययुग के वर्ष परिमाण के बराबर होती है, अर्थात् एक कल्प में १४ मन्वन्तर और १५ सन्धियां होती हैं ॥ १९ ॥ पूर्वोक्त रीति से एक हज़ार चतुर्युगी का एक कल्प होता है, जिसके अन्त में सब प्राणियों का नाश हो जाता है । एक कल्प का एक ब्राह्म दिन होता है और इसी परिमाण की रात्रि अर्थात् पूर्वोक्त दो कल्पों का एक ब्राह्म अहोरात्र होता है ॥ २० ॥

उपरोक्त सङ्कल्प के अनुसार ६ मन्वन्तर * व्यतीत हो गये हैं, सातवां चल रहा है, और सात और आने को हैं । प्रत्येक चतुर्युगी पूर्वोक्तानुसार = ४३२००००, और ४३२०००० × ७१ = ३०६७२०००० = एक मन्वन्तर । ६ मन्वन्तर = १८४०३२०००० वर्ष व्यतीत हो गये हैं, और यह हमारा कलियुग २८वीं चतुर्युगी का है । इस कलियुग के ५०१० (यह १९६६ सम्वत् है) व्यतीत हो गये और ४३२०००-५०१० = ४२६,९९० वर्ष (कलियुग के) और बीतने को हैं । इस प्रकार सातवें मन्वन्तर के ११६६४०००० (२७ चतुर्युगी, ४३२०००० × २७) + ३८९३०१० (२८वीं चतुर्युगी का व्यतीत भाग, ४३२००००-४२६९९०) कुल १२०५३३०१० वर्ष व्यतीत हो गये । अभी प्रलय के २१४,७०४,००० (अवशिष्ट ७ मन्वन्तर के) = २३३२२४९९० शेष हैं ।

यूरोपियनों को-जो, अध्यापक सर एम० विलियम्स के कथनानुसार, "एक परिमित क्षितिज के देखने के अभ्यस्त बने रहे हैं,"-यह अपरिमित पुरातनत्व व्याकुल कर देगा । उनके पवित्र कानों के लिये, जिनके परिमाण अधिक से अधिक ६००० वर्ष तक पहुंच सकते हैं अरब और खरब, यदि अगम्य नहीं तो अश्रद्धेय तो अवश्य प्रतीत होंगे । पर दशा कुछ अच्छी हो रही है और सम्भव है कि ये पवित्रात्माएं भी गोला फोड़ कर उस संसार में निकल आवें जिसमें शताब्दियों के स्थान में नियुताब्दियां रक्खी जावेंगी ।

मिस्टर बेल्डविन (Baldwin) कहते हैं :— "निस्सन्देह मनुष्य जाति का पुरातनत्व उस

* चौदह मन्वन्तर ये हैं :—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रपुत्र, रौच्य और भौत्यक ।

समय से कहीं अधिक है जो बहुधा वे लोग मानते हैं, जिनको कि प्राचीन काल सम्बन्धी सम्मतियां मध्यम समय के पुरावृत्ताख्यानों के अनुसार ठहराई जाती हैं। भूगर्भ विद्या का तो कुछ कहना ही नहीं, परन्तु केवल पुराण, वस्तु-शास्त्र और भाषा सम्बन्धी विज्ञान यह सिद्ध करते हैं कि मनुष्य जाति के प्रारम्भ और ईसा के जन्म के बीच के समय का परिमाण ठीक तरह से जाना जायगा यदि लम्बे से लम्बे काल-क्रमानुसार पुरावृत्ताख्यानों के समय को जोड़ कर निकाली हुई शताब्दियां नियुताब्दियों में परिवर्त्तित कर दी जाँय। उनसे एक और बात भी प्रकट होती है। वह यह है कि सभ्यता का पुरातनत्व बहुत बड़ा है। उनसे यह भी मालूम पड़ता है कि प्राचीन काल में कदाचित् वह (सभ्यता) उन स्थानों में रही हो और वहीं पर उसमें आवश्यकीय विस्तार हुए हों जो देश कि आज कल असभ्य कहलाते हैं। ...... किन्हीं विचारकों के ये वर्णन कि उसके जन्म से लेकर अपेक्षया अर्वाचीन काल तक मनुष्य जाति की दशा सारे संसार में नितान्त जंगली ही रही है, केवल कल्पना–मनुष्य जाति की उत्पत्ति के बारे में एक असिद्ध और असाधनीय सिद्धान्त का समर्थन करने वाली अप्रमाण कल्पना मात्रही है।"*

विनय ।

[लेखक—श्रीयुत महेन्द्रनाथ चतुर्वेदी ।]

(१)

हतभाग्य भारतवर्ष ! मुझसे कुछ लिखा जाता नहीं।
हे! हे! परन्तप! दुख असह अब सहा जाता नहीं॥
पर देख इसकी दुर्दशा, चुप भी रहा जाता नहीं।
इस दुखसागर में प्रभो! अब तो बहा जाता नहीं॥

(२)

उत्कर्ष भारतवर्ष, तेरा, है कहाँ सब खो गया।
भगवान क्या रक्षा न होगी, हाय यह क्या होगया!
भारत समुन्नत के शिखर पर, जा चढ़ा था पूर्व में।
हाय! नीचे गिर गढ़े में, मिल गया अब धूर में॥

(३)

विद्वान लाखों हो गये, इस पुण्य भारतभूमि में।
समता न जिनकी कर सका, कोई सकल ब्रह्मांड में॥
गौतम, कपिल, व्यासादि से, विद्वान यहाँही होगये।
कर कीर्त्ति अक्षय निज सकल, इस भूमि मेंही सोगये॥

(४)

होम ऋषिगण थे हजारों, सर्वदा करते जहाँ।
उस भूमि को यह देख दुर्गत, दुख होता है महा॥
ज्ञान में अरु मान में यह देश था, सब से बड़ा।
किन्तु कालऽचक्र में, यह हिन्द भी है आ पड़ा॥

(५)

हाय इसके दुख को, नहिं पूँछता कोई कभी।
देख दुर्गति हिन्द को, दे तालियाँ हँसत सभी॥
दुख सह २ हिन्द का तन सकल जर्जर हो गया।
हाय! उसका रत्न अनुपम, मेदिनी से खोगया॥

(६)

प्लेग आदिक रोगगण की, है यहाँ पर क्या कमी।
अन्न आदिक कष्ट की भी, है यहाँ पर क्या कमी॥
हर साल लाखों प्राणियों की, मृत्यु होती है यहाँ।
जोनाथ अबभी सुधिनलोगे, तो क्या रहेगा फिर वहाँ॥

(७)

यह सत्य है कि नाथ हमने, पाप भारी हैं किये।
कर २ अवज्ञा आपकी, हैं दुख तुमको बहु दिये॥
पर कर कृपा हे ईश! उनको, तुम न निजचितमें धरो।
अब शरण देकर निज प्रभो, रक्षा करो रक्षा करो॥

(८)

सोचते हैं सैकड़ों, पर कुछ न होता व्यक्त है।
पर नाथ अब तो हिन्द सारा होगया निःशक्ति है॥
होश लाने के लिये, यह औषधी अव्यर्थ है।
जैसा दिया, वैसा लिया, अब सोच करना व्यर्थ है॥

(९)

भारत सकल निज अङ्ग को है, अश्रुओं से धोरहा।
अश्रु जल पूरित युगुल नेत्रों से, यह है कह रहा॥
नाथ! हरिये कष्ट मेरा, दुख मुझ को है बड़ा।
यह दीन भारत आपका है, रो रहा यहां पर खड़ा॥

* Baldwin's Ancient America, P. 181.

(१०)

आशा मुझे यह पूर्ण है आशा सफल होगी सभी।
इस भाँति निज कातर हृदय से, न रोना पड़ेगा फिर कभी
ज़ादा कहूं मैं क्या प्रभो, तुम बिन न कोई और है।
आपका नहिं वास हो जहँ, कौन सा वह ठौर है॥

जातीय गीत ।

[लेखक—पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ।]

"भारत वन्दना" ।

(वन्देमातरम की छाया पर)

(सोहनी)

वन्दौं भारतभूमि सुहावन ।
सजल, सफल, श्यामल थल सुन्दर,
मलय समीर चलत मन भावन ।
हिमकर निकर प्रकाशित रजनी,
कुसुमित लता ललित छबिवारी।
दिनमनि उदित मुदित मन पक्षी,
विकसित कमलनयन सुखकारी ॥
तीस कोटि सुत जाके गर्ज्जत,
दुगुन करन करवाल उठाये ।
कौन कहत तोहि अबला जननी !
प्रबल प्रताप चहूं दिसि छाये ॥
धर्म, कर्म अरु मर्म तुही है,
शक्ति मुक्ति दैनी जय करनी ।
तू जननी आराध्य हमारी,
बहुबलधारिनि रिपु दल दलनी ॥
तू दुर्गा दस आयुध धारिनि,
तू ही कमला कमल विहारिनि ।
सुखदा, वरदा, अतुला, अमला,
वानी विद्यादायिनि तारनि ॥
सुस्मित, सरला, भूषित, विमला,
धरनी, भरनी, जननी पावन ।
जगन्नाथ करजोरे वन्दत,
जय जय भारतभूमि सुहावन ॥

राजनीति का श्रीगणेश ।

(२)

रोमन राज्य ।

पिछली संख्या में हमने यह दिखलाया था कि ग्रीस में निरंकुश राज्य (Absolute Monarchy) कैसे स्थापित हुआ । इटली में एक देश ने ग्रीस की तरह बहुत से रद्दोबदल के बाद आस पास के छोटे २ राष्ट्रों पर विजय प्राप्त की यही नहीं उसने धीरे २ समस्त संसार में अपनी विजय पताका उड़ाई । राज्य इतना बढ़ा कि प्रजा तंत्र प्रणाली से वहां काम न चल सका और वहां एक राजा चुना गया धीरे धीरे उसी के वंशधर राज्य करने लगे। वास्तव में आरंभ में रोमन राज्य बहुत से छोटे २ राष्ट्रों से मिल कर बना था जिस में रोम देश प्रधान था । कोई २ देश पूर्ण रूप से स्वतंत्र थे किसी २ को कुछ बातों में रोम की आज्ञा लेनी पड़ती थी। राष्ट्र का संचालन प्रजा की सलाह से होता था । समस्त प्रजा को वोट देने का अधिकार था । प्रजा के प्रतिनिधि सेनेट कहलाते थे और वेही लोग आपस में सलाह कर राष्ट्र का सब कार्य सम्पादन करते थे । धीरे २ करके इन की शक्ति घटने लगी, राजा और उसके दत्त सेवकों का प्रभाव बढ़ने लगा इस प्रकार से ईशा के ५०० वर्ष बाद रोमन राज्य एक राजा के हाथ में था जिसकी शक्ति अनियंत्रित थी । किन्तु रोमन राज्य का सूर्य अस्त हुआ क्योंकि यहां के कर लगाने की प्रणाली बहुत ही खराब थी प्रजा गरीब हो गई, वहां के निवासी कमज़ोर होगये और दूसरे देशों की जातियों ने हमला कर रोम का सत्यानाश कर डाला ।

इंगलैण्ड ।

स्काट लैण्ड प्रभृति देशों में बहुतसी छोटी २ जातियां निवास करती थीं जो ऊंच और नीच श्रेणियों में बिभाजित थीं । हर जाति का एक नेता होता था जो लड़ाई के समय पर चीफ

होता था । ज्यों २ ये जातियां मिल कर लड़ने लगी त्यों २ वे आपस में मिल कर नेता भी चुनने लगी । नेता को लूट के माल में अधिक हिस्सा मिलता था और इस प्रकार से उस की शक्ति बढ़ी । अपने मित्रों को वह लूट के माल में हिस्सा देता था और इस प्रकार से वे भी बढ़े । ज्यों २ राज्य की शक्ति बढ़तो नेता अपने मित्रों को आस पास की जमीन देकर उन्हें स्वतंत्र राष्ट्र निर्माण कर देता । ये चीफस् कहलाते थे और और नेता के ये सामन्त थे, सामन्त अपने मित्रों के साथ भी वैसाही करते थे और इस प्रकार से फ्यूड़ल राष्ट्र स्थापित हुये । किन्तु ये नेता निरंकुश नहीं होते थे, सामन्तों की सलाह से ये काम करते थे । राष्ट्र के समस्त चतुर मनुष्यों से भी यह कभी २ सलाह लेते थे । नेता कानून नहीं बनाता था और प्रजा की इच्छा के अनुकूल ही वह कर लगा सकता था । इङ्गलैण्ड में तृताय हेनरी के अत्याचार से जब समस्त प्रजा त्राहि २ कर रही थी उस समय साइमेन डी मानफोर्ट ने राजा की शक्ति को परिमित करने के लिये पार्लामेन्ट एकत्रित की । इस तरह से फ्यूड़ल राष्ट्रों की जगह जिन में सामन्तों की राय से काम होते थे, एक मनुष्य का राज्य स्थापित हुआ जिस में प्रजा के प्रतिनिधियों की सलाह से काम होता था । यह दशा बहुत दिनों तक न रही । क्योंकि इस में nobles (अमीरों) की शक्ति बहुत बढ़ गई थी । इन के आपस के झगड़ों से राष्ट्र को बहुत हानि उठानी पड़ती थी । हेनरी सप्तम ने बड़ी चालाकी से अमीरों की शक्ति को कम किया । इस समय समस्त यूरोप के विचार में परिवर्तन होना आरम्भ हुआ । उस समय वहां यह विचार प्रचलचित था कि "What the Prince decides on has the Force of law, because the people have transferred their power to him," and all the land of the nation ultimately belongs to the prince, the people have surrendered it to him and recieved it back as sort of tenants."

यह वही राजा करे सो न्याय वाली बात है वे कहते थे कि सब जमीन भी अन्त में राजा की होती है, सब मनुष्यों ने अपनी ज़मीन राजा को दे दी थी और उससे फिर काश्तकार की भांति पा गये हैं । इटली के मेकीविली आदि लेखकों ने इस विचार का खूब विस्तार किया कि राजा को यह उचित है कि वह अपने सेवकों की सहायता से प्रजा को इस लायक बनावे कि वह कर दे सके जिससे वह दूसरे राष्ट्रों पर विजयी हो । इस प्रकार के विचार को Patriarchal theory (पेट्रीआर्कल थियरी) कहते हैं । इसी विचार को इङ्गलैण्ड के ट्यूड़र और स्टूअर्ट खानदान वाले राजा लोग फैलाना चाहते थे और इसी विचार ने जरमनी, फ्रान्स स्पेन आदि के राष्ट्रों में भी ज़ोर पकड़ा । इसका सारांश यह था कि राजा के हाथों में सब शक्ति थी और पुत्र की भांति प्रजा पालन उसका कर्तव्य समझा जाता था, प्रजा के हित की बातें वह अपनी इच्छा से कर सकता था बिला किसी लिहाज़ के कि प्रजा उसके कार्य को पसन्द करती है कि नहीं ? इसी विचार से आज पर्यन्त बहुत से यूरोपीय राष्ट्रों का संचालन होता है यद्यपि रशिया को छोड़ कर निरंकुश राज्य कहीं नहीं है और प्रजा के प्रतिनिधियों के हाथ में सभी राष्ट्रों में सब शक्ति है । समस्त यूरोप में यह विचार फैला हुआ है कि शुरू में सर्वसाधारण ने अपनी शक्ति सब राजा को दे दी थी जिसने कुछ नियम आदि बना कर सब शक्ति को फिर से प्रजा के प्रतिनिधियों को दे दी है ।

इङ्गलैण्ड में पेट्रिआर्कल थियरी की द्वितीय जेम्स के भाग जाने से इति श्री हो गई । उस समय उससे राज्य छीनने के लिये एक नयी थीयरी निकाली गई जो Social contract शोशल कान्ट्रैक्ट के नाम से प्रसिद्ध है । यह कहा जाने लगा कि सर्व साधारण ने आपस में सलाह कर के अपने जान माल और स्वातंत्र की रक्षा का ठेका राजा को दे दिया है जिसका कर्तव्य

है कि वह उनके हित की बात करे। यदि राजा बिना किसी ठीक कारण के उनमें से किसी को कैद करता है या उनपर कर लगाता है तो वह ठीके के शर्तों के खिलाफ काम करता है और ऐसी अवस्था में उसे पदच्युत करना उचित है। इस प्रकार से द्वितीय जम्स पदच्युत हुआ और पार्लामेण्ट ने विलियम आफ आरेञ्ज को बुलाकर उन्हें राज्यसिंहासन दिया। इस कारण इङ्गलैण्ड का राजसी कुटुम्ब अपना पद पार्लामेण्ट के कानूनको सहायता से धारण करता है।

आज कल जो राष्ट्रों का भाव प्रचलित है वह इसी पेट्रिआर्कल थियरी से निकला है। हम लोग किसी राष्ट्र से यह मतलब समझते हैं कि बहुत से मनुष्य एक बड़े देश में रहते हैं और उन मनुष्यों पर एक मनुष्य का शासन रहता है जो कि राजा के नाम से पुकारा जाता है। और इसी राजा की आज्ञा राष्ट्र के हर एक मनुष्य को मान्य है। किन्तु राजा की आज्ञा से एक मनुष्य की आज्ञा का तात्पर्य नहीं है किन्तु बहुत से पुरुषों की सम्मिलित आज्ञा का और यह समझा जाता है कि यह आज्ञा राष्ट्र के पुरुष समुदाय के अधिकांश लोगों की सम्मति के अनुसार दी जाती है। यहां पर शोसल कान्ट्रेक्ट थियरी का प्रभाव साफ २ प्रगट होता है। वास्तव में आज दिन की प्रजातंत्र प्रणाली में एक राजा का शासन पुराने समय के एक राजा के शासन का बिलकुल उलटा है। पुराने समय में राजा आज्ञा देता था और सब प्रजा को वह मान्य थी अब सब शक्ति प्रजा में हैं नीचे से चढ़ कर तब ऊपर जाना पड़ता है और यही श्रेयस्कर भी है। हम लोगों ने अब यह देख लिया है कि (Monarchy) एक राजा के रहते भी प्रतिनिधि शासन प्रणाली की कैसे उत्पत्ति हुई अब आगे यह देखना है कि बिना राजा के प्रजातंत्र राज्य कैसे स्थापित हुए यह हम लोगों को अमेरिका आदि देशों के इतिहास से मालूम होगा। (क्रमशः)

स्वर्गवासी विद्वद्वर्य्य श्री पण्डित हरिदत्त जी शास्त्री का संक्षिप्त जीवन चरित्र।

[लेखक—पं० सोमेश्वर दत्त शुक्ल]

जन्म एवं मरण इस असार मृत्यु लोक का एक साधारण दैनिक नियम है। यह निश्चय है कि जिसने जन्म लिया है वह अवश्य एक न एक दिन इस संसार को छोड़ेगा। परन्तु जिस मनुष्य ने अपनी असाधारण प्रतिभा तथा अलौकिक निपुणता से देश के अधिकांश पर अपने विशाल अस्तित्व का प्रतिपादन करके, सब की दृष्टियों में अपनी देदीप्यमान प्रभा का प्रभाव उत्पन्न कर लिया हो, उस के विषय में इस साधारण एवं लौकिक घटना इस शारीरिक पर्यवसान सम्बन्धी अनिष्ट समाचार को सुन कर अवाक् ही रह जाना पड़ता है। यही नहीं बरन् अन्त में उस हृदय विदीर्णकारी वृत्त की सत्यता के प्रमाणित होते ही आश्चर्य्य शीघ्र ही हार्दिक दुःख तथा प्रचुर अश्रुपात को स्थान देता है। ठीक यही दशा हम लोगों की पूज्यपाद श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री (नैनीताल ज़िला के अन्तर्गत शिलौटी-भीम ताल निवासी) के घोर दुःखजनक परलोकवास से हुई। आज ज्योतिष का एक प्रकाशमान रत्न संसार से उठ गया, और एक कर्मनिष्ठ, शास्त्रीय विद्या निपुण तथा पवित्र महात्मा का अभाव होगया! परलोकवासी शास्त्री जी को कमाऊँ के रहने वाले विद्वान् तो उत्तमता के साथ जानते थे, और अपने देश में भी विद्वन्मण्डली में आप के पवित्र एवं विश्रुत नाम से बहुत कम लोग अपरिचित हैं। वही प्रख्यात नामा, स्वनामधन्य पं० हरिदत्तजी शास्त्री अब इस संसार में नहीं हैं और आप का पूर्ण परिचित जन मण्डल आप के चिर वियोगजन्य असह्य सन्ताप से दुःखित हो रहा है।

सम्वत् १६०० में-पण्डित हरिदत्तजी शास्त्री का जन्म कमाऊँ प्रदेशान्तर्गत शिलौटी "छखाता" ग्राम में हुआ था। आपके पिता, पितामह एवं प्रपितामह बड़े बड़े विद्वान होते चले आये हैं। कमाऊँ के चन्द राजाओं का यह वंश राज ज्योतिषी रहा। शास्त्री जी के पूज्य पिता का नाम पं० गङ्गादत्त जी था। बाल्यावस्था ही से पं० हरिदत्त जी प्रतिभाशाली और कुशाग्रबुद्धि थे। आरम्भ ही से आपके पितामह पं० नारायण कृष्ण जी ने आप को विद्याध्ययन कराया और अपने हाथों आप का उपनयन एवं विवाह संस्कार किया। अनन्तर आप के पिता प० गङ्गादत्त जी ने आप को ज्योतिष के बड़े बड़े ग्रन्थ पढ़ा कर इस शास्त्र में खूब निष्पन्न किया तथा तन्त्र शास्त्र का भी अभ्यास कराया। अल्मोड़ा "कन्नौन" निवासी पंडित लक्ष्मीदत्त जोशी ने पं० हरिदत्तजी को शिरोमणि सिद्धांत, गोलाध्याय, लीलावती इत्यादि पढ़ाया।

१८वें वर्ष ही से पं० हरिदत्त जी अपनी विद्या एवं बुद्धि का अद्भुत चमत्कार दिखाने लगे। आप में वैलक्षण्य एवं तेजस्विता के लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई देते थे। ज्योतिष विषयक प्रश्न तथा कुण्डली के चामत्कारिक योगों के बतलाने में आप अपने पिता जी की अपेक्षा भी अधिक नैपुण्य को प्रकट करने लगे। आप की स्मरण शक्ति बहुत प्रबल थी. यहां तक कि यदि किसी समय पहिले की देखी हुई कुण्डली को आप दश वर्ष बाद भी देखते तो झट से आप कह देते थे कि अमुक समय पर इतने वर्ष पूर्व हमने यह जन्म चक्र देखा था। धीरे २ अनुभव के बढ़ने के साथ आप ज्योतिष विद्या में इतने प्रवीण हो गये थे-आप में इतना असाधारण बल आ गया था कि प्रश्नों के आप अत्यन्त ही महाश्चर्यकारी उत्तर देते थे। लोग यह भी बहुधा कह बैठते थे कि जान पड़ता है कि पं० जी को यक्षिणी आदि सिद्ध हैं। परन्तु था यह कुछ भी नहीं, वही आपकी असाधारण निपुणता आपको चमत्कार उत्पन्न करने में समर्थ करती थी एक समय बरेली के प्रसिद्ध रईस राय साहब पीतम राय जी ने अपने किसी बीमार प्रिय जन के बारे में प्रश्न पूँछा कि रोगी कब अच्छा हो जायगा। पं० हरिदत्त जी के विचार में आया और वही कहना पड़ा कि आज से १५वें दिन उसका शरीरपात हो जायगा। राय साहब ने और २०, २५ पण्डितों की सम्मति से आरोग्य लाभ के लिये शतचण्डी का प्रारम्भ किया। पहिले तो रोगी का चित्त अच्छा होने लगा, परन्तु ठीक १५वें दिन उसे ज़ोर की मुर्छा आई और ४ बजे वास्तव में उसके प्राण छूट गये। इस अद्भुत विचार का हाल बरेली के अनेक बड़े बूढ़े लोग जानते हैं। इसी तरह की सैकड़ों आश्चर्यजनक बातें आप अनायास बतलाया करते थे।

२४वर्ष की अवस्था में हरिद्वार में महाराजा बहादुर काश्मीर से आप मिले, आप की विलक्षण प्रतिभा से महाराजा साहब अत्यन्त मुग्ध हुए। भूतपूर्व टिहरी नरेश महाराजा प्रतापशाह बहादुर इसी तरह आप से अत्याधिक प्रसन्न हुए। वर्तमान टिहरी नरेश महाराजा कीर्त्तिशाह बहादुर पण्डित हरिदत्त जी शास्त्री की बड़ी प्रतिष्ठा करते थे और सदा सत्कार करते रहे। स्वर्गवासी महाराजा प्रतापनारायणसिंह अयोध्या नरेश एवं अवध प्रान्त के अनेक बहुत बड़े बड़े तअल्लुक़दार आप को बड़े मान की दृष्टि से देखते थे, और आपकी चमत्कारजनक ज्योतिष विचार सम्बन्धी प्रवीणता पर बहुत मोहित थे। ताजपुर हल्दौर के राजा आप में बहुत श्रद्धा करते थे-पहिले ही से यहां पर गुरुवत् आप माने जाते थे। यह कुल परम्परा से काशीपुर राज (कमाऊँ) द्वारा सम्मानित रहा है। अब भी महाराज काशीपुर-शास्त्री जी की अत्यन्त अधिक प्रतिष्ठा करते रहे हैं। इसी तरह समीपवर्ती समस्त राजमण्डल, अल्मोड़े के राजा एवं बरेली के अनेकानेक बड़े बड़े प्रसिद्ध लोग आप

में बड़ी भक्ति रखते थे और आपमें दृढ़ विश्वास करते थे। यही नहीं कि केवल हिन्दू महानुभावों ने ही आपका सम्मान किया हो, रियासत रामपुर के भूतपूर्व नव्वाब एवं नव्वाब छतारी प्रभृति अनेक मुसलमान महान् पुरुष तथा बड़े बड़े अफ़सर और बहुत से सुशिक्षित सज्जन लोग आपकी प्रतिष्ठा अपने हृदय से करते थे और सब तरह आप का सम्मान करते थे। आज भी सैकड़ों पूर्ण विद्या सम्पन्न एवं बड़े बड़े ओहदेदार आपके दृढ़ शिष्यों में परिगणित हैं। पं० हरिदत्त जी ने अपने ज्योतिष शास्त्र नैपुण्य से कितने ही जैनो, आर्य समाजी एवं कट्टर नास्तिकों का भी सनातनधर्मानुयायी बनाया।

केवल कमाऊं ही नहीं, बरन् युक्तप्रदेश भर में पं० हरिदत्त जी शास्त्री के समान "फलित ज्योतिष" का गम्भीर व प्रबल ज्ञाता शायद ही कोई दूसरा हुआ हो। आप इस विषय में-फलित ज्योतिष में प्रायः अद्वितीय थे। ज्योतिष विषय की अनेक व्यवस्थाएँ तथा कुण्डली काशी के पण्डितों को दिखा कर आप के पास लोग भेजते थे। मूक प्रश्नों के बतलाने में आप के समान विरले ही कोई विद्वान होगा। एक पुरुष मात्र की कुण्डली देख कर समस्त कुटुम्बी व सम्बन्धियों का हाल कहने एवं उसीसे सारे जीवन की भूत और भविष्य घटनाओं के वर्णन करने की अद्भुत शक्ति आप ही में थी। मृत पुरुषों की कुण्डली देख के आप तुरन्त कह देते थे कि यह पुरुष अमुक वर्ष मर गया, इसका जन्मचक्र हमारे पास किस प्रयोजनसे लाए हो? सभी भाँति के विचार आप स्पष्ट स्पष्ट अक्षरों में निश्चय के साथ बतला दिया करते थे।

उधर विद्या का तो असाधारण बल आप में वर्तमान ही था, इधर उपासना एवं सदाचार की विलक्षण शक्ति आप में पूर्णरूप से विद्यमान थी। आप बड़े सदाचारी, धर्मनिष्ठ, कर्मनिष्ठ तथा सच्चे भगवदुपासक थे। आप प्रायः डेढ़ पहर प्रति दिन भगवदुपासना में व्यतीत करते थे। रात्रि में भी ८ बजे से प्रायः १२।१ बजे तक आप विविध अनुष्ठान तथा पूजा पाठ किया करते थे। गायत्री, सावित्री और सरस्वती के सवा सवा लक्ष के पुरश्चरण आपने १८ वर्ष की अवस्था से मरण पर्य्यन्त किए। नवरात्रियों में दुर्गापूजा तथा व्रत आप पूरी भक्ति एवं बड़े विधान से किया करते थे। आप का धर्मनिष्ठ एवं पवित्र तथा विशाल शरीर ब्रह्मतेज से देदीप्यमान दीख पड़ता था।

आप बहुत ही सुशील एवं सीधेसादे स्वभाव के पुरुष थे। स्वप्न में भी अपनी प्रतिष्ठा का अभिमान आप को नहीं होता था। बड़ी प्रीति के साथ आप छोटे व बड़े सभी से मिष्ट भाषण करते थे। आप को क्रोध आते देखा ही नहीं गया, हार्दिक प्रसन्नता सूचक आह्लादकारी मुस्कान से आप का मुख कमल सदा प्रफुल्लित रहता था। एक दरिद्र किसान तक से भी आप बड़े आदर व स्नेह से वार्तालाप करते थे। बिना किसी स्वार्थ के आपने ग़रीबों को चिकित्सा बहुत कुछ की और बिना मूल्य सैकड़ों रुपयों की औषधें आपने बांटीं। उस अलौकिक ज्योतिष शास्त्र के परिज्ञान के साथ साथ आप में वैद्यक शास्त्र के भी गुणों का वर्तमान होना वास्तव में सोने में सुगन्ध था। आप के घर ही पर बड़े बड़े शिक्षित तथा प्रतिष्ठित लोगों को भीड़ लगी रहा करती थी।

सम्वत् १९३५ में पं० हरिदत्त जी को पितृ वियोग का असह्य दुःख उठाना पड़ा। इसी वर्ष आप के द्वितीय पुत्र पं० मुकुन्दराम जी का जन्म हुआ। सम्वत् १९४० में तृतीय पुत्र पं० रामदत्त जी का जन्म हुआ। जन्म भर में पण्डित जी को अपने ज्येष्ठपुत्र श्रीकृपालुदत्त जी के अपने सामने ही कैलाश वास का महा शोक देखना पड़ा। यद्यपि आपकी अवस्था ६७ वर्ष की थी, तथापि आपका शरीर हृष्ट पुष्ट एवं नीरोग था, आप की दृष्टि वैसी ही शक्ति सम्पन्न थी, आप को चश्मे की बिल्कुल जरूरत नहीं पड़ती थी। इधर

दो वर्ष से आपको एक प्रकार का मूर्छा रोग हो गया था। समय समय पर इस का दौरा हुआ करता था, इस के ही कारण कुछ मानसिक दौर्बल्य आप में आने लगा था, शिर में कभी कभी चक्कर सा आने लगता था। बहुत कुछ औषधियाँ की गईं, परन्तु सब निष्फल हुईं। दैव की इच्छा बड़ी प्रबल है। गत माघ शुक्ल ८ को आप पर मूर्छा का एक प्रबल आक्रमण हुआ। इस से सप्ताह पर्य्यन्त आप अचेत रहे। सात दिन निरशन व्रत करके, गायत्री का जप करते एवं भगवद्गीता का पाठ श्रवण करते हुए, माघ शुक्ल १४ सं० १९६७ को आप अपना पञ्चभौतिक शरीर छोड़ कर परम धाम को पधारे। आपकी मृत्यु के साथ ज्योतिषशास्त्र का एक वृहत् एवं देदीप्यमान् नक्षत्र अस्त हो गया, तन्त्र शास्त्र एक अपने निपुण पुरुष से वंचित हो गया!! भारतवर्ष का एक प्रबल विद्वान्—एक जगमगाता हुआ रत्न हम लोगों के हाथ से छिन गया!!! आज कमाऊँ प्रदेश के हज़ारों और भारतवर्ष के अनेक ज्योतिष प्रेमी आप के असह्य वियोग से अश्रुपात करते हुए, विह्वल हो रहे हैं। भगवान् आप की पवित्र आत्मा को शान्ति एवं अक्षय सुख दे।

पं० हरिदत्त जी अपने पीछे ४ भाई, दो पुत्र और एक पौत्र छोड़ गए हैं। हर्ष का विषय है कि आप के छोटे पुत्र पं० रामदत्त जी ज्योतिर्विद अपनी कुल परम्परा पर पूर्णतया स्थित हैं। आप अत्यन्त कर्मनिष्ठ, ज्योतिषशास्त्र में निपुण और स्वभाव इत्यादि में ठीक अपने पिता जी के समान हैं, आप कुछ काल बाद ही बहुत उन्नत होने के लक्षण दिखा रहे हैं।
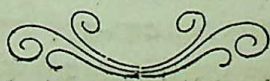
अनोखा आत्मत्याग।

[लेखक-श्रीयुत चन्द्रलाल गुप्त]

धूप बड़े कड़ाके की फैली हुई थी। स्वच्छ निर्मल आकाश में बादल का एक टुकड़ा भी नहीं था। प्रभात की भीनी २ समीर बह रही थी। घाम के तान से बन सहसा चमक उठा था और सहस्रों कुटकियां और मच्छरों के कारण मेरे हाथ और मुंह में रत्ती भर भी जगह नहीं थी समीप ही वे मेरे कुत्ते के ऊपर इतनी बैठीं थीं कि उसका काला रंग भूरा दिखलाई पड़ता था।

रामरे! इन दुखदाई जीवों के बीच में कहां आ पड़ा हूं। मेरे बेचैन हृदय से बार २ यही शब्द निकलते थे, उकताये हुये व्यथित मन में बार २ यही तरङ्ग उठती थी कि यहां से भाग चलो। शिकार के झोले को गले डाल औ बन्दूक को नाज का कांधे पर रख अपने प्यारे कुत्ते को सीटी देने ही को था कि मारे लज्जा के मेरी गर्दन झुक गई। हा! मैं इतना निर्बल हो गया हूं! क्या मेरी विलास प्रिय आत्मा पलंगो और आराम कुरसियों में ही चैन पाये गी? क्या सर्व अलङ्कार भूषित नवयौवनायें ही मेरे आनन्द का द्वार होंगी? क्या सुन्दर सुसज्जित कामिनियों के मधुर गान और बांकी चितवन ही मेरे कुम्हलाये हृदय को प्रफुल्लित करेंगी? आनन्द, आनन्द! प्यारे आनन्द! क्या तुम भी सीमा बद्ध हो? क्या तुम भी निश्चित स्थान में निश्चित वस्तुओं द्वारा प्राप्त होते हो,? क्या दिन भर का थका किसान अपनी खेत की भीत में पड़ा आनन्द नहीं पाता? क्या कोसों यात्रा करने वाला बटोही वृक्ष के नीचे पड़ा आनन्द की गोद में नहीं सोता है? क्या इन को कुटकियां नहीं सतातीं? कल ही इसी स्थान पर हरिन कुटकियों और मच्छड़ों से ढका हुआ कितने आनन्द प्रमोद से प्राकृतिक सौन्दर्य्य को सराहता था। यही आनन्द उस

सर्वव्यापी सर्व देशी का एक विशेष गुण है तो उसमें देश काल का विकार क्यों हो ? । मैंने दृढ़ संकल्प किया कि 'चन्द्र टरे सूरज टरे टरे जगत विस्तार' मैं तो उस सर्वानन्द की आनन्द छवि के दर्शन यहीं करूंगा। मैंने कुटकियों को काटने दिया, मच्छरों के डंकों की परवाह नहीं की, कांटों और कंकरों को अपनी परों की पलँग समझ कर उन्हीं झाड़ियों को अपनी मसहरी मान लिया और उसी आनन्द ध्वनि की ओर कान लगाये पड़ा रहा। आश्चर्य की बात दोपहर के समीप हो यह दुःखावस्था मुझको प्यारी विदित होने लगी। मेरी खुशी का वारापार न था मुझे मालूम होने लगा कि यदि मैं इन मच्छरों और कुटकियों से घिरा न होता यदि इनकी प्यारी २ सुन्दर गोल कतारें मेरे सन्मुख न नृत्य करती होतीं तो बन की मनमोहनी छटा का मैं रस पान न कर सकता और इसके वास्तविक रूप के सौंदर्य्य को न देख पाता।

जो अरण्य वन पहिले उदास और भयावना दिखलाई देता था प्रिय बनविहारी पतंगो! तुमने उसके अदृश्य प्राकृतिक रूप को दिखला कर मुझे मोहित कर दिया है तुम्हारा खेल खिलवाड़ जो पहिले दुख रूप होकर मुझको उकताता था, तुम्हारा मधुर मनोहर नृत्य गान जो पहिले मेरे कान खाये डालता था, अब मेरे हृदय कमल को स्फुटित करता है। हाय मैं कैसा अधम अविवेकी था जो प्राकृतिक सौंदर्य्य से विमुख हो कृत्रिम विलास को सच्चा सुख समझे हुए था।

सूर्य्य ठीक मेरे सिरके उपर दमक रहा था। उसकी तीक्ष्ण उत्तेजक किरण पल्लवों और लताओं से होकर मुझ में नये बल और नये जीवन को उत्पन्न करती थीं मेरी शिकार की झोली उस चेतन प्रकाश में मानो चकनाचूर थी बन्दूक एक किनारे पड़ी मानो मुझे देख खिलखिला रही थी, समीप ही मेरे सन्मुख सर्वाङ्ग उज्ज्वल हिमाञ्चल पर्वत की अचल श्रेणी कभी चमकती कभी दमकती थी कभी मेघों के महीन अस्तर से सर निकाल कर अपनी अटल छवि और अविनाश झलक से स्थिरता और पवित्रता की महानता को मुझ में हृदयङ्गम करती थी। कभी 'परत भानु नव किरन प्रात सुवरन सम दमकत, और कभी उसके ऊंचे उज्वल शिखर शीश महल की भांति सूर्य्य की एक २ किरन को अपने अञ्चल में सौ २ बना कर फेंकते दिखाई देते थे, उस भारत गिरि देव की स्वेत अचल मूर्ति मुझ को भस्म रमाये समाधिस्थ तपस्वी की भांति भगवत भजन करते दिखलाई देती थी। विशाल शिव समान रूप देख कर मेरे मोदयुत हृदय से यही निकलता था 'नमोस्तुते गौरीशङ्कर प्रभु तुमही हिन्द के रक्षक हो'। हरे २ नीले मनोहर शिखरों के ऊपर नन्दा आदि शिखरों की प्यारी २ चोटियां भारत के विशाल भाल पर त्रिपुंड के समान त्रिगुण त्रिदेव त्रिजग की झांकी दिखलाती भारत की लज्जा शीलता और पवित्रता के स्वेत मुकुट को पहिने हुए थी।

समीप ही कल जहाँ एक मृग पड़ा मौजें मार रहा था मैं भी वहीं खसक गया और उस घनी झाड़ी में चित्त होकर लेट गया। मैंने अपने चारों ओर पत्तों की गहरी हरे रङ्ग की दीवारें देखी, मृगकुटी मृगों के पग चिन्ह उनके पगों से खुर्ची हुवी धर्ती, कचरी हुवी घास कहीं २ पर टूटी लताओं का समा, मेरी आखों के सामने बंधा हुवा था। इस अनुपम दृश्य को देख कर अनायास ही मेरे मन में असीम आनन्द और प्रेम की तरङ्ग उठी और अपनी वाल अवस्था की नाईं मैं उनको देख कर गद्गद हो गया।

मेरे विकसित मन में सहसा यह विचार उठने लगे। मैं रसिक लाल आखेट प्रेमी, एक रेणु, समस्त संसार से प्रथक-यहाँ पर पड़ा हुवा हूं। ईश्वर जाने क्या ? यह वही स्थान है जहाँ पर एक बूढ़ा गिटकल मृग रहता है, जिसने कभी भी मनुष्य की सूरत भी नहीं देखी, इस

कार जहाँ आज तक कोई मनुष्य न आया ? न उसने आने का विचार ही किया। वहाँ मैं बैठा हुआ हूं। मेरे आस पास वृद्ध और युवा वृक्ष उगे हुए हैं। बनैली लतायें उन में लिपटी हुई आलिङ्गन करती दिखाई पड़ती हैं। मेरे चारों ओर कबूतरों को गोल फरफराती उड़ रही हैं। ये मेरी झोली में पड़े अपने मृत भार्य्या का अन्तिम दर्शन करने तो नहीं आये ? कदाचित् सियारों ने इसकी महक को पा लिया है और मोहवश ये दुम दबकाये मेरे दूसरी ओर बैठे हैं। मेरे निकट पत्तों में उड़ती कुटकियाँ हवा में चक्कर काटती और भिनभिनाती हैं। एक दो तीन चार सैकड़ों हजारों लाखों प्रत्येक किसी न किसी विशेष मतलब से भिन भिनाती हैं। हर एक उन में से एक रसिक लाल है-एक रेणू संसार में उतनी ही प्रथक है जितना कि मैं, रसिक लाल। मैं भली प्रकार समझने लगा कि-कुटकियाँ क्या सोचतीं और भिनभिनातीं थीं वे गाती थीं 'बच्चों इधर आवो यहां तुम्हारे लिये अच्छा भोजन है। अब मुझे भली प्रकार विदित होने लगा कि मैं एक धनी मानी रईस का लड़का नहीं हूं, समाज में भावनीय वस्तु नहीं हूं, इस अमीर का भानजा अथवा उस सरदार का भतीजा नहीं हूं हूं तो केवल एक पतंग इन अन्य पतंगों को भाँति अथवा कबूतरों या मृगों की भाँति, एक मृग वा कबूतर हूं जो इस अरण्य बन में बसते हैं। इन ही की भाँति मेरा जीवन भी स्वार्थमय है इन ही की भाँति मरूंगा हाय !

मैंने सोचा कि फिर भी तो मुझे जीवन व्यतीत करना है, आनन्द से सुखी रहना है, क्योंकि मेरी एक ही अभिलाषा है-आनन्द रस पान, मुझे जीवन व्यतीत करना है किसी प्रकार क्यों न हो,-मुझे सुखी होना है तब मैं किस प्रकार सुखी हो सकता हूं? किस प्रकार मधुर आनन्द रस का पान कर सकता हूं ?। मैं क्यों कर अब सुखी नहीं रहा। सांसारिक सुख सम्पत्ति के होते हुये मैं क्यों निराश होता गया? क्यों कर ऐश्वर्यवान भाग्यवान अभी समृद्धिवान होने पर भी मेरी आत्मा शान्ति २ ही पुकारा करती थी ? विचारता २ मैं अपने व्यतीत जीवन का स्मरण करने लगा। ज्यों २ मैंने अपने दैनिक जीवन पर दृष्टि की मैं अपने आप को धुतकारता था। पग २ पर मुझको स्वार्थ के ही धब्बे दिखलाई पड़ते थे। मेरा माता से प्रेम, पिता की भक्ति, भार्य्या से स्नेह, सब के सब स्वार्थ से रङ्गे प्रतीत होते थे। यही नहीं वरन जिन कार्यों में लोग मुझ को दानी, उदार, परोपकारी, निस्स्वार्थ और निष्काम कहते थे, मैंने इनकी डोरी का अन्तिम भाग भी स्वार्थ की रस्सी में गँठित पाया। मैं प्रश्न करता था कि मैं सुखी कैसे बन सकता हूं ? मेरा व्यतीत जीवन का लक्ष्य सर्वदा किस ओर रहा है ? मैं अपने वचन पूरा करने के लिये किस प्रकार तिल के ऊपर राई रखता रहा हूं। 'यह मेरा वह मेरा' करने के लिये मैं कितना पागल रहा। कितनी आत्माओं को मैंने अपनी अधम आत्मा के सुख के लिये दुखी किया है। राम जाने कितने जीवों का मैंने अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिये गला घोंटा है। मैंने अपने हृदय में हाँथ धर के पूछा "मेरे इन तमाम कर्मों का क्या प्रतिफल हुआ है-मेरे दिल से एक आवाज़ उठी। हाय ! हाय ! मेरी टपटपाती आँखों ने उत्तर दिया "लज्जा और अशान्ति" क्या इन्हीं के द्वारा सुख की प्राप्ति होगी ?

यही सोचते २ मेरा जी भर आया-मेरे चारों ओर अन्धकार छा गया। समस्त संसार मुझ को भयावना प्रतीत होने लगा मेरे अशान्ति हृदय में बड़ी २ चोटें पड़ने लगीं मैंने पृथ्वी में पग धरने को भी-स्थान न पाया फूट २ कर रोने लगा-अपने विकल हृदय को एक हाथ से थाम कर मैंने प्रभु के चरणों का ध्यान किया। मेरे अस्थिर ओठों से केवल 'करुणामय दया करो' के शब्द के अतिरिक्त अभी कुछ भी नहीं

निकलता था अरण्य की शून्यता और भी बढ़ गई। मेरी आँखें लगने लगीं। इतने में मेरे कान एक मधुर वीणा की धुनि से चौंक उठे गीत का पद था (जो पुरुष सब कामनाओं को छोड़ता है और तृष्णा अहङ्कार रहित स्वार्थत्यागी हो लोक में विचरता है वह शान्ति को प्राप्त करता है*) क्या कहा। 'स्वार्थ को पद दलित कर दूसरे के लिये रहना सीखो सच्चा सुख इसी में है' मेरा मन मारे खुशी के फड़क उठा। एक नई ज्योति का मुझ में सञ्चार हुआ, एकाएक मेरे मुह से निकल पड़ाः–'प्यारे कृष्ण. तुम्हारी अनोखी वीणा ने मुझ को अनोखा आत्मत्याग सिखाया' तुम धन्य हो तुम्हारी वेद-विद्या धन्य है मैंने सोचा सत्यही मनुष्य में आनन्द प्राप्ति की लालसा कृत्रिम नहीं स्वाभाविक है। इस लिये यह क्षणभंगुर नहीं अविनाशी होगी। वह इसको पूर्त्ति स्वार्थ अथवा अहङ्कार से करता है अर्थात् वह अपनी शक्तियों को धन दौलत, मान मर्य्यादा शारीरिक सुखों वा कृत्रिम प्रेम की प्राप्ति के लिये व्यर्थ गवाता है। कई ऐसी वाधायें आ पड़ती हैं जिनसे परमानन्द की प्राप्ति, कठिन ही नहीं दुष्कर हो जाती है। वास्तव में यह वासना न्यायविरुद्ध है परन्तु परमानन्द प्राप्ति की लालसा कभी भी न्याय विरुद्ध नहीं है। वे कौन सी लालसायें हैं जो स्वतः विना किसी बाहरी सहायता के पूरित होती हैं? मेरे प्रफुल्लित मन ने बड़े वेग से उत्तर दिया प्रेम और आत्म त्याग। इस नयी ज्योति की सत्ता ने मेरे–आह्लादित मन में एक नये बल का सञ्चार किया। मैंने अपनी बन्दूक को दूर फैंक झोली को समीप ही झाड़ी में पटक दिया और इस विचार में आनन्दित हो कि यहाँ मुझ को अपने लिये कुछ आवश्यकता नहीं तो दूसरों की सेवा में अपना जीवन क्यों न अर्पण कर दूं? मैंने पुनः संसार में प्रवेश किया।

*विहायकामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममोनिरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥ गीता,

भक्ति।

आज पाठकों के सामने मैं एक छोटी सी नई कहानी वर्णन करना चाहता हूं। वास्तव में अगर भक्ति कोई अनुपम वस्तु है तो वह कोई ऐसी चीज़ होगी जिसका कि नीचे वर्णन है। भक्ति के विषय में बहुत कुछ लेख और उपदेश मिलेंगे परन्तु मेरी समझ में भक्ति की महिमा और गौरव जैसा निम्न दृष्टान्त में दर्शाया गया है विरलय ही कहीं मिलेगा। भक्ति चाहे भगवान् की हो चाहे देश की या किसी अन्य वस्तु की इसका स्वरूप और लक्षण एक सा ही है। भजनीय वस्तु की अनन्य सेवा इसका सार है। भगवद्भक्ति के उदाहरण से पुराणादि धर्म्म ग्रन्थ परिपूर्ण हैं। देशभक्ति का एक अपूर्व दृष्टान्त पाठकों के विनोदनार्थ नीचे लिखा जाता है।

एक समय हालेण्ड नगर के यूटेरक्ट (Ute-recht) विश्वविद्यालय में जगद्विख्यात महोपाध्याय (Professor) रहते थे। उनका समय अत्यन्त नियमित था यहां तक कि नित्य जब ग्यारह बजने को ५ मिनट शेष रह जाते थे तब मकान से वह निकलते थे और ठीक ग्यारह बजे विद्यालय के बड़े कमरे में प्रविष्ट होकर अपना लेक्चर आरम्भ कर देते थे। यह अपने समय के इतने पाबन्द थे कि लोग इनको जाते आते देख कर समय का ठीक अन्दाज़ा लगाया करते थे और प्रायः पछताया करते थे कि रविवार को विद्यालय के बन्द रहने के कारण वे ऐसा न कर सकते थे।

लेक्चर हाल में वह पूरे एक घण्टे तक व्याख्यान देते थे और बारह बजते २ अपने कथन को समाप्त कर घर को लौट जाते थे। शेष उनका समय मकान के भीतर ही व्यतीत होता था। विद्या-व्यसन को छुड़ा कर उन्हें और कुछ नहीं भाता था–न तो वह भलीभाँति छात्रों

को ही पहचानते थे और न किसी अन्य मनुष्य से उनका किसी प्रकार का सम्बन्ध था। शायद उनको यह भी नहीं मालूम रहता था कि उनकी कक्षा में कितने विद्यार्थी हैं।

(क्रमशः)

भारत में प्राच्य और पाश्चात्य।

[माननीय मि० गोखले]

व्यवस्थापकों का कहना है कि सर्व-जातीय-महासभा का उद्देश्य पूर्व और पश्चिम देशीय रंगीन और गोरे मनुष्यों के संबंध पर आधुनिक ज्ञान और विचारों की दृष्टि में विवाद है जिससे उनमें मित्र-भाव और सहकारिता की वृद्धि हो। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ के साथ ही साथ पूर्व और पश्चिम देशीयों के सम्बन्ध ने नया रूप धारण किया है और मेरी राय में यह वर्तमान समय की परिवर्तित प्रवृत्ति के अनुकूल ही है कि पाश्चात्यों ने एक महासभा करने का विचार किया जिसमें सब जातियों के प्रतिनिधियों की सभ्यता की नवीन प्रथा के अनुसार एक दूसरे के साथ समागम हो और, सब मिलकर हितकर स्पर्धा में पारस्परिक विश्वास और भक्ति के कारण की उन्नति करें। पाश्चात्यों की यह इच्छा पूर्व देशीयों के लिये स्वाभाविक अनुराग और महत्व का विषय है। परम्परा से यह लोक-मत चला आता है कि प्राच्य किसी बात का विरोध नहीं करते और परिवर्तन के बिलकुल प्रतिकूल हैं। वे पाश्चात्य सेनाओं को आश्चर्य से देखते हैं जब कोई उत्पात होता है तब वे नम्र हो जाते हैं और उसके शांत होने पर फिर वे अपने विचार-सागर में डुबकी लगाने लगते हैं। यह दीखता है कि इस लोक-मत ने पूर्वीय देशों में पाश्चात्य जातियों के अनिवार्य आक्रमण को प्राच्यों के स्वत्व और मनो-भाव की कुछ परवा न करके कई शताब्दियों तक उत्तेजित ही नहीं बल्कि निमंत्रित किया! मगर ऐसा अतिक्रम सदा न चल सका और भिन्न २ पूर्वीय देशों में जातीय गौरव के भाव का निरन्तर उदय हुआ जिससे प्राच्यों के विरुद्ध-भाव में इतनी शक्ति आ गई है कि अब प्राचीन प्रणाली पर इस अतिक्रम का जारी रहना बिलकुल असम्भव नहीं तो अत्यन्त दुर्घट अवश्य हो गया है। रूस पर जापान का विजय, व्यवस्थानुसार शासित देशों में टर्की का प्रवेश, चीन की जागृति, भारतवर्ष, पर्शिया और ईजिप्ट में जातीय भाव का प्रसार, ये सब इस बात की आवश्यकता को भली भांति प्रदर्शित करते हैं कि पाश्चात्य प्राच्यों के विषय में अपने मत की फिर परीक्षा करें और अपने उन प्रमाणों की भी फिर देख भाल करें जिनके अनुसार पहिले उन्हों ने पूर्व-देशीयों के साथ अपने संबंध की व्यवस्था करने का प्रबंध किया था। जितना अब तक संभव था उससे अधिक समान-भाव पर प्राच्य और पाश्चात्य को अब मिलना चाहिये और ऐसे समागम का श्रीगणेश करने से सर्व-जातीय-महासभा यथार्थ में बड़े महत्व की है।

प्राच्यों और पाश्चात्यों में कैसे अधिक मित्र-भाव और सहकारिता दृढ़ हो यह समस्या प्रत्येक स्थान में बड़ी कठिन है पर यह कहीं भी ऐसी कठिन और सूक्ष्म नहीं है जैसी कि भारतवर्ष में। अन्य देशों में तो पाश्चात्यों का प्राच्यों के साथ संपर्क विशेष कर केवल ऊपरी है पर भारतवर्ष में पाश्चात्यता प्राच्यों के रग २ में घुस गई है। लगभग सौ वर्ष से भारतवर्ष इङ्गलैंड के शासन में है और देश का व्यावसायिक शासन भी राजकीय से कम नहीं हुआ है इस असाधारण संबंध के होने से इस समस्या में बड़ी पेचीदा बातें उठती हैं इस में जो एक दूसरे के हित में विरोध है उसे दूर करना आवश्यक है बिना इसके किये महासभा के उद्देश्य सफल न होंगे।

यह सब स्वीकार करते हैं कि भारत वर्ष में अंग्रेज और भारतवर्षीयों का संबंध पिछले २५ वर्षों में बहुत संकुचित हो गया है। पहिले भारतवर्ष में अंग्रेजों को असामान्य लाभ थे। भारतवर्ष के असाधारण विकाश के कारण अंग्रेजी राज्य की स्थिति को देश के अधिक भाग के निवासियों ने उत्साह से नहीं तो संतोष-भाव से यथार्थ में माना था। यह सत्य है कि अंग्रेजों ने भारतवर्ष को उस अर्थ में कभी नहीं जीता जिस में कि "जीतना" शब्द साधारण रीति से व्यवहृत होता है। वे इस देश में आक्रामकों की भांति नहीं आए, न उन्होंने कोई ऐसी लड़ाइयां लड़ीं जिन की सेना में उन्हीं के मनुष्य रहे हों। अठारहवीं शताब्दी के पिछले और उन्नीसवीं के पहिले आधे में जो भारतवर्ष की दशा थी उसमें उन्होंने अपनी व्यवस्था करने की अनुपम शक्ति, अपनी अनुपम देश-भक्ति और अपनी शासन करने की अनुपम सामर्थ्य का उपयोग किया था जिस का परिणाम उनके राज्य की व्यवस्था और एकत्रीकरण हुआ जो वर्तमान समय का वास्तव में एक आश्चर्य-जनक कार्य है। कुछ मनुष्यों को यह जान आश्चर्य होगा किन्तु नया राज्य अधिकांश मनुष्यों ने स्वीकार कर लिया क्योंकि इस से सनातन की अव्यवस्थित दशा से उनका पीछा छुट गया और उन लोगों को पहिले से अधिक लाभ हुए। इसका यह कारण था कि यद्यपि भारत वर्षीयों ने धर्म, दर्शन, साहित्य, विज्ञान और शिल्प का ऐसा उद्धार किया कि जिसे संसार दिन प्रतिदिन अधिक मानता जाता है और जिस का उन्हें सदा गर्व रहेगा परन्तु भारतवर्ष में जातीयता अथवा राष्ट्रीय स्वतंत्रता के विचार का विकास पाश्चात्य देशों की भांति नहीं था। जब तक राज्य का अधिकार भली भांति चलाया जाय और धार्मिक तथा सामाजिक जीवन में विघ्न न पड़े तब तक कोई राज्य करे इसकी उन्हें ज़रा भी परवा नहीं थी। यह अस्वीकार नहीं किया जा सक्ता कि बहुतसी बातों में नये शासकों के शासन की रीति उन स्वदेशी शक्तियों की अपेक्षा जो उन दिनों यहां अधिकार के लिये झगड़ा कर रही थीं उत्तम थी। इस भांति का लाभदायक आरंभ दूरदर्शी और बुद्धिमान् राजनीति विशारदों की उन प्रतिज्ञाओं से और भी उन्नत हुआ जो वे उन दिनों समय २ पर उस नीति के संबंध में करते थे जिसके अनुसार इस देश के कामों का निर्वाह किया जाने को था। उन्होंने कहा था कि भारतवर्ष उन के पास एक धरोहर है। शासन का उद्देश्य इङ्गलेंड का लाभ नहीं पर भारतवर्ष का नैतिक और सांपत्तिक हित होगा; देश में अंग्रेज कोई शासक जाति नहीं बनावेंगे; भारतवर्षीयों को अंग्रेजों के समान होने के लिये उन्नति करने में सहायता दी जायगी जिस से कि कुछ समय में उन में पाश्चात्य देशों की सर्वोत्तम रीति के अनुसार अपना शासन करने की शक्ति आजाय। देश के युवकों को उनके नवीन कर्तव्यों के योग्य बनाने के लिये संस्था स्थापित की गई जहां उन को पाश्चात्य शिक्षा दी जाने लगी और इस भांति पाश्चात्य विचारों से परिचित समुदाय से आशा की जाती थी कि वह एतद्देशीय मनुष्य और शासकों का मध्यस्थ हो कर अपनी हितकामना से शासकों की सहायता करेगा। विश्वविद्यालयों का स्थापन और श्रीमती राजराजेश्वरी विक्टोरिया के उदार घोषणापत्र ने जो भारतवर्ष के राजा और प्रजा को राष्ट्रविप्लव के अनन्तर सुनाया गया था, इस उदारनीति को सदा के लिये दृढ़ कर दिया।

पिछले २५ वर्षों से अंग्रेज और हिन्दुस्तानियों में, और विशेष कर हिन्दुस्तानियों के उस समुदाय में जिस पर पाश्चात्य शिक्षा ने अपना प्रभाव जमाया है, जो विराग होगया है उसे भली भाँति समझने के लिये ये बातें याद रखना आवश्यक है। संख्या में तो यह समुदाय अब तक सब लोक-संख्या का बहुत छोटा अंश है पर यही निस्संदेह देश का मस्तिष्क है जो उस

के लिये विचार करता है और लोक-मत का निर्णय करता है। बहुत वर्षों तक यह समुदाय भारतवर्ष में अंग्रेजों के कामों को ख़ूब पसंद करता था और उन के साथ इस का आदर, विश्वास और प्रेम का वर्ताव था। जिन्होंने पाश्चात्य शिक्षा पाई उन पर उसका पहला प्रभाव यह हुआ कि पाश्चात्य रीति से वस्तुओं को देखने की उन की प्रवृत्ति हुई जिस से पहिले उन्होंने अपनी शक्ति–प्राचीन सभ्यता–अपने सामाजिक सिद्धान्त और संस्था, अपने धार्मिक सिद्धांत अपने साहित्य, अपने विज्ञान, अपने शिल्प और वास्तव में अपने जीवन की समस्त भावना और साधन–की देख भाल में लगाई। इससे अपने ही समाज के साथ उन का बड़ा भारी प्रतिघात हुआ पर उसने ही उनका इस देश में अंग्रेजों की ओर और भी आकर्षण किया। वे अंग्रेजों को पाश्चात्य देशों के उन उदार विचारों का प्रचार करने के लिये धन्यवाद देते थे जिन्हें वे अपनी प्राचीन सभ्यता के दोष मिटाने और उत्तेजित करने में सब से अधिक उपयोगी समझते थे। एक बात में उन के चित्त में बिलकुल संदेह नहीं था। उनका पूर्ण विश्वास था कि जब तक उन के अधिकार में वे स्वतंत्र संस्थाएं न आजाएं कि जिनका विकास करना अंग्रेज जाति का गौरव है तब तक उनकी राष्ट्रीय पदवी को निरन्तर उन्नत करना अंगरेज़ों की निश्चित राजनीति है। जब यह देखा गया कि अंगरेज़ शासक जैसी आशा थी वैसी व्यवस्था की प्रणाली पर व्यवहार में चलने के लिये तैयार नहीं हैं और इस देश में अधिकांश अंगरेज़ राजकीय विषयों में भारतवर्षीयों की अत्यन्त न्याय-संगत अभिलाषाओं तक से भी सहानुभूति नहीं करते हैं तब यह विश्वास, जो कि एक समय बड़ा पक्का हो गया था, शनैः २ कम हो चला। पिछले २५ वर्षों में शासक जाति की जो नीति थी उस पर चलने की अनिच्छा के नये और साफ़ २ लक्षण दिखाई देने लगे। तब यथार्थ में भारतवर्षीय सुधारकों का विश्वास अंगरेज़ी राज्य के गुण और उद्देश्य में, जिनमें पहले ही संदेह हो चुका था, शिथिल हो चला। संदेह के बाद आश्चर्य, निराशा और क्रोध हुआ जिससे अंगरेज़ों के साथ अनिवार्य विरुद्ध-भाव का शीघ्र उदय हुआ। इसका प्रभाव ख़ासकर देश भर के युवकों पर हुआ। अब सब विषय नवीन दृष्टि से देखे जाने लगे। अङ्गरेज़ों के सम्पर्क से जो भारतवर्ष को लाभ हुए उन्हें धन्यवाद-पूर्वक स्वतंत्रता से स्वीकार करने के पुराने उत्साह के स्थान में तीक्ष्ण और दोषपूर्ण समालोचना की ओर प्रवृत्ति हुई जो अंगरेज़ों की हर एक बात में बिना विचारे प्रयुक्त की गई। जब भारतवर्ष में यह विकास हो रहा था तब सम्पूर्ण पूर्वीय देशों में बड़ी प्रबल शक्तियां ने नवीन जीवन का संचार किया जिसमें व्यवस्थापूर्वक शासन के अनुपम लाभ का उपभोग करने और जातीयता के गौरव का साधन करने की नई इच्छा के साथ ही साथ पूर्वीय देशों की विशेष शिक्षा और सभ्यता में नया गर्व, पाश्चात्य अतिक्रम और पाश्चात्य प्रभुत्व में नई अधीरता और प्राच्यों के भाग्य में नया विश्वास उत्पन्न हो गया। जब जापान ने रूस पर अपनी विजय से संसार को चकित कर दिया तब एशिया के अवशिष्ट भाग के साथ भारतवर्ष पर भी उन विचार की लहरों का प्रभाव हुआ और जो शक्तियां काम कर रहीं थीं उन्हें यथार्थ में बड़ी उत्तेजना मिली। सब विचार-शील मनुष्य मानने लगे कि देश में अङ्गरेज़ों के विरुद्ध भाव के निरन्तर उदय से शांति-पूर्ण उन्नति के मूल कारण को बड़ा धक्का पहुंचेगा इस समय अङ्गरेजों की राजनीतिज्ञता ने उनकी सहायता की, रिफार्म स्कीम के पास होने से बहुत कुछ शान्ति फैली और तनाव बहुत कुछ ढीला पड़ गया।

(असमाप्त)

संकुचित भानु ।

[लेखक—श्रीयुत पं० माधव शुक्ल ।]

उदित होत क्यों आज संकुचित होत दिवाकर।
हो तब क्या हतकान्ति शिथिल होगये तीच्णकर॥
अथवा कारण कहो शिथिल होने का क्या है।
हृदय तुम्हारे भी तो भय नहिं व्याप रहा है॥
रावण भी तो आज तुम्हारे है नहिं सन्मुख।
तब किस कारण भला छिपाते हो अपना मुख॥
वह तुम जो पद्मिन कलरव सुन जग जाते थे।
मुख धोने के हेतु सिंधु तट आ जाते थे॥
तप्तस्वर्ण सम जिस तव मुख का धोवन गिरकर।
कर देता था स्वच्छ स्वर्ण जलपूरित सागर॥
उस छन की वह छिपी छटा वृक्षों के अन्तर।
हिलने से जो पत्र जगमगाते कम्पित कर॥
अनुपम सुख की वह असीम छवि कहां गई अब।
जिसे देख मोहित होते कवि चित्रकार सब॥
सन्ध्योपासन से निवृत्त होते ही तव मुख।
हो जाता जो तेज पुंज सहारक तम दुख॥
नक्षत्रों की कौन चन्द्र भी जिसे देख कर।
लेता अपनी राह कान्ति हत लज्जित होकर॥
उदयकाल की ऐसी छवि जो हिय भाती थी।
जिसे देख लेखनी कविन की उठ जाती थी॥
जिस्को हित हो रहा हृदय मेरा लालायित।
रक्खोगे कब तलक हमें उस से अब वंचित॥
खिले नहीं सर कमल संकुचित अभी खड़े हैं।
पराधीन हो भंवर सुरस वस फंसे पड़े हैं॥
वीरसिंह भी जगे नहीं अब तक सोते हैं।
गीदड़ निजदल बांध अभय हो कर रोते हैं॥
कान्ति चन्द्रमा की यद्यपि हो गई क्षीण है।
तरों में भी रहा नहीं कोई प्रवीण है।
वहता है अनुकूल वायु आगम प्रभात सा।
तौ भी समुदय चिन्ह देखाता नहीं आप का॥
होता मन में कभी कभी यह भी अनुभव है।
सजल जलद में आप छिप गये हों सम्भव है॥
अस्त समय के भाव कभी मन में आते हैं।
अधि और वे व्यथा हृदय में उपजाते हैं॥
समुदित हो प्रतक्ष न जब तक होगा दर्शन।
यह विधि तब तक तर्क सिंधु में तैरेगा मन॥
तिस से इस संसार चित्र में प्राण दीजिये।
समुदय कर कर से कठिनाई दूर कीजिये॥

———

अम्बालिका

वा

तीज की साड़ी ।

(एक छोटी सी आख्यायिका ।)

[लेखक-पं० छबीलेलाल गोस्वामी ।]

नहीं, नहीं, मैं तो यह साड़ी कभी नहीं लूंगी। चौदह पन्द्रह वर्ष की अम्बालिका ने साड़ी धरती पर धरते धरते अपने पति नन्दकिशोर से कहा। इस पर आश्चर्य से नन्दकिशोर कहने लगे,:-

"क्यों, क्यों, इसमें क्या दोष है? जैसी साड़ी के लाने के लिये तुमने कहा था, यह तो ठीक वैसी ही है, फिर तुम लेने में आपत्ति क्यों कर रही हो?"

अम्बालिका,-"इसलिए कि मैं जैसी साड़ी चाहती थी, यह वैसी नहीं है।"

नन्दकिशोर,-"मैं तो समझता हूं कि ठीक वैसी है और तुम व्यर्थ के बहाने निकालती हो। अच्छा बताओ तो इसमें क्या दोष है?"

अम्बालिका,-"मैंने तो कह दिया था कि 'साड़ी यदि स्वदेशी न होगी तो मैं न लूंगी।' और यह साड़ी विदेशी है, इसलिये मैं इसके लेने में असमर्थ हूं।"

नन्दकिशोर,-"श्रीमती जी! यह साड़ी जापान की बनी हुई है, जरा आँख खोल कर इसकी मुहर को पढ़िये।"

अम्बालिका,-"श्रीमान् जी! जापान क्या आप के देश में है? आप जापान की वस्तु को क्या स्वदेशी समझते हैं?

नन्दकिशोर,-"निस्सन्देह, जापान हमारे देश में नहीं है, फिर भी आज कल स्वदेशी वस्तुओं में जापानी चीजें भी समझी जाती हैं और देशी चीजों की दूकानों पर जापानी माल भी खूब बिकता है।"

अम्बालिका,-"क्या इसी से जापानी चीजों को ले लेना चाहिये ?

नन्दकिशोर,-"तो इसमें क्षति ही क्या है ? जब सब लोग ले ही रहे हैं तो फिर यदि हम लोग भी लें तो हर्ज ही क्या है ?

अम्बालिका,-"इसका तो अर्थ यह होता है कि जब और लोग कुएँ में गिरें तो फिर हम लोग ही कुएँ में गिरने से क्यों बचें। क्यों ?

नन्दकिशोर,-"तुम्हारी बातों का अर्थ तो तुम्हीं समझो ! मैं इतना बड़ा पण्डित नहीं हूं कि जापान की चीजों का लेना और कुएँ में गिरना बराबर समझूं ।

अम्बालिका,-"अच्छा, मैं यह पूछती हूं कि जापानियों के भोजन करने से क्या हम लोगों के पेट भर जायँगे? जब इस देश में प्लेग चेतेगा तो क्या हम लोगों के बदले में जापानी यहाँ मरने आयँगे ? या यहाँ अकाल पड़ने पर जापान से गल्ले के ख़ैराती जहाज यहाँ अन्न देने के लिये भेजे जायँगे ?"

नन्दकिशोर,-"नहीं इनमें से एक बात भी होने की नहीं।"

अम्बालिका,-"तो फिर जापान की वस्तु को स्वदेशी समझना चाहिये या नहीं ?"

नन्दकिशोर,-"यह मैं कब कहता हूं कि जापान की वस्तु को स्वदेशी समझना चाहिये?"

अम्बालिका,-"तो फिर इस साड़ी को मैं क्यों कर ले सकती हूं ?"

नन्दकिशोर,-"आह, तुम समझीं नहीं। मेरा मतलब यह है कि यद्यपि जापानी वस्तु हमारे स्वदेश की बनी हुई नहीं है, फिर भी जापानी वस्तु को स्वदेशी सामान में स्थान देना ही चाहिये।"

अम्बालिका,-"क्यों ? किस लिए ?"

नन्दकिशोर,-"यों, इसलिये कि यदि जापान की वस्तु को हम लोग स्वदेशी समझेंगे, तो जापानी भी आशा है हम लोगों की बहुत कुछ सहायता करें।"

अम्बालिका,-"हाय रे, आशा ! तेरा सत्यानाश हो !! बारह सौ बरस से तू इन विचारों से चिमट रही है, भला अब तो इन्हें तू कुछ दिन के लिये छोड़ दे।"

नन्दकिशोर,-(जल्दी से) "क्यों जापान से क्या हित की आशा नहीं करना चाहिये ?"

अम्बालिका,-(हँस कर) "जिस जापान ने अपने पड़ोसी, निज धर्मावलम्बी और विपत्ति-ग्रस्त चीन और कोरिया पर रहम न किया, उस जापान से आपही के समान आशा-लुब्धक भरोसा रख सकते हैं।"

नन्दकिशोर,-(जरा सोच कर) "हां, तुम्हारी बातें कुछ कुछ ठीक जँचती हैं। किन्तु अभी कुछ दिन यदि जापानी वस्तु हम लोग लें तो कुछ हर्ज भी नहीं है, क्योंकि जब चाहेंगे, तब छोड़ देंगे।"

अम्बालिका,-"जब चाहेंगे, तब छोड़ नहीं सकेंगे। क्योंकि अभी तो स्वदेशी का बाजार हम लोगों के हाथ में है, पर शीघ्र ही यह जापानियों के हाथ में जाया चाहता है। इस लिए अभी से सावधान रहना चाहिए और भारत, ब्रह्मदेश एवं लङ्का के सामानों को ही स्वदेशी समझना चाहिए।"

नन्दकिशोर,-"और जो वस्तु न मिले उसके लिए क्या करना चाहिए ?"

अम्बालिका,-(हँस कर) इस समय कोई ऐसी आवश्यक वस्तु नहीं है जो स्वदेशी भी न मिलती हो, यह हो सकता है कि वह बहुत सुन्दर न हो।"

नन्दकिशोर,-(हँस कर) अच्छा मैंने तुमसे हार मानी पर यह तो कहो कि यह बात तुम ने किससे सुनी है ?"

अम्बालिका,-"बाबू जी ने फल भैया से देशी साड़ियां मँगवाईं थीं सो वह भी जापानी साड़ी उठा लाए थे। इस पर बाबू जी बड़े नाराज हुए और उन्होंने कुल साड़ियां वापस कर दीं। दो घंटे तक उन्होंने भय्या को समझाया और अंत में भय्या ने भी बाबू जी की बात मान ली।"

नन्दकिशोर-(हँस कर) "और आज से मैंने भी श्रीमती जी की बात मान ली है।"

इतना कह कर नन्दकिशोर साड़ी बदलने के लिए बाज़ार चले गये।

(२)

"लीजिए सरकार! आप की आज्ञानुसार यह ख़ास स्वदेशी साड़ी इस बार लाया हूं।" दालान में पैर धरते धरते नन्दकिशोर ने अम्बालिका से कहा।

अम्बालिका ने साड़ी नन्दकिशोर के हाथ से ले लिया और उसे भलीभाँति से देख कर अपने माथे पर धरते धरते कहा,—

"आओ जी, स्वदेशी साड़ी! ज़रा आज तो तुम्हें सिर पर धर ल। फिर कल तो 'तीज' है, कल तो तुम्हें मैं पहनूं हीं गी।

"वाह जी, बीवी जी! चेला तो तुमने अच्छा किया। अपने चेले से एकाध साड़ी मुझे भी दिलवा दोगी?" दालान में पैर रखते रखते अम्बालिका से उसकी भौजाई सावित्री कहने लगी।

अपनी भाभी को सामने देख कर अम्बालिका तो पीठ फेर कर बैठ गई पर नन्दकिशोर से न रहा गया और वह अपनी सरहज से कहने लगा,—

"आप वकील की बीबी हैं न! आपने खुद भी अपना दिमाग़ बिगाड़ लिया है और रही सही नन्द को भी आपने बकवादी बना डाला है।"

सावित्री,-अब के तुम जब बी० ए० की परीक्षा देकर प्रयाग से आने लगना तो अपनी पुस्तकों को त्रिवेणी में डालते आना, फिर मैं भी अपनी नन्द की बकवाद छुड़ा दूंगी।"

नन्दकिशोर,-"(हँस कर) आप नाराज क्यों होती हैं। मैं प्रस्ताव कर दूंगा कि इस बार औद्योगिक सभा में सभापति के आसन पर आप ही बठाई जायं।"

सावित्री,-देखो! मुझसे जादे चड़बड़ करोगे तो मैं तुम्हारे प्रिन्सपल को एक चिट्ठी लिख दूंगी।"

नन्दकिशोर.-"इससे मेरा क्या होगा?"

सावित्री,-"तुम कालिज से निकाल दिए जाओगे।"

नन्दकिशोर,-"(हँस कर) ओ हो! तो आप हमारे प्रिन्सपल से भी जान-पहिचान रखती हैं?"

सावित्री,-"क्यों नहीं! वह हमारी नन्द के सगे सुसर लगते हैं न!!!

इतना सुनते ही नन्दकिशोर तो वहां से भागा और सावित्री एवं अम्बालिका ठठा कर हँसने लगीं।

देशभक्त होरेशस।

[लेखक श्रीयुत पं० सत्यनारायण जी]

(गताङ्क से आगे)

उदधि ऊर्मिसी उठत विपुल पुल ओरहिं बाढ़े।
वीर केसरी जहां अभय चित तीनों ठाढ़े॥
अविकलअविचललखततिन्हैंनिजदिसि,गरवाई।
गिनि मन में अति तुच्छ शत्रु दल हँस्यो ठठाई॥
पुनि अथाह तिहिदलसों छुटि त्रय सूर सुहाये।
पड़ लगावत हयनु कुदावत आगे आये॥
निज २ हय सों कूदि खैंचि असि ढाल सँवारी।
सकरो पुल-पथ जीतन आये रिस उर धारी॥
द्राच्छावन संकुलित टिफर नम देस पहारी।
तहँसो आयो आपु भूप औनस बलधारी॥
अरु सीअस जिहि दास आठ सौ दुखके मारे।
काम करत खाननु में पियरे परे विचारे॥
अरु पैकस जो सन्धि और विग्रह में मन सों।
रह्यो क्लूजियम को अधीन नृप बहु दिवसन सों॥

खेत खिलासों लाइ अम्ब्रियन सेन, सिधायो ।
जहँ नीकोनम बुरजदार दृढ़ दुर्ग सुहायो ॥
नार-निम्नगा नदी नीर निरमल के माहीं ।
झिलमिलाति दरसाति तासु धौरी परछाहीं ॥
नीचे धारा में अतिबलसों तिहिदिसि ठेली ।
दियो लारशस जोमदार ओनसहिं ढकेली ॥
कियो वार सीअस पै हरमीनियस कराला ।
खोलि दसनलों दियो तासु सिर हानि करवाला ॥
विक्रम सों असि खेंचि वीर होरेशस लीनी ।
झपटि वेगसों झट कसिकैं पैकस कैं दीनी ॥
विकट अम्ब्रियन दिव्य कवच गिरिधर निमगारी ।
रुधिर सन्यो, रजमाहिं, करी झन २ धुनिभारी ॥
तबैं ओकनस विदित वीर उनकी दिसि आयो ।
लोस्यूलस समुद्र को डांक पाछे आयो ॥
वुल्सीनियम नरेस अरन्सहु चल्यो छबीलो ।
जिन बराह बरहेयू मारयो मन गरबीलो ॥
कुसा-मूंज-पूंजनि में जाने भांटि बनाई ।
अलबिनिया-तट-खेत नासि नर मारे धाई ॥
लियो अरन्सहि तत्छिन हरमीनियस गिराई ।
दियो लारशस् ओकनसहिं नीचो दिखराई ॥
लच्छ धार होरेशस ने करि फुरती भारी ।
लोस्यूलस के हृदय माहिं असि एक प्रहारी ॥
उचित घृणा करि वीर कही तब ताहि सुनाई ।
"वहीं डरयो रहि नीच ! अरे डांकू अन्याई ! ॥
नास कारिनी तव नौका की चिन्तित मन सों ।
कोउ न जोहहि बाट ओश्चा की भीतन सों ॥
मृग लखि तब भय भरयो पाल अतिडरपत मनमें ।
नाहिं भाजिहैं अब पट परसों बन खोहन में " ॥
दहलि गयो चित अरिमण्डलको अब भय खाई ।
अट्टहास धुनि तिहि दिसिसों नहिं परी सुनाई ॥
भय पूरित रिसभरी खरी कल २ धुनि भारी ।
उठी चहुंदिसि रिपु-दल-अग्रिम गोल मझारी ॥
सेतु द्वार सो छै-बरछी-दूरी पर सेना ।
अति अथाह गाढ़ी ठाढ़ी पुल ओर बढ़ेना ॥
नहीं धरयो तहँसों आगे काऊने इक पग ।
जीतन कौं तिहि समय सेतु को सकरो मारग ॥
"अस्टर २" सब किलकारत अस्टर आवैं ।
लेड़ ! तासु हित चमू चिरी इत उत छितरावैं ॥
बड़ी २ डग धरत, धरत छवि परम अनपम ।
धरा कँपावन आवत वह ल्यूनाधिप दुर्गम ॥
वृषभ कंध पै छुई चौतई ढाल सुहावत ।
खन २ झन २ करत परत घनघोर मचावत ॥
बदलि पैतरा उछरि वेग सों तेग फिरावैं ।
सकै न जिहि कोउ साधि ताहि वह भानत आवैं ॥
तीनो वीरनि निरखि हँस्यो वह हँसी सुहावनि ।
बीरभाव सरसावनि पै उर की दहलावनि ॥
रनसों झिझकति बिपुल सेन टसकन की जानी ।
घृणा दृष्टि सों हेरि ताहि बोल्यो वर वानी ॥
(क्रमशः ।)

हिन्दू-साहित्य-समृद्धि ।

[मेजर वामनदास बोस]

पहले पहल पाश्चात्य-विशेष कर अंग्रेज-लोगों ने अपनी चड़क भड़कदार सभ्यता के घमण्ड में सीधी साधी चाल से रहने वाले हम हिन्दुओं को सहसा असभ्य जंगली "सैवेज़" की पदवी दी । जब तक किसी जाति के साहित्य वा इतिहास द्वारा उसके गुण और गौरव मालूम न हों तब तक अन्य देशीय लोग इतर देशवासियों को बहुधा असभ्य कहा करते हैं ।

जब पाश्चात्य लोगों को हमारे शास्त्र और साहित्य से परिचय होने लगा तब वे हमारे पूर्वजों के गुण और आर्यसन्तान की योग्यता और विलक्षण बुद्धि का ज्ञान प्राप्त कर हिन्दू जाति की ओर केवल आदर की दृष्टि से ही नहीं देखने लगे वरंच हमारे आचार्यों को गुरू बना कर संस्कृत रूपी अमृत का पान कर अपना जीवन सफल करने लगे । यहां तक कि स्कौपेनहार Schopenhauer सरीखे दार्शनिक विद्वान कहने लगे कि 'उपनिषद् मेरे जीवन के शान्तिदाता हैं और वे मृत्यु के बाद भी मुझे शान्ति

प्रदान करेंगे। * इसका प्रभाव यह हुआ कि हमारे तिरष्कार करने वाले हमारी प्रशंसा करने लगे। हमें परतंत्र गुलाम समझने वाले हमें गुरू मान हमारे आगे शिर झुकाने लगे। और यूरुप में संस्कृत का प्रचार होने लगा वर्तमान समय में भी वहां संस्कृत का अध्ययन और मनन खूब श्रद्धा पूर्वक हो रहा है किन्तु हम हिन्दुओं की दशा बड़ी शोचनीय है। हमारे बान्धव अपनी बपौती दिनोदिन गँवाते जाते हैं। हिन्दू शास्त्रों की खोज और उनके पुनर उद्धार और प्रचार का हम लोग यथोचित क्या बिलकुल भी यत्न नहीं कर रहे हैं। 'हिन्दू' के नाम पर 'हामी' भरने को अपने हिन्दुत्व की डींग मारने को तो बहुत खड़े होते हैं किन्तु हिन्दू जाति को जीवित रखने वाले और हिन्दू जाति का गौरव बढ़ाने वाले हिन्दू शास्त्रों की प्रति अपना कर्तव्य करने वाले विरले ही कोई दिखाई देते हैं! अब कुछ विचारवान देशभक्तों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। कार्य्य करने वाले अब मिलने लगे हैं किन्तु धन की बड़ी त्रुटि है न जाने कब धनाढ्य लोग पुस्तक प्रकाशन और अपने साहित्य वृद्धि के कार्य में लग कर अपने द्रव्य का सदा उपयोग करना सीखेंगे।

बड़े हर्ष की बात है कि इलाहाबाद निवासी श्रीमान् सतिशचन्द्र वसु तथा उनके भ्राता के उद्योग और परिश्रम से गत वर्ष से Sacred Book of the Hindus हिन्दुओं के शास्त्रों की पुस्तक माला 'पाणिनी' आफ़िस प्रयाग से निकल रही है।

पहले पहले लार्ड हेस्टिंग्स के ज़माने में गीता का अनुवाद अंग्रेजी में हुआ था। ला० हेस्टिंग्स ने उस अनुवादकी Court of Directors से बड़ी सिफारिश की। जब गीता का अनुवाद अंग्रेज लोगों के हाथ आया तो वे उसे पढ़ कर भारतवर्ष की ओर बड़ी आदर की दृष्टि से देखने लगे। उनका यह भी दृढ़ विश्वास हो गया कि जिस जाति की धर्म पुस्तक गीता है वह असभ्य जाति कहलाने योग्य नहीं है। ला० हेस्टिंग्स साहब ने बंगाल की 'एशियाटिक सोसायटी' की स्थापना में भी मदद पहुंचाये। इस 'पूर्वीय साहित्य प्रवर्धिनि समिति' के द्वारा बड़ा उपयोगी कार्य होने लगा। उस के द्वारा संस्कृत की ओर पाश्चात्य लोगों का ध्यान आकर्षित होने लगा। उसके प्रथम प्रेज़िडेन्ट विलियम जेम्स महोदय ने अपने भाषण में कहा था कि "अब हम संस्कृत साहित्य भंडार के रास्ते पर आ रहे हैं"

दुर्भाग्यवस! मेकाले साहब ने अपने स्वदेशानुराग के और अज्ञान के कारण संस्कृत साहित्य के विषय में यह राय क़ायम की कि "सारे अरब और हिन्दुस्तान का साहित्य यूरुप के पुस्तकालयों की एक अलमारी की पुस्तकों के बराबर भी नहीं" इस धृष्टता के दो परिणाम हुये। अंग्रेज़ लोगों की श्रद्धा संस्कृत से हटी और उन में उसका प्रचार कम हुआ। दूसरे संस्कृत को सर्कारी कालेजों में धक्के लगे।

मुश्क यदि वक्स के अंदर भी रख दिया जाय या यह कह दिया जाय की वह सुगंध रहित है तो क्या उसकी महक घ्राण इन्द्रिय से छिप सकती है। मेकाले साहब केही एक बिरादर ने संस्कृत साहित्य के विषय पर अपनी राय इस प्रकार प्रकट की थी। "संस्कृत साहित्याध्ययन से Jurisprudence की बड़ा वृद्धि होगा। भारतवर्ष में (संस्कृत) केवल सब से प्राचीन भाषाही नहीं है वरन वह वो आर्य भाषा है जिस से (हमारी) भाषायें निकलीं हैं और जिस में आदिम आर्य लोगों की संस्था, उनके रीति रस्म, नीति और विचार लिखे हुये हैं। संस्कृत से आर्य लोगों की प्राचीन आदिम दशा तथा सभ्यता का पता लगता है।"

यह सौभाग्य की बात है कि मेकाले साहेब का अनुकरण यूरुप के अन्य विद्वानों ने नहीं

* "The (upnishads) have been the solace of my life and they will be the solace my death"— Schopenhauer.

किया। विशेश कर जर्मनी में संस्कृत की चर्चा होने लगी। श्केज़ल (Fredrick von Schegel) १८०२ में संस्कृत सीखने के लिये जर्मनी से फ्रांस गये। वहां से लौट कर १८०८ में श्केज़ल साहब ने हिन्दू साहित्य तथा हिन्दू दर्शन शास्त्र और संस्कृत भाषा के विषय में एक बड़ा उत्तम निबन्ध लिखा। उस निबन्ध में इस विद्वान ने संस्कृत के महत्व तथा उपयोगिता का उल्लेख कर अपने जाति वर्ग को संस्कृत सीखने के लिये उत्तेजित किया। उस निबन्ध के एक स्थान पर पंडित श्केज़ल साहब ने लिखा था कि "संसार की प्रचलित भाषाओं में कोई भी इतनी पूर्ण भाषा नहीं हैं जितना कि संस्कृत। इतने शब्दों की जड़ (रुट) का पता साफ २ रीति से और किसी भाषा में नहीं मिलता है जितना कि संस्कृत में। हिन्दुओं का व्याकरण सरलता और पूर्णता का सर्वोत्तम उदाहरण है। उसका संगठन अति उत्तम ढंग से हुआ है।"

अध्यापक मैक्समूलर (पं० मोक्षमूलर) जर्मनी ही नहीं वरन सारे यूरप में संस्कृत के सबसे बड़े विद्वान हुए हैं। जैसा मनन संस्कृत का मि० मोक्षमूलर जी ने किया वैसा अन्य किसी विदेशी विद्वान ने नहीं किया है। हिन्दू शास्त्रों का अङ्गरेजी में अनुवाद कर उन्होंने पाश्चात्य देशों को बड़ा लाभ पहुंचाया है। ये महाशय हमारे हिन्दू साहित्य से इतना मुग्ध हो गये थे कि एक वार उन्होंने अपने एक व्याख्यान में कहा कि:—"यदि कोई मुझ से यह प्रश्न करे कि वह देश कौन और कहां है जिसमें कि मनुष्य ने इतनी मानसिक उन्नति की हो कि वह उत्तमोत्तम गुणों की वृद्धि कर सका हो और जहां कि मानव जीवन संबंधी बड़ी २ गढ़ बातों पर विचार और उनके हल करने वाले पैदा हुए हों, तो मैं यही उत्तर दूं कि वह देश भारतवर्ष है। अगर कोई मुझ से पूछे कि वह कौनसा देश है जहां से हम युरप निवासी अपने आंतरिक जीवन को सुधारने का और वास्तव में मनुष्य वन परलोक सुधारने का साधन प्राप्त कर सकते हैं तो मैं फिर भी यही कहूंगा कि ऐसा देश हिन्दुस्तान ही है?" जर्मन निवासियों का हिन्दुस्तान से कोई राजकीय सम्बन्ध नहीं है तथापि वे लोग इतनी श्रद्धा पूर्वक हमारे साहित्य का मनन करते हैं

अध्यापक ड्यूसन (Deussen) जर्मनी के जीवित संस्कृताचार्य हैं आप हमारे शास्त्रों का बड़ी श्रद्धा पूर्वक मनन कर उनके सार तथा अनुवादों को अपने देश बांधवों के सन्मुख रखते हैं। वे वेदान्त को सर्वोच्च धर्म मानते हैं। उन का कथन है कि वेदान्त के समान आचरण को शुद्ध तथा उच्च करने वाला अन्य कोई धर्म नहीं*। विदेशी लोग तो हमारे साहित्य के महत्व को भली भांति समझ गये हैं इसी कारण वे लोग संस्कृत सीखने में इतना परिश्रम कर रहे हैं। वे सस्कृत भाषा और साहित्य के मर्म और महत्व को भली भांति समझ गये हैं किन्तु हम, जिनके पूर्वजों ने इस अतुलनीय साहित्य की रचना की थी, उसके संरक्षण और वृद्धि के लिये क्या कर रहे हैं? चालीस वर्ष के लगभग हुए कि बड़े लाट की सभा के एक अङ्गरेज सभासद ने यह 'भविष्यद्वाणी' की थी कि पचास वर्ष में भारतवर्ष में संस्कृत का प्रचार बहुत कम हो जायगा। यद्यपि स्टोक्स (Stokes साहब की भविष्यत वाणी यथार्थ न हो पाई तथापि यह हमारा दुर्दैव है कि हमारे देश में

---

*The Gospels the Vedas) fix quite correctly as the highest law of morality:—"love your neighbour as yourself" the answer is not in the Bible but in the Veda the great formule तत्वमसि which gives metaphysics and morals together............ So the Vedanta is the strongest support of pure morality, is the greatest consolation in the suffering of life and death—Indians keep to it "Deussen."

संस्कृत को उतनी चर्चा और पठन पाठन नहीं हो रहा है जितना कि होना चाहिये। भारतवर्ष से सहस्रों हस्त लिखो पुस्तकें विलायत को चली गई हैं। यह केवल गतवर्ष की बात है कि नेपाल दर्बार ने छसहस्र से ऊपर संस्कृत के हस्त लिखित ग्रंथ आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय को दिया है! अगर यहां देश हितैषी संस्कृत पाठो विद्वान होते और संस्कृत साहित्य प्रवर्धिनी कोई समिति होती तो वे कब अपने घर से इस अमित कोष को परदेश जाने देते! "गत चालीस वर्षों में संस्कृत की पुस्तकों को कुछ ढूंढ हुई है। कई मठ और पुस्तकालयों में हाथ की लिखी कई पुस्तकों का पता लगा है। इस साहित्य का केवल थोड़ा सा भाग अबतक प्रकाशित हो सका है। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का पता इन ग्रन्थों से बहुत लग सकता है। अब तक संस्कृत साहित्य का पूरा इतिहास नहीं तय्यार हुआ। वृहत तथा पूर्ण इतिहास संस्कृत साहित्य का तब तक नहीं छप सकता जब तक सब हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थों की छानबीन व प्रकाश न हो जाय।

"संसार में शायद ही कोई देश होगा जहां कि ग़रीब से ग़रीब आदमी के घर तक ईसाई मत की किताबें न पहुंच गई हों। वह जाति कदापि बड़ी नहीं कहलाई जा सकती है न उस के लोग सभ्य ही कहलाये जा सकते हैं जोकि अपने धर्म शास्त्रों से अनभिज्ञ हों। धर्मसे ही राष्ट्र का उत्थान होता है। धर्म क्या चीज है और कैसे लोग धार्मिक बन सक्ते हैं यह सिखाना प्रत्येक धार्मिक का उद्देश्य है। सभ्यता के शिखर पर चढ़ने के लिये धर्म सदाचार की शिक्षा अत्यावश्यक है। आज कल जो बुराइयां अंग्रेजी पढ़े युवकों में देखने में आती है उन सब का मूल कारण धार्मिक शिक्षा का अभाव और हिन्दू शास्त्रों से अनभिज्ञता है। मेरे देखने में इससे बढ़कर उपयोगी और महत्व पूर्ण और दूसरा कार्य कोई नहीं कि सर्वसाधरण पढ़ अनपढ़ सबमें वेदान्त, उपनिषद और गीता के उपदेशों का प्रचार हो (इलाहाबाद की) हिन्दू साहित्य प्रवर्धिनी समाने इसी हेतु जन्म लिया है। ऐसी समिति की कितनी बड़ी आवश्यकता है इस बात को टाइम्स आफ़ इण्डिया ने भी बड़े ज़ोर के साथ दिखाया है। "ऐसी समिति की आवश्यकता दर्शाते हुये उसने नोट लिखा था कि 'बड़े हर्ष की बात है कि अब हिन्दू लोग अपने धर्म शास्त्रों का शुद्ध अनुवाद कर के सस्ती कीमत पर छापने का उद्योग स्वयं करने लगे हैं। इलाहाबाद के पाणिनी आफिस ने हिन्दू शास्त्रों का अंगरेज़ी अनुवाद और संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों का प्रकाशन आरम्भ कर दिया है।

मुसलमानी काल में संस्कृत साहित्य की अवनति रही। भाग्यवशात दक्षिण में विजयानगर के राज्य में हिन्दुओं के प्राचीन साहित्य का प्रचार सोलहवीं शताब्दि के अन्त तक जारी रहा। यही कारण है कि दक्षिण में संस्कृत के बड़े विद्वान हो गये हैं। विजयानगर राज्य में संचित संस्कृत ग्रन्थ इस समय मद्रास के सर्कारी पुस्तकालय, मैसोर राज्य के पुस्तकालय तथा अद्यार की लायब्रेरी में उपस्थित है। यह खेद का विषय है कि अभी इन ग्रन्थों के प्रकाशन का उद्योग आरम्भ नहीं हुआ। "भारतवर्ष ने संसार के तृतीयांश निवासियों को वौद्ध धर्म दिया। इस भारत भूमि में चीन इत्यादि अन्य देशों से वौद्ध धर्मावलम्बी यात्री प्राचीन काल से आते रहते हैं यहां का प्राचीन साहित्य चीन, तिब्बत और श्याम आदि देशों में पहुंचा। यह आश्चर्य और खेद की बात है कि संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों के अनुवाद चीन और तिब्बत आदि देशों की भाषा में मौजूद हैं किन्तु उन ग्रन्थों का भारतवर्ष में पता नहीं है। इन देशों से उन ग्रन्थों को प्राप्त करने से हमारे देश के इतिहास के संगठन में बड़ी सहायता मिलेगी किन्तु शोक है कि उनके लाने का कोई यत्न नहीं किया जा रहा है।

"यह 'हिन्दूसाहित्य प्रवर्द्धिनी' सभा तब तक सफलता प्राप्त नहीं कर सकती है जब तक कि देश के विद्वान और धनाढ्य लोग उसमें योग न दें। मुझे आशा है कि सब देशहितैषी, हिन्दू जाति के शुभचिन्तक और विद्या व्यसनी लोगों की सहायता से यह सभा भविष्य में अपने उद्देश्य को पूरा कर हिन्दू जाति को संसार की सभ्य जातियों की मंडली में उच्च स्थान दिलावेगी।"

इसी उद्योग के विषय में कलकत्ते के अध्यापक विनयकुमार सर्कार यों कहते हैं :-

"साहित्याचार्य विद्वान लोग और शिक्षा के पक्षपाती लोगों को हिन्दूसाहित्य प्रवर्द्धिनी सभा की पूर्णरूप से सहायता करनी चाहिये। हिन्दू-साहित्य तथा शास्त्रों का प्रचार साहित्याध्ययन और साहित्य प्रचारक मंडली और सभाओं के द्वारा भलीभांति हो सकता है जो कि ढूंढ़ कर हिन्दूशास्त्रों को निकालें और सर्वसाधारण के हित के लिये उनको प्रकाश करें। हमें अपने देश में कई पाठशाला कालेज और पुराने ग्रन्थों की खोज करने वाली समितियां कायम कर अपने साहित्य का मूल संस्कृत में और अनुवाद अंगरेज़ी तथा प्रान्तीय भाषाओं में छपवाना चाहिये। हमें यह भी उद्योग करना चाहिये कि जर्मनी, अमेरिका चीन इत्यादि देशों में हमारे उद्योग से संस्कृत का प्रचार हमारे अध्यापकों द्वारा हो। आशा है कि हमारे शिक्षा के पक्षपाती देश बांधव इस ओर ध्यान देंगे और दर्शन और साहित्य का अन्य देशों में भी प्रचार कर स्वदेश का गौरव बढ़ावेंगे और बीसवीं शदी के साहित्यान्दोलन (Renaissance) का कर्ता धर्त्ता बनेंगे।

महाराज बुद्ध का मृत्यु स्थान।

[लेखक—श्रीयुत कुंवर महेन्द्रपालसिंह]

बुद्ध के नाम से सभ्य संसार भली प्रकार परचित है. बौद्ध तथा हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों से मालूम होता है कि महाराज बुद्ध ने कुशीनार में जिसे कुश नगर भी कहते हैं—निर्वाण प्राप्त किया था। यह स्थान कहाँ है इस के विषय में कुछ ठीक पता नहीं लगता। गत पाँच वर्ष से गवमेंट की आज्ञानुसार गोरखपुर ज़िले के अन्तरगत कस्या स्थान की भूमि खोदी जारही है. इस भूमि को मथकुंवर का कोट कहते हैं।

सन् १८७७ में ए. सी. एल कारलाइल A. C L. Carlyle साहब को इस स्थान की जाँच करते समय एक पत्थर की विशाल मूर्ति मिली थी। यह बुद्ध महाराज की मूर्ति धरती पर लेटी हुई थी और एक हाथ सरसे नीचे दबा हुआ था। मुख से बड़ी ही भाव पूर्ण निद्रा मालूम होती थी इस से प्रतीत होता था कि यह अन्तिम समय की है। इसी कारण से सर. ए कनिंघैम साहब (Sir A. Cunningham) का मत है कि कस्या और कुशीनार एक ही स्थान हैं।

प्रसिद्ध चीनी यात्री हुअान्टसाँग ने भी सातवीं शताब्दी में कुशीनार के एक मंदिर में ऐसी ही मूर्त्ति का होना बतलाया है और लिखा है कि इस मंदिर के समीप में एक स्तूप भी था। जिस स्थान में यह मर्त्ति मिली है वहां एक स्तूप अब भी है। इसी कारण से बौद्ध कस्या को तीर्थ मानकर जापान, चीन, तिब्बत, साईबीरिया आदि से यात्रा के लिये वहां आते हैं। श्रीमान दलाई लामा भी फरवरी मास में इस स्थान के दर्शन हेतु पधारे थे।

इस खोज के कुछ दिन वाद विन्सेन्ट. ए. स्मिथ साहब (Vincent A. Smith) ने इस मत केविरुद्ध कुछ लिखा। जब कस्या के कुशीनार

होने में कुछ संशय हुआ तब गवर्मेन्ट के पुरातत्व विभाग ने डाक्टर वोगल (Dr. Vagel) को वहां खोज करने के लिये भेजा। डाक्टर साहब ने सन् १६०५ से १६०७ तक बहुत परिश्रम के साथ खोज की। उस का फल यह हुआ कि बहुतसी अमूल्य और ऐतिहासिक महत्व की वस्तुएं उन्हें मिलीं। इनमें से अधिकतर वस्तुएं लखनौ के अजायब घर में रखदी गई हैं। परन्तु स्थान सम्बन्धी प्रश्न को निर्णय करने के लिये बहुतसी मुद्रा अर्थात् मोहरें (Seals) मिलीं जिन पर "महा परि निर्वाण" नामक मंदिर का नाम अंकित था। "महापरिनिर्वाण" शब्द बौद्ध महाराज की मृत्यु को सूचित करने में अनेक बार मिला है। इस से यह तात्पर्य निकाला गया है कि यह मंदिर बुद्ध के मरण स्थान पर ही बनाया गया था।

१६०७ में एक और मुद्रा मिली है जिस पर यह लिखा है "उस साधु समुदाय की जो विश्नुद्वीप में बसते हैं।" इस मोहर को भी उसी स्थान की मान सकते हैं परन्तु यह एक ऐसी वस्तु है जो एक स्थान से दूसरे में कोई लेजा सकता है। यदि यह मान लिया जाय कि यह उसी स्थान की है तो कस्या का मंदिर कुशानार का नहीं किन्तु विश्नुद्वीप का सिद्धि होता है। जब कस्या को कुशीनार मानने में फिर शंका उत्पन्न हुई तो विशेष अन्वेषणा की आवश्यकता हुई। इस में संशय नहीं कि यह खोज बड़ी ही महत्व पूर्ण है क्योंकि कस्या का कुशीनार सिद्धि होजाना,एकगूढ़ ऐतिहासिक रहस्य का खुलजाना है।

कलकत्ता के बौद्ध समुदाय ने बहुत कुछ चन्दा कर के स्तूप तथा निर्वाण मन्दिर के जीर्णोद्धार करने की आज्ञा मांगी परन्तु गवर्मैंट ने स्थान सम्बन्धी प्रश्न के निर्णय करने के लिये स्तूप के भीतरी दृश्य देखने की इच्छा प्रगट की। इसके पश्चात् पण्डित हीरानन्दजी ने विशेष अन्वेषण किया जिसका सारांश यह है।

निर्वाण मन्दिर के पास का स्तूप जो २५ फुट ऊँचा और ५६ फुट घेरे में था देखा गया खोदने पर इसमें ऊपर ही एक छठी शताब्दी का जय गुप्त के समय का सिक्का मिला और कुछ ईंटें मिलीं। १३ फुट की निचाई पर तांबे का एक घड़ा मिला जो ढक्कन से बन्द था। इसके ऊपर एक सीधी रेखा खिची थी और कुछ काली स्याही में लिखा था। यह डाक्टर होरनल (Dr. Hoernele) के पास ओक्सफोर्ड में पढ़वाने के लिये भेजा गया है। पहिली पंक्ति को डा० वोगल ने पढ़ने की चेष्टा की थी जिससे बुद्ध का सूत्र मालूम होता था। घड़े में बालू, कोयला, कौड़ी, मोती, रत्नादि, एक कुमार गुप्त के समय का सिक्का और दो तांबे की नली मिलीं हैं। छोटी नली में कुछ श्वेतवर्ण का सचिक्कण पदार्थ भरा था। बड़ी नली में एक चांदी की नली, भस्म, हीरा और कुमार गुप्त के समय के सिक्के थे। चांदी की नली के अन्तरगत एक स्वर्ण नलिका थी जिसमें किसी पदार्थ की दो बूंदे और कुछ शुष्क पीली वस्तु थी। सुगन्धि से चन्दन ज्ञात होता था। श्रीमान दलाईलामा ने जो भाग्यवश उस समय वहीं उपस्थित थे उसमें से कुछ चाखा भी था। अङ्कित अक्षरों से और सिक्कों से ज्ञात होता था कि यह स्तूप कुमार गुप्त के राज्य में बना है। यह कुमार गुप्त चन्द्र गुप्त (दूसरे) के पुत्र थे और ईस्वी ४१३ के लगभग राज्य करते थे।

अभी तक कोई भी मत पूर्णतया स्वीकार नहीं किया गया किन्तु बहुत सम्भावना है कि कस्या और कुशीनार एक ही हों। इसकी पुष्टि के लिये एक प्रमाण यह भी हो सकता है।
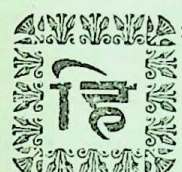
"परिनिर्वाण" नामक पाली भाषा में एक प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ है। उसमें लिखा है कि बुद्ध महाराज का अन्तिम संस्कार उनकी इच्छानुसार कुशावती के मल्ल राजा ने किया था। और यह बात इतिहास से सिद्ध होती है कि साम्प्रति मझौली नरेश मल्ल राजा ही के वंशज

हैं। मझौली नरेशों के नाम के पीछे "मल्ल" अब तक सम्मिलित रहता है। मझौली का राज्य गोरखपुर के ज़िले में ही है और कस्या स्थान से अधिक दूर भी नहीं है।

अप्रसिद्ध ऐतिहासिक वार्त्ता।*

[लेखक—श्रीयुत गोपालराम गहमर]

सम्राट हुमायूं।

हिजरी ९३७ जमादिउल अव्वल की नवीं तारीख़ जुमा के दिन हुमायूँ सुलतान सिंहासन पर बैठे थे उनके नाम पर आगरा की जुमा मस्जिद में कुतबा पढ़ा गया। उस समय जो अनगिनतिन प्रजा वहाँ आनन्द ध्वनि कर रही थी उनकी खुशी की आवाज़ से आस्मान गूंज रहा था। उस अवसर पर एक कवि ने कहा था:—

दिल में जो दौलत की उठी थीं उमेदें
वह इस घड़ी पूरी हुईं।
दुनिया ने जो इरादे पाले थे
उनकी कामयाबी हुई॥

हुमायूंनामा

हुमायूँ बड़े रसिक और खुशदिल थे वे सब के साथ मिलते जुलते थे।

फ़रिस्ता

बाबर अपने सब लड़कों से हुमायूँ को अधिक प्यार करते थे। काबुल की सफर के समय हिन्दुस्तान की सलतनत का भार वे हुमायूँ पर छोड़ गये थे।

उन दिनों शाहजादा हुमायं को एक दिन बन में घूमते घूमते अपनी नसीब आज़माई की मन में आई। साथ में उनके मौलाना मसीउद्दीन रसुल्ला भी थे। उन्हें बुला कर हुमायूँ ने कहा—शाह साहब! इस जङ्गल में पहले जो तीन आदमी मिलेंगे उनका नाम पूछ कर मैं अपनी क़िस्मत आजमाई करूँगा। कुछ देर की बहस पर उन लोगों को एक अँधेड़ से मुलाकात हुई। पूछने पर उसने अपना नाम मुरादख्वाजा बतलाया। उसके बाद उनको एक आदमी गदहा लिये जाता हुआ मिला उसने अपना नाम दौलतख्वाजा कहा। शाहज़ादे को इस पर बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने कहा—अब जो आदमी मिलेगा उसका नाम अगर सआदतख्वाजा हो तो जानूंगा कि मेरे भाग्य में शाही सौभाग्य उदय होगा। ठीक उसी समय एक चरवाहा बालक शाहजादा के सामने आया। उन्होंने बड़ी घबराहट से पूछा—"क्यों लड़के तुम्हारा नाम क्या है?" बालक ने जवाब दिया—"मेरा नाम है सआदतख्वाजा।" सुन कर सब ने दाँतों उँगली काटी और एक सुर हो सब ने कहा—"जहाँपनाह का सुख सूर्य जल्द भारत का भाग्याकाश उज्वल करेगा।"

हुमायूँ नामा

ठीक ऐसी ही कथा सम्राट जहाँगीर ने अपनी लिखी हुई जीवनी में लिखी किन्तु उन्होंने हुमायूँ नामा की लिखी हुई कथा का कुछ जिक्र नहीं किया है। हम उनका लिखा हुआ भी नीचे यहाँ अनुवाद कर देते हैं विचारवान् पाठक स्वयम् इसका भेद समझ लें। जहाँगीर कहते हैं:—

मैं घोड़े पर चढ़ कर पिता के आरामगाह से एक कोस भी पूरा नहीं गया था कि एक आदमी मिला। मुझे वह पहचान नहीं सकता था। नाम पूछने पर उसने 'मुराद ख्वाजा' बतलाया। मैंने कहा शुक्र है खुदा का मेरा इरादा पूरा हुआ। कुछ आगे चलकर सम्राट बाबर की कबर के पास एक और आदमी मिला। वह गदहे पर लकड़ी लादे लिये आता था और खुद भी काँधे पर एक बोझ लकड़ी लिये था। नाम पूछने पर मैंने जवाब पाया दौलत ख्वाजा।

---

* अर्चना के आधार पर।

तब मैंने सब साथियें को पास बुला कर कहा कि आगे कोई तीसरा सआदत ख्वाजा नाम का आदमी मिले तब तो बड़े आश्चर्य की बात हो। कुछ आगे जाने पर दाहिनी ओर नदी किनारे एक बालक गौ चराता हुआ मिला मैंने हिम्मत करके उसका नाम पूछा उसने कहा सआदत ख्वाजा। निजामुद्दीन अहमद के तबकाते अकबरी में भी हुमायूँ की उस कथा का बयान है। और हुमायूँनामा और तबकाते अकबरी दोनों "वाक़्यात जहाँगीरी" से प्राचीन है।

सम्राट जहाँगीर की लिखी वाक़यात जहाँगीरी में हुमायूँ की एक और दैवी घटना लिखी है। हुमायूँ ने अपने पिता की समाधि देखते जाते समय एक उड़ती चिड़िया देखकर साथियों से कहा—"देखो अगर मैं इस चिड़िया को तीर से छेद सकूँगा तो पिता की राजगद्दी जरूर पाऊँगा। इतना कह कर युवराज ने तीर मारा। तीर उस पक्षी का सिर छेद गया और वह मर कर हुमायूँ के कदमों में गिरा।

—

हुमायूँ जब अपने प्रधान बैरी शेरशाह की बगावत की ख़बर पाकर गौड़ देश जीतने के लिये रवाना हुए तब पहाड़ी रास्ते पर एक दल पठान सेना जलालखाँ और हाजीखाँ के आधीन तैयार खड़ी थी। शेरशाह खुद गौड़ में बैठ कर वहाँ की विपुल धन सम्पति रोहतास के क़िले में पहुँचाने और वहाँ उसकी रक्षा करने का प्रबन्ध कर रहे थे। मुग़ल सेना का आक्रमण व्यर्थ करने के लिये जलालखाँ ने क़सम खायी थी कि मुग़ल सेना को शिकस्त दिये बिना पानी नहीं पीऊँगा एक दिन अकस्मात सामने की मुग़ल सेना पर वार करके सब को उन्होंने तहस नहस कर दिया। डर के मारे मुग़लों की सेना ने भागकर ज़ान बचायी उनके शिविर की सब दौलत और हाथी, ऊँट घोड़े पठानों के हाथ आये।

उस समय शेरशाह गौड़ में थे। फतह की ख़बर सुन कर खुशी से बोले—"जो मुर्ग़ा लड़ाई में एक बार शिकस्त खाता है दूसरी बार लड़ने आकर वह सिर्फ चिल्लाता है। हिम्मत करके लड़ नहीं सकता।" बाद को हुमायूँ और शेरशाह के नसीब में जो फला था उसके विचार से यह समझना पड़ता है कि इस वाक्य का एक ऐतिहासिक मूल्य है।

तारीखे खान जहाँलोदी।

—

शेरशाह ने महीनों तक हुमायूँ को गौड़ के बाहर रख कर जीत में पाये हुए जवाहिरात हाथी, घोड़े, ऊँटों पर लाद कर रोहतास भेज देने पीछे शहर दरवाज़ा खोल दिया। उन्होंने गौड़ छोड़ने से पहले एक और चतुराई का। गौड़ के सब राजमहल खूब साज सामान से सजा दिये थे। फर्श पर कीमती कालीन बिछा कर दरवाज़ों पर खूब बढ़िया रेशमी झालर वग़ैरह सजा कर कमरों का मनमोहन रूप बना दिया था। शेरशाह ने समझा था कि विलास प्रिय इन्द्रियपरायण मुग़ल सम्राट इस मोहजाल में पड़ कर कर्तव्य भ्रष्ट हो जायँगे और जब तक इन्द्रिय सुख में डूबे रहेंगे तब तक अपना बल बढ़ा कर हम मुग़लों पर हमला करेंगे और भारत में मुग़लों के बदले पठानों का झण्डा फहरायगा।

बात भी वही हुई। बङ्गाल की उस समय की राजधानी गौड़ में पहुँच कर हुमायूँ ने अपने आदमियों से शहर साफ करा कर सजाया और महल में पहुँच कर इन्द्रिय सुख में महीनों कर्त्तव्य भ्रष्ट हो पड़े रहे। अन्त को जब उन्होंने ख़बर पायी कि शेरशाह ने चुनार और बनारस के क़िलों पर दखल कर लिया तब फिर अपने कर्त्तव्य कार्य में लगे।

तजकिरातुल वाक़यात।

—

हुमायूँ ने गौड़ का नाम गौर (क़ब्र) के समीपी उच्चारण का होने के कारण बदल कर

जन्नतावाद (स्वर्ग) रक्खा था किन्तु वह प्रसिद्ध नहीं हो सका।

हुमायूँ जब अपनी सेना लिये हुए चौसा में पड़े थे तब शेरशाह ने अकस्मात उनपर आक्रमण किया। पहले तो हुमायूँ ने इसका भेद नहीं समझा किन्तु अपनी सेना को डरकर भागते हुए देख कर वे अपनी जान बचाने की फ़िक्र करने लगे। वे झट स्नानागार से निकल घोड़े पर सवार हो पुल की ओर दौड़े किन्तु संयोग की बात है कि भागने वाली फौज के भार से पुल पहले ही टूट गया था। निदान सम्राट ने घोड़ा गङ्गा में डाला और बड़ी कठिनता से जान बचा कर उस पार पहुँचे। गङ्गा की प्रखर धार में एक निजाम नाम के सेवक ने बड़ी चतुराई से सम्राट की जान बचायी थी।

बादशाह लोग लड़ाई में भी अपनी बेगम और खान्दान को और औरतों को साथ रखते थे। हुमायूं को बेगमों का तम्बू भी उनके तम्बू के बगलही में पड़ा था। चौसा में पठानों ने ऐसे धोखे में आक्रमण किया कि बादशाह अपनी बेगमों का कुछ बन्दोबस्त नहीं कर सके। जाती बेर वे ख्वाजा मुअज्ज़म को मरियम और और औरतों की हिफ़ाजत का भार दे गये।

मालिक का हुक्म पाकर जब ख्वाजा मुअज्जम बादशाही शिविर के बेगम महल के सामने पहुंचा तब उसने देखा कि पठान लोग बड़ी सरगर्मी से लूट खसोट कर रहे हैं उनकी तलवार रोक कर अन्दर जाना कठिन है और बेगमों को दुश्मनों के हाथ पड़ने देना भी नमकहरामी है। उसने दम रहते तक उनकी तलवारों का मुकाबला करने का विचार किया और अन्त में पठानों की तलवार पर बेगमों की रक्षा के लिये अपनी जान दे दीं। दुश्मनों ने मुगल महल की चार हज़ार बेगमों के साथ मरियम को कैद कर लिया। यह सब शेरशाह के हाथ पड़ीं थीं।

तारीखे खानजहां लोदी

उस मौक़े पर बचने का कुछ भी भरोसा न देख बेगम साहबा सहचरियों के साथ तम्बू से बाहर हो पड़ीं। उन पर नजर पड़ते ही शेरशाह ने घोड़े से [illegible] कर बड़े अदब से मीठी बातें कह कर उ[illegible] को ढारस दिया और शिविर में हुक[illegible] [illegible]या कि कोई किसी मुगल बेगम या लौंडी को एक रात भी अपने पास न रखे। फौज में शेरशाह का हुक्म खुदा की तरह माना जाता था। सब ने उन बीबियों को वापस दे दिया। शेरशाह ने सब को राज महिषी के तम्बू में रक्खा। कुछ दिन बाद बेगम साहबा को उन्होंने रोहतास के किले में भेज दिया और और बाकी औरतों को कुछ देकर आगरे को तरफ रवाना किया।

तारीखे शेरशाही

व्याकरण की उत्पत्ति। *

पहले समयमें भारतवर्ष के हिन्दूसमाज में शब्द ही ब्रह्म समझा जाता था, "शब्द" ब्रह्म था, "महान्देव" था। इस से उस को अच्छी तरह समझने और समझाने के लिये उस की "वृषभ" में कल्पना की गई। उसी "वृषभ" ने मर्त्य लोक में आकर व्याकरण की उत्पत्ति की। बैल की तरह उस के, विशेष्य, धातु, उपसर्ग, और निपात रूपी, चार सींग हुए। भूत, भविष्य, वर्त्तमान्, ये तीन, उस के पर समझे जाने लगे। नित्य और कार्य्य, का नाम शिर हुआ। सातो विभक्तियाँ, सात हाथ माने गये, ऐसे एक व्याकरण रूपी बैल, जो अलौकिक था, बन गया। यह बैलउरस, कण्ठ, शिर में बाँधा गया।

बङ्गदर्शन के एक लेख के आधार पर। *

यह कितने दिनों की बात है, इस का पता लगाना असम्भव है, उस समय के मनुष्य शब्द कोही, वेद, या ईश्वर समझते थे। उसी ईश्वर के ज्ञान के लिये व्याकरण बनाई गई, जिस का नाम शब्दानुशासन रक्खा गया।

शब्द असंख्य होते हैं, यदि एक मनुष्य उन सब का अर्थ जानना चाहे, तो नहीं जान सकता। इस बात को देख कर पुराने, उस समय, के लोगों ने ऐसे नियमों की आवश्यकता समझी, जिनसे हरेक शब्द को जानने में दिक्क़त न उठानी पड़े। इसी लिये, उन्होंने खोज के साथ, व्याकरण बनाई, जिसका फल हम लोग खा रहे हैं, और खायँगे। इससे पहिले, अर्थात् व्याकरण के बनने से पूर्व में, शब्द शिक्षा की क्या प्रणाली थी, इस बात का यद्यपि इतिहास से पता नहीं लगता, पर भगवान् पातञ्जलि ने अपनी, व्याकरण के महाभाष्य की भूमिका में एक कहावत, (जन श्रुति) लिखी है, जिससे इस बात का कुछ पता लग सकता है। वह यह है कि; देव गुरु बृहस्पति ने इन्द्र को शब्द शिक्षा, देने की चेष्टा की थी, पर कड़ोरों शब्द होने के कारण, हज़ार वर्ष में भी वह पढ़ाई पूरी नहीं हुई। भला फिर, मनुष्य, जिन की परमायु ही १०० वर्ष है, वह शब्द शिक्षा कैसे लाभ कर सकते हैं। उस समय, "प्रति पद पाठ" की प्रणाली थी, अर्थात् एक एक शब्द के अलग अलग अर्थ पढ़ाये जाते थे। तभी, व्याकरण बनाने की आवश्यकता समझी गई।*

उन लोगों ने बहुत से प्रकृति प्रत्ययों की कल्पना कर असंख्य शब्दों को अल्प संख्यश्रेणियों में विभक्त कर, शब्द शास्त्र के मार्ग को निष्कण्टक कर दिया। जिन शब्दों को वे नियमानुसार श्रेणी भुक्त न कर सके, उनको एक दूसरी श्रेणी में, निपात के नाम से भरती कर लिया।

ऐसे शब्द शिक्षा को सहज कर देने, पर. मुनिगणों को (जिन्होंने व्याकरण बनाई) एक आफ़त से सामना करना पड़ा। उन लोगों ने सोचा कि क्या सभी शब्द "धातुज" हैं, पर यह बात न मानी जा सकी। तब उन शब्दों का नाम, जो धातुज नहीं हैं, "अव्युत्पन्न प्राति पादिक" हो गया। पर ऐसे शब्द कम नहीं, उनके पढ़ने के लिये अब क्या उपाय किया जाय? क्या फिर प्रतिपद पाठ की रीति चले? जिसके उठाने के लिये इतनी मेहनत, और परेशानी की, गई क्या वह फिर प्रचलित हो?

तब दो दल हो गये, एक तो प्रतिपद पाठ, को मानने वाले, दूसरे दल ने नये प्रत्यय बनाकर "अव्युत्पन्न" शब्दों को निपात से सिद्ध किया। इन नये प्रत्ययों में सब से पहिले "उण्" प्रत्यय बना, इससे इस, नये प्रत्ययों की शिक्षा, का नाम उणादि हो गया यद्यपि पहिले दो दल हो गए थे पर जब पहिले दल ने "उणादि" की उपयोगिता देखी, तब फिर एक दल हो गया।

इस प्रकार व्याकरण की उत्पत्ति हुई और वह भारतवर्ष भर में फैल गई।

अभिन्नत्रय

---

* एवं हि श्रूयते, बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं सहस्र वर्षं प्रति पदोक्तानां शब्दानां शब्द पारायणं प्रोवाच। नान्तं जगाम। बृहस्पतिश्च प्रवक्ता, इन्द्रश्चाध्येता, दिव्यम्वर्ष सहस्र मध्ययन कालो, न चान्तं जगाम। किम्पुनरद्यत्वे? यस्सर्वथा चिरंजीवति, स वर्ष शतञ्जीवति। तस्मादनभ्युपायः शब्दानां प्रतिपत्तौ प्रति पद पाठः।

इति महाभाष्यम्।

बर्षा।

[लेखक—श्रीयुत महादेवप्रसाद सेठ।]

पर्वत शिखर पर है बना इक शुभ्र भवन सुहावना,
हरित द्रुमों के मध्य में अति रम्य चित्त लुभावना।
अति वेग से है गिर रहा निर्मल पहाड़ी जल जहाँ,
जिसका प्रवाह सुना रहा है शब्द कलकल कल वहाँ।

है विमल जल से पूर्ण एक तड़ाग पर्वत से मिला,
विचरत जहाँ पिक हंस चातक मोर दादुर कोकिला।
देखो अनेक प्रकार का है कमल उसमें खिल रहा,
आनन्द जिसको देख कर दर्शक गणों को मिल रहा।
देती दिखाई है वहाँ पर खड़ी एक नितम्बिनी,
शोभावती, पीनस्तनी, और रसिक जनमनमोहिनी।
यद्यपि चमकता वदन उसका पूर्ण इन्दु समान है,
विरहानुभूता नायिका सम किन्तु वह अति म्लानहै।
निज शीश नीचे को किये तालाब ओर निहारती,
वेधित मदन के वाण से निज हीन दशा विचारती।
निर्जन सघन वन में खड़ी है शोकयुत कुछ अनमनी;
व्याकुलबदन,जलयुतनयन,चाहतमरनवहविरहिनी।
स्वर्गीय सौख्य प्रदायिनी वन की घनी रामस्थली,
मन मुग्धकारी, मोदप्रद है लग रही कैसी भली!
होता नहीं इसका तनिक भी किन्तु उसको ध्यान है,
'विरहानलाकुल व्यक्ति को रहता न कुछ भी ज्ञान है'।
आकाश में नीलाभ्र भी चहुँ ओर से हैं छा रहे,
आल्हाद से पूरित चित्त हो हैं मार शोर मचा रहे।
कूलद्रुमों को तोड़तीं, उन्मत्त हो नदियां बहीं,
'मदमत्त जन के हृदय में सुविवेक रहता है कहीं।
हस्ती समान निनाद कर हैं व्योम में घन गरजते,
प्रिय-प्रेम-मुग्धा तरुणियों के हिये जिससे लरजते।
है चञ्चलाऽस्थिर भाव से आकाश में जो छा रही,
मानों "अनस्थिर है जगत" यह बात प्रकट जता रहा।
झंझा पवन है बह रहा अम्बुक जलद से गिर रहा,
है युवतियों का देख जिसको डररहा अतिसय हिया।
हैं मान अब वे तज रहीं; संसार की यह रीति है,
'भय के बिना होती कहीं देखो किसी ने प्रीति है।
आकाश में जो उड़ रही बक पांति यह सुविशाल है,
मानों नभस्थित किसी रमणी के गले की माल है।
है मालती बकुलादि पुष्पों से सुगंधित अनिल भी,
प्रेमी जनों के चित्त हरती मन्द गति से बह रही।
उत्फुल्ल हैं अर्ज्जुन कदम्बरु केतकी के वृक्ष भी,
प्रेमान्ध हो जिन पर मधुप श्रेणी विवश है गिर रही।
आह्लादकारी चित्त हर ही दृश्य सब इस काल है,
पर विरह व्याकुल अङ्गना का और ही कुछ हाल है।
कुछ दूर पर उस जगह से तियगन मदन सुख तूलतीं,
आमोद युक्त विलास कर झूला वहाँ हैं झूलतीं।
औ अङ्ग रागादिक किये लेपण सुकोमल देह में,
हैं वे सुहृदया युवतियों सम सनी निज पिय नेह में।
मित्रों जगत की चाल भी क्या वक्र और विचित्र है!
इस नई कविता में नया खींचा उसी का चित्र है।
है एक पाता दुःख लहता एक मोद अमन्द है;
कहते इसीसे हैं सभी "निःसार यह संसार है"।

भिक्षुक का हृदय।*

(गल्प)

उसी की तरह एक हतभाग्य और लक्ष्मी से तिरस्कृत एक मनुष्य ने उससे अर्द्ध रात्रि में चौरस्ते के मोड़ पर कहा, आज दाँव है यदि चाहो तो उसी रास्ते पर बराबर दक्षिण की ओर चले जाओ--सामने ही एक सजा सुथरा मकान दिखाई देगा उसके पिछवाड़े की दीवार उतनी ऊँची नहीं है और फाटक भी वैसाही है। घर में कोई मनुष्य भी नहीं है एक बूढ़ा माली पहरा देता है किन्तु वह भी आज ज्वर से पीड़ित है। जो कुत्ता वहाँ था उसे भी आज कई दिन हुआ किसी ने मार डाला ऐसा सुभीता कभी न मिलेगा-समझे, इस बात का कुछ उत्तर न देकर वह बराबर दक्षिण की ओर चला गया। थोड़ी दूर चलने के बाद एक पुल मिला पुल के पार होने पर एक शालका वन था घना अन्धकार अपना प्रभाव फैलाये हुए था। रास्ते में कोई मनुष्य भी नहीं दिखाई देता था इस कथा का नायक भी धीरे २ लौ लगाये चला जाता था। उसके बदन पर एक फटा हुआ कम्बल था इस कारण अन्धेरे में उसका मुख भी नहीं दिखाई देता था। मालूम पड़ता था कि कोई छाया इधर उधर चल फिर रही

---

* (Current Lierature पत्रिका में मैक्सिम् गैरिक के लिखे हुए "The Heart of beggar" नाम की गल्प का अनुवाद।)

है। घास के ऊपर पैर के शब्द भी नहीं सुनाई देते थे चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ था।

थोड़े ही उमर में उस पर बुढ़ापे ने अपना प्रभाव जमा लिया था। उसके मुख देखने से यह प्रतीत होता था कि उसने सैकड़ों विपत्तियां झेली हैं उसके मुख पर की रगें इतनी कठोर हो गई थीं कि उसके मुख पर किसी भाव की रेखा का प्रभाव नहीं पड़ता था। केवल दोनों आंखें उसकी बड़ी चमकती थीं, उनसे उसके हृदय की कोमलता प्रगट होती थी। अन्य दरिद्रियों में और उसमें केवल एक यही अंतर था।

वह चला जाता था। उसके सामने वन था पीछे वन था, थोड़ी २ दूर पर दो एक झोपड़े दिखाई पड़ते थे। इन्हीं झोपड़ों के बाद वह घर था।

उस मकान के सामने आकर वह सहम कर ठहर गया। कोई कहीं नहीं दिखाई देता था। उस समय उसके मन में यह भाव उत्पन्न होता था कि उस जगह की आकाश मिट्टी सब ही मानों उसी की है और कोई दूसरा उनका मालिक नहीं है। किन्तु यह क्या ? उसके चित्त में यह अवसन्नता कैसी ? पांव नहीं चलते हाथ नहीं उठता आज उसकी To do or to die की शक्तियां क्यों उसके कार्य सिद्धि में बाधा डाल रही हैं।

यही उसके प्रथम चोरी करने का अवसर था इसके पहिले उसने कभी भी चोरी नहीं की थी। दारुण क्षुधा की ज्वाला से जलते हुए उसने कभी २ दूसरों की बाग से फल वगैरह चुरा कर खाये थे किन्तु कभी किसी के मकान में घुस कर उसने चोरी नहीं की थी।

चोरी उसने नहीं की थी यह तो सत्य है किन्तु चोरी वह क्यों न करे ? उससे संसार में सहानुभूति रखने वाला कौन था ? सबेरे से सन्ध्या तक जब उसका समस्त शरीर क्षुधा की ज्वाला में जलता था प्यास से जब उसका कलेजा फटता था उस समय क्या कोई एक मुट्ठी अन्न या एक लोटा पानी उसे देता था ? जाड़ा नहीं बरसात नहीं गर्मी नहीं रात दिन जब वह खुले मैदानों में पड़ा रहता था जब उसे कहीं पैर रखने को भी ठांव नहीं मिलता जब जाड़े से उसके दांत किटकिटाते थे उस समय क्या कभी कोई एक भी मनुष्य उसके लिये आह करता था ?

यह बहुत दिन की बात है। माता पिता की मृत्यु होने पर जब वह ग्राम में इधर उधर घूमता फिरता था उस समय एक दयालु वृद्ध उसे अपने घर ले गया और उस ने उसे टोकरी बिनना सिखला दिया था। इसी से वह किसी प्रकार अपने पेट की ज्वाला को शान्त करता था। किन्तु उस के स्वभाव में एक प्रकार की आवारगी थी वह कभी एक जगह स्थिर नहीं रह सक्ता था।

एक ग्राम से दूसरे में घूमता फिरता था। कहीं भी घर आदि ठहरने की जगह न थी। खुली जगहों में वह दिन रात काटता था। एक दिन सन्ध्या समय एक कुएँ की जगत पर उस से उसका प्रथम मिलन हुआ। उस समय वहां पर कोई दूसरा न था। एक स्त्री कुआं पर जल लेने आई थी और वह वहीं पर बैठा चबना कर रहा था। वह सुन्दरी थी यह नहीं था, किन्तु तब भी उसकी करुण दृष्टि में एक अनिर्वचनीय आकर्षण शक्ति थी, उसके भी पिता माता ने बाल्यावस्था ही में उसका साथ छोड़ा था, अपना कहने को उसे संसार में कोई नहीं था। उसने कभी सुख का अनुभव नहीं किया था। दूसरे के घरों में नौकरी करके वह अपना पेट भरती थी। एक ही प्रकार के दोनों अभागे उस सन्ध्या को एक साथ आकर मिले थे। यही उन दोनों के प्रेम का एक कारण भी था। वहीं से दोनों प्राणियों ने एक साथ जा कर विवाह कर लिया। स्त्री भी पति के साथ अकुण्ठित चित्त से इधर उधर घूम कर जाड़े और

बरसात में मैदानों में दिन काटती थी, एक समय भी भोजन नहीं मिलता था। इन सब बातों के होते हुये भी उन लोगों को क्लेश का अनुभव नहीं होता था उन्हें परस्पर साथ रहना ही बड़ा आनन्ददायक बोध होता था।

इसी तरह से बहुत दिन बीत गये। कुछ दिन के बाद उन लोगों के बीच में एक नये प्राणी का आविर्भाव हुआ। लड़का देखने में बहुत सुन्दर था। ऐसा हृष्ट पुष्ट शरीर चाँद सा मुखड़ा ऐसी सुन्दरता गरीब के लड़कों में कभी नहीं देखी गई। लड़का राजवंशीय प्रतीत होता था।

लड़के को पाकर माता पिता ने समझा कि उन लोगों ने एक अमूल्य रत्न पाया है। उसे देखते ही आनन्द स्रोत से उनका हृदय भर उठता। इतने दिनों तक उन लोगों ने जो कुछ कष्ट भोगे थे लड़के के मुख के देखन से मानों उन सब दुःखों का अवसान हो गया।

वे कभी भी किसी की ओर देखते न चलते थे-संसार में उन्हें कोई आकर्षण न था न कोई बन्धन ही था। वे मुक्त वायु की तरह घूमते फिरते थे-न उनका कोई लक्ष्य ही था न कोई उद्देश। किन्तु पुत्र लाभ के साथ ही साथ मोहिनी माया का संसार उनकी आंखों में जादूगर के खेल की तरह उलट पुलट हो गया। सैकड़ों प्रकार की आकर्षण शक्तियां उन्हें अपनी २ ओर खींचने लगीं। लड़के को किस तरह से अच्छा रक्खें, किस प्रकार से उसे अच्छा पहिनावें और खिलावें इन्हीं चिन्ताओं से उन्हें रात्रि में नींद भी न आती उन लोगों को कभी किसी प्रकार की आकांक्षा न थी किन्तु लड़के के लिये मालूम नहीं कहाँ से आकांक्षाओं का एक समुद्र उमड़ उठा।

चार वर्ष के बाद लड़के की माता बीमार हुई-उसी बीमारी से उसका शरीरान्त होगया। सब मनुष्यों ने उस समय कहा "दिन रात रास्ता घूमते, २ बरफ में जाड़े में रात काटते २ माता की तो मृत्यु हुई-अब लड़के को सावधानी से रखना"।

पिता पर इस बात का कुछ प्रभाव न पड़ा। वह इधर उधर घूमता ही फिरता-जीवन के लिये गृह एक निरापद स्थान होता है यह उस की समझ में न आता। पहिले ही की भाँति वह अब भी जीवन निर्वाह करता। किन्तु उस के हृदय में एक दुःख का तीर बँधा हुआ था-अब वह अकेला था-उसकी प्राण सङ्गिनी-उस के दुःख की बटाने वाली उसे छोड़ कर चली गई थी।

लड़का बिलकुल माता के अनुहार था-मानों एक ही साँचे का ढाला था-वही घूंघर वाले बाल-वही मुसक्यान, सब बात वैसी ही थी। उसको देखने से उसका शोक बहुत कुछ कम हो जाता था। जब उसका कलेजा उमड़ आता तो वह बालक को कलेजे से लगा लेता इससे उसके हृदय को ठण्डक पहुंचती। उसके इतने कठोर हृदय से भी स्नेह का अमृतधारा निकल कर बालक के हृदय को सींच देती थी। किन्तु वह नितान्त हतभाग्य था। स्नेह के पुतले को और जीवन के एक मात्र अवलम्ब को भी वह खो बैठा। लड़के का कोमल शरीर इतने अनियमों को कैसे सह सकता था। क्या वह बर्फ की ठण्ढ को बरदास्त कर सकता था? जब बालक का शरीरान्त हुआ वह हाय २ कर चीतकार करने लगा-"क्यों मैंने मनुष्यों का कहना न माना-क्यों मैंने उसके शरीर की रक्षा न की?" यह कलक उसे बेधने लगी। लड़के का जब अन्तिम संस्कार हो चुका तब वह अपने अश्रु प्रवाह को न रोक सका-यही उसके जीवन में उसका पहिला रोदन था-अब भला यह रुदन कैसे रुक सकता था।

इतने रोने से भी उसको शान्ति न मिलती। उसे यह भासित होता था कि उसके शरीर का

सब रक्त जल रूप हो उस के आखों के बाहर हो रहा है, उसे सम्पूर्ण जगत शून्य मय निराकार दीखता थां, उस की दोनों आखें ब्यर्थ ही इधर उधर बालक को खोज करती थी। वह कल्पना कर के बालक की एक मूर्ति चित्त में खड़ी किया चाहता था किन्तु उस की कल्पना इतनी निर्जीब थी कि वह कुछ काम न देती। बालक की कोई ऐसी वस्तु भी न थी जिसे देख कर वह बालक की याद करता-दुलाई, कथरी आदि जो कुछ थी वह सब चिता में भस्म हो चुकी थी। उसे प्रतीत होता था कि अस्तित्व के सभी चिन्हों को हरण कर बालक उस के पास से चला गया है किन्तु बालक किस प्रकार भूल सकता था।

इसके अनन्तर वह एक बार मर कर जिया। उस में जो कुछ कोमलता थी वह सब जाती रही-वह व्याघ्र सा भीषण हो गया।

उस के एक मित्र ने उस से एक दिन कहा था "दूसरे के बाग़ से फल चोरना भी चोरी है और किसी घर में सेंध मारना भी चोरी है इन दोनों में कुछ अन्तर नहीं है दोनों ही चोरी हैं"। आज भी उस मकान के सामने खड़े हुए उस के मन में यही बात पैदा हुई।

वह घास पर हाथ पैर फैला कर मू के बल पड़ रहा-मालूम नहीं किस कारण से उस के कलेजे को चीर कर अश्रुधारा नेत्रों के बाहर होने लगी। हाय उस समय उस के चित्त को कैसी पीड़ा पहुंच रही थी। रोने के बाद वह कुछ शान्त हो कर खड़ा हुआ। मन में वह कहने लगा-संसार में कितने ही मनुष्य चोरी करते हैं-हम चोरी क्यों न करैं-क्या लज्जा है?

इसके बाद वह एक छलांग मार कर सामने की दीवाल नाघ कर पीछे गोड़ा में जा पहुंचा। जैसे ही वह दीवार नाघ कर पीछे पहुंचा उस के मन में एक प्रकार का उत्साह आने लगा, लज्जा ने बाधा देना छोड़ा-मन की दुविधा कल्पना जाती रही। सामने ही घर का दरवाजा था, एक झटके में ताले का सत्यानाश हो गया, और वह घर के भीतर जा पहुंचा।

पहिले पहिले तो उसे कुछ भी न दिखाई दिया-किन्तु क्रम २ से जब अन्धकार उस की आखों में सह्य हो गया तब तो उसे सभी बस्तु दृष्टिगोचर होने लगी। उन सब चीज़ों को देख कर एक बार वह चमतकृत हो गया। घर बहुत ही साफ, सुथरा और फूलों की सुगन्धि से गमक रहा था। दीवालों पर चित्रों का अच्छा समावेश था और घर असबाव से परिपूर्ण था चारो ओर बहु मूल्य बस्तुएं दिखाई देतीं थीं। इन सब चीज़ों को उसने कभी नहीं देखा था। वह स्तंभित हो वहीं खड़ा हो सोचने लगा मनुष्य इन सब चीज़ो को लेकर क्या करता है? उस का मन विस्मय और भय से पूर्ण हो गया।

इतनी चीज़ों में वह कौन २ सी ले ले यह वह निश्चय न कर सका। जितना ही वह विचार करता उतनी ही उसकी भ्रान्ति और बढ़ती। उसे यह भासित होता था मानो सभी वस्तु उससे कहती हैं "अरे भाई हमी को ले चलो" इस समय वह किसको ले और किस को छोड़ दे यही चिन्ता उसे सताने लगी-

सामने एक ट्रङ्क पड़ा था वह पहिले उसी की तरफ अग्रसर हुआ। एक बार खीचने ही से उस का ताला खुल गया। ट्रङ्क में बहुत सी चीज़ै न थीं-बहुत से कागज के टुकड़े पड़े थे। एक कोने में दो सोने की मोहर अन्धकार में चमक रही थी। उसने उन्हें लेने के लिये ज्योंही हाथ बढाया उसी समय उसकी दृष्टि एक चित्र पर पड़ी। उस के समस्त शरीर में बिजुली सी दौड़ गई आनन्द और विस्मय साथ ही साथ उस के हृदय में लहराने लगे। चित्र एक छोटे लड़के का था। जिस चित्र की कल्पना सहस्र बार व्यर्थ मनोरथ कर केवल उसे व्यथा ही पहुंचाती थी आज उसीको प्रत्यक्ष सामने कागज

पर देखकर वह खिचे चित्र की भांति रह गया। उस का ज्ञान जाता रहा–वह क्या करने आया था, क्या कर रहा था सब विचार जाता रहा। वह बाह्य ज्ञान शून्य हो कर एक टक चित्र की ओर निहार रहा था। वही भूला हुआ भोला २ मुखड़ा, वही घुंघराले बाल, वही प्यारी २ चितवन, ओठों पर वही मन्द मुसक्यान–वही सब। वह किसी लड़के का चित्र है यह नहीं, उस का मन कहता था कि वह उसी के बालक का चित्र है। इतने दिनों से जिसे पाने के लिये उसका मन कलप रहा था आज उसी को पाकर उसे परम तृप्ति हुई–समस्त अभाव उस का मानो निमिष मात्र में पूरा हो गया। चित्र को हाथ में पाकर उसे पूर्व पश्चिम का ज्ञान न रहा। चित्र को छाती से लगाने से उसे ऐसा मालुम हुआ मानो उस का बालक चित्र में जीवित हो गया है। छाती में वह उस के अङ्गों का तत स्पर्श बोध कर रहा था।

उसने और विलम्ब न किया। चित्र को हाथ में लेकर उसने उसका चुम्बन किया इसके अनन्तर उसे छाती में लुका कर चम्पत हुआ।

फिर से उसके हृदय में कोमलता का प्रादुर्भाव हुआ। यही उसकी प्रथम और अन्तिम चोरी थी। उसी दिन से उसे और किसी वस्तु के चुराने की लालसा न रही–अब उसे कुछ अभाव न था।

फ्रांस प्रवासी।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

बर्न सरक्यूलर।

प्रान्तीय गवर्मेन्ट को अब विदित हुआ होगा कि उपर्युक्त सरक्यूलर को निकाल कर उसने कितनी बड़ी भूल की है। प्रयाग, फैज़ाबाद, और लखनऊ में जो सभायें इसके विरोध में हुई हैं वे इस बात को साफ साफ कहती है कि हिन्दू समाज अब जाग उठी है और वह इस सरक्यूलर का घोर विरोध करैगी–सभाओं में केवल राजनैतिक आन्दोलन करने वाले ही नहीं रहे किन्तु उनमें सभी जाति और सभी श्रेणियों के मनुष्य सम्मिलित थे।

म्युनिसपैल्टियों और बोर्डों में प्रतिनिधियों के मामले में मुसलमानों के साथ पक्षपात करना किसी समय में भी श्रेयस्कर नहीं हो सकता किन्तु इस समय में जब कि अभी कौंसिलों में मुसलमानों के अधिक प्रतिनिधि के होने का घाव ताज़ा है इस चर्चा का उठाना राजनैतिक दृष्टि से कोरी मूर्खता है। अभी तो गवर्मेन्ट को यही उचित था कि वह पुराने घाव को पुरने देती न कि उसी पर और निमक छिड़कती। श्रीमान वाइसराय के वचन से "कि किसी एक जाति के साथ पक्षपात करना दूसरी जाति के साथ अन्याय करना है" हिन्दुओं को कुछ ढाढ़स हुई थी और हम लोगों ने समझा था कि जो कुछ हुआ सो हुआ किन्तु अब आगे हिन्दुओं के साथ अन्याय न होगा। इसी समय में इस सरक्यूलर के निकलने से हिन्दुओं में असन्तोष बढ़ गया है। हम नहीं समझते थे कि जब कि सब तरफ से Concilition और शान्ति की चर्चा उठाई जा रही है हमारे प्रान्त की गवर्मेन्ट को यह अन्धेर सूझैगा। असन्तोष का फैलाना अच्छा नहीं होता गुदगुदी वहीं तक अच्छी होती है जहाँ तक हँसी आवे क्रोध का आना या आँसू निकल पड़ना अच्छा नहीं कहा जायगा।

हमारे लाट और मुक़द्मेबाजी।

प्रान्तीय कौंसिल की पिछली बैठक में माननीय मुन्शी नरसिंह प्रसाद ने प्रश्न किया कि

युक्त प्रान्त में मुकदमेबाजी की वृद्धि का क्या कारण है। उन्होंने एक कमेटी बैठा कर इसकी जाँच करने की भी प्रार्थना की। मि० स्टुअर्ट ने जवाब में कहा कि वृद्धि हुई है और इस वृद्धि का कारण उन्होंने रहन सहन में बदलाव और व्यवसाय की वृद्धि बतलाया। हमारे लाट महोदय ने कहा कि मुकदमेबाजी की वृद्धि इस बात को प्रगट करती है, कि समाज उन्नति कर रही है और उसका स्वास्थ अच्छा है। हमें खेद है कि हमारी समझ में यह बात ठीक नहीं है। मुकदमेबाजी की वृद्धि इस बात को सूचित करती है कि समाज दिन दिन अवनति की सीढ़ियां उतर रही है, मनुष्यों में न्यायप्रियता नहीं है, वे झूठ बोलना पसन्द करते हैं। इन सब का प्रधान कारण कानून की बनावट, और धर्मशिक्षा विहीन अङ्गरेजी शिक्षा है।

मुकदमेबाजी के लिये माननीय मि० हालट् म्यकेञ्जी ने कहा थाः-

"The longer we have had these districts, the more apparently do lying, and litigation prevail.........the more are rights involved into doubts. ....."

जिन स्थानों में जितने अधिक दिनों तक हम लोगों ने राज्य किया है उस स्थान के लोग उतने ही अधिक झूठ बोलने वाले और मुकदमेबाज़ हुए हैं"। कानून की बनावट, अङ्गरेज़ी शिक्षा और मुकदमेबाजी के सम्बन्ध में मि० कष्ट ने कहा थाः-

Our whole *seystem of law and government and education* tends to make the natives clever, irreligious and *litigious scamps*"

No man can trust another. Formerly a verbal promise was as good as a bond. Then bonds became necessary, now bonds go for nothing and no prudent banker will lend money without recreving landed property in pledge. We are only to compare our new provinces with the old. From the recently acquired Punjab where the people have had little of our, government and education and are comparatively truthful and honest, the population becomes worse and worse as you descend lower and lower to our old possessions of Calcutta and Madras."

"हमारे कानून, शासन और शिक्षा ने भारतवासियों को धूर्त, अधार्मिक और मुकदमेबाज बना दिया है। अब कोई भी किसी का विश्वास नहीं करता। पहिले लोगों की बातही दस्तावेज के समान थी बाद में दस्तावेजों से काम होने लगा अब उन पर भी लोगों को विश्वास नहीं है आज दिन कोई चतुर महाजन विना कुछ रियासत रेहन रक्खे कर्ज़ नहीं देगा। जहाँ हमारा शासन नहीं रहा है या जहाँ हमारे शिक्षा का प्रभाव नहीं फैला वहाँ अब भी लोग सत्य प्रिय और अच्छे हैं। हाल में जीते हुए पञ्जाब के साथ मद्राज और कलकत्ते की तुलना करने से यह बात साफ प्रगट होती है।

इन्हीं सब कारणों से हमें यह उचित प्रतीत होता है कि एक कमेटी निर्माण की जाय और वह मुकदमेबाज़ी की वृद्धि के कारणों की जाँच करे।

इङ्गलेण्ड में हड़ताल।

हड़ताल के समाचारों को पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि लंडन की स्थिति आज कल बड़ी शोचनीय है। यद्यपि बीच में निपटारा की सम्भावना हो गई थी और जहाज़ के स्वामियों ने हड़तालियों को बात को स्वीकार कर लिया था परन्तु पीछे से फिर उन लोगों ने काम करना अस्वीकार कर दिया। पाठकों को याद होगा कि हड़ताल गत पहिली अगस्त को आरम्भ हुई थी

और आज २०वीं अगस्त है। २० दिन में कितनी हानि हुई है, व्यापार को कितना धक्का पहुंचा है? इस प्रश्न का उत्तर सहज में नहीं दिया जा सकता। लंडन के वणिकगण कहते हैं कि इस हड़ताल का प्रभाव महीनों रहेगा और खाद्य पदार्थों का मूल्य ५० फी सदी बढ़ जावेगा और इस प्रकार ग़रीब लोगों को अपूर्व और दुसह्य कठिनता का सामना करना पड़ेगा। आज कल लंडन में त्राहि २ मची है। रसद बिल्कुल कम रह गई है। मनुष्यों की बात दूर रही बिचारे घोड़ों को अधपेटे रहना पड़ता है! हाल ही का एक तार कहता है कि खाद्य पदार्थों की असाधारण रूप से मँहगी हो रही है। चारों ओर लूटपाट मची हैं। सरकारी सेना के लिये बाज़ार से जो रसद जाती है उसके साथ दृढ़ पहरा रखना आवश्यक हो गया है! बन्दरों पर सेना हर दम उपस्थित रहती है और उनकी रक्षा कर रही है क्योंकि हड़तालियों ने आग लगा देने की धमकी दी है। चारों ओर अशान्ति है और इस बीच लंडन तथा आयरलैंड में कितनी ही दुर्घटनाएं हो गई हैं। लंडन, लिवरपूल, मैनचेस्टर में खाद्य वस्तुओं की कितनी ही दूकानों में ताला लटकने लगा है और जो खुली हैं उनमें पूरा सामान नहीं! गत १५वीं अगस्त को कार्डिफ़ नामक स्थान में भूख से पीड़ित हवशी वणिकों के एक दल ने जो भोजन न मिलने के कारण उन्मत्त सा हो रहा था स्थानीय पुलीस पर आक्रमण किया! पुलीस के सिपाहियों को विवशतः स्वरक्षार्थ उनसे लड़ना पड़ा। पुलीस ने अपने छोटे २ डंडों से कितनों ही को घायल किया। अंत में देखा गया कि १२ हवशी बिलकुल अचेतन अवस्था में पड़े हैं! इसी प्रकार कितनी ही अन्य ऐसी ही घटनाएँ हो गई हैं जिनका मुख्य कारण यही हड़ताल है।

इसमें सन्देह नहीं कि हड़ताल का निपटेरा करने के लिये जितनी सभा, कमेटी, कानफरेंस इत्यादि हुई उन से कुछ अंशों में लाभ हुआ है विशेष कर गत रविवार को तो एक प्रकार निपटेरा ही हो गया था और लोग अपने कार्य्य पर जाने को वस्तुतः प्रस्तुत थे परन्तु हड़तालियों में से कुछ मनुष्यों को मालिकों ने नौकरी ही से निकाल दिया इस कारण समस्त हड़तालियों ने कार्य्य करना छोड़ दिया! ध्यान दीजिये कि लंडन के कुलियों और मज़दूरों मे कितना ऐक्य भाव है! यदि उनका एक भाई भी निकाल दिया जाय तो वे काम नहीं करते हैं! इस तरह काम करना वे अपना अपमान समझते हैं! सोचने की बात है कि सहस्त्रां मनुष्य बेकार बैठना पसन्द करते हैं, अपनी आर्थिक हानि सहना स्वीकार करते हैं परन्तु यदि उनके कुछ साथी निकाल दिये जावें तो मुह मांगा बरदान भी लेना उन्हें अस्वीकार होता है! इसी का नाम आत्मगौरव है, इसी का नाम आत्माभिमान है। लंडन के बड़े २ राजनीतिज्ञ पुरुषों ने अपने कथन में कहा है और अधिकांश लोगों का यही विचार है कि लंडन में जो आज कल अशान्ति और हड़ताल है वह केवल मालिकों ही की ग़लती का परिणाम है! क्योंकि पिछले १० वर्षों से कर्मचारियों का वेतन उतना ही चला आ रहा है और उस में कुछ बढ़ती नहीं हुई—इस के विरुद्ध पिछले समय की अपेक्षा आज कल खाने में अधिक खर्चा बैठने लगा है। ऐसी अवस्था में वेतन बढ़ाना उचित है।

मिदनापुर डेमेज सूट।

पाठकों को विदित होगा कि उपर्युक्त मुकदमे का फ़ैसला हो गया। माननीय जज फ्लेचर साहेब ने १०००) दिलाया। फ़ैसले से बड़ी २ बातें मालूम होती हैं। गवर्मेंट को भी उचित है कि वह आँख खोल कर देखें कि पुलिस वाले कैसा अत्याचार करते हैं। झूठा मुकदमा बना कर समाज के इतने मनुष्यों को कष्ट पहुंचाना कहाँ तक उचित है। मि० वसटन, हक और लालमोहन तीनों मनुष्यों ने मिल कर इस मा-

मले की गढन्त की थी यह फैसले से साफ २ प्रगट होता है। गवर्मेंट ने पत्र के सम्पादकों की बात पर ध्यान न दे इन्हीं लोगों को पार साल पदवियां दी थीं अब सुना जाता है कि इन्हीं लोगों की तरफ से अपील होने वाली है। जो खर्च अभी दिलाया गया है वह प्रायः ७५००) है और १०००) नुकसानी सब मिला कर ७६,०००) प्रजा ने निज का खर्च किया इस के सिवाय कम से कम इतना ही रुपया प्रजा का गवर्मेंट ने अपनी ओर से भी खर्च किया होगा। अब फिर अपील होने में खर्च होगा। यह अपील प्रायः इस लिये की जायगी कि सरकारी अफसरों का मान रह जाय और गवर्मेंट का Prestige बना रहे। यदि इन्हीं रुपयों से आज दिन गुजरात और बुन्देलखण्ड के अकाल पीड़ित मनुष्यों की सहायता की जाय तो क्या गवर्मेंट के Prestige में कुछ अन्तर हो जायगा।

स्वदेशी मेला।

पाठकों को विदित है कि अब वङ्ग विभाग का विरोध करने के लिये जो सभा प्रतिवर्ष होती थी अब नहीं होती। अब की वर्ष सभा के स्थान में एक मेला लगाया गया जहां पर हर प्रकार की स्वदेशी वस्तु मिलती थीं। इस में सन्देह नहीं की सभा की अपेक्षा यह मेला अधिक हितकर और लाभदायी है। ७ अगस्त से १० अगस्त तक मेला रहा। प्रायः ३५,००० मनुष्य मेले में सम्मिलित हुये। ईश्वर करे इस मेले की दिनों दिनों वृद्धि हो और केवल बङ्गाल ही में नहीं किन्तु सारे भारतवर्ष में यह मनाया जाने लगा और उस सप्ताह में कोई भी भारतवासी किसी प्रकार की भी विदेशी वस्तु न खरीदे।

हमारे सत्यदेव।

हमारे पाठक श्रीमान् सत्यदेव जी से अच्छी प्रकार से परिचित हैं। अभी थोड़े ही दिन हुए हम लोगों ने सत्यदेव जी के साथ वाशिङ्गटन नगरी की शैर की थी। अब हमारे मित्र अमेरिका इङ्गलैण्ड, स्वीजरलैण्ड फ्रांस आदि देशों में घूम कर मातृभूमि की सेवा के निमित्त यहां आ गये हैं। हम सब भाई उनका हृदय से स्वागत करते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि मातृभूमि की भक्ति का श्रोत उनके हृदय में सदा बहता रहे। श्रीयुत सत्यदेव जी आज कल देहरादून में हैं और उनका पता यह है—

श्रीयुत सत्यदेव
c/o
श्रीयुत फूलचन्द जी रईश
देहरादून।

हिन्दू शिक्षा लीग।

लाला लाजपतराय ने ट्रिबून में एक पत्र लिखते हुये उपर्युक्त लीग के स्कीम का निरूपण यों किया है। वे कहते हैं कि मि० गोखले के शिक्षा बिल के कानून हो जाने पर उसकी सफलता शिक्षित पुरुषों के समुदाय पर निर्भर रहेगी। इस समुदाय को यह आवश्यक है कि वह अपने स्थानों में शिक्षा प्रचार कर पढ़ने वालों की संख्या में वृद्धि करे। अन्त्यज और नीच श्रेणियों के बालकों में शिक्षा प्रचार करने के लिये भी यत्न करना चाहिये। हम लोगों का उद्देश्य केवल प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार करना है। उनकी राय में ३०,०००) सलाना के खर्च से तीन वर्ष में लाहौर में स्कूल जाने लायक लड़कों में ७५ फी सदी पढ़ जांयगे और २५ फी सैकड़ा कन्यायें पढ़ना लिखना सीख लेंगी। शिक्षा विभाग के साथ साथ यह लीग अपना कार्य करेगी। उन्होंने यह भी लिखा है कि चन्दा साफ २ यह कह कर लिया गया है कि शिक्षा का माध्यम हम लोगों की मातृ भाषा होगी। गुरमुखी या उर्दू से हम लोगों को कोई विरोध नहीं है किन्तु जो इनका पढ़ना उचित समझें वे अपना २ प्रबन्ध अलग कर ले।

अभ्युदय प्रेस प्रयाग में कृष्णप्रसाद पांडे द्वारा छप कर प्रकाशित।

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग २] सितम्बर सन् १९११–आश्विन [संख्या ५

मातृ-भूमि ।

[लेखक–पं० मन्नन द्विवेदी गजपूरी]

जन्म दिया माता सा जिसने
किया सदा लालन पालन ।
जिसका मिट्टी जल आदिक से
निरचित है हम सब का तन ॥

(२)

जसके त्रिविध पौन के झोंके
चहुं दिशि निश दिन चलते हैं ।
शायित सुअनों के सुखकारक
सुभग बीजना झलते हैं ॥

(३)

गिरवर गन रक्षा करते हैं
उच्च उठा निज शृंग महान ।
जिसकी लता द्रुमादिक करते
हैं हमको निज छाया दान ॥

(४)

कल कल शब्द मनोहर करती
शोभित सरिता छवि भारी ।
बिना लिये कर जो देती है
शीतल जल शुभ सुखकारी ॥

(५)

माता केवल बाल काल में
निज अङ्कम में धरती है ।
हम अशक्य जब तलक
तभी तक पालन पोषण करती है ॥

(६)

मातृ-भूमि करती हम सब का
पालन सदा मृत्यु पर्य्यन्त ।
जिसको दया प्रवाहों का नहिं
होता है सपने में अन्त ।

(७)

मरने पर भी कण देहों के
उसमें ही मिल जाते हैं ।
हिन्दु जलते यवन इसाई
दफन इसी में पाते हैं ॥

(८)

ऐसी मातृ-भूमि अपनी है
स्वर्ग लोक से भी प्यारी ।
जिसकी रक्षा हित तन मन धन
मेरा सर्वस बलिहारी ॥

विनय ।

[लेखक—श्रीयुत मैथिली शरण गुप्त]

अहह ! हम तुम्हें यों जो नहीं भूल जाते,
प्रभुवर ! हम तो क्यों यातना आज पाते ।
हम अति अपराधी हैं तुम्हारे अवश्य,
पर विदित तुम्हारी है क्षमा प्रेम-वश्य ॥

२

सुत पर रखता है तात जैसे तितिक्षा,
प्रणय युत उसे है नित्य देता सु-शिक्षा ।
प्रभुवर ! रख तैसे दृष्टि वात्सल्य-पूर्ण,
मद सहित हमारा कीजिए मोह चूर्ण ॥

३

बस बहुत तुम्हारी देख ली मोह-माया,
अति शिथिलित हो के हो गई क्लान्त काया ।
अब भ्रमण मिटा दो अन्यथा प्राण जाता,
प्रभुवर ! इसका तो अन्त ही है न आता ॥

४

स्वजन-विरह वाधा वह्नि से वारवार,
यह हृदय हमारा हो गया छार छार ।
प्रभुवर ! अब कीजे बुद्धि ऐसे ठिकाने,
हम सुहृदय हो के विश्व को बन्धु जाने ॥

५

जब कि तनिक सी भी हैं हमें चोट आती,
दहल दहल जाती दुःख से दीन छाती ।
प्रभुवर ! हम हाहा ! जीव कोई न मारें,
निज सदृश सभी के प्राण प्यारे विचारें ॥

६

सुन कर जलता है जो किसी का विकास,
बस वह उसका है चाहता सर्व नाश ।
प्रभुवर ! न किसी से हो असूया हमारी,
अखिल जन तुम्हारे हैं प्रणदाधिकारी ॥

७

हम, धन, पद, सत्ता मांगते हैं न नाथ,
बस यह इतनी है प्रार्थना जोड़ हाथ ।
प्रमुदित जिससे है रङ्क राजा समान,
प्रभुवर ! बस कीजे शान्ति सन्तोष दान ॥

८

जिस पर रखता है भाव जो जीव जैसा,
उस पर उसका भी हो न क्यों भाव वैसा ।
प्रभुवर ! हम रक्खें विश्व में प्रेम-भाव,
हम पर जिसमें हो विश्व का क्षेम-भाव ॥

९

जो आपने देव दयक गेह ।
दी है हमें मुख्य मनुष्य-देह ॥
मानुष्य भी तो फिर आप दीजै,
की है कृपा तो फिर पूर्ण कीजै ॥

हिन्दी की वर्त्तमान दशा।

—o-:*:-o—

[लेखक-श्री साहित्याचार्य्य पाण्डेय रामावतार शर्म्मा, एम्० ए०]

"या शिल्पशास्त्रादि पयो महार्हं
संदुह्यते योजितबुद्धिवत्सैः ।
वैज्ञानिकै र्विश्वहिताय शश्वत्तां
भारतीं कामदुघामुपासे ॥"

वाङ्मयमहार्णवे ।

रहवीं शताब्दी में, अर्थात् आज से कोई सात सौ बरस पहले, कन्नौज के राजा जयचन्द्र के समय में नैषधकार श्रीहर्ष कवि थे। प्रायः इसी समय में दिल्ली के राजा पृथुराज अथवा रायपिथौरा की सभा में चान्द कवि हुए थे। इनकी कविता जिस प्राकृत में है इसी को किसी प्रकार हिन्दी भाषा का एक पूर्वरूप कह सकते हैं। उस समय से आज तक सात सौ बरस में कितने ही परिवर्तनों के बाद आज खड़ी हिन्दी कुछ ऐसी उठ खड़ी हुई देख पड़ती है कि अब उसमें गद्य-पद्यात्मक साहित्य निकल चला है। और आशा है कि इस भाषा के बोलनेवाले और समझनेवाले—जिनकी संख्या पांच सात करोड़ से ऊपर ही होगी—यदि ठीक प्रयत्न करें और शक्ति का व्यर्थ व्यय न कर उत्साहपूर्वक तन मन धन से लगें तो थोड़े ही दिनों में हिन्दी का साहित्य उपयोगी ग्रन्थों से पूर्ण हो जायगा। हिन्दी की जो दशा हो चुकी है उसका वर्णन करना इस प्रबन्ध का उद्देश्य नहीं है। और वस्तुतः इसकी अतीत दशा कुछ ऐसी छिन्न भिन्न है कि इसके विषय में बहुत कहने से कुछ लाभ भी नहीं है। अनेक अपभ्रंशों के रूप में आज तक यह भाषा रही है; थोड़े ही दिनों से खड़ी भाषा का रूप धारण कर अब कुछ कार्य के योग्य हुई है। इस लिये यहां खड़ी या पक्की हिन्दी की वर्त्तमान दशा के विषय में ही कुछ कहने का उद्योग किया जा रहा है जिससे इस भाषा ने क्या कर लिया है और क्या इसका कर्त्तव्य है, इस विषय का कुछ परिचय हो जाय।

अब पक्की हिन्दी एक ठिकाने की भाषा हो चली है। इस हिन्दी से और उर्दू से प्रायः नाम ही मात्र का भेद है। हिन्दी बोलनेवाले उर्दू-रूप-वाली हिन्दी को भी खूब समझ लेते हैं और उर्दूवाले इसके हिन्दी-रूप को भी समझते ही हैं। इस लिये पंजाब से लेकर पच्छिमी बंगाल तक और तराई से लेकर नागपुर तक हिन्दू मुसल्मान आदि सभी जातिओं की 'साहित्य भाषा अर्थात् किताबी-भाषा हिन्दी ही है, चाहे घर में वे 'एलीं गैलीं', 'ऐल्थुन गेल्थुन' 'आइछि जाइछि', 'आवत हौं जात हौं', 'अलई गलई' आदि कैसेहू शब्दों से व्यवहार करते हों। पर अनेक कोटि बड़े बड़े सभ्य और असभ्य मनुष्यों की जो यह किताबी-भाषा है इसकी आज कैसी दशा है यह यदि खुल्लम खुल्ला कह दिया जाय तो कितने ही लोगों की आंखें खुल तो जायंगी, पर यदि उन आंखों में कुछ प्रबल ज्योति होगी तो चारो ओर कुछ विलक्षण, बीभत्स और नैराश्यजनक दृश्य देख पड़ेगा। इतने करोड़

मनुष्यों की भाषा विशेषतः-ऐसे मनुष्यों की भाषा जिनमें से कितने ही बड़े लाट की सभा के सदस्य हैं और हाईकोर्टके जज हैं तथा श्वेतद्वीप को पार्ल्यमेण्ट में भी बैठने का प्रयत्न कर रहे हैं और एकआध पार्ल्यमेण्ट की सीढ़ियों तक पहुंच भी गये हैं—ऐसी भाषा अभी ऐसी दशा में है कि इसमें अभी तक न तो एकभी छोटे से छोटा विश्वकोषहै, न सकड़ों शास्त्रों में से एकआध के अतिरिक्त किसी शास्त्र के ग्रन्थ ही हैं। जिन एकआध शास्त्रों के ग्रन्थ हैं भी सो अभी बच्चों के खेल ही के सदृश हैं। अनेक कोटि बालकों की मातृरूपा जो यह भाषा है इसके तुच्छ भाण्डार में वैज्ञानिक और दार्शनिक आदि ग्रन्थों की चर्चा कौन करे, स्वतन्त्र कोई उत्तम काव्य, नाटक आदि भी नहीं हैं। उपन्यासों की संख्या केवल कुछ बढ़ी चढ़ी सी देख पड़ती है। पर इन उपन्यासों में न तो कोई नवीनता है, न कोई उपदेश हैं और न विशेष कोई साहित्य के गुण ही हैं। कुछ थोड़ी सी हाथ की गर्मी से गलने पर नाक में उड़कर लगनेवाली और वेहोशी देनेवाली मोतियों की और पाकेट में रखने लायक कमन्दों की कहानियां जहां तहां भरी हुई हैं जिनसे पुलिस के मारे आजकल चोरों का भी कोई काम नहीं चल सकता।

साहित्य की अभी यही दशा है कि उपयोगी ग्रन्थ न तो पहले ही से बने हुए हैं और न आज ही कोई बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। आगे की आशा कुछ की जाय तो किसके बल से?। कौन ऐसा सभ्य देश है जहां मातृभाषा में नये और पुराने तत्त्वों के अनुसन्धान के लिये और उत्तमोत्तम ग्रन्थों के निर्माण के लिये अनेकानेक सभाएं आज लाखों और करोड़ों रुपयों के खर्च से नहीं स्थापित हैं? क्या भारतवर्ष अपने को सभ्य नहीं कहता है? क्या उत्तर भारत को लोग आर्यावर्त्त नहीं कहते आये हैं? यदि यह स्पष्ट विदित हो जाय कि अब आर्यावर्त्त घोर-अविद्या के अन्धकार में रहनेवाले अनार्यों का भूमि हो चली है तब तो फिर इस भूमि के वर्णन के समय अन्य सभ्य जातिओं का नाम लेना बड़े भारी प्रायश्चित्त का काम होगा। पर यदि यह वही भूमि है जहां याज्ञवल्क्य, पाणिनि, आर्य्यभट, भास्कर आदि अनेक दार्शनिक और वैज्ञानिक हुए थे और यदि वन्य-रुधिर का बहुत कुछ समावेश होने पर भी आर्य-रुधिर का कुछ भी अंश इस भूमि में रह गया है तो इस भूमि के निवासियों को यह कह देना सभी देश हितैषियों का परम कर्त्तव्य है कि **संस्कृत हिन्दी आदि देशभाषाओं को जिस अवस्था में इन लोगों ने रक्खा है इससे किसी सभ्य जाति में ये मुंह दिखाने लायक नहीं हैं।** देशभाषा में दर्शन विज्ञान आदि के उत्तमोत्तम ग्रन्थों के निर्माण के लिये यदि सौ सभाएं भी भारत में होतीं तोभी यहां के मनुष्य अन्य सभ्य जातियों से कुछ बढ़े चढ़े नहीं कहे जा सकते थे। परन्तु यहां तो एक भी ऐसी समिति नहीं है जहां वर्ष में दो एक बार अच्छे अच्छे विद्वान् एकत्र हों और विद्या प्रचार, ग्रन्थ निर्माण आदि के विषय में पूर्ण विचार कर आपस में कार्य बांट कर अपने अपने घर जांय और पुनः पुनः सम्मिलित हो कर देखें कि उनमें से किसने कितना कार्य किया और जब इन के ग्रन्थ व्याख्यान आदि तैयार हो जांय तो उन्हें प्रकाशित करने, पढ़ने, पढ़ाने आदि का पूर्ण व्यय से प्रबन्ध किया जाय। दो चार नगरों में जो सभाएं हैं वे तो केवल सड़ी गली सौ पचास बरस की दोहा चौपाई की पोथियों के अन्वेषण में और टके की डिक्शनरियों के निर्माण में देश के समय, शक्ति, उत्साह और धन का व्यय कर रही हैं। और जो एकआध सामयिक सम्मेलन हैं उन्हें भी न तो द्रव्य ही की सहायता है और न अभी कोई ऐसा मार्ग ही सूझता है जिससे सभ्यता

की अभिमानवाली, हिन्दी बोलनेवाली, भारतीय जातियों में असली विद्या का प्रचार हो और घोर अविद्या का नाश हो।

अविद्या का कुछ ऐसा स्वभाव है कि जिन पर इसका बोझ रहता है वे इसे बड़ी प्रसन्नता से ढोते हैं। और इसे महाविद्या के सदृश देवी समझ कर पूजते हैं। कुछ तो ऐसा ही सब बोझा ढोने वालों का स्वभाव होता है। काल पाकर भारी से भारी बोझ भी हलका ही ज्ञान पड़ता है। शरीर पर हजारों मन के वायु का बोझ इसी अभ्यास के कारण कुछ भी नहीं मालूम पड़ता। ऐसे ही अविद्या का बोझ भी अविद्या के भक्तों को कभी नहीं सताता। इस बोझे का एक और भी बड़ा भारी गुण है कि इसके भक्त इसकी गुरुता को नहीं समझते। इतना ही नहीं, कुछ दिनों में इससे बड़ा प्रेम करने लगते हैं। सुनने में आया है कि वेतिया के पास कुछ ऐसी भमि है जहां लोगों का गला बहुत फूल आता है। इस व्याधि को घेघा कहते हैं। उस अद्भुत भूमि के लोग विना घेघा के मनुष्य को देख कर बहुत ही हँसते हैं और कहते कि यह कैसे मनुष्य हैं जिनके गले में उठंघनी नहीं है। ऐसे ही अविद्या के बोझवाले वस्तुतः विद्या ही को व्यर्थ का बोझ समझते हैं और विना अविद्या के पुरुषों का नास्तिकता आदि में पचते हुए समझते हैं। जिस भूमि के अधिकांश मनुष्य ऐसी अविद्या-व्याधि से पीड़ित हों उस भूमि का सुधार सहज में नहीं हो सकता। ऐसी भूमि के सुधार में कितनी कठिनाइयां हैं सो तो उत्तर भारत के नेताओं को विदित ही है। अफीम की पिनक में समाधि का आनन्द लेनेवाले या साड़ी घुंघरू पहिन के नाचनेवाले महात्माओं के आराम के लिये बीस लाख का मन्दिर बनवा देना या तीर्थ के कौओं की प्रियतमाओं को ऋण करके भी पालने वाले बाबू लोगों के लिये सरायखाना बनवाने में करोड़ों खर्च कर देना यहाँ के लोगों के लिये आसान सी बात है। पर विज्ञान की वृद्धि में ऐसे दुर्व्ययों का सहस्रांश भी निकाल लेना बड़े बड़े वक्ताओं और नेताओं के लिये भी कठिन काम है। पर काम कठिन हो या सहज, जब छोटी बड़ी सभा सम्मेलन आदि देश में हो रही हैं और देशवाले अपनी सभ्यता के गौरव पर इतने जोर से चिल्ला रहे हैं तो आज उनका क्या कर्त्तव्य है यह हमें कहना ही पड़गा।

शिक्षा के तीन अङ्ग हैं—संग्रहाङ्ग, संघटनाङ्ग और कार्याङ्ग। जैसे प्राणिमात्र का यह धर्म है कि वह भोज्य पदार्थों को बाहर से अपने अङ्गों में रखता है और उनसे अपने रुधिर आदि की पुष्टि कर फिर बड़े बड़े कार्यों को करता है, वैसे ही प्रत्येक जीवित भाषा की जीवरक्षा और बल-वृद्धि नवीन प्राचीन बाहरी विज्ञानों का संग्रह कर अपने शरीर में पचा लेने ही से हो सका है। इसी बाह्य विज्ञान के संचय को संग्रहाङ्ग कहते हैं। बाहर से लाये हुए विज्ञानों को जब तक ठीक पचाया न जाय तब तक उनके संग्रह का कुछ फल नहीं। भात, दाल, पूरी, मिठाई आदि मुख के द्वारा पेट में जाकर पचें तभी बल को बढ़ा सकते हैं। इन्हें केवल माथे पर रख लेने से गिद्ध कौओं के झकने के अतिरिक्त और कोई फल नहीं हो सकता। संगृहीत विज्ञानों को मुख के द्वारा पेट में पहुंचा कर उससे हाथ पैर आदि की पुष्टि करने को संघटनाङ्ग कहते हैं। हाथ पैर आदि की पुष्टि होने पर फिर नये विज्ञान आदि का आविर्भाव करना और प्राचीन विज्ञानों से पूर्ण काम लेना इसीको कार्याङ्ग कहते हैं। अभी विद्या का संग्रहाङ्ग तो कुछ कुछ कितने ही समय से भारत में परिपोषित हो रहा है, पर और दोनों अङ्ग ऐसी हीनावस्था में हैं कि भारतीय शिक्षा को यदि इन दोनों अङ्गों से सर्वथा विकल कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। अङ्गरेज़ी शिक्षा भारत में खूब हो रही है इसमें इसमें कुछ सन्देह नहीं। पर यह शिक्षा भी

वैज्ञानिक और दार्शनिक अंशों में ऐसी पूर्ण नहीं है जैसी काव्य साहित्य आदि के अंशों में है। अङ्गरेज़ी विज्ञान के जो भोज्य पदार्थ भारत-वासियों के यहां आते भी हैं वे कहीं बाहर ही पड़े पड़े बासी हो जाते हैं। **भारत-सरस्वती का मुख संस्कृत है।** इस मुख तक तो यह विज्ञान अभी पहुंचा ही नहीं है। जब तक मुख में नहीं पड़ेगा और मुख के द्वारा उपयुक्त होकर अङ्गों के सदृश, हिन्दी, बंगला तामील, मराठी आदि भाषाओं में बल नहीं पहुंचावेगा तब तक भारतीय शिक्षा का संघटनाङ्ग कैसे ठीक हो सकता है? ज्योतिगणित, दर्शन, वैद्यक आदि जो कुछ भारत-सरस्वती के मुख रूप संस्कृत में थे उन्हींके कारण तो कुछ बल और प्रतिष्ठा समस्त देश की जहां तहां आज भी हो रही है। हिन्दी बंगला आदि जो भारत-सरस्वती के हाथ पैर हैं इनके रगों और पुट्ठों में संस्कृत के रुधिर की ऐसी आवश्यकता है कि बिना उसके वैज्ञानिक और दार्शनिक शब्द ही नहीं बन सकते। एक अङ्ग यदि कुछ शब्द गढ़ ले तो भी वह दूसरे अङ्गों के अनुकूल नहीं होता। इसलिये जैसे संग्रहाङ्ग के लिये अङ्गरेज़ी शिक्षा की आवश्यकता है वैसे ही संघटनाङ्ग के लिये संस्कृत को उन्नति की आवश्यकता है। ऐसी अवस्था में संस्कृत हिन्दी आदि भारतीय भाषाओं में शिक्षा प्रचार का ऐसा आरम्भ होना चाहिये कि जिससे हमारे देश में भी विज्ञान का वसा ही पूर्ण प्रचार हो जैसा जर्मनी, इङ्गलैण्ड आदि अन्यदेशों में हो रहा है, इस महायज्ञ के लिये बड़े बड़े विश्वविद्यालयों की अपेक्षा है। पर सुनने में आता है कि विश्वविद्यालय तो ऐसे बनेंगे जहां बाहरी भाषाओं के पढ़ने से और माला सटकाने से प्रायः कुछ समय ही नहीं बाकी रहेगा जिसमें विज्ञान की चर्चा हो।

ऐसे बड़े कार्य में देश के जितने नेता हैं उन सबों को मन, वचन, कर्म से लग जाना चाहिये था। पर पार्ल्यमेंट में आसन खोजने से और मज़हबी गालीगलौज से कुछ भी समय बचे तब तो विचारे देश के नेता इधर दृष्टि दें। जो हो, कार्य यही उपस्थित है कि किसी सम्मेलन में विद्वानों को एकत्र कर एकवार अत्यन्त आवश्यक निर्मेय ग्रन्थों की सूची बनाकर आपस में कार्यभार बांटकर जैसे हो सके--प्राण देकर भी--इन ग्रन्थों के निर्माण, प्रकाश और प्रचार के लिये जिनसे हो सके वे यत्न करें। एक ऐसी सूची बहुत दिन हुए मैंने काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को बाबू श्यामसुन्दरदास के द्वारा दिया था। उससे कुछ भिन्न, परन्तु उसी प्रकार की सूची यहां आपके सामने भी उपस्थित करता हूं। जहां तक हो सकता है इन ग्रन्थों के निर्माण और प्रकाश के लिये और भी यत्न हो रहे हैं। पर बड़े बड़े सज्जन जो सम्मेलन में उपस्थित हैं यदि वे इधर दृष्टि करेंगे तो सम्भव है कि कार्य में शीघ्र अच्छी सफलता हो।

प्रायः सौ विषयों की सूची आगे दी हुई है। इन विषयों पर छोटे बड़े ग्रन्थ बनें और उनके प्रकाश और प्रचार के लिये पूर्ण प्रबन्ध किया जाय तो देश का बड़ा उपकार हो।

१ ज्योतिर्विद्या
२ भूगर्भशास्त्र
३ भूस्थिति
४ सागरस्थिति
५ प्राचीन उद्भिद
६ प्राचीन प्राणी
७ उद्भिद शास्त्र
८ प्राणिशास्त्र
९ प्राचीन तत्वसंग्रह
१० मनुष्य शास्त्र
११ मनुष्य-जाति शास्त्र
१२ ध्वनि शास्त्र
१३ प्रभा शास्त्र
१४ ताप शास्त्र
१५ अयस्कान्त शास्त्र
१६ विद्युत्शास्त्र
१७ यन्त्र शास्त्र
१८ औषध वैद्यक
१९ शल्य वैद्यक
२० स्वास्थ्य शास्त्र
२१ पशु वैद्यक
२२ अस्थि विभाग
२३ शरीर विभाग
२४ अङ्क गणित
२५ बीज गणित
२६ क्षेत्र गणित
२७ कोण गणित
२८ कलन गणित
२९ त्रिकोण मिति
३० हार्मनिक गणित
३१ भेकूर गणित
३२ गति गणित
३३ स्थिति गणित
३४ भाव शास्त्र
३५ आचार शास्त्र
३६ न्यायशास्त्र
३७ रेखागणित
३८ नीति शास्त्र
३९ अर्थ शास्त्र
४० व्यवहार शास्त्र
४१ समाज शास्त्र
४२ ईश्वरवाद
४३ धर्मपरीक्षा
४४ मनस्तत्व
४५ सत्परीक्षा
४६ ज्ञान परीक्षा
४७ पाक विद्या
४८ कृषि विद्या
४९ वयन विद्या
५० वास्तु विद्या
५१ नाद विद्या
५२ रञ्जन विद्या
५३ आलोक चित्रन
५४ उत्करण विद्या
५५ मूर्त्ति निर्माण
५६ आयुध विद्या
५७ मल्ल विद्या
५८ नाट्य विद्या
५९ जलयान विद्या
६० स्थलयान विद्या
६१ वायव्ययान विद्या
६२ खनि विद्या
६३ जीविका भेद
६४ क्रीड़ा भेद
६५ समय निर्णय
६६ भारत का इतिहास
६७ इङ्गलैंड का "
६८ आमेरिका का इतिहास
६९ आष्ट्रिया का "
७० फ्रांस का "
७१ जर्मनी का "
७२ ग्रीस का "
७३ इटली का "
७४ नेदरलैंड का "
७५ पुर्त्तगाल का "
७६ रोम का "
७७ रशिया का "
७८ जापान का "
७९ स्पेन का "
८० टर्की का "
८१ चीन का "
८२ भाषा तत्त्व
८३ लिपि का इतिहास
८४ व्याकरण तारतम्य
८५ संस्कृत साहित्य
८६ भारत "
८७ अरब "
८८ फ़ारस "
८९ ग्रीस "
९० रोम "
९१ अङ्गरेज़ी "
९२ जर्मन "
९३ फ्रांस "
९४ इटली "
०५ रशिया "
९६ स्पेन "
९७ चीन "
९८ जापान साहित्य
९९ वाणिज्य
१०० अलङ्कार

काव्य-कलाप ।

लेखक—महादेव प्रसाद (शिव) सुजान ।

रघुनन्दन की आनँद कन्दन छबि कसे कोउ गावै।
कविकीमतिगतिथकतजाहिलखि,रसनारहि२जावै
पद लावनिता वर बनिता की समता नेकु न पावै।
ईंगुर गुलगुलाव केसर कुज, बिम्ब प्रबाल लजावै
जावक पावक कुंज पुंज ह्व, गुंजा मंजु लजावै ।
आफ़ताव वेताव होत लखि, फिर आवै फिर जावै
नख की जोत उदोत होत लखि, चन्द मन्द ह्वै जावै
ओज सरोज रोज गहिछीन्यो, खोज इतो कवि पावै
जोगी जती जोत जेहि जाहिर, नेकु कहूं लखि पावैं
जन्म २ के जुरे जोग तजि छनक मांहि जरि जावैं
मरकत समता कहतकोउबुध, करिकरसमताकोऊ
जानुजंघलखिमैं हूं भाषहुं, यह सत्तन जग होऊ
श्रीराघवकीकटितट सुखनिध,सुन्दरसूक्षमबषानो
तापै रोमावली उदरकी, खिली लता सौं जानो
सुछबि उँजाला लखिबनमाला, उरपुरहोतबिहाला
जन प्रति पालापंकजनाला, डोलत बाहुविशाला
सुखमा उपमाना कौन समाना, मन मानानहिं आना
पीठ पटतरी देत कदल दलूमरकत मनिक लजाना
बृषभ कंध सौं कंध मनोहर, केकी कंठ दिखाई ।
लेत अमोल मोलमनजन को ओज मनोज लजाई
चिबिकु सिवुक की शोभारूरी, कहिनजाइभरिपूरी
गजब गरूरी जाहि बिसूरी, भाव भूर उर पूरी ॥
मुखसुवासकीमहकगहकसुठि, अधरसुधरअसराजै
पल्लव प्रबाल प्रबल मुक्त गज, लखि २ जाको लाजे
हँसनिगँसनिकीलसनिमनोहर,दसनदमनहमकावै
फँसनफाँस की कसन उजागर,कोहिनकाम लजावै
ललित लवंगन सरसिजचंदन,बास न जूही जोही
सुरँग केतकी एलनक्योड़ा, मुखसुवास नहिजोही
रसना भरी सरसरस सौंसुठि, बस ना काकोकरती
अस रस ना कहुं रहत जगतमें,जस ना बोलतकढ़ती
गोल सुडोलकपोललाललखि,उपमासबबिसराई
उक्ति युक्तिपुनि लाइ कहूं कस, जस नासाछबिछाई
लोल लाक लटकन लुरदेखत, उपमायहिजियआवै
मानहुं कीर बैठि बिम्बाफल, सुधाबुन्द मुख लावै
श्रवन भवन इन बनोघनोशुचि, रुचिशोभादरशावै
मनो श्रुतिन को कूप रूपवर, महिमा अमित जनावै
अरुनारे कारे कजरारे नैना किम कहि जाई ।
दीपक मन मलीन छबि छीन्यो, खंजन जातखिजाई
भौंह कमान समान तान छबि, जौन ओर सरसावैं
सबहिं चितौनदेखि नर मोहैं, अकथनीय सुख पावैं॥
ललितललाटओपअतिचोखो, निपटहिं बनोअनोखो
चमकनचारुसुनखसिखभूषन, बनोछनोअतिशोखो
मोर मुकुट द्युति रामचन्द की; चन्द मन्द करि दीनो।
सो छबिकबिइहँकहैंकहौ कस, जानहिजोरसभीनो॥
राम अंग द्युति मद अनंग को, भंग करत छनमाही ।
सानुज सखा संग द्युति नीकी, कहीजाइ केहि पाही
भाइन भेष बनो अति रूरो, लखि उमंग सर सावे।
लसे जरकसी अम्बर तन से अजब छटा छहरावै ॥
मंत्र वशीकर किधौं रूप धर, कीधौ रस शृङ्गारा ।
शङ्का कोटि काम उर उपजत, राम रूप निरवारा ॥

दोहा ।

राम रूप नूपम परम, कौन सकहि कवि गाइ ।
ब्रह्मादिक शिव छाक छबि, तन मन दियो भुलाइ ॥

छन्द रोला ।

शोभाधाम मुदाम राम सो दशरथ लाला ।
निज मर्यादा हेतु बीनती सुनहु उताला ॥
यह मर्यादा पत्र आप निज शरनन लीजै ।
चिरंजीव जेहि रहै यहै सुन्दर बर दीजै ॥

हिन्दी के मुसलमान कवि ।

[लेखक–परिडत गणेशविहारी मिश्र, परिडत श्यामविहारी मिश्र, परिडत शुकदेवविहारी मिश्र]

सम्मेलन ने कृपापूर्वक हमको यह काम सौंपा है कि आप महाशयों को मुसलमान कवियों का कुछ हाल सुनावें। इस गम्भीर विषय पर कुछ लिखने के लिये बड़ी गवेषणा की आवश्यकता है और उचित था कि कोई विशेष श्रमशील और अनुभवी व्यक्ति इस विषय को हाथ में लेता। परन्तु बड़ों की आज्ञा शिरोधार्य्य मान कर हम ही 'निज पौरुष परमान ज्यों मशक उड़ाहिँ अकास' का न्याय धारण कर के इस प्रयत्न में प्रवृत्त होते हैं।

हिन्दी भाषा प्राकृत का वर्त्तमान रूप है, अर्थात् प्राकृत भाषा ही विगड़ते विगड़ते इस रूप को प्राप्त हुई है। यह विगाड़ किसी एक समय में नहीं हुआ, परन्तु धीरे धीरे शताब्दियों तक होता रहा। अतः सिवा मोटे प्रकार से और किसी भाँति हिन्दी का जन्मकाल नहीं बतलाया जा सकता। इस मोटे प्रकार से हिन्दी का जन्मकाल संवत ८०० के लगभग माना जा सकता है। मुसलमानों ने आर्य्यावर्त्त से सम्बन्ध होते ही हिन्दी काव्य की ओर ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया था, यहां तक कि जिस समय महमूद ग़ज़नवी ने संवत १०८० में भारत पर चढ़ाई की थी उस समय उसकी सभा में हिन्दी जाननेवाले और कविता के समझनेवाले तक प्रस्तुत थे। यह आक्रमण महाराजा कालिंजर के राज्य पर हुआ था जहां के स्वामी राजानन्द ने एक छन्द महमूद की प्रशंसा में लिख कर उसके पास भेजा। सुल्तान के हिन्दी जाननेवाले सभ्यों ने जब उसका अर्थ कहा तब सुल्तान तथा उस के अरबी और फ़ारसी जाननेवाले सभासद बहुत प्रसन्न हुए। इससे उसने न केवल अपनी चढ़ाई ही कालिंजर दुर्ग से उठा ली, वरन् १४ क़िले और राजा को पुरस्कार स्वरूप दिये। इस समय के पीछे से ही मुसलमानों ने हिन्दी का पठन पाठन प्रारम्भ कर दिया होगा, परन्तु अब उसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिल सकता। सुलंकी महाराजा जयसिंह देव ने सं० ११५० से १२०० तक अन्हलपूर पट्टन में राज्य किया था। उनके समय में कुतुबअली नामक एक हिन्दी का कवि तथा एक मसजिद का उपदेशक था। उसकी मसजिद कुछ लोगों ने गिरा दी थी जिस पर उसने एक छन्दोबद्ध प्रार्थनापत्र राजा को दिया। राजा ने जांच के उपरान्त मसजिद फिर से बनवा दी और उसके तोड़नेवालों को यथोचित दंड दिया। इसकी कविता का कोई उदाहरण अब नहीं मिलता। इससे यह विदित होता है कि मुसलमानों ने बहुत प्राचीन काल से हिन्दी कविता करना प्रारम्भ कर दिया था। इतिहास के अभाव से प्रायः दो सौ वर्ष तक किसी मुसलमान कवि की कविता या नाम नहीं मिलता।

अमीर ख़ुसरो का देहान्त संवत १३८२ में हुआ था। यह महाशय फ़ारसी के एक प्रसिद्ध कवि थे। पर हिन्दी भाषा के भी बहुत से छन्द, पहेलियां, मुकरी, इत्यादि इनके रचित मिलते हैं। प्रसिद्ध कोषग्रन्थ ख़ालकवारी इन्हींका लिखा हुआ है। यह उस समय बना था जब कि फ़ारसी और हिन्दी का मेल हो कर वर्त्तमान उर्दू की नीव पड़ रही थी। बहुत लोगों का मत है कि उर्दू का जन्म शाहजहां के समय में

हुआ था और यह मत यथार्थ भी है। परन्तु खसरो की कविता देखने से यह अवश्य कहना पड़ता है कि उर्दू की नीव उसी समय से पड़ रही थी। इनकी कविता साधारण हिन्दी-फ़ारसी मिश्रित हिन्दी और खड़ी बोली में पाई जाती हैं, यथा—

ख़ालिक बारी सिरजनहार।
वाहिद एक बिदा करतार॥
रसूल पैग़म्बर जान बसीठ।
यार दोस्त बोलै जो ईठ॥
ज़ेहाल मिसकीं मकुन तग़ाफुल।
दुराय नैना बनाय बतियाँ॥
किताबे हिजराँ नदारम् ऐ जाँ।
न लेहु काहे लगाय छतियाँ॥
आदि कटे से सब को पालै।
मध्य कटे से सब को घालै॥
अंत कटे से सब को मीठा।
सो खुसरो मैं आँखों दीठा॥

अमीर खुसरो के समय में ही मुल्ला दाऊद नामक एक कवि ने हिन्दी काव्य में नूरक और चन्दा का प्रेम कथन किया है, परन्तु इसकी रचना हमारे देखने में नहीं आई।

संवत १५६० में कुतबन शेख़ ने मृगावती नामक एक उत्तम काव्य ग्रन्थ बनाया। इसमें एक प्रेमकहानी पद्मावत की भांति दोहा चौपाइयों में कही गई है और इसकी रचना-शैली भी उसी प्रकार की है, यद्यपि उत्तमता में यह उसके बराबर नहीं पहुंचती। शेख़ कुतबन शेख़ बुरहान चिश्ती के चेले थे और शेरशाह सूर के पिता हुसेनशाह के यहां रहते थे। उदाहरण—

साहि हुसेन अहै बड़ राजा।
छत्र सिंघासन उनको छाजा॥
पंडित औ बुधिवंत सयाना।
पढ़ै पुरान अरथ सब जाना॥
धरम दुदिष्ठिल उनके छाजा।
हम सिर छाँह जियौ जग राजा॥
दान देइ औ गनत न आवै।
बलि औ करन न सरवरि पावै॥

मलिक मोहम्मद जायसी मुसलमान कवियों में एक परम प्रसिद्ध कवि हैं। इन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ पद्मावत सं० १५७५ से सं० १६०० तक बनाया। इनका नाम केवल मोहम्मद था जिसके पहिले मलिक शब्द सम्मानसूचक लगा दिया गया है और जायस में रहने के कारण यह जायसी कहलाते थे। पद्मावत के अतिरिक्त इन्होंने एक और ग्रन्थ अखरावट नामक बनाया जिसका आकार छोटा है और कविता की उत्तमता में भी यह पद्मावत से नीचा है। पद्मावत में २६७ पृष्ठ हैं और उसमें चित्तौर के महाराना का पद्मावत से विवाह और अलाउद्दीन से उनका युद्ध वर्णित है। इस बड़े ग्रन्थ में स्तुति, राजा, रानी, षटऋतु, बारहमासा, नख शिख, ज्योतिष, स्त्रियों की जाति, राग, रागिनी, रसोई, दुर्ग, फ़कीर, प्रेम, युद्ध, दुःख, सुख, राजनीति, विवाह, बुढ़ापा, मृत्यु, समुद्र, राजमन्दिर आदि सभी विषयों का वर्णन है और प्रत्येक विषय को जायसी ने बड़ो उत्तम रीति और विस्तार से कहा है। इनका वर्णन आदि कवि वाल्मीकि की तरह विस्तार से होता है और उत्तम भी है। जायसी ने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा अच्छी कही हैं और यत्र तत्र सदुपदेश भी अच्छे दिये हैं। इन्होंने स्तुति, नख शिख, रसोई, युद्ध और प्रेमालाप के वर्णन अच्छे किये हैं। इनकी भाषा अवध की पूर्वी भाषा है। उदाहरण—

"कहउँ लिलार दुइज कै जोती।
दुइजै जोति कहाँ जग ओती॥
सहस किरनि जो सुरजहि पाये।
देखि लिलार वहौ छिपि जाये॥

का सिर बरनौं दिपइ मयंकू ।
चाँदु कलंकी वह निकलंकू ॥
तेहि लिलार पर तिलकु बईठा ।
दुइज पास मानौं धुव डीठा ॥"

"गोरइँ दीख साथु सब जूझा ।
अपन काल नेरे भा बूझा ॥
कोपि सिंघ सामुहि रन मेला ।
लाखन सन ना मरइ अकेला ॥
जेहि सिर देइ कोपि तरवारू ।
सहि घोड़े टूटइ असवारू ॥
टूटि कंध सिर परइँ निरारी ।
माठ मजीठ जानु रन ढारी ॥
तुरुक बोलावैं बोलै नाहाँ ।
गोरइँ मीचु धरी मन माँहा ॥
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा ।
मुए पीछु कोऊ घिसियावा" ॥

दिल्ली के जगत्प्रसिद्ध बादशाह अकबर का जन्म सं० १६०० में हुआ था। इन्होंने अपने प्रसिद्ध न्याय और दाक्षिण्य भाव के कारण हिन्दी कवियों का भी विशेष सम्मान किया और कविता को इतना अपनाया कि स्वयम् भी काव्य करने लगे। इनकी रचना शुद्ध ब्रजभाषा में होती थी और वह प्रशंसनीय भी है। यथा–

साहि अकब्बर बाल की बाँह,
अचिन्त गही चलि भीतर भौने ।
सुंदरि द्वारहि डीठि लगाय कै,
भागिबे को भ्रम पावति गौने ॥
चौंकति सी चहुँ ओर बिलोकति,
संक सकोच रही मुख मौने ।
यौं छबि नैन छबीली के छाजत,
मानौं बिछोह परे मृगछौने ॥१॥

इबराहीम आदिलशाह बीजापूर के बादशाह थे। इन्होंने सं० १६०७ के लगभग नवरस नामक रसों और रागों का एक उत्तम ग्रन्थ बनाया।

पिहानी-वासी जमालुद्दीन और इबराहीम भी इसी समय अच्छे कवि हुए हैं।

तानसेन पहिले ग्वालियर के रहनेवाले ब्राह्मण और स्वामी हरिदास के शिष्य थे। इनका नाम त्रिलोचन मिश्र था। पहिले यह गान-विद्या में बैजूबावरे के चेले थे, परन्तु उसके बाद शेख़ मोहम्मद ग़ौस के शिष्य हुए और उन्हींके संग में यह मुसलमान भी हो गये। यह बड़े ही प्रसिद्ध गायनाचार्य हुये और कविता भी उत्तम करते थे। इन्होंने (१) सांगीतसार, (२) रागमाला, तथा (३) श्रीगणेशस्तोत्र नामक तीन ग्रन्थ बनाए हैं। इन्होंने सूरदास जी की प्रशंसा में निम्नलिखित दोहा बनाया है—

कि धौं सूर को सर लग्यो किधौं सूर की पीर ।
किधौं सूर को पद लग्यो तन मन धुनत शरीर ॥

मुसलमानों में परम प्रसिद्ध और सर्व्वोत्कृष्ट कवि ख़ानख़ाना अब्दुल रहीम का जन्म सं० १६१० में हुआ। यह महाशय अकबरशाह के पालक बैरम खाँ के पुत्र थे। यह सदव बादशाह के बड़े बड़े ओहदों पर रहा किये यहां तक कि एक दफ़े उनकी समस्त सेना के सेनापति हो गये थे। इन्होंने यावज्जीवन गुणियों और कवियों का भारी सम्मान किया। एक बार केवल एक छन्द के पुरस्कार में गङ्ग कवि को ३६ लाख रुपये इन्होंने दान दिये थे। यह महाशय अर्बी, फ़ारसी, संस्कृत तथा हिन्दी के पूर्ण विद्वान थे। हिन्दी में इन्होंने (१) रहीम सतसई, (२) बरवै नायिका भेद, (३) रास पंचाध्यायी और (४) शृङ्गार सोरठा नामक ग्रन्थ बनाए हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने और भाषाओं में भी ग्रन्थ रचना की है। इन्होंने ब्रजभाषा, खड़ी बोली और पूर्वी बोली में कविता की है। इनका प्रत्येक छन्द एक अपूर्व आनन्द देता है। यह महाशय वास्तव में महापुरुष थे। इनका महत्व इनको कविता से भलीभाँति प्रकट होता है। इन्हें मान परम प्रिय था और खुशामद को यह पसन्द नहीं करते थे। इनके विचार गम्भीर, दृष्टि पैनी और अनुभव बहुत ही विशेष था। इन्होंने नीति के दोहे बहुत ही उत्तम कहे हैं। इनकी रचना

बहुत सच्ची है और उसमें हर स्थान पर इनकी आत्मीयता झलकती है। उदाहरण—

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखनवाला चाँदनी में खड़ा था॥
ढीलि आँखि जल अँचवनि तरुनि सुगानि।
धरि खसकाय घइलना मुरि मुसक्यानि॥
काम न काहू आवई मोल न कोऊ लेइ।
बाजू टूटे बाज को साहेब चारा देइ॥
खैर खून खाँसी खुसी बैर प्रीति मधुपान।
रहिमन दाबे ना दबैं जानत सकल जहान॥
अब रहीम मुसकिल परी गाढ़े दोऊ काम।
साँचे तेतौ जग नहीं झूठे मिलैं न राम॥
माँगे मुकुरिन को गयो केहि न छाँड़ियों साथ।
माँगत आगे सुख लह्यो ते रहीम रघुनाथ॥
मुकता कर करपूर कर चातक तृषहर सोय।
एतो बड़ो रहीम जल कुथल परे विष होय॥
कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू क्यों न चंचला होय॥

क़ादिरबक्स* पिहानी जिला हरदोई निवासी सं० १६३५ में उत्पन्न हुए। यह सैयद इबराहाम के शिष्य थे। इनकी काव्य उत्तम होती थी। इनके स्फुट छन्द देखने में आते हैं। अब तक कोई ग्रन्थ इनका प्राप्त नहीं हुआ। उदाहरण—

गुन को न पूँछै कोऊ औगुन की बात पूँछैं कहा भयो दई कलयुग यों खरानो है। पोथी औ पुरान ज्ञान ठट्ठन में डारि देत चुगुल चबाइन को मान ठहरानो है॥ कादिर कहत याते कछू कहिबे की नाँहि जगत की रीति देखि चुप मन मानो है। खोलि देखो हियो सब भांतिन सों भांति भांति गुन ना हेरानो गुन गाहकै हेरानो है॥ १॥

रसखान को बहुत लोग सैयद इबराहीम गिहानीवाले समझते हैं। परन्तु वास्तव में यह दिल्ली के पठान थे जैसा कि दो सौ बावन वष्णवों की वार्ता में लिखा हुआ है। इन्होंने सं० १६७१ में प्रेमवाटिका और सुजान रसखान नामक बड़े ही उत्तम ग्रन्थ बनाये हैं। मुसलमान होने पर भी इनको वैष्णवधर्म पर इतनी श्रद्धा थी कि ये श्रीनाथजी के दर्शन को गये परन्तु द्वारपाल ने जाने नहीं दिया! इस पर यह तीन दिन तक बिना अन्न जल पड़े रहे। तब श्रीविट्ठलनाथ महाराज ने इन्हें अपना शिष्य करा के वैष्णवधर्म में सम्मिलित कर लिया। इस से वैष्णवधर्म और विट्ठलनाथ जी को महान् उदारता प्रकट होती है। इनकी कविता से इनकी भक्ति और प्रेम पूर्णतया प्रकट होते हैं, और उसमें प्रेम का परम मनोहर चित्र खींचा गया है। कविजन इनकी कविता को बहुत ही पसन्द करते हैं। उदाहरण—

दम्पति सुख अरु विषय सुख पूजा निष्ठा ध्यान।
इनते परे बखानिए सुद्ध प्रेम रसखान॥
मित्र कलत्र सुबन्धु सुत इन में सहत सनेह।
सुद्ध प्रेम इनमें नहीं अकथ कथा कहि एह॥
यक अङ्गी बिनु कारनहि यक रस सदा समान।
गनै प्रियहि सरबस्व जो सोई प्रेम प्रमान॥
डरै सदा चाहै न कछु सहै सबै जो होय।
रहै एक रस चाहिकै प्रेम बखानौ सोय॥
देखि गहर हित साहिबी दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादसा बंस की ठसक छोड़ि रसखान॥
प्रेम निकेतन श्री बनहि आप गोबर्धन धाम।
लह्यो सरन चित चाहिकै युगुल सरूप ललाम॥

मानुस हौं तो वही रसखान बसौं मिलि गोकुल गोप गुवारन। जो पसु होउँ कहा बसु मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मझारन॥ पाहन हौं तौ वही गिरि को जु कियो व्रज छत्र पुरन्दर कारन। जो खग होउँ बसेरो करौं वही कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥

सैयद मुबारक अली बिलग्रामी का जन्म सं० १६४० में हुआ था। यह महाशय अरबी

*शेख़ रहीम अबुलफ़ज़ल के भाई थे। इन्होंने स्फुट दोहे अच्छे बनाए हैं।

फ़ारसी तथा संस्कृत के बड़े विद्वान् तथा भाषा के सत्कवि थे। सुना जाता है कि इन्होंने दस अङ्गों पर सौ सौ दोहे बनाये हैं जिनमें अलक-शतक और तिल-शतक प्रकाशित हो चुके हैं। इनका कोई अन्य ग्रन्थ देखने में नहीं आया। इनकी काव्य परम मनोहर और प्रशंसनीय है। उदाहरण —

अलक मुबारक तिय बदन लटकि परी यों साफ़।
खुसनवीस मुनसी मदन लिख्यो कांच पर क़ाफ़॥
सब जग पेरत तिलन को थक्यो चित्त यह हेरि।
तुव कपोल को एक तिल सब जग डारयो पेरि॥

अकबर के पुत्र शाहज़ादा दानियाल भी कुछ कविता करते थे। इनका कविता-काल सं० १६६० के लगभग समझना चाहिये।

सं० १६७७ में शेख़ हसन के पुत्र उसमान ने चित्रावली नामक एक प्रेमकहानी पदमावत के ढंग पर दोहा चौपाइयों में बनाई है। इसकी रचना उत्तम और मनोहर है। उदाहरण–

आदि बखानौं सोई चितेरा।
यह जग चित्र कीन्ह जेहि केरा॥
कीन्हेसि चित्र पुरुष अरु नारी।
को जल पर अस सकइ सँवारी॥
कीन्हेसि जोति सूर ससि तारा।
को असि जोति सिखइ को पारा॥
कीन्हेसि नयन वेद जेहि सीखा।
को अस चित्र पवन पर लीखा॥

जमाल और बारक भी इसी समय के कवि हैं।

आगरानिवासी ताहिर कवि ने सं० १६७८ में उत्तम छन्दों में एक कोकसार बनाई। इनकी रचना परम ललित, शान्त और गम्भीर है। यथा—

पदुम जाति तनु पदमिनि रानी।
कंज सुबास दुवादस बानी॥
कंचन बरन कमल की बाला।
लोयन भँवर न छांड़इ पासा॥
अलप अहार अलप मुख बानी।
अलप काम अति चतुर सयानी॥
झीन बसन महँ झलक इकाया।
जस दरपन महँ दीपक छाया॥

दिलदार कवि का कविताकाल सं० १६८० के लगभग है। इसी संवत् में शेख़ नज़ीर आगरानिवासी ने ज्ञानदीपक नामक ग्रन्थ बनाया।

ताज—यह मुसलमान जाति की स्त्री थीं। इनके वंश, स्थान इत्यादि का ठीक ठीक पता नहीं लगा। शिवसिंहसरोज में इनका संवत् १६५२ और मुंशी देवीप्रसाद ने सं० १७०० दिया है। इनकी कविता बड़ी ही सरस और मनोहर है। यह अपनी धुनि की बड़ी पक्की थीं। रसखानि की भांति यह भी श्रीकृष्णचन्द्र जी भक्ति में रङ्गी हुई थीं। इनकी कविता पंजाबी और खड़ी बोली मिश्रित है। उदाहरण—

"सुनौ दिलजानी मेड़े दिल की कहांनी तुम इस्म ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं। देव पूजा ठानी मैं निवाजहू भुलानी तजे कलमा कुरान सारे गुनन गहूँगी मैं॥ स्यामला सलोना सिरन ताज सिर कुल्लेदार तेरे नेह दाग मैं निदाघ ह्वै दहूंगी मैं। नंद के कुमार कुरबान ताणी सूरत पै तांण नाल प्यारे हिन्दुवानी ह्वै रहूँगी मैं॥ १॥"

आलम महाशय सं० १७३५ लगभग हुए हैं। शिवसिंहसरोज में इनका बनाया एक छन्द शाहजादा मोअज़्ज़म की प्रशंसा का लिखा है। यह मुअज्जम सं० १७६३ में जाजऊ की लड़ाई में मारे गए थे। उन्हींकी कविता होने के कारण इनका समय निर्धारित किया गया है। यह महाशय जाति के ब्राह्मण थे परन्तु शेख़ नामक एक रङ्गरेज़िन के प्रेम में फँस कर यह मुसलमान हो गये और उसके साथ विवाह करके यह सुख से रहने लगे। इनके जहान नामक एक पुत्र भी हुआ था। जान पड़ता है कि इनकी

प्रियतमा का देहान्त इनके सामने ही हो गया था क्योंकि उसके विरह में इन्होंने एक छन्द वर्णन किया है—

"जा घर कीन्हे बिहार अनेकन ता घर कांकरी बैठि चुन्यो करैं। जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं॥ आलम जौन से कुंजन मैं करी केलि तहां अब सीस धुन्यो करैं। नैनन मैं जे सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं॥"

इनका कोई ग्रन्थ हमारे देखने में नहीं आया, परन्तु खोज में आलमकेलि नामक इनका एक ग्रन्थ लिखा है। हमने इनके बहुत से छंद संग्रहों में देखे हैं। इनकी कविता बड़ी ही मधुर और रस भरी होती है। यह महाशय बड़े ही प्रेमी कवि थे।

शेख़ रङ्गरेज़िन पहिले अपना ही काम करती थी। कहते हैं कि आलम कवि ने इसे एक बार एक पगड़ी रङ्गने को दी जिसके छोर में एक कागज़ का टुकड़ा बँधा रह गया था। उसने खोलकर देखा तो उसमें यह दोहार्ध लिखा था—

"कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन।"

यह आधा दोहा आलम ने बनाया था, पर शेष उस समय न बन सकने से पीछे बनाने को रख छोड़ा था। शेख़ ने उसका दूसरा पद यों पूरा करके उसी टुकड़े पर लिख पाग रङ्ग उस टुकड़े को उसीमें बांध दिया--

"कटि को कंचन काटि विधि कुचन मध्य धरि दीन"

आलम जी ने अपनी पगड़ी ले जाकर जब यह पद पढ़ा तो उसे रँगाई देने आये और उस से पूछा कि "इस दोहे को किसने पूरा किया?" उत्तर पाया कि "मैंने!" बस आलम ने एक आना पगड़ी की रङ्गाई और एक सहस्र मुद्रा दोहे की बनवाई शेख़ को दी। उसी दिन से इन दोनों में प्रेम हो गया और अन्त में आलम ने मुसलमानी मत ग्रहण करके इसके साथ विवाह कर लिया। कहते हैं कि शेख़ ने अपने पुत्र का नाम जहान रक्खा था। एक बार आलम के आश्रयदाता शाहज़ादा मुअज़्ज़म ने हँसी करने के विचार से शेख़ से पूछा, "क्या आलम की औरत आप ही हैं?" इस पर इसने तुरन्त उत्तर दिया, "जहांपनाह! जहान की मां मैं ही हूं।" शेख़ के छन्द परम मनोहर होते थे। हमने इनका कोई ग्रन्थ नहीं देखा, परन्तु छन्द संग्रहों में बहुत पाये हैं। इनकी भाषा ब्रज-भाषा है। इनकी रचना में इनके प्रेमी होने का प्रमाण मिलता है। यह महिला वास्तव में एक सुकवि थी। उदाहरणार्थ इनका एक छन्द यहां लिखा जाता है—

"रति रन विषे जे रहे हैं पति सनमुख तिन्हैं बकसीस बकसी है मैं बिहसि कै। करन को कंकन उरोजन को चन्द्रहार कटि माहिं किंकिनी रही है कटि लसि कै॥ शेख़ कहै आनन को आदर सों दीन्हो पान नैनन मैं काजर विराजै मन बसि क। ए रे बैरी बार ये रहे हैं पीठि पाछे याते बार बार बांधति हौं बार बार कसि कै॥"

पठान सुल्तान राजगढ़, भूपाल, के नवाब थे। ये महाशय कविता के परमप्रेमी संवत् १७६१ के इधर उधर हो गये हैं। इनके नाम पर चन्द कवि ने बिहारी सतसई के दोहों पर कुण्डलियाएं लगाई हैं। चन्द ऐसे सुकवि को आश्रय देना इनकी गुणग्राहकता प्रकट करता है। उदाहरण--

मासा मोरि नचाय दृग करी कका की सौहँ।
कांटे लौं कसकति हिये गड़ी कटीली भौहँ॥
गड़ी कटीली भौहँ केस निरवारति प्यारी।
तिरछी चितवनि चितै मनो उर हनति कटारी॥
कहि पठान सुल्तान बिकल चित देखि तमासा।
वाको सहज सुभाव और को बुधि बल नासा॥

अब्दुल रहमान कबि औरंगज़ेब के पुत्र बहादुर शाह के मनसबदार थे। इन्होंने यमक-शतक नामक एक ग्रन्थ बनाया है जिसमें

१०७ दोहे हैं, जिनमें श्लेष, यमक, एकान्तरी इत्यादि के प्रबन्ध हैं और विविध विषय कहे गये हैं। इस ग्रन्थ से विदित होता है कि यह महाशय भाषा पूर्ण रीति से जानते थे और संस्कृत में भी कुछ बोध रखते थे। इस ग्रन्थ की भाषा कठिन है जिसका कारण स्यात् चित्र-काव्य हो। उदाहरण--

"पलकन में राखौं पियहि पलक न छाँड़ौं संग।
पुतरी सो तै होहि जिन डरपत अपने अंग॥
करकी कर की चूरियां बरकी बरकी रीति।
दरकी दर की कंचुकी हरकी हर की प्रीति॥"

सभा के खोज में महबूब कवि का जन्म काल संवत १७६१ दिया हुआ है। इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिला, पर छन्द बहुत देखे गये हैं। इनकी रचना सरल और सानुप्रास थी और वह परम प्रशंसनीय है--

मृग मद गन्ध मिलि चन्द सुगन्ध वहै
केसरि कपूर धूरि पूरत अनन्त है।
मोर मद गलित गुलाबन बलित भौंर
भनै महबूब तौर और दरसन्त है॥
रच्यो परपंच सरपंच पंचसर जूने
कर लै कमान तान बिरही हनन्त है।
छीनि छिति लई ऋतु राजन समाज नई
उनई फिरत भई सिसिर बसन्त है॥

याकूब खां ने संवत १७७५ में 'रसभषण' ग्रन्थ रचा। इन्होंने केशवदास-कृत रसिक-प्रिया की टीका भी बनाई है।

सैयद गुलाम नबी बिलग्रामी उपनाम रसलीन कवि ने अट्ठारहवीं शताब्दी में कविता की थी। इन्होंने 'अंगदर्पण' और 'रस-प्रबोध' नामक दोहों के दो ग्रन्थ बनाये हैं। अंगदर्पण संवत १७८४ में बना था। इसमें १७७ दोहों द्वारा नख शिख का विषय कहा गया है। इसमें उपमायें, रूपक और उत्प्रेक्षायें उत्तम हैं। 'रस प्रबोध' एक बड़ा ग्रन्थ है जिस में ११५५ दोहों द्वारा रसों का विषय बड़े विस्तारपूर्वक और बड़ी उत्तम रीति से सांगोपांग वर्णित है। रसों का विषय भाव भेद पर अवलम्बित है, इस कारण रसलीन ने इस ग्रन्थ में भावभेद भी बड़े विस्तार के साथ कहा है। भावभेद में आलम्बन के अन्तर्गत नायिकाभेद और उद्दीपन में षड्ऋतु भी आ जाते हैं। इन विषयों का भी इस कवि ने उत्तम और सांगोपांग वर्णन किया है। यह ग्रन्थ संवत १७८८ में समाप्त हुआ। रसलीन ने मुसलमान होने पर भी ब्रजभाषा बहुत शुद्ध लिखी है और उसमें फ़ारसी के शब्द नहीं आने पाये हैं। इनकी भाषा और किसी ब्राह्मण कवि की भाषा में कुछ भी अन्तर नहीं है। यही दशा अधिकांश मुसलमान कवियों की भाषा का है। इनकी कविता हर प्रकार से सुन्दर और सराहनीय है और इनकी गणना आचार्यों में है। उदाहरण—

मुकुत भये घर खोय कै कानन बैठे जाय।
घर खोवत हैं और को कीजै कौन उपाय॥
कत देखाय कमिनि दई दामिनि को निज बाँह।
थरथराति सी तन फिरै फरफराति घन माँह॥
वृद्ध कामिनी काम ते सून धाम मैं पाय।
नेवर झनकावति फिरै देवर के ढिग जाय॥
तिय सैसव जोबन मिले भेद न जान्यो जात।
प्रात समै निसि दौस के दुवौ भाव दरसात॥

अलीमुहिब्ब खां उपनाम पीतम, आगरा-निवासी, ने संवत् १७८७ में खटमल-बाईसी नामक एक परम मनोहर हास्यरस-पूर्ण ग्रन्थ, बनाया है। इसकी रचना सराहनीय है। यह ब्रजभाषा में कहा गया है। इस कवि के केवल यह २२ छन्द हमने देखे हैं, पर उन्हींसे इसकी रचना-पटुता प्रकट है। उदाहरण—

जगत के कारन करन चारौ बेदन के,
कमल में बसे वै सुजान ज्ञान धरि कै।
पोखन अवनि दुख सोखन तिलोकन के,
समुद में जाय सोये सेस सेज करि कै॥
मदन जरायो औ सँहार्‌यो दृष्टि ही सों सृष्टि,
बसे हैं पहार वेऊ भाजिहर बरि कै।

विधि हरिहर और इनते न कोई तेऊ,
खाट पै न सोवैं खटमलन सों डरि कै॥

बाघन पै गयो देखि बनन में रहे छिपि,
सांपन पै गयो तौ पताल ठौर पाई है।
गुंजन पै गयो धूरि डारत हैं सीस पर,
बैदन पै गयो कहू दारू न बताई है॥

जब हहराय हम हरी के निकट गये,
मोसों हरि कह्यो तेरी मति भूल छाई है।
कोऊ न उपाव भटकत जनि डोलै सुनैं,
खाट के नगर खटमलन की दोहाई है॥

नूरमहम्मद ने संवत १८०० के लगभग तीस वर्ष की अवस्था में इन्द्रावती नामक दोहा चौपाइयों में जायसीकृत पद्मावत के ढंग पर एक परमोत्तम प्रेमग्रन्थ बनाया है। इसका प्रथम भाग प्रायः १५० पृष्ठों में नागरी-प्रचारिणी ग्रन्थमाला में निकला है। इन्होंने वावैला आदि फारसी शब्द, और तृविष्टप, स्वान्त, बृन्दारक, स्तम्बेरम् आदि संस्कृत शब्द भी अपनी भाषा में रक्खे हैं। इन्होंने जायसी की भांति गंवारी अवधी भाषा में कविता की है, परन्तु फिर भी इनकी काव्यछटा अत्यन्त मनमोहिनी है। इनकी रचना से विदित है कि यह महाशय काव्यांग जानते थे। एक आध स्थान पर इन्होंने कूट भी कहे हैं। इनका मन-फुलवारीवाला वर्णन बड़ा ही विशद बना है और योगी के अचेत होने तथा लट पर भी इनके भाव अच्छे बँधे हैं। इस कवि ने जायसी की भांति स्वाभाविक वर्णन खूब विस्तार से किये हैं और भाषा, भाव, वर्णन बाहुल्य तीनों में अपनी कविता जायसी से मिला दी है। इन्होंने प्रीति का भी अच्छा चित्र दिखाया है। उदाहरण—

जब लगि नैन चारि रहु चारी।
राजकुवँर कहँ ठग अस मारी॥
बहेउ पवन लट पर अनुरागे।
लट छितराति पवन के लागे॥
परी बदन पर लट लटकारी।
तपी दिवस भै निसि अँधियारी॥
मोहि परा दरसन कर चेरा।
हना बान धन आँखिन केरा॥
यह मुख यह तिल यह लट कारी।
ये तो कहि कै गिरा भिखारी॥
एक कहा लट जामिनि होई।
राति जानि जोगी गा सोई।
एक कहा मुख ससिहि लजावा।
लट योगी को मन अरुझावा॥
एक कहा लट नागिन कारी।
डसा गरल सो गिरा भिखारी॥

प्रेमी का बनाया हुआ अनेकार्थ-नाम-माला ग्रन्थ हमने देखा है। इसमें कुल १०३ छन्द हैं जिनमें दोहाओं की विशेषता है। इनकी भाषा सरल और साधारण है। सरोजकार ने इनका जन्मकाल संबत् १७६८ लिखा है।

जुल्फ़िकार खां बुन्देलखंड के शासक संवत् १७८२ में उत्पन्न हुये थे। इन्होंने जुल्फ़िक़ार सत्सई नामक एक उत्तम ग्रन्थ रचा है।

अनवर खां ने संवत् १८१० में अनवर-चन्द्रिका नामक सतसई की एक उत्तम और प्रख्यात टीका रची थी।

इस स्थान तक इस लेख में मुख्य मुख्य ३४ मुसलमान कवियों का वर्णन है जिनके नाम सुगमता के लिये अक्षरक्रम से यहां फिर लिखे जाते हैं—

१ अकबर
२ अनवर
३ अब्दुल रहमान
४ अमीर खुसरो
५ आलम
६ इबराहीम
७ इबराहीम आदिलशाह
८ उसमान
९ क़ादिर
१० कुतुब अली

११ कुतुबन शेख़
१२ ख़ानख़ाना
१३ ज़माल
१४ जमालुद्दीन पिहानीवाले
१५ जायसी
१६ जुल्फ़िक़ार ख़ां
१७ ताज
१८ तानसेन
१९ ताहिर
२० दिलदार
२१ नूर महम्मद
२२ पठान सुलतान
२३ पीतम
२४ प्रेमी
२५ बारक
२६ महबूब
२७ मुबारक
२८ मुल्ला दाऊद
२९ याकूब ख़ां
३० रसखान
३१ रसलीन
३२ शेख़
३३ शेख़ फ़हीम
३४ शाहज़ादा दानियाल

इन ३४ कवियों का समय क्रम-विभाजित करने से जान पड़ता है कि अकबर के पूर्व केवल पांच महाशय हुये हैं, यद्यपि मुसलमानों में हिन्दी का प्रचार पृथ्वीराज की पराजय के पहिले ही से चला था और इस नामावली में उस काल का एक कवि भी सम्मिलित है। अकबर का समय संवत् १६१३ से प्रारम्भ होता है और यद्यपि इस महापुरुष का देहान्त संवत् १६६२ में ही हो गया, पर इसके समय के कविगण बहुत आगे तक जीवित रहे होंगे। अतः भाषा के विचार से अकबर का काल १६२५ से १६८० तक मानना चाहिये। इस समय के १६ कवि उपर्युक्त नामावली में हैं। अतः प्रायः आधे कवि इसी गुणग्राही बादशाह के समय में हुये हैं जिनमें से कई ख़ास इसी व्यक्ति के आश्रित थे। स्वयं इस बादशाह ने तथा बीजापूर के बादशाह ने भी इस सुन्दर समय में कविता की है। हिन्दू कवियों की भी संख्या इस समय बहुत बढ़ी थी। इस परम सन्तोषजनक उन्नति का एक मात्र कारण अकबर ही न था, परन्तु अन्य कारणों में इसका प्रोत्साहन भी एक प्रधान कारण था और मुसलमानों में कविता प्रचार का अकबर बहुत ही बड़ा कारण था। अकबर के पीछे संवत् १७९० पर्यन्त मोग़ल साम्राज्य का समय समझना चाहिये। इस समय में उपर्युक्त उत्तम कवियों की गणना में ९ कवि हैं, जिससे प्रकट है कि यद्यपि मुसलमानों में अन्य भाषाओं का प्रेम अब भी चला जाता था पर वह कम हो चला था। अकबर के समय में तानसेन, ख़ानख़ाना, रसखान और मुबारक उत्तम कवि थे और इस काल में आलम, शेख़, महबूब और रसलीन यद्यपि वैसे न थे पर तो भी परमोत्तम कवि थे। संवत् १७९० से अद्यपर्य्यन्त मुसलमानों की अवनति होती गई और अवनति के साथ उनका अन्य विद्याओं का प्रेम भी बहुत कम हो गया, यहां तक कि इस समय में केवल चार अच्छे हिन्दी के मुसलमान कवि हुये हैं और उनमें भी परमोत्तम एक भी न था। इन ३४ कवियों में कुतबन शेख़, जायसी, उसमान और नूरमोहम्मद ने देवताओं से सम्बन्ध न रखनेवाली प्रेमकथाओं की चाल हिन्दी में चलाई। हिन्दू कविगण प्रथम जब ऐसी कथाएं लिखते थे तब धार्म्मिक विचारों से किसी देवकथा का डोर अवश्य लिये रहते थ, पर मुसलमानों का धर्म्म-कथाओं से कोई सम्बन्ध न था, सो उन्होंने कोरी प्रेमकथाओं के उत्तम वर्णन किये। इन वर्णनों को देख हिन्दू कविगण ने भी कई वैसे ही ग्रन्थ बनाये। मुसलमान कवियों में जायसी, ख़ान-

ख़ाना, रसखान, मुबारक, आलम, शेख़ और रसलीन भाषा काव्य के आचार्य गिने जाते हैं यद्यपि काव्य-प्रौढ़ता में वह ख़ानख़ाना (रहीम) और रसखान की समता नहीं कर सके हैं। ख़ानख़ाना ने नीति अच्छी कही है और रसखान, शेख़ तथा आलम प्रेमी कवि थे।

इस उपर्युक्त वर्णन में अकबर के काल तक के सब कवि आ गये हैं, परन्तु उसके पीछे के केवल प्रधान प्रधान कवि ही लिखे गये हैं। अकबर के काल के पीछे के अप्रधान कवियों का भी सूक्ष्म कथन अब यहां किया जाता है। इनमें से ४१ कवियों का समय ज्ञात है और शेष का अद्यापि हमें विदित नहीं।

	नाम	कविता काल संवत में	विवरण
(१)	अहमद	१६६६	... स्फुट काव्य
(२)	कारे वेग	१७००	... "
(३)	रज्जब जी	१७००	... दादूदयाल के शिष्य। सर्वाङ्गी ग्रन्थ रचा।
(४)	क़ाज़ी क़दम	१७०६ के पूर्व	... साखी ग्रन्थ।
(५)	हुसैन	१७०८	... इनके छन्द कालिदास-हज़ारा में हैं।
(६)	दाराशाह	१७१०	... दोहा-स्तव-संग्रह रचा। यह शाहजहां के बड़े पुत्र थे।
(७)	मीर रुस्तम	१७२५	... इनके छन्द कालिदास-हज़ारा में हैं।
(८)	जैनुद्दीन मोहम्मद	१७३६	... स्फुट काव्य। हमने इनका केवल एक छन्द पीठ का देखा है जो उत्तम है।
(९)	दानिशमन्द ख़ां	१७३७	... औरङ्गज़ेब के कृपापात्र
(१०)	आसिफ़ ख़ां	१७३८	... —
(११)	करीम	१७५४ के पूर्व	... इनका नाम सूदन की नामावली में है।
(१२)	मुहम्मद	१७६०	... —
(१३)	अब्दुलजलीलविलग्रामी	१७६५	... औरङ्गज़ेब के दरबार में थ।
(१४)	रहीम	१७८० के पूर्व	... ख़ानख़ाना से इतर।
(१५)	आदिल	१७८५	... स्फुट काव्य।
(१६)	आज़म ख़ां	१७९६	... शृंगारदर्पण ग्रन्थ।
(१७)	तालिब शाह	१८००	... खड़ी बोली मिश्रित काव्य।
(१८)	मीर अहमद बिलग्रामी	१८००	... —
(१९)	रसनायक (तालिब अली बिलग्रामी)	१८०३	... —
(२०)	यूसुफ़ ख़ां	१८२०	... रसिकप्रिया व सत्सई की टीका।
(२१)	नेवाज़जोलाह बिलग्रामी	१८३०	... —
(२२)	किंशवर अली	१८३७	... सार चन्द्रिका
(२३)	काज़िम अली	१८५८	... सिंहासन बत्तीसी।
(२४)	मिरज़ा मदनायक बिलग्रामी	१८६०	... अच्छे गवैया तथा सुकवि।

(२५)	नवाब हिम्मत बहादुर	१८६०	—
(२६)	सैयद पहाड़	१८८४ के पूर्व ...	रस सार।
(२७)	ईसवी	१८८६ के पूर्व ...	टीका सत्सई।
(२८)	आज़म	१८६० के पूर्व ...	षड्ऋतु तथा नखशिख पर उत्तम काव्य की।
(२९)	क़ासिम शाह	१८६६ ...	कथा हंस-जवाहिर।
(३०)	हाजी	१९१७ के पूर्व ...	प्रेमनामा।
(३१)	बख़तावर ख़ां	१९२२ ...	बिजावर के रहने वाले। सुन्नीसार व धनुष-समैया रचे।
(३२)	ख़ान	१९२५ के पूर्व ...	—
(३३)	अलीमन	१९३३ ...	—
(३४)	लतीफ़	१९३४ ...	—
(३५)	ज्ञान अली	[illegible] पूर्व...	सियवर-केलि पदावली।
(३६)	मीर (सैयद अमीर अली)	[illegible] ...	देवरी कलांवाले।
(३७)	हफ़ीज़ुल्ला खां	[illegible] ...	कई संग्रह बनाये व स्फुट काव्य।
(३८)	पीर (पीर मोहम्मद)	,, [illegible] ...	उरदौली सीतापूर।
(३९)	सैयद छेदा शाह	,, ...	पौहार, कानपूर।
(४०)	मोहम्मद अमीर खां	,, ...	आगरा —
(४१)	मुंशी ख़ैराती खां	,, ...	देवरी साग[illegible] —

अज्ञात समय के कवि।

(१) अलहदाद
(२) आरिफ़
(३) आसिया पीर
(४) इज़दानी
(५) इन्शा
(६) क़ाज़ी अकरम फ़ैज़
(७) ख़ान आलम
(८) ख़ान मुलतान
(९) ख़ान सुलतान
(१०) गुलामी
(११) ख़ानजानाँ
(१२) ज़ुल्क़रनैन
(१३) तेग़अली (बदमाशदर्पण ग्रन्थ)
(१४) दीनदरवेश
(१५) नजबी
(१६) नबी (नखशिख)
(१७) नयाज़
(१८) निशात
(१९) पंथी (मिर्ज़ा रोशन ज़मीर)
(२०) फ़ज़ायल ख़ां
(२१) फ़रीद
(२२) मियां
(२३) मीरन (नखशिख)
(२४) मीर माधौ
(२५) मुराद
(२६) रसिया (नजीब ख़ाँ)
(२७) रहमतुल्ला
(२८) रंगखानि
(२९) वजहन
(३०) वहाब (बारहमासा) खड़ी बोली में परम प्रसिद्ध है
(३१) वाजिद (अरेला)
(३२) वाहिद
(३३) साहेब
(३४) सुलतान
(३५) शाह महम्मद

(३६) शाह शफ़ी
(३७) शाह हादी
(३८) शेख़ गदाई
(३९) शेख़ सलीमन
(४०) हाशिम बीजापुरी
(४१) हिम्मत ख़ाँ
(४२) हुसन मारहरी
(४३) हुसैनी।

इन उपर्युक्त ४१ कवियों में जिनका समय दिया गया है १५ कवि ऐसे हैं जो अकबर के काल के पीछे सं० १७६० पर्य्यन्त हुए। अर्थात् उस समय तक जब तक कि मुग़ल राज्य भारत में स्थिर था। इनमें केवल दाराशाह और दानिशमंद खां इतिहास-प्रसिद्ध पुरुष हैं, परंतु इनमें परमोत्तम कवि एक भी नहीं हुआ। शेष कवियों में २० व्यक्ति मोग़ल राज्य के पीछे हुए, जिनमें मिर्ज़ा मदनायक रसशास्त्र में परम पटु थे। कविता में किसी की भी रचना परमोत्तम नहीं कही जा सकती। साधारणतया आज़म की कविता कुछ अच्छी है। शेष ६ कवि इस समय वर्तमान हैं। इनमें सिवाय मीर और अमीर के कोई भी सुकवि नहीं कहा जा सकता।

अज्ञात काल के ४६ कवियों में वहाव का बारहमासा प्रशंसनीय है, परन्तु शेष कवियों का भाषा साहित्य में विशेष नाम नहीं है और न उनकी रचना ही देखने में आती है। किसी प्रकार उनके नाममात्र प्राप्त हो सके हैं। वर्तमान समय में केवल ६ मुसलमान कवियों के होने से प्रकट होता है कि आज कल मुसलमानों में हिन्दी-प्रेम घट रहा है और यदि यही दशा स्थिर रही तो कदाचित् दुःख के साथ यह भी देखने में आवे कि जायसी, अकबर, रहीम, रसखान आदि महानुभावों के वशंधरों में एक भी हिन्दीप्रेमी शेष न रह जावेगा। सब कलाओं की ओर ध्यान देना और सब विद्याओं में योग्यता प्राप्त करना विशेष उन्नतिशील जाति का धर्म है। महमूद गज़नवी [illegible] समय से यहां मुसलमानों की उन्नति का प्र[illegible] हुआ और उसी समय से [illegible] [हिन्]दी-प्रेमी भी उत्पन्न हुए। हुमायूं [illegible]याल के शि[illegible] मुसलमानों की धीरे धीरे उन्नति [illegible]खी ग्रन्थ। और उस समय तक उनमें हिन्दी-प्रेम [illegible] कुछ कुछ बढ़ता ही गया। अकबर के समय से मुसलमानों ने यकायक बड़ी प्रचंड उन्नति की। उसी समय उनमें हिन्दी-प्रेम की मात्रा बहुत ही बढ़ गई और उस समय कितने ही परमोत्तम मुसलमान कवि हुए। कुल ११८ मुसलमान कवियों में सर्वोत्कृष्ट कवि और प्रेमी इसी समय हुए। औरंगज़ेब के पीछे से उनमें एक भी हिन्दी का सुकवि नहीं हुआ, यद्यपि अकबर के पीछे भी हिन्दी ने बहुत ही सन्तोषजनक उन्नति की और अब तक कर रही है। आशा है कि भविष्य में हमारे मुसलमान भाई अपने ऊपर से यह आक्षेप दूर कर के अपने अकबरी काल के पूर्वपुरुषों का अनुकरण कर के उत्तरोत्तर विद्यानुराग का परिचय देंगे।

———

समालोचना ।

[लेखक—श्रीयुत् गिरिजाकुमार घोष]

वि[illegible] समाचारपत्र वा [illegible] जिसमें [illegible] रचनाएँ न [illegible] नहीं, समालोचना [illegible] लोचनाओं की धूम [illegible] हमारे विद्वान् लोग [illegible] लोचना ही [illegible] दृढ़ करने का मसाला समझते हैं। परन्तु [illegible] समय हिन्दी-साहित्य के लिये समालोचना से सचमुच लाभ है वा हानि यह भी तनिक सोच कर देखना चाहिए। सोचना चाहिए कि समालोचना ने संसार में कितना उपकार किया है। जो इससे उपकार हुआ तो कहना पड़ेगा कि समालोचना से प्रतिभा का विकाश होता है; वह बुद्धि को स्वच्छ करती है और इसे उचित मार्ग में ले आती है; बुरे लेखकों को लगाम पहना कर ऐड़ा बेंड़ा चलने से रोकती है और जो लेख सचमुच सुन्दर और सा[illegible] है उसे साफ़ साफ़ दिखा कर पढ़नेवालों के मन को उसकी ओर खींचकर ले जाती है। परन्तु अब देखिए समालोचना से सचमुच ही ऐसा लाभ होता है वा नहीं।

इस बात के लिये प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं कि समालोचना से प्रतिभा का विकाश नहीं होता। प्राचीन समय में जो कवि हो गए हैं उन्हें समालोचकों की सम्मतियों को मान कर चलने की आवश्यकता नहीं थी। वाल्मीकि और व्यास के पहिले अलङ्कार-शास्त्र के होने का प्रमाण नहीं मिलता। कवियों ने अपना प्रतिभा के प्रभाव से जिन सुन्दर संसारों और मनोहर दृश्यों की रचना की थी, क्या उसके लिये समालोचकों ने कुछ सहायता दी थी? कवियों ने अपनी प्रतिभा ही के जादू से क्षण भर में कादम्बरी के केलिकानन को रचा था, उसकी रचना की सुन्दर मनोहारिणी कला आज तक जगत् को चकित कर रही है। सूर तुलसी आदि श्रेष्ठ कविगण मग्न होकर ईश्वर की गुणावली भजनों में गाया करते थे; समालोचकों की तीव्र [illegible] उन्हें नहीं डराती थी, न वे आलङ्कारिकों की प्रशंसा के लिये तड़पा करते थे। वे जहाँ जाते, प्रकृति के सौन्दर्य और गाम्भीर्य से मोहित होकर अपनी रागिनियों की ध्वनि से भारत भर को गुंजा देते थे। देववाणी संस्कृत के बोलनेवाले बूढ़े काव्यकारलाग हिमालय सरीखे विशाल पहाड़ों की ऊँचाई में ईश्वर को शक्ति और गम्भीरता को देख कर प्रकृति की विस्तीर्णता को जानते थे; शान्तिमय जलाशयों में पत्र पुष्पों से सजे हुए वन उपवनों की सुन्दर छाया को देख कर सुख पाते और दौड़ते हुए बादलों की सुनहरी छबि में उसी प्रकृति की रमणीयता का अनुभव करते थे। प्रकृति की वीणा की गूंजती हुई ध्वनि को सुन कर उसीके सुर से अपना सुर मिला कर उन लोगों ने ऐसे मग्न हो कर गाया था कि संसार सब दिन के लिये मोहित हो गया है। उनकी कविता को जो सुनते वे ही मुग्ध हो जाते थे; ईश्वर की शक्ति ही से उनका स्वर इतना मीठा और रसीला होता था। वे जहां जाते थे वहीं

(३६) शाह शफ़ी [illegible] था–सब लोग उनका आदर
(३७) शाह [illegible] युवा, उनकी गीत सुन कर आंसू
(३८) शेख़ [illegible] बूढे थोड़ी देर के लिये अपनी दुर्बलता को भूल कर युवावस्था के उत्साह से सबल हो जाते थे। समालोचना ने उन कवीश्वरों की प्रतिभा को उत्तेजित नहीं किया था।

प्रतिभा समालोचना से उत्तेजित नहीं होती। प्रतिभा समालोचना से मार्जित भी नहीं होती, न उससे सच्ची राह में लाई जाती है। प्रतिभा सब समय आपही अपना मार्ग ढूंढ़ लेती है। प्रतिभा की चाल के नियमों को दूसरे लोग नहीं बता सकते। कवि के हृदय में सुन्दरता का जो बीज जमा हुआ है, वह समय पाकर आप ही अंकुरित होने लगता है। जिस कल्पना की सहायता से कवि स्वर्ग के ऊपर एक दूसरा स्वर्ग रचता है, समालोचक की सामान्य कल्पना उसका अनुभव नहीं कर सकती। जो दृष्टि स्वर्ग की ओर जाकर इन्द्रधनुष के सुन्दर रङ्गों में रञ्जित होकर लहराते हुए बादलों का मनोहर स्वरूप धर लेती है—जो दृष्टि मनुष्यों की साधारण दृष्टि से छिपे हुए जगमगाते तारागणों से गुथे हुए आकाशमण्डल में विचरा करती है, समालोचक उस दृष्टि को कहाँ, कैसे, पा सकता है? कवि की कल्पना के दर्पण में जो नित्य और अविनाशी राज्य को छाया आ कर गिरती है, क्या समालोचक उसे देख सकता है? कवि जिस चित्र को रच देता है, समालोचक दूसरे चित्रों से उसकी केवल तुलना भर कर सकता है। समालोचक वर्त्तमान को ही देखकर भविष्य का अनुभव करने लगता है। परन्तु प्रतिभा उसके अनुभव से बँधी रहना नहीं चाहती। समालोचक अपने अनुभव से जिस भविष्य का निर्णय करता है, प्रतिभा उस मार्ग से जाना भी नहीं चाहती। विलायती समालोचक ने 'इलियड' को देखकर कह दिया कि भविष्यकाल में जितने महाकाव्य होंगे, वे 'इलियड' ही के नियम से रचे जाने से अच्छे होंगे। परन्तु जिस समालोचक ने रामायण और महाभारत देखे हैं, वह कहेगा कि भारतवर्ष में "इलियड" एक साधारण काव्य है; सब महाकाव्य रामायण और महाभारत ही से होने चाहिएं। होमर व्यास के नियम पर नहीं चले थे। इन दोनों महापुरुषों ने स्वाधीन रीतियों से, भिन्न भिन्न देशों में, एक दूसरे से अलग, स्वतन्त्र प्रणालियों की रचनाएँ रची थीं। व्यास के वर्त्तमान शिष्य उन्नतिशील [illegible]य को नियमित नहीं किया। गज़नवी [illegible] समय से जिस नियम का प[illegible] का प्र[illegible] हुआ और भ्रान्त नाटककारों ने [illegible] दी-प्रेमी भी उत्पन्न काव्यों की रचना [illegible]याल के शि[illegible] मुसलमानों की प्रणाली दूसरे ही [illegible]खी ग्रन्थ। [illegible] और [illegible]खी गई मय [illegible] के छन्द [illegible] म[illegible] के प्रचार [illegible] ही साथ साथ आजकल ढ[illegible] ग्रन्थ प्रकाशित होने लगे हैं। जिस वस्तु की उपज अधिक होती है, उसमें से बहुत सा भाग फेंक भी दिया जाता है। ग्रन्थों के लिये भी ऐसा ही हिसाब है। इस रीति से बुरे लेखकों का तिरस्कार और प्रतिभा का चुन लेना अब समालोचना का एक प्रधान कार्य हो गया है। एक बहुत बड़े बिलायती समालोचक का मूलमन्त्र कहता है कि नीरस ग्रन्थों का प्रकाश करना और दुष्कर्म करना, दोनों बराबर हैं। पाप को दबाने के लिये, बुरे ग्रन्थों को रोकने के लिये, किसीके मनमें दुःख भी पहुंचाया जाय तो उस पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा करने का उद्देश्य देश का उपकार करना ही है।

परन्तु नवीन और कच्चे लेखकों को समालोचना की झाड़ू से बुहार कर अलग कर देने की कोई आवश्यकता नहीं। हमें इस बात की आशङ्का नहीं है कि बुरे लेखक भी कभी प्रतिष्ठा पा जायँगे। आदर न मिलने पर वे आप ही मुँह छिपाते फिरेंगे। जब संसार में सुलेखकों ही का प्रतिष्ठित होने में बहुत समय लगता है तब बुरे लेखकों की बात ही क्या है! अंगरेज़ी के जाननेवाले सज्जन जानते हैं कि, अंगरेज़ी भाषा के महाकवि शेक्सपियर ही की

पूजा कितनी देर में हुई थी। ऐसे ऐसे महा-
मान्य कवियों ही का सम्मान जब बड़ी कठि-
नाई से होता है, तब तीव्र समालोचना के
वृथा परिश्रम से क्या लाभ ?

परन्तु समालोचक कहेंगे कि हम पढ़ने-
वालों ही को सचेत नहीं करते, ग्रन्थकारों का
भी भला क[illegible] परि[illegible]म क़लम उठाते हैं।
यह बात अ[illegible]निन्दनीय [illegible] है। उनकी समालो-
चनाओं से [illegible] ही अधिक
हुआ करता है। [illegible] सुख और
दुःख से भरा है [illegible]
दिन निकलता है [illegible]
होता है, और तब [illegible]
प्रफुल्लित होता है। [illegible] कर
और उस रात्रि में [illegible] पत्र [illegible]
इस चाँदनी में बैठकर कवियों का [illegible] आ-
नन्द लूटने लगता है। एक एक दिन ऐसा
समय आ पहुंचता है जब उसके जीवन, मन,
हृदय कवितारस से भर जाते हैं। भाव का
प्रवाह और कल्पना की लहरें उसके मानसिक
आकाश में खेलती फिरती हैं। ऐसा कौन
मनुष्य होगा जिसने कभी न कभी सन्ध्या
के समय किसी वृक्ष के नीचे बैठ कर
कल्पनाकानन में विचरण न किया होगा !
उस समय पृथ्वी कैसी कल्पना से भरी
हुई जान पड़ती है ! उस समय सुनहले रंग से
रंगे हुए आकाश में स्वर्गराज्य की छाया
देख पड़ने लगती है—मन में एक बड़ी
मधुर सुख की लहर उमड़ने लगती है। सब
लोगों के जीवन में एक न एक समय इस
वसन्तकाल का उदय होता है। नई अवस्था
में जब कल्पना की लहर इस रीति से उमड़ने
लगती है, जब सभी लोग एक बार कवियों
की रीति से ईश्वर की प्रकृति और अपने
जीवन को देखने लगते हैं, तब, कहिए तो सही,
क्या उनके हृदय के भावों में कविता नहीं
रहती ? इन भावों की कलियां एक ही दिन में
नहीं खिलतीं। कितनी [illegible]
कितनी कल्पनाएं कभी कभी एकान्तिक [illegible]
बांध कर हृदय आकाश को ढक [illegible]
हृदय भावों के आवेश से उमड़ने लगता है !
कितने सुनहरे चित्र उसे दूर से लुभाने लगते
हैं ! कितनेही चित्र, कितने सुख के स्वप्न हृदय के
भीतर नाचने लगते हैं। क्या उन चित्रों को
ठीक ठीक खींच कर दिखाना सम्भव है ? वा
उनकी चंचल छाया ठीक ठीक हृदय पर जमती है?
वह छाया कैसी मनोरम होती है, यह सब लोग
नहीं समझ सकते। चित्र खींचते समय उसके रंग
अच्छी भांति नहीं खुलते, भाव गड़बड़ हो
जाते हैं, चित्र विचित्र हो जाता है। नया लेखक
अपनी कल्पनाशक्ति के अनुसार उस चित्र को
खींचने का यत्न करता है और समझता है कि
यही ठीक छाया है। समालोचक इन बातों को
क्या समझने लगा ! वह उन छायाओं के योग्य
चित्र की [illegible]ना नहीं कर सकता। उसके
सामने सब गड़बड़ टूटा फूटा जान पड़ता है।
वह सारे चित्र को दोष से भरा हुआ समझने
लगता है। उसकी गालियां सुनकर नया लेखक
हृदय में गहरी चोट खाकर कल्पना-मार्ग में
फिर पांव बढ़ाने का साहस नहीं करता। यदि
वह इस भांति दुरदुराया न जाता तो सम्भव
है कि उसके तरुण काल के सब भाव धीरे
धीरे फैलने लगते, प्रतिभा का विकाश होने
लगता, और कल्पनाशक्ति की संकुचित कलियां
समय पाकर खिल जातीं। बहुत से लोग
समालोचना के तीखे वाक्यों से ऐसे घबरा
जाते हैं कि आगे फिर लेखनी पकड़ने का उनको
साहस ही नहीं होता।

कवि का हृदय कैसा कोमल होता है, समा-
लोचक यह नहीं समझता। बे-समझे हुए वह
विष में बुझे हुए तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने
लगता है। कितने सुकुमार तरुण कवि उनकी
चोट से बे-मौत के मारे जाते हैं।

यही नहीं। समालोचक बहुधा पक्षपाती

(३६) शाह शफ़ी ... लोचकों में जितने अच्छे (३७) शाह ... हिए, बहुधा वे उनमें नहीं पाये (३८) शेख़ ... लोचक का काम कैसा कठिन है, इस पर लोग ध्यान नहीं देते। पक्षपात की संकीर्णता में फँस कर या तो वे अनुचित स्तुति ही करने लगते हैं, नहीं तो, ऐसी तीव्रता से बाणों की वर्षा करते हैं कि लेखक अभागे का हृदय टूट कर टूक टूक हो जाता है।

हिन्दी साहित्य की अभी तक बहुत कच्ची दशा है। इस समय इसके समालोचकों को बहुत ही सावधानी से काम करना चाहिए। हिन्दी की पुष्पवाटिका मे भांति भांति के पौधे और लताएं लगाई जा रही हैं। बेला, चमेली जूही, चम्पा आदि की सुगन्ध लेने के लिये उत्सुक होना समालोचकों के लिये स्वाभाविक बात है। परन्तु वही समालोचक यदि कांटों के डर से गुलाब की जड़ पर खुर्पी चलाने को दत्तचित्त हो जाय, पौधे को कंटकपूर्ण देख कर उसका अनादर करने लगे, तो बताइये, जिस पौधे में आगे चल कर नयन-मन-मोहन पुष्प लगते, उनका अस्तित्व संसार से सम्पूर्ण उठ जायगा या नहीं? और भी देखिए। जो समालोचक सच्चा गुणग्राहक है, जिसकी दृष्टि प्रकृति की सच्ची शोभा अनुभव करने को अभ्यस्त है, वह उचित समय में, उचित स्थान में, कडुए नीम के नन्हें नन्हें फूलों में भी बसन्तऋतु की रमणीयता अनुभव कर सकता है। उदार प्रकृतिवाला समालोचक जंगली पुष्पों पर भी दया की दृष्टि ही रक्खेगा, उनके दोषों ही को सोच सोच कर अपना गला फाड़ फाड़ कर व्यर्थ नहीं चिल्लावेगा। चतुर माली के हाथ में कांटे के पेड़ भी ... एक दूसरे ... ते हैं। वह अपने सहकर्मि... रचनाएँ रची की जड़ में फावड़ा ... उन्नतिशील ... सिखावेगा, वरन् यदि गज़नवी ... समय से ख़िलजी की बात ... का प्र... हुआ और प्रतिभा के वि- ... दी-प्रेमी भी उत्पन्न ... वह उनका भी ... याल के शि... मुसलमानों की ... मोड़ेगा। समा- ... खी ग्रन्थ। ... और लिखी गई ... पर रहना चाहिए ... छन्द ... ही शोभा की हानि तो ... ग्रन्थ; घास, फूंस, जंगल आदि के आक्रमण से "होनहार बिरवान" के प्राण तो संकट में नहीं पड़ते। उदारता, अपक्षपात, दया, दृढ़ता, धैर्य, आदि जिन जिन सद्गुणों से मनुष्य मनुष्य कहलाने के योग्य बनता है, उन्हीं सब सद्गुणों का समावेश समालोचक में भी होना चाहिए। नहीं तो वह उस पवित्र पदवी के योग्य ही नहीं हो सकता। वह अपने को हौआ भले ही बना लेवे, लोग कभी उसको सम्मान की दृष्टि से नहीं देखेंगे।

हमारा स्वप्न ।

स्व[illegible]न्हर जरमनी में एक बड़े विद्वान हो गये [illegible] लिखा है कि [illegible] है वैम चित्र का इति उन्हें उपनि[illegible] मि[illegible] द्वारा पाठकवृन्द एक [illegible] परिडतगणों ने [illegible] इस समय नित[illegible] [illegible]कठिनन्दिर्य [illegible] पाय का कुछ [illegible] उस में म[illegible] अपने को [illegible] किसी उन च[illegible] को [illegible] कोई दिया नहीं [illegible] [illegible] नहीं हुई। मनुष्य [illegible] सा[illegible] जननी अवश्य [illegible] [illegible] स्वत्वों [illegible] हमारे इस [illegible] [illegible] विचार कर रहे न्तानों [illegible] यह वि[illegible]। पत्र [illegible] और सन् [illegible] जाय। [illegible] पाठकों के दूसरों [illegible] भी न वचनों इससे उनके कुछ आविष्कारों को लिख, नती को [illegible] को समाप्त करें। अङ्क में सुन[illegible] (Sulphuric Acid) के साथ पुत्र होगा, जिसके [illegible] धातुओं के [illegible] माता की कातराक्ति को सुनकर [illegible] हो मातृ-भक्ति की धारा न वह निकली हो जिसके चित्त में यह भाव न जागरुक हुआ हो कि हमारी माता की वास्तव में हीन दशा को सुधारना हमारा धर्म है, जिसका शरीर स्वर्गादपि गरीयसी जननी जन्म भूमि के वचनों को सुन कर रोमांचित न हो गया हो, जिसके खून में माता के वचनों ने एक वार गरमी न पैदा कर दी हो और जिसने यह दृढ़ निश्चय न कर लिया हो कि हम माता के दुःखों को दूर करेंगे, हम उन के दुःखों को दूर करने के लिये तन मन धन सब अर्पण कर देंगे, हम माता के दुःखों को दूर कर अपने को और अपनी दीन माता को गौरवान्विता करेंगे, हम माता को दुःखी न देखेंगे और आज से हम माता के दुःखों के दूर करने का बीड़ा उठाते हैं। जिस दिन हम ने आप लोगों को माता की उस दुःखभरी और साथ ही साथ

[illegible] आशा[illegible] कातर[illegible] रात्रि में हम ने एक [illegible]स्वप्नदर्शनिक [illegible] स्वप्न [illegible] हम अपने और [illegible] आवश्यक समझते हैं आशा [illegible] लोग ध्यान लगाकर उस [illegible] विवरण को देखेंगे। स्वप्न में हम ने देखा बहुत रात्रि अंधेरी थी, बादल चारों ओर से साड़ घुमड़ कर इकट्ठा हो रहे थे। उनकी [illegible] गड़गड़ाहट रह रह कर चित्त को डरपाती थी, हवा की सनसनाहट और झींगुर की झनकार ही उस समय की निस्तब्धता को भंग करती थी। बिजली व्यजनी के घन समान कुछ समय में ही जहां की तहां हो जाती थी, इसी विद्युत प्रकाश के सहारे [illegible] एक बड़े जंगल में चले जा रहे थे। रह २ कर कभी २ किसी के बिलख २ रोने की आवाज़ कान को चीर सी जाती थी। आवाज़ दुःख भरी होने पर भी बहुत मधुर थी और यह मालूम होता था कि [illegible]सी कोमलाङ्गी का यह क्रन्दन है। ऐसी करुणाभरी, दिल को पानी २ करने वाली आवाज़ को सुन कर न रहा गया चित्त में यह भाव उठने लगे कि कहीं कोई डाकू, चोर या लवार किसी सती को कष्ट पहुंचा रहा है। मन में यह आभास होते ही, पांव जल्दी २ आगे बढ़ने लगे और मन में यह लालसा हुई कि चल कर उस सती के दुःखों को दूर करें। ज्यों ज्यों हम आगे बढ़ते थे आवाज़ और भी ज़ोर से सुनाई देती थी। थोड़ी देर में हम ऐसे स्थान पर पहुंच गये जहाँ पर पानी ही पानी दिखाता था। एक बड़ा भारी तालाब था और उसी के बीच में एक विशाल भवन दिखाई देता था, तालाब कितना बड़ा था और भवन की लम्बाई चौड़ाई का वर्णन करना असम्भव है, क्योंकि रात्रि अंधेरी थी किन्तु इतना हम अवश्य कहेंगे कि जहाँ तक नज़र जाती थी पानी और भवन ही दिखाई देता था। ऐसे स्थान पर पहुंच कर चित्त हमारा सहम गया और हम उसी बड़े तालाब या नद के किनारे बैठ गये किन्तु उस

[illegible] हमें बैठ [illegible] दिया, हम उ[illegible] पहुंचने के विह्वल होंगे [illegible] हमने यह निश्चय कर लिया कि कोई भाग[illegible] भवन तक जाना चाहिये। हम इधर उधर [illegible] मा में ढूँढ़ ही रहे थे कि रोने की आवाज़ रुक २ लगते और धीरे २ आने लगी मालूम होने लगा [illegible] यह सती की अन्तिम अवस्था है और कुछ [illegible] काल में उसके जीवन का दीप बुझनेवाली है। उसका दुःख दूर करने का विचार और उसके अन्तिम वचनों के सुनने के विचार ने ऐसा ज़ोर मारा कि हमने यह निश्चय कर लिया कि हम तैर कर ही भवन तक पहुंचेंगे चाहे इसमें हमारी जान भी चली जाय इस विचार के उत्पन्न होते ही एक धमाका हुआ और मैं उस बड़े तालाब में पैरने लगा थोड़ी ही दूर जाने पर भाग्यवश एक बजरा दिखाई दिया मैं उसी बजरे पर यह [illegible] कर चढ़ गया कि इसी के सहारे से भवन तक पहुंचूँगा किन्तु बजरे पर पहुंचते ही हमारा दिल धक से हो गया और हम यदि बैठ न जाते तो कदाचित् हम फिर पानी ही में दिखाई देते हमारे भाई जानना चाहते होंगे कि किस वस्तु के देखने से हमारी यह दशा हुई। पाठको सम्हल जाइये, उस करुणोत्पादक हृदय विदारक दृश्य का देखना सहल नहीं है, आप का कलेजा उमड़ पड़ेगा, अश्रुओं की धारा आपके नेत्रों से निरन्तर बहेगी, आप खाना पीना भूल जायँगे, खून पानी हो जायगा और मालूम नहीं आप पर कौन सा जुनून सवार हो जायगा, आप कभी रोएँगे, कभी आप हँसेगे, कभी आप हताश हो जांयगे और कभी आशा लता की हरियाली आप के हृदय को लालायित करेगी अस्तु। हम आप को वचन दे चुके हैं इस लिये उस दृश्य का वर्णन करता हूं छाती पर पत्थल रखिये और सावधान होकर सुनिये। हमने बजरे पर चढ़ कर एक कोमलाङ्गी को देखा। इसमें सन्देह नहीं कि किसी समय में वह अतीव ही सुन्दर रही होगी, उसके बाल पैर तक पहुंचते थे, यद्यपि वे इस समय आधे से ज्यादे सुफ़ेद थे, उसका मुखड़ा देखकर सहसी हृदय [illegible] की धारा उमड़ उठी। उसकी [illegible] समय [illegible] समय के [illegible] कुछ [illegible] जो कि [illegible] नके नेत्रों [illegible] फिर [illegible] ह एक [illegible] उसके [illegible] कौन हैं, कहलाने के [illegible] कृपा कर अपनी दुःख का सम[illegible] क्रम से वर्णन करिये। इसके सुनते ही माता के नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली, उनका कण्ठ भर आया, उन्होंने फिर एक बार पानी के लिये इशारा किया। पानी पीकर उन्होंने कहा बेटा मेरी दुःख कहानी सुन कर क्या करोगे? हाय एक समय था कि रत्नमणि जड़ित स्वर्ण खचित बर्तनों में मैं पानी पीती थी और अपने पुत्रों को उसमें दुग्ध पान कराती थी आज हमारे और हमारे पुत्रों के पीने के लिए यह मिट्टी के बर्तन हैं। हाय............ क्या.........कहूं......... ? इतना कह कर माता फिर बेहोश होगई। पानी का छींटा छोड़ कर हमने उन्हें फिर सचेत किया उन्होंने सचेत होकर कहा बेटा तुम जाओ इस अभागिनी के पास बैठ कर क्या करोगे। किन्तु हमारे बहुत गिड़गिड़ाने पर उन्होंने कहा अच्छा जो पूछना हो पूछ लो। हमने उनसे कहा मातः आप इस

दूर जा... मर भाव
... शाह शफ़ी ... अपने पुत्रों को ... कर नहीं
... शाह ... मेरा अपमान कर, ... संकुचित
कर, मेरा ... नाश भी कर डालें किन्तु ... वे मेरे
ही पुत्र हैं ... के सुख से मैं सुखी हो ... सकती
हूं, वे धर्म ... कायर हैं, मूर्ख हैं, निरुत्... ही
हैं, निरुद्योग ... किन्तु वे इसी चिरदुः...
की सन्तान ... आज उनमें विद्या नहीं ...
हमारा आदर नहीं करते, और जब मेरे पु... रुची
नहीं मेरा आदर करते तो मैं औरों को ... को
कहूं। किन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है और ... हुए।
है कि मेरा भविष्य अच्छा है। मेरे पु... पौधे
विद्या के प्रति अभिरुचि उत्पन्न होगई है ... मेरे ही
हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करना चा... वि...
और इसी आशा से मैं बजरे पर स्थि... भाविक
अन्तिम बार जाते २ अपने पुत्रों के ... कांटों के
देख लूं। इसी उद्योग की सफलता पर ... ने को
जीवन और हमारे पुत्रों का भविष्य ... कर
हमें अपने पुत्रों की दानशीलता में विश्वा... जिस
यद्यपि हम उनसे धन दान की तरह नहीं ...
ऋण की तरह मांग रही हैं। मैं उनके एक २
पैसे के बदले उन्हें सोने का पैसा दूंगी और
यह धन भी उन्हीं के हित में खर्च होगा—मैं
जानती हूं मेरे पुत्र मेरे अन्य बहिनों के पुत्रों से
मिट्टी और टीन लेकर उन्हें अपना सर्वस्व दे रहे
हैं, जो टीन और मिट्टी कुछ समय तक उन्हें
आनन्द दे फिर जहाँ की तहाँ हो जाती हैं।
हम यह धन उन्हें खेलौने की लालच दे नहीं
माँगतीं, मैं उन्हें वह वस्तु दूंगी जिससे वे स्वयं
इन्हीं खेलौनों को रच कर दूसरों से धन ले
सकें, जिससे वे स्वयम् संसार में सद्अभिमान
से अपना मस्तक ऊँचा रख सकें, जिससे वे
पतित न समझे जावें, जिससे उनका कहीं भी
अपमान न हो और जिससे संसार में उनकी
सत्ता हो।" हाय मेरी यह दशा, जिसने संसार
में सभ्यता फैलाई, जिसने संसार को धर्म
सिखलाया, जिसके पुत्रों के उपार्जन किये हुए
धन से संसार श्रीमान् हुआ, जिसके पुत्रों की
विद्या से संसार विद्वान् हुआ, हाय उसीके पुत्र
यों अविद्या ग्रसित रहे, क्या कहूं, किधर जाऊँ,
अ... रहे हैं, शताब्दियों की निद्रा
के ... या की दृष्टि ही ... हुए दिख... देते हैं, बहुत
दिन सोच कर अपने ... जागे ... न्तु आशा
व्यर्थ नहीं चिल्लावेगा ... चतुर माली ... २ वि-
... कांटे के पेड़ भी ... एक दूसरे से ... विश्व-
विद्या... ने सह... रचनाएँ रची की ... पुत्र सुखी,
... कुशाग्र उन्नतिशील ... .
वरन् यदि गज़नवी ... समय से जिलब ... और हम
... का प्र... हुआ और प्र... कर प्रसन्न
... दी-प्रेमी भी उत्पन्न हो ...
... याल के ... मुसलमानों की ... मोड़े
... ग्रन्थ। ... लिखी गई समय ... पर रह
... छन्द ... सत्कार ... ही शोभा ... सम्मेलन की
... ग्रन्थ; घास, फूंस, जंगल आदि ... सभापति
... ण से "होनहार बिरवान" के प्राण ...
नहीं पड़ते। उदारता, अपक्षपात वक्तृता।
धैर्य, आदि जिन जिन सद्गु... हित हिन्दी हिय ठानि।
कहलाने के ... सुख जोहती जानि तुम्हें गुनखान॥
... सम्म... वर हिन्दी के प्रेमी सज्जनो !

सर्वगत सर्वान्तर्यामी परात्पर परमेव्योमन् परमेश्वर को धन्यवाद है कि इतने सुयोग्य पुरुष धौरेय नागरिक जन अपनी मातृभाषा नागरी को समस्त गुन आगरी कर देने के विचार से आज यहाँ सम्मिलित हुए हैं। नागरिक तथा नागरी ये दोनों शब्द नगर से सम्बन्ध रखते हैं। इनके शब्दार्थ हैं नगर निवासी तथा नगर की बोल चाल। जो भाषा जनपद और ग्रामों में सदा बड़े विस्तार से सब ठौर व्याप्त थी वह नगर में पैठ अत्यन्त परिष्कृत हो नागरी कहलाने लगी। समय पाकर इन नागरिकों का यवनों से सम्पर्क हुआ। यवनों के अधिकार में देश के आ जाने से, राजकाज के घनिष्ट संबन्ध से और शीन काफ़ की तराश ख़राश से इस भाषा पर यवन सभ्यता का प्रभाव पड़ने लगा-

और इसी समय भारतवर्ष के नये नाम हिन्दो-स्तान के चल पड़ने से यहाँ की सार्वजनिक भाषा भी हिन्दी कहलाने ... हिन्दी पर्यायवाची शब्द ... यद्यपि ... का रूप ... तो भी ... पण्डितगणों ने ... नत ... बात ... अपरि... दिखलाई ... श्यामा... कोने का ... बोलते हैं ... हिन्दी क... इस पवि... इस भाषा ... भ्रंश हैं। हमारे ... सोहावने उनकी कवि... उतने शुद्ध संस्कृत नहीं। पुराने कवि और आ-धुनिक कविता के तुक जोड़ने वालों में यही बड़ा अन्तर है कि तुकबन्दी वाले संस्कृत का प्रयोग अपनी रचना में जितना अधिक करते हैं उतना हिन्दी का नहीं, और वह शुद्ध संस्कृत उनकी रचना में नीरस हो कान में वैसी ही खटक पैदा करती है जैसे ढाकरों की पंक्ति में एक पंक्ति-पावन कुलीन। घरेलू बोल चाल में इन अपभ्रंशों का प्रयोग नया नहीं है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने अपने भाष्य में गोशब्द का अपभ्रंश गोता, गोणी, गाव आदि लिखा है तो सिद्ध हुआ कि अपभ्रंश का उच्चारण नया नहीं है, इतना पुराना है कि पतञ्जलि को अपने भाष्य में उसका हवाला देना पड़ा।

साधु भाषा और ग्राम्य भाषा यह दो भेद सदा से चले आये हैं। वेदों के समय में भी इस भेद का पता लगता है। पाणिनि ने अपने ... के वेदे ... सूत्रों में ... हम बोलते हैं ... उस ... जो राजाओं की ... समाज में बोली जाती है। पाणिनि के इस तरह के निर्देशों से सिद्ध होता है कि संस्कृत कभी बोल चाल की भाषा थी और वह वेद की भाषा से भिन्न थी। ... का साहित्य ...-भाषा में था, और साधारण जनों की भाषा संस्कृत थी। कदाचित् यह कहना असंगत न ... कि जो नाता पीछे को संस्कृत और प्राकृत में हुआ वही नाता वेद के समय में वेद और संस्कृत का था। शुद्ध हिन्दी इसी संस्कृत द्वारा ... का अपभ्रंश है। इस भाषा का सम्बन्ध ... वैसे ही है जैसा दूधमुहे बालक का माता के साथ होता है। इसी से हम ... अपनी मातृभाषा कहते हैं।

... रहा नागरी का नया रूप जिसका ... नों के समय में सभ्य समाज और ... दरबारों में हुआ। इसमें फारसी अरबी के लफ्ज़ यवन-सम्पर्क से बहुत मिल गये और यह नई भाषा उर्दू के नाम से चल पड़ी। वास्तव में वह नगर-निवासियों की भाषा नागरी है। जब हम जितनी रीति रसम, रहन, सहन में यवन सम्पर्क से शुद्ध आर्य्यता की बहुत सी बातों को छोड़ बैठे तो हमारी नागरी पर भी यदि यवन-शासन का प्रभाव पड़ा तो अचरज ही क्या है! पचास वर्ष पहिले एक समय वह भी था जब हम अपने को बिलकुल भूले हुए थे और अपना यावत् काम लिखने पढ़ने का उसी बिगड़ी हुई नागरी अर्थात् उर्दू में करते थे; मध्यम श्रेणी वाले कोई कोई नागरी लिपि के स्थान में कैथी अक्षरों का व्यवहार करते थे; इधर टोडरमल ने महाजनी निकाला और रामावती वाले मारवाड़ी महाजनों ने और भी नागरी की रेल मार दी। नागरी का प्रचार सर्वथा संकुचित हो थोड़े से पढ़े लिखे ब्राह्मणों ही में बच रहा। परन्तु फिर भी इन सज्जनों में ना-

गार। शाह शफ़ी [illegible] कृत रूप [illegible] कर नहीं था [illegible] शाह [illegible] मीराँ हिन्दी के [illegible] संकुचित सद [illegible] इस भाषा को [illegible] करने का प्रय[illegible] किया। संस्कृत में कहीं का खर्रा रंग [illegible] पर महावरेदार हिन्दी उन्हीं चार पंक्ति लिखें [illegible] तो उसमें वे दस गलत अक्षर तथा व्या[illegible] कर[illegible] करेंगे। इस दशा [illegible] नागरी के बिगड़े हुये उस रूप ने जो उर्दू नाम से चल पड़ा हमारे प्रान्त के मुख्य मुख्य नगरों में जहां यवन-सम्पर्क अधिक था अपना अड्डा जमा लिया।

प्रकृति का सदा से यह नियम चला आया है कि किसी देश की भाषा सदा एक रूप में नहीं रहती। प्रत्येक देश की भाषा के सम्बन्ध में इस नियम का उदाहरण मिल सकता [illegible] बहुधा देखा जाता है कि देश अभ्युत्थान के साथ साथ भाषा भी उन्नति के शिखर को चढ़ती जाती है; पीछे देश के अधःपतित होकर पर जब उसकी पहिली उन्नति के कोई चिन्ह नहीं रह जाते, तब केवल भाषा ही वहां की प्राचीन उन्नति की पूरी साखी भरती है। एक समय था कि दक्षिण का थोड़ा सा भूभाग और तैलङ्ग आदि को छोड़ समस्त भारत में नागरी व्याप रही थी। विद्यापति का लेख इस का एक उदाहरण है जो नागरी के मैथिली रूप में लिखी गई है। आधुनिक, बङ्गाली, महाराष्ट्री, गुजराती तो एक ही शताब्दि के भीतर भीतर आधुनिक परिष्कृत रूप में आ गई हैं और उन प्रान्तों के सुपुत्रों के सपूती का आदर्श भी बन गई हैं। फिर भी कोई भूभाग बङ्गाल, गुजरात, महाराष्ट्र का नहीं है जहां हिन्दी काम में न लाई जाती हो और हिन्दी बोलनेवालों की बात लोग न समझ सकें उर्दू अरबी-फ़ारसी-मिश्रित हिन्दी है। जो भाषा हिन्दुस्तान के नगर, ग्राम तथा सर्वसाधारण में बोली जाय, वह सिवाय हिन्दी के दूसरी भाषा हो ही नहीं सकती। जैसे इङ्गलेंड में जो भाषा बोली जाय वह इङ्ग-लिश, फ्रांस में जो काम में आवे वह फ्रेंच वैसे हिन्दुस्तान में हिन्दी। यह अवश्य है कि [illegible] से अरबी फ़ारसी के [illegible] ऐसे सम्मिलित हो [illegible] भी उनका प्रयोग [illegible] गुरु [illegible] [illegible] एक दूसरे [illegible] रचनाएँ रची [illegible] उन्नतिशील [illegible] गज़नवी [illegible] हुआ और [illegible] दी-प्रेमी भी उत्पन्न [illegible] लोगों का [illegible] मुसलमानों की [illegible] याव-[illegible] ग्रन्थ। [illegible] लिखी गई [illegible] रहते रहें। [illegible] ही शोभा [illegible] करने का [illegible]; घास, फूंस, [illegible] हमारी [illegible] से "होनहार बिरवान" के प्राण [illegible] संकुचित नहीं पड़ते। उदारता, अपक्षपात सदा यह धैर्य, आदि जिन जिन सद्गुण [illegible] शब्दों को हम [illegible] कहलाने के [illegible] जाय और उसे अपना करता [illegible] अरबी फ़ारसी की कौन कहे, अब तो अङ्गरेज़ी के अनेक शब्द हमारी हिन्दी के एक अङ्ग होते जा रहे हैं, जैसे लालटेन, बोतल, पालिसी, स्टेशन, फ़ैशन, जज, टिकट आदि। ये सब शब्द अपने शुद्ध रूप से बिगड़ अपभ्रंश हो हमारे हो गये हैं।

यह हम अभिमान के साथ कह सकते हैं कि कविता में हमारी भाषा का भण्डार सदा भरा पुरा है, जिसका सौभाग्य हमारे देश की प्रान्तीय भाषाओं–बङ्गाली, महाराष्ट्री, गुजराती को–कुछ समय पहले कभी नहीं रहा। मलिक मुहम्मद जायसी ने बारहवीं शताब्दी के लग-भग पद्मावत रचा। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में सूर और तुलसीदास ने सूरसागर और रामचरित मानस रच हिन्दी को जगत-उजागर कर दिया। उपरान्त बिहारी, केशव, भूषण, रसखान, पद्माकर आदि एक से एक

अद्भुत प्रतिभाशाली उद्भट कवि होते गए
और अब तक होते जाते हैं । गद्य रचना
हिन्दी अपनी अपनी प्रान्तीय
तक पीछे हटी थी । पहिले
लल्लूलाल ... प्रेमसागर
अनुवाद
के ... पूर्व पण्डितगणों ने
बंशी
योगी
प्रसाद
भूगोल
गद्य की
लिखीं कि
शिवप्रसाद
लक्ष्मणसिंह
सहायक
हम लोग
मात्र की लेख

... कर्त्ता सुगृहीत ... (Sulphuric Acid) के साथ
हुये, जिन्हें आधुनिक हिन्दी ... धातुओं ...
दाता की उपाधि देना अनुचित ... है।
इन्होंने हिन्दी को प्रचार पाने के लिए कोई
यत्न उठा नहीं रक्खा । वे पुराने तथा अपने
निज के बनाये बहुत से ग्रन्थ छपवा सेंत में
लोगों को पढ़ने के लिये बांट देते थे । इन्होंने
हिन्दी को विस्तार पाने के लिये यहां तक धन
ख़र्चा कि निश्चकिञ्चन हो गये–'वंशस्याग्रेध्वजो
यथा'। ऐसे कुलभूषण का जितना गुण गाया
जाय सब उचित है। हरिश्चन्द्र के समकालीन
हिन्दी को आश्रय देने वाले राजा रघुराजसिंह,
व्यास अम्बिकादत्त और ब्राह्मण-सम्पादक पं०
प्रतापनारायण मिश्र सदा श्रद्धास्पद रहेंगे ।
मिश्र जी पर हमारी विशेष श्रद्धा इस लिये है
कि इन्होंने निःस्वार्थ हिन्दी की सेवा की है;
अपनी हानि सह वे चिरकाल तक 'ब्राह्मण' का
सम्पादन करते रहे । एक पन्थ दो काज की
भाँति अपना फ़ायदा मुख्य रहे, परन्तु फिर भी

... शास्त्र निर्णय सुलेखक ...
... थीं । ... हिन्दी के सेवक ...
... कुछ विगाड़ ...
... हिन्दी की सेवा ... कोई दूसरे
... पकारी कामों में भिड़ जा... कोई विरले
... देखे जाते हैं। उन्हीं ... में एक
... नारायण मिश्र ... परलोकवासी
... के सेवकों में यहां पर हम बाबू श्रीनि-
..., बा० तोताराम, बाबू राधाकृष्णदास, पं०
... प्रसाद मिश्र और बाबू बालमुकुन्द गुप्त,
... देवकीनन्दन त्रिपाठी और पं० रामप्रसाद
... का भी बिना स्मरण दिलाये नहीं रह
... । बाबू श्रीनिवासदास के नाटक, बाबू
... की स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकें, बाबू
... दास का राजस्थान केशरी पं० माधव
... मिश्र की ओजस्विनी लेखनी से निकले
... कई एक लेख और गुप्त महाशय
... की चुटीले कई एक निबन्ध, पण्डित
... प्रसाद त्रिपाठी के हास्यपूरित छन्द और
पण्डित देवकी नन्दन के प्रहसन हिन्दीरसिकों
के मन में स्थान किये रहेंगे । यह तो अच्छे
लेखकों में हम ने उन सज्जनों का स्मरण किया
जो इस समय हम लोगों की जीवित संख्या में
नहीं हैं, परन्तु हिन्दी के सौभाग्य से अब भी
हमारे मध्य में मेरे कुछ वे मित्र वर्तमान हैं जो
भारतेन्दु के समकालीन थे और जिन्होंने भार-
तेन्दु के साथ साथ आधुनिक हिन्दी की नींव
डाली है । हिन्दी साहित्य के रसिक जब
हिन्दी के उत्थान का इतिहास पढ़ेंगे, पं० बदरी-
नारायण चौधरी, पण्डित राधाचरण गोस्वामी
और पण्डित श्रीधर पाठक का नाम सदा
स्मरणीय रहेगा । पण्डित बदरीनारायण को
जो भारतेन्दु की प्रतिकृति कहा जाय तो सुघटित
होगा। इनके गद्य पद्य लेखों में बाबू हरिश्चन्द्र
के लेख की छटा आती है। पण्डित राधाचरण
गोस्वामी जी ने चढ़ती उमंग की उम्र में हिन्दी
को बहुत कुछ प्रोत्साहित किया । अब तक

...शाह शफी ... उनके साथ ... व्यवहार ... नहीं ... को शाह ... शारदाचरण मित्र ... अलंकृत ... गुज़ अन्य ... में भी हो रही ... आशा है कि ... धीरे वह अन्य ... स्वतन्त्र केन्द्र ... गी। आप लोग भी आज ही दूर से आकर ... प्रकार के कष्ट सह ... कर उसी सूर्य ... मन की प्रतीक्षा करते ... यहाँ प्रयाग में एकत्रित हुये हैं प्रयाग तो, ... जानते ही हैं, उन धनी स्थानों में नहीं है ... धन के बहुत आडम्बर से आप लोगों ... उचित स्वागत कर सके आप लोग जिस उद्देश्य से काम कर रहे हैं वह इतना महान् है ... आप लोगों की जितनी सेवा की जाय ... है। हम लोगों के प्रबन्ध में अवश्य ... होंगी। मेरी आप लोगों से यह प्रार्थना ... उनकी ओर, यह विचार कर को हमारा ... हार्दिक है, आप ध्यान न देंगे। ... लोगों के यहाँ दर्शन पाकर मुझे जो आनन्द ... रहा है उसे मैं प्रगट नहीं कर सकता एक ... समय था जब नक़्क़ारखाने में तूती की आवाज़ के समान थोड़े से हिन्दी के लेखक येन केन प्रकारेण अपना काम चला रहे थे। आज मुझे इस वृद्धावस्था में सौभाग्य से वह दिन देखने को मिला है कि हिन्दी साहित्य के प्रेमी इतने समारोह और उत्साह से अपनी मातृभाषा के पूजन के लिये इकट्ठे हुये हैं। यदि आप लोगों के दर्शन कर एक पुराने यद्यपि क्षुद्र हिन्दी-सेवक के आनन्द का वारापार न रहे तो आश्चर्य ही क्या है।

अब मैं अपने पुराने मित्र और हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् और लेखक पंडित गोविन्द नारायण जी से अपनी स्वागतकारिणी सभा की ओर से निवेदन करता हूं कि आप इस सम्मेलन के सभापति का आसन ग्रहण कर हमको और हमारी सभा को कृतार्थ करें।

... उन्होंने हिन्दी के लेखकों का कुछ थोड़ा ... वर्णन किया। इसके साथ ही हिन्दी साहित्य ... हिन्दुस्तान में ... ऊंचा दर्जा उन महानुभावों ... जिन्होंने न केवल अपनी ... या की दृष्टि ही ... की है, ... नीच सोच कर अप... ... व्यर्थ नहीं चिल्लावेगा ... नहीं, ... कांटे के पेड़ भी ... एक दूसरे ... हीं, ... सह ... रचनाएँ रची ... नाश, विद्या ... कुशील ... विनाश, ... यदि गज़नवी ... अमल, ... का प्र... हुआ ... कमल। ... हिन्दी-प्रेमी भी उत्पन्न ... ख्याल के ... मुसलमानों की ... मोड़ ... दुर्दशा, ... ग्रन्थ। ... रखी गई ... है निशा, ... छन्द ... ही ... लौ लगन, ... ग्रन्थ; घास, फूंस, जंगल ... वचन, ... से "होनहार बिरवान" के ... ध्यान की, नहीं पड़ते। उदारता, अपक्षपात ... जान की। धैर्य, आदि जिन जिन सद्गुण ...

... कहलाने के ... मर रहे हैं रात दिन,
देश ... सूना कर रहे हैं रात दिन,
प्लेग से हैजे से या दुष्काल से छोड़ें जो जान,
देख कर उनकी दशा को सूखते हैं इनके प्रान,
ये खड़े होते कमर कसके हैं करने को भला,
है न कोई इनको निज कर्त्तव्य से सकता डुला।

(४)

तन से, मन से धन से वे उपकार हैं करते सदा,
और दुखी का दुःख मिटा कर प्यार हैं करते सदा,
वे स्वजाती से भला व्यवहार हैं करते सदा,
जाति में परमार्थ का आचार हैं करते सदा,
वे समझते जाति भर के भार को हैं अपना भार,
उनके होते अन्य के दुख देखने को चक्षु चार।

(५)

धर्मशाला और अनाथालय बहुत खुलवायं जो,
पाठशाला पुस्तकालय भी बहुत खुलवायं जो,
देश में सम्पत्ति-दायी कार नित चलवायं जो,
और नाना भांति के व्यापार नित चलवायं जो,

बिलकुल न रहने में बहुत समय की आवश्यकता है। इस समय भारतवासियों को अधीनता की स्थिति में रहने से ही अवश्य संतोष करना ... और उनके तथा अंग्रेज़ों ... रहा है, और ...

... मित्र-भाव और ... रहे प्रेम चित्र का इति अपनी ... इसता द्वारा पाठकवृन्द दी है। ... परिडतगणों ने ... इस समय ... बड़ी ... कठिनाइयें ... पाय का कुक्य, साहिब ... उनयगा ... अपने को बनाकर उन ... को सिद्ध कर दिया ... नहीं हुई।

नाव ... अपनी इस ... तब उन्हें यह ... पत्र ... उनकी ... पाठकों के दूसरों ... उनको ... इससे उनके कुछ आविष्कारों को लिख, दूसरे ... को समाप्त करें।

... (Sulphuric Acid) के साथ ... धातुओं के ...

वे नहीं कर्त्तव्य-पथ ...
विघ्न बाधाओं से डर कर वे ... हो ... ड़ते,
हैं वे सब अनमोल हीरे जाति रूपी ... के,
हैं वे तारे से चमकते जाति के अभिमान के,
करके सेवा जाति की फिर अर्चना पाते हैं वे,
इसलिये जातीय सेवक मित्र! कहलाते हैं वे।

(९)

है समुद्रों से भी गहरी उनकी वह गम्भीरता,
जिससे दिखलाते हैं वे निज धीरता और वीरता,
दूसरों के हेत खुद वे कष्ट पाते हैं अनेक,
छोड़ते तो भी नहीं हैं वे विवेकी अपनी टेक,
वे सफल हों या न हों पर खिन्न होते हैं नहीं,
और निज उद्देश्य से भी भिन्न होते हैं नहीं।

(१०)

जाति सेवा हेतु वे कटिबद्ध हैं रहते सदा,
सब को अपना जान कर मीठे वचन कहते सदा
आत्म मर्यादा के हित सब दुःख हैं सहते सदा,
डूबतों की बांह को आपत्ति में गहते हैं सदा,
... मत्ता ...
... में ... था।
निर्णय ... जाते हैं ... ...तिक ... नाम।
... थीं। ... तोड़ तक देते हैं ... ही हैं हिम।
व्यवहार्य ... (११) ... चा
... स्कीम यों, जातीय चीज़ हर जायंगे,
... के ये प्रेत जिनकी ... बहुत डर जायंगे,
... लने में धर्म अपना ... के साहीं घबरायंगे,
... यगे वे शान्ति, अपने तैल-भ्रमर कर जायंगे,
... ज यशः सौरभ से वे सब लोक को भरजायंगे,
... र्म-योगी बन के इस संसार से तर जायंगे,

भारत में प्राच्य और पाश्चात्य।

(गतांक से आगे)

... समें ज़रा भी सन्देह नहीं कि पिछले दो ... की रिफार्म स्कीम से भारतवासी और ... के बीच में जो भारतवर्ष में उदासीनता ... थी वह रुक गई और तब से स्थिति ... दृढ़ और हितकर परिवर्तन हुआ है। देश के अधिक भाग में यह परिवर्तन इतना स्पष्ट है कि कितने ही मनुष्यों की सम्मति में एक दूसरे के मनो-भाव और योग्यता का आदर करने की इच्छा जितनी अधिक आज कल है उतनी कभी नहीं थी। कब तक इस सम्बन्ध की उन्नति होगी या फिर यह शिथिल हो जायगा और ऐसा हुआ तो कब? इन प्रश्नों का उत्तर देना बड़ा कठिन है। यह याद रखना चाहिये कि कुछ ऐसे कारण हैं जिनसे सदा भ्रम पैदा होता रहता है और दोनों में अनुकूल सम्बन्ध बड़ा दुर्घट हो जाता है। जैसे स्वभाव में भेद, भिन्न २ दृष्टि-बिन्दुओं से प्रश्नों को देखने की स्वाभाविक प्रवृत्ति, कुछ भारतीय और अंगरेज़ी समाचार पत्रों की अभ्यस्त चेष्टा, इनसे दोनों ओर धैर्य रहना कठिन हो जाता है। फिर बुरे बर्ताव के मामले हैं जिनमें भारतवासियों को किसी २ अंगरेज़ से तिरस्कार और बलात्कार केवल इस लिये सहन करना पड़ता है कि वे भारतवासी

है। ... है पर ... शाह शफ़ी ... वहु ... यें स्थिति की ... शाह ... हैं ... वर्तमान दशा ... अवश्य समझ ... चाहिये। यदि ... मनस्य के के ... ही कारण होते तो मा... जैसा है उस ... सरल होता क्यों ... वे हित-साधन ... अवलम्ब दोनों जाति ... की अनुकूल सहकारिता पर है, दोनों के ... इतने अधिक महत्व के हैं कि ऐसे भूम ... वमनस्य को उचित सीमा के भीतर रख को अधिक कठिन न होता। परन्तु दुःख के यथार्थ। कारण, जिनसे कुछ भविष्य निश्चय नहीं हो ... बड़े गहरे हैं। क्या अंगरेज़ी शासन जब ... रहेगा बिलकुल वैदेशिक रहेगा या यह ... प्रमाणों का अनुसरण अधिक २ करता ... जो सभ्य मनुष्यों के आत्म-गौरव के अनुकूल ... के समय माने जाते हैं? भारतवर्ष में अंग... को राजनीति का उद्देश क्या होगा? दोनों ... कर के लाभ में जो विरोध है वह कैसे दूर ... जायगा और दोनों की कितनी हानि होने से ऐसी संधि प्रबल और यथार्थ होगी? भारत में अंगरेज़ और भारतवासियों के पारस्परिक सम्बन्ध के भविष्य की पूर्व-कल्पना करने के पहिले ऐसे २ प्रश्नों का उत्तर देना चाहिये जो अंगरेज़ों के भारतवर्ष के साथ सम्बन्ध के मूल कारण हैं। बहुधा लोगों की सम्मति होती है कि यदि भारतवासी और अंगरेज़ आपस में अधिक मिलने लगें, या अधिक भारतवासी अंगरेज़ों की खेल-क्रीड़ा में योग देने लगें तो दोनों में अधिक मित्र-भाव दृढ़ हो जाय जिससे पारस्परिक सम्बन्ध भी उन्नत हो। वास्तव में यह बात कुछ अंशों में सत्य है और यह स्वीकार करना आवश्यक है कि हाल में बहुत से स्थानों में दोनों जातियों के प्रधान व्यक्तियों ने सामाजिक संसर्ग अधिक सुलभ करने के लिये जो यथार्थ यत्न किये हैं उन्होंने भी इस स्थिति के उन्नत करने में बहुत सहायता दी है। परन्तु

... यह ... हिन्दी के लेखकों का कुछ थोड़ा ... वर्णन किया। इसके साथ ही हिन्दी साहित्य ... हिन्दुस्तान में हिन्... ऊंचा दर्जा उन महानुभावों ... होनेवाले ... जिन्होंने न केवल अपनी ही ... या की दृष्टि ही ... की है, ... कि ... सोच सोच कर ... व्यर्थ नहीं चिल्लावेगा ... तव ... कांटे के पेड़ भी ... एक दूसरे ... ने सहकारि... रचनाएँ रची की ... विद्या ... उन्नतिशील ... ययव ... यदि गज़नवी ... सिलव ... नहीं ... कित का प्र... हुआ और ... अंगरेज़ी ... दी-प्रेमी भी उत्पन्न ... की कुछ ... याल के शि... मुसलमानों की ... स्वीकार ... ग्रन्थ। ... रखी गई ... पर ... आज ... छन्द ... ही ... संपूर्ण ... ग्रन्थ; घास, फूंस, जंगल ... करता है ... ण से "होनहार बिरवान" के प्राण ... रतवासी नहीं पड़ते। उदारता, अपक्षपात ... कि वह अधैर्य, आदि जिन जिन सद्गुणों ... मित्र-भाव की जड़ हलाने के ऐसे गुण-ग्रहण और आदर हैं जो साध सम्मति असादृश्य के ज्ञान के साथ नहीं देखे जाते। इस का यह आशय नहीं है कि जहां समानता नहीं है वहां अवश्य ही मित्रता का संबंध नहीं। जो समुदाय अन्य समुदाय की अधीनता में हो उसकी उस अन्य समुदाय पर अधिक भक्ति होना असामान्य बात नहीं है। पर ऐसा संबंध तभी संभव हो सक्ता है जब अधीन समुदाय यह जाने कि इसके आत्म-गौरव के ज्ञान का यथोचित विकास होता है, यह अनुभव करे कि इसके लाभ के लिये ही इसकी पराधीन स्थिति आवश्यक है, तथा अन्य समुदाय अपने स्वार्थ के लिये इससे कुछ अनुचित लाभ नहीं उठाता। और यह मेरी सम्मति में संक्षेप से अंग्रेज और भारतवासियों की स्थिति है। यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि अंग्रेज़ और भारतवासियों की राष्ट्रीय स्थिति का वर्त्तमान असादृश्य धीरे २ कम हो सक्ता है पर इस के

बिलकुल न रहने में बहुत समय की आवश्यकता है। इस समय भारतवासियों को अधीनता की स्थिति में रहने से ही अवश्य संतोष करना पड़ेगा और उनके तथा अंग्रेजों के रहा है, और रास- तक मित्र-भाव और भी क- सके रहे प्रेम चित्र का इति अपनी इस्ता द्वारा पाठकवृन्द दी है। वे पूर्व परिडतगणों ने। इस समय निता बड़ी उ कठिनन्दर्य न पाठक का कुछ्य, साहिब अंग्रेज़ उनयगा ओं अपने को बनाकर उन के यागिकी को सिद्ध कर दिया के नहीं हुई। वह बंध देश बंधे का प्रवन्ध इस ने का विचार कर रहे जायगा। यह विधि। पत्र तो और सन भारतवासी पाठकों के दूसरों भी न पर भी इससे उनके कुछ आविष्कारों को लिख, हटने दे न्ध को समाप्त करें। नीति के द्वा (Sulphuric Acid) के साथ की आशा है। धातुओं के

कितने ही मनुष्यों को कद होगा कि इस लेख में भारतवासियों के राष्ट्रीय विकास पर अधिक ज़ोर दिया गया है और इस बात पर बाद-विवाद करने का कोई उद्योग नहीं किया गया कि राष्ट्रीय विचारों को छोड़ कर कैसे अंग्रेज़ और भारतवासियों को एक दूसरे की विशेष शिक्षा और सभ्यता के अधिक गहन और सहानुभूति-पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में सहायता दी जाय और कैसे मनुष्य-जाति की सेवा या विद्या के अनुशीलन में उनमें आन्तरिक सहकारिता दृढ़ की जाय। जहां तक भारतवासियों का अंग्रेज़ों के परिज्ञान से सम्बन्ध है, यह काम उन भारतीय विश्वविद्यालयों में बड़े उत्साह के साथ हो रहा है जिन्हें स्थापित हुए ५० वर्ष से अधिक हो गए। इन विश्वविद्यालयों का प्रधान उद्देश यही है कि यहां पाश्चात्य शिक्षा की उन्नति हो और भारतीय छात्रों को उनमें पाश्चात्य

मत्ता गया। इतिहास, निर्णय उसके अति रासायनिक थीं। भूत, तान्दो और उसने सभी पहिले से व्यवहार्य को पाश्चात्य में द्वारा भारतवा चीज़ पाश्चात्य समाज का ज्ञान उसकी संप्र नियम, साधन, आदर्श, जीवन और उ के इन विषयों पर विवेचण, और उसके अंश सार्थक करने के प्रकार शीघ्रता से फैल रहे हैं। पर इस बात का बड़ा दुःख है कि अङ्गरेज़ भारतवासियों को जानने और समझने का उद्योग नहीं करते। यह बात सत्य है कि किसी २ अङ्गरेज़ ने पाश्चात्यों को भारत का निरूपण कराने में बड़ा भारी काम किया है परन्तु न तो इङ्गलैंड में और न अङ्गरेज़ों में इस देश में भारतीय शिक्षा और सभ्यता का सहानुभूति-पूर्ण परिशीलन है जिस का परिणाम यह होता है कि इस देश में बहुत समय तक रहने पर भी बहुत कम अङ्गरेज़ उनका वास्तव में अवेक्षण करते हैं। यह एक अद्भुत बात है और कुछ कम महत्व की नहीं है कि इस विषय में जरमनी इङ्गलैंड से बहुत आगे है और मालूम होता है कि अमेरिका उससे भी आगे बढ़ जायगी। यह तो स्पष्ट है कि यहां उन्नति के लिये बहुत स्थान है और यदि इस महासभा का फल एक यह भी हो कि अङ्गरेज़ों की भारतीय शिक्षा और सभ्यता के (सहानुभूति-पूर्ण) परिशीलन की ओर प्रवृति हो तो महा सभा का होना भारत के लिये बहुत उपयोगी हो। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे परिशीलन से विशेष कर यदि अङ्गरेज़ भारतवासियों का अधिक आदर करने लगें और दोनों के सम्बन्ध की यथार्थ में उन्नति हो तो यह अवश्य कहा जायगा कि भारत की राष्ट्रीय उन्नति की ओर अङ्गरेज़ों की प्रवृत्ति पर ही इस सम्बन्ध का भविष्य बदलेगा क्योंकि अङ्गरेज़ और भारतवासियों का सम्बन्ध विशेष कर राष्ट्रीय है। इस लिये भारत में प्राच्य और पाश्चात्यों में

ही रहे शाह शफ़ी ... अङ्गरेज़ कैसे ... नहीं
को राष्ट्र... में सहायता कर...
भारतीय ... जिसकी ...
राष्ट्रीय विक... प्रजा-तंत्रीय आधे...
निधी-भूत श... है। भारत में यह विकास ...
धीरे २ अवश्य ... इतना धीरे नहीं हो...
जितना कुछ म... सोचते हैं। यह सत्य ...
जैसा कि लार्ड मार्ले ने ३ वर्ष हुए तब बताया
था कि भारतवासियों को प्रबल राष्ट्रीय स्व...
के विकास के लिये आवश्यक उद्योग करने...
लिये बहुत समय चाहिये। परन्तु कार्य आर...
हो गया है जो दिन पर दिन उन्नत ही होगा
वे कठिनाएं जो इसको रोकती है निःसन्...
बहुत बड़ी हैं और कभी २ वे दुर्घट दीखती
पर कुछ ऐसी शक्तियां हैं जो प्रति दिन
अधिक उत्तेजित करती हैं और उनसे ...
में हम कठिनताओं के पार जा सकेंगे ...
कहना आवश्यक है कि इस विकास में शीघ्र...
का बिलंब करना बहुत कर के अंगरेज़ों के
शक्ति में है। यदि इस गहन और आश्चर्य-जनक
नाटक में अङ्गरेज़ों को अपना कार्य उदारता से
करना है तो इस उन्नति में उनकी सहायता
करने की कामना दृढ़ और अनन्यथा-करणीय
अवश्य होनी चाहिये। मेरी सम्मति में अब
ऐसा समय आ गया है कि सर्वोच्च अधिकारी
को जिसे अङ्गरेज़ों की ओर से बोलने का स्वत्व
है, इस विषय पर निश्चित उक्ति कहनी चाहिये
और भारत में शासनाधिकारी अङ्गरेज़ों को
ऐसी उक्ति का सब कामों में ध्यान रखना
चाहिये। अङ्गरेज़ों में एक समुदाय ऐसे विचा-
रक और लेखकों का है जो इसे स्वयं सिद्ध
समझते हैं कि प्राच्यों को प्रतिनिधिभूत शासन
की इच्छा और योग्यता जरा भी नहीं। यह
कल्पना अनुभव से ठीक सिद्ध नहीं होती और
कभी कोई आत्म-गौरवान्वित भारतवासी इसे
स्वीकार नहीं करेगा और यह बात आश्चर्य-

... साहित्य ... जनक है कि वे मनुष्य जो भारतीयों की उच्च
... आशाओं को इस भांति रोकना चाहते हैं यह
... समझते कि इससे कैसे भारतवासियों
... विरुद्ध हो जाता है जिस
... की दृष्टि ही ... सिद्धान्तों का विकास
... सोच सोच कर अप... पर ... और
... व्यर्थ नहीं चिल्लावेगा ... तुर ...
कांटे के पेड़ भी ... एक दूसरे ...
... ने सह ... रचनाएँ रची ...
विद्या... कुशीय ... शील ...
... यदि, गज़नवी ... लव ...
... का प्र... हुआ और ... हटेंगे।
... प्रेमी भी उत्पन्न ... को यह
... के शि... मुसलमानों की ... जिस
... ग्रन्थ। ... रखी गई ... हो पर
... छन्द ... ही ... तिक और
... ग्रन्थ; घास, फूंस, जंगल ... ही है।
... से "होनहार बिरवान" के प्राण ... लोगों
नहीं पड़ते। उदारता, अपक्षपात ... अनुभव होना
धैर्य, आदि जिन जिन सद्... के दबाने में
कहलाने के ... तयार रहे। क्रूर अपमान और
... बुरा ... जो इस देश के मनुष्यों के साथ द-
क्षिण अफ्रिका में किया जाता है उससे देशभर
में बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न हुआ है। दूसरी ओर
भारतीय शासकों का यहां से नेटाल को मज़दूरों
का भेजना बन्द करने से सर्व-साधारण में बड़ा
संतोष हुआ है जिसका प्रभाव इस देश में अंग्रेज़
और भारतवासियों के संबंध पर अवश्य होगा।
उन विषयों में से जिनका संबंध यहां के मनुष्यों
के नैतिक और सांपत्तिक लाभ से है, शासकों
को शिक्षा की सब शाखाओं का और विशेष कर
शिल्प-विज्ञान-शिक्षा का सर्व-साधारण में प्रचार
करने में अब ज़रा भी समय नष्ट नहीं करना
चाहिये। यह विचार कुछ गर्व का नहीं है कि
अधिकांश अन्य सभ्य देशों में सार्वजनिक प्रार-
म्भिक शिक्षा राज्य का एक विशेष धर्म बहुत दिन
से स्वीकार किया गया है और भारतवर्ष के भी-

तर भी बड़ोदे के राजा ने लड़के लड़कियों के
लिये स्वतंत्र अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा का आरंभ
करना उचित समझा पर भार... में ... यें शास्त्र
लड़के अब भी अज्ञान और ... रहा है, और रास-
हैं और ५ में से ४ गांवों ... भी क-
शिल्प ... रहे प्रेम चित्र का इति अपनी
हमारे पण्डितगणों ने ... इक्ता द्वारा पाठकवृन्द दी है।
प... कठिनन्दिर्य ... इस समय ... बड़ी
लिक ... पाय का कुछ्य, साहिब
शिक्षा ... अपने को बनाकर उन
पीछे ... को सिद्ध कर दिया
की पूरी ... नहीं हुई।
पर जार का ... सांप ...
को अपने इस ... स्वत्वों क...
तक हो वह यह ... पत्र ... विचार कर रहे
अंगरेज़ों ... पाठकों के दूसरों ... और सन्
सीखना इससे उनके कुछ आविष्कारों को लिख,
भारतवर्ष ग्रन्थ को समाप्त करेंगे।
अधिक २ उन्न... (Sulphuric Acid) के साथ
कि यद्यपि सामान्य ... धातुओं के पि-
रेज़ों से न्यून हैं और कुछ दिन ... हो...र
कोई २ भारतवासी देश के प्रत्येक भाग में ऐसे
पाये जाते हैं जो सदाचार, योग्यता और बुद्धि
में कहीं भी प्रसिद्ध हो सकते हैं। और जब ऐसे
मनुष्यों से योग्यता में कम अंगरेज़ इस देश में
भेज दिये जाते हैं और उच्च पदों पर बैठा दिये
जाते हैं तब समग्र भारतीय जाति को अन्याय
बोध होता है जिससे उत्तम भाव का होना या
जारी रहना बहुत कठिन हो जाता है। कम और
अच्छे मनुष्य यदि इङ्गलैंड से भेजे जायं, चाहे
उनका वेतन अधिक हो, तो इङ्गलैंड का गौरव
भारत में नीचा होने से बच जाय और वर्तमान
दशा में यह बात बड़े महत्व की है। चौथी और
सब से पिछली बात जिसे मैं कहा चाहता हूं
वह यह है कि जो अंगरेज़ इस देश में आवें
उनके लिये अत्यन्त आवश्यक है कि कुछ दिन
पहिले लार्ड मार्ले के कहे हुए उपदेश की बुद्धि-

मत्ता ... ...गा।
... समझ...
निर्णय ... आचरण ... भारत में
... मैं समझता हूं भारतवासी ... इस
व्यवहार्य ... ध्यान देंगे। ... चा
... यदि भारतवर्ष के भविष्य ... कोई ठीक २
... कही जा सकी है तो ... कि वह अभी
अंधकार से घिरा ... परन्तु अपने
के मनुष्यों के भाग्योदय ... पूर्ण विश्वास
हम में अब तक बहुत से वे लक्षण-हमारी
... क गहनता, जीवन पर हमारा प्रशांत अ-
...ण, हमारे गार्हस्थ तथा सामाजिक कर्तव्य
विचार—बाकी हैं जिनके कारण एक बार
संसार की सभ्यता के अग्रगण्य थे। अन्य २
...यां जो यहां रहने के लिये आती रही हैं
... अपनी निधि यहां साधारण संपत्ति में
... है। भविष्य में भारत इन सब तत्वों का
... गा जो एक दूसरे को उत्तेजित करेंगे
... नियत कार्य के लिये पूरी शक्ति होने
पहिले नियम, शुद्धता और यथार्थ युक्ति के
...क लंबे क्रम की आवश्यकता है। इस तयारी
के काम में इसे पथ-प्रदर्शन करना और सहा-
यता देना एक पाश्चात्य जाति के भाग्य में आया
है। और यदि डरपोक और स्वार्थी उपदेशकों
की परवा न की गई तो इङ्गलैंड ऐसा उदार
परस्पर-व्यवहार-संबंधी काम करेगा जो अब
तक मनुष्य जाति को करने को नहीं मिला है।
जब भारतवर्ष के पुरुष और स्त्री फिर अपने
प्रमाण की परमावधि तक उन्नति करना
आरंभ करें और संसार को अपना काम दिखावें
जो उन्हें करना है तो धार्मिक और नैतिक शक्ति
की एक धारा जो बहुत दिन से नहीं दीखती
है अपने स्थान को लौटेगी और प्राच्य तथा
पाश्चात्य-काले सफ़ेद-सब को प्रसन्न होने का एक
सा कारण मिल जायगा।

(२१) शाह शफ़ी

शाह -वक़्ता-पं० माधव

श्रोत्र गण कर्त्ता है

लोने सकल काज

गरलहु मा में कठिन

लगते पक्षपात का ॥

तप से स ये हुये

वर्षा कर

जे काज हैं ।

द्विभावों के शस्त्र

तिन्हें करते विनाश हैं ॥

तीर्थराज में आन कर

अहो ! आज प्रिय बन्धुगन !।

यह विकार त्यागहु सकल

प्रनकर निज अनहित करन ॥

हिन्दी हित के हेतु

आज करना विचार है ।

दीनदशा को टार

सजाना कर सिंगार है ॥

सारे हिन्दुस्तान

देश की हो यह भाषा ।

हिमगिरि के सर्वोच्च

शिखर चढ़ि करै प्रकाशा ॥

त्यहि अवसर पर जानियो

निज जीवन जग में सुफल ।

संपूरण भाषान की

माता हो जब भूमितल ॥२॥

मिटकर सब त्रुटि

विविध विषय से पूरित होकर ।

लहरावै साहित्यसिंधु

निर्भय गर्जन कर ॥

नर का पाकर जन्म

न हो कर्तव से वंचित ।

प्रकट दिखावहु आज

मातृभाषा कर सज्जित ॥

या छन तुलसी, सूर,

हरिचंद, विहारि, केशव, प्रभृति ।

गगन खड़े मुख जोहते

तव प्रिय हिंदी हेतु इति ॥ ३ ॥

मातृ काज हित धाय,

धन, तन, वच, सेवा करहु ।

शुक्ल, नील ह्व जाय,

पै न तजहु निज प्रण सुदृढ़ ॥४॥

... इतना ... नहीं ... लङ्कित ... ही ... ही ... ाग ... कच्ची ... कों को ... ाहिए । ... पौधे ... चमेही ... के ... वाभाविक ... य काँटों के ... ाने को ... ख कर ... जिस

अध्यापक प्रफुल्लचन्द्रराय की गवेषणा ।

("प्रवासी" से मर्म्मानुवादित)

... तवाली ... ारतवर्ष की कृती सन्तानों ... या की दृष्टि ही ... लगते हैं; जिनके विद्या, ... सोच सोच कर अप ... ल से विदेशियों को व्यर्थ नहीं चिल्लावेगा ... तुर माल ... से काँटे के पेड़ भी ... एक दूसरे ते हैं ... पने सहकर्मि ... रचनाएँ रची की ... जस विद्याल ... कुशीप उन्नतिशील ... ण्ड, ... यदि, गज़नवी ... सेजिलव ... उसी ... कीर्त का प्र ... हुआ और प्र ... द्विख्यात ... दी-प्रेमी भी उत्पन्न ... याल के शि ... मुसलमानों की प्र मोद ... नहीं की, ... खी ग्रन्थ । ... रखी गई मय ... पर ... य महोदय के छन्द ... प्रचार ... ही शोभ ... जड़ स- ... नीय ग्रन्थ; घास, फूस, जंगल ... ाण होना ... ण से "होनहार विरवान" के प्राण ... महोदय ने नहीं पड़ते । उदारता, अपक्षपात ... षणा को है । धैर्य, आदि जिन जिन सद्ग ... सब शाखा, प्रशा- कहलाने के ... न है । किन्तु प्राचीन होने पर भी आजकल के वैज्ञानिकों ने उसमें बहुत परि-वर्तन कर दिया है। सैकड़ों वर्ष नाना परीक्षा कर पदार्थ के विचित्र संयोग, वियोग के स-म्बन्ध में, प्राचीन पण्डितों ने जो सिद्धान्त स्थिर किये थे, आजकल के वैज्ञानिकों ने उनमें बड़ी सूक्ष्मता के साथ भ्रम दिखाकर दूसरी बातें निश्चित की हैं। इससे गत शताब्दी में जड़ विद्या के इस विभाग से सम्बन्ध रखने वाली जो जो नई बातें ज्ञात हुई हैं, उन्होंने रसायन शास्त्र को बिलकुल बदल डाला है दो वा इस से अधिक जिन चीज़ों के संयोग से, जिस वस्तु की उत्पत्ति हो सकी है, प्राचीन वैज्ञानिकों ने उनकी इस भूल को अच्छी तरह दिखाया है। इसके सिवाय पूर्व वैज्ञानिकों ने जिन पदार्थों के अस्तित्व में सन्देह किया था, आज कल के वैज्ञानिक उन्हें प्रत्यक्ष बनाकर दिखा रहे हैं। यह

कहना अब व्यर्थ है कि इससे रसायन शास्त्र की उन्नति का प्रसार बढ़ रहा है, और रासायनिक संयोग वियोग के [illegible] भी क्रमशः प्रकाशित हो रहे [illegible] चित्र का इति अपनी गवेषणा के द्वारा इन्होंने द्वारा पाठकवृन्द दी है। पूर्व पण्डितगणों ने [illegible] इस समय [illegible] बड़ी कठिनान्दिर्य [illegible] पायर का कुछ्य साहिब ने [illegible] अपने को बनाकर उन यौगिकों [illegible] को सिद्ध कर दिया है। [illegible] नहीं हुई।

डाक्टर राय [illegible] जानी बातों का [illegible] स्वत्वों का [illegible] वर्णन इस [illegible] प्रचार कर रहे [illegible] सिवाय यह [illegible] पत्र [illegible] और सन [illegible] विशेषज्ञ पाठकों के दूसरों [illegible] भी न होगा इससे उनके कुछ आविष्कारों को लिख, इस प्रबन्ध को समाप्त करेंगे।

गन्धद्रावक (Sulphuric Acid) के साथ ताम्र लौह और निकल प्रभृति धातुओं के मिलाने से एक यौगिक पदार्थ उत्पन्न हो जाता है। तूँता, वा तूथ और हीराकस आदि इसी धातु के जातिभुक्त हैं। इन सब वस्तुओं के परस्पर मिलने से और भी कई यौगिक पदार्थ उत्पन्न हो जायंगे। डाक्टर राय ने सब से पहले इसी विषय में गवेषणा की। इससे तूँता की जातीय वस्तुओं के परस्पर संमिश्रण और विश्लेषण के सम्बन्ध में अनेक नई बातें जानी गईं। गत १८८८ ई० में "एडिनबरा रायल सोसायटी" की पत्रिका में इस गवेषणा का विवरण प्रकाशित हुआ, जिससे मा० राय की प्रखर गवेषणा शक्ति का सब को परिचय मिल गया। तभी से राय महाशय D. S. C. कहे जाते हैं।

इसके बाद १८९४ में एसियाटिक सोसायटी के एक अधिवेशन में डाक्टर राय ने घृत, माखन चर्बी प्रभति के स्वरूप और विशुद्धि निर्णय के लिये एक रासायनिक पन्था दिखाई थी। घृत, माखन, तेल, यह सभी हैं पारो नित्य व्यवहार्य वस्तु हैं। इनमें चालाक व्यापारी बहुत सी अस्वास्थ्यकारी चीज़ मिला देते हैं, इससे ऐसी तर्कीब निकलनी बहुत आवश्यक थी। ग्लिसरीन् (Glycerine) के साथ (Fatty Acids) के मिलने से अधिकांश तैल जातीय पदार्थों की उत्पत्ति होती है। Fatty Acids कई तरह का होता है। इससे प्रायः प्रत्येक "Fatty" से तेल भी एक एक तरह का उत्पन्न होता है। डा० राय ने तैल जातीय पदार्थ के रासायनिक संगठन के पार्थक्य को अवलम्बन कर, उसकी गवेषणा की थी। अलीपुर-जेल से विशुद्ध सरसों का तेल और अण्डायमान-द्वीप से विशुद्ध गोला का तेल मँगा कर, बाज़ार के तेल उनसे कितने गुने अविशुद्ध हैं, यह दिखाया था।

१८९६ में डाक्टर राय ने पारे के सम्बन्ध में गवेषणा की। इस गवेषणा से उनका बहुत नाम हुआ। पारे के विषय में हमारे देश में जितनी आलोचना हुई है, उतनी किसी दूसरे में नहीं। इस भारतवर्ष से ही अति प्राचीन समय में इसके गुणों का परिचय जगत् भर को मिला था। पारे से तरह तरह की औषधि बनती थीं। पारा, अम्लजान Oxygen और गन्धक आदि के साथ मिलने से तरह तरह की रङ्ग विरङ्गी वस्तुएँ उत्पन्न कर देता है। इस बात को हमारे पाठक अवश्य जानते होंगे कि पारा सब द्रावक वस्तुओं में मिल जाता है, किन्तु सोरकाम्ल (Nitric-Acid) के साथ यह जिस सरलता से मिलता है, उतना दूसरो से नहीं। उसमें मिलाने के लिये पारे को उत्तप्त भी नहीं करना पड़ता। इस रासायनिक प्रक्रिया से पारा बहुत से यौगिक पदार्थों को उत्पन्न कर सकता है। प्रायः शताधिक वर्षों से, नाना देशीय पण्डित इन सब यौगिकों के स्वरूप जानने की चेष्टा में थे, पर उनकी चेष्टा पूर्ण न हुई। क्योंकि वे यह न जान सके थे कि सबसे पहले पारा किस यौगिक

पदार्थ को उत्पन्न करता है। हमारे मि० राय ने इसका भी पता लगा लिया। "Mercurious Nitrite" का पता लगा ही तो लिया!

परमद्घटित नये यौगिक "Mercurious Nitrite" के आविष्कार का वृत्तान्त सब से पहले कलकत्ते की एशियाटिक सोसायटी के पत्र में छपा। इस पत्र में "वैज्ञानिक लेख" कभी भी नहीं छपते थे। किन्तु डा० राय महाशय के आविष्कार का गुरुत्व समझ कर उसे छापना पड़ा। इस लेख को जर्म्मन के एक प्रसिद्ध पत्र ने अनुवादित किया। जिस तत्वाविष्कार में Peligat (पेलीगाट) Niemann (निमैन) और Lang (लांग) आदिकों की भी बुद्धि नहीं पहुंची थी, उसको एक भारतीय वैज्ञानिक ने निकाल लिया, इससे ज्यादा और क्या आनन्द की बात हो सकती है।

प्राचीन कालसे ताम्र, रौप्य, पारा आदि धातुओं को गलाने के लिये महाद्रावक (Sulphuric acid) शङ्ख द्रावक वा सोरक द्रावक (Nitric acid) आदि काम में लाये जाते थे, किन्तु यह सब धातुएं क्यों गल जाती हैं, इसका क्या अन्तर्निविष्ट गूढ़ कारण है, इस प्रश्न की मीमांसा नहीं हुई थी। अध्यापक राय की गवेषणा से इसका कुछ पता लग गया है। डा० ज़ाइवर्स ने इसके सम्बन्ध में जो निर्णय किया है, वह वैज्ञानिक समाज में प्रमाणिक माना जाता है। उन्होंने १९०४ ई० में Journal of the Society of chemical Industry नाम के पत्र में "Theory of the action of metals upon" नाम के प्रवन्ध में भूमिका लिखते हुए स्वीकार किया है कि बिना मि० राय की गवेषणा के वह इस लेख के प्रकाशित करने का साहस नहीं करते *।

पाठक, इस बात को जानते हैं कि अम्ल और क्षारज पदार्थों के मिलने से ही लवण जातीय [illegible]िक पदार्थ उत्पन्न होता है। इसमें [illegible] किसी का भी गुण नहीं होता [illegible]शय का आविष्कृत "मर्क्यू[illegible] [illegible] तरह का जातीय लवण Sal[illegible] का [illegible] दूसरा नाइट्रस एसिड" [N[illegible] [illegible] है एवं क्षार का अंश प[illegible] नाइट्रस एसिड को सोर[illegible] में अम्ल[illegible] [illegible]ही दोनों [illegible] HO -NO 2 या [illegible] प्रकाश किया [illegible] साथ नाइट्रोज़न है प[illegible] नहीं। यौगिक पदार्थ के परमाणु कितने संयोजित हैं इनका इस सांकेतिक नाम से परिचय मिलता है। आणविक गठन से द्रव्य की क्रिया और उसके [illegible] का पता लगता है। नाइट्रस एसिड का आणविक रूप कैसा है इसकी मीमांसा के लिए मि० राय ने नाना धातुओं के साथ उसे मिला कर और उससे जो यौगिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं उन्हें उत्तप्त कर परीक्षा करना आरम्भ किया। इसमें उन्हें अच्छी सफलता प्राप्त हुई। परीक्षा करते २ Ethyl Nitrite और Nitral thane नाम के दो अङ्गार मूलक पदार्थों का आविष्कार हो गया। बस, अब यह लेख समाप्त होता है, क्योंकि न तो अधिक समय ही है, न अब पाठकों को इसे पढ़ने के लिये मन करता होगा। आप के बाकी आविष्कारों की बात फिर कभी सुनावेंगे।

श्री गौरचरण गोस्वामी।

—o—

* The occasion for presenting the theory in a more developed form to the So-ciety has been given by the reading last month to the chemical society, of an important paper on Mercurious nitrites by Mr. Roy of the Presidency College, Calcutta.

चित्रावली ।

रुक्मिणी सन्देश ।

गत संख्या (४) के प्रथम चित्र का इतिहास उसीमें प्रकाशित कविता द्वारा पाठकवृन्द की सेवा में पहुंच चुका है । इस समय चित्र के भाव, सौन्दर्य [illegible] चित्रकार का कुछ उल्लेख किया जायगा [illegible] णी अपने को कृष्णार्पण कर चुकी [illegible] के प्रेम में विह्वल थी । उन [illegible] पनी भगिनी को शिशुपाल को देना [illegible] देवी अपने अपूर्व प्रेम [illegible] के स्वत्वों [illegible] और उन्हें अपने [illegible] का [illegible] चार कर रहे करना चाहती थीं । पत्र तो [illegible] और सन [illegible] थीं । किन्तु भेजतीं किस के हाथ [illegible] तो रुक्म के आधीन थे शिशुपाल के वैभव को भी सेवक तथा दूत जानते ही थे । कौन रुक्मिणी की सहायता के लिये आता । अन्त में एक वृद्ध ब्राह्मण रुक्मिणी की मनोकामना पूर्ण करने को उद्यत हुआ । ब्राह्मण देवता पत्र लेने के लिये पल्ला फैला रहे हैं ! रुक्मिणी झरोके से प्रेम-पाती कृष्ण-प्रति अपने उत्सुक कर कमलों से नीचे छोड़ने को हैं । उनके चित्र के प्रेम आशा और उत्कण्ठा का प्रतिबिम्ब चित्रकार रुक्मिणी के मुख मण्डल पर खूब लाया है । मानों पत्र के साथ अपना मन और प्राण भी दिये देती हैं । हाँ यह प्राण अर्पण तो है ही ।

जिन पाठकों ने इस चित्र का असली रङ्गीन चित्र प्रयाग प्रदर्शिनी में देखा होगा वे इसके सौन्दर्य का अनुभव कर सकते हैं ।

यह चित्र कलकत्ते की चित्रशाला के मुख्य अध्यापक आधुनिक आदर्श चित्रकार श्रीमान् अवनिन्द्र नाथ ठाकुर के एक मुसलमान चित्र-कार का बनाया हुआ है । इस युवा चित्रकार का नाम हकीम खान है । और वह लखनऊ निवासी है । अवनिन्द्र बाबू के शिष्य कई प्रकार के चित्र बनाते हैं । सब के ढङ्ग निराले और अद्भुत हैं । हकीमखान पुराने बादशाही ज़माने के चित्रकारों की चित्राङ्कण प्रणाली का अनु-करण करता है । उसके चित्रों में खूबी यह है कि यह युवा चित्रकार अपने चित्रों में प्रौढ़ता और शारीरिक गठन तथा बनावट में पुराने कुछ चित्रकारों की तरह–कमी नहीं रखता है ।

झरोखा भी क्या ही सुन्दर बना है । इसीको सर्वाङ्ग सुन्दर कहते हैं । यह चित्र पुरानी प्रथा परिपाटी पर चलने वाले नवीन चित्रकारों की चित्राङ्कण कुशलता का अच्छा दृष्टान्त है ।

अन्तकाल ।

गत संख्या का दूसरा चित्र "अन्तिमकाल" की छटा दर्शाता है । यह चित्र मुग़ल समय की भारतीय चित्रकला का अति उत्तम उदाहरण है । खेद का विषय है कि इसकी असली प्रति विलायत में है । वहाँ उस चित्र की बड़ी प्रशंसा होती है और कई इसके खरीदने के उत्सुक हैं ।

वृद्ध पुरुष मृत्युशय्या पर आरूढ़ है । उसे अपनी मृत्यु स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही है । वह मृत्यु की ओर टकटकी लगाये देख रहा है । उसे मृत्यु का ज़रा भी भय नहीं ! उसे विश्वास है कि मैंने कोई ऐसा पाप कर्म नहीं किया जो मुझे नरक की यंत्रणाओं का सामना करना पड़े । वह मृत्यु के स्वागत के लिये मानो सावधान होकर बैठा है । भावों को छोड़ यदि चित्र की रचना की ओर ध्यान दो तो चित्रकार ने कुछ भी उठा नहीं रक्खा । मृत्यु-आरूढ़ पुरुष के शरीर और उसकी दशा का क्या ही खूब खाका खींचा है ।

लैला मजनू ।

वर्तमान संख्या का प्रथम अथवा मुख्य चित्र जगत विख्यात 'लैला मजनू' का चित्र है । हमें यह बड़ा खेद है कि हम अपने पाठकों की

भाग २] अक्टूबर सन् १९११—कार्तिक [संख्या ६

प्रभात ।

[लेखक—श्रीयुत गोपालशरण सिंह जी ।]

(१)

भानु के आगमन की शुभ-सूचना है मिल गई ।
प्रकट निशि का नाश है प्रभुता अटल वह हिलगई ॥
लालिमा प्राची दिशा में अब प्रकाशित हो गई ।
सज्जनों के मलिन मुख की मलिनता है खोगई ॥

(२)

मंद द्युति है उडुप-दीपक मनुज गत गौरव-यथा ।
कालिमा भी छिप गई ह्वै कै निराश्रय सर्वथा ॥
हाय, शशि यह नाश तेरा दुखद है किस को नहीं ।
पापियों के साथ का पर उचित प्रतिफल है यही ॥

(३)

भानु ने पाया विजय यह विदित सब पर होगया ।
तस्करादिक पापियों का धैर्य्य-साहस खोगया ॥
छोड़ के दुष्कर्म वे सब रत हुए निज कर्म में ।
नृपति न्यायी दुष्ट को आरूढ़ करता धर्म में ॥

(४)

रात का वह ठाट अब कुछ भी नज़र आता नहीं ।
घोर-अत्याचार का परिणाम समुचित है यही ॥
पाप का फल एकसा मिलता सभी को है सही ।
राव-रङ्क-विचार इसमें है नहीं होता कहीं ॥

(५)

न्याय पूर्वक जो नृपति अज्ञानवश चलता नहीं ।
वह कभी निज कार्य में पूरा सफल होता नहीं ॥
इस सुनिश्चित नीति का नित ध्यान रखना चाहिये ।
पाप का फल जानकर, फिर पाप करना चाहिये ?

(६)

रवि-प्रभा के रूप में विद्या का अब विस्तार है ।
मूर्खता-तम का किसी थल में नहीं निस्तार है ॥
ह्वै पराजित तमोगुण बस नाम में ही रह गया ।
त्यों सतोगुण-धार में संसार सारा बह गया ॥

(७)

छोड़ के आलस्य सब हैं भूरि-निद्रा से जगे ।
विमनता को दूर कर उद्योग-धन्धा में लगे ॥
इन्द्रियों के वश में हो स्वातंत्र्य अब खोते नहीं ।
कर स्वयं अपना अहित फिर अन्त में रोते नहीं ॥

(८)

देख कर पीड़ित निशा से प्राणियों को ईश ने ।
भानु को प्रेषित किया है करि कृपा जगदीश ने ॥
यों सदा निज सृष्टि का वह क्लेश हरता है सभी ।
तात क्या सन्तान का दुख देख सकता है कभी ?

मानव जाति के साथ सहज स्नेह और देशानुराग।

[लेखक—पं० जनार्दन भट्ट।]

मनुष्यमात्र के साथ सहज स्नेह और देशानुराग ये दोनों मनुष्य के उन उच्च मानसिक भावों में से हैं जिनके वश में होकर वह ऐसे ऐसे कामों को करता है जो सोने के अक्षरों में लिखने के योग्य हैं। यद्यपि दोनों ही मनुष्य के हृदय के बड़े भारी गुण हैं, तथापि जीवन के सांसारिक व्यवहार में बहुधा दोनों एक दूसरे के विरोधी और प्रतिपक्षी देखे जाते हैं। मनुष्य मात्र के साथ सहज स्नेह एक ऐसा गुण है जो निर्दयता और क्रूरता के सर्वथा विपरीत है, और जो मनुष्य के उच्च व विशाल हृदय का परिचय देता है। एक दयावान् और मनुष्य मात्र के साथ सहानुभूति करने वाला हृदय निस्सन्देह सहृदयता और सज्जनता का समुद्र है जो हर एक वस्तु को जो उसके समीप आती है, सुंदर और प्रसन्न बना देता है। मनुष्य जाति के साथ स्नेह और सहानुभूति करना बड़ा अच्छा गुण है, तथापि स्नेह और सहानुभूति की भी सीमा है। मनुष्य का सहज स्नेह और प्रेम अधिकतर स्वजाति और समाज में ही बद्ध रहता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि वे जातियाँ जो सभ्य कही जाती हैं और वे मनुष्य जो लोगों से आदर पाते हैं और पूजे जाते हैं, कभी २ मनुष्य मात्र के साथ सहज स्नेह के भाव को दूर कर के अन्य जाति व स्वजाति के मनुष्यों के साथ बहुत क्रूरता और निर्दयता के साथ आचरण करते हैं। जब दो जातियां आपस में युद्ध कर रहीं हों तो न्याय, ईमानदारी और दया को दूर कर के एक जाति दूसरे जाति को दबाने व हराने की हर प्रकार से चेष्टा करती है और "मनुष्य मात्र के साथ सहज स्नेह करना एक बड़ा उच्च आदर्श है" इस बात का बिलकुल ख़याल नहीं करती। ऐसे मौके पर मनुष्य मात्र के साथ सहज स्नेह के भाव को दबा कर देशानुराग और अपनी मातृभूमि के साथ प्रगाढ़ प्रेम और मातृभूमि की सेवा करने की असीम अभिलाषा, मनुष्य के हृदय में उठती है, उससे आश्चर्यदायक काम कराती है और सहज स्नेह के भाव को बिलकुल निर्मूल कर देती है। इस बात पर लोगों का मतभेद है कि क्रूरता और निर्दयता जो सहज स्नेह के सर्वथा विरुद्ध है और जो देशभक्ति के नाम से युद्ध के समय शत्रु के नाश करने में की जाती हैं, क्या [illegible] नहीं जा सकतीं ? क्या निर्दयता और [illegible]ल के शि[illegible]करने वाले पर इस अत्याचार का [illegible] नहीं पड़ता ? क्या निर्दयता और अ[illegible]चार मनुष्य जाति के लिये हानिकारक नहीं है और उनके सामने बुरा आदर्श नहीं रखता ? और क्या इस तरह से संसार में बुराई और अत्याचार दृढ़ नहीं होते ? पिछले कुछ वर्षों से हेग की सभा तथा संसार के कुछ थोड़े से उदारहृदय सज्जन योरप के तथा अन्य युद्धप्रिय जातियों के सामने भ्रातृभाव तथा मनुष्य मात्र के साथ सहज स्नेह के उच्च आदर्श को रख कर युद्ध तथा अत्याचार को संसार से बिलकुल उठा देने का यत्न कर रहे हैं। किन्तु "हाथी के दांत दिखाने के और होते हैं, खाने के और" वही योरप की जातियां जिनके उद्योग से हेग सभा स्थापित हुई है दिन प्रति दिन युद्ध के नये २ यंत्र और अस्त्र शस्त्र बनाती चली जा रहीं हैं। मनुष्य जाति का बहुत ज्यादा बुद्धिबल और धन उन नये नये अस्त्र शस्त्रों के बनाने में व्यर्थ व्यय हो रहा है जिन अस्त्रों के प्रयोग से हज़ारों मनुष्यों का प्राण वियोग एक साथ हो सके। एक तिहाई से अधिक हर एक राज्य की आमदनी युद्ध के अस्त्र शस्त्रों के बनाने में और सेना सज्जित करने में खर्च की जाती है। न जानिये कितने नवयुवक शान्ति और सुख के बढ़ाने

वाले कामों से हटा दिये जाकर युद्ध में मरने और मारने के लिये सेना में भरती किये जाते हैं। यदि ये नवयुवक सेना में न भरती होते तो वे सुख और शान्ति के कामों को करते हुए संसार का न जाने कितना उपकार करते। इन सब बुराइयों के होते हुए भी, वह जाति पागल है और बहुत जल्द संसार से उसका नाम उठ जायगा जो यह देख कर भी कि अन्य जातियां युद्ध के सामान दिन पर दिन बढ़ा रहीं हैं आप अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये कुछ यत्न नहीं करती। जब तक कि संसार की समस्त जातियों में समान भ्रातृभाव नहीं फैल जाता और जब तक एक जाति दूसरी जाति के स्वत्वों का अपहरण कर उसके ऊपर अत्याचार कर रही हो तब तक युद्ध के लिये तैयार होना और सामान इकट्ठा करना आवश्यक ही नहीं बल्कि उचित भी है। मनुष्य जाति की सभ्यता अभी उतनी उच्च दशा को नहीं पहुंची है कि संसार के एक देश के मनुष्य दूसरे देश के मनुष्यों को भाई के समान समझे। यह उच्च आदर्श अभी बहुत दूर है और वह आदर्श सर्वदा उन थोड़े से महात्माओं के मन में रहेगा जिनके हृदय से स्वार्थ की मात्रा बिलकुल निकल गई है और जो "बसुधैव कुटुम्बकम्" के अनुसार आचरण करने वाले हैं।

संसार की जातियों के परस्पर के व्यवहार में मनुष्य मात्र के साथ सहज स्नेह और देशानुराग आपस में एक दूसरे के विरोधी और प्रतिपक्षी दिखलाई पड़ते हैं। मनुष्य सर्वदा उनके लिये लड़ने और मरने मारने के लिये तैयार रहता है जो उसके मित्र हैं या जिनसे उसका कुछ सम्बन्ध है। मनुष्य में यह स्वाभाविक है कि वह उनके लिये कष्ट और दुःख उठावे जिनसे उसका अधिक सम्बन्ध है। यही मनुष्य का स्वभाव संसार के बहुत से दुःख और क्लेश का मुख्य कारण है। तथापि "Charity begins at home" अङ्गरेज़ी की इस कहावत के अनुसार भ्रातृभाव या सहज स्नेह भी घर ही से शुरू होना चाहिये। वह मनुष्य जो अपने इष्ट मित्र तथा देश बन्धुओं के दुःख पर सहानुभूति नहीं प्रगट करता और उनके सङ्कट के समय उनकी सहायता नहीं करता दूसरे देश वालों के साथ स्नेह और सहानुभूति कभी भी नहीं कर सकता। वह भाव जो मनुष्य को मनुष्य मात्र के साथ भ्रातृभाव और स्नेह करने की ओर लगाता है देशानुराग अथवा स्वजाति प्रेम से पैदा हो सकता है और संसार में फैल सकता है। देश प्रेम का दायरा बढ़ते २ मनुष्य के साथ सहानुभूति और प्रम के दायरे में मिल सकता है।

गिरी हुई और पराधीन जातियों के लिये प्रगाढ़ देशभक्ति को छोड़ कर और कोई दूसरा उपाय संसार में उन्हें फिर उच्च पद पर नहीं ला सकता। जब कोई गिरी हुई जाति अपने न्यायानुकूल स्वत्वों के पाने के लिये सिर उठाना चाहती है तो केवल प्रगाढ़ देशानुराग ही उन स्वत्वों के पाने के लिये उस जाति के हृदय में उत्साह बढ़ा सकता है और उसे अपने अधिकारों को पाने के योग्य बना सकता है।

अब हमारी वर्तमान अवस्था में जब कि हमारे देशवासियों पर अन्य देशों में खास कर ट्रांसवाल, कैनेडा आदि अङ्गरेज़ी उपनिवेशों में अत्याचार किया जाता है, जब हमारे देशवासियों के साथ जानवरों से भी बदतर सलूक इन देशों में होता है तब क्या हमारे लिये भ्रातृभाव का आदर्श उपकारी है? क्या ऐसे समय भ्रातृभाव तथा मनुष्य मात्र के साथ स्नेह करना अत्याचार को और पुष्ट करना नहीं है? पाठक स्वयं निर्णय कर लें कि मनुष्य मात्र के साथ समान भ्रातृभाव तथा देशानुराग इन दोनों में से हमारी वर्तमान अवस्था में हमारे लिये कौन हितकर है?

———

तुषार ।

[लेखक—पं० श्रीकिशोरीलाल गोस्वामी ।]

वायु की उष्णता जब घनीभवन विन्दु* के नीचे आ जाती है, तब तुषार जमने लगता है। यह बात विशेष करके शीतकाल में देखने में आती है, जब सूर्य की किरणों के निस्तेज या निर्बल हो जाने से जल, तैल आदि जमने लगते हैं । किन्तु जब पवन की उष्णता घनीभवन बिन्दु के ऊपर चढ़ जाती है, तब पहिले का जमा हिम द्रव होकर गलने लगता है और तुषार के गलने से जल का परिमाण बढ़ जाता है। † यदि किसी बन्द वर्तन में ऐसा व्यापार हो तो वह (तुषार का) जल बढ़ कर उस पात्र को अवश्य तोड़ देगा; क्योंकि उस जल का बेग पहाड़ों की बड़ी बड़ी चट्टानों को अनायास ही तोड़ डालता है।

तुषार जल की अपेक्षा तीन गुना हलका होता है। यही कारण है कि यह जमने पर सदा जल के ऊपर तैरा करता है। उत्तर और दक्षिण ध्रुवों के पास के समुद्रों में बहुधा ढेर के ढेर तुषारपुञ्ज जम जम कर पर्वत श्रेणी की तरह हो जाते हैं, यहाँ तक कि समुद्र का जल भी जम कर पत्थर सा हो जाता है और उस पर से हो कर मनुष्य, पशु, पक्षी आदि पैदल ही इधर से उधर आ जा सकते हैं। बहुत से लोग तो उस जमे हुए समुद्र पर गाड़ी दौड़ाया करते हैं और इस तरह से उसके इस छोर से उस छोर तक की दौड़ लगाया करते हैं । प्रायः उत्तर और दक्षिण ध्रुव के यात्री गाड़ी पर चढ़ कर हीं जमे हुए समुद्र मार्ग से अपने गन्तव्य पथ की ओर जाते हैं।*

बड़े बड़े ऊँचे हिमालय आदि पर्वतों पर भी, जहाँ कि उष्णता घनीभवन विन्दु के ऊपर नहीं जा सकती, सदा हिम का ढेर पर्वताकार बना रहता है; उसे तुषारपुञ्ज, हिमानी और हिम संहति कहते हैं। वही तुषारपुञ्ज जब कभी पर्वतों के ऊपर से टूट कर नीचे गिरता है तो पशु, पक्षी, वृक्ष, लता आदि का सत्यानाश कर डालता है; अर्थात् वे सब उस तुषारपुञ्ज के नीचे दब कर नष्ट हो जाते हैं । केवल पशु पक्षियों का ही नहीं, वरन वह पर्वताकार तुषार पुञ्ज गिरने के समय बड़े बड़े पर्वतों के शृङ्ग तक तोड़ डालता है, बेचारी शिला की तो बात ही न्यारी है।

ग्रीष्मकाल में जब सूर्य की किरणों से हिम गलने लगता है, तो वह पहाड़ों की बड़ी बड़ी कन्दराओं को छेदता हुआ नदी रूप होकर निचली धरती में बह निकलता है, या किसी पहाड़ी नदी से मिल कर वह जल वहने लगता है। यही कारण है कि पहाड़ी नदियाँ प्रायः गरमी के दिनों में बढ़ा करती हैं और कभी २ तो उन नदियों में ऐसी भयंकर बाढ़ आती है कि उससे गांव के गांव नष्ट हो जाते हैं।

आकाश में जब वायु की उष्णता घनीभवन विन्दु के नीचे उतर आती है, तब वाष्प (भाफ) जम कर तुषार हो जाता है और उस तुषार के ढेले बँध कर पृथ्वी पर गिरने लगते हैं; इन्हें वर्षोपल या करका कहते हैं। ये वर्षोपल खेती की बड़ी हानि करते हैं और इनकी चोट से

* घनीभवन विन्दु उस क्रिया या व्यापार का नाम है, जिससे जल जम कर हिम हो जाता है।

† जल से वायु तत्व के निकल जाने से वह जम जाता है और पुनः वायु को गर्मी पाकर जब वह जल जम कर हिम हो जाता है, तब वह अपनी पहिली तौल अर्थात् जल की तौल से हलका हो जाता है।

* बर्फ में हिरन की गाड़ी, जो कि बिना पहिए की नाव के आकार की होती है बड़ा काम देती है, इसे स्लेज कहते हैं। ऐसी गाड़ियों में हिम के यात्री भालू, कुत्ते और दुम्में जोतते थे, किन्तु अब तो मोटरकार की मेशीन बड़ा काम देने लगी है।

मनुष्य, पशु पक्षी आदि मर जाते, तथा वृक्षादिक टूट पड़ते हैं । इन्हीं वर्षोपल के परमाणु जब आकाश से गिरने लगते हैं, तब इन्हें ओस कहते हैं और वह ओस जब घनी होकर आकाश में व्याप्त हो जाती है, तब उसे कुहरा कहते हैं। वही हिमकण जब गिरते समय पृथ्वी पर आते आते घनीभवन विन्दु के परिमाणु से अधिक उष्ण वायु में पहुंच कर गलने लगता है, तब पानी या पानी के साथ वे ही हिमकण छोटे २ करका रूप में बरसने लगते हैं।

सूर्य की किरण दिन के समय पृथ्वी पर से वाष्प का आकर्षण करके जो उसका सञ्चय करती हैं, वही (वाष्प) वायु मण्डल में इकट्ठी होकर धीरे धीरे ठण्डी हो जाती और रात्रि के समय पृथ्वी पर गिरने लगती है । इसे पाला कहते हैं। जाड़े में यह बहुत ही अधिक दिखाई देता है, परन्तु गर्मी में बहुत ही कम । यद्यपि गर्मी में सूर्य की किरण अधिकाधिक वाष्प सञ्चय करती हैं और रात्रि के समय बहुत ही ज्यादा पाला गिरता है, परन्तु पृथ्वी की उष्णता उन्हें पी जाती है, यही कारण है कि गर्मी के दिनों में पाला या ओस बहुत कम दिखाई देते हैं।

वर्षा ऋतु में मेघों से वायु मण्डल के घिरे रहने के कारण सूर्य की निस्तेजता से न तो उतनी वाष्प ही ऊपर की ओर जाती है और न उतना पाला ही गिरता है; परन्तु बर्सात में सभी समय ऐसा नहीं होता; जिस दिन बादलों के फट जाने से कड़ी धूप पड़ती है, उस रात को पाला भी खूब ही पड़ता है; यहाँ तक कि दूसरे दिन घण्टों तक सूर्य के दर्शन नहीं होते।

हिम स्वच्छ अर्थात् चमकीला होता है। शीतकाल में जब हिम पृथ्वी पर इकट्ठा होकर जम जाता है, तब इसके नीचे की पृथ्वी में शीत सामान्य ही रहती है; क्योंकि जिस जगह हिम जम जाता और जमा रहता है, वहां प्रायः शीत घनीभवन विन्दु के नीचे उतर जाती है और वह फिर हिम के गले बिना कभी किसी तरह भी अधिक नहीं होती; यही कारण है कि हिमालय पहाड़ की पहाड़तली में शीत उतनी नहीं रहती, जितनी कि ऊपर और पहाड़ी कन्दराएँ तो खूब ही गर्म रहती हैं, इसी से तत्वज्ञ महर्षियों ने ऐसे रमणीक और सुखद स्थानों में अपने जीवन के बहुमूल्य समय को व्यतीत किया था।

ऐसी धर्त्ती में न तो उद्भिज वृक्षादि के बीजों के जमने की शक्ति ही नष्ट होती है और न खेती ही; यदि ऐसा न होता तो हिमालय की तराई में न तो वृक्षादिक ही दिखाई पड़ते और न खेती ही हो सकती।

आज कल नकली बरफ से तो सभी परिचित हैं और गर्मी में प्रायः मलाई की बरफ़ से सभी रसना परितृप्त करते हैं !!!

महाकवि भवभूति ।

उत्तररामचरित ।

[लेखक—पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी ।]

जिस प्रकार महाकवि कालिदास को संस्कृत कवियों में सर्वोच्च स्थान दिया जाता है उसी तरह महाकवि भवभूति के लिये भी कालिदास के बाद का स्थान निर्विवाद है। कुछ लोग तो भवभूति को कालिदास से भी श्रेष्ठ समझते हैं। ठीक बात तो यह है कि कालिदास शृङ्गार रस प्रधान कवि थे और भवभूति करुणारस प्रधान । भवभूति प्रेमियों के हाव भाव के चित्र खींचने में कालिदास के समान पटु नहीं हैं किन्तु कालिदास भी करुणा सम्बन्धिनी वार्ता का वर्णन भवभूति की भांति उत्तमता से नहीं कर सके हैं।

उसी पद वाक्य प्रमाणज्ञ श्रीकण्ठपदलांछन महाकवि भवभूति का परिचय हिन्दी पाठकों को दिया जायगा।

विद्वानों का मत है कि भवभूति का जन्म आठवीं शताब्दी में हुआ था। बरार प्रान्त के पद्मपुर ग्राम में इनके पूर्वज रहते थे और वहीं इनका जन्म भी हुआ था। इनके पिता का नाम नीलकंठ और माता का नाम जातुकर्णी था।

स्वाभाविक प्रतिभाशाली होने के अतिरिक्त भवभूति ने विद्याध्ययन भी अच्छी तरह किया था। उनके परिवार में वेदान्त दर्शन की विशेष चर्चा रहती थी और शायद यही कारण है कि भवभूति के ग्रन्थों में स्थान २ पर वेदान्त तथा उपनिषद की झलक दिखाई देती है।

भवभूति के मुख्य ग्रन्थ 'मालती माधव', 'महावीर चरित' तथा 'उत्तररामचरित' हैं। लेखनशैली, भाषा तथा काव्य की प्रौढ़ता से अनुमान होता है कि 'मालती माधव' सब से पहले लिखा गया। तदनन्तर 'महावीर चरित' और सब से पीछे 'उत्तररामचरित' की रचना हुई। इन सब में उत्तररामचरित श्रेष्ठ माना जाता है। इसी ग्रन्थ में भवभूति की कवित्व शक्ति का सच्चा परिचय मिलता है। कहा भी है "उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते"। अस्तु हम भी पाठकों को उत्तररामचरित से ही भवभूति का परिचय देंगे।

कालिदास के प्रचण्ड काव्य प्रकाश ने भवभूति की यथोचित प्रसिद्धि न होने दिया तब भी पाश्चात्य विद्वानों ने 'उत्तररामचरित' का नाम बड़े आदर से लिया है।

मैकडानेल साहब ने अपने संस्कृत के इतिहास (History of the Sanskrit literature) में उत्तररामचरित के विषय में लिखा है:—

"वियोग परिशोधित सीता और राम के अविरल प्रेम के अगाध करुणामय चित्र की समता किसी दूसरे आर्य्य नाटक में नहीं मिल सकती है"।

विल्सन का मत है "किसी भी हिन्दू नाटक में इतनी उत्तमता से करुणा रस का विकाश नहीं हुआ है जितना कि उत्तररामचरित में"। ऐसे ही और भी विदेशी विद्वानों ने अपनी सम्मतियां दी हैं किन्तु उनके वर्णन से अच्छा यह होगा कि हम लोग स्वयं भवभूति के अगाध काव्य सुर सरिता में गोते लगावें। भवभूति के महावीर चरित तथा उत्तररामचरित को यदि एक ही पुस्तक के दो भाग कहा जाय तो एक प्रकार से अयुक्त न होगा।

महावीर चरित में मर्यादा पुरुषोत्तम महाराज रामचन्द्र के जन्म तथा वनवास से लेकर राज्यतिलक तक की कथा है। उत्तररामचरित में सीतादेवी के दूसरे वनवास की कथा का वर्णन है। महावीर चरित की कथा से तुलसीदास जी के रामचरित मानस ने हिन्दी पाठकों को भली भांति परिचित करा दिया है।

महावीर चरित तथा रामायण की कथा में कुछ अन्तर अवश्य है किन्तु अन्तर इतना थोड़ा है कि वह न होने के बराबर है।

हम लोगों को उत्तररामचरित की कथा से उतना अधिक परिचय नहीं है तब भी उत्तरचरित की कथा का वर्णन अनावश्यक प्रतीत होता है क्योंकि जब हम प्रत्येक अंक की पृथक २ आलोचना करेंगे तो साथ ही साथ पाठकों को कथा का भी ज्ञान हो जायगा। जैसे कालिदास ने रघुवंश के आरम्भ में किया है वैसे ही भवभूति ने उत्तरचरित के नान्दी में एक प्रकार से आदि कवि वाल्मीक की वन्दना की है।

प्रस्तावना में अनेक कवियों की भांति भवभूति ने भी सूत्रधार के मुख से अपनी प्रशंसा करवाई है। सूत्रधार से इस प्रकार अपनी प्रशंसा कराने की प्रथा एतद्देशीय कवियों में बड़ी प्रबलता से प्रचलित है।

महाकवि कालिदास ने अपने को इस दोष से बचाने का यत्न किया है किन्तु स्थान २ पर अपनी श्रेष्ठता का इशारा किये बिना उनसे भी नहीं रहा गया।

हिन्दी नाटकों के जीवन सर्वस्व, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र में तो यह एक साधारण बात थी। सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में सूत्रधार कहता है "क्या संसार ने प्यारे हरिश्चन्द्र के गुणों को कुछ भी नहीं समझा? क्या हुआ? कहैंगे सबै ही नैन नीर भरि २ पाछे प्यारे हरिश्चन्द्र की कहानी रह जायगी।"

इसके अतिरिक्त भारतेन्दु जी ने 'प्रेम योगिनी' में भी अपनी प्रशंसा करवाई है।

स्वर्गवासी साहित्याचार्य्य पं० अम्बिकादत्त व्यास जी ने अपनी ललिता नाटिका में लिखा है "कविता ही कवि अम्बादत्त की सुहावनी है वरन २ जामे रस ही से पोखे हैं"।

मेरे विचार में अभिनय की ओर दर्शकों का चित्त खींचने के लिये यह आवश्यक है कि प्रस्तावना में ग्रन्थ तथा ग्रन्थकार की कुछ प्रशंसा की जाय।

प्रथम अंक।

ग्रन्थ के आरम्भ में राम और सीता साथ बैठे हुए दिखाई देते हैं। जनक अपनी पुत्री सीता को देखने के लिये अयोध्या आये थे। उनके चले जाने से सीता दुःखित हैं।

राम अनेक प्रकार की नीति समझा कर प्यारी का दुःख दूर करना चाहते हैं।

करुणा प्रधान नाटक का करुणा ही से आरम्भ करने में कवि ने बड़ी चतुरता दिखलाई है।

राम और सीता बात ही कर रहे थे कि महाराज वशिष्ट का सन्देशा लेकर अष्टावक्र आ गया। यह बतला देना उचित होगा कि महाराज वशिष्ठ कौशिल्या आदि राजमाताओं के साथ रामचन्द्र के बहनोई ऋषि शृङ्ग के यज्ञ में चले गये थे।

गर्भिणी सीता राम के साथ अयोध्या में छोड़ दी गई थी।

गुरु ने राम को निम्नलिखित सन्देशा भेजा था "जामातृ यज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम्। युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यात् तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः॥"

राम ने उत्तर दिया।
"स्नेहं दयां तथा सौख्यं यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥"

पाठक यह प्रजानुरञ्जन है यह राजधर्म है। आगे चल कर आप देखेंगे कि राम ने सचमुच ही सीता को घर से निकाल दिया—निकाल दिया बिना किसी अपराध के केवल एक महामूर्ख प्रमादी धोबी की राय से।

यदि यह घटना वास्तव में ठीक है तो इस दुष्कर्म से न केवल राम के चरित्र में एक अमिट कलंक लगता है वरन संसार के इतिहास में 'अबलाओं पर पुरुष जाति के अत्याचारों का यह एक महानिन्दनीय प्रमाण रहेगा। यह घटना पति राम को तो सर्वथा नीचे गिराती ही है किन्तु राजा राम का भी इससे कुछ महत्व नहीं बढ़ता।

लोग सीता निर्वाचन लेकर यह दिखलाते हैं कि अयोध्या में दृढ़ प्रजातन्त्र राज्य था क्योंकि एक साधारण प्रजा के दोष लगाने से राजा ने अपनी स्त्री को छोड़ दिया।

मेरा विचार है कि यदि अयोध्या के प्रजाओं का कुछ भी अधिकार होता तो एक दो मनुष्यों को प्रसन्न करने के लिये राम सीता का निर्वासन न करने पाते। यदि आज कल के पाश्चात्य देशों की भांति अयोध्या में भी मन्त्रीमण्डल तथा पार्लीमेण्ट होती तो सीता ऐसी सती निष्कलङ्किनी के निकालने के अपराध में राम राजच्युत तो अवश्य कर दिये जाते।

आश्चर्य होता है कि 'सत्यं पुत्र शतातवरं' के कहने वाले महर्षि वशिष्ठ के शिष्य राम ने ऐसा निन्दनीय कर्म क्यों किया और महर्षि ने ऐसा करने कैसे दिया? क्या कुएँ ही में भङ्ग

पड़ गई थी ? क्या किसी को भी सत्य असत्य का विचार नहीं था ?

राम स्वयं जानते हैं कि सीता निरपराधिनी है-संसार उस महादेवी की पवित्रता का साक्षी है-प्रजा भी सीता को निर्दोष जानती है किन्तु फिर भी देव यजनसंभवा, स्वजन्मानुग्रह पवित्र वसुन्धरा सीता घर से निकाल दी गईं।

क्रमशः।

नवाब आसफ्फुद्दौला !

[लेखक—चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा।]

जैसे महाराज पञ्चम जार्ज के राजत्व काल में भारतवर्ष कई एक प्रान्तों में विभक्त है और प्रत्येक प्रान्त का एक लेफटिनेंट गवर्नर अलग अलग है, वैसे ही जिस समय इस भारतवर्ष पर मुग़ल साम्राज्य की छाया थी उस समय भी यह देश कई एक सूबों में बटा हुआ था और प्रत्येक सूबा एक एक सूबेदार के तावे में था।

उन सूबों में अवध भी एक सूबा था और इस सूबे में भी मुग़ल सम्राट का एक प्रतिनिधि रहता था। जैसे २ मुग़ल सम्राटों की विलासप्रियता और अत्याचार के कारण मुग़ल साम्राज्य धीरे धीरे क्षीणकाय होता गया, वैसे वैसे प्रत्येक प्रान्त का सूबेदार अपने अपने प्रान्त का स्वतन्त्र शासक और स्वत्वाधिकारी बनता गया।

अवध का सूबा-देहली के तख्त के तावे होने पर भी अवध के नवाबों की चालाकी से धीरे धीरे स्वतन्त्र हो गया। यद्यपि अवध प्रांत की नवाबी के मसनंद पर कितने ही नवाब आसीन हुए, तथापि अवध के इतिहास में शुजा-उ-द्दौला और आसफ्फुद्दौला का वर्णन विशेष रूप से मिलता है।

जिस समय विलासी शुजा-उ-द्दौला, हाफ़िज़ नन्दनी की विष में बुझी छुरी के घाव लगने के कई एक मास बाद मरा—उस समय उसके तीन बेटे थे। जेष्ठ पुत्र का नाम नवाब मिर्ज़ा अमानी आसफ्फुद्दौला, मझले का मिर्ज़ा सआदत अली और सब से छोटे का नाम मिर्ज़ा जङ्गली था।

आसफुद्दौला अपने भाइयों में केवल जेठा ही न था, किन्तु उसका जन्म मृत नवाब की प्रधान बेग़म की कोख से-जिसका नाम बहू बेग़म था-हुआ था।

आसफ्फुद्दौला को लड़कपन ही से खेल तमाशों का व्यसन था और उसका मन सदा गुण्डों और नीचों की सङ्गत ही में लगता था। उसको अश्लील गालियाँ देने और सुनने से बड़ी प्रसन्नता होती थी।

नवाब शुजा-उ-द्दौला ने अपने बेटे आसफ्फुद्दौला के पढ़ाने के लिये सय्यद शरफुद्दीन ख़ाँ को नियुक्त किया था। सय्यद साहब बड़े शिष्ट और व्यवहार नीति में बड़े चतुर थे पर वे आसफ्फुद्दौला पर अपना रङ्ग न चढ़ा सके।

बीच बीच में नवाब शुजा-उ-द्दौला स्वयं उसकी परीक्षा लिया करते थे। पर बालक आसफ्फुद्दौला के नाम मात्र के विद्या-प्रेम से और उसके आचरणों से वे दुःखी रहते थे। बहू बेग़म का आसफुद्दौला लाड़ला लड़का था। इसलिये नवाब शुजा-उ-द्दौला लड़कपन में उसे सुधारने की इच्छा रखते हुए भी न सुधार सके। अतः आसफ्फुद्दौला लड़कपन ही से उद्दंड प्रकृति और उग्र स्वभाव का हो गया।

आबूतालिब ने लिखा है कि शुजा-उ-द्दौला जिस दिन मृत्यु को प्राप्त हुए, उस दिन फ़ैज़ाबाद में बसने वाले छोटे बड़ों, देशी विदेशी सभों को बड़ा दुःख हुआ। नवाब की अन्तिम क्रिया पूरी भी न हो पायी थी कि आसफ्फुद्दौला ने नवाबी के मसनद पर बैठने की उतावली की और जो लोग नवाब के जनाज़े (मृत शरीर) के साथ जा रहे थे, उनमें से सालार जङ्ग और

मिर्ज़ा अली ख़ाँ को बुला कर तख़्तनशीनी की तयारी का उसने हुक्म दिया। उन लोगों ने इस उद्दण्डता को देख आसफ़ुद्दौला को बहुत कुछ ऊँच नीच समझाया, पर उसने उन लोगों की एक भी न सुनी।

मोहम्मद फ़ैज़बक्श ने "तवारीख फरहबक्श" में लिखा है कि शुजा-उ-द्दौला के मरने पर मृत नवाब शुजा-उ-द्दौला की मां नवाब बेग़म ने अपनी बहू बेग़म से कहा कि तुम्हारा लड़का छब्बीस वर्ष का हो चुका पर उसमें अभी तक तमीज़ नहीं आयी और न उसको रियासती काम काज चलाने का ढङ्ग ही आया है। यदि वह कहीं नवाब हुआ तो तुम्हारे पति ने जो धन जमा किया है वह धन तुम्हारा लड़का बहुत जल्द फूक डालेगा। इसलिये अच्छा होगा कि आसफ़ुद्दौला को नाम मात्र के लिये मसनद पर बिठला दो और काम काज मिर्ज़ा सआदत अली को सौंप दो जो बहुत होशियार और तजुर्बेकार आदमी है। इस उचित परामर्श के उत्तर में आसफ़ुद्दौला की मां ने अपनी बूढ़ी सास से कहा—मेरे एक यही तो औलाद है चाहे वह अच्छा है या बुरा—मेरी सारी कमाई वही है। आपके लेखे तो मृत नवाब के सब लड़के बराबर हैं। इस पर सास ने कहा—मुझे जो ठीक जान पड़ा—मैंने तुम से कहा तुम्हारी इच्छा हो मानो या न मानो। जो ठीक समझो सो करो, पर याद रक्खो इतनी बड़ी रियासत की ज़िम्मेदारी तुम्हारे ही सिर है।"

नवाब होते ही आसफ़ुद्दौला ने उन लोगों को बढ़ाना शुरू किया, जिन लोगों को उसके पिता ने बदज़ात और गुण्डे समझ कर दण्ड दिया था। फल यह हुआ कि नवाब को मरे दस दिन भी पूरे नहीं हो पाये थे कि सैर सपाट के लिये वह मेंहदीघाट की ओर रवाना हुआ।

चलते समय मुरतज़ा ख़ाँ के बहकाने में आ उसने अपनी माँ बहू बेग़म से ख़र्च मांगा। बहू बेग़म ने कहा—अभी तुम्हारे बाप को मरे दस दिन भी नहीं बीते। मैं अभी मातम में हूं। तुझ को इस समय ऐसी बेहूदा बात कहते शर्म नहीं आती क्या तुझे अपने बाप के मरने पर आँसू बहाने की भी फ़ुरसत नहीं है? इसे सुन बहू बेग़म की सास ने कहा—यह तो तुम्हें तुम्हारे लाड़ प्यार का पहला फल मिला है। अभी ठहरो आगे तुम्हें इससे भी बढ़िया फल मिलेगा।

अन्त में कहते सुनते मां ने छः लाख रुपये उसे दिये। उन रुपयों को लेकर वह मेंहदीघाट पहुंचा और महीना भर भी पूरा नहीं हो पाया था कि उसने छः लाख रुपये उड़ा दिये। उसने मुरतज़ा ख़ां को फ़ैज़ाबाद में मां के पास भेज कर छः लाख रुपये फिर मांगे। बहू बेग़म बहुत नाराज़ हुईं और तीन चार दिन तक टालाटूली होती रही। अन्त में बहू बेग़म ने चार लाख रुपये और दिये।

पर इतने रुपयों से उसकी धन की भूँख पूरी नहीं हुई। उसने अपने कुछ इलाक़े गिर्वी रख कर बहू बेग़म से चार लाख रुपये और कर्ज़ लिये और मां को सनद लिख दी कि अब और रुपये तुम से न लिये जांयगे।

रुपये लेकर आसफ़ुद्दौला ने उन्हें लम्पटता में फूंकना आरम्भ किया। बाप को मरे पूरे दो महीने भी नहीं हो पाये थे कि फ़ैज़ाबाद में आसफ़ुद्दौला की बदतमीज़ी और लम्पटता से युगान्तर हो गया। हम उसके दुर्व्यसनों और निर्लज्जता के बारे में कुछ भी न कह कर मोहम्मद फ़ैज़बक्श के शब्दों में उसका गुणानुवाद वर्णन किये देते हैं।

He was day and night under the influence of drink plunged in base enjoyments, under the instigation and allurement of his vile companions. He was so open and shameless in the pursuit of forbidden pleasures that the commonest people of the bazar were horrified to hear of his conduct. The fame

of his misconduct was so great that thousands of people far and near were constantly conversing, and their common opinion was that though from the days of Adam up to that time there had been a thousand Kings and rulers bloody, tyrannical, unmanly, and shameless, yet such vicious conduct had not been read of in any history. There was no low, or low-minded class, barbers, green grocers butchers, fuel vendors, elephant drivers, sweepers and tanners but some of them rose to opulence and rode proudly through the maket places in fringed palankeens on elephants with silver hiffers or on state horses. The sight of it was enough to made the sky fall and the Earth quake and dissolve in the water.

आसफ़ुद्दौला न तो किसी मिलने योग्य पुरुष से मिलता और न रियासत के काम की देख भाल करता था। वह रात दिन शराब कबाब में डूबा हुआ लम्पटता में निमग्न रहता था। उसने मुरतज़ा ख़ाँ को अपनी रियासत का मालिक बना दिया था। मुरतज़ाख़ां जो चाहता वही होता था। उसने अपने कुटुम्बियों और दोस्तों को बड़ी बड़ी जगहों पर नियुक्त कर दिया था।

जब उसने देखा कि मां और दादी के मारे फ़ैज़ाबाद में रहने से उसकी इच्छा पूरी नहीं हो पाती तब वह फ़ैज़ाबाद छोड़ लखनऊ चला आया। लखनऊ में आकर उसने जैसे जैसे कृत्य किये उनका विस्तृत वर्णन करने से एक पूरी पोथी तैयार हो जायगी।

हरेक फागुन के महोने में आसफ़ुद्दौला के नये २ व्याह हुआ करते थे। होली बड़ी धूमधाम से मनायी जाती थी। और उसमें पांच छः लाख रुपये ख़र्च हो जाया करते थे। इसी तरह मोहर्रम के दिनों में धूम हुआ करती थी। उस के बारह सौ हाथी, दो तीन हज़ार घोड़े और एक हज़ार कुत्ते थे। इनमें मुशकिल से ४०० हाथी, ५०० घोड़े और सौ कुत्ते ऐसे थे, जो किसी काम में आ सकें। बाक़ी सब निकम्मे थे। उन निकम्मों को रखने से बेईमान नौकरों की रोज़ी चलती थी।

नवाब के चिड़ियाखाने का ख़र्च भी बेशुमार था। तीन लाख तो कबूतर थे। मुर्ग, भेड़ा, हिरन, बन्दर, सांप, बिच्छुओं का कुछ ठिकाना ही न था। ऐसे ऐसे अज़दहे उसने पाल रक्खे थे जो अकेले मन भर गोश्त खाजाया करते थे।

उसके निज के नौकरों का ख़र्च भी अधाधुन्ध था। दो हज़ार फर्राश, सौ चोबदार, चार हज़ार माली और सैकड़ों बावर्ची थे। उसके बवर्चीखाने में रोज़ दो तीन हज़ार रुपये ख़र्च हुआ करते थे।

आसफ़ुद्दौला को मकान बनवाने का भी ख़ब्त था। इस मद्द में भी दस लाख रु० सालाना ख़र्च किये जाते थे। जब कोई नया मकान तैयार होता था, तब नवाब साहब सिर्फ़ दो तीन दिन उसमें रहते थे। फिर उसमें चिराग़ तक नहीं जलाया जाता था। इसके अतिरिक्त इस इमारती ख़ब्त से प्रजा को अनेक कष्ट हुआ करते थे। अर्थात् जिस जगह इमारत बनाना तजबीज़ होता था, वहां के रहने वाले फ़ौरन निकाल दिये जाते थे। उनको न तो उनके मकान का मूल्य मिलता था और न रहने के लिये दूसरी जगह ही बतलायी जाती थी।

ऐसा भी प्रायः हुआ करता था कि मकान वालों ने मकान खाली नहीं कर पाया और नवाब साहब के आदमियों ने आकर मकान गिराना शुरू कर दिया। फिर यह भी नहीं कि मकान का मसाला, ईंट, पत्थर धन्नी वगैरः मकान वालों को दे दिया जाता। सब मसाला ज़ब्त कर लिया जाता था बल्कि किसी के मकान में कोई बढ़िया पत्थर या बढ़िया धन्नी

होती तो उसे निकालने के लिये सारा घर गिरा दिया जाता था। इससे प्रजा को अपार दुःख था।

नवाब साहब की लम्पटता का एक उदाहरण हम नीचे देते हैं। अपने शब्दों में नहीं आबूतालिब के शब्दों में।

Wazir Ali was really the son of a farrash, and the farrash had for money consideration made over his wife while pregnant to the Wazir. This is not the only case of the kind, nay all the Wazirs children are of similar origin, for the Wazirs servants bought up every women they could whom they found pregnant, in the begining of her pregnany, from her guardians and placed her in the Wazirs haram. And sometimes a pregnant woman presents herself at the side of the Wazirs conveyance and cries, "Though you do not recall the time I slept with you, still take pity on your son whom I carry in my womb and the Wazir acknowledges her claim and places her in his haram. Some of his friends of the lower classes had entree of his haram and the ugly features and dark compelxion of the children in his haram are incontrovertible evidence of their thorough-bred descent.

जब मालिक की यह दशा थी, तब उसके नौकर भी उसी ढङ्ग पर यदि चलते हों तो आश्चर्य ही क्या है? नवाब साहब की नवाबी में एक बार अकाल पड़ा। गवर्नर हेसटिङ्गज़ उस समय लखनऊ ही में था। उस अकाल में हज़ारों आदमी मर गये। उनकी सड़न की दुर्गन्ध से नगरवासियों को नगर में रहना कठिन हो गया। गवर्नर जनरल के हुक्म से अकाल पीड़ितों को सहायता मिलने लगी। हैदर बेग ख़ैरात बाँटने के लिये नियुक्त किये गये। ख़ैरात बांटते समय इतनी भीड़ होती थी कि कितने ही के हाथ, सिर टांग नाक टूट फूट जाती और अनेक दब कर मर जाते। इस के अतिरिक्त अगर कोई कम उम्र सुन्दरी स्त्री हैदर के नौकरों को दिखलायी पड़ती, तो वे उसे पकड़ ले जाते और उसको, हैदर बेग के ज़नानखाने में दाख़िल कर देते थे।

अगर नवाब का कोई हितैषी उसे समझाता, तो उसके हालीमुहाली उस पर राजविद्रोह का अपराध लगाते थे। नवाब ने अपनी मां और दादी से रुपया वसूल करते समय उनके साथ और उनके दो खोजों के साथ, जैसे अत्याचार किये वे इतिहास प्रेमियों से छिपे नहीं हैं। लोग कहा करते हैं कि "जिसको न दे मौला, उसको दे आसफुद्दौला" सो सचमुच सही है। पर साथ ही यह और जोड़ देना चाहिये कि "जिससे न ले मौला, उससे ले आसफुद्दौला"।

यद्यपि स्त्रियां स्वयं जाकर कमाई नहीं करतीं पति का दिया हुआ धन ही उनका धन होता है पर नालायक़ आसफुद्दौला ने स्त्री धन, नहीं नहीं पूज्य और श्रद्धेय माता और पितामही का धन तक निष्ठुरता पूर्वक अपहृत किया। उसी का यह फल है कि आज लखनऊ की नवाबी का स्मृत-चिन्ह तक कहीं नहीं दिखलायी देता।

श्रीहरिश्चन्द्र पंचक।

[लेखक—बाबू मैथिलीशरण गुप्त।]

(१)

श्री सम्पन्न प्रसन्न हुआ
साहित्य-गगनवर,
हिन्दी का दुर्भाग्य-तिमिर
हट गया हार कर।
सहयोगी-नक्षत्र हुए
सब ओर सुशोभित,

रसिक-चकोर प्रमत्त
किन्तु फिर भी हैं लोभित ॥
है काव्य-कौमुदी खिल रही
रम्य रसामृत वह रहा ।
श्रीभारतेन्दु के उदय का
आज धन्य दिन है अहा !

(२)

हिन्दी की जो आज हुई है
उन्नति इतनी,
थोड़ी है या बहुत किन्तु
चाहे है जितनी ।
यह उन्नति की बेल कहो
रोपी है किस की ?
मना रहे हैं आज
जयन्ती हम सब जिस की,
जिस अति उदार नरवीर का
हरिश्चन्द्र शुभ नाम है,-
उसके आत्मा को प्रेम से
किस का नहीं प्रणाम है ?

(३)

धन्य भाग कर्त्तव्य हमें
कुछ कुछ सूझा है,
कुछ तो भाने लगी
पूर्वजों की पूजा है ।
इतने से ही किन्तु हमारा
काम न होगा,
बिना हुए कुछ काम
लोक में नाम न होगा ।
बस पूर्वस्मृति पर गर्व ही
हमें न लाना चाहिये,
उत्साह-सहित कुछ काम भी
कर दिखलाना चाहिये ॥

(४)

हरिश्चन्द्र के काम चित्त में
तनिक विचारो,
और समय की अवधि
ध्यान में अपने धारो ।
कह सकता है कौन कि
थोड़ा काम किया है ?
हिन्दी पर सर्वस्व उन्होंने
वार दिया है ।
है हमें उन्होंने नींद से
सहसा जगा दिया यहाँ,
त्यों भावी उन्नति सुफल का
तरुवर लगा दिया यहाँ ॥

(५)

है अनुपम आदर्श
हमारे सन्मुख जैसा,
क्या अब तक कुछ काम
कर सके हैं हम वैसा ?
बातें तो हो चुकीं
उचित है अब कुछ करना,
आकृति बनी, परन्तु, रहा
रङ्गों का भरना ।
तो आओ ; अब तैयार हों
फिर नवीन उत्साह से ।
हम प्लावित कर दें देश को
शुभ साहित्य प्रवाह से ॥*

कालिदास के काव्यों से मिलने वाली नीति-शिक्षायें ।

[लेखक-श्रीयुत प्यारेलाल गुप्त ।]

पंडित राज जगन्नाथ कहते हैं-द्रव्य प्राप्ति किम्वा पुत्र लाभ से जो आनन्द मन को होता है उससे कई गुना बढ़ कर अत्यन्त विलक्षण प्रकार का आनन्द काव्य से प्राप्त होता है। उस आनन्द की बराबरी फिर दुनियां के किसी प्रकार के आनन्द से नहीं हो सकती । साधारण लोग उस आनन्द को नहीं समझ सकते अथवा कहिये उनमें समझने की योग्यता नहीं रहती ।

* हरिश्चन्द्र जयन्ती (काशी) में यह कविता पढ़ी गई थी ।

मनोरञ्जन के साथ ही साथ सदुपदेश देना ही काव्य का प्रधान प्रयोजन है। अन्तःकरण के कुविचारों को नेस्तनाबूद कर उसके स्थान में सुविचार का बीजारोपण करने के लिये, मनुष्य को कुमार्ग से परावृत कर सुमार्ग में लगाने के लिए और यह लोक को परलोक के साथ मिला देने के लिये काव्य सरीखा उत्कृष्ट-साधन दूसरा कोई नहीं है। इन्हीं गुणों में सफलता प्राप्त कर लेने के कारण कालिदास, कविश्रेष्ठ—कविकुल गुरु-माने गये हैं। प्रस्तुत लेख में हम कालिदास के काव्यों का गुण दोष वर्णन न कर उसमें दी हुई नीति-शिक्षाओं को अपने पाठकों के सामने रक्खेंगे।

स्थूल मान से देखने में नीति चार प्रकार की हैं। पहली आत्मविषयिक, दूसरी कौटुंबिक, तीसरी सामाजिक और चौथी राजकीय।

आत्मविषयिक नीति में आत्मरक्षण, सती-प्रथावर्जन, आत्मघात-वर्जन, आरोग्य-रक्षण, द्रव्यार्जन, विनय-शीलता, आत्मविरोध आदि बहुत सो बातों का अन्तर्भाव होता है। आत्म-रक्षण पर संसार के समस्त उत्कृष्ट-कार्यों की इमारत खड़ी है, यह बात रघुवंश में राजा दि-लीप का वर्णन करते करते कवि ने स्पष्ट कह दिया है। वह राजा किसी के भय से न डर कर अपना रक्षण करता था। उसी प्रकार कुमार सम्भव में कवि ने वटु वेषधारी शङ्कर के मुख से, तपश्चर्या से शरीर को कृश करने वाली पार्वती के प्रति कहलाया है—हे पार्वती, शरीर ही धर्म का मुख्य साधन है अतएव इसकी उपेक्षा मत करो। उसी प्रकार वशिष्ठ की धेनु नन्दिनी ने राजा दिलीप से कहा है—राजन्, यह तेरा शरीर अनेक प्रकार के सुखों का उपयोग कर चुका है, सो तू इसका रक्षण कर। इन्दुमती के मृत्यु जन्य दुःख से दुःखित राजा अज को वरतंतु मुनि के शिष्य ने समझाया कि पत्नी के दुःख से जान देना अविचारी का काम है। ऐसे समय में जीव की रक्षा ही सच्चा पुरुषार्थ और बुद्धिमानी है।

सती होना चाहिए, इस प्रकार कालिदास कहीं स्पष्ट नहीं कहा है। उल्टा उसने बतलाया है कि स्त्री के मर जाने पर उसके दुःखित पति को शव के साथ चिता-प्रवेश करने में कोई हर्ज़ नहीं। परन्तु इस प्रकार की घटना का प्रत्यक्ष उदाहरण उसने न दिखला कर राजा अज को इन्दुमती के मृत्यु के पश्चात् कुछ वर्ष के लिये भागीरथी में जल-समाधि दिलाया है। शंकर ने मदन को जला दिया। शोकातुरा विधवा रति सती होने को तैयार हुई। इतने में आकाशवाणी हुई—तेरा पति तुझे फिर प्राप्त होगा। याने कवि की राय में सती होना प्रशस्त नहीं *

आत्मघात करना भी कालिदास की राय में अनुचित है। उनकी राय में वृद्ध होने के कारण यज्ञयागादि धर्म कृत्य करने में असमर्थ वानप्रस्थ के स्त्री पुरुषों को अग्नि प्रवेश कर अथवा जल-समाधि ले प्राण त्याग करना चाहिये ऐसी शास्त्राज्ञा है, ऐसी उस ज़माने की समझ थी। श्रीरामचन्द्र जी ने इसी प्रकार देह विसर्जन किया है। इसका कारण वही 'शास्त्र की सम्मति' बतलाया है।

आरोग्यता पूर्वक रहना प्रत्येक जीवधारी का आवश्यकीय कर्तव्य है, यद्यपि कालिदास ने ऐसा कहीं नहीं लिखा है तोभी रघुवंशी राजाओं का योग्य समय पर उठने का उदाहरण देकर उन्होंने इस बात को सूचना पर्याय रूप से दे दी है कि सवेरे का उठना बड़ा लाभकारी है—और आरोग्यता का मुख्य साधन है। इसी प्रकार मृगया से शरीर निरोग रह कर हृष्ट पुष्ट और मज़बूत होता है, यह जान कर ही राजा दशरथ को उनके सचिव ने शिकार खेलने की अनुमति दी है। शकुन्तला में कवि ने दुष्यन्त के सेनापति के मुख से मृगया का महत्व वर्णन कराया है।

---

* लेखक महाशय यदि कवि कालिदास जी के समस्त ग्रन्थों को पढ़ते और उनके भावों पर ध्यान देते तो यह आशय उनका कभी न लिखते। सं०

इससे प्रातःकाल को जल्द उठना और व्यायाम करना शरीर को निरोग रखने और हृष्ट पुष्ट बनाने के लिये अत्यन्त आवश्यक और लाभकारी है, यह पाठकगण समझ ही गये होंगे।

द्रव्योपार्जन करना भी मनुष्य के कर्तव्यों में से एक है। क्योंकि द्रव्य के संग्रह होने से अपने में एक प्रकार की अधिक सामर्थ्य रहती है। यद्यपि इस बात पर कालिदास का ध्यान नहीं गया तथापि द्रव्य अपने भोग विलास ही के लिये न कमा कर उसका विनियोग परोपकार में करना चाहिए, यह तत्व उन्होंने रघुवंश के अनेक स्थलों पर दिया है। उदाहरणार्थ–सूर्यवंशी राजागण दान धर्म करने ही के लिए द्रव्य का संचय करते थे। राजा दिलीप धन का लोभ न कर प्रजाओं से धन लेते थे। मेघदूत में एक स्थल पर लिखा है–साधारण लोगों का द्रव्य सञ्चय करना मानो अपना दुःख निवारण करना है।

विनय शीलता सब गुणों का राजा है–सब में श्रेष्ठ है। यह मनुष्य के सब प्रकार के उन्नति का आधार भूत है। विनय के न रहने से मनुष्य के दूसरे गुणों का विकाश नहीं होता। विनय से दूसरे गुणों की शोभा और बढ़ जाती है कालिदास ने स्वयं अपने काव्यों में अपनी विनयशीलता दिखलाई है। रघुवंश में उन्होंने लिखा है–यद्यपि मुझ में योग्यता नहीं है तौभी मैं सूर्यवंश के वर्णन करने का साहस करता हूं। राजा रघु के विषय में उन्होंने एक स्थल पर लिखा है–उन्होंने कम्बोज देश के राजाओं को जीत उनकी सम्पत्ति हरली पर गर्व नहीं किया। मतलब यह कि इतना पराक्रम करके भी वह नम्र बने रहे। राम और उनके बन्धुओं की–विनयशीलता जो कि स्वाभाविक थी–शिक्षण के कारण और भी अधिक बढ़ी। लवणासुर के वध कर डालने पर ऋषियों ने शत्रुघ्न की बड़ी प्रशंसा की। उन्होंने लज्जा से शिर नवा लिया। तारुण्य, सौन्दर्य और सम्पत्ति इन तीनों में से एक के होने पर भी मनुष्य उन्मत्त हो जाता है पर अतिथि राजा के पास इन तीनों का एकीकरण होने पर भी उनके मन में कुछ विकार न हुआ। जब केशी दुष्ट राक्षस के हाथ से राजा पुरुरवा ने उर्वशी की रक्षा की तब गन्धर्व राज चित्ररथ ने राजा की बड़ी स्तुति की। उत्तर में राजा ने विनय पूर्वक कहा–"छिः! इसमें मैंने क्या किया। यह तो महेन्द्र के पराक्रम का फल है"।

आत्मनिग्रह याने विचार शक्ति के योग से मनोविकारों को दबा डालना, यह असामान्य गुण कालिदास के ग्रन्थों में अनेक स्थल पर वर्णित है। सूर्यवंश के राजागण इन्द्रिय-जित थे। दिलीप व अन्य राजाओं ने केवल वंशवृद्धि के हेतु ही विवाह किया था। विषयाशक्ति का कैसा भयंकर परिणाम होता है, यह राजा अग्निवर्ण के अकाल मृत्यु से स्पष्ट लक्ष्य में आता है। आत्म निग्रह का सब से विलक्षण उदाहरण राजा दिलीप के चरित्र में है। दिलीप के कोई सन्तति न थी। वशिष्ठ-ऋषि ने उसके लिए उन को अपनी काम-धेनु नन्दिनी की सेवा करने की आज्ञा दी। राजा तन मन से उसकी सेवा करने लगे। एक दिन राजा की भक्ति देखने के लिए नन्दिनी ने उनकी परीक्षा ली। एक दिन वह हिमालय पर्वत पर चर रही थी कि एक सिंह उस पर झपटा। राजा ने धनुष वाण संभाला। तब सिंह ने मनुष्य वाणी से कहा–"राजा मैं शंकर भगवान् का गण हूं। उनकी आज्ञा से मैं यहां सिंह रूप धारण करके रहता हूं। मर्यादित स्थान से बाहर जाने की आज्ञा न होने के कारण अपने स्थान पर आये हुए पशुओं पर ही अपना निर्वाह करता हूं। यह गाय मेरे स्थान पर आ गई है। अतएव इस पर मेरी पूर्ण सत्ता है। सो तू अपना रास्ता ले और इसे मुझे खाने दे। इसमें तेरा कुछ दोष न होगा।"

राजा का इन बातों से समाधान न हुआ। उन्होंने सिंह से विनती की–"नन्दिनी के बदले में मैं तुझे अपना देह अर्पण करता हूं। तू उसे छोड़ दे।" सिंह ने हँस कर कहा–"राजा तू

पागल तो नहीं हुआ है। एक चतुष्पद जानवर के लिए तू अपने इतने बड़े राज्य, अखण्ड सम्पत्ति, भरी जवानी और अलौकिक रूप पर पानी फेरता है। गुरु-कोप का डर मत कर। तू राजा है। एक गाय के बदले उसे एक लाख गाय दे सकता है।"

परन्तु राजा का मन इन बातों से नहीं डिगा। उन्होंने सिंह को नन्दिनी के बदले अपना शरीर ही देना चाहा। उनका निश्चय देख सिंह ने क़बूल किया। उसने नन्दिनी को छोड़ दिया। राजा आनन्द मन से सिंह के सन्मुख हुए। वे सोचने लगे कि क्षण भर में मेरे शरीर के टुकड़े टुकड़े होते हैं पर बात दूसरी हुई। स्वर्ग से पुष्प-वृष्टि होने लगी। नन्दिनी ने प्रसन्न होकर कहा—"राजा, मैं तुझ से प्रसन्न हूं। पत्ते तोड़ उसमें मेरा दूध दुह पी ले। तेरी इच्छा पूर्ण होगी।"

इस प्रकार अनेक कष्ट सहने के उपरान्त राजा का मनोरथ पूर्ण हुआ। परन्तु उस समय भी उन्होंने अपना अपूर्व आत्मत्याग दिखलाया। उन्होंने कहा—"माता सब ठीक है। पर तुम्हारे वत्स के क्षुधा शान्त होने पर और यज्ञ के लिए आवश्यक दूध दुह देने पर, गुरु जी की आज्ञा लेकर मैं तुम्हारी आज्ञा पालन करूंगा।"

इसकी अपेक्षा संसार में आत्मत्याग का अधिक योग्य उदाहरण मिलना कठिन है।

कौटुम्बिक-नीति में पति पत्नी का प्रेम, स्त्रियों का पातिव्रत, पुरुषों का एक पत्नीव्रत, पिता का पुत्र विषयक कर्तव्य, पुत्र की पिता पर भक्ति, भाइयों के आपस का प्रेम व आदर आदि विषयों की गणना हो सकती है। राजा दिलीप व रानी सुदक्षिणा का दाम्पत्य प्रेम, दुष्यन्त और शकुन्तला के आपस का वियोग जन्य दुःख, उर्वशी के विरह से राजा पुरुरवा का उन्माद, पत्नी विरह से यक्ष की विपन्न अवस्था, इन्दुमती के लिए पत्थर को भी पिघलाने वाला अज का विलाप, मदन-दहन से दुःखित रति का अपार शोक, क्या पति पत्नी के पारस्परिक प्रेम को चरम सीमा नहीं दिखलाता? क्या इससे भी बढ़ कर प्रेमातिरेक का बड़ा उदाहरण कहीं मिल सकता है? शकुन्तला, सीता और पार्वती का पातिव्रत वर्णन कर कैसा अच्छा उदाहरण सांसारिक स्त्रियों के सामने रक्खा गया है। राजा अज का दूसरा विवाह न करना न रामचन्द्र ही का सीता परित्याग के अनन्तर दूसरा विवाह करना प्रत्युत अश्वमेध यज्ञ के समय सीता जी की दूसरी स्वर्ण-प्रतिमूर्ति बनवा लेना, एक पत्नीव्रत का कैसा अच्छा ज्वलन्त दृष्टान्त है!

राजा दिलीप का वर्णन करते समय कवि ने लिखा है—प्रजाजन के शिक्षण, रक्षण व पोषण का प्रबन्ध योग्य रीति से करने के कारण वेही प्रजा के सच्चे पिता थे। उनके पिता केवल जन्म ही के अधिकारी थे। दशरथ के बालक होने के कारण, उनकी शिक्षा के लिए राजा अज ने पत्नी के मरणानन्तर आठ वर्ष तक जीवधारण किया। पितृप्रेम, पितृ भक्ति, आज्ञापालन और कृतज्ञता का अत्यन्त उत्कृष्ट आदर्श कालिदास के काव्यों में है। राजा रघु ने पुत्र अज को राजकाज के अत्यन्त योग्य समझ उन्हें सिंहासनारूढ़ कर स्वयं वन में तपस्या करने के लिए जाना चाहा। पर इससे राजपुत्र अत्यन्त दुःखित हुए। उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रों से पिता से विनती की कि मुझे छोड़ कर न जाइये। लाचार पुत्र के सन्तोष के लिए वृद्ध राजा ने नगर के बाहर एक शान्त तपोवन में अपनी अवशिष्ट आयु बिताने का विचार किया। कालान्तर में पिता के स्वर्गवास होने पर राजा अज ने अत्यन्त आदर प्रेम और कृतज्ञता के साथ पिता की और्ध्वदैहिक क्रिया की। अनेक युवा राजपुत्रों ने दुष्ट कृत्यों द्वारा राज्य प्राप्ति करने का प्रयत्न किया है, इस बात का पता इतिहास में अनेक स्थलों पर लगता है पर राजपुत्र अज

को देखिए जिन्होंने पिता के छोड़े हुए राज्य का स्वीकार निष्काम बुद्धि से–पिता की आज्ञा समझ कर किया। राजा दशरथ ने राम और लक्ष्मण को उनकी बाल्यावस्था ही में यज्ञ में विघ्न करने वाले राक्षसों का संहार करने के लिये विश्वामित्र के साथ जाने की आज्ञा दी। उभय राज पुत्रों ने यत्किञ्चित् भी विलम्ब न कर पिता के आज्ञा का पालन किया। उसी प्रकार फिर पिता की आज्ञा होते ही रामचन्द्र जी ने वृहत् राज्य का त्याग कर वन का मार्ग लिया। परशुराम की पितृ भक्ति तो प्रसिद्ध ही है।

बन्धु-प्रेम का भी अनुकरणीय उदाहरण कवि ने अपने ग्रन्थों में दिया है। राजा दशरथ के पुत्र रामलक्ष्मणादि का बाल्यावस्था ही में एक दूसरे पर अत्यन्त प्रेम था। उसी अत्यन्त प्रेम व असीम भक्ति से प्रेरित होकर लक्ष्मण में राम जी का साथ दिया और अन्त में देह त्याग करने में भी आनाकानी न की। भरत की भी राम पर पवित्र और अलौकिक भक्ति थी। राम के वन जाने पर उन्होंने उनकी पादुका सिंहासन पर रख उनके सेवक के नाते राज-काज चलाया और उनके वन से लौटने पर बड़े आदर से उनका राज्य उन्हें दे दिया। रामचन्द्र के पुत्र लव और कुश का भी पारस्परिक प्रेम प्रशंसनीय था।

सामाजिक नीति में सत्य-भाषण, आदर-बुद्धि, औदार्य्य-आतिथ्य आदि अन्तर्भूत होते हैं। सत्य भाषण करने की इच्छा से रघुकुल के राजा लोग कम बोलते थे। राजा दशरथ बड़े सत्य वक्ता थे। उन्होंने अपने सुख व जीवन की परवा न कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की। राजा दिलीप रानी सहित वशिष्ठ मुनि के आश्रम में गये। उस समय मुनि ने उन दोनों का बड़ा आदर किया। राजा दशरथ अपने घोर शत्रु को भी कटुवचन नहीं कहते थे। औदार्य का प्रशंसनीय दृष्टान्त राजा के चरित्र में है। रघु ने विश्वजित नाम का यज्ञ किया। यज्ञ की समाप्ति पर उन्होंने अपनी तमाम सम्पत्ति ब्राह्मणों को बांट दी। तौ भी ऋषि कौत्सु के याचना करने पर उन्होंने चौदह कोटि से भी अधिक सम्पत्ति उनको दी। रघुवंशियों की यह प्रतिज्ञा ही थी कि प्राण जाय सो कबूल पर याचक कभी विमुख न फिरें। राजा दिलीप के परिवार सहित आश्रम में आने पर वशिष्ठ मुनि ने उनका बड़ा स्वागत किया। विदर्भराज भोज ने अपनी भगिनी इन्दुमती के स्वयम्बर के लिए अनेक राजाओं को निमन्त्रण दिया और उनके स्वागत के लिए बड़ी ही उत्तम व्यवस्था की राजपुत्र अज की तो उन्होंने ऐसा अच्छा सत्कार किया कि लोगों की नज़र में वे वहाँ के राजा जँचने लगे और भोज मेहमान।

राजनीति व युद्ध नीति के विषय में कवि ने रघुवंश में लिखा है:–सब राजाओं को पराजित करके छोड़ देने के सिवाय उन पर कुछ भी अत्याचार नहीं किया गया। शत्रुओं के शरण आ जाने ही पर उनका सन्तोष हो जाता था। पराजित शत्रु को उसके पूर्व वैभव में फिर बिठा देने ही को वे अपना गौरव समझते थे। राजा रघु के प्रधान मण्डल ने सुनीति व कुनीति दोनों अपने राजा के सामने रक्खा पर राजा ने कुनीतिका अपमान कर सुनीति ही का ग्रहण किया। कवि लिखता है–शौर्य के साथ सुनीति की बड़ी ही आवश्यकता है। नीति विरहित शौर्य व्याघ्रादि हिंस्र पशुओं की क्रूरता के समान है। और शौर्यरहित नीति केवल कादरता दिखलाने वाली है। कालिदास वर्णित राजाओं के अङ्ग में उत्कृष्ट और योग्य गुण वास करते थे। प्रजाओं पर वे असहनीय कर कभी न बिठाते थे। उनसे लिये हुए छोटे मोटे करों को वे उनके ही कल्याणार्थ खर्च कर दिया करते थे। न्यायाधीश का काम वे स्वयं करते थे। वे निष्पक्षपात होकर शासन करते थे। उनका प्रजा वात्सल्यगुण अवर्णनीय था। रामचन्द्र जी प्रजा का पुत्रवत्पालन

करते थे प्रजा उन्हें अपना पिता समझती थी। दुष्यन्त राजा प्रजा के दुःख सुख दोनों में शामिल होते थे।

रघुवंशी राजाओं ने दुःख सह कर भी प्रजा के कल्याणार्थ कर्म किये और दूसरों के दुःख निवारण करने में सदैव तत्पर रहे। प्रजा के साथ उनका ऐसा अच्छा व्यवहार रहता था कि प्रत्येक जन यही समझता कि मुझ अकेले ही पर राजा की अत्यन्त कृपा है। इस तरह राजा के उत्कृष्ट व्यवहार से प्रजा सदैव राजनिष्ठ बनी रही। राजा भी प्रजानुरंजन के लिये कुछ उठा नहीं रखते थे। वास्तव में अपना जीवन अपने सुख के लिये नहीं वरन दूसरे के उपकार के लिये है।

स्वर्गवासी हरिनाथ दे।

[लेखक-श्रीयुत यमुनाप्रसाद सिंह।]

मरना जीना एक सांसारिक घटना है जो जन्म लेता है वह एक न एक दिन मरता ही है और जो मरता है वह एक न एक दिन अवश्य जन्म लेता है। लाखों आदमी प्रति दिन जन्म लेते और मरते हैं पर इनके जन्म लेने और मरने में भी ज़मीन आसमान का अन्तर है। कोई ऐसे होते हैं जिनके मरने जीने से किसी को कुछ भी लाभ या हानि नहीं होती। कोई ऐसे होते हैं जिनके मरने का दुःख उनके कुटुम्बियों ही के बीच में घूम फिर कर रह जाता है और कोई ऐसे भी होते हैं जिनके मरने के साथ २ देश में उदासी छा जाती है, और सारे देश में हाहाकार मच जाता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है, कि ऐसे लोग बहुत कम होते हैं; पर वे लोग धन्य हैं, वह देश धन्य है जहाँ ऐसे २ लोग जन्म लेते हैं, वह जाति धन्य है जिसमें ऐसे २ लोग जन्म लेकर उस जाति का मुख उज्वल करते हैं। आज मैं एक ऐसे ही महापुरुष के चरित्र के वर्णन से अपनी लेखनी को पवित्र करना चाहता हूं। जिन माननीय महात्मा का चरित्र वर्णन करने से मैं अपने को कृतकृत्य समझता हूं वे हमारे पूजनीय "स्वर्गीय हरिनाथ दे" है। कौन ऐसा शिक्षित भारतवासी होगा जो आपके नाम और गुणों से परिचित न हो, जिसको आपके ऐसे २ लोगों के अपने देश में जन्म लेने का अभिमान न हो, और जो आपकी अकाल मृत्यु के दारुण दुःख सम्वाद को सुनकर शोक से विह्वल न हुआ हो। पर किया क्या जा सकता है परमेश्वर की ऐसी ही इच्छा थी। उसने इस स्वप्नवत संसार में, इस उलझे पुलझे जाल में, इस भूलभुलैया के खेल में इनका अधिक दिन तक रखना उचित नहीं समझा।

आप का जन्म सन् १८७७ में हुआ था और आप सुप्रसिद्ध भूतपूर्व श्रीयुत भूतनाथ दे एम० ए० बी० एल० के सुयोग्य पुत्र थे। आपकी बुद्धि का परिचय आपके बाल्यावस्था ही से मिलना आरम्भ हो गया था। ठीक है? 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' दिन आज कैसा होगा यह भोर के आसमान देखने ही से प्रायः मालूम हो जाता है। आपकी बुद्धि का भी पता आपकी तोतली बोली ही के समय से लगना आरम्भ हो गया था। आप जब पाठशाला ही में थे तभी सभों को मालूम हो गया था कि आप कुछ ऐसे वैसे लड़कों में नहीं हैं पर कोई सहपाठी स्वप्न में भी नहीं देख सका था कि हरिनाथ जिसकी हम लोग इतनी चुटकियाँ लिया करते हैं, शीघ्र ही एक ऐसे स्थान पर पहुंच जायगा जहाँ अभी तक किसी भारतवासी ने पदार्पण नहीं किया है, और एक ऐसा जगत् विख्यात् पुरुष हो जायगा जिसके साथ हाथ मिलाना बड़े से बड़े लोग अपनी इज्ज़त समझेंगे। आपका जीवनचरित्र सभों के लिये और ख़ास कर विद्यार्थियों के लिये आदर्श बनाने के योग्य है।

आपने नैथगने स्कूल से माइनर की परीक्षा पास की और इसमें आप को पाँच रुपये की छात्रवृत्ति भी मिली। सन् १८९२ में आपने सेण्ट्‌ जीवियर्स स्कूल (St. Xaveers school) से प्रथम श्रेणी में इण्टेन्स (Entrance) पास किया।

१८९५ में एफ० ए० की परीक्षा में आपका स्थान छठा हुआ और आपको डफ्फ (Duff) छात्रवृत्ति भी मिली। १८९६ में आपने प्रेसीडेन्सी कालेज से लैटिन और अङ्गरेज़ी में सन्मान के साथ बी० ए० पास किया। इस परीक्षा में आप को चालीस रुपये की छात्रवृत्ति मिली। इसी साल १८९६ में आप ने लैटिन में एम० ए० पास किया और प्रथम श्रेणी में प्रथम हुये। इतना कम समय रहने पर एक दूसरे देश की भाषा में आपने केवल पास ही नहीं किया वरन प्रथम श्रेणी में प्रथम हुये। मेरे पाठक देख सकते हैं कि यह कुछ साधारण बात नहीं है। दूसरे ही साल आपने फिर ग्रीक में एम० ए० दिया और इसमें भी आपका स्थान प्रथम ही रहा। इसके लिये भी आपको एक सुवर्ण पदक मिला। १८९८ में भारत सरकार ने भी आपको विलायत में पढ़ने के लिये छात्रवृत्ति देकर सत्कार किया। सन् १९०० में आप क्राइस्ट कालेज, केम्ब्रिज से ट्रिपौस की परीक्षा में उतीर्ण हुए। १९०१ में फिर उसी कालेज से दूसरे भाग में ट्रिपौस लिया। उसी साल, याने १९०१ में ही आपने "ग्रीक" और "लैटिन" में कविता रचने के लिये "स्कीट स्मारक पारितोषिक" पाया। जब भारत में आपने लैटिन से एम० ए० पास किया था, तब बहुत से लोगों को यह कहने की जगह रह गई थी कि भारत में इसके अच्छे विद्यार्थी नहीं रहते, पर बाघ के मांद में जाकर जो आपने बहुत से बाघों को हराया इसका क्या उत्तर हो सकता है। "सौर्वन" नामक विश्वविद्यालय फ्रान्स और "मरवर्ग" नामक विश्वविद्यालय जर्मनी में भी आपने बहुत सी भाषायें सीखी। इसके बाद आप भारतवर्ष को लौट आये और ढाका कालेज में अङ्गरेज़ी के अध्यापक नियत हुये। यहाँ आप १९०५ तक ठहरे। इसके बाद आप प्रेसिडेंसी कालेज के अध्यापक नियत किये गये। इस पद पर आपका ठहरना बहुत कम दिनों तक हुआ। इसके कुछ ही दिन बाद आप को हुगली कालेज के प्रधानाध्यक्ष होकर जाना पड़ा। यहां पर भी आपका ठहरना केवल एक ही वर्ष के लिये हुआ। १९०७ में आप कलकत्ता राजकीय पुस्तकालय के पुस्तकाध्यक्ष बनाये गये। यहीं आप का अन्त समय तक ठहरना हुआ। पर नौकरी स्वीकार करने पर भी, इस संसार के कीचड़ में फँसने पर भी आप विद्याध्ययन को नहीं भूले। इतनी परीक्षायें पास करने पर भी आपकी तृष्णा नहीं बुझी। आप फिर एक दूसरे विषय में एम० ए० देने की तैयारी करने लगे। १९०६ में आपने फिर "पाली" में एम० ए० दे ही दिया और इसमें भी प्रथम श्रेणी में प्रथम हुये। इतने पर भी आपकी तृप्ति नहीं हुई। सन् १९०८ में आपने फिर संस्कृत में एम० ए० दिया और प्रथम श्रेणी में प्रथम हुये। इन सभों के अलावे आपने फिर संस्कृत और अरबी में योग्यता सम्बन्धी ऊँची परीक्षायें पास की, और प्रत्येक में आप को दो हज़ार इनाम मिला। उड़िया में भी आपने एक ऐसी ही परीक्षा पास की जिसके लिये आपको एक हज़ार इनाम मिला। तदनन्तर संस्कृत और अरबी में सब से ऊँची परीक्षा पास करने के लिये आप को पाँच २ हज़ार प्रत्येक के लिये इनाम मिला।

नीचे लिखी हुई भाषाओं में आपको पूरी योग्यता थी।

(१) अङ्गरेज़ी	(२) लेटिन	(२) ग्रीक
(४) संस्कृत	(५) अरबी	(६) पाली
(७) फ़ारसी	(८) उर्दू	(९) उड़िया
(१०) हिन्दी	(११) बङ्गला	(१२) इटालियन

(१३) फ्रेंच (१४) स्पैनिश (१५) जर्मन
(१६) टर्किश (१७) पोर्चुगीज़ (१८) पुश्तो
(१९) रशियन (२०) पालिश (२१) हिब्रू
(२२) स्यामी (२३) चीनी (२४) जापानी
(२५) बरमी (२६) सिलोनी (२७) तिब्बती
(२८) मराठी (२९) गुजराती

इस से पाठक स्वयं ही देख सकते हैं कि आप कैसी चोखी बुद्धि के आदमी थे। आपके सामने एम० ए० ऐसो २ परीक्षाएँ तो हवा थी।

आपको इधर नाम भी फैलाना आरम्भ हो गया था। आप इधर संसार के अनेक भाषा वित्‌विद्वानों में से एक गिने जाने लगे थे, आप की विद्वता का प्रकाश चारो ओर दूर दूर तक फैलना शुरू होगया था। इसमें सन्देह नहीं कि आपने अपने नाम के साथ २ अपने कुल का, अपनो जाति का, और अपने देश का भी नाम किया है। रूस के "चरवतस्की" नामक विद्वान यहां भ्रमण करने को आये हुये थे उन्होंने हमारे 'हरिनाथ दे' की बड़ी प्रशंसा की थी, और कहा कि यदि आपको चलना स्वीकार हो तो मैं आपको "सेण्ट पीटर्सवर्ग" नामक विश्वविद्यालय का अध्यापक नियत करा दूं। यह तो ठीक ही था कि "हरिनाथदे" अपने देश की सेवा छोड़ कर दूसरे देश में नहीं जाते पर यह आधीन देश के लिये कम सन्मान की बात नहीं है। जब जापान के सुप्रसिद्ध सुविख्यात पण्डित "कांउण्ट ओटोनी" यहां आये हुये थे तब पुरानी, गुप्त, संस्कृत की पुस्तकों को चीनी और जापानी ग्रन्थों से खोज कर ढूंढ़ निकालने की चेष्टा पर आप से इतना खुश हुये कि आपको बहुत सी चीनी और जापानी भाषाओं की किताबों की भेंट की। यह भी भारत वासियों के लिये कुछ कम सन्मान की बात नहीं है। बर्लिन (Berlin) के सुप्रसिद्ध संस्कृत के अध्यापक "पिचल" साहेब से आप की बड़ी मित्रता थी। यह आप ही की मित्रता थी, जिस के वश में होकर आप को यहां कलकत्ता विश्व-विद्यालय में संस्कृत में व्याख्यान देने के लिये आना पड़ा था। पर हाय! वह भारतवासी जिसकी इतनी इज्ज़त होती थी, जिसका इतना सन्मान होता था, जिसका इतना आदर होता था, जिसको भारतवासी क्या अन्य देश के रहने वाले सब के सब प्रेम की दृष्टि से देखते थे वह अब कहां है? यह लिखते लेखनी आगे बढ़ना नहीं चाहती, हृदय विदीर्ण होता है कि वे महात्मा जो इस भारत की लाज रक्खे हुये थे, जिनके बल पर हम लोग दूसरे देश के आदमियों के सामने इतना कूदते फांदते थे वे अब नहीं हैं। न मालूम आज कल भारत किस चक्र में पड़ा हुआ है। इसके चुने हुये आदमी एक २ करके जा रहे हैं।

इधर आप कई एक अच्छे अच्छे ग्रन्थों का अनुवाद कर रहे थे, पर हो क्यों हम लोगों के भाग्य में उनका पठन नहीं बदा था। जिस समय प्राण पक्षी आप का शरीर छोड़ कर उड़ गया उस समय आप केवल चौंतिस ही वर्ष के थे। आप अपने पीछे एक स्त्री, एक लड़का और दो लड़कियां छोड़ गये हैं। परमेश्वर करे वे लोग दीर्घायु हों और अपने पिता ही के से विद्वान हों।

कृष्ण और क्राइस्ट।

[लेखक—श्रीयुत महेन्द्रपाल सिंह।]

बहुत से विद्वानों का मत है कि वास्तव में कृष्ण और क्राईस्ट एक ही हैं और आज कल जिस भक्ति और भाव से भारत में कृष्ण की पूजा होती है उसका ईसाईधर्म से बहुत बड़ा सम्बन्ध है। इस मत के मुख्य सञ्चारक वैवर (Weber) और जे० कैनेडी (J. Kennedy) हैं। इसकी उत्पत्ति का कारण केवल यह है कि श्रीकृष्ण और क्राइस्ट की बाल्यावस्था की लीलायें तथा घटनायें आपस में बहुत कुछ

मिलती जुलती हैं। बस इसी के सहारे उक्त महाशियों ने बहुत कुछ कह डाला है । १६०७ के अक्टूबर मास की रायल एसियाटिक सोसाइटी के जर्नल में (J. R. A. S. Oct 1900) कैनेडी साहब ने अपना मत प्रकाशित किया है। उनके लेख का सारांश तथा उनके मत का खण्डन नीचे दिया जावेगा, परन्तु इस के पहिले हम दो एक बात कह देना आवश्यक समझते हैं।

ऐतिहासिक खोज एक बड़ी ही महत्व की चीज़ है और प्रत्येक मनुष्य को उसमें आनन्द लेना चाहिये। परन्तु कैनेडी साहब ने जो हमारे कृष्ण महाराज के लिये शब्द प्रयोग किये हैं वे कटु और सर्वथा अनुचित हैं। जो प्रमाण कैनेडी ने दिये हैं अथवा जो शब्द उन्होंने कहे हैं उनसे पाठक स्वयं ही समझ लेंगे कि साहब हिन्दू धर्म तथा हिन्दू ग्रन्थों को नहीं समझ सके हैं।

"कैनेडी के लेख का सारांश"।

भारतवर्ष का ईसाइयों तथा ईसाई देशों के साथ प्रथम से ही मेल रहा है। इस सम्पर्क के तीन मुख्य स्थान थे।

(१) अलेकज़ैण्ड्रिया (Alexendria)
(२) दक्षिणी भारत
(३) भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा

अलेकज़ैण्ड्रिया में तो केवल सौदागरों द्वारा ही मेल रहा और यह भी प्रायः २१५ ई० में बन्द हो गया। परन्तु क्राईस्ट की पूजा का अंकुर इन लोगों के द्वारा भारतभूमि में नहीं आया। ये लोग धर्म की बातें बहुत कुछ नहीं समझते थे और केवल धनोपार्जन ही इनका मुख्य काम था। ये लोग हिन्दू थे और जब वहाँ इनके व्यापार का मार्ग बन्द हो गया तब भारत को लौट आये थे।

भारत के दक्षिण में अवश्य यहूदी और फ़ारस के व्यापारी थे जो ईसाई धर्म के अनुयायी थे परन्तु इनकी संख्या कम होने के कारण हिन्दू धर्म पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ सका।

उत्तरी सीमा पर परस्पर मेल जोल बहुत था और वह अधिक काल तक रहा भी। मध्य एशिया की जातियों के कुछ मनुष्य तो ईसाई हो भी गये थे और अधिकतर ने क्राईस्ट को जन्म सम्बन्धी कथाएँ सुन रक्खी थी। इन्हीं लोगों (Seythian and Hurs) के द्वारा क्राईस्ट की कथा भारत में तीसरी से पाँचवीं शताब्दी के बीच में प्रचलित हुई और हिन्दुस्तानी सांचे में ढल कर कृष्ण की बन गई।

असभ्य जातियों तथा अन्य धर्मावलम्बियों के देवता एक साथ ही उच्च पदवी को नहीं पहुंचते किन्तु जैसे २ समय व्यतीत होता जाता है उसी नाम के अन्य देवताओं के साथ मिलते जाते हैं और अन्त में एक ही मुख्य देवता माना जाता है। भिन्न भिन्न काल में एक ही नाम के बहुत देवता होगये हैं। सिसरो (Cicero) कहते हैं कि चार जूपीटर थे। इसी तरह मथुरा के कृष्ण से अन्य तीन कृष्ण और हुये हैं।

(१) द्वारका के कृष्ण। इन्होंने महाभारत के युद्ध में बहुत बड़ा भाग लिया था और अपनी चालाकी न कि अपनी बहादुरी के लिये प्रसिद्ध थे। एक असुर इनका भाई था और इन्होंने एक राक्षस विवाह किया था। इनके द्वारका के मनुष्य कुचाली और शराबी थे। इनका उद्देश्य क्षत्रियों में धार्मिक नियमों को तोड़ने का था। महाभारत के भाटों ने इनको यादव कहा है परन्तु वास्तव में ये आर्य ही नहीं थे और एक श्यामवर्ण असभ्य जाति के मनुष्य थे।

"There is chief of Dwarka famous for his cunning and his craft rather than his prowess·········An Asura is his Cousin······ With another he contracts a Rakshas marriage·······His townfolk of Dwarka are drunkerds and dissolute·········His policy which consists in breaking every

law honour in force among the Kshattriyas. And although the bards of Mahabharat have bestowed him the complementary rank of a Yadav, he is clearly no Aryan, but a dark skinned indigenous hero of the lower India,"

[J. R A. S. Page 961.]

(२) ये वासुदेव और देवकी के पुत्र और बलराम के छोटे भाई थे। इनकी पूजा बहुत प्राचीन समय से काबुल के पहाड़ों और इंडस की तराई में होती आई है। इन्हीं ने दैत्य, असुर, राक्षसों को और कंस को मारा था। प्रोफेसर भण्डारकार ने इन्हीं का पातञ्जलि के महाभाष्य में कुछ पता निकाला है। यह ग्रन्थ ईसा से दो शताब्दी पूर्व का है। महाभारत के तीसरे पर्व में लिखा है कि साल्वा के दैत्य राजा ने द्वारका पर चढ़ाई की थी। इस युद्ध में कृष्ण ने इन्द्र के अस्त्र (Thunderbolt) धारण किये, विष्णु के नहीं। इस लड़ाई की घटनायें मारसेलीनियस (Marcellinius) की अमीडा (Amida) की लड़ाई से बहुत कुछ मिलती हैं। यह चढ़ाई ३५८ ई० में हुई थी। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि तीसरी शताब्दी तक कृष्ण और विष्णु में अन्तर माना जाता था अर्थात् वे विष्णु के अवतार नहीं माने जाते थे।

(३) ये वे ही अनार्य कृष्ण थे जो कुछ काल बाद पूज्य दृष्टि से देखे जाते थे। लोग पहले इनको इन्द्र का और पीछे विष्णु का अवतार कहने लगे। इनका नाम पहले उपेन्द्र और पीछे गोविन्द (The herdsman of the fertilising rain clouds) हुआ। ईसा की चौथी शताब्दी के अन्त में कृष्ण पूर्ण रूप से विष्णु का अवतार माने गये थे।

(४) मथुरा के बालक कृष्ण। महाभारत में कृष्ण की बाल्यावस्था की घटनायें लिखी हैं परन्तु इनमें पीछे से बहुत सी कथायें जोड़ दी गई हैं। विलसन साहब कहते हैं कि महाभारत में जो कृष्ण की कथा का उल्लेख है उसके सत्य होने में बड़ी भारी शङ्का है।

(Wilson Vishnu Puran, Trans. P. 492 Note 1.)

सब से प्रथम कृष्ण की बाललीला का हाल विष्णु पुराण और हरिवंश में मिलता है और ये ग्रन्थ छठी शताब्दी के हैं। स्कन्द गुप्त के भिटारी के शिला लेख में लिखा है कि स्कन्द गुप्त अपने शत्रुओं पर विजय पाकर अपनी माता के पास ऐसे प्रसन्न मुख से आये थे जैसे कि कृष्ण अपने वैरियों को मार कर देवकी के पास गये थे। यह शिला लेख ४५४-६ ई० का है। इन सब प्रमाणों से सिद्ध होता है कि कृष्ण की बाल्यावस्था की कथा प्राचीन नहीं है और छठी शताब्दी के लगभग यहाँ आरम्भ हुई है।

मथुरा कृष्ण की जन्मभूमि कैसे हो सकती है। प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान (४०० ई०) और हुएनट संग (६२०-६४४ ई०) ने लिखा है कि उनके समय में बौद्ध धर्म का मथुरा एक केन्द्र था। मथुरा के आस पास की भूमि जब खोदी गई थी तब भी प्रायः अधिकतर बौद्ध समय की ही वस्तुएँ मिलीं थीं।

मथुरा के कृष्ण की कथा में पुराने कृष्ण की कथा अवश्य जोड़ दी गई है। वासुदेव, देवकी बलराम, कंस की कथा हिन्दू धर्म से ली गई है। यशोदा, नन्द की कथा बौद्ध धर्म से ली गई है। और सब कथा तथा घटनाएँ बिलकुल ईसाई धर्म से ली गई हैं। देवकी का आदर, घुड़साल में जन्म, आकाश में एक नवीन तारे का निकलना, वासुदेव का कृष्ण को लेकर भागना, कंस का लड़कों को मरवा डालना, ऐसीही सब बातें क्राईस्ट की कथा में भी मिलती हैं। नाम कृष्ण और क्रस्टोस के भी अन्तर बिलकुल कम हैं। एक दिन कृष्ण अपने साथियों अथवा नन्द से कहते हैं "हम वन में घूमने वाले हैं, गाय के पूजने वाले हैं, ब्राह्मण और कृषी अपने देवता पूजते हैं, हमारे देवता तो गौ और पर्वत ही

हैं।" ये कृष्ण बहुत सुन्दर नाचते थे और बड़ी मधुर वंशी बजाते थे। द्वारका के कृष्ण इनसे बिलकुल भिन्न थे। वे कभी गूजरों के साथ नहीं खेले न उन्होंने गाय चराइ या वंशी ही बजाई। इससे यह सिद्ध होता है कि मथुरा के बालक कृष्ण गूजरों में ही केवल रहते थे और इनके साथी हिन्दुओं से भिन्न देवता पूजते थे। आज कल वृज की भूमि में गूजर, जाट, अहीर बहुत बसते हैं। ये उन्हीं सिथियन और हम लोगों के वंशज हैं जो चौथी और पांचवीं शताब्दी में भारत में आये थे। ये ही लोग अपनी प्राचीन मातृभूमि मध्य एशिया से इस नवीन धर्म के अंकुर को लाये थे जो आज दिन भारतभूमि में फल फूल रहा है।

पाठक आप को भय होगा कि हमारे कृष्ण को कनेडी साहब ने क्या सिद्ध कर दिया। क्या हमारी जो उनमें आशायें हैं निष्फल हुई ? कदापि नहीं। ये केवल भ्रम है।

मत का खण्डन

कारलाइल ने अपनी पुस्तक हीरोवरशिप (Hero worship) में लिखा है कि सब देशों के महापुरुषों की आत्म घटनायें प्रायः आपस में मिलती हैं और इसका कारण यह है कि उन सब की आत्मा में उसी एक ईश्वरीय तत्व का अंकुर जमा रहता है। यदि कृष्ण और क्राईस्ट की जीवन घटनायें मिलती हैं तो इससे हम यह तात्पर्य नहीं निकाल सकते कि दोनों एक ही व्यक्ति थे अथवा कि कथायें एक दूसरे की नकल हैं। ईसाई धर्म की पुस्तकें जिनमें इन कथाओं का वर्णन है बहुत पीछे लिखी गई हैं और उनको बिलकुल सत्य भी नहीं मान सकते। संभव है कि इनके लोगों ने, हमारे कृष्ण के गुणों पर आशक्त होकर, उनकी कथा अपने देश में प्रचलित कर दी हो।

"In the first place many of the most striking similarities consist of details found only in apocryphal gospels and writings of uncertain date, and may quite as probably be due to borrowings by Christianity."

(A. B. Keith. J. R. A. S. P. 170, 1908.)

कनेडी साहब कहते हैं कि कृष्ण और विष्णु ३०० ई० तक भिन्न भिन्न माने जाते थे। इसकी पुष्टि में उन्होंने द्वारका और अमीडा के लड़ाइयों की तुलना की है और कहा है कि कृष्ण इन्द्र के अस्त्रों से इस युद्ध में लड़े थे। क्या वे अब भिन्न २ नहीं माने जाते? जैसे अवतार पहले माने जाते थे वैसेही वे अब भी माने जाते हैं। एक ही तरह की अनेक घटनायें जगत में नित्य होती रहती हैं। बहुत सम्भव है कि यह केवल कवि की कल्पना हो।

"Is there anything in the text which could not have been written in the first century A. D. by an Indian with same imagination who had heard by report of the modes of warfare employed by the Empire.

(Keith Same)

कृष्ण और विष्णु बहुत पहले से एक ही माने जाते थे इसका प्रमाण भी है। वैबर कहते हैं "महाभाष्य में दो कथाओं का उल्लेख है। इन का नाम बलि बन्ध और कँस वध है। पहली कथा तो केवल विष्णु के सम्बन्ध में ही सुनी जाती है।" इससे सिद्ध होता है कि जब यह कथा कृष्ण के सम्बन्ध में कही जाती है तो कृष्ण और विष्णु में पहले भी कम अन्तर माना जाता था।

महाभारत को झूठा कह कर और विष्णु पुराण अथवा हरिवंश को छठी शताब्दी का बतला कर कोई कुछ भी कह सकता है। महाभारत का काल अभी ठीक ठीक निश्चित नहीं हुआ है परन्तु हरिवंश के विषय में यह अच्छी

तरह सिद्ध हो गया है कि ग्रन्थ १०० ई० के पूर्व ही बना है।

Denzins and the Date of Haribans T. R. A. S. P. 681. 1907.

पाठकों को याद होगा कि कैनेडी साहब स्वयं कह चुके हैं कि कृष्ण की बाल्यावस्था का हाल हरिवंश में मिलता है और यहाँ यह सिद्ध हो गया कि यह ग्रन्थ उस समय का है जब कि ईसाई धर्म अपनी जन्मभूमि में भी अच्छी तरह नहीं फैल पाया था।

शिला लेख के प्रमाण से स्पष्ट ही मालूम होता है कि कृष्ण की कंस के साथ शत्रुता थी। यह घटना स्कन्द गुप्त के समय से कुछ पूर्व की तो अवश्य ही होगी। शत्रुता के शनैः २ बढ़ने में कुछ समय अवश्य लगा होगा। यदि ऐसा न माना जाय तो भी लेख से यह सिद्ध नहीं होता कि स्कन्द गुप्त के समय में ही कृष्ण हुये थे।

महाभारत में और महाभाष्य में (Weber के मत के अनुसार) कृष्ण कई स्थानों में गोविन्द कहे गये हैं। कैनेडी साहब ने इसका मतलब दूसरा ही लिया है। 'गोविन्द' को 'विद' धातु से बना मान सकते हैं अथवा 'गोपेन्द्र' का प्राकृत मान सकते हैं। ग्रायर्सन और वैकरङ्गल भी कहते हैं कि 'गोविन्द' 'गोपेन्द्र' का प्राकृत है। इस शब्द से 'गाय' से सम्बन्ध अवश्य मालूम पड़ता है। कैनेडी साहब ने महाभाष्य के कृष्ण को जिनका गाय से कुछ सम्बन्ध नहीं था दूसरा ही माना था। परन्तु यहाँ विद्वानों की राय से और ही कुछ सिद्ध होगया। बहुत से प्रमाण महाभाष्य के समय पर निर्भर हैं इस कारण इसका ठीक समय बताना बहुत आवश्यक है। एस लेवी (S. Levi, Theatre Indian P. 314) और कीथ कहते हैं कि यह ग्रन्थ ईसा से दो शताब्दी पहले का है।

कृष्ण ने जो अपने साथियों से कहा था उससे हम यह तात्पर्य नहीं निकाल सकते कि कृष्ण केवल गूजरों में ही रहते थे अथवा उन्हीं लोगों में उनका मान था और उन लोगों के देवता हिन्दू देवताओं से भिन्न थे। क्या वीर शिवाजी और महाराणा प्रताप ने ऐसे वचन नहीं कहे हैं कि हम जंगल में घूमते हैं और गौ और हिन्दू धर्म की रक्षा करना हमारा मुख्य कर्तव्य है? इससे यह तात्पर्य नहीं निकाला जा सकता कि ये दोनों वीर हिन्दू नहीं थे अथवा कि वे जङ्गली जातियों में ही सदा रहते थे। गौ की पूजा भारत में सदा से मुख्य मानी गई है और शत्रुता के कारण बड़े बड़े वीरों को बन में कुछ समय बिताना पड़ता था।

कृष्ण का समय बहुत पहले था और कई शताब्दी तक मथुरा में बौद्धों का बहुत ज़ोर शोर रहा। कोई आश्चर्य नहीं यदि कृष्ण के समय की कोई वस्तु खोदने पर अब तक नहीं मिली है। सारांश यह है कि महाभाष्य तथा हरिवंश के प्रमाणों से यह पूर्णतया सिद्ध होता है कि कृष्ण की बाल्यावस्था की कथा भारत में क्राईस्ट से पूर्व की है। कैनेडी साहब ने एक ही कृष्ण के चार कृष्ण कर लिये हैं। इसका उद्देश्य केवल अपने मत को सिद्ध करने का ही प्रतीत होता है। बस यही पाठकों से आज के लिये "जै श्रीकृष्ण की" कहते हैं।

"ध्रुव"।

[लेखक—पं० कृष्णचैतन्य गोस्वामी।]

(१)

थे प्रथम मनु के वंश में
उत्तानपाद नृपति महान्।
दो सुरुचि और सुनीति उनकी
रानियां थीं गुणनिधान॥
उनमें सुरुचि भूपाल की
अति प्रणय प्रतिमा रूप थी।
ध्रुव मात किन्तु सुनीति पर
नृप की न उतनी प्रीति थी।

(२)

उत्तम कुँवर को एक दिन
राजेन्द्र गोदी में लिए।
बैठे हुए थे सुरुचि के संग
अति हर्ष भर अपने हिये॥
ध्रुव ने भी आकर प्रार्थना की
पर न पाया गोद को।
अत्यन्त लखि अपमान निज
अति दुःख हुआ सुकुमार को॥

(३)

उस ही समय उपमात ने
कोमल सरल ध्रुव से महा।
नृप-लाज तज कर इस तरह
विष पूर्ण शब्दों में कहा॥
जिनको श्रवण कर ग्लानि से
नृप-सूनु डूबा शोक में।
नृप ने न बात तथापि की
लेना कहाँ था! गोद में॥

(४)

आया जनक-अपमान सह
रोता हुआ अविनोद में।
तब देख कर दुर्गति विकट
मा ने लिया निज गोद में॥
सुनि अन्य जन से वृत्त उसका
शोक से अति छा गई।
वन-वन्हि-दग्धा माधवी सम
हाय! वो मुरझा गई॥

(५)

फिर पोंछती ध्रुव नयन जल को
कृष्ण अति प्रश्वास से।
बोली महाकरुणा सनी
वाणी तभी निज तात से॥
"मम उदर से उद्भव तुम्हारा
वत्स! दुःखदायी हुआ।
क्या कभी दुर्भाग्य सँग
सौभाग्य सुखदायी हुआ!!

(६)

हे वत्स! जो निज भक्त वत्सल
विश्वपालक हैं अहो!
तुम उन्हीं अशरण शरण
जग कर्तार का आश्रय गहो।
जब प्रेम से परिपूर्ण हो
उनके करोगे ध्यान को।
कट जांयगी भव यातना
पाओगे प्रेम निधान को॥

(७)

है कौन दीनानाथ बिन
जो दीन रक्षा कर सके।
रजनीश-त्यक्त चकोर बिन
को रक्त अङ्गारक छके॥
कमलाकमल ले हाथ में
जिनका सदान्वेषण करे।
निज दुःख समझाओ उन्हें,
जो सकल सद्गुण से भरे॥

(८)

होगा कठिन तव दुःख विनाशन
अरु किसी से भी नहीं।
होवें अतः जहँ पद्मलोचन
वत्स तुम जाओ वहीं॥
स्वीकार कर जननी वचन
हरि प्रेम से गद्गद हुआ।
तब प्रेम पूरित ध्रुव वहाँ से
स्वाभिमानी चल दिया॥

(९)

है क्षत्रियों का तेज स्वाभाविक
अहो! दुष्कर महा।
अत्यन्त लघु अपमान भी
जाता नहीं उनसे सहा॥
यों सोचते ध्रुव को मिले
नारद, उसी पथ में कहीं।
जो ध्रुव मनो मत जान
प्रिय सुरलोक से आए वहीं॥

(१०)

वीणा बजा हरि गान रत
मुनिवर्य्य को पहिचान के ।
ध्रुव ने प्रणाम किया उन्हें
जीवन सफल निज मान के ॥
हों नष्ट पाप समूह भी
जिस पाणि के सम्पर्क से ।
आशिष दिया ध्रुव शीश धर
मुनि ने उसी कर धन्य से ॥

(११)

पहिले कहा मुनि ने सुनो
तुम वत्स बालक हो अभी ।
मानापमान विचार तुम को
सर्वथा अनुचित सभी ॥
इस हेतु परम कठोर पथ से
खींच मन की वृत्ति को ।
तुम तात ! जाओ पितागृह
परिधान से तज कृत्ति को ॥

(१२)

निज क्षत्रियत्व स्वभाव से
उद्दण्ड अति मैं हूं अहो !
अतएव कैसे दुर्वचन मैं
सहन कर जाऊँ कहो ? ॥
जननी सपत्नी के वचन
जो थे शिला से भी कड़े ।
मुनिवर्य्य ! मेरे हृदय
दुर्बल में वही सब हैं गड़े ॥

(१३)

अतएव जननी कथित हरि
दर्शन बिना हरि नेह से ।
मुख मोड़ जाऊँगा नहीं, मैं
जनक गृह इस देह से ॥
जिस चरण पङ्कज विजय में
मुनि देवतागण भी थके ।
आशीष दो अब देव ! उसको
विजय हम ही कर सकें ॥

(१४)

ये वचन सुन नृप सूनु के
मीठे सुधा साने हुए ।
धर्म्मार्थ को शीतोप
चाराधिक यथा माने हुए ॥
हरि प्रेममय सङ्गीत का
सोता सदा जिससे बहे ।
उस आस्य से रसवद्वचन
सन्तुष्ट हो मुनि ने कहे ।

(१५)

है सत्य ही तव मात ने
हरि-चरण का आश्रय अहा !
भव दुःख नाशन हेतु ध्रुव,
हे वत्स प्रिय ! तुम से कहा ॥
अतएव मधुवन गमनपूर्वक
तात ! उस हरि को भजो ।
तुम नियम साधन साथ,
अपने मोह आदिक को तजो ॥

(१६)

मधुपुरी जाते हुए ध्रुव
की प्रणति स्वीकार कर ।
स्वच्छन्दचारी मुनि गए
अपने अभीष्ट निवास पर ॥
जाकर वहाँ वह काल तक,
नृप सूनु ने दृढ़ तप किया ।
गोलोक में तप-तेज ने ही
प्रेम उसका कह दिया ॥

(१७)

दश मार्गगामी चित्त को
एकाग्र कर सब ओर से ।
ध्रुव ने मिलाया हृदय तल में
खोज उस के चोर से ॥
आहार तज जब एक पद से
हो अचल सम वह खड़ा ।
यों हो गया हरि पद मगन !
वह दृश्य था अनुपम बड़ा ॥

(१८)

हरि शंख चक्र गदा पदम
धारे हुए सुखधाम ने।
प्रभु गरुड़गामी मुदित मन
अभिराम तन घनश्याम ने
आकर, जहाँ ध्रुव ने उन्हें
रख ध्यान में पहिले लिया।
अन्तस्थ रूपी कृष्ट कर
प्रत्यक्ष तब दर्शन दिया॥

(१९)

तव प्रणति पूर्वक मोद से
पीने लगा ध्रुव छबि सुधा।
तौ भी मिटी नहिँ भूप सुत की
प्रेम से पूरित क्षुधा॥
पाकम्बु का संस्पर्श श्रीपति
की दया से जो हुआ।
फिर गुणागार कृपालु का
गुण गान कुछ उसने किया॥

(२०)

ध्रुव के हृदय को जान कर
सर्वज्ञ बोले मोद से।
अब पालिये ध्रुव निज प्रजा को
ले पिता की गोद से॥
पश्चात् इसके तात! तुम
ध्रुव लोक जाओगे वहां।
रह प्रलय तक गोलोक
आओगे सदा मैं हूं जहां॥

(२१)

यों कथन कर निज भक्त से
लोकेश अन्तर्हित हुए।
कुछ मलित मन ध्रुव भक्त भी
निज राज्य प्रत्यागत हुए॥
फिर बहुत दिन तक राज्य कर,
ध्रुव आज हैं ध्रुव लोक में।
जो जनक के अपमान से
थे एक दिन अति शोक में॥

(२२)

कुछ भी स्वभक्तों के लिये
श्रीविष्णु को न अदेय है।
दृढ़ भक्ति के आगे सभी
कुछ 'ज्ञान आदिक' देय है॥
पर भक्त अभितः भक्ति रस में
पगा होना चाहिए।
श्रीविष्णु पद में ध्यान उसका
लगा होना चाहिए॥

"करतूती कहि देत आप कहिये नहिं साईं"।*

[लेखक—श्रीयुत ए० एस०।]

आज बहुत दिनों के बाद मुझे कुछ हिन्दी कविता पढ़ने की जो सिड़ सवार हुई तो गिरधर कवि की कुण्डलिया पढ़ने लगा। पढ़ते २ मुझे यही ऊपर लिखी हुई एक पंक्ति ऐसी भली जान पड़ी कि इस पर एक साथ ध्यान गड़ गया और उसके सम्बन्ध की इधर उधर की बहुत सी बातें याद आने लगीं। बहुत कुछ सोचने पर मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि जैसे २ समय पलटता जाता है वैसे ही वैसे कवियों को भी अपना ढङ्ग बदल देना चाहिये। जिस समय गिरधर ने यह पंक्ति लिखा उस समय देश की दशा और कवि के चित्त की वृत्ति कैसी थी इसके विवरण करने का साहस तो मैं नहीं कर सकता परन्तु आज कल तो मेरी समझ में इस पंक्ति का अनुकरण करना "ख़ाली अज़ हिमाक़त" नहीं मालूम

* यह लेख हमारे एक मित्र ने जिनका नाम यहां पर प्रकट करने की आवश्यकता नहीं परन्तु जिनके कई लेख ए० एस० के हस्ताक्षर से कई वर्ष पहिले हिन्दी प्रदीप में निकल चुके हैं, सन् १९०३ में लिखा था। समयानुकूल जान उसे हम यहां प्रकाशित करते हैं। सं० —

देता। कवि ने इस पद को नीचे लिखे हुये छंद में कहा है।

"कह गिरधर कविराय बात चतुरन के ताईं।
करतूती कहि देत आप कहिये नहिं साईं"॥

मेरी समझ में तो कवि गिरधर को इस छन्द का दूसरा पद यों लिखना था "अपने मुँह कहि देय और कहवै चहे नाहीं" जिसमें काफ़िया भी मिल जाय और बात भी तौलो तो बावन तोला पाव रत्ती।

आज कल तनिक चारो ओर आंख खोल कर देखने ही से मालूम हो जायगा कि मेरी लिखी पंक्ति गिरधर कवि के पद से कहीं सच और ठीक है। भला आप स्वयं ही देख लें कि इस पृथ्वी के जङ्गल में ऐसा कौन सा मार्ग है जिस पर मनुष्य अच्छी तरह और सही सलामती से बिना दूसरों को अपने आने का समाचार दिये हुये चल सकता है। यदि आपको दुनियाँ का कुछ भी तजुरबा है तो आप स्वयं हमारे कथन का अनुभव कर सकते हैं; और यदि वे फँसे चूहे की भांति अभी आप इस दुनियां के पिञ्जड़े में नहीं फँसे तो जिस समय कभी न कभी फँस जायेंगे अनुभव कर लेंगे। अजी! बिना अपने मुंह मियां मिट्ठू बने दुनियां का कोई काम चल ही नहीं सकता; और उससे बढ़ कर कोई भी मूख नहीं जो इस बात की आशा रखता हो कि और लोग उसके गुणों को अङ्गीकार कर उसका सम्मान करेंगे।

कदाचित् आपको कुछ कविता का भी चसका होगा; अभी अपने उभड़ते हुये जोशों में आपके ख्यालात न जाने क्या २ क़िले बांधते होंगे। आपको यही ध्यान होगा कि आप अच्छे कवियों में गिने जाने लगेंगे; और जब आप अपनी कही हुई कविता बहुत लोगों की कविता से मिलाते हैं तो आशा भी दृढ़ हो जाती है। आप यद्यपि लाज के मारे सिवाय दो एक मित्रों के और किसी को अपनी लिखी हुई कोई वस्तु दिखलाते भी नहीं तथापि यह भरोसा है कि किसी समय उत्कृष्ट कवियों में आप गिने जाने लगेंगे और लोग स्वयं आपको जान जायंगे और आपके लेखों की प्रशंसा करेंगे। अस्तु यह तो सब आप के हौसिले रहे; परन्तु मित्रवर! आप यह नहीं जानते कि किसको इतनी ग़रज़ पड़ी है जो आप को एक हीरे के अनुसार घूरे से ढूंढ निकाले। अजी क़दर जभी होगी जब आप भी नव विकसित लज्जावान् सुन्दरी का ढङ्ग छोड़ धृष्ट और लज्जारहित काञ्चनी के समान भड़कीला शृङ्गार कर लोगों को मोहित करने का यत्न करेंगे। अच्छे २ कवि कोने ही में पड़े रह जाते हैं, कोई पूछता तक नहीं और ढोंग रच कर साफ़ चिकने कागज़ पर सुन्दर टाइटिल पेज के भड़कीले गहनों से ढकी हुई कुरूप से कुरूप काफ़ियाबन्दी के लोग आशिक़ हो जाते हैं और उसको मनोहारिणी कविता मानने लगते हैं। सुनिये! जो आप कवि बन कर प्रशंसा चाहते हैं तो दो एक बात सलाह की मेरी भी मान लीजिये। पहले तो बड़े २ अमीरों की जब तब प्रशंसा किया कीजिये। दूसरे कभी इस बात का भूल कर भी दावा न कीजिये कि आप कुछ पढ़े लिखे हैं क्योंकि ऐसा कहने से आपकी प्रतिभा में फ़र्क़ आ जायगा। सदा कालिदास और शेक्सपियर के समान आशुकवि होने का दावा बांधिये; तीसरे सदा इस बात को सिद्ध करने का यत्न कीजिये कि व्याकरण और पिङ्गल कोई वस्तु नहीं हैं; क्योंकि इनके बनाने वाले भी तो आख़िर मनुष्य ही न थे! चौथे जब कोई आप काव्य रचैं तो उसको किसी न किसी राजा वा महाराजा को अवश्य समर्पण कीजिये और पुस्तक में अपनी फ़ोटो भी दे दीजिये; इसमें दो लाभ होंगे एक तो आपकी सूरत से बहुत लोग परिचित हो जायेंगे और आपका नाम बहुत प्रसिद्ध हो जायगा, दूसरे यदि लेख में कुछ न हुआ तो कदाचित् लोग आपकी सूरत ही देख कुछ खुश हो जायं। हां! यदि आप कुरूप

हो तब तो बात ही और है। फ़ोटो देने में ग्राहकों का भी इतना लाभ हो जायगा की वे बेचारे यही समझ अपने दिल को ढाढ़स दे लेंगे कि चलो यदि पुस्तक रद्दी है तो एक तसवीर ही बच्चों के खेलने के लिये हाथ लगी। इतनी बातें तो सीख लेना मानो कविता की पहिली सीढ़ी पर पैर रखना है। यदि आप में इतनी समझ और चतुराई नहीं है कि इन सब बातों को सीख सकें तो आपके लिये यही भलाई है कि चुपके एक कोने में पड़े रहें और अङ्गरेज़ी कवि ग्रे (Gray) की इन पंक्तियों को याद कर अपने मन को ढाढ़स दें।

"Full many a gem of purest ray serene
The dark unfathomed caves of ocean bear;
Full many a flower is born to blush unseen,
And waste its sweetness on the desert air."

फिर आप कदाचित् यह सोचेंगे कि अच्छा यदि कवि नहीं हो सके तो समालोचक ही सही। परन्तु यहां भी यह बात याद रखिये कि बिना अपने मुंह बड़ाई किये काम नहीं चलेगा। सब के पहले समालोचक बनने के लिये आप को यह सिद्ध करना पड़ेगा कि आप त्रिकालज्ञ और वृहस्पति के भी पितामह हैं। दूसरी बात यह है कि आप में दो बड़े भारी गुण होने चाहियें—एक खुशामद करना और दूसरे गाली देना; क्योंकि जब तक आप अपने सहायकों की खुशामद न करेंगे और उनके विपरीत होने वालों को गाली न देंगे आपको कोई समालोचक न समझेगा। तीसरी बात जो समालोचना करने में स्मरण रखने के योग्य है, और जिससे आपके चित्त की यह अभिलाषा भी पूरी हो जायगी कि आप जगत में प्रसिद्ध हो जांय, यह है कि जिसकी मनुष्य बड़ाई करें आप उसकी अवश्य बुराई कीजिये। इसमें आपकी तबियत की originality साबित होगी। और पाठकगण, क्योंकि उनमें से अधिकतर ऐसे ही होते हैं जो सुनी सुनाई कहते हैं, आपकी अवश्य प्रशंसा करेंगे। समालोचना करने में इस बात का भी ध्यान रखिये कि ख़ूब गाली गलौज करना समालोचना का आभूषण है। इसके बिना समालोचना वैसी ही है जैसे बिना अलङ्कार की कविता!

इससे भी निराश हो आप कदाचित् उपन्यास लिखने का हौसला करें तो यहाँ भी यह याद रखिये कि बिना अपने मुंह मियां मिठ्ठू बने काम नहीं चलेगा। जब तक आप अपने उपन्यासों के भांति २ के लम्बे चौड़े विज्ञापन न देंगे और उनके टाइटिल पेज पर सूचना न देंगे कि "एक सौ साढ़े पचास पुस्तकों के रचयिता मिस्टर अथवा पण्डित अथवा बाबू अमुक अमुक लिखित" तब तक कोई भी न पूछेगा कि आप किस कोने में पड़े हैं। इसलिये यदि आप उपन्यास लेखकों में अपना भी नाम दर्ज कराना चाहते हैं तो जो बातें कि मैं बतलाता हूं उनका अवश्य प्रतिपालन कीजिये। एक तो सिवाय झूठ और असम्भव बातों के कभी कोई बात अपने उपन्यास में ऐसी न लिखिये जिससे यह जाना जाय कि लेखक कोई बात अपने तजुरबे की और सत्य कह रहा है। ऐसा करने से आपकी प्रतिभा और Imaginative faculty की बड़ी प्रशंसा होगी और बात भी यही है कि उपन्यास में जितना ही झूठ हो उतना ही वह अधिक रोचक होता है। और फिर झूठ बोलने में हानि ही क्या? उपन्यास का लिखना अदालत में गवाही देना थोड़े ही है जहां जो कुछ मुंह से निकले सब सत्य ही हो? उपन्यास लेखक तो अपनी अदालत का स्वयं मालिक है। और मालिक को झूठ बोलने में कोई बुराई नहीं क्योंकि जितने क़ानून बनते हैं सब छोटे ही लोगों के लिये बनते हैं, कानून बनाने वाला अपने कानून से कभी बद्ध नहीं होता। उपन्यास लेखक भी यदि झूठ लिखें तो बुराई ही कौन सी क्योंकि वे तो प्रायः अपने उपन्यासों में किसी न किसी भांति यह कह कर

कि झूठ बोलना बुरा है अपना क़ानून तो बना ही देते हैं, परन्तु इस कारण से कि वे स्वयम् अपने उपन्यास की कचहरी के अधिष्ठाता हैं वे आइन और Act से बद्ध नहीं हो सकते। दूसरी बात जो आपको सदा स्मरण रखना चाहिये वह यह है कि भूल कर भी आप इस बात का दावा न बांधे कि आपने शुद्ध भाषा लिखी है क्योंकि कहीं पाठकों को यह मालूम होगया कि किसी उपन्यास लेखक ने कुछ शुद्ध हिन्दी लिखने का हौसला किया है तो दस पांच कापी भी बिकना दुर्लभ हो जायगा और समाचार पत्रों के सम्पादक जुदा ज़ीट उड़ावेंगे। उपन्यास लिखने में एक और बात याद रखना अत्यावश्यक है। वह यह कि किसी दो अध्याय में कुछ भी लगाव न हो। एक अध्याय लिख कर उसकी शृंखला दूसरे अध्याय में कभी न रक्खे किन्तु यह लिख कर चट सीन बदल दे कि "अब हम अपने पाठकों को यहां से ले चल कर एक ऐसा सरसब्ज़ मैदान दिखाते हैं" इत्यादि। इस रीति का अनुकरण करने से नावल लिखने में ल्याक़त और माद्दा मालूम होगा। इसमें एक लाभ यह है कि पाठक बेचारा क़िस्सा भूल जायगा और उसकी असंगत बातों पर भी ध्यान न दे सकेगा। इन बातों के अतिरिक्त जो बातें कि कवि के लिये लाभदायक बतलाई गई हैं उनका उपन्यास लेखकों को भी अनुकरण करना चाहिये, जैसे फ़ोटो का किताब में देना इत्यादि।

अब आप कदाचित् यह सोचेंगे कि कुछ न सही तो चलो किसी समाचार पत्र के संपादक ही बन बैठें क्योंकि इससे आसान काम दूसरा काहे को मिलेगा, और इसमें कुछ अधिक पाण्डित्य की भी आवश्यकता नहीं! परन्तु यहां भी आप यही पाइयेगा कि मेरी वही कहावत ठीक फबती है "अपने मुंह कहि देय और कहवै चहे नाहीं"।

जब आप कवि, समालोचक, उपन्यास लेखक कुछ भी नहीं हो सकते तो आप कैसे आशा कर सकते हैं कि आप सम्पादक होजायंगे क्योंकि सम्पादक में इन तीनों के गुण पराकाष्ठा को पहुंचने चाहिये अर्थात् सम्पादक को कवि के समान ख़ुशामदी, समालोचक के समान गाली गलौज करने और लड़ने वाला, और उपन्यास लेखक के समान झूठ और व्यर्थ बातें बनाने वाला होना चाहिये। इन सब के अतिरिक्त सम्पादक में एक गुण यह और होना चाहिये कि वह हिम्मती और चालाक हो। मसल मशहूर है कि "नाई छत्तीस कुएँ का पानी पीता है" परन्तु सम्पादक बनने के लिये तो सैकड़ों कुओं का पानी पीना पड़ता है। बिना सैकड़ों जगह घूमे और सैकड़ों कुओं का पानी पिये हुए सम्पादक बेचारा एक ग्राहक भी नहीं कर सकता।

अब तो मैं समझता हूं कि आपके ध्यान में यह बात अच्छी तरह आगई होगी कि गिरधर कवि का यह पद "करतूती कहि देत आप कहिये नहिं साईं" बिलकुल पोच है। आप दुनियां में चाहे जो काम करना चाहें आप यह सदा पाइयेगा कि बिना अपनी श्लाघा किये काम नहीं चलेगा। अस्तु इतनी नसीहत आप के लाभ के लिये दे अब मैं आप से बिदा होता हूं और अन्त में पाठ की भांति याद करने के लिये दो सतरें भी लिखे देता हूं।

"कहैं चतुर कविराय, बात मूरख के ताहीं।
अपने मुंह कहि देय, और कहवै चहे नाहीं॥

इङ्गलैण्ड से हमें क्या शिक्षा मिल सकती है?*

प्रोफेसर मैक्समूलर ने "इण्डिया, ह्वाट कैन इट टीच अस ?-(भारतवर्ष, उससे हमें क्या शिक्षा मिल सकती है ?)" विषयक अपने व्याख्यानों में उन सब बातों का अति पटुतया वर्णन किया है, जिनको कि यूरोप के क्रिश्चियन लोग भारतवर्ष से सीख सकते हैं; परन्तु किसी ने इस बात का पूर्णतया वर्णन अब तक नहीं किया कि इङ्गलैंड हम, भारतवासियों, को क्या शिक्षा दे सकता है।

प्रथम और गुरुतम शिक्षा जिसे कि हम अङ्गरेज़ों से ग्रहण कर सकते हैं, उनकी राष्ट्र सम्बन्धी संघीभूत स्वार्थपरता है। अङ्गरेज़ बड़े ही स्वार्थपर होते हैं। इङ्गलैण्ड के ईसाई निवासियों से व्यक्तिगत नहीं, किन्तु राष्ट्रीय, अथवा जिसे कहते हैं "इनलाइटेण्ड-(शिक्षाजनक)" स्वार्थपरता की शिक्षा लेने की हमें आवश्यकता है। सभी लोगों ने इङ्गलैण्ड को स्वार्थपर ठहराया है। स्वयं उन्हीं ने इस बात को स्वीकार किया है। इसके विपरीत भारतवासी संघशः स्वार्थपर नहीं हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यहाँ पर स्वार्थी व्यक्तियों की कमी नहीं है परन्तु स्वार्थपरता भारतवासियों का संघीकृत गुण किम्बा अवगुण नहीं है।

भारतवासी प्रायः आगामी जीवन अर्थात् परलोक का ही विशेष विचार करते हैं, सांसारिक कार्यों पर वे ध्यान नहीं देते। इसके विपरीत इङ्गलैण्ड देश निवासी इस संसार में अपनी स्थिति को उन्नततर करने ही में अपने सारे विचार, अपनी सारी शक्तियाँ, लगा देते हैं। हमारी सम्मति में, इस बात में भारतवासी बिना किसी क्षति के, प्रत्युत सलाभ, इङ्गलिश जाति से शिक्षा ले सकते हैं। भारतवासियों के गम्भीर, आध्यात्मिक स्वभाव में, ईसाई जगत् के इहलौकिक भाव के उद्दीपक आभास का होना अत्यावश्यक है। केवल तब ही, इस संसार में, वे अपनी स्थिति को सुरक्षित रखने में सफल होंगे।

इस राष्ट्रीय स्वार्थपरता और संसारनिष्ठा से बिलकुल मिलता जुलता, अङ्गरेज़ों में एक दूसरा गुण है "पेट्रिआटिज़्म-स्वदेशानुराग"। संस्कृत भाषा में इस पेट्रिआटिज़्म शब्द का समानार्थ वाची कोई शब्द नहीं है। निस्सन्देह अर्वाचीन काल के नूतन गढ़े हुए शब्दों का विचार न करके ही हम ऐसा कहते हैं। भारतवासियों में स्वदेशानुराग के भाव का अभाव उनकी ग्रामीय-समाज-पद्धति [Village community System] के कारण ही बतलाया जाता है। परन्तु हमें यह जान पड़ता है, कि स्वदेशानुराग का अभाव यहाँ पर इस कारण है कि प्राचीनकाल में भारतवर्ष में कभी भी जीवन निर्वाह का युद्ध इतना तीक्ष्ण नहीं रहा है। शिलर (Schillor) का यह वाक्य मिथ्या नहीं है कि "संसार मन्दिर केवल भूख और प्रेम की प्रवृत्ति के आधार पर निर्मित है।" भूख के वेग का यही अभाव प्राचीन भारत में स्वदेशानुराग-पेट्रिआटिज़्म-के अभाव का कारण-स्वरूप था। इसके विपरीत, महात्मा बुद्धदेव और उनके शिष्यों द्वारा अति प्रचण्डता के साथ उपदेश की गई, प्रेम की यही प्रवृत्ति-केवल मनुष्य मात्र के ही ऊपर नहीं, सारे प्राणि वर्ग ही के ऊपर प्रेम करने की प्रवृत्ति-पाश्चात्य मत के स्वदेशानुराग की राह में अड़चन स्वरूप हो गई थी। क्योंकि अन्ततः, यह स्वदेशानुराग तो उसी स्वार्थपरता का नाम है, जो कि एक व्यक्ति अपने राष्ट्र के लिये अनुभव करता है। अपने राष्ट्र का किञ्चिन्मात्र भी उपकार करने के लिये, पश्चिमीय देशभक्त (पेट्रिअट) दूसरे

* मूल लेख ख्रिष्ट्रीय सम्वत् १८९७ में "इण्डो-ए'ग्लियन" नामधारी किसी व्यक्ति द्वारा लिखा गया था; और फ़ेब्रूवरी १६०८ के माडर्न रिव्यू में वह प्रकाशित हुआ था।

मनुष्य का गला काटने में भी सङ्कोच नहीं करता। स्वदेशानुराग के इसी इङ्गलिश आशय के अनुसार क्लाइव देशभक्त था, वारिन हेसटिंग्ज़ देशभक्त था; और लार्ड डलहौसी भी देशभक्त था; क्योंकि उन सभों ने दूसरे राष्ट्र का नाश कर, अपने राष्ट्र को समृद्धिशाली किया था।

भारतवासियों के लिये यह नितांत आवश्यक है कि पश्चिमीय ईसाई राष्ट्रों से वे इस स्वदेशानुराग की शिक्षा को ग्रहण करें। पुराना समय अब नहीं रहा, पुरानी रीतियों में अब परिवर्त्तन हो गया है। जीवन निर्वाह के युद्ध में, जो आज दिन संसार में बड़े ज़ोर शोर से प्रचलित है, भारतवासी यदि स्वदेशानुराग के भाव की अभिवृद्धि नहीं करेंगे, तो संभव है कि वे उन्मूलित कर दिये जांय। यही स्वदेशानुराग उनकी आधुनिक दीन, दुःखित दशा का शोधन करने के लिये प्रोत्साहक होगा।

डीन रैमसे (Dean Ramsay) लिखता है,—"स्वदेश प्रेम मनुष्यों के हृदयों में अवश्यमेव अच्छे भाव उत्पन्न करेगा, क्योंकि उसके द्वारा उनके मन में अपने कल्याण और उन्नति करने की अभिलाषा उत्पन्न होगी। आदरणीय और उदार चरितों के साथ बांधत्व का दावा करने से, किसी अंश में उनके सजातीय होने का अभिमान करने से, कम से कम यह तो अवश्य समझा जायगा कि महान् और सत् गुणों पर वे कुछ मोल ठहराते हैं।

जहाँ नित्य प्रति अनेकों कारण उठा करते हैं जिनके द्वारा कि विषम बैर भाव और प्रचण्ड विवाद उत्पन्न होते हैं; जहां नित्यप्रति हम देखते हैं कि लोगों के हृदयों के मात्सर्य्य और विरक्ति के बीच में पड़ कर सहज स्नेह के दृढ़तर बन्धन भी टूट जाते हैं निश्चय ही ऐसे संसार में यह भाव अभिवर्धित किये जाने योग्य है।

"अतएव स्वदेश प्रेम का हमें अवश्य पक्ष समर्थन करना चाहिये केवल स्वाभिमान अथवा रस भाव (सेण्टिमेण्ट) के वशीभूत होकर ही नहीं, किन्तु एक सिद्धान्त मान कर, जिसकी प्रवृत्ति निस्सन्देह परोपकार शीलता और साधु-भावों की उत्पादक है। इस पक्ष के समर्थन करने में हमें कुछ भी सङ्कोच नहीं, चाहे ऐसा करने से यह दोष हम पर भले ही लगाया जाय कि केवल राष्ट्रीयता की उमंग में आकर ही हम ऐसा कह रहे हैं।"

भारतवासियों को इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि स्वदेशानुराग के भाव को दूसरे को लूट लेने की बुद्धि से वियुक्त कर—वे परिवर्धित करें। कदाचित् यही गुरुतम शिक्षा है जो इङ्गलैण्ड से हमे मिल सकती है।

वीर-पूजा एक दूसरी बड़ी शिक्षा है जिसे इङ्गलैण्ड हमें दे सकता है। अँग्रेज वीर-पूजकों की जाति हैं। अपने महापुरुषों की उनकी जीवनावस्था में तो वे पूजा करते ही हैं; और मरणोपरान्त उनकी स्मृति बनाये रखने के लिये भी वे उपाय करते हैं। हम, भारतवासी, नहीं जानते कि किस प्रकार अपने महापुरुषों का आदर किया जाता है। "पास्ट और प्रेज़ेण्ट—(भूत और वर्त्तमान)" नामक अपने ग्रन्थ में महाशय कार्लाइल वीर-पूजा की इस प्रकार व्याख्या करते हैं,—

"वीर-पूजा सब प्रकार की पूजा, और सच्ची पूजा और सब प्रकार की श्रेष्ठता का मूल, अन्तिम भाव और पराकोटि है। * * * संसार के भिन्न २ काल में भिन्न २ प्रकार से जाकर, वीर-पूजा मनुष्यों के सांसर्गिक कार्यों की आत्मा है। उसका अच्छी तरह से करना, अथवा बुरी तरह से करना इस बात का यथार्थ प्रमाण है कि संसार के कार्यों में कितना हित और अहित हो रहा है।"

उक्त ग्रन्थकार फिर लिखते हैं—

"महापुरुष ही मनुष्यों के नेता हुए हैं; वे पथ-प्रदर्शक, आदर्श एवं विस्तृत भाव में जो कुछ कि साधारण जनसमूह करने या पाने का प्रयत्न करते थे, उन सब के उत्पादक हुए हैं। * * * किसी ही महापुरुष के जीवन को, अपूर्णतया ही देखने से, कुछ न कुछ शिक्षा हमें अवश्य मिलती है।"

इङ्गलैण्ड में यदि कोई छोटा सा भी मनुष्य किञ्चिन्मात्र प्रतिष्ठा पाने का कार्य करता है, तो उसके लिये स्मारक क्या उसकी प्रतिमाएँ तक स्थापित हो जातीं हैं। परन्तु हम लोगों ने अपने यहां के महापुरुषों की स्मृति को हरी बनाये रखने के लिये क्या किया है? क्या यह खेद की बात नहीं है कि अपने मृत पुरुषों का आदर करने के लिये हमने कुछ भी नहीं किया है? अर्वाचीन भारत में राममोहन राय से बढ़ कर कोई महापुरुष नहीं हुआ है। भारतवासियों को यह विचार कर लज्जित होना चाहिये कि उन्होंने उनकी स्मृति को स्थिरीकृत करने के लिये कोई भी उचित उपाय नहीं किया है।

इङ्गलैण्ड संसार का सब से अधिक धनवान् देश है। उसकी साम्प्रत समृद्धि अवस्था उस देश में होने वाले व्यवसाय और शिल्पकर्म, उसके विदेशी व्यापार, और इन सब से बढ़कर अङ्गरेज़ी जाति की साहसी प्रकृति ही के कारण है। इसके विपरीत भारतवर्ष संसार का निर्धनतम देश है। भारतवर्ष में खनिजों और उद्भिजों की बहुतायत है, परन्तु पर्याप्त मूल-द्रव्य की कमी के कारण वे संवर्धित और उपयोजित नहीं किये जा सकते। भारतवासियों को अपने देश को धनी बनाने का यत्न करना चाहिये।

यह अभियोग बहुत कुछ सच है कि भारतवर्ष के आधुनिक दारिद्र्य का मुख्य कारण उसका इङ्गलैण्ड के साथ का सम्पर्क ही है। भारतीय कोटीश्वर फैक्टरियों अथवा अन्यान्य अध्यवसाय सम्बन्धी कारबारों में अपना द्रव्य विनियोग करने का साहस नहीं करते, क्योंकि वे देख रहे हैं कि मैंचेस्टर और डण्डी के ईसाई जन हितैषी किस प्रकार अपनी शक्ति भर भारतवर्ष के उत्तिष्ठमान रुई और जूट के अध्यवसायों को न बढ़ने देने का यत्न कर रहे हैं। ये ईसाई विश्व-सुहृद् भारत के अध्यवसायों को न बढ़ने देने के प्रयत्नों में सफल मनोरथ भी होते हैं (जिस प्रकार से कि पिछले वर्षों में वे होते रहे हैं।) लार्ड लारेन्स ने लिखा था:-

"इन बातों में भारतीय सरकार को यथार्थ न्याय कार्य करने में बड़ी कठिनाई है। यदि कोई ऐसा कार्य किया जाता है, अथवा करने का यत्न किया जाता है, जिससे कि भारतवासियों को लाभ पहुंचे, तो बड़ा हाहाकार मच जाता है, जो इङ्गलैण्ड में प्रतिध्वनित होता है, और वहां पर उसे सहानुभूति और सहारा मिलता है।"

नेपोलियन के कथनानुसार अंग्रेज दूकानदारों की जाति है। फिर भला क्या यह कभी भावनीय हो सकता है कि भारतवासियों को अपने कपड़े और अपनी आवश्यकता और सुख साधन की सामग्रियों को अपने हाथ निर्माण करने के लिये प्रोत्साहित कर वे अपने पैरों पर स्वयं कुल्हाड़ी चलावेंगे? वे क्रिश्चियन मिशेनरी और एंग्लो इंडियन जो भारतवासियों में साहस की प्रकृति के अभाव के लिये उन्हें ताना देने में कभी नहीं थकते उपर्युक्त बातों पर विचार करें और फिर बतलावें कि क्या भारत को अपने अध्यवसाय और फैक्टरियों द्वारा धनी हो जाने का कोई भी अवसर है। पर चाहे जो हो भारतवासियों को भग्नोत्साह नहीं होना चाहिये। यदि स्वदेशानुराग का कुछ भी मतलब है तो उन्हें देश में बनी हुई वस्तुओं का व्यवहार कर देशोन्नति में अग्रसर होना चाहिये।

अंग्रेजों के समान एक संसार की छुटी जाति से सारल्य और सत्यशीलता में उपदेश ग्रहण करने की चेष्टा करना भूल है। दूसरे राष्ट्र के साथ व्यवहार में अंग्रेज चाहे जिन दोषों का अपराधी हो, अपनी जाति के लिये तो वह देवता ही है। उसके स्वभाव के इस लक्षण की प्रतिस्पर्धा करने का हमें यत्न करना चाहिये। अपने भारतवासी भाइयों के साथ हमें मिल कर खड़े होना चाहिये राष्ट्रीय उन्नति के पक्ष को सहायता देने के लिये हमें यथा सामर्थ्य यत्न करना चाहिये और परस्पर द्वेष बुद्धि रख कर एक दूसरे का गला काटने के भाव का हमें एक दम परित्याग करना चाहिये।

ये कुछ शिक्षाएँ हैं जिन्हें इङ्गलैण्ड से सीखने का हमें यत्न करना उचित है।

"कुञ्ज"

धर्म और राजनीति।

जिस परमपवित्र सनातन आर्य धर्म को मानने वाली आर्य जाति ने करोड़ों वर्ष पर्यन्त समस्त भूतल पर राज्य शासन किया जिस जाति की माननीय धर्म्म पुस्तक मिताक्षरा आदि के आधार पर राज्य संचालन की व्यवस्था (क़ानून) निर्धारित कर आज दिन भी विदेशी जन भारत का शासन कर रहे हैं, कितने शोक सन्ताप और दुःख की बात है कि वही आर्य्य जाति अपने धर्म्म से बहिर्मुख हो आज यह कह रही है कि धर्म्म या धार्म्मिक सभाओं से और राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है।

हम बल पूर्वक कह सकते हैं कि वह धर्म्म धर्म्म नहीं है जो राजनीत से शून्य हो और वह राजनीति राजनीति नहीं जो धर्म्म शून्य हो। धर्म्म और राजनीति का शरीर और आत्मा का सा सम्बन्ध है। जगदाधार परमात्मा परमेश्वर स्वयं वेदों में पुकार कर कह रहा है कि "बाहू में बलमेन्द्रिय हस्तौ में कर्म्म वीर्य्यं आत्मा क्षत्र मुरो मम। य० अ० २० मं० ७

(बलं में बाहू) बल मेरा बाहु और (इन्द्रियं हस्तौ) अर्थात् जो उत्तम पराक्रम युक्त इन्द्रिय और मन है वह मेरा हाथ अपिच (आत्माक्षत्रमुरोमम) जो राज धर्म्म-शौर्य्य धैर्य्य और हृदय का ज्ञान है वही मेरे आत्मा के समान है।

अब कहिये वेदों पर विश्वास रखने वाला कौन ऐसा धर्म्माभिमानी है जो जगदात्मस्वरूप राष्ट्र धर्म्म की उपासना से दूर रहना चाहेगा? और फिर धर्म्म का लक्षण कहते हुये कणादि मुनि ने जो यह कहा है कि (यतोऽभ्युदय निःश्रेयः ससिद्धिः स धर्म्मः) जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस (मोक्ष) दोनों सिद्ध हों वह धर्म्म है उस पर विचार करते हुये क्या कोई कह सकेगा कि हम अभ्युदय की आकांक्षा न रख कर केवल मोक्ष मात्र के अभिलाषी रह कर ही धर्मात्मा कहलायेंगे? और यदि अभ्युदय की आकांक्षा मनुष्य की एक स्वाभाविक आकांक्षा है और अपनी उस अभ्युदायक आकांक्षा को वह धर्म्मतः पूर्ण करना चाहता है तो उसे सबसे पहिले राजाधिराज चक्रवर्ती सम्राट परमेश्वर के समक्ष होना पड़ेगा और उसकी ही प्रेरणा के अनुसार कार्य्य करना मनुष्य का कर्त्तव्य होगा। इस लिये जब हम वेदों को उठा कर देखते हैं तो स्पष्ट शब्दों में यह ईश्वरीय निर्देश पाते हैं कि "यत्र ब्रह्मंच क्षत्रंच सम्यञ्चौ चरतः सह। तं लोकं पुण्यं यज्ञेषं यत्र देवा सहाग्निना॥ य० अ० २० मं० २५ अर्थात् जिस देश में उत्तम विद्वान ब्राह्मण और विद्वान शूरवीर क्षत्री लोग सब मिलके राजकीय कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वही देश धर्म्म और शुभ क्रियाओं से संयुक्त होकर समृद्धि प्राप्त करता है।

इसी प्रकार शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में भी यही लिखा मिलता है कि ब्रह्मवै ब्राह्मणः क्षत्रं राजन्यः तदस्य ब्रह्मणा च क्षत्रेण चो भयतःश्री परिगृहीता भवति। जो जितेन्द्रिय वेदादि का जानने वाला है वह ब्राह्मण और जो इन्द्रियों को जीत कर शूरतादि गुण युक्त श्रेष्ठवीर पुरुष स्वभावतः क्षात्र धर्म्म का आकर होता है वही क्षत्री है। ऐसे ब्राह्मण और क्षत्रियों की सम्मिलित शक्ति से ही राज लक्ष्मी परिगृहीत होती है।

राजनीति से पृथक रहने वाले धार्मिक मन्य महापुरुषो! यदि तुम वेदों को मानते हो और यदि तुम्हारा सच्चा विश्वास परमेश्वर पर है तो हृदय पर हाथ रख कर कहो तो सही कि ब्रह्माण्ड के अधिपति राजाधि-

राज सम्पूर्ण सृष्टि के सम्राट जगदीश्वर के राज्य में प्रजा समान उसके द्वारा परिपालित होकर उसकी आज्ञा को न मानने में तुम कितना बड़ा पाप करते हो।

चिर प्रतिष्ठित आर्य्य जाति के समुन्नत सत्पुरुषो! उस न्यायकारी जगदाधिराज के समक्ष कपटी राजा की प्रजा के समान व्यवहार मत करो। जिस प्रेम के साथ उसने "मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे" पद प्रकाश कर तुम्हें सबको मित्र की दृष्टि से देखते रहने का विश्वास दिलाया क्या उसी प्रकार उसने सम्पूर्ण भूतल पर सर्वाधिकार करने के लिये "त्रीणि राजानां पुरुणि परिविश्वानि भूपथः सदांसि" इत्यादि वेद मंत्रों में यह नहीं प्रकाश कर दिया कि विद्योन्नति, धर्म्म प्रचार और राज काज के लिये तीन प्रकार की सभा संगठित कर उसको ही राजा मानने और उसके ही आधीन समस्त आभ्युदयिक सिद्धियों को सिद्ध करने का स्पष्ट उपदेश नहीं किया?

क्या तुम्हें अपनी वर्त्तमान दशा का अवलोकन करके भी ब्राह्मणादि सद्ग्रन्थों के "निद्र्वै गभोराष्ट्रं यसोराष्ट्र मेव विशिया हन्तीत्यादि वाक्यों पर विश्वास नहीं?

हा!!! आर्य्य जाति! यदि तुम्हें अपने पूर्वजों का इतिहास स्मरण होता और उनके ही रीति नीति की लीक पीटने की तेरी बान पड़ी होती तौ भी तेरी आज यह दुर्दशा न होती। परन्तु नहीं तूने तो अपनी अकर्मण्यतावश अपने को सब से नीचे गिरा लिया है!!!

विज्ञानरहित बाइबिल और कोरान जब जिस ओर चले उधर ही उन्होंने अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया-माना कि तेरे गौमुखीमाला की बदौलत तेरे दिलों पर बाइबिल कुरान की हुकूमत आज तक न हो पाई परन्तु तौ भी सम्पूर्ण विद्याओं का भण्डार वेद तेरे हृदयस्थ होते हुए तेरा पद दलित होना सहा नहीं जाता! जिन बौद्धों को किसी समय तूने वेदों को हाथ में लेकर भारत से निकाल दिया उन्होंने द्वीपान्तरों में जा अपना स्वतन्त्र राज स्थापन कर लिया परन्तु हा!!! आज राजनीति शब्द की भय से तुम कोसों भागते हो।

अस्तु माना कि वर्त्तमान राजनैतिक आन्दोलन हेय है किन्तु हम उन्हें क्या कहते हैं जो वेदादि सद्ग्रन्थों को मानते हुये यह कहते हैं कि धर्म्म और राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं हैं?

प्रिय बन्धुगण! उस जाति का कभी कोई चिन्ह शेष नहीं रह सकता जो वेदों की आज्ञा के अनुकूल राजनीति को धर्म्म की आत्मा मान कर उसके सिद्धान्तानुसार जगत में व्यवहार न करै।

"द्वि"

एक जुआरी की आत्मकहानी।

[लेखक—श्रीयुत महादेव प्रसाद सेठ]

(१)

हे हे पाठकवृन्द सुनो मम आत्म कहानी,
यह कोरी बकवाद नहीं, है शिक्षा सानी।
यदि इससे कुछ लाभ हुआ प्रियवरो तुमारा,
तब जानैंगे हुआ परिश्रम सफल हमारा॥

(२)

मर्यादा मम मान्य पिता की सभी कहीं थी,
थी सम्पति भरपूर, हमैं कुछ कमी नहीं थी।
औ चलती दूकान शहर में एक बड़ी थी,
किन्तु हाय विद्या कुछ हमने नहीं पढ़ी थी॥

(३)

गीत वाद्य आदिक में दिवस बिताते थे हम,
दिन २ भर घर बाहर ही रह जाते थे हम।
देख हमारा चलन पिता होते थे क्रोधित,
माताजी भी दुखित हुआ करती थीं समुचित॥

(४)

वेद विनिन्दित जुआ बहुत भाता था हमको,
बुरे भले का ध्यान न कुछ आता था हमको।
शुभचिन्तक जो रहे हमें वे समझाते थे,
पर हम उनकी बात न कुछ मन में लाते थे॥

(५)

चुरा पिता का द्रव्य बक्स से लाते थे हम,
शत्रु रूप मित्रों के साथ उड़ाते थे हम।
देख लिया इक रोज़ पिता ने चोरी करते,
उस दिन से वे द्रव्य बक्स में कभी न धरते॥

(६)

हाथ हुआ जब तङ्ग अमित आकुलता छाई,
तब हमको दुर्भाग्य दैव ने युक्ति बताई।
हाय धर्म पत्नी का गहना गिरवीं रख कर,
करते संचित द्रव्य पहुंचते जाय जुए पर॥

(७)

किन्तु काम इस भांति कहां तक चल सकता था,
गहना गिरवीं हेतु कहां तक मिल सकता था।
क्या अधर्म की बेलि किसी ने फलती देखी,
काग़ज़ की भी नाव किसी ने चलती देखी॥

(८)

घर से दिया निकाल पिता ने क्रोधित होकर,
किन्तु असर नहिं हुआ तनिक उसका भी हमपर।
उक्त किसी की बात सत्य यह बतलाती है,
"संगति के अनुरूप बुद्धि भी हो जाती है"॥

(९)

इसी सोच में पूज्य पिता सुरधाम सिधारे,
हमने सोचा अहो आज दिन फिरे हमारे।
हमको मिलने लगा द्रव्य अब बिना परिश्रम,
इससे जारी रहा प्रथम सा मम जीवन क्रम॥

(१०)

तज घर का सब काम ऐश में दिवस बिताना,
माता जी की शिक्षा भी कुछ चित्त न लाना।
करना तनिक न खेद जुए में द्रव्य उड़ाना,
जनरव का भी ध्यान हृदय में नेक न लाना॥

(११)

धर्म कर्म था यही यही सर्वस्व हमारा,
भ्रम न ईश का हिए, सौख्य जो देने हारा।
पिता मृत्यु से दुखित २ लखि दशा हमारी,
माता जी ने करी फेर सुरपुर तैय्यारी॥

(१२)

बिगड़ी पा स्वातन्त्र्य और भी दशा हमारी,
बने हमारे मित्र आय सब कुटिल जुआरी।
शुभचिन्तक जो रहे उन्होंने आना छोड़ा,
किन्तु न हमने हाय जुए पर जाना छोड़ा॥

(१३)

निज ऐश्वर्य गँवाय हाय अब दीन हुए हम,
मान धाम आराम सभी से हीन हुए हम।
रही न जब दूकान कौन फिर मित्र हमारा,
कहो देय अब कौन दुःख में आय सहारा॥

(१४)

रहे न अब सामान स्वर्ग सुख देने वाले,
कहां ऐश आराम, पड़े भोजन के लाले।
यौवन धन अविवेक और प्रभुता ये चारों,
मिल करके करते हैं हाय अनर्थ हज़ारों॥

(१५)

महाराज नलकी हे मित्रो कथा पुरानी,
और युधिष्ठिर आदि नृपति की यदपि कहानी।
जानी थी सब तदपि न सुधरी हा! यह मेरी मति
नहीं छूटती कभी सहज में हा! कुकर्म रति॥

(१६)

सुहृद्वरो मम हाल ज़रा दै ध्यान विलोको,
वेद विनिन्दित कर्म किये का फल अवलोको।
दीप मालिका निकट जान यह शिक्षा मानो,
जुआ नहीं खेलेंगे हम ऐसा प्रण ठानो॥

भारतीय राष्ट्र के जन्मदाता।

भारतीय राष्ट्र को कौन खड़ा करेगा? यह निश्चय जानिये कि वे लोग इस कार्य के योग्य नहीं हैं जो 'एक-संयुक्त-भारत" की कल्पना स्वप्नवत समझते हैं। यह काम उनसे नहीं होगा जो अपने स्वार्थ की ओर सबसे अधिक ध्यान देते हैं। वे लोग इस कार्य को नहीं कर सकते हैं जिनके कानों में अभी तक संसार की आधुनिक उन्नति और अभ्युदय की खबर नहीं पहुंची या जो अन्य राष्ट्रों को उन्नति के शिखर की ओर चढ़ते देख कर भी स्वयं कुछ उद्योग करने को उद्यत नहीं होते। कूप मंडूकों से क्या आशा की जा सक्ती है। उनका कुवाँ तो संसार से भी बड़ा है? उन व्यक्तियों से भी राष्ट्र निर्माण की आशा नहीं की जाती है जो विश्वविद्यालयों की उपाधी (बी० ए० इत्यादि की डिग्री) को वास्तविक शिक्षा से अधिक समझते हैं और जो जोंक की तरह हिन्दू जाति के खून को चूसने वाली कुरीतियों को सुधारना वा छोड़ना नहीं चाहते हैं।

एक दूसरी श्रेणी के लोग वे हैं जो बेकार चुपचाप बैठे रहने को शान्ति और कार्य करने को घृणित कर्म समझते हैं। ये लोग अपने को शिक्षित वतलाते हैं किन्तु वे अपने पढ़े हुये इतिहासों के पाठों को भूल गये हैं कि भूमण्डल पर जितनी भी जीवित जाति हैं वे सब अपने ही पराक्रम और करतूत तथा स्वावलम्बन से उन्नत दशा को प्राप्त हुई हैं। इस कक्षा के लोग अपना समय, शक्ति और द्रव्य और लोगों की करुणा, दया, तथा सहानुभूति के पात्र बनने में व्यय करते हैं। क्या ऐसे लोग राष्ट्र के निर्माणकर्ता कहे जा सक्ते हैं? कदापि नहीं।

जिस भावी भारत-राष्ट्र के चिन्ह दृष्टिगोचर हो रहे हैं उसी राष्ट्र का सम्पादन भारत के उन पुत्रों के हाथों से होगा जो आखें खोल कर संसार की गति देखते आ रहे हैं जो, उन्नत देशों में स्वयं भ्रमण कर ज्ञान प्राप्त कर आये हैं और जो कि इस समय उन्नति के मन्दिर की ओर लपके जा रहे हैं। उन्हीं लोगों से यह आशा की जा सक्ती है जो देश काल और हानि लाभ का विचार करके अपनी संस्थाओं में परिवर्तन और संशोधन करने को तैयार हैं; जो अपने स्वार्थ के लिये नहीं वरन अपनी जाति के निमित्त जीवित हैं; जो जाति की भलाई के लिये अपना सर्वस्व त्यागने को तैयार हैं; जिनके दिल में सब स्वदेशबान्धव छोटे बड़े समान स्थान पाते हैं अर्थात् जो छोटे बड़े का विचार नहीं करते और जो अपने उच्च विचारों को अपने कार्यों में परिणत करते हैं।

आशाजनक चिन्ह बहुत से युवकों के मुख मण्डलों पर दृष्टिगोचर होते हैं। अब हमें यह देखना है कि जिन युवकों को ईश्वर की कृपा से अन्य उन्नतिशाली देशों में शिक्षा प्राप्त करने और उनकी संवृद्धि तथा सभ्यता देखने का अवसर मिला है वे घर लौट कर राष्ट्र के निर्माणकर्ता बनेंगे या नहीं? विद्यार्थी विदेश अधिकांश शिल्पीय शिक्षा निमित्त ही जाते हैं। यह याद रहे कि किसी विशेष व्यवसाय की शिक्षा पाने के पूर्व साधारण शिक्षा खूब होनी चाहिये। इसी विषय पर जातीय शिक्षा पर व्याख्यान देते हुए गतवर्ष कलकत्ते के जातीय विद्यालय में श्रीयुत कुमार स्वामी ने भी बड़ा ज़ोर दिया था कि यूरुप में शिल्पशिक्षा ग्रहण करने जाने से पहले साधारण शिक्षा भली भांति प्राप्त कर लेनी चाहिये।

आधुनिक भारतीय विश्वविद्यालयों में शिक्षा का असली उद्देश्य सफल नहीं होता है। शिक्षा का मुख्य कर्तव्य मनुष्य को मनुष्य बनाना अर्थात् उसका चरित्र संगठन करना है और इसी का हमारे विद्यालयों में अभाव है।

विलायत में पढ़ने वाले हमारे विद्यार्थियों को फेक्टरियों की बूही नहीं सूंगते रहना चाहिये वरञ्च अन्य जातियों के चाल ढाल उन्नति के कारण और अन्य मानुषिक गुणों का नीरीक्षण करते रहना चाहिये ताकि जब वे स्वदेश को लौट कर आयें तो अपने स्वदेश बान्धवों के हाथों पर पेन्सल थमा कर ही न रह जायें किन्तु उनके सामने अपने ज्ञान और अनुभव का भंडार खोल कर रख दें कि वे उनको विदेश यात्रा का लाभ उठायें।

इस समय यह बड़ी भूल होगी अगर हमारे नवयुवक पेन्सल दियासलाई आदि बनाने को ही अपना परमकर्तव्य व स्वदेश सेवा की पराकाष्ठा समझ बैठें। इस समय हमारे देश में शिक्षित लोगों की संख्या बहुत कम है। हम सब शिक्षित लोगों को मशीनें बनाना नहीं चाहते हैं। राष्ट्रों को मशीनें (कलें) नहीं बना सक्ती है वरंच केवल मनुष्य ही जातियां खड़ी कर सक्ते हैं। ठीक है फैक्टरी (पुतलीघर) चलाने से बहुत लोगों को रोटी मिलेगी! परन्तु याद रहे कि जातीय जीवन के लिये केवल रोटी ही काफी नहीं है। जातीय जीवन ज्ञान पर निर्भर है। यदि शिक्षित युवक सर्वसाधारण में ज्ञान फैला सकें तो वे स्वयं अपनी दशा सुधार कर उपयोगी काम करने लगेंगे। जब विलायत से शिक्षित लौट कर आवें और उनसे लोग पूछें कि "ओ भारत के युवको तुमने अन्य देशों में सभ्यता की शान देखी होगी उन बातों का अनुभव किया होगा जिनके कारण पाश्चात्य देशों के लोग स्वतन्त्रता से जीवन का ऐश्वर्य भोगते हैं जिसके कारण वे रात दिन आह्लादित रहते हैं हमें भी कुछ मन्त्र सिखाओ जिससे हम भी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें; ज्ञान प्राप्त कर सकें; अज्ञान और भ्रान्त धर्म रूपी अन्धकार को हटा सकें।" तब वे उन लोगों को यह उत्तर देकर निराश न करें कि 'हम से इन बातों से क्या मतलब हम तो पेन्सल बनाना सीख आये हैं। यदि तुम चाहो तो तुम्हें भी इस गूढ़ रहस्य को बतादें।"

बर्म्मा।

सर्व्वोत्तम पुण्य कर्म।

[लेखक-बाबू दामोदर सहाय सिंह।]

अतुलित धनों का स्वामी एक आदमी था नामी।
भण्डार चातुरी का अति उच्च मार्गगामी॥ १॥
सद्धर्म में थी निष्ठा त्यों बुद्धि भी खरी थी।
पर देख निज बुढ़ापा चिन्ता भी हर घरी थी॥ २॥
कर्मों को अपने ऐहिक वह खूब कर चुका था।
परलोक की तरफ अब अच्छी तरह झुका था॥ ३॥
ईश्वर भजन में लगकर दिन रात पुण्य करना।
था काम उसका केवल, नज़दीक देख मरना॥ ४॥
थे तीन उसके बेटे, उनको निकट बुला कर।
सम्पत्ति अपनी सारी सो बाँट दी बराबर॥ ५॥
पर एक रत्न ऐसा रक्खा अलग हटा के।
अति लाभ प्राप्त होवे बहुमूल्य जिसको पाके॥ ६॥
वह मणि नहीं था मानो अद्भुत प्रभा का घर था।
शोभा बड़ी निराली अत्यन्त ही सुघर था॥ ७॥
दिननाथ का शकल* था या चंद्र की कला थी।
तक़सीम करना उसका सचमुच बड़ी बला थी॥ ८॥
यह सोच कर पिता ने उसको अलग हटाया।
पुत्रों से अपने मीठे इस बैन को सुनाया॥ ९॥
"प्यारो, सुनो विचारो जो कुछ कि मैं सुनाता
इस रत्न प्राप्ति का मैं हूं रासता बताता॥ १०॥
एक मास की अवधि है तुम में से पुत्र कोई।
सर्व्वोच्च पुण्यकर्त्ता यह रत्न पावे सोई"॥ ११॥
एक दिन बड़ा जो बेटा अपने पिता से बोला।
"बाबू जी, पुण्य उत्तम मैंने किया अडोला॥ १२॥
एक जन निपट अपरिचित ने कर कड़ी सी छाती।
सौंपी थी कार्यवश हो मुझको बड़ी सी थाती॥ १३॥

---

* शकल = टुकड़ा।

स्वीकार पत्र के भी मुझसे उसने नहीं लिखाया।
इससे सहज में रुपये पच जाते, मैंने पाया॥१४॥
पर धन के विन बेचारा वह जिस समय में आया।
गिन २ के कौड़ी २ मैंने उसे चुकाया" ॥ १५ ॥
यह सुन के बाप बोला, "मैंने इसे विचारा।
यह काम न्याय का है, बेटा हुआ तुम्हारा ॥१६॥
इस भांति दूसरे दिन मँझला सुवन भी आके।
कहने लगा पिता से वृत्तान्त निज बुझा के॥१७॥
"एक दिन टहल रहा था मैं सुरसरी किनारे।
बालक नहा रहा था एक पास में हमारे ॥ १८ ॥
फिसले चरण अचानक गड़हे में जा पड़ा वह।
कुछ तैरना न जाने, था कष्ट में बड़ा वह ॥ १९॥
खाने लगा जो गोते जल चक्र के भँवर में।
एक पल में जान जाती झट कूद पड़ा पर मैं॥२०॥
कर धर के फेंका बाहर जल से निकाल मैंने।
उसको बचाया जोखिम में प्राण डाल मैंने ॥२१॥
माता को उसकी दुःखित रोती विलपती पाकर।
बालक का कर पकड़के पकड़ा दिया है जाकर॥२२॥
क्या पुराय कर्म उत्तम बाबू जी यह नहीं है?
इससे भी बढ़के कोई सत्कर्म क्या कहीं है ॥२३॥
बेटा की बात सुन कर बोला वह बूढ़ा ऐसे।
"हे पुत्र ऐसी बाणी कहते भला हो कैसे ?॥२४॥
उपकार कर्म यह जो तुम से किया गया है।
मानव हृदय की केवल स्वाभाविकी दया है"॥२५॥
यह सुन के बात मँझला चुपचाप सा खड़ा है।
तब तक कनिष्ठ भ्राता उस ओर आपड़ा है॥२६॥
बोला "पिता जी सुनिये मेरी भी कुछ कहानी।
एक रात मैंने पाया दुश्मन को अपने जानी॥२७॥
सोया था बेख़बर वह पर्वत शिखर पै ऐसे।
बिल्कुल अचेत बेसुध मुरदा पड़ा हो जैसे॥२८॥
गहरी भयावनी सी एक पास में थी खाई।
गिर मौत वाँ अटल थी करवट जहाँ फिराई॥२९॥
कर ख़ूब सावधानी मैंने उसे जगाया।
रक्षित जगह में लेजा करके उसे बिठाया" ॥३०॥
बूढ़ा गले लगा कर, "शाबाश पुत्र मेरे!"।
बोला "यह रत्न वर है अब भागही में तेरे"॥३१॥
हे पाठको, विचारो छोटी सी इस कथा से।
उपदेश क्या निकलता इस बाँट की प्रथा से॥३२॥
काँटा जो तुझ को बोवे तू फूल उसको बोना।
जैसा कोई करेगा वैसा ही उसको होना ॥ ३३॥

———

डाक्टर लूई कूने।

[लेखक-श्रीयुत पण्डित गौरचरण गोस्वामी।]

ऊपर आप जिस महात्मा का नाम पढ़ रहे हैं, उस मनुष्य ने संसार का बहुत ही उपकार किया है। अभी यह पुरुष जीवित है, पर इसका नाम सदा ही अमर रहेगा। जलचिकित्सा का जो सरल उपाय इस डाक्टर कूने ने निकाला है, वह अकथनीय है। इस मनुष्य के द्वारा ही जल-चिकित्सा का इतना प्रचार और विचार सुनने में आता है। "जल-चिकित्सा" तो अब नाम ही नहीं रहा, अब तो सब लोग उसे "कूनी की चिकित्सा" ही कहते हैं। इस महापुरुष का जन्म जरमनी में हुआ है और वहां के अन्नजल से ही उसकी उम्र बीती, और बीतेगी। वह वहां के "लेपिज़क" नगर में रहता है।

इस मनुष्य ने सिद्ध कर दिया है कि एक रोग की एक ही दवा होनी उचित है, जब कि सब रोगों का मूल भी एक है। इससे "जल-चिकित्सा" मात्र से ही सब रोगों को दूर करने की डाक्टर लुई "हांमी" भरते हैं। एक विद्वान ने तो यहां तक कह दिया था कि यदि डा० लुई के मत से और चिकित्सा से लोग चलें तो थोड़े दिनों में "भयानक रोग" यह शब्द ही कोश से निकाल देना पड़ेगा, अर्थात् कोई भी रोग "भयानक" न समझा जावेगा!

डा० लुई की चिकित्सा जितनी सरल है, उतनी न तो ऐलोपेथिक है न होमियोपैथिक न कोई दूसरी। इसमें दैनिक खर्च तो बिलकुल ही

नहीं है। एक बार के खर्च से भी बहुत कम पांच रुपये से ही वर्षों काम चलाया कीजिये, भला, इससे अधिक और क्या क़िफ़ायत होगी।

यह खेद की बात है कि युक्त प्रदेश, क्या सम्भवतः भारतवर्ष भर में लुई की चिकित्सा का कोई हास्पिटल नहीं, जिससे लोग उसकी अमूल्य, अद्भुत, गुणकारी, चिकित्सा से परिचित हों।

डा० लुई को खुद उनकी चिकित्सा से फल प्राप्त हुआ है, उस के द्वारा वे आज जीवित हैं।

लुई ने इसके सम्बन्ध में अङ्गरेज़ी में एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें उसकी चिकित्सा की विधि स्पष्ट रूप से दी गई है। बहुत दिन हुए तब हिन्दी के पुराने लेखक श्रीयुक्त काशीप्रसाद खत्री जीने इसका अनुवाद किया था। पर वह अब भी "केशवप्रसाद खत्री, सिरसा, ज़िला प्रयाग" के पते से मिल सकती है। दाम कदाचित् ।) हैं।

सुना है, द्विवेदी जीने भी इस विषय में कोई पुस्तक लिखी है पर मालूम नहीं वह कितने दामों में मिलती है। यह भी नहीं कह सकते कि वह अनुवाद है या नहीं।

देशभक्त होरेशस।

[लेखक—श्रीयुत पं० सत्यनारायण जी।]

(गताङ्क से आगे)

"हिंय हतास निज वैरिनु पै ये वृकनी जाये।
चोट करन उद्यत, दबियाने घात लगाये॥
मारग के सब विघ्न हरै यदि अस्टर भारी।
पीछे पीछे आवन छाती परै तिहारी !"॥
वह अलबेलो ज्वान पटा के हाथ निकारत।
दोउ करसों ऊँचो उठाइ निज तेग सँवारत॥
अति असीम पूरन बल सों रन मद में छायो।
धायो, होरेशस पै अपनो वार चलायो॥

युद्ध कुशल होरेशस करि फुरती चतुराई।
चपल पैंतरा बदलि वार की चोट चुकाई॥
यदपि रुक्यो सो वार गयो तउ चाटत तन कों।
जाइ बिदारी जांघ तासु तजि सीस मुकुट को॥
डगमगात जनु गिर्यो धरत पग व्याकुल भारो।
रह्यो ठाढ़ छिन भर लहि दरभी निर्यस सहारो॥
ततारोस में धायनु लखि वे सुधि खिसियायो।
सिंह सुवन सो झपटि उछरि अस्टर पै आयो॥
बड़े वेग सों तेग दई ताके सिर जाई।
झिलम टोप को भेदि दसन लों जाइ समाई॥
धमकि धसी सो तेग लगी अस्टर के आछें।
निकरी एक बिलस्त नोक तिह मस्तक पाछें॥
तिह प्रहार सों गिरयो वीर ल्यूनेश धरनि पै।
मनहु तड़ित-ताड़ित बलूत अलवर नश गिरि पै॥
दूर २ लों कुचलि विपिन पौधन कों भारो।
अरुराय के गिरयो शाख भुज युगल पसारो॥
अरु [illegible]मि सगुनी देखि गिरयो तरुतरुण विशाला।
गुनगुनात अपसगुन सोच भय बस तिह काला॥
तिमि लखि अस्टर-पतन धरनि पै, टसकन सेना।
चित्र लिखी सी लखति चकित कछु कहत बनेना॥
तासु कंठ होरेशस धरि निज पाँह दबायो।
लग्यो उखारन द दै झटका तेग समायो॥
सात बेर लों परयो जोर सब करि २ भारी।
तब कहुं तेगा धरयो कण्ठ सों सक्यो निकारी॥
व्यङ्ग भरी रनधीर उचारी तब यह बानी।
"आओ ! कैसी करत यहां तुम्हरी मिहमानी !!
अब की को सरदार आइ पुजवै अभिलाखै।
मंजुल मधुर मलूक स्वाद स्वागत को चाखै"॥
सुनत चिनौती तीखन तिहि खन ताके मुखसों।
उठयो कुलाहल रोस लाज भय मयरिपु दलसों॥
विविध शस्त्र-दुति दमदमात छत्री जहँ आये।
बल अकूत युत वीर धीर रजपूत सुहाये॥
क्यों सुभीर पूरन इटूरियन नरपति केरी।
ठाड़ो ढिंग तिह काल सेतु के चहुं दिसि घेरी॥
देखि मृतक भुवि परे, और पुल मगमें ठाढ़े।
अभय विपुल रन रङ्ग रँगे तीनों चित-गाढ़े॥

सबरी टसकन्त-सुभट-सेन जिय में घबरानी।
परी न छुवति प्रविसन, साहस जोति सिरानी ॥
... वाढ़े ठाढ़े तस्नों रोमनहिं निहारी ।
सेतु द्वार सों झिझकि हटे सब उरभय धारा ॥
झिमि मिलि कें बहुवाल कलोलत डोलत बनमें।
खरहा खेदन-कौतुक सों प्रमुदित अति मन में ॥
खोजत खोजत ताहि अचानक जो कहँ आई।
विकट भिटे के द्वारहिं झांकत करि चपलाई ॥
लखि होल गुर्रात रीछ जह हृदय कँपावन।
बठ्यो हाड़नु माहिं रुधिर सनि परम भयावन ॥
झिझकत पाछें हटत उतावल करि डर भारा।
परत प्रान के लाले कौतुक करत किनारो ॥

तिमितिन-विक्रमनिरखिसभयरिपुदलविस्मितमन
बढ़्यो न आगे कोउ करन परचण्ड आक्रमन ॥
'आगे आगे बढ़हु' पिछारी जन किलकारत ।
'पाछे पाछे हटहु' अगारी पुरुष पुकारत ॥
कबहु पाछें हटत बकहु आगें बढ़ि जाई ।
उठत हिलोरत उदधि लहरि सम सेन सुहाई ॥
तरलित समुद तेग धारिनु को, ऊपर ताके।
वरन वरन के लेत लपेटा लचकि पताके ॥
विजय घोष धुनि रन सींगन की चढ़ि अधिकाई।
गिरी खरी अति मन्दपरी पुनि गई नसाई ॥
तदपि सेन सों निकरि एक जन आइ अगारी।
छिन भर ठाड़ो भयो वीरत्रय परिचित भारी ॥

क्रमशः ।

सम्पादकीय टिप्पणियां ।

निर्बलता महापाप है ।

पाठकों को विदित है कि टर्की एक मुसलमानी सलतनत है और इटली इटेलियन्स की, जो प्रभु ईसू के मत के मानने वाले हैं। समस्त यूरोप में एक टर्की हा मुसलमानी सलतनत है और यह भी एक निर्विवाद बात है कि वह सब से कमज़ोर है। यूरोप में Sick man of Europe (यूरोप का रोगी मनुष्य) के नाम से टर्की की ख्याति है।

बड़े खेद के साथ यह कहना पड़ता है कि अधिकांश यूरोप वाले टर्की का यूरोप में होना नहीं चाहते केवल इसी लिये नहीं कि उसका प्रबन्ध अच्छा नहीं है वरन इस लिये भी कि ईसाई धर्म वहाँ राज्य धर्म नहीं है। इसके लिये हमें कुछ नहीं कहना है क्योंकि यह स्वाभाविक है कि जहाँ पर किसी एक धर्म के मानने वाले विशेषतया रहते हैं तो वे सहज ही यह चाहते हैं कि वहाँ अन्य धर्मावलम्बी न रहें या रहें भी तो वे शक्तिमान हो कर नहीं। सम्भव है कि धर्म के विचार से यह प्रश्न भी हो और यह केवल जाति ही के विचार से हो। हम देखते हैं कि हेग कान्फरेन्स भी टर्की के लिये कुछ काम न आई। टर्की ने प्रायः सभी यूरोपीय राष्ट्रों से बीचबचाव करने की प्रार्थना की और सभों की दोहाई दी किन्तु उसके रोने पर किसी को भी दया नहीं आई और सभी स्थानों से उसे कोरा उत्तर मिला।

कहा भी गया है कमज़ोर को दुनियां दुखदायी होती है। जो अपनी सहायता स्वयं आप नहीं कर सकता, जो अपनी रक्षा के लिये दूसरों के कृपा कटाक्ष का भिखारी रहता है, जिसमें शक्ति नहीं है, प्रभुत्व नहीं है वह इस संसार में अपनी सत्ता नहीं बनाये रह सकता।

अभी टर्की की आन्तरिक दशा हो ठीक नहीं है। पाठक जानते हैं कि वहां अभी नया प्रबन्ध हुआ है और पार्लामेण्ट बनाई गई है। पार्लामेण्ट के बनने पर सभी राष्ट्रों ने बधाइयां दी थीं और सभी सहायक से प्रतीत होते थे। क्योंकि उस समय उसमें जीवन की, शक्ति की झलक दिखाई देती थी। नया राज्य अभी जमने भी न पाया था, रोज़ नई २ दिक्कतों से सामना

तो करना ही पड़ता था कि इधर इटली ने अपने दोर्दण्ड प्रताप की लाल २ आंखें बाहर निकाली? । सहायता तो दूर रही इस समय सदुपदेश देने वालों का भी टोटा है। जब से यह नया युद्ध आरम्भ हुआ है तब से हेग कान्फरेंस मालूम नहीं किस पाताल में अंतरलीन होगई है ! खेद की बात है कि अन्य राष्ट्र वाले भी धर्म पथ पर नहीं हैं। अन्य राष्ट्रों का यह कर्तव्य था कि टर्की के इन गाढ़े दिनों में, जब कि उसको अपने ही झंझट भारी हो रहे हैं, जब कि हर प्रकार से न्यायानुकूल पथ से वह उन्नति की चेष्टा कर रहा है, सहायता करते, सहायता न भी सही तो इटली को समझाते, उसे उचित परामर्श देते, प्रार्थना करते, धमकाते पर किसी ने कुछ न किया ! करते भी क्यों ? संसार में

कमजोर होना पाप है ।

आज यदि टर्की कमज़ोर न होता यदि वह परमुखापेक्षी न होता, यदि उसे अपने पैरों पर आप खड़े होने में दूसरों की सहायता आवश्यक न होती, यदि टर्की में हुंकार करने की भी शक्ति होती तो पहिले तो इटली ही को अन्याय पथ पर आरूढ़ होने की हिम्मत न होती और यदि होती भी तो अन्य राष्ट्र सहायता करना अपना अहोभाग्य समझते।

हिन्दू विश्वविद्यालय।

जगन्नियन्ता सर्वदुःखापहारी जगदाधार परमेश्वर को बारंबार धन्यवाद है कि उसकी असीम कृपा से आज हमें यह शुभ संवाद सुनाने का अवसर प्राप्त हुआ है कि मि० बोसेन्ट ने अपने प्रस्तावित विश्वविद्यालय को माननीय मालवीय जी के प्रस्तावित हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्मिलित कर दिया है। सब से बड़ी प्रसन्नता की बात यह हुई है कि मि० बोसेन्ट ने साफ २ यह कह दिया है कि विश्वविद्यालय हिन्दुओं का है, उसमें हिन्दुओं की इच्छानुसार पढ़ाई होगी और जो कुछ माननीय मालवीय जी तथा और नेतागण कहेंगे उसे वे सहर्ष स्वीकार करेंगी। एक प्रसन्नता की बात यह भी है कि महाराजा दरभंगा भी अब माननीय मालवीय जी के साथ काम कर रहे हैं और विश्वविद्यालय के लिये उन्होंने ५ लक्ष दान दिया है। हमारी प्रसन्नता की पूर्ति के लिये गवर्मेन्ट ने भी हिन्दू विश्वविद्यालय से सहानुभूति प्रगट की है। हिन्दुओं के लिये शुभ अवसर आ गया है अब कोई भी अड़चन नहीं दिखाई देती प्रायः ४० सहस्र एकत्र भी हो गया है। दिसंबर तक में १ करोड़ एकत्र करना कठिन नहीं है। हम आशा करते हैं और हमें दृढ़ विश्वास भी है कि हमारे हिन्दू भाई जिनकी दानशीलता प्रसिद्ध है शीघ्र ही अपने तंडुल से मालवीय जी की गोद भर देंगे।

हिन्दी में कई बातों की कमी है। इतिहास ग्रन्थों की कमी है और इतिहास लेखकों की भी। नाटकों की कमी है और नाटककारों की कमी है। वैज्ञानिक ग्रन्थों की कमी है। विज्ञान विषयों पर लिखने वालों की कमी है। परन्तु इन अभावों से हिन्दी प्रेमी कुछ अधिक चिन्तित नहीं जान पड़ते। केवल समालोचना और समालोचकों की कमी के कारण ही न मालूम उन्हें क्यों हिन्दी के सिर पर "नहूसत का कौवा" उड़ता हुआ दिखाई पड़ता है। समालोचना के अभाव से भाषा की उतनी अङ्गहानि नहीं होती और और अङ्ग यदि पूर्ण हों तो यह दोष छिप सकता है। समालोचक उत्पन्न होने के पहले पाठक उत्पन्न होने चाहिए। हज़ार पाठकों में से एक समालोचक हो सकता है, नहीं भी हो सकता है। जो समालोचना के लिये इतने व्यग्र हैं या तो वे समालोचना को दाल भात का कवर समझते हैं, या उसे अलादीन का चिराग़ समझते हैं जिसके रगड़ते ही साहित्य जगत् में कल्पवृक्ष

हो जाएगा। विहारबन्धु के स्वर्गीय सम्पादक पं० केशवराम भट्ट के शब्दों में जानसन साहब की कुर्सी पर बैठना 'हँसी खेल नहीं है। जब जब हिन्दी के पत्रों में समालोचना और समालोचक समिति की लिखा पढ़ी का दौरा हुआ है तब तब या तो किसी ग्रन्थ के जलाने बहाने की नौबत आई है, या व्यक्तिगत आक्षेपों का संक्रामक रोग चल पड़ा है, या 'अहं च त्वं च' होकर चुप होना पड़ा है। कभी कभी प्रातःकाल के मेघों के आडम्बर के समान बड़े उठान के पीछे भी अन्त को तीन काने ही निकले हैं।

उदाहरण के लिए श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्त के 'भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता के इतिहास' के हिन्दी अनुवाद के समय का स्मरण करना चाहिए। पहले कोलाहल से आकाश पाताल एक किया गया जिसमें वह पुस्तक छपने ही न पावे। "अब्रह्मण्यं, अब्रह्मण्यं" की दुहाई मचाई गई और न मालूम क्या क्या आधिदैविक आधिभौतिक और आध्यात्मिक आपत्तियाँ उस पुस्तक के छपने से होने वाली दिखाई गई। उसके प्रकाशकों ने एक 'इतिहास प्रकाशक समिति' खड़ी कर उसका प्रथम भाग निकाल ही तो दिया और हिन्दी के सम्पादकों को जो कि उसमें "लिखी हुई बातों पर विचार करने के उपयुक्त पात्र" थे समर्पित किया गया था! इस पर किस प्रकार इतिहास प्रकाशक-समिति में से चार सज्जनों का—दो सनातनधर्मी और दो आर्यसामाजिकों का—सर्वसाधारण के सामने काठ में पाँव दिया गया—Pillory किया गया और किस प्रकार उनके धार्म्मिक जीवन की सत्ता या अभाव पर आलाप प्रलाप किया गया वह अतीत में जा चुका है, अतः उसके दोहराने की आवश्यकता नहीं। पीछे एक चतुर चूड़ामणि ने वेबर और रमेशदत्त शब्दों की व्युत्पत्ति की कहानी से खूब ही खबर ली। परन्तु इतने ही में यह शरद्-ऋतु का मेघाडम्बर "अन्ते फ़िस फिंसायते" हो गया। किसी ने यह भी पढ़ कर नहीं देखा कि इस अनुवाद में शुक्ल यजुर्वेद को श्वेत यजुर्वेद कह दिया है और "पणय ऊचुः" की अङ्गरेज़ी Panio said का अनुवाद "पनिस बोला" किया गया है। समालोचकों की बला से, वे तो जनेऊ हाथ में लेकर प्रकाशकों को शाप दे चुके थे, पुस्तक को खोल कर क्यों पढ़ने लगे?

जैसे समालोचक का काम कुसाहित्य से लोगों को चेताना है वैसे सुसाहित्य से लोगों को परिचित करना भी है। जैसे जौहरी का काम खोटे नगों को निकाल फेंकना है वैसे अच्छे जवाहरों के जौहर का बखान करना भी आवश्यक है। परन्तु यदि पहली कोटि के काम के करने वालों के अभाव से हिन्दी दरिद्रा है तो द्वितीय कोटि के अधिक उपयोगी काम के न करने वालों के कारण वह अति दरिद्र है। समालोचक अयोग्य लेखकों के शत्रु बनें तो उचित है किन्तु सुलेखकों के सहायक और मित्र बनना उन्हें उचिततर है! आज सात आठ वर्ष से एक सन्तवानी पुस्तकमाला निकल रही है जिसमें साधु महात्माओं की वाणियाँ शुद्ध और सस्ती रीति पर प्रकाशित होती हैं। मीरा, सहजो बाई, दया साहब, पलटू, रदास, कबीर आदि के काव्य इसमें कितनी अच्छी तरह छापे गये हैं इसकी समालोचना हिन्दी के कितने पण्डितवर समालोचकों ने की और कितने उनके पाठक उत्पन्न किए? मुलतान से राय शिवनाथ आहिताग्नि एक "ऋग्वेदभाष्य" निकाल रहे हैं जो हिन्दी के गौरव का कारण होगा। कितने पत्रों ने उसकी समीक्षा की है?

उसी सन्तबानी पुस्तकमाला में एक पलटू साहब की बानी छपी है। पलटू साहब अवध के एक स्वयं शिक्षित महात्मा थे। उन की एक कुण्डलिया आज हम पाठकों को अर्पण करते हैं।

टेढ़ सोझ मुह आपना ऐना टेढ़ा नाहिं।
ऐना टेढ़ा नाहिं टेढ़ को टेढ़ सूझै।
जो कोइ देखै सोझ ताहि को सोझ बूझै॥
जाको कुछ नहिं भेद भावना अपनो दरसै।
जाकी जैसी प्रीत मूरत सो तैसी परसै॥
दुर्जन के दुर्बुद्धि पाप से अपने जरते।
सज्जन को है सुमति सुमति से अपने तरते॥
पलटू ऐना सन्त है सब देखे तेहि माहिं।
टेढ़ सोझ मुँह०

* * * * *

हिन्दुस्थान की सबसे पिछली मर्दुम शुमारी की जो रिपोर्ट छप रही हैं उससे यह जान पड़ता है कि युक्त प्रदेश और पञ्जाब में स्त्रियों की संख्या घट रही है। पुरुषों की संख्या से भी स्त्रियों की संख्या घट गई है, और दस वर्ष पहले की संख्या से आबादी की बढ़ती के साथ बढ़ना दूर रहा, उलटे घट गई है। इस शोक-दायक घटना पर जितना दुःख नहीं है उतना इस बात पर है कि देश के नेताओं का इस ओर ध्यान ही नहीं है। गलिवर के पर्यटनों की राजधानी के पण्डितों की तरह वे इसी बहस में डूबे हुए हैं कि अण्डे के छोटे सिरे से तोड़ें या बड़े सिरे से। जिस प्रश्न की मीमांसा में वे बुड्ढे होते जा रहे हैं कि कितने हिन्दू और कितने मुसलमानों पर "आनरेबल" की ज़ीन कसी जाय, उसका महत्व इस बात के महत्व के पसंगे में भी चढ़ने लायक नहीं है कि देश माताओं तथा भगिनियों से रहित हो रहा है। जब किसी हिंस्र पशुओं के वंश का लोप करना इष्ट होता है तो शिकारी उसकी मादाओं को मार देते हैं पीछे नर स्वयं मर जाते हैं। रक्षक पुरुषों के रहते अबला स्त्रियों का यों मरना पुरुषों की अयोग्यता, कायरता और विनाशोन्मुखता का पूरा प्रमाण है। यह स्त्रियों की घटती समाज के अपराधों से, पुरुषों के अपराधों से हो रही है। प्रसूति समय में कन्या और कन्या की माता की सम्हाल नहीं की जाती। बालक-पन के रोगों में कन्या की सम्हाल नहीं की जाती। यदि वह बच गई तो बालविवाह और बलात्कार सहवास से उसकी अल्पायु की नींव डाली जाती है। फिर बलात्कार के गर्भाधान, बिना इच्छा के गर्भाधान, अत्याधिक प्रसूति से उसका रोम रोम जर्जरित हो जाता है। दुर्भिक्ष में वह पुरुष से अधिक भूखी रहती है और रोग में उसकी चिकित्सा नहीं की जाती। प्लेग के आक्रमणों को वह पुरुषों से बहुत कम सह सकती है। क्या यह कर्म उनके योग्य है जिनने जगत् की सब स्त्रियों को दुर्गा का रूप माना था। "जहां स्त्रियें दुःख पाती हैं वह घर अवश्य नष्ट हो जाता है"। गवर्मेंट के दोष सुझाना और उन का प्रतीकार करना पास है, अपनी हड्डियों में घुसे दुर्बलों पर अत्याचार के दोषों को मिटाना कितना दूर है !!

हिन्दी साहित्य सम्मेलन।

गत वर्ष जब काशी में सम्मेलन हुआ था उस समय बहुत से लोगों के चित्त में यह सन्देह था कि सम्मेलन भी हमारे देश की बहुत [illegible] नवजात सभाओं के समान केवल इसी लिये पैदा हुआ है कि एक बार तमाशे की भांति [illegible]कर समाप्त हो जाय। परन्तु जिस समय सम्मेलन का अधिवेशन आरम्भ हुआ और विषय-निर्धारिणी कमेटी की बैठकें हुईं, उस समय कुछ थोड़े से लोगों की दूरदर्शिता कारण सम्मेलन का कुछ ऐसा रूप दिखलाई पड़ने लगा जिसका गुमान कदाचित् नागरी प्रचारिणी सभा के उन सदस्यों को भी न हुआ होगा जिनके ही प्रयत्न से सम्मेलन का पहिला अधिवेशन हुआ था इसमें संदेह नहीं कि काशी में कुछ विशेष कारणों से द्वितीय सम्मेलन की अपेक्षा हिन्दी के प्रेमी कम आये

थे परन्तु सभापति महाशय के साथ ही कुछ थोड़े से लोग अवश्य ऐसे उपस्थित हो गये थे जिन्होंने सम्मेलन को ऐसा स्थायी रूप दे दिया जिससे सम्मेलन हमारे देश की कांग्रेस से लेकर अधिकतर अन्य सभाओं के समान केवल लम्बी २ वक्तृतायें न झाड़ कर वास्तव में हिन्दी साहित्य की उन्नति और नागरी प्रचार का कुछ काम करे। अस्तु जो कुछ भी सन्देह गत वर्ष के सम्मेलन के बाद भी लोगों के चित्त में सम्मेलन के सम्बन्ध में रहा हो द्वितीय सम्मेलन में वह दूर हो गया और द्वितीय सम्मेलन के उत्साह और कार्य से भली भांति प्रगट हो गया कि सम्मेलन स्थायी रूप से हिन्दी संसार में रहने के लिये आया है, और यह भी प्रगट हो गया कि हिन्दी सेवकों में ऐसे लोग अवश्य हैं जो जनसमूह का संगठन कर उनके द्वारा काम कराने की योग्यता रखते हैं और स्वयं अपना २ स्वार्थ त्याग हिन्दी की सेवा करने में तत्पर हैं। सम्मेलन की अभी केवल एक वर्ष की अवस्था हुई है। उसको अभी बलवान होने में अवश्य कुछ समय लगेगा परन्तु जिस शैली से वास्तविक कार्य की ओर ध्यान रखते हुय सम्मेलन ने कार्य आरम्भ किया है वह हमारे देश की अन्य बड़ी २ सभाओं के लिये उदाहरण रूप है।

प्रायः हिन्दी के सभी प्रतिष्ठित समाचार पत्रों ने द्वितीय सम्मेलन के कार्य के सम्बन्ध में उत्साह प्रगट किया है। यह स्वाभाविक ही है। परन्तु हमारे नगर के अंगरेज़ी पत्र लीडर ने द्वितीय सम्मेलन के सम्बन्ध में दो एक आक्षेप किये हैं जिन्हें पढ़ कर हमें कुछ हँसी आती है, इस कारण से कि सम्पादक महाशय की टिप्पणी से यह बात प्रगट होती है कि उन्होंने सम्मेलन के कार्यों और प्रस्तावों का स्वयं कुछ भी नहीं समझा और न समझने का यत्न किया, केवल एक आध बात सुन कर और बिना उस बात का अन्य बातों से सम्बन्ध जाने लिख मारा है। "लीडर" की देखा देखी पंजाब के "ट्रिब्यून" और अंगरेज़ी के एक आध और पत्रों ने उसी में सुर अलापा है। इन टिप्पणियों की ओर अच्छी तरह से विचार कर हमें यही कहना पड़ता है कि जो बात प्रायः भाषा के पत्र सम्पादकों के सम्बन्ध में कही जाती है अर्थात् यह कि वे प्रायः बिना समझे बूझे और स्वतन्त्र विचार किये बहुत सी बातें लिख मारते हैं वही बात हमको इन अंगरेज़ी पत्रों के सम्बन्ध में घटित होती दिखलाई पड़ती है। "ट्रिब्यून" के सम्पादक महाशय की वास्तविक योग्यता जो कुछ हो यह तो हम नहीं जानते परन्तु उनका नोट पढ़ कर हमें यह अवश्य कहना पड़ता है कि हम कुछ न समझ सके कि उनका सम्मेलन के सम्बन्ध में क्या दृढ़ निश्चय है और हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि सम्पादक महाशय स्वयं ही यह नहीं जानते कि उनका क्या विचार था। हमारे पाठक स्वयं इस नोट को जो इसी मास के पहिले सप्ताह की संख्या में निकला है पढ़ सकते हैं। जान पड़ता है कि उन्होंने केवल यह सोचा कि सम्मेलन पर कुछ लिखना है, सम्मेलन का वास्तविक हाल कुछ नहीं मालूम परन्तु "लीडर" ने एक छोटा सा नोट लिखा है—यह कहना कि "लीडर" के सहारे पर नोट लिखा गया है इसमें तो मानहानि होगी। अस्तु कुछ बदल कर ऐसा लिख देना चाहिये कि कुछ स्वतंत्र सम्मति भी जान पड़े और अंधेरे में फेंकी हुई तीर कहीं लग भी जावे। इसी तरह का वह नोट लिखा हुआ जान पड़ता है, जिसमें अंगरेज़ी के शब्द तो अवश्य हैं परन्तु पढ़ने के बाद यह नहीं जान पड़ता कि उनका भाव क्या निकला। एक बात सम्पादक महाशय ने जो कहा है उसका तात्पर्य यह है कि सम्मेलन जिस प्रकार से काम करता है ठीक नहीं है, उसको उन स-

सम्मेलन के प्रस्तावों को असम्भव कहा है। यदि इसका यह अर्थ है कि जिन विषयों के सम्बन्ध में सम्मेलन ने गवर्मेंट से प्रार्थना की है उनका होना असम्भव है तो हम पूछते हैं कि शस्त्र सम्बन्धी क़ानून Arms Act का रद्द होना अथवा गवर्मेण्ट के न्याय और प्रबन्ध विभाग का अलग होना (Separation of Executive and judiciai departments) अथवा सिविल सरविस की परीक्षा का भारतवर्ष में होना अथवा भारतवासियों को फ़ौजों में बड़े पद मिलना—क्या ये सब बातें जो कांग्रेस कहा करती है सम्भव हैं और नोटों और सिक्कों पर हिन्दी का होना, संयुक्तप्रान्त और पञ्जाबप्रान्त की अदालतों में नागरी अक्षरों का प्रयोग होना, गज़ट की एक प्रति हिन्दी में निकलना सर्वथा असम्भव है। सम्मेलन में गवर्मेंट सम्बन्धी केवल ये ही प्रस्ताव थे। सचमुच "लीडर" के सम्पादक और उनके सम्वादाता यदि गवर्मेण्ट के सलाहकार होते अथवा हिन्दी का प्रचार इन्हीं के ऊपर निर्भर होता तो ये बातें असम्भव होतीं! परन्तु हिन्दी के भाग्य अभी इतने नहीं फूट गये हैं कि उसकी स्थिति का फ़ैसला इन सज्जनों के हाथ में आवे! लीडर ने उपर्युक्त प्रस्तावों को Impractical असम्भव कह हिन्दी की, हिन्दुओं की और देश की कितनी सेवा की है— उसके लिए देश भर को धन्यवाद देना चाहिये! कम से कम गवर्मेण्ट को तो अवश्य 'लीडर को' धन्यवाद देना उचित ही है; क्योंकि अब जब कभी हिन्दी के संबन्ध में कौंसिल में कोई प्रश्न करेगा तो गवर्मेण्ट तुरन्त उत्तर दे सकती है कि देखो" तुम्हारा ही पत्र जो तुम्हारे नेताओं का निकाला हुआ है इन बातों को असम्भव कह रहा है; फिर गवर्मेंट कैसे उनकी ओर ध्यान दे सकती है!" गवर्मेंट को कहने का अवसर तो अच्छा मिल गया परन्तु इसी कारण से अब हिन्दी के प्रेमियों और सच्चे देशहितैषियों का यह धर्म हो गया कि वे गवर्मेंट पर अच्छी तरह प्रकट करें कि 'लीडर' की सम्मति हमारे प्रान्त के नेताओं की सम्मति नहीं है और न वह हमारे करोड़ों देशवासियों की सम्मति है।

यदि लीडर के सम्पादक महाशय और उनके सम्वाददाता यह कहें कि उनका प्रयोजन गवर्मेंट सम्बन्धी मन्तव्यों से नहीं था, तो हम पूछते हैं कि किन मन्तव्यों को आपने संभव और किन को असम्भव समझा। आपने जिस तरह पर लिखा है उसमें सभी मन्तव्य आजाते हैं। आपने उदाहरण की भांति दो मन्तव्य लिये हैं, एक तो वह जिसमें रेलवे कम्पनियों का ध्यान इस बात की ओर दिलाया गया था कि वे रेलवे टाइम टेबिल, नक़शे इत्यादि यात्रियों की सुविधा के लिये हिन्दी में भी छपवावें; दूसरा वह प्रस्ताव जिसमें देशीय भाषाओं के पत्र-सञ्चालकों से कुछ अंश हिन्दी में छापने की प्रार्थना की गई थी। हिन्दी के सम्बन्ध में 'लीडर' के सम्पादक की चित्त की वृत्ति इस बात से मालूम पड़ती है कि वे रेलवे संबन्धी प्रस्ताव सुनते ही चट मद्रास दौड़ गए और आक्षेप करने लगे कि मद्रास में हिन्दी कौन समझेगा जो रेलवे कम्पनियां हिन्दी में अपने टाइमटेबिल इत्यादि छापें, परन्तु सम्पादक महाशय को याद रखना चाहिए कि मद्रास ही भारतवर्ष भर नहीं है, और प्रत्येक सभा में प्रस्ताव अधिकांश लोगों के लिए किये जाते हैं। यदि सम्पादक महाशय ध्यान से प्रस्ताव पढ़ते तो उसमें देख सकते थे कि अधिकांश मनुष्यों के सुविधे के विचार से ही प्रस्ताव किया गया था; यह प्रयोजन किसी का नहीं था कि अन्य भाषाओं में टाइमटेबिल इत्यादि का छपना बन्द कर दिया जाय—इसी प्रकार से पत्रों से जो प्रार्थना की गई थी वह केवल हिन्दी को राष्ट्रभाषा करने के विचार से थी। इस समय भी कुल भारतवर्ष में हिन्दी जानने वाले उपस्थित हैं, फिर यदि अन्य पत्र संचालक, जो एक लिपि और एक भाषा का

उद्योग करते हैं, अपने पत्रों में कुछ स्थान हिन्दी के लिये रक्खें तो इसमें असम्भव कौन सो बात है? परन्तु इन प्रस्तावों को छोड़ कर भी लीडर ने तो सबही पर हांथ फेर दिया है। इस वर्ष विशेष कर कई मन्तव्य ऐसे हुए जिनका पूरा होना हिन्दी प्रेमियों के और सम्मेलन की स्थायी समिति के हांथ में है; जैसे व्यापार और विज्ञान संबन्धी पुस्तकों का तयार होना, सम्मेलन संबन्धी पुस्तकालय बनाना, हिन्दी पुस्तकों की सूची तेयार करना, और हिन्दी की परीक्षाएं स्थापित करना। क्या ये सब मन्तव्य "Impractical" की गणना में हैं? यदि लीडर के विचार में ऐसाही है तो हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि ईश्वर उन्हें इतनी शक्ति दे कि वे अपने करने की सबही बातों को असम्भव न कह दें परन्तु कुछ करने पर तत्पर हों। न हमारे और न हिन्दी साहित्य सम्मेलन के विचार में ये बातें असम्भव हैं और हमें दृढ़ आशा है कि थोड़े ही वर्षों में इन मन्तव्यों का परिणाम सब ही देश हितैषियों को दिखलाई पड़ने लगेगा।

कांग्रेस के सभापति।

आगामी कलकत्ते में होने वाली सभा के लिये युक्त प्रान्त के प्रसिद्ध लेखक और राजनीतिज्ञ पं० विशननारायण दर सभापति चुन लिये गये हैं।

क्षमा प्रार्थना।

निरन्तर ज्वर से पीड़ित रहने के कारण तथा साहित्य सम्मेलन के ब्लाक आदि के बनने में देर होने के कारण अबकी बार मर्यादा ठीक समय से प्रकाशित न हो सकी आशा है पाठक क्षमा करेंगे।

अभ्युदय प्रेस प्रयाग में बद्रीप्रसाद पांडे के प्रबन्ध से छप कर प्रकाशित हुआ।

ओं के समान काम करना जो केवल विचार करतीं हैं उचित नहीं है क्योंकि सम्मेलन का कार्य केवल अन्य रीति का है। यदि हम केवल इतना ही पढ़ते तो हम यह समझ सकते थे कि कदाचित सम्पादक महाशय को यह नहीं मालूम कि सम्मेलन की स्थायी समिति है और वह उस समिति द्वारा बराबर काम कर रहा है। परन्तु सम्पादक महाशय के नोट से यह जान पड़ता है कि उन्होंने यह सुन रक्खा है कि सम्मेलन की एक स्थायी समिति है और उसका एक "पैसाफ़रड" भी है। फिर उनके पहिले कथन का क्या अर्थ हुआ यह हम न समझ सके। यदि वे ये कहते कि स्थायी समिति ने कुछ काम नहीं किया अथवा जो किया सो थोड़ा किया अथवा उसको कोई विशेष काम करना चाहिये तो भी हम सम्पादक महाशय का कुछ अर्थ समझते और उस पर विचार करते. परन्तु सो भी नहीं कहा गया है; ऐसी दशा में हम नहीं समझते कि उस टिप्पणी पर हम क्या विचार करें। अस्तु "लीडर" ही में जो सम्पादक महाशय की टिप्पणियां निकली हैं और उनके विशेष सम्वाददाता का पत्र छपा है उन्हीं की ओर हम ध्यान देते हैं।

"लीडर" के सम्पादक महाशय और उनके अधीनस्थ काम करने वालों को सम्मेलन के सम्बन्ध में कितना हाल मालूम है यह उनकी उस टिप्पणी से प्रगट होता है जो द्वितीय सम्मेलन के दो दिन पहिले ता० २२ सितम्बर की संख्या में निकली थी जिसमें उन्होंने यह बतलाते हुये कि सम्मेलन २४, २५ और २६ तारीख को होगा यह लिखा था कि "यह लाभकारी होता यदि सम्मेलन के सभापति का नाम सम्मेलन में उपस्थित होने वाले विषय और सम्मेलन का ठीक समय अब तक प्रगट कर दिया जाता" "लीडर" के सम्पादक महाशय ने इस प्रकार से सम्मेलन के कार्यकर्त्ताओं पर आक्षेप तो अवश्य किया परन्तु इसमें उन्होंने स्वयं ही अपनी कार्यकुशलता का परिचय दिया है। प्रयाग में होने वाले सम्मेलन के सभापति का नाम और उसमें उपस्थित होने वाले विषयों की सूचना यदि प्रयाग से निकलनेवाले पत्र को न मालूम हो—जब कि लगभग पांच महीने पहिले से इन विषयों के सम्बन्ध में हिन्दी के प्रायः सब ही समाचारपत्रों में लेख निकले हैं, तो सचमुच यह एक दैनिक पत्र की सम्पादकता के कार्य का अच्छा उदाहरण है! सम्मेलन की तिथियां और सभापति महाशय के चुनाव की सूचना हिन्दी पत्रों में सम्मेलन से लगभग चार मास पहिले निकल चुकी थी। उपस्थित होने वाले प्रस्ताव और विषय भी लगभग डेढ़ मास पहिले हिन्दी समाचारपत्रों में निकल चुके थे। "लीडर" के सम्पादक महाशय को यदि इन बातों की दो दिन पहिले सूचना न हो तो इसका दोष सम्मेलन पर है अथवा उन पर इस बात का निर्णय सब ही साधारण बुद्धि वाले कर सकते हैं। सम्मेलन के कार्यकर्त्ताओं ने जहाँ तक हमें मालूम है उपर्युक्त विषयों की सूचना केवल हिन्दी पत्रों में भेजी थी। कारण भी इसका स्पष्ट ही है। परन्तु यदि "लीडर" के सम्पादक महाशय का सम्मेलन की ओर कुछ भी ध्यान था तो क्या उनका यह धर्म नहीं था कि वे जि[illegible] बातों की सूचना चाहते सम्मेलन कार्यालय से [illegible] गा लेते अथवा हिन्दी समाचारपत्रों से ले लेते और क्या हमारे देश निवासियों द्वारा सम्पा[illegible]त अङ्गरेज़ी समाचारपत्रों का यह धर्म नहीं है कि अपने को सदा इस बात से विज्ञ रक्खे कि हिन्दी समाचारपत्रों में क्या लेख निकल रहे हैं? "लीडर" चाहे जिस तरह बात बनावे पर सच्ची बात तो यह है कि उनके सम्पादकीय कार्यकर्त्ताओं की हिन्दी भाषा से अविज्ञता ही उनकी टिप्पणी का कारण है। यह तो "लीडर" के सम्मेलन सम्बन्धी ज्ञान का परिचय हुआ। लीडर में जो कई [illegible] क असङ्गत बातें कही गई हैं उन सब की ओर तो हम स्थानाभाव से

.... .हीं दे सके। उनके मुख्य आक्षेप को ही विवेचन करते हैं क्योंकि वह सम्मेलन की जड़ ही काटता है।

सम्पादक महाशय का सम्मेलन पर यह बड़ा आक्षेप है कि सम्मेलन ने जो मन्तव्य निश्चित किये वे सब Impractical हैं अर्थात् उनका काम में आना असम्भव है और उनसे कोई लाभ नहीं। इसके उत्तर में हमें यही कहना पड़ता है कि यदि लीडर के सम्पादक महाशय साधारण हिन्दी भाषा समझ सकते और प्रस्तावों को पढ़ते तो कदाचित् ऐसा न कहते। उनकी देखा देखी एक सज्जन ने, जो अपने को लीडर का "Special correspondent" [विशेष सम्बाददाता] कहते हैं यही बात लिख मारा है। इन सम्वाददाता महाशय ने अपना नाम तो नहीं प्रकाशित किया है परन्तु अपनी लिखावट से आप उस श्रेणी के लोगों में से जान पड़ते हैं जिन्हें अभी वास्तविक काम का कुछ अनुभव नहीं है, जो अपने नए जोश में और अंगरेज़ी भाषा लिखने के शौक़ में बिना इस बात के विचारे कि हम क्या लिखते हैं और इसका उस विषय पर जिस पर हम लिखते हैं क्या प्रभाव पड़ेगा, कुछ लिखना ही अपना धर्म समझते हैं। सम्मेलन की किन बातों का उन्होंने उल्लेख किया है और किन बातों को नहीं लिखा है, सत्य बात को खींच तान कर किस प्रकार से उसका रूप बदल दिया है, इन बातों को व्योरेवार दिखलाने को हमें स्थान नहीं। "लीडर" के सम्पादक को अपना गुरुमान उन्होंने जो हां में हां मिलाई है उसका विवेचन "लीडर" के सम्पादक के उत्तर में ही आ जायगा। सम्मेलन के कार्य में कई कारणों से कुछ त्रुटियां थीं और सब से बड़ी त्रुटि यह हुई कि कार्य दो पिछले दिनों को नियत समय से देर को आरम्भ हुआ—परन्तु इस त्रुटि में और उन द्रोहपूर्ण आक्षेपों में जिन्हें "लीडर" ने छापना उचित समझा है बहुत अन्तर है। प्रस्तावों के Impractical होने का जो आक्षेप किया गया उसके सम्बन्ध में हम यही कह सकते हैं कि हमारे विचार में द्वितीय सम्मेलन के प्रस्ताव हमारे देश की स्पीच झाड़ने वाली सभाओं के प्रस्तावों से कहीं अधिक उपयोगी थे और प्रथम सम्मेलन के प्रस्तावों से भी बढ़ कर थे। हिन्दी में एक गँवारू मसल है "उलटा चोर कोतवालै डांटे"; यही बात लीडर और उसके सम्वाददाता के सम्बन्ध में घटित होती है। कांग्रेस और इण्डस्ट्रियल Industrial और सोशल Social कानफ़रेन्सों के हिमायती "लीडर" महाशय का सम्मेलन के प्रस्तावों पर यह आक्षेप करना कि वे कार्य में नहीं परिणित हो सकते छोटे मुंह बड़ी बात मालूम पड़ती है। हम "लीडर" के लिखने वालों से और अपने पाठकों से यह निवेदन करते हैं कि वे उपर्युक्त सभाओं के प्रस्तावों को जो लगभग २५ वर्ष से होते चले आ रहे हैं और सम्मेलन के प्रस्तावों को साथ रख कर पढ़ें और तब मिलावें कि कौन प्रस्ताव असम्भव और अपनी शक्ति के बाहर हैं। सम्मेलन के बहुत से प्रस्ताव इस प्रकार के थे जो हमारे ही उद्योग से सम्बन्ध रखते हैं और हमको काम करने का मार्ग दिखाते हैं, जिन पर हम तुरन्त चल सकते हैं और जिनके सम्बन्ध में सम्मेलन की स्थायी समिति स्वयं उद्योग करती है। कांग्रेस के और अन्य सभाओं के प्रस्ताव या तो केवल गवर्मेंट से बहुत सी उन बातों के सम्बन्ध में प्रार्थना करते हैं जिनको प्रस्ताव करने वाले स्वयं जानते हैं कि किसी निश्चित समय के भीतर नहीं मिलेंगी, वा उनके द्वारा वर्ष में एक बार स्पीच झाड़ने वाले शौक़ीन अपनी २ सम्मति देना ही अपनी देश भक्ति का अन्त समझते हैं और स्वयं उनको कार्यरूप लाने का उद्योग नहीं करते। "लीडर" ने